इम्पीरियल डेरी, बंगलोरमें

(गांधीजी और मालवीयजी अच्छी नस्लकी गाय, जिलके साथ)

देखिए "पत्र : विलियम स्मिथको", २५-६-१९२७, और परिशिष्ट १

सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय

३४

(जून-सितम्बर १९२७)

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मन्त्रालय

भूमिका

इस खण्डमें तीन महीनेकी — अर्थात् १६ जूनसे लेकर १५ सितम्बर, १९२७ तक-की — सामग्री दी गई है। काफी लम्बे अर्सेतक नन्दी पहाड़ीपर रहनेके बाद अब गांधीजी बंगलोर आ गये थे और जून महीना समाप्त होते-न-होते उन्होंने मैसूरका दौरा भी शुरू कर दिया था। लेकिन अपने स्वास्थ्यका ध्यान रखते हुए वे दौरेका कार्यक्रम ऐसा रखते थे जिससे उसे अधिक श्रमके बिना सम्पन्न किया जा सके। मैसूर राज्यकी प्रगति तथा वहाँके सौहार्दपूर्ण वातावरणसे प्रसन्न होकर बंगलोरसे विदा होते समय अपने भाषणमें उन्होंने कहा: "जो ज्यादा देते हैं, उनसे और ज्यादा देनेकी अपेक्षा की जाती है। इस राज्यमें मैंने इतनी अधिक मात्रामें अच्छाई देखी है कि मैं तो यहाँतक सोचने लगा हूँ कि यदि आप लोग और महाराजा साहब मिलकर चाहें तो मैसूरको रामराज्य बना सकते हैं।" (पृष्ठ ४५३)।

अगस्तके अन्तमें उन्होंने तमिलनाडका दौरा आरम्भ किया। ३ सितम्बरको वे मद्रास पहुँचे और वहाँसे दक्षिणकी ओर बढ़ते हुए १५ सितम्बरको पूर्व तंजौरमें मन्नारगुडि जा पहुँचे। इस दौरान उन्होंने अनेक भाषण दिये, जिनमें उन्होंने पूर्ववत् खादी और चरखा, अस्पृश्यता, बाल-विधवाओंकी समस्या तथा देवदासी प्रथाके सम्बन्धमें अपने विचार व्यक्त किये। कतिपय भाषणोंमें उन्होंने नगरपालिकाओंके सफाई-सम्बन्धी कर्त्तव्यपर भी जोर दिया। विद्यार्थियोंके समक्ष बोलते हुए उन्होंने अकसर यह समझाया कि 'गीता'का अध्ययन करना हिन्दुओंके लिए अत्यन्त आवश्यक है।

उनके प्रत्येक शब्द, प्रत्येक कार्यके पीछे "एक धार्मिक चेतना, स्पष्ट धार्मिक उद्देश्य" होता था (पृष्ठ ४८७)। किन्तु साथ ही वे "कर्म और कर्मशीलतासे" अलग "कोई भी आध्यात्मिक या नैतिक मूल्य" स्वीकार ही नहीं करते थे (पृष्ठ ४८८)। इसी प्रकार जो धर्म "अर्थशास्त्रीय आचरणके रूपमें प्रस्तुत किये जाने योग्य" नहीं है, उसे उन्होंने व्यर्थ माना और जो अर्थशास्त्र "धार्मिक या आध्यात्मिक आचरणके रूपमें प्रस्तुत किये जाने योग्य" नहीं है, उसे उन्होंने त्याज्य बताया (पृष्ठ ४८९)। स्वर्गीय चित्तरंजन दासकी गहन आध्यात्मिकताके लिए उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए उन्होंने कहा: "प्रत्येक भारतीयके जीवनमें एक ऐसा समय अवश्य आता है जब वह निरे राजनीतिक संघर्षसे ऊब जाता है और . . . हर चीजको आध्यात्मिक और जीवन्त रूपसे नैतिक बुनियादोंपर खड़ी करनेकी कोशिश करने लगता है" (पृष्ठ ५४३)। पूर्णता प्राप्त करनेके अपने अथक प्रयत्नके सम्बन्धमें कडलूरके युवक ईसाई संघमें बोलते हुए उन्होंने कहा: ". . . व्यक्तिके विकास और समूहके विकासमें कोई अन्तर नहीं है, . . . इसलिए व्यक्तिके विकासकी सबसे पहली शर्त यह है कि उसमें अतीव विनम्रता हो" (पृष्ठ ५४९)। तदनुसार देशकी सेवा करने और बड़े-बड़े काम कर दिखानेकी इच्छा रखनेवाले विद्यार्थियों तथा युवकोंको उनकी सलाह यह थी कि "सबसे पहले अपनी ओर ध्यान दो, अपनेको सँवारकर सेवाके लिए उपयुक्त साधन बनाओ" (पृष्ठ ५४९)। इस प्रक्रियाको हम तभी आरम्भ कर

सकते हैं जब हमारा हृदय शुद्ध हो, "पर अपने हृदयको शुद्ध बनाना बहुत कठिन है। इसीलिए ईसाई धर्मकी जीवन-योजनामें हम 'नया जन्म' नामकी चीज देखते हैं" (पृष्ठ ५४९)। हिन्दू धर्मका 'द्विज' शब्द उसी अर्थका द्योतक है। किन्तु 'नया जन्म' अथवा 'द्विज' शब्दका प्रचलित अर्थ तो उन्हें भाषाका दुरुपयोग ही जान पड़ा। उनके विचारसे 'नया जन्म' ". . . व्यक्तिके अन्दर होनेवाला एक परिवर्तन है, जो साफ लक्षित होता है। . . . यह हृदयका परिवर्तन है . . ." (पृष्ठ ५५०)। वे मानते थे कि "समाज-सेवासे ही आत्माकी उन्नति हो सकती है। सेवा-कार्यका अर्थ है यज्ञ" (पृष्ठ १०३)। उनका निश्चित मत था कि कर्म, भक्ति अथवा ज्ञान किसी भी क्षेत्रमें "एककी उन्नतिमें सबकी उन्नति है और एककी अधोगतिमें सबकी अधोगति है" (पृष्ठ ३६५)। गांधीजी को आध्यात्मिक संबल अपने सहयोगियों और साथियोंसे प्राप्त होता था। बंगलोरसे विदा होते हुए एक भाषणमें उन्होंने अपना दृष्टिकोण इन शब्दोंमें समझाया: "मनुष्य एक व्यक्तिके साथ-साथ सामाजिक प्राणी भी है, समाजका सदस्य है। व्यक्तिके रूपमें चाहे तो वह निद्राके समयको छोड़कर शेष सारे समय प्रार्थना-रत रह सकता है, परन्तु समाजके सदस्यके रूपमें उसे सामूहिक प्रार्थनामें भी शामिल होना चाहिए। . . . मैं तो जब भी एकान्त पाता हूँ, प्रार्थना कर लेता हूँ, परन्तु यदि सामूहिक प्रार्थना न हो तो मुझे बड़ा अकेलापन लगता है" (पृष्ठ ४५४)।

गांधीजी ने ये सारी बातें जनसाधारणसे नहीं, बल्कि जन-सेवकोंको लक्षित करके कही। जनसाधारणका असली दुःख तो उसकी दीनता थी। उसके सामने ईश्वर और अध्यात्मकी चर्चा करना कैसे उचित हो सकता है? रोटीके लिए तरसते लोगोंके सामने धर्म परोसना तो उनका उपहास करना होगा। उन्होंने कहा: "यदि मैं या आप उनके सामने ईश्वरकी बात करेंगे तो वे हमें दुष्ट और बदमाश कहेंगे। यदि वे किसी ईश्वरको जानते हैं तो उस ईश्वरको जो उनके लिए त्रासका कारण बना हुआ है, उनपर अपना क्रोध उतारता रहता है और जो निष्ठुर और आततायी है" (पृष्ठ ४९१)।

हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्यको लेकर उनका मन काफी व्यथित था, यद्यपि इस अवधिमें इस विषय पर वे बोले बहुत कम ही। यह मौन उन्होंने जान-बूझकर धारण कर रखा था और इसके पीछे उस अपमानकी स्वीकृति छिपी हुई थी जिसे शब्दोंमें व्यक्त नहीं किया जा सकता था (पृष्ठ ३)। वैसे तो उन्हें मोतीलाल नेहरू और जवाहरलाल नेहरूकी राजनीतिक विचक्षणता पर अधिक भरोसा था, किन्तु कांग्रेसके अध्यक्ष-पदके लिए उन्होंने डॉ० मुहम्मद अहमद अन्सारीका नाम पेश किया, क्योंकि उन्हें ऐसी आशा थी कि हिन्दू-मुस्लिम एकता सम्पन्न करनेमें वे अधिक सहायक होंगे। जब डॉ० अन्सारीने विधान परिषदोंमें कांग्रेसजनोंको सहयोग करनेका सुझाव देते हुए एक वक्तव्य जारी करनेका इरादा जाहिर किया और गांधीजी को उस वक्तव्यका मसविदा भेजा तो उन्होंने उनको बहुत स्पष्ट शब्दोंमें, किन्तु साथ ही किंचित् विनोदपूर्ण शैलीमें, पत्र लिखकर कहा कि आप अपने वक्तव्यको फाड़कर फेंक दें (पृष्ठ ३३१-३४)। लेकिन इसके बावजूद जब वक्तव्य प्रकाशित हो गया और उसमें डॉ० अन्सारीने अध्यक्ष-पद छोड़नेकी बात कही तब गांधीजीने उन्हें लिखा: "हिन्दू-मुस्लिम एकताकी

जरूरतके बारेमें आपके खयालातसे यह बात मेल नहीं खाती; और आप ओहदेसे अलग न हों। लेकिन . . . मेरे खयालसे आपको एक छोटा-सा बयान जारी करना पड़ेगा, जिसमें आप यह साफ बता देंगे कि यद्यपि आप अपने बयानमें रखी नीति पर अब भी दृढ़ हैं, लेकिन आप अपनी उस रायको कांग्रेसपर थोपनेकी कोशिश नहीं करेंगे, और अपने कामका दायरा हिन्दू-मुसलमान एकता बढ़ानेतक ही महदूद रखेंगे।" (पृष्ठ ४३८)

जिन दिनों गांधीजी मद्रासमें थे, वहाँ नीलकी प्रतिमाके हटानेके लिए आन्दोलन चल रहा था। वे इसमें कांग्रेसको प्रत्यक्ष रूपसे शामिल होने देनेके लिए तो तैयार नहीं थे, परन्तु इस दिशामें निजी तौरपर किये जानेवाले प्रयत्नोंका उन्होंने समर्थन किया। साथ ही इस बातपर भी उनका आग्रह था कि इस उद्देश्यसे सत्याग्रह करनेवालोंको 'यंग इंडिया' के लेखोंसे सत्याग्रहकी शिक्षा लेनी चाहिए और सत्याग्रह इसी शर्तपर करना चाहिए कि यदि वह सफल हो गया तो उसका श्रेय तो कांग्रेस लेगी, किन्तु उसके विफल होनेपर वह अपयशकी भागी नहीं बनेगी (पृष्ठ ५०८-९)। उनका दावा था कि "मैं . . . भारतीय राजनीतिके मानचित्र-रहित सागरका एकमात्र प्रकाश-स्तम्भ — सत्याग्रह — का संरक्षक . . . हूँ।" (पृष्ठ १८५)

जो लोग गांधीजीके सबसे ज्यादा निकट थे, वही उनकी आलोचनाके सबसे अधिक पात्र थे। इस आरोपके उत्तरमें कि वे ईसाइयों और मुसलमानोंके प्रति तो नरमीका रुख रखते हैं, किन्तु हिन्दुओंके साथ उनका रवैया भिन्न है, उन्होंने कहा कि "मुझे हिन्दुओं द्वारा गलत रूपमें समझे जानेका कोई भय नहीं रहता" (पृष्ठ ५८२)। इसका मतलब यह नहीं कि अन्य धर्मावलम्बियोंकी बुराइयोंके सम्बन्धमें वे बिलकुल चुप ही रहे। इसके विपरीत अपने-अपने धर्ममें लोगोंके विश्वासको दृढ़ करनेके बजाय उसे कमजोर बनानेवाले और "सबसे अधिक अर्थगर्भित शब्द ईश्वर"की अनर्गल व्याख्या करनेवाले ईसाई धर्मप्रचारकोंके प्रति अपना असन्तोष उन्होंने स्पष्ट शब्दोंमें व्यक्त किया (पृष्ठ २८०-८१)। हिन्दू सुधारकको उनकी सलाह यह थी कि वह "हिन्दू जातिमें रहते हुए, किसीका द्वेष न करते हुए, हिन्दू धर्मसे पूर्ण प्रेम रखते हुए . . . अपना काम करते जाय और वह करते हुए जो कुछ भी कष्ट पड़े उसको बरदाश्त करे।" (पृष्ठ ३६)। इससे यह नहीं समझना चाहिए कि वे प्राचीनताको समग्र रूपसे पुनः प्रतिष्ठित करनेके समर्थक थे। कृत्रिम यूरोपीयकरणका तो उन्होंने विरोध किया, किन्तु वे यह माननेको भी तैयार न थे कि इसका एकमात्र विकल्प "प्राचीन आर्य परम्पराको पूरी तरह स्वीकार कर लेना है" (पृष्ठ ३४४)। उनके विचारसे न केवल हिन्दू-समाज और हिन्दू धर्मको बदलती हुई परिस्थितियोंके अनुसार स्वयं बदलना है, बल्कि पाश्चात्य संसारमें आये जो परिवर्तन कल्याणप्रद हैं, उनको भी स्वीकार करके उनका लाभ उठाना है। कारण, "बुद्धि या ज्ञान किसी एक महादेश या एक जातिकी बपौती नहीं है। . . . मुझे यह स्वीकार करते हुए प्रसन्नता हो रही है कि विश्वके कल्याणके लिए पश्चिममें एक नई शक्तिका धीरे-धीरे किन्तु निश्चित तौरपर उदय हो रहा है" (पृष्ठ ३४४)। आत्मालोचनकी क्षमताका कदाचित् सबसे पुष्ट उदाहरण "नाली-निरीक्षककी रिपोर्ट" शीर्षक लेख है। इसमें

उन्होंने कुमारी मेयो द्वारा अपनी पुस्तक 'मदर इंडिया' में भारतीय जनता और भारतीय संस्कृतिपर किये विद्वेषपूर्ण प्रहारोंकी सम्यक् समालोचना की है। गांधीजी का निश्चित मत था कि कुमारी मेयोको "बस यही सिद्ध करनेकी लगी हुई है कि भारत अपना शासन आप नहीं चला सकता और इसलिए इसपर गोरोंका प्रभुत्व सदा बना रहना चाहिए" (पृष्ठ ५९०)। इस पुस्तकको उन्होंने "अमेरिकियों और अंग्रेजोंके सामने रखी जाने लायक नहीं" माना, "(क्योंकि इससे उन्हें कोई लाभ नहीं होगा . . .)।" किन्तु दूसरी ओर उनका खयाल यह था कि "इसे पढ़कर हर भारतीय कुछ-न-कुछ लाभ उठा सकता है। . . . जिस रूपमें हमें दूसरे लोग देखते हैं, हम खुद भी अपनेको उसी रूपमें देखें, यह एक अच्छा गुण है।" (पृष्ठ ५९२-३)

मद्य-निषेधपर लिखे एक लेखमें उन्होंने मद्यपानके मूल कारणका विवेचन करते हुए कहा कि जो लोग "अपने-आपको समाजमें अकेला और उपेक्षित महसूस करते हैं" वही "शराबकी ओर झुकते हैं। जिस प्रकार शराबसे दूर रहनेवाले लोगोंके लिए यह कहना ठीक नहीं होगा कि वे स्वभावसे ही सन्त हैं, उसी प्रकार शराब पीनेवालोंके बारेमें भी यह कहना ठीक नहीं होगा कि वे स्वभावसे ही बुरे हैं।" (पृष्ठ ५३०)

अस्पृश्यों और दीन-दुःखी जनोंकी समस्यापर बोलते हुए उनकी वाणीमें जो सहज विदग्धता देखनेको मिलती है, वह उन लोगोंके कष्टोंके प्रति उनके हृदयकी व्यथाकी गहराईकी द्योतक है। उन्होंने सवर्ण लोगोंसे "अपनी श्रेष्ठताका दम्भ त्यागकर अस्पृश्योंको भाई" माननेको कहा (पृष्ठ ४९०) और ऐशो-इशरतकी जिन्दगी जीनेवालोंको चिथड़ोंमें लिपटी उड़ीसाकी बहनोंकी ओर ध्यान देनेकी सलाह देते हुए कहा: "उन्होंने अपनी सारी शर्म-हया नहीं छोड़ी है, मगर मैं सच कहता हूँ, हमने छोड़ दी है। हम इतने सारे कपड़े पहनकर भी नंगे हैं, उन्होंने कोई कपड़ा न पहनकर भी अपनेको ढँक रखा है।" (पृष्ठ ४९२)

इस खण्डमें दिये गये पत्रोंमें से अनेक ऐसे हैं जिनका सम्बन्ध परिवारके अन्दर सत्याग्रहसे है। गांधीजीका पोता कान्ति अपने पिता हरिलाल गांधीसे मिलना चाहता था। इसपर उन्होंने उसे लिखा: "वर्तमान स्थितिमें तुम्हारा कर्त्तव्य क्या है, इसे समझनेका प्रयत्न करना और उसका अनुसरण करते हुए दृढ़ता तथा हिम्मतसे काम लेना। तुम्हें क्या भाता है, उसका खयाल न करके सिर्फ इसी बातपर विचार करो कि तुम्हें क्या करना चाहिए। यह पत्र तुम जिन लोगोंको दिखाना चाहो, उन्हें दिखा देना।" (पृष्ठ २१)

जब रेहाना तैयबजीने अपनी माँ द्वारा बहुत अधिक "समय लगाकर" बड़े "प्यारसे तैयार" की गई पोशाक छोड़नेका निश्चय किया तो गांधीजी ने उनसे सहमति प्रकट की, यद्यपि स्वयं रेहाना तैयबजी ने उन्हें सूचित किया था कि माँकी भावनाका खयाल करके यह निश्चय करते हुए उन्हें दुःख हुआ था। गांधीजी का सुझाव यह था कि "जब माताजी को विश्वास हो जाये कि तुम अब उन चीजोंको अपने लिए कभी नहीं चाहोगी" तब वे सब अपनी छोटी बहनको दे देना (पृष्ठ ३०)। लेकिन साथ ही गांधीजी ने उनसे यह समझनेको भी कहा कि माता-पिता चाहे लाख उदारमना हों, जब उनका वयस्क बच्चा भी अपने सैद्धान्तिक अधिकारोंको कार्यरूप देना

चाहता है तो वे उसकी स्वतन्त्रतामें हस्तक्षेप करते ही हैं। ऐसी स्थितिमें बच्चेको इस बातका ध्यान रखना चाहिए कि "स्वतन्त्रतापर लगाये जानेवाले कुछ प्रतिबन्ध व्यक्तिको नीचे गिराते हैं, और कुछ ऊपर उठाते हैं। जिस प्रतिबन्धको मनुष्य भय या स्वार्थ अथवा ऐसे ही अन्य किसी कारणसे नहीं, बल्कि दूसरोंकी भावनाका खयाल करके अथवा स्नेह-भावके वशीभूत होकर स्वीकार करता है, वैसा कोई प्रतिबन्ध पतनकारी नहीं होता" (पृष्ठ १६१)। आश्रममें प्रवेश पानेको इच्छुक कमला दास-गुप्तको चेतावनी देते हुए उन्होंने लिखा: "यह तो मशक्कत करनेवाले उन लोगोंकी जगह है जो हाथ-पैरोंसे काम करनेकी आवश्यकता और उसके नैतिक मूल्यमें विश्वास रखते हैं" (पृष्ठ २८४)। बादमें वे उनको उत्साह दिलाते हुए कहते हैं: "यदि आश्रममें जानेकी आपकी इच्छा सचमुच गहरी है और उसके लिए सच्चे मनसे प्रयत्न-शील रहते हुए भी आपके अन्दर विनम्रता है तो आप अवश्य ही अपने माता-पिताके विरोधपर विजय पा लेंगी। और जबतक आप अपने माता-पिताको अनुमति देने पर राजी नहीं कर पाती तबतक आप मानसिक रूपसे आश्रमके जीवनमें रमी रह सकती है" (पृष्ठ ४२१)। इस प्रकारके व्यक्तिगत परामर्शका एक रोचक उदाहरण आर्तव-कालके दौरान स्त्रियोंके अलगावकी समस्याके सम्बन्धमें मीराबहनको दी गई सलाह है। यहाँ उन्होंने मॉर्ले-कृत 'ऑन कम्प्रोमाइज' से लिये गये तर्कका उपयोग किया और सेंट पॉल द्वारा अपने अनुगामियोंको दिये गये इस निर्देशका उल्लेख किया कि यदि तुम्हारे भाईको मांसाहारसे परहेज हो तो मांससे दूर रहो। फिर उन्होंने उनको समझाते हुए लिखा: "कुछ काम अपने-आपमें अनैतिक नहीं होते और हम उनको दूसरोंकी खातिर करते हैं और कुछ काम अपने-आपमें अनैतिक होते हैं और इसलिए हम उनको किसीकी खातिर नहीं करते और न करना चाहिए। यदि स्वेच्छासे स्वीकार किया गया अलगावका यह नियम तुमको अनैतिक लगता है तो मुझे खुश करनेके लिए भी तुमको वह नहीं करना चाहिए और यदि वह अनैतिक न लगता हो तो तुम अपने आसपासके लोगोंके खयालसे उसे करते हुए उनको उस हदतक अज्ञानी मानो तो उचित ही होगा।" (पृष्ठ ४३४-५)

एन० आर० मलकानीके सम्बन्धमें और खुद मलकानीको लिखे अनेक पत्रोंसे प्रकट होता है कि गांधीजी जिसको स्नेह करते थे उसके चारित्र्यके लिए उन्हें कितनी अधिक चिन्ता रहती थी। किसीकी चारित्रिक च्युतिकी आशंका-मात्रसे उनका मन इतना अधिक विचलित हो उठता था जितना बड़ीसे-बड़ी सार्वजनिक घटनासे भी नहीं होता था। एन० वी० थडानीको लिखे पत्रमें उन्होंने अपनी व्यथाको वाणी देते हुए कहा: "बारडोलीके मामलेने भी मेरी नींदमें कभी बाधा नहीं पहुँचाई थी, पर मलकानीका मामला पहुँचा रहा है।" (पृष्ठ २०७-८)

सन्तोजी महाराजको लिखे गांधीजी के पत्रका भी एक विशिष्ट महत्त्व है। यह उनके जीवन-दर्शनपर प्रकाश डालता है और 'गीता' के प्रति उनके वैयक्तिक और व्यावहारिक दृष्टिकोणको उजागर करता है। उन्हें शंकर, रामानुज, मध्व तथा अन्य सभी सन्त-मनीषी प्रिय थे, किन्तु किसी एकसे उन्हें सम्पूर्ण तृप्ति नहीं हुई। उन्होंने "शास्त्रकारोंके सुझाये हुए सारे मार्गोंको मिलाकर . . . अपने लिए . . . यहाँ-

वहाँसे कुछ ले लिया . . ." (पृष्ठ १९)। उनके विचारसे प्रत्येक व्यक्तिको अपने आचरणके नियम स्वयं निश्चित करने चाहिए और फिर पूरी सख्तीके साथ उनके अनुसार ही अपना जीवन चलाना चाहिए। किसीके साथ अपनी तुलना करना बिलकुल गलत है और इस तुलनाके आधारपर "अपने पापकर्मको उचित नहीं ठहराना" चाहिए (पृष्ठ २११)। स्वराज्यका अर्थ दूसरेके शासनसे मुक्तिके साथ-साथ आत्म-शासन भी है। अपनी इसी मान्यताका संकेत वे इन शब्दोंमें भी देते हैं: "कुछ स्थितियोंमें आत्महत्या धर्म हो" जाती है (पृष्ठ ४७८)। नैतिकताका तकाजा यह है कि "जहाँ-जहाँ शंका हो, वहाँ-वहाँ उसका निर्णय हमें अपने स्वार्थके विरुद्ध करना चाहिए।" (पृष्ठ ४३)

जहाँ भावुक लोग अतीत और भविष्यके विषयमें सोच-सोचकर अपना समय गँवाते हैं, कर्मयोगी गांधी इस उक्तिके कायल थे कि "मेरे लिए तो बस आगेका एक कदम ही पर्याप्त है।" उनके विचारसे हमें भूत और भविष्य दोनोंको वर्तमानमें ही समाविष्ट मानना चाहिए, और वर्तमानका मतलब है, "प्रस्तुत क्षणमें हमारा कर्त्तव्य। यदि हम अपने वर्तमान कर्त्तव्यको जानकर उसे पूरा करनेमें ही अपनी पूरी शक्ति लगा दें तो यह माना जायेगा कि हमने महान् पुरुषार्थ किया है। दुःख-मात्र भविष्यके काल्पनिक घोड़े दौड़ाने और भूतकालका रोना रोनेसे होता है। अतः तात्कालिक कर्त्तव्यको निभानेवालेका न तो पुनर्जन्म होता है और न मृत्यु" (पृष्ठ ६९)। इस तरहके कर्मयोगकी साधनासे मनुष्यको ज्ञानकी प्राप्ति होती है, क्योंकि स्वधर्मका पालन करनेसे मनुष्यको "जीवमात्रकी अभिन्नताके सिद्धान्तकी प्रतीति . . . होती . . . है।" किन्तु "जबतक हम अपने 'अहं'को मिटाकर सर्वथा शून्य नहीं बना देते तबतक इस सिद्धान्तको चरितार्थ करना असम्भव मालूम होता है।" (पृष्ठ २१९) दूसरी ओर, "जिसमें अपने अहंको भूलकर शून्य बन जानेकी शक्ति है, वह" "महाजीव", अर्थात् ईश्वरकी "झाँकी पा सकता है।" (पृष्ठ १८-१९)

जो धर्मनिष्ठ हैं वे प्रकाशकी खोजमें अतीतमें भटकनेके बजाय, जो-कुछ उनके सामने है, जो वर्तमान है, उसीसे प्रकाश ग्रहण करते हुए कर्मरत रहते हैं। कुछ ईसाई धर्म-प्रचारक गांधीजीके पास इस पृच्छाको लेकर गये थे कि ईसा मसीहके आगमन और मनुष्यके पापोंके प्रायश्चित्तके लिए उनके बलिदानका सन्देश वे कैसे फैलायें। उत्तरमें गांधीजीने कहा: "ईश्वरको वहाँ १९०० वर्ष पहले, एक ही बार सूलीपर नहीं चढ़ना पड़ा था, एक ही बार कष्ट नहीं सहना पड़ा था। वह आज भी सूलीके कष्टको झेल रहा है, वह प्रतिदिन हमारे पापोंका प्रायश्चित्त करनेके लिए मरता है और फिर नया शरीर धारण करके उठ खड़ा होता है। यदि संसारको उसी ऐतिहासिक ईश्वरके भरोसे जीना पड़ता जो आजसे २००० वर्ष पूर्व मर चुका है, तो कहना मुश्किल है कि उससे उसे क्या सन्तोष मिलता। इसलिए, आप उस ऐतिहासिक ईश्वरकी बात लोगोंसे मत कहिए, बल्कि स्वयं अपने जीवन और आचरणमें उसे सजीव रूपमें लोगोंको दिखाइए। . . . अपनी मान्यताओं और विश्वासोंका इजहार शब्दोंमें करनेके बजाय उन्हें अपने जीवनमें उतारकर दुनियाको दिखाना कहीं अच्छा है।" (पृष्ठ २८२)

आभार

इस खण्डकी सामग्रीके लिए हम साबरमती आश्रम संरक्षक तथा स्मारक न्यास और संग्रहालय (साबरमती आश्रम प्रिजर्वेशन एंड मेमोरियल ट्रस्ट), नवजीवन ट्रस्ट, गुजरात विद्यापीठ ग्रन्थालय, अहमदाबाद; गांधी स्मारक निधि व संग्रहालय तथा भारतीय राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली; श्रीमती मीराबहन, गॉडेन, आस्ट्रिया; श्री कान्ति गांधी, बम्बई; श्री नारायण देसाई, अहमदाबाद; श्री वालजीभाई देसाई, पूना; श्री रमणीकलाल मोदी, अहमदाबाद; श्री परशुराम मेहरोत्रा, नई दिल्ली; श्रीमती वसुमती पण्डित, सूरत; श्रीमती राधाबहन चौधरी, कलकत्ता; श्री एस० आर० वेंकटरमण, भारत सेवक समाज (सर्वेंट्स ऑफ इंडिया सोसाइटी), मद्रास; श्रीमती गंगाबहन वैद्य, बोचासन; श्री महेश पट्टणी, भावनगर; श्रीमती लक्ष्मीबहन खरे, अहमदाबाद; 'ट्रिब्यून', 'नवजीवन', 'बॉम्बे क्रॉनिकल', 'यंग इंडिया', 'साबरमती', 'हिन्दी नवजीवन', 'हिन्दू', इन समाचारपत्रों तथा पत्रिकाओं और निम्नलिखित पुस्तकोंके प्रकाशकोंके आभारी हैं: 'बापू — मैंने क्या देखा, क्या समझा', 'बापुना पत्रो — कुसुमबहेन देसाईने'।

अनुसन्धान व सन्दर्भ सम्बन्धी सुविधाओंके लिए अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी पुस्तकालय, इंडियन कौंसिल ऑफ वर्ल्ड अफेयर्स पुस्तकालय, सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालयका अनुसंधान और सन्दर्भ विभाग (रिसर्च ऐंड रिफरेंस डिवीजन) और श्री प्यारेलाल नय्यर, नई दिल्ली हमारे धन्यवादके पात्र हैं। प्रलेखोंकी फोटो-नकल तैयार करनेमें मदद देनेके लिए हम सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालयके फोटो-विभाग, नई दिल्लीके आभारी हैं।

पाठकोंको सूचना

हिन्दीकी जो सामग्री गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मिली है उसे अविकल रूपमें दिया गया है। किन्तु दूसरों द्वारा सम्पादित उनके भाषण अथवा लेख आदिमें हिज्जोंकी स्पष्ट भूलोंको सुधारकर दिया गया है।

अंग्रेजी और गुजरातीसे अनुवाद करनेमें अनुवादको मूलके समीप रखनेका पूरा प्रयत्न किया गया है, किन्तु साथ ही भाषा सुपाठ्य बनानेका भी पूरा ध्यान रखा गया है। छापेकी स्पष्ट भूलें सुधारनेके बाद अनुवाद किया गया है। और मूलमें प्रयुक्त शब्दोंके संक्षिप्त रूप यथासम्भव पूरे करके दिये गये हैं। नामोको सामान्य उच्चारणके अनुसार ही लिखनेकी नीतिका पालन किया गया है। जिन नामोंके उच्चारणमें संशय था उनको वैसा ही लिखा गया है जैसा गांधीजीने अपने गुजराती लेखोंमें लिखा है।

मूल सामग्रीके चौकोर कोष्ठकोंमें दी गई सामग्री सम्पादकीय है। गांधीजीने किसी लेख, भाषण आदिका जो अंश मूल रूपमें उद्धृत किया है, वह हाशिया छोड़कर गहरी स्याहीमें छापा गया है, लेकिन यदि कोई ऐसा अंश उन्होंने अनूदित करके दिया है तो उसका हिन्दी अनुवाद हाशिया छोड़कर साधारण टाइपमें छापा गया है। भाषण-की परोक्ष रिपोर्ट तथा वे शब्द जो गांधीजीके कहे हुए नही है, बिना हाशिया छोड़े गहरी स्याहीमें छापे गये है। भाषणों और भेंटकी रिपोर्टोंके उन अंशोंमें जो गाधीजीके नही है कुछ परिवर्तन किया गया है और कही-कही कुछ छोड़ दिया गया है।

शीर्षककी लेखन-तिथि जहाँ उपलब्ध है वहाँ दायें कोनेमें ऊपर दे दी गई है। परन्तु जहाँ वह उपलब्ध नही है वहाँ उसकी पूर्ति अनुमानसे चौकोर कोष्ठकोंमें की गई है। और आवश्यक होनेपर उसका कारण स्पष्ट कर दिया गया है। जिन पत्रोंमें केवल मास या वर्षका उल्लेख है उन्हें आवश्यकतानुसार मास या वर्षके अन्तमें रखा गया है। शीर्षकके अन्तमें साधन-सूत्रके साथ दी गई तिथि प्रकाशनकी है। गांधीजी की सम्पादकीय टिप्पणियाँ और लेख, जहाँ उनकी लेखन-तिथि उपलब्ध है अथवा जहाँ किसी दृढ आधारपर उसका अनुमान किया जा सका है, वहाँ लेखन-तिथिके अनुसार और जहाँ ऐसा सम्भव नहीं हुआ है वहाँ उनकी प्रकाशन तिथिके अनुसार दिये गये है।

साधन-सूत्रोंमें 'एस० एन०' संकेत साबरमती संग्रहालय, अहमदाबादमें उपलब्ध सामग्रीका, 'जी० एन०' गांधी स्मारक निधि और संग्रहालय, नई दिल्लीमें उपलब्ध कागज-पत्रोका और 'सी० डब्ल्यू०' सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय (कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी) द्वारा संगृहीत पत्रोंका सूचक है।

'सत्यना प्रयोगो अथवा आत्मकथा' और 'दक्षिण आफ्रिकाना सत्याग्रहनो इति-हास' के अनेक संस्करण होनेसे उनकी पृष्ठ-संख्याएँ भिन्न है; इसलिए हवाला देनेमें केवल उनके भाग और अध्यायका ही उल्लेख किया गया है।

सामग्रीकी पृष्ठभूमि देनेके लिए मूलसे सम्बद्ध कुछ परिशिष्ट भी दिये गये है। अन्तमें साधन-सूत्रोंकी सूची और इस खण्डसे सम्बन्धित कालकी तारीखवार घटनाएँ दी गई हैं।

विषय-सूची

१. पत्र : गंगूको

[१५ जून, १९२७ के पश्चात्][1]

चि० गगू,

तुम्हारा पत्र मिला। हिन्दी अच्छी है। गलतियाँ शीघ्रतासे शुद्ध हो जायगी।

लक्ष्मीबेनने जो-कुछ कहा उसका विरोध दिलमें भी नही करना चाहिये। उसका वटपूजाके लिए [जाना] इतना ही योग्य था जितना नही जाना तुम्हारे लिये योग्य था। ऐसी बातोंमें तुम्हारी श्रद्धा नही है इसलिये तुम्हारा जाना अनावश्यक था और जानेमें हृदय-दौर्बल्य अथवा दंभका सम्भव आ जाता। हमारे अभिप्राय और आचारके लिये दूसरोके तरफसे जितनी औदार्यकी आशा रखनेका हमको हक है इतना ही औदार्य दूसरोके आचार-विचारके लिये हम रखें।

चि० मगनलालने तुमको चर्खा नही दिया उसमें दुःख माननेकी कुछ भी आवश्यकता नही है। उसको पूछनेसे चर्खा नही देनेका कारण भी वह बता देंगे। यदि उस कारणसे हमको संतोष न भी हो तो भी हम दुःख न मानें। व्यवस्थापक या वडील [गुरुजन] प्रत्येक कार्यका सतोषजनक कारण न बता सकें उससे वह अभिप्राय या कार्य अयोग्य है ऐसा हम शीघ्रतासे न मान ले। मतभेद और सुख-दु:खादि द्वन्द्वकी बरदाश्त करनेका पाठ हम केवल समाजमें रहकर ही सीख सकते हैं। और क्योंकि तुम सेविका बनना चाहती है और ब्रह्मचारिणी रहना चाहती है इसलिये तुम्हारेमें तितिक्षा और औदार्य दोनो गुण अच्छी तरहसे आना चाहिये। मीराबेन कहती है तुम्हारे कातना धुनना इ० पक्का करनेकी आवश्यकता है। कताईमें धागेकी. . .[2]

मणिबेन तो अब तक ब्रह्मचारिणी ही रही है और रहना चाहती है और उसके लिये प्रयत्न भी कर रही है। दूसरीने गृहस्थाश्रममें प्रवेश किया है तो भी ब्रह्मचर्यका महिमा जानती है और उसका पालन भी करनेका प्रयत्न करती है। मेरा [हेतु] इस पत्रके लिखनेसे तुम्हारे विचारोंको दबाना नही। जो कुछ भी ख्याल आवे उसको अवश्य लिखो। गल्ती होगी वह मैं बतानेकी चेष्टा करूँगा। और इसमें से जितना ग्राह्य प्रतीत हो उतना करना और आगे बढ़ना।

एस० एन० १२३२४ की माइक्रोफिल्मसे।

१. यह पत्र १९२७ में मीराबहनके साथ रेवाड़ी आश्रमसे साबरमती आश्रम गंगूके जानेके बाद लिखा जान पड़ता है। वटपूजा १५ जूनको पड़ी थी।

२. मूलमें यहाँ स्थान खाली है।

२. हिन्दू-मुस्लिम एकता

कांग्रेस अध्यक्षने[1] जब मुझे तार द्वारा सूचित किया कि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीने हिन्दू-मुस्लिम समस्याके सम्बन्धमें एक प्रस्ताव सर्वसम्मतिसे स्वीकार कर लिया है,[2] तो उससे मुझे किसी उल्लासका अनुभव नहीं हुआ। तारमें प्रस्तावकी विषय-वस्तुके बारेमें काफी जानकारी दे दी गई थी। जब अध्यक्ष महोदय मुझसे नन्दीमें[3] मिले, तब उन्होंने मुझसे पूछा कि क्या मैं इसपर कुछ नही लिखूँगा। मैंने उनसे कहा कि मैं नहीं समझता कि मैं ऐसा कुछ लिख सकूँगा जिससे कोई लाभ हो। इस मुलाकातके चन्द दिन बाद ही एक भाईसे मुझे एक पत्र प्राप्त हुआ। उसका आशय इस प्रकार था: "हमारे बीच जो दंगे हो रहे हैं, उसके लिए आप ही जिम्मेदार हैं। अगर आप हिन्दुओंको खिलाफत आन्दोलनमें न घसीटते तो हालकी दुःखद घटनाएँ न हुई होतीं। लेकिन अब तो सिर्फ आप ही हमें बचा सकते हैं।"

अनुवाद करते हुए मैंने मूलमें प्रयुक्त भाषाकी कड़वाहट कम कर दी है। इस पत्रसे मुझे ऐसा लगता है कि हिन्दू-मुस्लिम एकताके सम्बन्धमें अपना विचार मुझे एक बार फिर लोगोंके सामने रख देना चाहिए।

खिलाफत आन्दोलनके सिलसिलेमें मैंने जो-कुछ किया, उसका मुझे कोई दुःख नहीं है। वह तो मैंने अपने मुसलमान भाइयोके प्रति अपना कर्त्तव्य ही निभाया था। अगर हिन्दुओंने मुसीबतकी घड़ीमें अपने भाइयोंकी मदद न की होती तो वे गलती करते। आज जो वस्तुस्थिति है, वह चाहे जितनी बुरी दीख रही हो, मुसलमानोंकी भावी पीढ़ियाँ हिन्दुओंके इस महान् मैत्रीपूर्ण कार्यको बड़ी कृतज्ञतासे याद करेंगी। लेकिन भविष्यकी बात छोड़ भी दें तो चूँकि मैं इस कहावतमें विश्वास रखता हूँ कि नेकी स्वयं अपना पुरस्कार है, मैंने खिलाफत आन्दोलनमें जो-कुछ किया, उसे मैं बराबर ठीक ही कहूँगा। अतएव, उन भाईके फटकार-भरे पत्रको मैंने बिलकुल शान्त-भावसे ग्रहण किया।

मेरी बड़ी इच्छा है कि मैं उनकी अपेक्षाएँ पूरी करके दोनों समुदायोंके बीच शान्ति स्थापित करनेमें तत्काल ठोस सहायता दे सकूँ। कारण, एकता और एकताकी आवश्यकतामें आज भी मेरा विश्वास उतना ही प्रबल है जितना कि पहले किसी भी समय रहा है। अगर मेरे प्राण देनेसे यह एकता हासिल हो सकती हो, तो मुझमें अपने प्राण दे देनेकी इच्छा और शायद उसके लिए आवश्यक शक्ति भी है। अगर मेरे अनिश्चित कालतक के लिए उपवास करनेसे हिन्दुओं और मुसलमानोंके

१. एस० श्रीनिवास अय्यंगार।

२. १५ और १६ मई, १९२७ को बम्बईमें।

३. तात्पर्य बंगलोरके निकट स्थित नन्दी हिल्ससे है, जहाँ गांधीजीने बीमारीसे ठीक होनेके बाद १९ अप्रैलसे ४ जूनतक विश्राम किया था। वे २६ मार्च, १९२७ को बीमार पड़े थे; देखिए खण्ड ३३।

दे सकी, यह वंसडा राज्यके लिए गौरवकी बात है। लेकिन, महाविभव जबतक शराबके व्यापारसे होनेवाली आयको जरूरी मानते हैं, तबतक तो वे अपनी प्रजाके कल्याणके लिए जो-कुछ कर रहे हैं, वह सब वास्तवमें व्यर्थ ही हो जाता है। इसमें सन्देह नहीं कि वंसडाकी सीमापर जो तीन राज्य — अर्थात् अंग्रेजी राज्य, गायकवाड़ोंका राज्य और धरमपुर राज्य — हैं उनमें मद्य-निषेध लागू न रहनेके कारण वंसडाके लिए मद्य-निषेधकी नीतिको सफल बना पाना कठिन है। लेकिन, बड़ी कुर्बानी दिये बिना और कोई बड़ा कदम उठाये बिना तो बड़े काम किये भी नहीं जा सकते। वंसडा न केवल पूर्ण मद्य-निषेधकी घोषणा करके सबको रास्ता दिखा सकता है, बल्कि इसके बाद वह पड़ोसी राज्योंमें मद्य-निषेधके पक्षमें प्रचार और आन्दोलन भी कर सकता है। असली बात तो शराबसे प्राप्त होनेवाले राजस्वका त्याग करना है। यह शुभ प्रयत्न तो तत्काल इस निश्चयसे शुरू किया जा सकता है कि इससे प्राप्त राजस्वका उपयोग शराब पीनेकी आदी आदिम जातियोंके बीच इस कुटेवके खिलाफ जोरदार प्रचार करनेके अलावा और किसी भी काममें, चाहे वह काम कितना ही अच्छा हो, नहीं किया जायेगा। क्योंकि, इसमें कोई सन्देह नहीं हो सकता कि जो राज्य सचमुच यह चाहेगा कि उसकी प्रजा इस कुटेवको छोड़ दे, वह इस चीजको सिर्फ कानूनन असम्भव बनाकर ही सन्तुष्ट नहीं हो जायेगा, बल्कि उस कुटेवके कारणका पता लगाने और लोगोंको इसकी बुराइयाँ बताकर इसे छोड़ देनेको समझानेका प्रयत्न भी करेगा। और फिर कोई राज्य शराबसे प्राप्त राजस्वसे वंचित हो जानेके कारण घाटेमें रहे, यह भी जरूरी नहीं है। अगर मद्य-निषेधकी नीति किसी ऐसे रचनात्मक कार्यके साथ-साथ, जैसे कार्यका सुझाव मैंने दिया है,[1] चलाई जाये तो उसका अनिवार्य परिणाम यही होगा कि प्रजा अधिक समृद्ध होगी और इसलिए राज्य भी। भारतमें पूर्ण मद्य-निषेधकी नीतिको सफलतापूर्वक चला सकनेकी सबसे अधिक सम्भावना है, जिसका सीधा-सादा कारण यह है कि यहाँ शराबकी लतको प्रतिष्ठा या फैशनकी बात नहीं माना जाता और यह बुराई कुछ-एक वर्गोंके ही लोगोंतक सीमित है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १६-६-१९२७

१. देखिए पिछले शीर्षकके अन्तर्गत "एक शुभ निश्चय" उपशीर्षक।

अगर हमारे दंगाई तत्त्वोंपर हम तथाकथित नेताओंका कोई वश नही है तो हमारा समझौता खोखला और बेकार ही माना जाना चाहिए। जब हम सर्वसाधारण-पर नियन्त्रण हासिल कर लें, तभी हमें सच्चे स्वराज्यकी बात सोचनी चाहिए। हमें खुद भी सही आचरण करना सीखना चाहिए। समझौतेका दिल्लीपर कोई असर नही हुआ, और हमारे लिए यह घोर लज्जाका विषय है कि बकरीदके अवसरपर शान्तिकी रक्षाका काम सरकारको करना पड़ा है।

मेरा अहिंसाका सिद्धान्त एक बहुत ही सक्रिय शक्ति है। इसमें कायरता, यहाँतक कि कमजोरीके लिए भी कोई स्थान नही है। किसी हिंसा-प्रिय व्यक्तिके कभी अहिंसक बन पानेकी आशा तो की जा सकती है, लेकिन कायरके बारेमें हम ऐसी कोई आशा नही रख सकते। इसलिए मैंने इन पृष्ठोंमें एकाधिक वार कहा है कि यदि हमें कष्ट-सहनकी शक्ति अर्थात् अहिंसाके बलपर अपनी-अपनी स्त्रियो और पूजा-स्थलोंकी रक्षा करना न आता हो तो अगर हम मर्द हैं तो हमें कमसे-कम लड़कर तो इनकी रक्षा करना आना ही चाहिए। हम प्रतिद्वंद्वी पक्षोके बीच शान्ति कायम रखने अथवा अपने भाइयोसे ही अपनी माँ-बहनोंकी रक्षा करनेके लिए सर-कारसे कहें अथवा उससे ऐसा करनेकी अपेक्षा रखें, यह पुसत्वहीनताकी बात है। और जबतक हम इस तरह पुसत्वहीन हैं तबतक स्वराज्यकी आशा करना बेकार है। सुव्यवस्थित समाजमें तो सरकार सिर्फ आरक्षणका ही काम (पुलिस वर्क) करती है। लेकिन, हालमें दिल्ली या लाहौरमें जो विस्तृत तैयारियाँ की गईं वे आरक्षणके कामके लिए ही नही की गई थीं। हममें मतभेद तो बराबर रहेंगे। लेकिन हमें सभी मतभेदोंको, चाहे वे धार्मिक हों या अन्य प्रकारके, पंच-फैसलेके द्वारा सुलझाना सीखना चाहिए। अगर हम स्वराज्य प्राप्त करना चाहते हो तो हमें सरकारके समक्ष एक संयुक्त मोर्चेके रूपमें उपस्थित हो सकना चाहिए और दुनियाको यह दिखा सकना चाहिए कि हममें अपने व्यवहारका ठीक नियमन करनेकी क्षमता है।

लेकिन, अगर हमारे पास ऐसे नेता न हों जिन्हें हम विवेकपूर्ण और निष्पक्ष निर्णय देनेवाले पंचोंकी तरह चुन सकें या अगर हम इतने उद्दण्ड और बर्बर हों कि अपने ही चुने पंचोंके निर्णय करनेतक धीरज न रख सकें और उनके निर्णयोंका पालन न कर सकें तो हमें आपसमें ही तबतक जी-भरकर लड़ लेना चाहिए जबतक कि हम उससे थककर होशमें न आ जायें। बेशक, सरकार तो, हम चाहें या न चाहें, बराबर हस्तक्षेप करेगी, चाहे वह सार्वजनिक शान्ति बनाये रखनेके लिए हो अथवा उसकी अपनी सुरक्षाके लिए। लेकिन अगर परस्पर-विरोधी गुट साहस और निर्भीकताके साथ सरकारसे सुरक्षा या सहायता माँगनेसे इनकार कर दें तो ऐसे झगड़ोंसे हममें कोई खास कमजोरी नहीं आयेगी। ऐसी लड़ाईमें किसी हत्यारेकी रक्षा क्यों की जानी चाहिए। वह आगे बढ़कर शूलीको गलेसे लगाये। पूजा-स्थलोंको ध्वस्त करनेवाले लोग साहसके साथ आगे आयें और कहें कि धर्मकी खातिर यह काम हमने किया है और अब अगर तुम हमें सजा देना चाहते हो तो दो। राह चलते निरीह व्यक्तियोंकी हत्या करनेवाले लोग खुद ही पुलिसके पास जायें और कहें

कि यह सब ईश्वरकी खातिर हमने किया है! ये बातें पाठकोंको शायद बहुत निष्ठुरतापूर्ण लग सकती हैं। लेकिन, मैंने तो सिर्फ एक रास्ता सुझानेकी कोशिश की है–ऐसा रास्ता जो, अबतक हम जिस रास्तेपर चलते आये हैं, उससे अधिक सीधा और कम कमजोरीका रास्ता है।

अगर हम सभ्य लोगोंकी तरह स्वेच्छासे पंच-फैसलेका रास्ता नही अपना सकते, या फिर अंग्रेज सरकारकी अदालतों अथवा संगीनोंको हस्तक्षेप करनेके लिए निमन्त्रित किये बिना बहादुर बर्बर जातियोंकी तरह आपसमें ही लड़कर अपने मतभेद नही निबटा सकते तो सुधारोंके रूपमें हम जो-कुछ पानेकी आशा रख सकते हैं उससे नौकरशाही शासनतन्त्रकी मुनीमगीरीमें थोड़ी वृद्धि ही हो सकती है। दूसरे शब्दोंमें वह करोड़ों मूक मानवोंके शोषणमें कुछ अधिक हाथ बँटानेका अधिकार ही होगा। इसलिए हम ध्यान रखें कि हम जो भी समझौता करें वह हमें इस दुरवस्थामें न डाले।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १६-६-१९२७

३. टिप्पणियाँ

सरदार खड़कसिंह

यह जानकर सभी देशभक्तोंको प्रसन्नताका अनुभव होगा कि सरदार खड़कसिंह फिर मुक्त होकर जेलकी चारदीवारीके बाहर राष्ट्रीय कार्य करनेके लिए मैदानमें आ गये हैं। अपनी अदम्य इच्छा-शक्तिके कारण और अपनी मुक्तिके लिए सत्ताके आगे झुकनेसे इनकार कर देनेके कारण वे अपने देशभाइयोंकी नजरोंमें बहुत ऊपर उठ गये हैं। ईश्वर उन्हें चिरायु बनाये ताकि इस देशकी आजादीकी लड़ाईमें वे दीर्घ कालतक योग-दान कर सकें।

क्या मैंने आन्ध्रको त्याग दिया है?

जब देशभक्त कोण्डा वेंकटप्पय्या मुझसे नन्दीमें और फिर बंगलोरमें मिले तो उन्होंने मुझसे कहा कि चूँकि मेरे इस सालके दौरेके कार्यक्रममें आन्ध्रको शामिल नही किया गया है, इसलिए उनसे आन्ध्रके अनेक भाइयोंने ऐसे सवाल पूछे हैं कि मैंने कहीं आन्ध्रका त्याग तो नही कर दिया है। अगर मैं आन्ध्रका त्याग करना भी चाहूँ तो आन्ध्रके लोगोंके प्रति मेरा पुराना प्रेम तथा उनके साथ अपने सम्बन्धोंकी सुखद स्मृति मुझे वैसा नही करने देगी; हालाँकि यह सच है कि कभी-कभी आन्ध्रके कतिपय कार्यकर्त्ता लोगोंको परेशानीमें डाल देते हैं और लोग ऐसा सोचने लगते हैं कि जबतक ये कार्यकर्त्ता सही रास्तेपर न आयें तबतक उस प्रान्तसे कोई नाता नही रखना चाहिए। आन्ध्रके लोग बहुत अच्छे हैं। उनमें देशभक्तिकी भावना है। लेकिन, उनमें से

कुछ-एक नामके ही कार्यकर्त्ता हैं। सबके-सब नेता ही हैं और जहाँ सब नेतृत्व ही करना चाहते हैं, वहाँ सेवा करनेके लिए, आदेशोंका पालन करनेके लिए कोई नहीं रह जाता, और थोथी स्वतन्त्रताका प्रयोग करनेके नामपर जनताकी उपेक्षा होती है। मुझे उम्मीद है कि जिन कार्यकर्त्ताओंपर ये बातें लागू होती हों वे अपने मनमें या मुझसे ऐसा नहीं कहेंगे कि दूसरे प्रान्तोंके कार्यकर्त्ता भी तो ऐसे ही हैं। यह तो एक सही बातको गलत नजरियेसे देखना होगा। आखिरकार आन्ध्रके पुरुषों और स्त्रियोंको, जिनके वास्तविक सविनय अवज्ञाके क्षेत्रमें सबसे आगे निकल जानेके आसार दिखाई दे रहे थे, इतनेसे ही तो सन्तोष नहीं कर लेना चाहिए कि वे शेष लोगोंसे ज्यादा बुरे नहीं हैं। जो लोग सविनय अवज्ञा करनेके योग्य बनना चाहते हैं, उन्हें अपनी आदर्श आज्ञाकारिता, संयम और अनुशासनकी क्षमताका परिचय देना है। आन्ध्रदेश खादी और खादीसे सम्बन्धित हरएक कार्यमें बड़ी आसानीसे सबसे आगे निकल सकता था, किन्तु वह अभीतक अपेक्षित ऊँचाईतक नहीं पहुँच पाया है। लेकिन, मुझे सब-कुछ इसी समय नहीं कह देना चाहिए; अपनी आगामी आन्ध्र-यात्राके लिए भी कुछ सुरक्षित रखना चाहिए, क्योंकि आन्ध्रदेशकी यात्रा करनेकी इच्छा तो मेरे मनमें हमेशा बनी रही है। चूँकि इस साल कोई उपयुक्त महीना उसके लिए निकालना सम्भव नहीं हो पाया, इसलिए विचार यह था कि उस समय जो दिसम्बरके पहले पखवाड़ेको इस काममें लगानेकी बात सोची गई थी, वह अगर नहीं हो सकी तो फिर मैं अगले वर्ष आन्ध्रका दौरा करूँ। लेकिन, ईश्वरने मेरी सारी योजना उलट-पलट दी और इस वर्षके उत्तरार्द्धका सारा कार्यक्रम ही गड़बड़ हो गया है। और अगर मैं स्वस्थ बना रहा और कोई आकस्मिक बात नहीं हुई तो अगले वर्ष मैं कुछ दिन ही नहीं, बल्कि एक-दो महीने आन्ध्रमें बिताना चाहूँगा। इसलिए मैंने कोण्डा वेंकटप्प-य्यासे कहा है कि अगर वहाँके लोग अब यह चाहते हों कि मैं आऊँ तो अगले वर्षके प्रारम्भमें ही मैं वहाँ आना चाहूँगा और वहाँ आकर कामके साथ-साथ कुछ आराम भी करना चाहूँगा। मुझसे पहलेकी तरह भाग-दौड़ करने और जल्दी-जल्दी बहुत सारे कार्यक्रम निबटानेकी आशा नहीं करनी चाहिए। कार्यकर्त्ता लोग यह भी समझ लें कि मैं जबतक आन्ध्रमें रहूँगा, अपना सारा समय सिर्फ खादीके ही काममें लगाऊँगा।

बेशक, अस्पृश्यता-निवारणका कार्य मेरे जीवनका अंग है। लेकिन, यह काम बहुत-कुछ खादी-कार्यमें ही आ जाता है। कारण, खादी-कार्यका उद्देश्य निम्नतम श्रेणीके लोगोंको उच्चतम श्रेणीके लोगोंके स्तरपर ले जाना है। जो चीज भारतके एक मामूली-से झोंपड़ेसे शुरू होकर देशके उच्चतम वर्गके लोगोंके घरोंतक पहुँचकर दोनों वर्गोंके बीच अटूट सम्बन्ध कायम कर सकती है और उनमें परस्पर अपनत्वकी भावना भर सकती है वह रुईसे काता गया सूत ही है। मैं जानता हूँ कि आन्ध्रके कार्यकर्त्ताओं-की बड़ी-बड़ी आकांक्षाएँ हैं। उस हालतमें अगर वे ऐसा-कुछ करें जिससे इन आकांक्षाओंका स्पर्श समाजके निम्नतम वर्गतक भी पहुँच पाये तो सब-कुछ ठीक हुआ ही समझिए।

एक शुभ निश्चय

मैसूरके होललकेरे कस्बेसे एक भाई लिखते हैं :[1]

इस महत्त्वपूर्ण निश्चयके लिए लम्बानी समाजको बधाई देते हुए मैं यह आशा व्यक्त करता हूँ कि वे उन लोगों जैसा आचरण नहीं करेंगे जो १९२१ वाले उत्साहके ठंडा पडते ही फिर पहलेवाली स्थितिमें पहुँच गये। मैं समाजके अगुओंका ध्यान इन पृष्ठोंमें छपे[2] रानीपरज लोगोके दृष्टान्तकी ओर आकर्षित करता हूँ। मद्यपानका त्याग करनेवाले इन लोगोंमें से जिन्होंने अपना समय और मन लगाये रखनेके साधनके रूपमें चरखेको अपना लिया था, उनके मनमें फिर शराबके लिए तो कोई ललक नही ही उठी, साथ ही उनकी बचत भी दूनी हो गई; कारण, अब न केवल शराबपर खर्च होनेवाला पैसा बचने लगा, बल्कि कपड़ेपर होनेवाले खर्चमें बचत करके भी वे अपनी आय बढाने लगे। मद्य-निषेधके लिए काम करनेवाले सुधारकोंने सर्वत्र यही पाया है कि जो लोग मद्यपान न करनेकी प्रतिज्ञा करते हैं, वे अगर अपना समय किसी उपयोगी काममें नही लगाते तो उन्हें फिर शराब पीनेकी इच्छा होने लगती है और वह इतनी बलवती हो उठती है कि उसे रोका ही नही जा सकता। मुझे उम्मीद है कि दूसरे गाँव भी होललकेरेके उदाहरणका अनुकरण करेंगे, और जब मैं अपना मैसूरका दौरा शुरू करूँगा तब मैं वहाँ, मुझसे खादीकी जैसी शानदार प्रगतिका दर्शन करानेका वादा किया गया है, वैसी प्रगतिका दर्शन करनेके साथ-साथ यह भी देखूँगा कि मद्यपानकी कुटेवको दूर करनेके लिए भी खूब काम हुआ है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १६-६-१९२७

४. रानीपरज जाँच-समिति

अभी हालमें रानीपरज परिषद्में[3] जो समिति नियुक्त की गई थी उसका काम शुरू करनेमें श्रीयुत वल्लभभाई पटेलने कोई देर नही की। समितिके दूसरे दौरेकी अन्तरिम रिपोर्टके निम्नलिखित अंश[4] पाठकोंको रुचिकर होंगे :

समितिने अठारह गाँवोंका दौरा किया और बंसडा राज्यके चीखली तथा बलसाड़ ताल्लुकोंके सेंतालीस गाँवोंसे आये लोगोंके बयान दर्ज किये। बंसडाके महाराजा साहब अपनी प्रजाके कल्याणमें जो रुचि ले रहे हैं, समिति उसका शानदार विवरण

१. इसका अनुवाद यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखकने गांधीजीको यह सूचित करते हुए कि लम्बानी जातिके लोगोंने मद्यपान त्यागनेका निश्चय कर लिया है और डेढ़ महीनेसे उन्होंने दारू-ताड़ी कुछ नहीं छुई, लिखा था कि "यह एक ऐसा उदाहरण है जिससे प्रकट होता है कि इस राज्यमें आपके आनेसे पहले ही आपका आत्मशुद्धिका आन्दोलन यहाँ प्रवेश पा चुका है।"

२. देखिए यंग इंडिया, २६-५-१९२७।

३. १६ मार्च, १९२७को आयोजित; देखिए खण्ड ३३।

४. इनका अनुवाद यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

५. पत्र : सोंजा श्लेसिनको

कुमार पार्क, बंगलोर
१६ जून, १९२७

प्रिय कुमारी श्लेसिन,[१]

साथमें डा० जोन्सका[२] लिखा पत्र भेज रहा हूँ। यह शायद तुम्हे अच्छा लगे।

आशा है, मेरा वह लम्बा पत्र[३] तुम्हे मिल गया होगा। इस बातकी भी पूरी उम्मीद है कि तुम श्री शास्त्रीसे[४] मिलना न भूलोगी। यहाँ कब आ रही हो? मैं चाहता हूँ कि तुम फीनिक्स जाकर मणिलाल और उसकी पत्नीसे भी मिल लो।

हृदयसे तुम्हारा,

कुमारी श्लेसिन
पो० बॉ० नं० २२८४
जोहानिसबर्ग

अंग्रेजी (एस० एन० १२३६०) की फोटो-नकलसे।

१. दक्षिण आफ्रिकामें कई वर्षोतक गांधीजीकी निजी सचिव।
२. स्टैनले जोन्स।
३. २२ मई, १९२७ का पत्र, देखिए खण्ड ३३।
४. वी० एस० श्रीनिवास शास्त्री, दक्षिण आफ्रिकामें भारतके एजेंट-जनरल।

६. पत्र : डब्ल्यू० बी० स्टोवरको

साबरमती आश्रम[1]
१६ जून, १९२७

प्रिय भाई,

पत्रके लिए धन्यवाद।[2] आपका सुझाव[3] दिलचस्प तो है, लेकिन समझमें नही आता कि चरखेसे आपका क्या झगड़ा है। इसे तो करोड़ों लोग आसानीसे अपना सकते हैं, जब कि आपके सुझावपर अमल करनेके लिए तकनीकी ज्ञान और रुझान की जरूरत है। पाश्चात्य संसारमें रहनेवाले आप लोगोंने तो साक्षरताको देवता ही बना डाला है। पता नहीं, अगर ईसा, जिन्हें आप "भगवान् ईसा" कहते हैं, फिरसे देह धारण करके इस दुनियामें आयें और पश्चिमके लोगोंको किताबी ज्ञान, धन-सम्पत्तिके पीछे पागल और अपना अधिकांश समय और जीवन बाह्य उपादानोंसे आनन्दकी प्राप्तिके प्रयत्नमें लगाते देखें तो क्या कहें। अगर हर पढ़ा-लिखा आदमी यन्त्रवत् हर अस्पृश्यको प्रतिदिन आधा घंटा पढ़ाने-लिखानेमें लगाने भी लगे तो इससे उसको या अस्पृश्योंको क्या लाभ हो सकता है? और आप जापानकी भौतिक प्रगतिपर इतने मुग्ध क्यों हैं?[4] मुझे तो पता नहीं कि भौतिक प्रगतिके साथ-साथ उसने नैतिक प्रगति भी की है या नहीं। मगर मैं जापानियोंके बारेमें कोई फतवा नहीं देना चाहता। अगर चाहूँ तो भी इसके लिए जरूरी तथ्य और आँकड़े मेरे पास नही हैं। लेकिन, न तो नैतिक बलसे रहित साक्षरताके प्रति मेरे मनमें कोई आकर्षण है और न धन-सम्पत्तिके प्रति। क्या आप चरखेमें मेरी ऐसी दृढ़ आस्था होनेका कारण जानते हैं? न केवल अस्पृश्य, बल्कि करोड़ों अन्य लोग भी भारतमें सिर्फ इस वजहसे भूखकी ज्वालामें तड़प रहे हैं कि उनके पास कोई काम नही है और अब तो वे इतने आलसी भी बन चुके हैं कि उनसे काम करते नहीं बनता। इसलिए मैं जो करोड़ों भूखे लोगोंके सामने चरखेको रख रहा हूँ उसका कारण यह है कि इसके अलावा कोई दूसरा सीधा-सादा और साथ ही उत्पादनक्षम ऐसा काम

१. स्थायी पता।

२. २ मई, १९२७का पत्र।

३. श्री स्टोवरने अपने पत्रमें गांधीजीको सुझाव दिया था कि प्रतिदिन आध घंटा कातनेके बजाय वे अशिक्षित भारतीयोंमें से किसी एकको प्रतिदिन आधे घंटे पढ़ाने-लिखानेका काम करें और इस तरह शिक्षित भारतीयोंके सामने एक उदाहरण पेश करके उन्हें यह काम करनेके लिए प्रेरित करें। उनका यह भी सुझाव था कि ऐसा शिक्षक और शिक्षार्थी दोनों अलग-अलग जातियोंके हों। श्री स्टोवरका खयाल था कि अगर सारे देशमें बड़े पैमानेपर यह काम किया जा सके तो लोगोंके विचारोंमें एक तरहकी क्रान्ति-सी आ जायेगी।

४. श्री स्टोवरने लिखा था कि जापानमें शिक्षितों और साक्षरोंकी संख्या सबसे अधिक हो गई है।

नहीं है, जो इन करोड़ों लोगोंको दिया जा सकता हो। मैं भारतके शिक्षित और सम्पन्न लोगोंसे इसे अपनानेके लिए इसलिए भी कह रहा हूँ कि वे शेष लोगोंके सामने एक उदाहरण पेश कर सकें।

अपने मिशनरी मित्रोंके लिए मेरे मनमें बहुत अधिक सम्मान है, और इसी सम्मानकी भावनाके कारण मैं उन्हें हमेशा 'बाइबिल' का गलत अर्थ लगानेके खिलाफ आगाह करता रहता हूँ। आप कहते हैं, "आपने प्रभु ईसाको अपना पथप्रदर्शक माना है। इससे अच्छा कोई पथप्रदर्शक हो भी नहीं सकता था।" मगर यहाँ आपको जो गलतफहमी हुई है, उसे यदि मैं दूर करनेकी कोशिश करूँ तो आप बुरा तो नहीं मानेंगे! मैं दुनियाके अन्य महात्माओं और शिक्षकोंकी तरह ही ईसाको भी मानव-प्राणी ही मानता हूँ। और ऐसे शिक्षकके रूपमें वे सचमुच महान् थे। लेकिन, इसका मतलब यह नहीं कि मैं उन्हें महानतम मानता हूँ। मैं जो बार-बार स्वीकार करता हूँ कि 'सर्मन ऑन द माउंट' (गिरि-शिखरपर दिये गये उपदेश)से मैंने बहुत-कुछ पाया है, उसका मतलब कोई यह न लगाये कि मैं 'बाइबिल'की या ईसाके जीवनकी परम्परागत व्याख्याको स्वीकार करता हूँ।

आपका पत्र बहुत निश्छल भावसे लिखा हुआ है, और इसलिए मुझे लगा कि आपकी इस निश्छलताका सबसे अच्छा प्रतिदान यही हो सकता है कि मैं बिना किसी दुराव-छिपावके आपके सामने अपनी स्थिति रख दूँ।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

श्री डब्ल्यू० बी० स्टोवर
माउंट मॉरिस
इलिनॉयस
यू०एस०ए०

अंग्रेजी (एस० एन० १२५२१) की फोटो-नकलसे।

७. पत्र : डा० एम० एस० केलकरको

कुमार पार्क, बंगलोर
१६ जून, १९२७

प्रिय डाक्टर साहब,

देखता हूँ, आपके और मेरे विचारोंकी दूरी बढ़ती ही जा रही है। मैं ज्योतिष और जादू-टोने, दोनोंमेंसे एकके प्रति भी आपका उत्साह नहीं समझ पाता। हो सकता है ये दोनों ठोस विज्ञान हों, लेकिन मैं मानता हूँ कि ये ऐसे विज्ञान हैं जिनसे हमें दूर ही रहना चाहिए। सच तो यह है कि मैं शरीरसे सम्बद्ध चीजोंको इतना महत्व ही नहीं देता कि शरीरको कायम रखने या इसे ठीक अवस्थामें रखनेके लिए समस्त उपलब्ध साधनोंका उपयोग कर गुजरना चाहूँ। कारण यह है कि जीवनकी योजनामें शरीरका एक सीमित महत्त्व ही है। सो मैं उसकी रक्षाके लिए उतने ही सीमित साधनोंका भी उपयोग करता हूँ और इसलिए ऐसे साधनोंका उपयोग करनेसे बराबर बचता रहता हूँ, जिनका नैतिक औचित्य मुझे सन्दिग्ध जान पड़ता है। अतएव, यदि मैं चूकता भी हूँ तो उसकी दिशा सही ही होगी। शरीरकी जरूरतसे ज्यादा चिन्ता करने और उसके लिए ज्योतिष आदि न जाने किस-किस बातके पीछे भागते-फिरनेका मतलब अपने स्रष्टासे और भी दूर चले जाना है और यह बात मुझे तो वस्तुसे उसकी छायाको अधिक महत्त्व देने-जैसी लगती है। सो मैं आपको अपने साथ यात्रा करनेका कष्ट नहीं देना चाहूँगा।

यहाँके डाक्टरोंका विचार है कि १५० तो मेरे लिए सामान्य रक्तचाप है, और उन्हें इसमें कोई सन्देह नहीं है कि अगले महीने में फिरसे थोड़ी-बहुत यात्रा आरम्भ कर सकूँगा। निस्सन्देह, मैं शारीरिक दृष्टिसे दिन-प्रतिदिन अधिक सशक्त होता जा रहा हूँ।

हृदयसे आपका,

डा० एम० एस० केलकर
मार्फत — जे० जी० गद्रे
न्यू भाटवाड़ी
बम्बई-४

अंग्रेजी (एस० एन० १४१५७) की फोटो-नकलसे।

८. पत्र : ए० ए० पॉलको

कुमार पार्क, बंगलोर
१६ जून, १९२७

प्रिय भाई,

आपका पत्र और पुस्तिका (पैम्फलेट) मिली। मैं सोचता हूँ, पुस्तिकाका पठन दिलचस्प रहेगा।

पता नहीं, मैं मद्रास कब आ पाऊँगा — २३ जुलाईको तो शायद नहीं ही आ सकूँगा। फिर भी यह तो मैं नहीं कह सकता कि इस वर्ष मुझमें इतनी ताकत आ भी पायेगी या नहीं कि मेरा स्वास्थ्य बिगड़नेसे पहले आपने मुझे जो कार्यक्रम भेजा था, उसके अनुसार मैं घंटों तक 'रिट्रीट'का[1] सचालन कर सकूँ। दक्षिणकी यात्राके पूरे कार्यक्रममें आमूल परिवर्तन किया जा रहा है। मैं नहीं समझता कि श्री राजगोपाला-चारी अभीतक उसे नये सिरेसे पूरी तरह तय कर पाये होंगे।

हृदयसे आपका,

श्री ए० ए० पॉल
७, मिलर रोड
किलपॉक, मद्रास

अंग्रेजी (एस० एन० १४१५८) की माइक्रोफिल्मसे।

९. पत्र : श्रीमती माणिकबाई बहादुरजीको

कुमार पार्क, बंगलोर
१६ जून, १९२७

आपका पत्र मिला। इसी तरह पंचगनीकी सभी छोटी-बडी खबरें और अपने खूबसूरत घोंसले तथा उसमें आने-जानेवाले पंछियोंके बारेमें लिखती रहिए।

अभीतक मैंने हिन्दुस्तानमें जितने भी स्थान देखे हैं, उनमें बंगलोरको सबसे सुन्दर और साफ-सुथरा पाया है। यह तो ठीक ही है कि अँधेरे कोने यहाँ भी होंगे, लेकिन अभीतक मैंने उन्हें नहीं देखा। और मेरा ख्याल है, देख भी नहीं पाऊँगा, क्योंकि मुझे घूमनेके लिए सुन्दर स्थानोंमें ही ले जाया जाता है। और यहाँकी आबो-

१. ईसाइयोंकी एक सामूहिक उपासना-विधि।

हवा कमसे-कम इस मौसममें तो बड़ी शानदार होती है—ठंडी, लेकिन सर्द नही। यहाँ फूल भी बड़े सुन्दर और विविध हैं।

हृदयसे आपका,

श्रीमती माणिकबाई बहादुरजी
उमरा हॉल, पंचगनी

अंग्रेजी (एस० एन० १४१५९) की फोटो-नकलसे।

१०. पत्र : ए० रंगस्वामी अय्यंगारको

कुमार पार्क, बंगलोर
१६ जून, १९२७

प्रिय रंगस्वामी,

आपका पत्र और साथमें नत्थी रेवरेंड श्री होम्सके पत्रका अंश मिला। तदर्थ धन्यवाद।

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी आगामी बैठकके सम्बन्धमें भी आपका पत्र मिला। मैं नही समझता कि यह पत्र आपने मुझे किसी विशेष प्रयोजनसे भेजा है। मेरा खयाल है, यह कार्य-समितिके सभी सदस्योंके नाम औपचारिक तौरपर भेजे गये पत्रकी ही एक प्रति है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत ए० रंगस्वामी अय्यंगार
देशबन्धु बिल्डिंग्स
माउंट रोड
मद्रास

अंग्रेजी (एस० एन० १४१६०) की माइक्रोफिल्मसे।

११. पत्र : आर० बी० ग्रेगको

कुमार पार्क, बंगलोर
१६ जून, १९२७

प्रिय गोविन्द,

तुम्हारा पत्र मिला। तुमने टाइपराइटरों और टाइपिस्टोंके बारेमें जो-कुछ लिखा, बेशक मैं उसके एक-एक शब्दसे सहमत हो सकता हूँ। मैंने इस बातको जिस रूपमें रखा उसमें और तुम्हारे पत्रमें परस्पर कोई असंगति नही है। मैंने तुम्हें केवल यही तो बताया था[1] कि लोगोको जो ऐसा लगता है कि अच्छेसे-अच्छे टाइपिस्ट रखनेके बारेमें उपेक्षा बरतो गई है, सो उस उपेक्षाका कारण क्या है?

लेकिन, विज्ञापनका विचार मुझे नही जँचता। हमारी कुछ इतनी मर्यादाएँ है कि जो लोग हमें जानते हैं वे विज्ञापनके उत्तरमें कभी अर्जी नही देंगे। लेकिन अगर नौकरीकी खोजमें लगा कोई अनजान आदमी, जिसे यह नही मालूम है कि हम क्या हैं, अर्जी देता भी है तो उसे कष्ट देनेका मतलब सिर्फ उसका और हमारा समय ही बरबाद करना होगा। यह बात मैं अपने कटु अनुभवके आधारपर ही लिख रहा हूँ। लेकिन, मै फिर तुम्हारी बात स्वीकार करता हूँ कि हमारी मर्यादाओंके बावजूद शिक्षित भारतीयोके खादी-कार्यमें आनेकी काफी गुजाइश है। और यह प्रक्रिया धीरे-धीरे चल भी रही है। इस विषयपर मैं और भी बहुत-कुछ लिख सकता हूँ। लेकिन, तफसीलकी बातें लिखकर तुम्हे नाहक कष्ट क्यो दूँ? पिछला पत्र मैंने बहुत विस्तारसे लिखा था, क्योंकि मै कुछ सिद्धान्तोंकी चर्चा करना चाहता था।

मै तुम्हारी इस बातसे पूरी तरह सहमत हूँ कि मगनलालजीको जो भी सहायता दरकार हो, मिलनी चाहिए और हम उनके लिए, जहाँतक सुलभ हो, अच्छीसे-अच्छी सहायताकी व्यवस्था करें; और अगर मुझे यह लगे कि तुम्हारे सुझाये ढंगसे विज्ञापन निकालनेसे यह बात बन सकती है तो मैं विज्ञापन निकालनेको भी तैयार हूँ। और जो भी हो, खुद मगनलाल तो विज्ञापन निकाल ही सकते है। इसमें किसी प्रकारकी सैद्धान्तिक अड़चनें नही हैं और ज्यादा खर्चकी बात भी नही उठती।

मै जानता हूँ कि तुम्हारा मतलब यह कदापि नही था कि आदमीका मल उठानेमें कोई बुराई है, और मुझे यह भी मालूम है कि आश्रममें तुमने खुद भी यह काम किया है। मैंने जो-कुछ कहा वह यह कि खुद अस्पृश्य लोग इसके बारेमें, मैंने जैसा बताया, वैसा महसूस करेंगे। मै जानता हूँ कि ऐसा महसूस करना गलत होगा। लेकिन मैंने तो सिर्फ इस कठिनाईका उल्लेख-भर किया। तुमने जैसा सुझाया है, वैसा काम वे तभी करेंगे जब हममें से कुछ लोग इसे कर दिखायें और सफलतापूर्वक कर दिखायें।

पता नही इसके पीछे तुम्हारी प्रेरणा रही है या नही, मगर आहार-सम्बन्धी डा० केलॉगकी पुस्तकका एक नया संस्करण मेरे पास भेजा गया है। पुस्तक बहुत

१. देखिए खण्ड ३३ "पत्र : आर० बी० ग्रेगको", २७-५-१९२७।

मोटी है और अभी मेरे सामने पड़ी हुई है। इस मोटी पुस्तकको पढ़नेके खयाल-भरसे ही घबरा उठना स्वाभाविक है और खासकर तब जब कि मैंने अपना एकएक क्षण उस कामके लिए दे रखा है जो मेरे हाथमें है और जिसे करना मुझे बिलकुल जरूरी लगता है। इसलिए इस मोटी पुस्तकको पढ़नेके बजाय पत्रों द्वारा अपने अनुभवोंके आधारपर तुम मुझे आहारके विषयमें जो सबक दे रहे हो, उससे मुझे कहीं अधिक लाभ होगा।

संकेत-लिपिका नया विचार मुझे ठीक लगता है। और अगर आश्रममें कोई इस कामको सीखे तो इसपर खर्च करनेमें मुझे कोई अड़चन नहीं होगी। इसलिए तुम आश्रमके लोगोंको यह बात समझाना।

सबको स्नेह-वन्दन।

तुम्हारा,

श्रीयुत आर० बी० ग्रेग
मार्फत/श्रीयुत एस० ई० स्टोक्स
कोटगढ़
शिमला हिल्स

अंग्रेजी (एस० एन० १४१६१) की फोटो-नकलसे।

१२. पत्र : मिर्जा एम० इस्माइलको

कुमार पार्क, बंगलोर
१६ जून, १९२७

प्रिय मित्र,

मैसूरकी प्रतिनिधि सभा (रिप्रजेंटेटिव एसेम्बली) में दिये गये आपके भाषणकी प्रति और पत्र मिला। इस कृपाके लिए मैं आपका आभारी हूँ। थोड़ीसी फुरसत मिलते ही मैं इसे पूरा पढ़ जाऊँगा। अस्पृश्योंसे सम्बन्धित जिस अंशपर आपने निशान लगा दिया है, उसे तो मैं पढ़ भी गया हूँ। पढ़कर मन बड़ा प्रसन्न हुआ।

जन्म-दिवसकी शुभकामनाओंके बारेमें भी आपका पत्र मिल गया था।

अगले महीनेकी १५ तारीखसे पहले-पहले मैसूरकी यात्रा करनेकी उम्मीद रखता हूँ। तभी महाराजा साहबके भी दर्शन करनेका सौभाग्य प्राप्त करनेकी आशा करता हूँ।

हृदयसे आपका,

श्री मिर्जा एम० इस्माइल
'लेक व्यू', मैसूर

[पुनश्च :]

अब मालूम हुआ है कि निशान यहीं लगाया गया था।

मो० क० गांधी

अंग्रेजी (एस० एन० १४१६२) की फोटो-नकलसे।

१३. पत्र : बा० शि० मुंजेको

कुमार पार्क, बंगलोर
१६ जून, १९२७

प्रिय डा० मुंजे,

मैंने आपके मनको चोट पहुँचाई, इसके लिए मुझे हार्दिक दुःख है। बेशक, आपको पत्र लिखते समय मेरा मन असंतुलित नहीं था। मैंने वास्तवमें यही माना है कि आपका सिद्धान्त यह है कि अपने विचारोंका विरोध करनेवालेको खरे-खोटे जिस साधनसे भी हो मात दी जाये। सच तो यह है कि मैं आपको ऐसे व्यक्तियों-के नाम भी बता सकता हूँ जिन्होंने बड़े जोर-शोरसे इस सिद्धान्तको उचित ठहराने-की कोशिश की है। लेकिन, अभी मैं आपसे बहस नहीं करूँगा। अगर कभी हम मिलेंगे तो आपको मैं पूरे प्रमाण देकर बताऊँगा कि आपके बारेमें मैंने ऐसा क्यों माना। हाँ, आपने जिस तत्परतासे मेरी धारणाका प्रतिवाद किया है, वह मुझे बहुत अच्छी लगी। कारण, जिस सिद्धान्तको मैंने नैतिक दृष्टिसे सर्वथा अनुचित और सरासर गलत माना है, उसके बारेमें अगर कोई कहे कि उसका सिद्धान्त ऐसा नहीं है तो इस बातसे मुझे खुशी ही हो सकती है। मगर यह जरूर है कि मैं जिस सिद्धान्तको लेकर चल रहा हूँ, उसमें ऐसे लोगोंको आदर देनेकी पूरी गुंजाइश है जिनका सिद्धान्त गलत है किन्तु जो यह नहीं जानते कि वह सचमुच गलत है। आपने अपने कथनको सही सिद्ध करनेके लिए जमनालालजीका नाम लिया है। मैं नहीं समझता कि वे आपकी कोई मदद कर सकेंगे। फिर भी, मैं इस पत्रको सँभालकर रखूँगा और इसके बारेमें उनसे बात करूँगा।

अब आपके प्रश्नके बारेमें। मैंने वास्तवमें ऐसा कहा है कि आज हिन्दू धर्ममें जिस प्रकारकी अस्पृश्यता बरती जा रही है, वह इस धर्मका सबसे बड़ा कलंक है। मगर इसका मतलब यह तो नहीं है कि यह हिन्दू धर्मका अंग है, और आपने मुझ पर ऐसा ही कहनेका आरोप लगाया है। आप देखेंगे कि अपने लेखोंमें मैंने यह बात बहुत जोर देकर कही है कि अस्पृश्यता हिन्दू धर्मका अंग नहीं है और यह कि अगर ऐसा हो तो फिर मैं इस धर्मका त्याग कर दूँगा। आपने मुझको जो कतरन भेजी है, उसमें भी आपको यह वाक्य देखनेको मिलेगा: "मुझे हिन्दू धर्ममें शास्त्रका ऐसा कोई आधार नहीं मिलता जिसके बलपर मानव-समाजके किसी भी हिस्सेको अस्पृश्य मानना उचित ठहराया जा सकता हो।" इसे मैंने एक रोग कहा है।

हृदयसे आपका,

डा० बालकृष्ण शिवराम मुंजे
नागपुर सिटी

अंग्रेजी (एस० एन० १४६१६) की फोटो-नकलसे।

१४. पत्र : कुवलयानन्दको[1]

कुमार पार्क, बंगलोर
१७ जून, १९२७

प्रिय भाई,

अब पेट और हृदयपर मालिश करनेके बारेमें आपकी सारी बातें मेरी समझमें आ गई हैं। वैसे, आपको पत्र लिखनेके बादसे तो मैंने इसे जारी ही रखा है। मैं तो सिर्फ कुछ बातें, जो मेरी समझमें नहीं आ रही थीं, आपसे समझना चाहता था। आपको बता ही चुका हूँ कि अपने शरीरपर इन क्रियाओंका प्रयोग करनेमें मैं आपपर पूरा भरोसा रखकर चलना चाहता हूँ। जबतक आपकी बताई बातें मेरी समझमें नहीं आयेंगी तबतक मैं अपनी शंकाएँ तो आपके सामने रखता ही रहूँगा, लेकिन वैसे आप जो-कुछ बतायेंगे, मेरे लिए वह अन्तिम रूपसे मान्य होगा।

इन यौगिक क्रियाओंको मैं पूरी तरह आजमाकर देखना चाहता हूँ। और किसी कारणसे नहीं तो इस कारणसे कि मैं उन्हें काय-चिकित्साका सबसे निरापद तरीका मानता हूँ।

८ तारीखको पत्र[2] लिखनेके बाद मैंने एक नया कदम उठाया है। आशा है, आप उसे जल्दबाजी नहीं मानेंगे। आपकी टिप्पणियोंको दो बार पढ़नेपर मैंने देखा कि आप चाहते हैं कि मैं अपने धड़को ३० अंश तकका कोण बनाते हुए ऊपर उठाऊँ इसलिए आपको पत्र लिखनेके तुरन्त बाद मैंने कोण बढ़ा दिया, लेकिन आपके निर्देशके अनुसार ५ मिनटतक ही उस स्थितिमें रहा। लेकिन, कोण ठीक ३० अंशका हो पाया या नहीं, इसके बारेमें खुद मेरे मनमें भी शंका है। कारण यह है कि अभी तक मैं ठीक माप दे सकनेवाला कोई साधन प्राप्त नहीं कर पाया हूँ। खाटको ऊपर उठानेसे जब मुझे सन्तोष नहीं हुआ तो मैंने एक तख्तेकी तलाश की। अब मुझे तख्ता मिल गया है। खाटकी सतह लकड़ीकी है। उसपर मैं तोशक नहीं बल्कि गद्दीदार नमदा बिछाता हूँ, और तख्तेकी सहायतासे उसीपर सर्वांगासन किया करता हूँ। पहलेकी अपेक्षा तो अब यह लाख दर्जे अच्छा लगता है। आसनके कोणका माप महादेव लेता है। उसका खयाल है कि मैं जिस कोणपर यह आसन करता हूँ वह ३० के बजाय ५० अंशके अधिक करीब होगा। मगर मुझे विश्वास नहीं होता कि वह ५० अंशका या ऐसा-कुछ होगा। लेकिन जो भी हो, मुझे इसमें कोई कष्ट नहीं होता। आज इस आसनका चौथा दिन है, किन्तु अब भी ५ मिनटतक ही करता हूँ। रक्तचाप हर रविवारको देखा जाता है, और अगर मैं देखूँगा कि चापमें कोई वृद्धि हुई है तो उसका कारण मैं इसी क्रियाको मानूँगा और फिर आपका

१. कुवलयानन्द द्वारा लिखे १४ जून, १९२७ के पत्रके उत्तरमें।
२. देखिए खण्ड ३३।

उत्तर मिलनेतक उसे बन्द रखूँगा। और अगर आपको ऐसा लगे कि मैं बहुत आगे बढ़ गया हूँ तब तो हर हालतमें उसे छोड़ ही दूँगा।

एक और भी आसन है जो मैं बिल्कुल तो नहीं, फिर भी काफी नियमित रूपसे करता रहा हूँ। जब मैं पेचिशके बाद अपना स्वास्थ्य सुधार रहा था और आजकी बनिस्बत काफी कमजोर था, तब यह आसन किया करता था। इसमें पैरोंको धड़परसे समकोण बनाते हुए ऊपर उठाना पड़ता है और दो-तीन मिनटतक उन्हें इसी स्थितिमें रखना पड़ता है। यह चलने-फिरनेके बाद होनेवाली थकावटको दूर करनेके लिए किया जाता है। उसके बाद धड़ उसी प्रकार बिस्तरपर रहे, इसका ध्यान रखते हुए मैं दोनो पैरोंको उसी तरह सीधी अवस्थामें बिना किसी कष्टके सिरकी ओर जहाँतक झुका सकता हूँ वहाँतक झुकाता हूँ। यह आसन मैं पेटके लिए किये जानेवाले मासपेशियोंके व्यायामको बल देनेके लिए करता हूँ। मेरा खयाल है, मैं आपसे कह भी चुका हूँ कि यह आसन मुझे डॉ० केलकरने बताया था, जिन्हें आप शायद जानते हैं। वे मुझे बराबर लिखते रहे हैं कि मैं यह आसन करता रहूँ। पैरों को सीधा और धड़पर समकोणावस्थामें रखना और फिर उन्हें धीरे-धीरे सिरकी ओर ले जाना, ये दोनों चीजें मुझे लाभदायक मालूम पड़ रही है। कोई थकावट नहीं रह जाती है और पैरोंको सिरकी ओर झुकानेकी क्रिया करनेके बाद आँतोंके आस-पास ऊपरकी ओर मैं एक प्रकारकी गतिका अनुभव करता हूँ।

मैं अभी तक सुबह गरम पानी और नमक नही लेता क्योकि एनिमा ले रहा हूँ और अब मैं आधे घंटे तक पानीको अन्दर रख पाता हूँ। लेकिन, नाकसे गिलासभर पानी जरूर पीता हूँ। इस तरह नाक द्वारा पानी पीनेमें आधेसे कुछ कम पानी गिर जाता है। इसलिए मेरा खयाल है, मुँह धोनेके बाद इस तरह मैं करीब ४ औंस पानी ले लेता हूँ।

सुबह-शाम घूमना तो चलता ही है – दोनों वक्त ४०-४० मिनट। लेकिन, जब मैंने बंगलोर आनेपर घूमना शुरू किया था, उस समयकी अपेक्षा अब इतने ही समयमें अधिक दूरी तय कर लेता हूँ। दोनों वक्त दो-दो मील तो घूम ही लेता हूँ।

अभीतक दो छोटे चम्मचसे अधिक पिघला हुआ मक्खन लेनेकी हिम्मत नही करता। मेरा खयाल है, मैं आपको बता चुका हूँ कि दूधकी मात्रा बढ़ाकर ३० से ४० औंस कर दी है। भाखरी या दो औंस जईका दलिया चल रहा है।

मैं आपकी मूल टिप्पणियाँ साथमें भेज रहा हूँ। इन्हें फिर मेरे पास भेजनेकी जरूरत नही है, क्योंकि उनमें लिखी बातें मुझे याद रहेंगी। आगे भी जो हिदायतें भेजना आपको जरूरी लगे, भेजनेकी कृपा करें।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत कुवलयानन्दजी
कुंजवन
लोनावला

अंग्रेजी (जी० एन० ५०४८) की फोटो-नकल तथा एस० एन० १२५९६ से भी।

१५. पत्र : कान्ति गांधीको

बंगलोर
ज्येष्ठ वदी २ [१७ जून, १९२७]

चि० कान्ति,

तुम्हारा पत्र मिला। चि० हरिलालके पास जानेके लिए तुम मेरी अनुमति चाहते हो। पुत्रको पितासे मिलनेके लिए पितामह की अनुमति नहीं माँगनी पड़ती। पुत्रकी इस इच्छाको कोई रोक ही नहीं सकता। और अब तुम सयाने हो गये हो इसलिए भी मेरे अनुमति देनेका प्रश्न नही उठता।

मै तुम्हें इतना ही बता सकता हूँ कि तुम्हारा उत्तरदायित्व क्या है। और उस दृष्टिसे चि० हरिलालसे मिलनेके बारेमें मेरी सलाह इस प्रकार है। मैं ऐसा मानता हूँ कि उसने इस समय उलटा रास्ता पकड़ा है। वह व्यभिचारी है और व्यसनी बन गया है। वह अपने धर्मको भूल गया है इसलिए पिताके रूपमें अपने अधिकारोंका उपयोग करने लायक नही रह गया है। मै उसे एक प्रकारका रोगी मानता हूँ। उसका रोग शारीरिक नही बल्कि आध्यात्मिक है और यह आध्यात्मिक रोग शारीरिक रोगकी अपेक्षा कही भयानक है। अतः उसे प्रोत्साहित करनेके विचारसे उसके पास जाना तुम्हारा धर्म नही बल्कि उसका त्याग करना ही तुम्हारा धर्म है। तुम्हें, मुझे तथा उसके मित्रों-हितेच्छुओंको उससे धार्मिक असहयोग करना चाहिए। यदि तुमने उसे सुधारनेकी दृष्टिसे उससे मिलनेका विचार किया हो तब तो मैं तुम्हारे इस विचारको समर्थन-योग्य मानूँगा और उस अवस्थामें मैं तुम्हें हर प्रकारकी सुविधा भी देना चाहूँगा। किन्तु फिलहाल तो ऐसा लगता है कि तुमने उस पत्रके कारण ही उससे मिलनेका विचार किया है। इसलिए मुझे ऐसा लगता है कि तुम्हारे वहाँ जानेका मतलब होगा – वह जिस रास्तेपर चल रहा है उसीपर चलनेके लिए उसे प्रोत्साहित करना। और यदि तुम उसे सुधारनेके विचारसे जाना चाहते हो तो इस सम्बन्धमें लौकिक दृष्टिसे तुममें अभी उतनी योग्यता और प्रौढ़ता नहीं आई है। इस लिहाजसे अभी तुम्हें बालक ही माना जायेगा। अभी तो तुम्हारी लिखाई-पढ़ाई चल रही है। मैं चाहता हूँ और यही कोशिश भी कर रहा हूँ कि तुम विद्याभ्यास करते हुए अपनी आत्माका इतना विकास कर लो कि हरिलालके लिए मै जो नहीं कर सका वह करनेकी शक्ति तुममें आ जाये तथा उसपर तुम्हारा ऐसा प्रभाव पड़े कि वह तुम्हें देखते ही अपने दुर्गुणोंको छोड़ दे। मैं तो तुम दोनों भाइयोंको इसी प्रकार तैयार कर रहा हूँ। जैसा कि मैंने ऊपर बताया यदि तुममें शक्ति होगी तो तुम ऐसी शिक्षा प्राप्त कर सकोगे। इसलिए मेरी सलाह तो यह है कि तुम्हें हरिलालको साफ-साफ लिख देना चाहिए कि जबतक वह व्यभिचार और व्यसनोंको नहीं छोड़ देता और तुम सबका पालन-पोषण करने योग्य

नहीं बन जाता अथवा जबतक तुम अपनी तपस्याके द्वारा उसे उसकी मोह-निद्रासे जगानेकी योग्यता नहीं प्राप्त कर लेते तबतक तुम उसके पास नहीं जा सकोगे। किन्तु मेरे कहनेका मतलब यह नहीं है कि तुम मेरी सलाहको तत्काल मान ही लो। आज तक तो हरिलाल अपने दोषोंको स्वीकार करता रहा है और मुझसे कहता आया है कि वह उन्हें सुधारनेका प्रयत्न करेगा किन्तु अब तो उसने मेरे विरुद्ध अखबारोंमें पत्र लिखना शुरू कर दिया है। मैंने ये पत्र देखे तो नहीं हैं किन्तु इन पत्रोंका तात्पर्य मैं जानता हूँ। हरिलालका कहना है कि वह नहीं बल्कि मैं धर्मभ्रष्ट हो गया हूँ और बौद्ध धर्मका प्रचार कर रहा हूँ। उसकी राय में यह प्रचार मानव-जातिके लिए हानिकर है और इसलिए वह इसे कुकर्म मानता है। मेरे इस कुकर्मके विरुद्ध ही उसने विद्रोह किया है। और उसका इरादा मौका मिलते ही मेरे अनुचित प्रभाव-क्षेत्रसे तुम दोनों भाइयोंको दूर खींच ले जानेका है। उसके ऐसे विचारोंके कारण सम्भव है कि तुम दुविधामें पड़ जाओ। मेरे विचार सही हैं या कि हरिलाल जो विचार रखता है वे सही हैं, इस सम्बन्धमें यदि तुम्हारे मनमें तनिक भी शंका हो तो मैं चाहूँगा कि तुम अपने ऊपर मेरे विचारोंका असर न होने दो। अतः इस बारेमें मेरी दूसरी सलाह यह है कि जिन अध्यापकोंकी देखरेखमें तुम विद्याभ्यास कर रहे हो अथवा आश्रममें जिन बुजुर्गोंके सम्पर्कमें आते हो उनमें से जिनके प्रति तुम्हारे मनमें श्रद्धा हो उनसे तुम नम्रतापूर्वक यह बात पूछ देखना। अपनी सभी उलझनें उनके सामने रखना और वे जो सलाह दें तदनुसार चलना। यदि तुम मुझसे अपनी गुत्थियाँ सुलझानेको कहोगे तो मैं भी तुम्हारी सहायता अवश्य करूँगा। जिस गीताका हम सब लोग प्रतिदिन अध्ययन-मनन करते रहते हैं और तुम जिसे इतनी श्रद्धापूर्वक कण्ठस्थ करने तथा समझनेकी चेष्टा कर रहे हो, उसमें कहा गया है कि हम उनके पास जायें जिन्हें हम गुरुजनके समान मानते हों और उन्हें प्रणाम करके यत्न-पूर्वक अपनी समस्याओंको हल करवा लें और तदुपरात वे जो कहें उसे सत्य मानकर श्रद्धापूर्वक उसपर अमल करें। मैं चाहता हूँ और मेरी यह सलाह है कि तुम ऐसा ही करो। किसी मामलेमें उतावली या बचपना मत करना। वर्तमान स्थितिमें तुम्हारा कर्त्तव्य क्या है, इसे समझनेका प्रयत्न करना और उसका अनुसरण करते हुए दृढ़ता तथा हिम्मतसे काम लेना। तुम्हें क्या भाता है उसका खयाल न करके सिर्फ इसी बातपर विचार करो कि तुम्हें क्या करना चाहिए। यह पत्र तुम जिन लोगोंको दिखाना चाहो, उन्हें दिखा देना। तुम्हारे उत्तरकी मैं प्रतीक्षा करूँगा। तुम दोनोंकी तबीयत कैसी रहती है, लिखना।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ७७०३) की नकलसे।
सौजन्य : कान्ति गांधी

१६. पत्र : सतीशचन्द्र दासगुप्तको

कुमार पार्क, बंगलोर
१८ जून, १९२७

प्रिय सतीश बाबू,

आपका पत्र मिला। अगर आप यात्राका श्रम बरदाश्त कर सकें तो यहाँकी आबो-हवा तो आपके लिए बहुत माकूल रहेगी, क्योंकि इन दिनों यहाँकी आबोहवा सचमुच बड़ी अच्छी होती है। लेकिन, अगर लगे कि यात्रामें परेशानी होगी और इसमें जोखिम है तो आनेकी जरूरत नही है। तभी आयें जब डाक्टर आनेकी सलाह दे।

अब सब-कुछ सोदपुर ले जाया जा रहा है, यह जानकर खुशी हुई। लड़कोंको बखूबी वर्धा जाने दें। लेकिन अगर वे साबरमतीमें ज्यादा प्रसन्न रहेंगे—और सम्भावना ऐसी ही है कि वहाँ वे शायद ज्यादा प्रसन्न रहेंगे—तो अहमदाबादकी दूरी, उनके साबरमती आनेमें बाधक न बनने दी जाये। कुछ बातोंमें साबरमतीमें जो सुविधाएँ हैं, वे वर्धामें नही हैं—खासकर जब जमनालालजी वर्धामें न हों; और अभी कुछ दिन वे वहाँ नही ही होंगे।

आप सबको स्नेह-वन्दन।

आपका,
बापू

श्रीयुत सतीशचन्द्र दासगुप्त
होम विला
गिरीडीह

अंग्रेजी (जी० एन० १५७४) की फोटो-नकलसे।

१७. पत्र : मनोरमादेवीको

कुमार पार्क, बंगलोर
१८ जून, १९२७

प्रिय बहन,

आपका दुःखभरा पत्र मिला। स्पष्ट है कि इसे आपने खुद नही लिखा है। आप थोड़ी-बहुत अंग्रेजी तो जानती ही है, सो आप जो-कुछ चाहें अपनी ही अंग्रेजीमें लिख सकती हैं। और बँगलामें लिखें तब तो और भी अच्छा। मैं खुद बँगला नही समझता लेकिन यहाँ मेरे साथ कुछ बंगाली सहायक स्थायी तौरपर रहते है। यह भी लिख भेजिए कि आपकी उम्र क्या है, अपने माता-पिताके बारेमें आप क्या करना चाहती है? क्या आपने उनसे अलग होनेके लिए उनकी अनुमति ले ली है? क्या आपका स्वास्थ्य अच्छा है? अगर आपको आश्रम आनेकी इजाजत मिल जाये तो क्या आप अकेली यात्रा करेंगी? क्या आप श्रीयुत गोपबन्धु दासको जानती है? अगर जानती हों तो आप उनसे मिलिए और मुझे पत्र लिखनेके लिए कहिए। और अगर आप उन्हें न जानती हों तो भी उनसे मिल जरूर लीजिए? उड़ीसामें वे काफी जाने-माने व्यक्ति है। वे कांग्रेस कमेटीके अध्यक्ष थे और किसी समय विधान परिषद्के सदस्य भी थे। वे कटक अथवा पुरीमें मिलेंगे। आपके जिन मित्रने आपके बदले पत्र लिखा है, वे कौन हैं? मैं आपकी मदद करना चाहूँगा। लेकिन, जाने बिना मैं मदद कैसे कर सकूँगा? यह जरूरी है कि ऊपर का सारा ब्योरा मुझे मिल जाये।

हृदयसे आपका,

श्रीमती मनोरमादेवी
चण्डीशाही
कटक (उड़ीसा)

अंग्रेजी (एस० एन० १२५७८) की फोटो-नकलसे।

१८. पत्र : फीरोजा पी० एस० तलयारखाँको

कुमार पार्क, बंगलोर
१८ जून, १९२७

आपकी पर्ची तो रात ही यहाँ पहुँच गई थी, लेकिन मुझे अभी-अभी दी गई है। यह जानकर दुःख हुआ कि आपकी तबीयत खराब हो गई थी। मैं यही तो सोच रहा था कि आप इरादेके मुताबिक आईं क्यों नहीं। बेशक, आप जब भी आयें, आपसे मिलकर मुझे खुशी होगी और कृपया साथमें श्रीमती बनर्जीको भी अवश्य लायें। आप मिलनेका समय तो जानती हैं और आशा है, जब आप आयेंगी उस समय अगर

कुछ मुलाकाती बैठे हों या आ रहे हों तो उसका बुरा नहीं मानेंगी। इस तरह आप किसी भी दिन बिना पूर्व-सूचनाके आ सकती हैं। लेकिन, अगर आपकी तबीयत ठीक न हो तो आनेकी परेशानी न उठायें। उससे मुझे कोई गलतफहमी नहीं होगी। हम दोनों ही बीमारीसे ठीक होकर स्वास्थ्य-लाभ करनेमें लगे हुए हैं और जो भी हो, अब चूँकि मुझे मालूम हो गया है कि आप कौन हैं, इसलिए हम दोनोंके बीच किसी प्रकार की औपचारिकताकी आवश्यकता नहीं है।

हृदयसे आपका,

श्रीमती फीरोजा पी० एस० तलयारखाँ
३, रेजिडेंसी रोड
बंगलोर

अंग्रेजी (एस० एन० १४१६३) की फोटो-नकलसे।

१९. पत्र : साँगली इंडस्ट्रियल एंड एग्रिकल्चरल स्कूलके प्रिंसिपलको

कुमार पार्क, बंगलोर
१८ जून, १९२७

प्रिय भाई,

पूरी जानकारी देते हुए आपके विस्तृत पत्रके लिए धन्यवाद। अब एक ही जिज्ञासा है, जिसका उत्तर भेज सकें तो कृपा होगी। क्या जानदार (फर्टिलाइज्ड) और बेजान अंडोंके पोषक तत्त्वोंके अनुपातमें कोई अन्तर भी है? अपने स्कूलमें आप क्या पशु-पालन और दुग्ध-व्यवसाय आदि की भी शिक्षा देते हैं?

हृदयसे आपका,

प्रिंसिपल
साँगली इंडस्ट्रियल एंड एग्रिकल्चरल स्कूल
साँगली

अंग्रेजी (एस० एन० १४१६४) की फोटो-नकलसे।

२०. धर्मके नामपर झगड़ा

उदयपुर राज्यमें श्वेताम्बर और दिगम्बरोंके बीच जो झगड़ा हुआ है, उसके सम्बन्धमें एक भाईने मेरे पास अखबारोंकी कतरनें भेजी है, और सुझाव दिया है कि मैं उन्हें पढ़कर उनके विषयमें अपने विचार जाहिर करूँ। एक तो अपनी इस बीमारीमें इतने अखबार पूरी तरह पढनेका मुझे समय नही मिलता, और दूसरे यदि पढने-की शक्ति और समय भी हो तो मै केवल अखबार पढ़कर किसी बातके सम्बन्धमें अपनी राय कायम नही करता। और मेरा ख्याल है कि किसीको इस तरह अपनी राय कायम नही करनी चाहिए। इसलिए मैं नही जानता कि दोनों पक्षोमें दोषी कौन है अथवा अधिक दोष किसका है। परन्तु अखबारोंको ध्यानपूर्वक पढ़नेपर मेरे मनमें जो विचार आये उन्हें मैं पाठकोंके सामने पेश कर देता हूँ।

लेख लिखनेवालोंकी भाषा पक्षपात-सूचक है। प्रत्येक दूसरे पक्षको दोषी और अपने-आपको निर्दोष समझता है।

इन झगड़ों और उनपर लिखे हुए लेखों तथा हिन्दू-मुस्लिम दंगों और उनके विषयमें लिखे गये लेखोंमें कोई तात्त्विक भेद मुझे बिलकुल नही दिखाई दिया। हिन्दू-मुसलमानोके झगड़ोंमें अधिक विष है और तत्सम्बन्धी-लेखोकी भाषामें अधिक कटुता है। पर यह भेद केवल मात्राका है।

असल बात तो यह है कि हम धर्मको ही भूल गये हैं। हरएक अपनी ही बातको कायम रखना चाहता है। धर्म क्या है, कहाँ है, उसे कैसे पहचाना जा सकता है तथा उसकी रक्षा किस तरह हो सकती है, यह जाननेकी किसीको इच्छातक नही है।

पर जैनियोंसे तो इससे अधिक अच्छी बातोंकी आशा की जानी चाहिए। वे स्याद्-वादके पुजारी हैं, दया-धर्मके इजारेदार हैं। उनमें सहिष्णुता होनी चाहिए। अर्थात् मतभेद रखनेवाले प्रतिपक्षीके प्रति उनसे तो उदारताकी आशा की जाती है। उन्हे यह मानना चाहिए कि उन्हें स्वयं अपना सत्य जितना प्रिय है प्रतिपक्षीको भी उसका सत्य उतना ही प्रिय होगा। जहाँ विरोधी भूल करता हुआ दिखाई दे, वहाँ भी उन्हें रोषको छोड़कर दयाभावसे काम लेना चाहिए।

परन्तु इन लेखोंको पढ़नेपर तो मुझे ऐसा आभास हुआ मानो स्याद्वाद और दया-धर्म जैन-घरोमें ही नही जैन मन्दिरोंमें भी केवल पोथियोंमें ही सुशोभित हो रहे हैं। इसका अनुभव तो मुझे जहाँ-तहाँ होता ही रहता है। अगर कही दया-धर्मपर अमल होता भी है तो वह चीटियाँ जिमाने और मछलियोंको बचाने तक ही सीमित है। और इस धर्मका पालन करते हुए यदि मनुष्यके प्रति कही क्रूरता बरती जा रही हो, तो उसे धर्म समझा जाता है।

रायचन्द भाई तो कहा करते थे कि जबसे जैन-धर्म बनियोंके यहाँ गया उसका हिसाब भी बनियोंका-सा ही हो गया है। ज्ञान और वीरता दयाके लक्षण होने चाहिए; उनका तो प्राय: लोप हो गया तथा दया और भीरुता एकार्थवाची हो गये, जिससे दयाका पतन हो गया।

फिर धर्म और धन तो एक-दूसरेके जानी दुश्मन ठहरे। किन्तु जैन मन्दिरोंमें लक्ष्मीदेवी जा बैठीं इसलिए धार्मिक सिद्धान्तोंका निर्णय तपस्यासे नहीं, बल्कि अदालतोंमें वकीलोंकी दलीलोंसे होने लगा। फलतः यह हालत हो गई कि जो अधिक धन देता वही अपने अनुकूल धर्मका निर्णय करा ले आता।

शायद इस चित्रमें कुछ अतिशयोक्ति जान पड़े, पर अत्युक्ति जरा भी नहीं है। मैं जैनियोंको जानता हूँ। वैष्णव सम्प्रदाय और वैष्णवोंसे मेरा जितना परिचय है, लगभग उतना ही परिचय जैन-सिद्धान्तों और जैनियोंसे भी है। कितने ही लोग मुझे द्वेषवश जैन समझते हैं, तो कितने ही प्रेमपूर्वक चाहते हैं कि मैं जैन हो जाऊँ और कई जैनियोंके प्रति मेरा पक्षपात देखकर मुझसे खुश भी होते हैं। मैंने जैन ग्रन्थोंसे बहुत-कुछ सीखा है। बहुतसे जैन मित्रोंका सहवास मेरे लिए बहुत लाभकारी सिद्ध हुआ है। इसीलिए उपर्युक्त बातें कहकर उन लोगोंको जाग्रत करनेकी मुझे इच्छा हुई जिन्हें जैन धर्म प्रिय है।

श्वेताम्बरों और दिगम्बरोंमें दुश्मनी हो ही क्यों? दोनोंके सिद्धान्त एक ही हैं। जो थोड़ा-सा भेद है, वह ऐसा नहीं जो असह्य हो, बल्कि द्वैतियों और अद्वैतियोंके भेदकी तरह वह एक ऐसा भेद है जिससे दोनों शान्ति और समाधानपूर्वक अपने-अपने धर्मका पालन कर सकते हैं।

जैनियोंमें साधु और साध्वियाँ बहुत हैं। उन्हें समय भी बहुत मिलता है। वे सच्ची तपश्चर्या क्यों न करें? क्यों न वे शुद्ध ज्ञान प्राप्त करें? वे क्यों न अपना अनुभूत ज्ञान समाजको दें?

जैन युवक अपने बड़े-बूढ़ोंके समान धनोपार्जनमें ही व्यस्त दिखाई देते हैं। गृहस्थाश्रमी रहते हुए भी वे तपस्वी-जैसे बनकर उदारचित्त, स्वच्छ और दयामूर्ति क्यों नहीं हो जाते?

मुझसे पालीतानाके[1] विषयमें भी राय माँगी गई थी। अब मुझसे उदयपुरके दयनीय उपद्रवपर मत माँगा गया है। यह मत चाहनेवाले मित्र भी युवा हैं। इस बार मैंने ऐसा मत दे दिया है जिसकी शायद उन्होंने अपेक्षा नहीं की होगी।

मैं जैन और हिन्दू धर्मको अलग-अलग नहीं समझता। स्याद्वादकी सहायतासे ही मैं हिन्दू अर्थात् वैदिक-धर्म और जैन-धर्मका ऐक्य-साधन कर सकता हूँ। बल्कि उसकी सहायतासे मैंने कमसे-कम अपने लिए तो कभीका, समस्त धर्मोका ऐक्य-साधन कर लिया है। श्वेताम्बर-दिगम्बरके झगड़ोंका न्याय अखबारों और अदालतोंसे नहीं प्राप्त हो सकता। वह तभी प्राप्त हो सकता है जब दोनों अथवा कोई एक पक्ष दोनोंके लिए प्रायश्चित्त करे, और शुद्ध हो जाये। जिससे यह भी न बन पड़े वह धर्मका नाम छोड़कर नम्रतापूर्वक मौन धारण कर ले।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १९-६-१९२७

१. सौराष्ट्र-स्थित जैन तीर्थ-स्थान।

२१. स्वदेशी बनाम विदेशी

एक काठियावाड़ी भाई लिखते हैं:[1]

इस पत्रमें जो विचार-दोष है, उसे अधिकांश पाठक तो तुरन्त समझ जायेंगे। पर फिर भी इस तरहके विचार कई बार सुने जाते हैं, इसलिए यह उचित है कि स्वदेशीका रहस्य जितना स्पष्ट किया जा सके उतना स्पष्ट कर दिया जाये। इसके सिवा, स्वदेशीके दुरुपयोगके कारण हमें भारी नुकसान उठाना पड़ रहा है। स्वदेशीके नामपर अनेक प्रवृत्तियाँ चल रही हैं। यदि उन्हें छोड़कर सच्ची स्वदेशीमें अपनी शक्ति लगा दी जाये तो हम अपने कामको बहुत जल्दी पूरा कर सकेंगे।

मुझे विश्वास है कि स्वदेशी व्रतके प्रति मेरी निष्ठा धीमी पड़नेके बजाय और तीव्र होती जा रही है। और १९२० में मैंने जिस रूपमें उसका दर्शन किया था उसी रूपमें मैं उसका पालन करता आ रहा हूँ। बल्कि आज तो उसका पालन मैं अधिक दृढ़तापूर्वक कर रहा हूँ। विदेशी सुई हम जरूर लें क्योंकि वह उपयोगी चीज है, और हम उसे हजम भी कर सकते हैं। उसको स्वीकार करके हम देशके किसी भी उद्योगको हानि नहीं पहुँचाते। उसको ग्रहण करनेसे देशमें बेकारी नहीं बढ़ती। बल्कि वह सुई तो सैकड़ोंको धन्धा देती है। और वह धन्धा हमारे लिए उपयोगी भी है। विदेशी कपड़ा भले ही अच्छा हो, सस्ता हो, चाहे हमें उसके लिए कौड़ी भी न देनी पड़े, फिर भी वह त्याज्य है। क्योंकि उसको स्वीकार करनेसे करोड़ों लोग पामाल हो गये हैं। कपड़ा तो हम अपने गाँवोंमें ही पैदा करते आये हैं। उसके बदलेमें हमें कोई दूसरा धन्धा अभीतक नहीं मिला है। अतः उस धन्धेका त्याग करके हमने महापाप किया है। उसको त्याग देनेसे देशमें भुखमरी बढ़ी, और भुखमरी बढ़नेसे रोग बढ़े, जुर्म बढ़े और अनीति बढ़ी। अगर भविष्यमें कभी ऐसा समय आये जब इस देशके लोगोंको कोई दूसरा अधिक प्रामाणिक उद्यम मिल जाये, अथवा इस देशकी जमीन कपास न पैदा कर सके, अथवा स्वयं किसान ही कपासके बदले कोई अन्य उपयोगी और अधिक धन देनेवाली फसल पैदा करने लग जायें, तो उस समय भले ही कपड़ा-सम्बन्धी स्वदेशी व्रत अनुपयोगी हो सकता है। ऐसे समय यदि आनेवाली पीढ़ी हमारे समयके साहित्यको देखकर, उसे अविचल सिद्धान्त समझकर कपड़ेके सम्बन्धमें स्वदेशीका आग्रह करेगी तो वह मूर्ख समझी जायेगी। उसकी वह चेष्टा इसी प्रकारकी होगी जैसे कि कोई पुत्र अपने पिताके बनाये कुएँको तैरकर पार करनेकी बजाय उसीमें डूब मरे। अलबत्ता, मेरी बुद्धि तो ऐसी कल्पना नहीं कर सकती कि आगे चलकर कभी ऐसा युग आयेगा। वह आये चाहे न आये पर आजकी स्थितिमें तो खादी

१. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। उसमें पत्र-लेखकने २२-५-१९२७के नवजीवनमें प्रकाशित गांधीजीके "गाय और भैंस" शीर्षक लेखका हवाला देते हुए उनके इस विचारकी आलोचना की थी कि ऐसी उपयोगी वस्तुएँ जिन्हें हम देशमें नहीं बना सकते उन्हें विदेशसे लेते रह सकते हैं। देखिए खण्ड ३३।

स्वदेशीका विशुद्धतम रूप है, इस बारेमें दो मत नहीं हो सकते, बल्कि यह भी कहा जा सकता कि फिलहाल तो है भी नही।

इस देशमें करोड़ों रुपयोंका कच्चा माल पैदा होता है। और हमारे अज्ञान, आलस्य तथा शोधशक्तिके अभावके कारण सब-का-सब विदेश चला जाता है। परिणाम, जैसा कि श्री मधुसूदन दास कहते है, यह होता है कि हम पशुओं-जैसे रह जाते है। हमारे हाथोंको जो तालीम मिलनी चाहिए वह नही मिलती और बुद्धिका विकास भी नही होता। फलतः देशसे जीवित कला लुप्त होती जा रही है और हम केवल पश्चिमका अनुकरण करके रह जाते हैं। अतः हमारे देशमें मिलनेवाले नौ करोड़ रुपयेकी कीमतके, मरे जानवरोंके चमड़ेका उपयोग करने योग्य यन्त्र जबतक हम स्वयं नहीं बना सकते, तबतक तो मैं आवश्यक यन्त्र आदि दुनियाके किसी भी कोनेसे मँगानेको तैयार हूँ, और फिर भी मैं इसे स्वदेशी धर्मका पूर्ण पालन ही मानूँगा। मेरा खयाल है कि यदि हम महज अपने हठके कारण ऐसे यन्त्र नही मँगायेंगे तो स्वदेशी धर्मको हानि पहुँचेगी। उसी प्रकार हमारे देशमें ओषधियाँ बहुत होती हैं और वे अनेक प्रकारकी दवाओं तथा अन्य चीजोंके रूपमें फिर देशमें वापस आ जाती हैं। उनका भी यही उपयोग करनेके लिए यदि हमें यन्त्रों अथवा बाहरी सहायताकी जरूरत हो तो ये यन्त्र मँगवाना या सहायता लेना हमारा धर्म है।

स्वदेशी तो शाश्वत धर्म है। उसका व्यवहार हर युगमें बदलता ही रहेगा, और बदलना भी चाहिए। स्वदेशी आत्मा है और भारतमें इस युगके लिए खादी उसका शरीर है। समय पाकर उसकी इस देहका नाश होना हो तो भले ही हो। तब वह दूसरी तथा नवीन देह धारण कर लेगा। पर अन्तरमें स्थित आत्मा तो वही होगा। स्वदेशी एक सेवा-धर्म है। इस सेवा-धर्मको यदि हम पूरी तरह समझ लें तो हमारा, हमारे परिवारका, देशका और सारे संसारका कल्याण होगा। स्वदेशीमें स्वार्थ नहीं, शुद्ध परमार्थ है। इसलिए मैं उसे यज्ञ मानता हूँ। इसमें अपना लाभ जरूर है, परन्तु पर-द्वेषके लिए स्वदेशीमें स्थान ही नहीं है। धर्म ऐसा ऐकान्तिक तो कभी हो ही नही सकता कि विदेशसे कभी कोई चीज न मँगाई जाये। हाँ, हम विदेशसे कोई ऐसी चीज न लावें जिससे देशको नुकसान हो। इतना ही नही, धर्म ऐसा ऐकान्तिक भी नही हो सकता कि देशका सब-कुछ हमेशा अच्छा ही होता है। अपने देश या दूसरे देशोंकी जो भी वस्तु कल्याणकर और पोषक हो वह ग्रहण करने योग्य ही है। और जो बुरा और घातक हो वह त्याज्य है। देशमें कितने ही प्रकारकी शराब होती है परन्तु वह सर्वथा त्याज्य है। यह माननेका कोई कारण नहीं कि यदि समस्त भारतवर्ष उसका त्याग कर देगा तो शराबका धन्धा करनेवालोंको नुकसान होगा। उनका आजका पेशा उनके तथा देशके लिए हानिकर है। अगर यह पेशा बन्द हो जायेगा तो भी वे भूखों नहीं मरेंगे। बल्कि दूसरा अच्छा-सा पेशा उन्हें आसानीसे मिल जायेगा।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १९-६-१९२७

२२. पत्र : अखिल भारतीय चरखा संघके मन्त्रीको

कुमार पार्क, बंगलोर
१९ जून, १९२७

प्रिय महोदय,

बनारसमें इकट्ठा किये गये चन्देके सम्बन्धमें यह कहना सर्वथा ठीक है कि यह सारी रकम गांधी आश्रम, बनारसके निमित्त इकट्ठी की गई थी। इसलिए आश्रमको यह सारी रकम कर्जके रूपमें नहीं, अपितु अनुदानके रूपमें मिलनी चाहिए। हमारे वही-खातोंमें तो यह रकम दर्ज होनी ही चाहिए, क्योंकि निधिका संग्रह हमने बड़ी जिम्मेदारीके साथ किया था। यह चन्दा इस रूपमें दर्ज किया जाना चाहिए कि इसका उपयोग गांधी आश्रम, बनारसके लिए किया जाना है, अनुदानके लिए परिषद्की मंजूरीकी कोई आवश्यकता नहीं है।

जहाँतक लक्ष्मी बहन और हरजीवनका सवाल है, मेरा खयाल यह है कि सारी बात राजेन्द्र बाबूपर छोड़ देनी चाहिए और उन्हें ऐसी मदद दी जानी चाहिए जो उन्हें अपने निर्णयको कार्यान्वित करनेके लिए दरकार हो। जब हम मिले, तब इस विषयपर और चर्चाकी जा सकती है।

गुलबर्गाके चन्देके सिलसिलेमें मैं गंगाधररावसे सलाह-मशविरा कर रहा हूँ। लेकिन सामान्य रूपसे स्थिति यह है: हमारे लिए यह जानना तो सुविधाजनक रहेगा कि किस-किस प्रान्तसे चन्दा किया गया है, किन्तु यह सारा चन्दा चरखा संघकी ओरसे किया जाता है। अगर विचार यह है कि महाराष्ट्रमें इकट्ठी की गई पूरी रकमको महाराष्ट्रमें ही खर्च किया जाना चाहिए और अन्य प्रान्तोंके चन्देका उपयोग भी इसी तरह किया जाना चाहिए तो यह सिद्धान्त ऐसा नहीं है, जिसे उचित साबित किया जा सकता हो। और मैंने अपने भारत-भ्रमणके दौरान ऐसे सभी स्थानोंपर जहाँ यह प्रश्न उठाया गया था, यह बात स्पष्ट कर दी थी कि यद्यपि खर्च करनेके लिए इस चन्देकी रकमका वितरण करते समय इस बातका ध्यान रखा जायेगा कि कहाँ कितना चन्दा इकट्ठा हुआ, फिर भी संघ यह वादा नहीं कर सकेगा कि जिस स्थानसे जितनी रकम इकट्ठी की गई है, उसे लाजिमी तौरपर उतनी रकम खर्च करनेको दे दी जायेगी। इसलिए यह बात कोई महत्त्व नहीं रखती कि गुलबर्गाके चन्देकी रकमको हम अपनी बहीमें किस रूपमें दर्ज करते हैं। सिद्धान्ततः देखें तो संघ महाराष्ट्रसे इकट्ठी सारी रकमको कहीं भी, यथा उड़ीसामें, और इसी तरह उड़ीसामें ही इकट्ठी की गई रकमको महाराष्ट्रमें खर्च करनेके लिए स्वतन्त्र है। यह कहना भी ठीक ही है कि ऐसा करना अधिकारका गलत प्रयोग करना होगा और इससे संघ टूट जायेगा। लेकिन ऐसा मैंने अपनी बातका अभिप्राय स्पष्ट करने और यह बतानेके लिए लिखा है कि जहाँतक हमारे बहीखातोंमें चन्दोकी रकमको दर्ज करनेका

सवाल है, उसमें यह बात कोई महत्त्व नहीं रखती कि अमुक रकम किस प्रान्तसे प्राप्त हुई है।

हृदयसे आपका,

मन्त्री
अखिल भारतीय चरखा संघ
अहमदाबाद

अंग्रेजी (एस० एन० १९७८२) की माइक्रोफिल्मसे।

२३. पत्र : रेहाना तैयबजीको

कुमार पार्क, बंगलोर
१९ जून, १९२७

प्रिय रेहाना,

तुम्हारे दो पत्र मिले। इस बातसे खुशी हुई कि तुमने अपने मनकी बात मुझे साफ-साफ बता दी है। इस तरह अपने मनकी बात साफ-साफ कह देनेसे ही अक्सर बड़ी शान्ति मिलती है। इसलिए विस्तारसे और मनमें जैसी प्रेरणा हुई, उस तरहसे लिखनेके लिए क्षमा मत माँगो। यह जानकर खुशी हुई कि तुम्हें माताजीसे सादा लिबास पहननेकी इजाजत मिल गई है। मैं चाहता हूँ कि जिस तरह तुमने मुझसे दिल खोलकर अपनी बातें कहीं, उसी तरह पिताजी और माताजीसे भी कहो। अगर वे तुम्हारी बातोंको हँसकर उड़ाना चाहें, उनका उपहास करें अथवा क्रोधित होकर तुमको बिलकुल दबा देना चाहें तो भी तुम चिन्ता मत करना। इस सबको तुम अच्छी तरह प्रसन्न भावसे ग्रहण करना। उन्हें तो यह-सब करनेका अधिकार है। जब वे तुम्हारा उपहास करने और तुमपर नाराज होनेके बावजूद यह देखेंगे कि तुम जो-कुछ कहती हो, उसके पीछे गम्भीरता है, संकल्प है, तो वे पिघल जायेंगे और फिर तुम्हें, तुम जो चाहती हो, सो करने देंगे। युवक और युवतियाँ न जाने कितनी बार हवाई किले बनाती हैं, जो बादमें टूटकर बिखर जाते हैं। फिर तुम ऐसी अपेक्षा क्यों करो कि लोग तुम्हें अपवाद मानें? अगर तुम अपवाद हो तो तुम उपहास, घृणा, बल्कि इससे भी बदतर स्थितिको झेल लोगी और इस अग्नि-परीक्षासे और भी निखरकर निकलोगी। ईश्वर हमारी परीक्षा तो लेगा ही।

तुम्हें उस पोशाकको, जिसे माताजीने इतना समय लगाकर इतने प्यारसे तैयार किया था, छोड़नेपर दुःख हुआ। तुम्हारे इस दुःखमें मैं भी शरीक हूँ, लेकिन प्रेम तो आप ही अपना पुरस्कार होता है। और माता-पिताको ऐसी चीजोंको तैयार करवानेपर हुई परेशानीको लेकर तो कोई दुःख नहीं होता जो बादमें चलकर उनके बच्चोंके उपयोगके लायक नहीं रह जाती। जब माताजीको यह विश्वास हो जाये कि तुम अब उन चीजोंको अपने लिए कभी नहीं चाहोगी तो उन्हें सुहेलाको दे देना।

मीरा रेवाड़ी छोड़ चुकी है और आजकल बंगलोर आई हुई है। कुछ दिन यहाँ रहकर वह अपना हिन्दीका ज्ञान दुरुस्त करनेके लिए वर्धा चली जायेगी।

यहाँके मौसमका वर्णन करनेके लिए मेरे पास काव्यात्मक भाषा नहीं है, लेकिन इन दिनो तो यहाँ मौसम सुहावना होता ही है। बेशक यहाँ हिमालय नही है। लेकिन मेरा खयाल है, तुम बंगलोरके बारेमें मुझसे कही ज्यादा जानती हो। मेरे स्वास्थ्यमें सुधार जारी है।

सस्नेह –

तुम्हारा,
बापू

अंग्रेजी (एस० एन० ९६०३) की फोटो-नकलसे।

२४. पत्र : सी० एफ० एन्ड्रयूजको

कुमार पार्क, बंगलोर
१९ जून, १९२७

तुम्हारे संक्षिप्त पत्र मिले। लेकिन मैं उनमें तुम्हारे दुःखकी और उस दुःख पर तुम्हारी विजयकी झलक साफ देख सकता हूँ। तुम हर तरहके आरोपों और व्यंग्योंके अभ्यस्त हो। शास्त्री आजकल वही हैं। इसलिए मुझे उम्मीद है कि तुम उनके साथ एक-आध महीना रहनेके बाद वापस लौट आओगे। कितना अच्छा होता, अगर तुम मेरे साथ बंगलोरमें होते! तब तुम मेरे पहरेदार होते और यहाँके शानदार मौसमका आनन्द लेते। इस समय तो राजगोपालाचारी और गंगाधरराव मेरे पहरेदार हैं। मैं उनसे बहुत कम मिल पाता हूँ। वे मुलाकातियोंको मेरे पास लाने या मेरे पाससे ले जानेके समय ही सामने आते हैं। उनकी कठिनाइयोंके बारेमें और वे परेशानियोसे मुझे किस तरह बचाते हैं, इसके सम्बन्धमें मुझे कुछ भी मालूम नही है। जैसा कि स्वयं राजगोपालाचारीने अपनी ताजा कहानीमें[1] लिखा है, "अमीरों या बड़े लोगोंकी बीमारीका भी अपना एक अलग मजा, एक अलग आकर्षण है।" बीमारी मनुष्यको कैसा लाचार बना देती है, इसका अनुमान तो केवल गरीब आदमीको ही हो पाता है। यहाँ जो असंख्य छोटी-मोटी क्लेशप्रद बातें होती हैं, उनके बारेमें मैं तुम्हें कुछ नही लिखूंगा। तुम्हारी वहाँकी परेशानियाँ ही क्या कम हैं! यह पत्र तो मैंने तुम्हें यह भरोसा दिलानेके लिए लिखा है कि तुम्हारा खयाल मेरे मनमें बराबर बना रहता है।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजी (एस० एन० १२३६२) की फोटो-नकलसे।

१. २३-६-१९२५ के यंग इंडियामें प्रकाशित।

२५. पत्र : हरीन्द्रनाथ चट्टोपाध्यायको

कुमार पार्क, बंगलोर
१९ जून, १९२७

प्रिय भाई,

पत्र तो आपको, कविवरको लिखना चाहिए था, मगर उन्हें लिखनेके बजाय मुझको लिखकर क्या आपने अनजाने ही भूल नहीं की है? या कि आप सचमुच ऐसा समझ बैठे हैं कि मैं यूरोपके साहित्यिक व्यक्तियों और कलाकारोंको जानता हूँ। यदि ऐसा है तो यहाँ "दूरके ढोल सुहावने" वाली बात ही समझिए। रोमां रोलां तकसे मेरा पत्र-व्यवहार कभी-कदाच ही होता है। मेरा खयाल है कि मैंने उन्हें दो से अधिक पत्र नहीं लिखे हैं। यूरोपसे मुझे पत्र लिखनेवाले सभी लोग 'यंग इंडिया' के आम पाठक हैं। मुझे तो उनके नाम भी याद नहीं हैं, और सम्भव है कि उनमें आपकी कल्पनासे मेल खानेवाला कोई भी न हो। तो अब बताइए कि मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत हरीन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय
कोडियालबेल-डाकघर
बंगलोर

अंग्रेजी (एस० एन० १२७७३) की फोटो-नकलसे।

२६. पत्र : मोतीलाल नेहरूको[1]

कुमार पार्क, बंगलोर
१९ जून, १९२७

प्रिय मोतीलालजी,

पत्र तो मुझे अब भी बोल कर ही लिखवाना है, लेकिन इसे मेरी शारीरिक कमजोरीका कोई संकेत न माना जाये। बात सिर्फ इतनी ही है कि डाक्टर की सलाहका अक्षरशः पालन करते हुए मैं भावी उपयोगके लिए शक्ति संचित कर रहा हूँ। इससे शक्ति-संचय होता है या नहीं, यह तो समय आनेपर ही मालूम होगा।

आपका तार मिला। अगर गर्म प्रदेशोंसे होकर यात्रा करनेकी परेशानी आप बरदाश्त कर सकते तो निश्चय ही आपको वह परेशानी उठानेका पूरा पुरस्कार मिल

१. मोतीलालजीके ११ जूनके पत्रके उत्तरमें।

जाता और आप मध्य भारतकी गर्मीको भूल जाते। मैं सोचता हूँ कि क्या वकालतका काम इलाहाबादसे बाहर नहीं किया जा सकता। फीरोजशाहके मुवक्किल तो, वे जहाँ-कहीं जाते थे, लाचार होकर वहीं पहुँच जाते थे। नि:सन्देह, इसमें मुवक्किलोंके साथ अन्याय होता था। तथापि मेरे मनमें यह सवाल उठता है कि अगर आप स्वास्थ्य-सम्बन्धी कारणोंसे जिस-किसी ठंडी जगहमें जायें, अपने मुवक्किलोंको वहाँ आनेका कष्ट दें तो क्या इसमें कुछ अनुचित है।

कांग्रेसका तो जो रंग-ढंग है, उससे मेरी यह राय और भी दृढ़ होती है कि अभी जवाहरलाल द्वारा उस भारको[1] उठानेका समय नहीं आया है। कांग्रेसमें हुल्लड़-बाजी और अव्यवस्थाकी जो प्रवृत्ति उभरती दिखाई दे रही है, उसे जवाहरलाल-जैसा महामना व्यक्ति बरदाश्त नहीं कर सकता, और उससे इस अव्यवस्थाके स्थान-पर आनन-फानन व्यवस्था स्थापित कर देनेकी अपेक्षा करना तो उसके साथ अन्याय करना होगा। लेकिन, मुझे पूरा विश्वास है कि यह अराजकता शीघ्र ही अपने-आप समाप्त हो जायेगी और तब हुल्लड़बाज लोग खुद ही किसी अनुशासनप्रिय व्यक्तिकी जरूरत महसूस करेंगे। जवाहरलालके आगे आनेका उपयुक्त समय वही होगा। फिल-हाल तो हमें इसके सूत्र-संचालनका काम अपने हाथोंमें लेनेका आग्रह डा० अन्सारीसे ही करना चाहिए। वे हुल्लड़बाजोंपर अंकुश तो नहीं रख सकेंगे। वे उन्हें अपने मनकी करने देंगे, लेकिन सम्भव है, वे हिन्दू-मुस्लिम सवालके बारेमें महारत हासिल करके उस सिलसिलेमें कुछ कर दिखायें। अगले वर्ष-भरके लिए तो उनके लिए इतना काम ही काफी होगा कि वे इस लगभग लाइलाज समस्याको हल करें।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी (एस० एन० १२८६७) की फोटो-नकलसे।

२७. पत्र : मथुरादासको

बंगलोर
ज्येष्ठ बदी ५ [२० जून, १९२७][2]

भाई मथुरादास,

तुम्हारा पत्र मिला। ब्रह्मचर्य-व्रतका तुम्हारा निश्चय अटल रहे तथा ईश्वर तुम्हें उसके पालनकी शक्ति प्रदान करे। क्या यह व्रत तुम दोनोंने एक-दूसरेकी स्वेच्छा-पूर्ण सहमतिसे लिया है? यदि ऐसा है तो इस व्रतके पालनमें आसानी होगी।

खादीका कार्य करते हुए तुम हार मत मानना; यह तो एक प्रकारकी तपस्या है। यदि सारी दुनिया झूठ बोलने लगे तो भी जिस प्रकार हम अपनी सत्यनिष्ठा, सत्यका पालन करना या उसका प्रचार करना छोड़ नहीं देते उसी प्रकार हमें

१. कांग्रेसके अध्यक्ष-पदको सँभालनेका भार।
२. सन् १९२७ में गांधीजी इस दिन बंगलोरमें थे।

वर्तमान युग और वर्तमान स्थितिमें खादीके सम्बन्धमें करना चाहिए। आजकल तुम वहाँ क्या कर रहे हो और किस प्रकार अपना कामकाज चला रहे हो?

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ३७६३) की फोटो-नकलसे।

२८. पत्र : मणिलाल और सुशीला गांधीको

बंगलोर
ज्येष्ठ वदी ५ [२० जून, १९२७]

चि० मणिलाल और सुशीला,

तुम्हारे पत्र मुझे नियमित रूपसे मिलते रहते हैं, जिससे मुझे बहुत प्रसन्नता होती है। इस नियमितताका कारण मेरे द्वारा बम्बईमें व्यक्त किया गया दुःख है या सुशीला-रूपी नई झाड़ू, इसका हल तो तुम्हीं दोनों खोज सकते हो। यदि इसका कारण दुःख हो तो उसे हमेशा याद रखना और यदि नई झाड़ू उसका कारण हो तो उसे कभी जीर्ण मत होने देना।

मेरा पत्र एक सप्ताह पिछड़ गया है किन्तु भविष्यमें मैं और भी सावधान रहूँगा। तुम्हारा नियमित रूपसे लिखते रहना मुझे सावधान रखेगा। जब बुजुर्ग लोग वृद्ध हो जायें तो युवक उन्हें सावधान रख सकते हैं। यह तो तुम जानते हो न कि यदि मछन्दरकी अपेक्षा गोरख तेजस्वी न होते तो मछन्दरका पतन हो जाता। यदि तुम इस बारेमें न जानते हो तो लिखना ताकि मैं अगले पत्रमें तुम्हें समझा सकूँ और इस प्रकार मुझे भी लिखनेके लिए एक अच्छा विषय मिल जायेगा।

यह जानकर मुझे बहुत सन्तोष हुआ कि सुशीलाका वजन बढ़ा है। क्या उसके कानका बहरापन कुछ कम हुआ? सुशीलाने कम्पोज़िंग सीखना शुरू कर दिया है, यह भी अच्छी बात है। वह प्रेस चलाने योग्य बन सकती है। १७-१८ वर्षकी लड़कीके लिए कोई नई चीज सीखनेमें समय ही कितना लगता है? घरेलू काम-काजका झंझट बहुत अधिक नहीं बढ़ना चाहिए। इसके लिए पहले जिस प्रकार खाने-पीनेमें सादगी बरतते थे यदि वैसे ही बरतते रहो तो काफी समय बच जायेगा। खाना एक ही समय बने और सो भी इतना सादा कि उसमें जुटे न रहना पड़े। मणिलाल यह सम्पूर्ण कला जानता है बशर्ते कि वह उसे भूल न गया हो। स्त्रियोंको सिर्फ रसोई बनानेके लिए ही नहीं सिरजा गया है। और जिस हदतक रसोई बनाना आवश्यक है उस हद-तक उसमें [पति-पत्नी] दोनोंको हाथ बँटाना चाहिए। और यदि दोनों सेवावृत्तिसे हाथ बँटायें तो वे आसानीसे समयकी बचत करनेवाले अनेक नुस्खे खोज सकते हैं।

यह सब-कुछ जो मैं लिखता रहता हूँ उसमें से जितना तुम पचा सको उतना ही करना और बाकी छोड़ देना।

मैं हर डाकसे पत्र लिखनेका प्रयत्न तो करूँगा ही किन्तु इतना याद रखना कि मैंने 'गीता'का जो अनुवाद तुम्हें दे रखा है वह भी मेरे पत्रोंमें ही गिना जाना चाहिए। यह अनुवाद तुम्हारे-जैसे लोगोंके लिए ही है और फिर अब तो वह और भी तेजीसे हो रहा है।

यदि उक्त अनुवादकी भाषा समझमें न आये अथवा अच्छी न लगे तो मुझे लिखना ताकि मैं और भी सावधानी रखूँ तथा यदि कोई अंश ऐसा रह गया हो जो तुम्हारी समझमें न आया हो तो उसे सुधार सकूँ। ऐसा करनेसे तुम्हें जितनी मदद मिलेगी उतनी ही मदद मुझे भी मिलेगी।

तुम्हारा 'गीता'का अध्ययन चल रहा है, यह जानकर मुझे प्रसन्नता हुई। तुमने अपनी तसवीर रामदासको भेजी है, यहाँ भेजी हो ऐसा नहीं जान पड़ता।

तुम चाहते हो कि तुम्हारा पत्र कोई और न पढ़े, यह तो ठीक है किन्तु पत्रमें गोपनीय तो कुछ नहीं होता। तुम्हारे बारेमें जाननेको सभी उत्सुक रहते हैं इसलिए यदि तुम चाहते हो कि तुम्हारा पत्र कोई और न पढ़े तो तुम्हें बीच-बीचमें छगनलालको ऐसा पत्र लिखना चाहिए जिसे सभी आश्रमवासी पढ़ सकें। तुम्हारी इच्छाका खयाल करके मैंने तो तुम्हारे पत्र किसीको दिखाये ही नहीं हैं।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्चः]

मेरी तबीयत ठीक है। यह पत्र तुम्हें मिलेगा तबतक तो मेरा दौरा फिर शुरू हो चुका होगा।

गुजराती (जी० एन० ४७२१) की फोटो-नकलसे।

२९. पत्र : लक्ष्मीकान्तको

बंगलोर
ज्येष्ठ कृष्ण ६ [२० जून, १९२७]

भाई लक्ष्मीकांतजी,

आपके दोनों पत्र मिल चुके हैं। पू० मालवीयजीके साथ बात करनेकी इच्छा थी इसीलिये अगले पत्रका उत्तर तुरन्त नहीं भेज सका। मुझको ऐसा प्रतीत होता है कि आपको जाहेर पत्र लिखना न चाहिये था। जाति-सुधारणाका प्रश्न बड़ा गभीर है और मुश्किल है। उसमें धीरजकी बड़ी आवश्यकता है। मालवीयजीको आपके प्रति कुछ द्वेष नहीं है। उनके साथ बात करनेके बाद मेरा तो निश्चय हो गया है कि आपकी और उनकी कार्य-प्रणालीमें भेद है। पू० मालवीयजी हिंदु जातिकी सुधारणा चाहते हैं, जातिके संकुचित नियमोंको उदार कराना भी चाहते हैं परन्तु एक

मनुष्यके कुछ नया कार्य करनेसे सुधारणा नही बन सकती ऐसा उनका विश्वास है। परन्तु अपनी पद्धतिके भी अनुकूल जो कुछ प्रयत्न हो सकता है वह वे कर रहे हैं। आपको कष्ट देनेका उनके दिलमें विचार तक भी नही आ सकता है।

अब मेरा अभिप्राय यह है। आपने जो कुछ किया वह योग्य था। हिन्दु जातिमें रहते हुए, किसीका द्वेष न करते हुए हिंदु धर्मसे पूर्ण प्रेम रखते हुए सुधारक अपना काम करते जाय और वह करते हुए जो कुछ भी कष्ट पड़े उसकी बरदाश्त करे। समाज व्यवहारके बाहर जाकर जो कार्य करता है वह समाजका शासनकी बरदाश्त करे और बरदाश्त करते हुए समाजके प्रति उदार भाव रखे। उसीका नाम सत्याग्रह है। समाजके कानूनोंका अनादर करना और पीछे उस अनादरका शासन भोगनेसे दुःख मानना वह सुधारकका कार्य नही है। मैंने सुना है कि आप यदि प्रायश्चित्त करें तो जातिमें दाखिल हो सकते हैं। मैं प्रायश्चित्त करनेका विरोधी हूं। प्रायश्चित्त उस चीजका हो सकता है जिसको हम बुरा मानें। आपने किया है वह बुरा काम नहीं है। इसलिये उसका प्रायश्चित्त अनावश्यक और अनुचित है। परंतु आप जाति-बहिष्कार सहन करनेके लिए तैयार न हो तो जो कुछ प्रायश्चित निश्चित हो वह करके आप जातिमें जा सकते हैं। आपने जो आपके जाहेर पत्रमें इस्लामका उल्लेख किया है और धमकी-सा है उससे मुझको दुःख हुआ। प्रत्येक मनुष्य अपने धर्मका पालन करता है। वह किसीके उपकारके लिए नहीं परन्तु वह धर्मको अपनी जीवन-डोरी समझता है और उसके बिना भी उसको असंभवित-सा प्रतीत होता है। भारत-वर्ष-भरके हिंदु आपका विरोध करें तो भी उसमें हिंदु धर्मकी अवज्ञाके लिये कोई स्थान नही है, यदि उस धर्मके सिद्धान्त आपके लिये मोक्षदायी हों तो।

एस० एन० १२६७४ की माइक्रोफिल्मसे।

३०. एक पत्र

[२१ जून, १९२७के पूर्व][1]

तुम्हारा पत्र मिला। ऐसा लगता है कि 'भागवत' आदि ग्रंथ भाँति-भाँतिके लोगोंकी आवश्यकताको पूरा करनेकी दृष्टिसे लिखे गये हैं। यह हो सकता है कि व्यभिचारी व्यक्ति उसमें अपनी व्यभिचार-लालसाको ही भड़कानेवाली बात खोजे। किन्तु जो व्यक्ति हर पन्नेमें भगवान्के दर्शनोंकी इच्छासे 'भागवत' पढ़ता है उसके मनमें यदि किसी प्रकारका विकार होता भी है तो वह शान्त हो जाता है। इसका सीधा-सा उपाय तो यह है कि यदि किसी पुस्तकको पढ़नेसे हमारे मनमें विकार उत्पन्न होता हो तो हमें उक्त पुस्तक पढ़ना छोड़ देना चाहिए। 'भागवत' कोई ऐतिहासिक ग्रंथ नहीं है और न उसमें ऐतिहासिक कृष्णका वर्णन है। कृष्ण तो वास्तवमें आत्मा है

१. साधन-सूत्रमें यह पत्र २१-६-१९२७के पहले ही दिया गया है।

तथा गोपियाँ हैं अनेक इन्द्रियाँ। आत्मसंयमी व्यक्ति इन इन्द्रिय-रूपी गोपियोंको जैसे चाहे वैसे नचाता है।

[गुजरातीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरी।
सौजन्य : नारायण देसाई

३१. पत्र : अब्बास तैयबजीको

कुमार पार्क, बंगलोर
२१ जून, १९२७

प्यारे भुर्रर[1],

देर आयद दुरुस्त आयद। आखिर आपका पत्र मिल ही गया। मेरी समझमें नहीं आता कि शादी-विवाहमें इतना समय और धन क्यों खर्च किया जाये, इतनी परेशानी किसलिए उठाई जाये और क्यों अपने बाल-बच्चोंके विवाहोंमें होनेवाली समयकी बर्बादी और परेशानीके कारण ७० वर्षके जवानको भी बूढ़ा दिखने लगना चाहिए? विवाहमें ऐसी क्या खास बात है कि माता-पिता और बच्चे फूले न समायें और खुशीसे लगभग पागल हो उठें? क्या यह जन्म, यौवन, जरा और मृत्यु-की ही तरह प्रतिदिन होनेवाली एक सामान्य बात नहीं है? ये सब तो जीवनसे सम्बन्धित आवश्यक परिवर्तन-मात्र हैं। लेकिन खैर, यह तो अवसर निकल जानेके बाद उपदेश बघारना है। अगर मुझे खुद अपनी शादीकी उम्मीद होती तो शायद कुछ और तरहसे लिखता। लेकिन अगर शादी करनेका मेरा इरादा होता भी तो ऐसे कोई पागल या समझदार माता-पिता तो दिखाई नहीं देते जो मेरे साथ अपनी लड़कीका विवाह कर दें। इसलिए मैं विवाहोंपर अपना समय और पैसा बर्बाद करनेवाले नौजवान और बूढ़े लोगोंको बेखटके उपदेश पिला सकता हूँ। फिर भी, मैं इस सारी फिजूलखर्चीको माफ कर सकता हूँ, लेकिन शर्त यह है कि अगर सुहेलाके पति उसकी आजादीपर बन्दिशें लगानेकी कोशिश करे तो वह उन्हें ठीक ढंगसे ठंडा कर दे और अपने आदर्श चरित्रके बलपर लखनऊ तथा उसके आसपासके इलाकोंमें प्रचलित पर्देकी सड़ी-गली प्रथाको खत्म कर दे। और हाँ, वह खादीका प्रचार करे, यह तो उससे मेरी न्यूनतम अपेक्षा है।

अब भी मैं स्वास्थ्य-लाभ करनेमें लगा हुआ हूँ और अभी अगले दो महीने-तक मेरे दक्षिण भारतसे लौटनेकी संभावना नहीं है। इसलिए अभी तो आपके पास आकर आपसे गले मिलने, आपकी सफेद दाढ़ीपर हाथ फेरने और आपके साथ तमाम

१. गांधीजी और तैयबजी इसी तरह एक-दूसरेका अभिवादन किया करते थे।

अहम व मामूली बातोंकी चर्चा करनेके लिए मुझे कुछ समयतक सब्र करना ही पड़ेगा। रेहानाको तो अब वह जिस तरह चाहे, उस तरहसे अपना विकास करने देना चाहिए।

सबको मेरा स्नेह-वन्दन।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजी (एस० एन० ९५५९) की फोटो-नकलसे।

३२. पत्र : देवेन्द्रनाथ मित्रको

कुमार पार्क, बंगलोर
२१ जून, १९२७

प्रिय भाई,

आपको खेती-बाड़ीके सम्बन्धमें सुझाव देनेकी बात तो मैं बिलकुल भूल ही गया था। इसके लिए क्षमा चाहता हूँ। मेरा विचार यह है कि जो भी सुधार करने हों, यदि वे दक्षिण आफ्रिकाके समान, किसानोंके खेतोंमें ही नहीं किये जाते और यदि गरीब किसान उनका लाभ नहीं उठा सकते तो फिर सफलताकी गति धीमी ही रहेगी। मेरे हालके अध्ययनसे मुझे यह बात अधिकाधिक आवश्यक लगती जा रही है कि राज्य लगभग सारे मवेशियोंका नियन्त्रण अपने हाथोंमें ले ले। मुझे लगता है कि अगर मवेशियोंकी समस्याको ठीक तरहसे हल नहीं किया जाता तो या तो हम धीरे-धीरे निष्ठुरतापूर्वक उन्हें समाप्त कर देंगे या फिर हम लोग ही समाप्त हो जायेंगे। जबतक स्थितिको भाग्यके भरोसे रहने दिया जायेगा तबतक तो मवेशी और हम हिन्दुस्तानके लोग दोनों इसी तरह तबाह होते रहेंगे। अनुपयोगी पशुओंके विनाशकी बातको मैं इस देशमें अव्यवहार्य और अपराधपूर्ण मानता हूँ। इसलिए हमें ऐसे पशुओंकी जिम्मेदारी अपने सिर लेकर उन्हें यथासम्भव अधिकसे-अधिक किफायतसे खिलाने-रखनेके उपाय ढूँढ़ने चाहिए और उनसे खाद तथा उनके मरनेके बाद उनके चमड़े और हड्डियों आदिके रूपमें जो-कुछ लाभ प्राप्त कर सकते हों, प्राप्त करना चाहिए। हमें अच्छी नस्लके साँड़ोंके संयोगसे ही बछड़े उत्पन्न होने देने चाहिए। इसलिए मेरे विचारसे आपके फार्ममें ठीक ढंगसे दुग्ध-व्यवसाय और चमड़ा शोधने आदिके कारोबारकी पूरी सुविधा होनी चाहिए और उपयोगमें न लाये जानेवाले तथा अनुपयोगी पशुओंके चारे और उनसे प्राप्त होनेवाली खादके तुलनात्मक मूल्यके सम्बन्धमें एकके-बाद-एक कई प्रयोग होने चाहिए। पता नहीं, पशु-समस्यापर 'यंग इंडिया' में प्रकाशित मेरी लेखमाला आपने पढ़ी है या नहीं। बेशक, इस सम्बन्धमें

मैं और भी बहुत-सी बातें बता सकता हूँ, लेकिन उनके लिए सरकार द्वारा कानून बनानेकी जरूरत है और इसलिए वे आपके क्षेत्र और वशसे बाहरकी हैं।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत देवेन्द्रनाथ मित्र
गवर्नमेंट एग्रिकल्चरल फार्म
फरीदपुर (पूर्वी बंगाल)

अंग्रेजी (एस० एन० १२९१७) की माइक्रोफिल्मसे।

३३. पत्र : लाजपतरायको

कुमार पार्क, बंगलोर
२१ जून, १९२७

प्रिय लालाजी,

पता नहीं, यह पत्र आपको मिलेगा या नहीं। न्यासके बारेमें तो मैंने सिर्फ, जैसा मुझे लगा, वैसा आपको लिख भेजा।[1] मैं जानता हूँ कि इस सम्बन्धमें आप जो उचित है वही करेंगे। इसलिए मुझे कोई स्पष्टीकरण देनेकी तो जरूरत ही नहीं है।

मुझे उम्मीद है कि आपके स्वास्थ्यमें उत्तरोत्तर सुधार हो रहा होगा, और आप अपने आसपास होनेवाली घटनाओंकी चिन्ता किये बिना पूरा विश्राम कर रहे होंगे। मैं तो चाहूँगा कि आप भी वैसा ही करें जैसा कि युद्धके दौरान एस्क्विथ-ने किया था। जब उन्होंने देखा कि उनका स्वास्थ्य बहुत ज्यादा बिगड़ता जा रहा है तब वे पन्द्रह दिनोंके लिए भूमध्यसागरकी सैरको निकल गये और उन्होंने दुनियासे अपने सारे सम्पर्क तोड़ लिये। हम ऐसी किसी सैरका आनन्द ले सकनेकी स्थितिमें भले ही न हों, लेकिन अपने आसपासके वातावरणसे असम्पृक्त रहकर अपने-आपमें तो खो जा सकते हैं।

हृदयसे आपका,

लाला लाजपतराय
नेशनल लिबरल क्लब
व्हाइटहॉल प्लेस
लन्दन एस० डब्ल्यू० १

अंग्रेजी (एस० एन० १४१६६) की फोटो-नकलसे।

1. देखिए खण्ड ३३ "पत्र: लाजपतरायको", १-५-१९२७।

३४. पत्र : विक्टर मोहन जोशीको

कुमार पार्क, बंगलोर
२१ जून, १९२७

प्रिय भाई,

छोटालालजी ने बताया है कि मैं अभीतक अल्मोड़ा नहीं गया हूँ, इससे आप दु:खी हैं। आप खादी-कार्यके बारेमें मुझे पर्याप्त प्रलोभन तो दीजिए फिर आप मुझे बंगलोरके बजाय अल्मोड़ामें ही स्वास्थ्य-लाभ करते देखेंगे। बहरहाल, वहाँ प्रभुदास तो है ही और उसकी जो भी सार-सँभाल की जायेगी वह ऐसे व्यक्तिकी सार-सँभाल होगी जो यदि जीवित रहा तो पूरी सम्भावना है कि राष्ट्रका सच्चा सेवक बनेगा।

हृदयसे आपका,

विक्टर मोहन जोशी
अल्मोड़ा

अंग्रेजी (एस० एन० १४१६७) की फोटो-नकलसे।

३५. पत्र : डा० विधानचन्द्र रायको

कुमार पार्क, बंगलोर
२१ जून, १९२७

प्रिय डा० विधान,

आपका पत्र मिला। मैं 'यंग इंडिया' के स्तम्भोंमें अपील[1] की चर्चा करूँगा। मैं तो कहूँगा कि आप घर-घर जाकर चन्दा इकट्ठा करें। सच मानिए, इसके अलावा और कोई रास्ता नहीं है। अगर मैं वहाँ आ सकूँ तो आपके साथ मैं भी इस तरह घर-घर चन्दा माँगने जाऊँ।

मैं आपको और बासन्ती देवीको यहाँ आनेका निमन्त्रण नहीं दे सकता, क्योंकि मैं अभीतक एक हदतक खाटपर ही पड़ा हुआ हूँ और इधर-उधर नहीं आता-जाता। डाक्टरोंको आशा है कि मैं जुलाईके महीनेमें थोड़ी-बहुत यात्रा कर सकूँगा। लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि अगर मैं आपको आमन्त्रित करूँ तो आपको लेकर जगह-जगह जाने लायक शक्ति मुझमें आ जायेगी। उसके लिए तो जब मैं बंगाल आऊँ तब आपको ही मुझे शक्ति देनी पड़ेगी। मगर जाने, वहाँ कभी आ भी पाता हूँ या नहीं।

१. देखिए "चित्तरंजन सेवा-सदन", ३०-६-१९२७।

वासन्तीदेवीका क्या हाल है? वे, मोना और बेबी मुझे टाल रही हैं।[1] उनसे कहिएगा कि किसी दिन मैं भी उनसे बदला लूँगा। कमसे-कम इस महीनेके अन्ततक मैं यहीं हूँ।

हृदयसे आपका,

डा० विधानचन्द्र राय
३६, वैलिंगटन स्ट्रीट
कलकत्ता

अंग्रेजी (एस० एन० १४१६८) की फोटो-नकलसे।

३६. पत्र : वालजी गो० देसाईको

कुमार पार्क, बंगलोर
ज्येष्ठ बदी ७ [२१ जून, १९२७][2]

भाईश्री वालजी,

अभी-अभी स्वामीका तार आया है कि जिस समय आप अपनी मातुश्रीके साथ घूम रहे थे, उसी बीच उनका देहान्त हो गया। ऐसी पवित्र मृत्युके लिए मैं तो बधाई ही दूँगा। ऐसी मृत्यु तो हम सबको माँगनी चाहिए। इस देहसे जब वे हमारे बीचमें थी तब उनकी उपस्थिति हमें बल प्रदान करती थी और यदि उसके जानेसे हमें दुःख होता है तो हमारा यह दुःख स्वार्थपूर्ण ही कहा जायेगा।

मोहनदासके वन्देमातरम्

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ७३९२) से।
सौजन्य : वालजीभाई देसाई

१. अभिप्राय पत्र न लिखनेसे है।
२. इस तारीखको गांधीजी बंगलोरमें थे।

३७. पत्र : आश्रमकी बहनोंको

मौनदिवस, ज्येष्ठ वदी [७, २१ जून, १९२७][१]

बहनो,

तुम्हारा पत्र मिला।

सूतकी चूड़ियोंकी मैंने तारीफ की, उसका यह अर्थ नहीं कि सब पहनने लगो। ऐसे परिवर्तन भीतरसे हों, तभी टिकते हैं और जबतक अन्तर तैयार न हो, तबतक मैं चाहता हूँ कि शर्मके मारे कोई कुछ न करे।

आजकल मैं रोज दुग्धालय देखने जाता हूँ। उसे देखकर कई तरहके विचार आया करते हैं। परन्तु उनमें से एक तो तुमको दे दूँ। जैसे तुमने भण्डारका काम लिया है, वैसे ही दुग्धालयका काम भी ले सकती हो। केवल हमारे अज्ञान और आलसके कारण रोज हजारों ढोरोंका नाश होता रहता है। मैं यह देख रहा हूँ कि यह काम भी ऐसा है कि जितनी आसानीसे इसे पुरुष कर सकते हैं, उतनी ही आसानीसे स्त्रियाँ भी कर सकती हैं। काठियावाड़की ग्वालिनें और उनके हाथी-जैसे बलवान शरीर भी मेरी नजरके सामने आ खड़े होते हैं। हम किसान, जुलाहे और भंगी तो हैं ही, ग्वाले बने बगैर भी काम न चलेगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ३६५४) की फोटो-नकलसे।

३८. पत्र : जयकृष्ण प्रभुदास भणसालीको

बंगलोर

ज्येष्ठ वदी ७ [२१ जून, १९२७][२]

भाईश्री भणसाली,

तुम्हारा पत्र मुझे बहुत अच्छा लगा क्योंकि उसमें तुमने अपना हृदय खोला है। मणिबहनने आज खबर दी है कि तुम्हारा सात-दिवसीय उपवास अच्छी तरह चल रहा है। सात दिनका उपवास तो तुम्हारे लिए खेल है इसलिए मैंने उसके सम्बन्धमें कोई चिन्ता की ही नहीं थी। लेकिन उपवासके कारणोंके सम्बन्धमें तुमने जो दलील दी है उसमें मुझे दोष दिखाई देता है। पहली बात तो यह है कि यदि किसी कामको

१. साधन-सूत्रमें ज्येष्ठ वदी ६ तिथि दी हुई है किन्तु उस वर्ष यह क्षय-तिथि थी। साधन-सूत्रमें २३-६-१९२७ तारीख भी दी हुई है किन्तु पत्रमें ही दी हुई हिन्दू तिथि ज्येष्ठ वदी ६ से इसका कोई मेल नहीं बैठता। सम्भवतः यह पत्रकी प्राप्ति की तारीख है।

२. भणसालीके सात-दिवसीय उपवासके उल्लेखसे।

करनेके बारेमें हमारे मनमें शंका हो तो उसे नही करना चाहिए और फिर यदि उसे शुरू करनेके बाद उसके विषयमें शंका उत्पन्न हो जाये तो उसे उसी क्षण बन्द कर देना चाहिए। यही सच्चा प्रायश्चित्त कहा जायेगा। ऐसा किये बिना यदि कोई दूसरा प्रायश्चित्त किया भी जाये तो वह निरर्थक है। यदि नये घरकी तुम्हारी माँग दोषपूर्ण हो तो उस दोषका निवारण उपवाससे नहीं हो सकता। यदि उसमें कोई दोष दिखाई न देता हो तो प्रायश्चित्त करनेकी जरूरत नही है। दोषके सम्बन्धमें तनिक भी शंका हो तब तो उसे उपवासके द्वारा ढकनेका प्रयत्न करना दूसरा दोष करनेके समान है। क्योंकि उपवास करके हम निश्चिंत हो जाते हैं। और अपने किये हुए किसी दोषके सम्बन्धमें इस तरह निश्चिन्त हो जाना धर्म नही है। उपवासादि प्रायश्चित्त एक प्रकारका दण्ड है और दण्ड तो केवल उसी वस्तुके लिए दिया जा सकता है जिसे हम सुधार ही न सकते हों। हम यदि किसीको गाली दें अथवा मारें तो इन्हे वापस नहीं लिया जा सकता। अतः इसके लिए हम उपवासादिका दण्ड भोगते हैं। दण्डसे आत्मशुद्धि भी होती है और वह हमें दुबारा भूल करनेसे रोकता है। लेकिन मान लो कि हमने किसीके पैसे चुराये और चुराते समय हमें ऐसा लगा कि उसमें कोई दोष नही है। बादमें हमारे मनमें शंका उत्पन्न हुई कि शायद हमने दोष किया है तो जिस क्षण मनमें ऐसा भय उत्पन्न हो उसी क्षण हमें वे पैसे उसके मालिकको पहुँचा देने चाहिए तथा इसके सिवा यदि इच्छा हो तो हमें उपवासादिका दण्ड भी भोगना चाहिए। पैसे वापस करना तो कर्ज चुकानेके समान है, उसमें दण्डकी बात नही है। यदि यह कहा जाये कि जबतक चोरीके अच्छे-बुरे होनेके बारेमें शका हो तबतक पैसे क्यों वापस किये जायें, तबतक हम उन्हें अपने पास ही रखेंगे और जब यह निश्चित हो जायेगा कि यह दोष ही है तब वापस दे देंगे, तो जगत्में अनेक पाप इसी तरहकी दलीलके कारण होते हैं, हुए हैं। नीति तो यह कहती है कि जहाँ-जहाँ शंका हो वहाँ-वहाँ उसका निर्णय हमें अपने स्वार्थके विरुद्ध करना चाहिए। लेकिन एक कदम आगे बढ़कर हम यह मान लें कि जबतक चोरी करनेके बारेमें मनमें शंका है तबतक पैसे वापस करनेके औचित्यके सम्बन्धमें भी शंका होगी। ऐसी परिस्थितिमें भी इस शंकाके निवारणका उपाय उपवास तो कदापि नही है। उलटे सत्यकी शोधमें यह उपवास बाधक सिद्ध हो सकता है।

यह तो मैंने तुम्हें नीतिका विश्लेषण करके दिखाया। तुम्हारे मामलेमें मुझे स्वयं कोई शंका नहीं है। जो एकान्तमें स्थित हो और जिसमें किंचित् ज्यादा जगह हो ऐसे घरकी माँग करनेका तुम्हें अधिकार था क्योंकि आश्रमवासी मानते हैं कि तुम्हारा आश्रममें रहना आश्रमके लिए उन्नतिकारक है। तुम जो प्रयोग करते रहते हो उनके लिए सबसे अच्छा स्थान आश्रम ही है और ऐसे प्रयोग आश्रमका अविभाज्य अंग हैं। इसलिए अपने इन प्रयोगोंकी दृष्टिसे तुम जिन सुविधाओंको आवश्यक मानो और उन्हें दूसरे लोग भी स्वीकार करें तथा आश्रमकी आर्थिक स्थिति उनका बोझ उठा सकती हो तो आश्रमको इन सुविधाओंकी व्यवस्था कर देनी चाहिए। और चूंकि स्थिति ऐसी थी अतः तुम्हारे लिए मकान तैयार किया भी गया है। इसके सिवा,

भविष्यमें तुम्हें अपने इस कार्यमें यदि कोई दोष दिखाई दे तो तुम किसी दूसरे छोटे मकानके खाली होनेपर उसमें जा सकते हो। मतलब यह कि उस परिस्थितिमें भी हमें डरका कोई कारण नहीं है। और फिर, यदि लीलावहन इस जीवनकी अभ्यस्त हो जाये और उन्हें गरीवी सध जाये, तुम स्वयं इतने अलिप्त हो जाओ कि आसपासका वातावरण तुम्हें तनिक भी विचलित न कर सके तो तुम स्वयं ही इस मकानको छोड़कर दूसरेकी माँग करोगे। और अगर मैं यह देखूँगा कि तुम्हारे अथवा लीलावहनके जीवनमें शिथिलता आ रही है तो बुजुर्ग और अभिभावक के नाते मैं तुमसे यह-सब कहनेमें संकोच नही करूँगा। क्योंकि यदि मैं इसमें संकोच करूँगा तो स्वयं धर्मभ्रष्ट हो जाऊँगा। इस तरह तुम हर प्रकारसे सुरक्षित हो। मैं तुम्हारे पहले पत्रके उत्तरमें ही यह-सब लिख सकता था; मुझे यह सूझा भी था। लेकिन ऐसा करके तुम्हारे उपवासको इस तरह एकाएक रोकनेकी वात मुझे जँची नही। यह भी भय था कि उपवाससे पहले ऐसी दलील देनेसे तुम्हें आघात पहुँचेगा। इसीसे मैंने इसे मुल्तवी रखा। अव तुम ऐसी स्थितिमें हो कि मेरी दलीलको तटस्थ भावसे देख-परख सकते हो और स्वीकार कर सकते हो क्योंकि उपवास-रूपी वाधा अव दूर हो गई है। यह दलील सकारण है। यदि उपवास कर चुकनेके कारण तुम भ्रान्तिवश ऐसा खयाल करो कि नया मकान वनानेके औचित्यके सम्वन्धमें अव शंका करनेकी कोई जरूरत नहीं है तो यह ठीक नहीं। सच तो यह है कि हमें अपने प्रत्येक भोगके वारेमें शंकित रहना चाहिए, यही धर्म है; निश्शंक होना मूर्च्छाका लक्षण है। यदि हम भोगके सम्वन्धमें शंकित न रहें तो सम्पूर्ण त्याग करनेमें कभी समर्थ नहीं हो सकते। इसलिए मैंने तुम्हें चेतावनी दी है। तुम्हारे पत्रके अन्य अंशोंके वारेमें भी मुझे लिखना है लेकिन फिलहाल इतना ही पर्याप्त है। और फिर जव मुझे समय मिलेगा तव दूसरे अंशोंके सम्वन्धमें चर्चा करूँगा। मेरा ख्याल है उसके वारेमें कोई जल्दी तो है नही। मुझे तुम जो-कुछ लिखना चाहो सो निस्संकोच लिखना।

मो० क० गांधी

गुजराती (एस० एन० १२१९४) की फोटो-नकलसे।

३९. पत्र : सातवलेकरको

२१ जून, १९२७

शारीरिक बल इत्यादि संग्रह और वर्धनके लिए ब्रह्मचर्य अनिवार्य वस्तु नहीं है, ऐसा सार्वजनिक अनुभव है। इस कारण ब्रह्मचर्यके साथ शरीर-बलका घनिष्ठ सम्बन्ध बतानेमें ब्रह्मचर्यकी महिमा भूल जानेका भय रहता है। आसुर देशोंसे हम नीचे गये हैं। इसका कारण हमारी अतोभ्रष्ट ततोभ्रष्ट स्थिति है। सब आसुर प्रथाको हम स्थान देनेसे डरते हैं। दैवीको आचारमें लानेका बल नहीं है – आसुरीको आचार में लानेसे डरते हैं। इसी कारण आज देशमें आसुरी सम्प्रदाय चलानेकी कोशिश हो रही है ऐसा मैं तो हर जगह देख रहा हूँ। परन्तु वह सम्प्रदाय किसी तरहसे चल ही नहीं सकता। जनता उसको हजम नहीं कर सकती। और दैवी सम्प्रदायमें आचारकी शिथिलता होनेसे जनता ऐसीकी वैसी ही रह जाती है। इसी कारण मेरा तो यह प्रयत्न है कि हम जो दैवी मतका अवलम्बन करते हैं वे आचार शुद्ध बनें और किसी तरहसे आसुरका अनुकरण से बच जायें।

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य . नारायण देसाई

४०. पत्र : देवी वेस्टको

कुमार पार्क, बंगलोर
२२ जून, १९२७

प्रिय देवी,

तुम्हारा पत्र मिला। मेरा स्वास्थ्य सुधर रहा है, हालाँकि मैं अब भी कमजोर हूँ और एक ठण्डे स्थानमें स्वास्थ्य-लाभ कर रहा हूँ।

हाँ, मणिलाल अभीतक फीनिक्समें है और वह 'इंडियन ओपिनियन' की देख-भाल कर रहा है। अब उसकी पत्नी[1] उसके काममें हाथ बँटा रही है। मणिलालने लिखा है कि उसने कम्पोजिटरका काम सीख लिया है। वह बड़ी अच्छी लड़की है और यदि तुम उससे मिल पाती तो वह तुम्हें अवश्य पसन्द आती। मणिलाल उसको बहुत मानता है और दोनों बहुत ही सुखी जान पड़ते हैं। मणिलालके पास अब सब नये आदमी हैं।

हाँ, मीराबाई अब भी मेरे साथ है। इस समय तो वह मेरे पास बंगलोर ही आ गई है। वह कुछ-एक दिन यहाँ मेरे साथ रहनेको आई है। बादमें वह अपनी हिन्दी दुरुस्त करनेके लिए आश्रमकी एक शाखामें चली जायेगी।

१. सुशीला गांधी।

तुम वहाँ अपना समय कैसे बिताती हो? देवदास मेरे साथ है और रामदास अपने कामपर एक खादी-कार्यालयमें है।

मुझे दुःख है कि तुम 'यंग इंडिया' नहीं देख पाती। अब मैं व्यवस्थापकसे कह रहा हूँ कि वे *तुम्हारा नाम* निःशुल्क सदस्योंकी सूचीमें लिख दें। क्या तुम्हें 'इंडियन ओपिनियन' नहीं मिलता? अगर नहीं तो तुम्हें बिना किसी हिचकिचाहटके मणिलालको उसके लिए लिखना चाहिए। लेकिन अगर तुम्हें खुद लिखना पसन्द न हो तो मुझे बताओ। फिर मैं ही लिख दूंगा। तुम्हें 'इंडियन ओपिनियन' और 'यंग इंडिया' दोनों ही की प्रतियाँ मिलनी चाहिए थी। 'यंग इंडिया' के बारेमें तो मुझे खुद ही खबर रखनी चाहिए थी; लेकिन मैं यह माने हुए था कि तुम्हें यह पत्र मिल ही रहा होगा।

सस्नेह,

तुम्हारा,
भाई

कुमारी देवी वेस्ट
२२, जॉर्ज स्ट्रीट
लाऊथ
लिंकनशायर (इंग्लैंड)

अंग्रेजी (एस० एन० १२५०६) की फोटो-नकलसे।

४१. पत्र : एच० हारकोर्टको

कुमार पार्क, बंगलोर
२२ जून, १९२७

प्रिय मित्र,

अपने पिछले पत्रमें[1] मैंने आपको लिखा था कि आपने अपनी पुस्तककी[2] जो प्रति मेरे पास भेजनेकी कृपा की थी, उसे मैं मँगवा लूंगा। मैंने पुस्तक मँगवा ली है। और चूँकि आजकल बीमारीसे अच्छा होनेके बाद स्वास्थ्य-लाभके खयालसे मैं आराम कर रहा हूँ, इसलिए मेरे पास काफी अवकाश रहता है। सो मैं पुस्तकको आद्योपान्त पढ़ भी गया हूँ। मैंने पुस्तक बड़ी रुचिसे पढ़ी। आपने हास्यके जो पुट दिये हैं, वे मुझे बहुत अच्छे लगे — खासकर वह स्थल जहाँ प्रतिवादी अपने बयानमें कहता है कि वादीने

१. देखिए खण्ड ३३ पृष्ठ ४३८-३९।

२. एच० हारकोर्ट और छोटूराम द्वारा लिखित *साइडलाइट्स ऑन द क्राइसिस इन इंडिया*; एच० हारकोर्ट भारतीय सिविल सर्विसके सदस्य और गुरुदासपुरके डिप्टी कमिश्नर थे तथा छोटूराम पंजाब सरकारमें कृषि-मन्त्री थे।

अपनी नाकसे उसके मुक्केको चोट पहुँचाई। वह परिहास मुझे इसलिए ठीक-ठीक याद है कि उसमें आपने अनजाने ही मेरे सिद्धान्तको साररूपमें प्रकट किया है। सचमुच अपनी नाकको मैंने बहुतोंके मुक्कोके आगे किया, लेकिन अबतक उससे मुझे कोई नुकसान नही हुआ है। अपने अनुभवसे मैंने यह जाना है कि जब कोई व्यक्ति बजाय इसके कि अपनी नाकको चुपचाप मुक्का चलानेवालेके सामने कर दे, उसके मुक्केको पकड़कर उससे बचनेकी कोशिश करता है तभी वास्तवमें उसे सबसे ज्यादा चोट पहुँचती है। मगर यहाँ तो मुझे आपको अपना जीवन-दर्शन — जिस तरीकेको लेकर मै चल रहा हूँ उसे अगर यह श्रेष्ठ संज्ञा दी जा सकती हो तो — समझानेकी कोशिश नही ही करनी चाहिए।

मगर मै दो शब्द, आप मेरे विषयमें जो-कुछ सोचते है, उसके सम्बन्धमें कहना चाहूँगा। आप सच मानिए कि मैंने वास्तवमें अपने-आपको आपके दर्पणमें देखनेकी कोशिश की। मगर मै तो उसमें अपने-आपको पहचान ही न सका। आपने मेरा जो चित्र खींचा है, उसपर मुझे कोई आश्चर्य नही होता। मुझे आशा तो यही है कि मैं अपने बारेमें बढ़ा-बढ़ाकर नही सोचता। लेकिन, न चाहते हुए भी मुझे इस बातके लिए दुःख प्रकट करना ही पड़ेगा कि आपके-जैसा शुद्ध-हृदय व्यक्ति भी इस शुद्ध आन्दोलनका अध्ययन कुछ और अधिक ध्यानसे नहीं कर सका। स्पष्ट है कि आपको वैसा करना जरूरी ही नहीं लगा। किन्तु वास्तविकता यह है कि इस आन्दोलनने चाहे जैसे हो, ऐसे हजारों-हजार स्त्रियों और पुरुषोंका मन अपनी ओर आकृष्ट किया जिनपर अभीतक किसी आन्दोलनका कोई असर नही हुआ था। अब तो बहुतसे अंग्रेज भाई भी ऐसा समझने लग गये है कि मेरा आन्दोलन दो ऐसे पक्षोंके बीच, जिनमेंसे एक अपने-आपको दूसरेसे बड़ा मानता है, सही और लाचारीके सहयोगके स्थानपर असहयोगके द्वारा दो समान पक्षोंके बीच सच्चा और हार्दिक सहयोग स्थापित करनेका निश्छल प्रयास था।

मै आपके पत्रकी[1] प्रतीक्षा करूँगा, उसमें आप लिख भेजें कि आपकी चुनौती क्या थी। अगर मुझे लगा कि चुनौती ऐसी है जिसे अब भी स्वीकार किया जा सकता है और मुझमें उसे स्वीकार करनेकी उतनी ही क्षमता भी है, तो आप भरोसा रखिए कि मै उसे अवश्य स्वीकार करूँगा।

हृदयसे आपका,

श्री एच० हारकोर्ट
११९, जिप्सी हिल
लन्दन, एस० ई० १९

अंग्रेजी (एस० एन० १२५२३) की फोटो-नकलसे।

१. अपने १२ जुलाईके पत्रमें हारकोर्टने लिखा कि मैंने जिस चुनौती की बात कही थी वह मेरी नहीं आपकी हो थी और मेरे देशवासियोंको दी गई थी। मैंने उसका उत्तर देनेकी कोशिश की थी किन्तु अब मेरे पास उसकी कोई प्रति नहीं है। (एस० एन० १२५३१)।

४२. पत्र : गो० कृ० देवधरको

कुमार पार्क, बंगलोर
२२ जून, १९२७

प्रिय देवधर,

पत्रके लिए धन्यवाद। आपके चुनावकी खबर तो मैंने अखबारोंमें पढ़ ही ली थी। आपका चुना जाना तय ही था। इसलिए मैंने आपको बधाई नहीं भेजी। और यद्यपि दूसरोंकी दृष्टिमें यह आपको दिया गया एक सम्मान है, किन्तु मैं तो आपकी ही तरह भलीभाँति जानता हूँ कि आपके लिए इसका मतलब और अधिक जिम्मेदारी और बड़ा सेवाका अवसर है। आपने मुझे इस संस्थाका मित्र और सहायक कहा है। मगर मैं तो अपनेको इससे भी बहुत ज्यादा मानता हूँ। मैंने तो अपने-आपको बराबर इस संस्थाका सदस्य ही माना है यद्यपि औपचारिक रूपसे मैं इसका सदस्य नहीं हूँ और न इसके कार्यकलापमें कोई सक्रिय हिस्सा ही लेता हूँ। किन्तु इस कारण मुझे अपने-आपको इसका सदस्य माननेमें तनिक भी परेशानी नहीं होती। मैं इससे अलग रहकर ही इसकी सेवा कर सकता हूँ। जब किसी बड़े परिवारका कोई सदस्य हृदयसे परिवारके साथ होते हुए भी उसके व्यवहारसे सहमत नहीं हो पाता तो वह सक्रिय सेवा कर सकनेकी दृष्टिसे बराबर यही कामना करता है कि ईश्वर उसके मनको भी वहीं लगाये जहाँ उसका हृदय बसता है; और फिर उसका उक्त परिवारके काममें कोई हस्तक्षेप न करना ही उसकी सेवा करना हो जाता है। कहा है न कि जो धैर्यके साथ प्रतीक्षा और प्रार्थना करता है, वह भी सेवा ही करता है? इसलिए मेरी इन मर्यादाओंको देखते हुए जब कभी आपको लगे कि मैं कोई उपयोगी सेवा कर सकता हूँ, तब आपको मुझसे सेवा लेनेका अधिकार है।

मेरी समझमें अगस्तके अन्तिम दिनोंसे पहले मैं साबरमती नहीं पहुँच सकूँगा। कारण, यहाँके डाक्टरोंका कहना है कि अगले महीनेसे मैं थोड़ी-बहुत यात्रा करने लायक हो जाऊँगा, और अगर ऐसा हुआ तो मैं दक्षिण भारतकी यात्राका कार्यक्रम जहाँतक बन पड़े पूरा कर लेना चाहूँगा। इसे राजगोपालाचारी और गंगाधरराव देशपांडेने तैयार किया है और इसको लेकर उन्हें काफी परेशानी भी रही। अगर मैं यह मान लूँ कि आपका स्थायी निवास पूना ही है तो आपके लिए बंगलोर आ सकना साबरमती जानेसे ज्यादा आसान नहीं तो उतना आसान तो है ही। मैं लगभग १० जुलाईतक तो यहीं हूँ। इसलिए अगर आप यहाँ आनेकी स्थितिमें हों और आना चाहें तो आ सकते हैं। श्रीमती देवधरसे तो मुझे बराबर शिकायत रहेगी ही, क्योंकि उन्होंने मुझसे

साबरमती आकर वहाँ कुछ दिन रहनेका वादा किया है, लेकिन इस वादे को वे आजतक पूरा नही कर पायी है।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

श्रीयुत गो० कृ० देवधर
सर्वेन्ट्स ऑफ इंडिया सोसाइटी
पूना

अंग्रेजी (एस० एन० १४१६९) की फोटो-नकलसे।

४३. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

कुमार पार्क, बंगलोर
२२ जून, १९२७

जिनेवासे लिखा आपका पत्र मिला। आशा है मेरे पिछले सारे पत्र, जिनमें से अन्तिम अंग्रेजीमें था, मिल गये होंगे। देखता हूँ, अपने स्वभावके अनुसार आप वहाँ हर बातको बहुत ध्यानसे देख-परख रहे हैं। लेकिन मुझे उम्मीद है, हमारे कुछ लोगोंने जैसा किया है, उस तरह आप जल्दबाजीमें कोई निष्कर्ष नहीं निकालेंगे। बाहरसे आकर्षक दीखनेवाली सभी चीजें वास्तवमें अच्छी ही नही होती। इससे उलटी बात भी उतनी ही ठीक है। अर्थात् जो चीजें बाहरसे कुरूप दीखती हैं वे सबकी-सब वास्तवमें बुरी ही नही होती। और फिर क्या अनेक प्रसंगोंमें हमें ये दोनों – समृद्धि और गरीबी, अच्छाई और बुराई, जैकिल और हाइड[1], देवता और राक्षस – साथ-साथ देखनेको नही मिलते? आपने सुरा और सुन्दरीके प्रति लोगोंके मोहके साथ शारीरिक शक्ति, व्यवस्था, सर्वसामान्य प्रामाणिकता और ज्वलन्त देश-भक्तिके जिस संयोगका वर्णन किया है, उससे इनकार नही किया जा सकता, फिर भी सच तो यही जान पड़ता है कि एक गुण सभी अन्य गुणोंका सहज कारण नही बन पाता। और फिर गुण-विशेष जब परम्पराका रूप ले लेता है तब वह वास्तवमें गुण नहीं रह जाता। हमारे लिए शाकाहार कोई गुण नही है। हम लोग परम्परासे ही शाकाहारी हैं। इसलिए हम शाकाहारी लोगोंमें से अधिकांशके लिए मांसाहारी बनना ही त्याग और कष्टकी बात हो सकती है। लेकिन यूरोपके लिए शाकाहार एक गुण होगा। शाकाहारी बन जाना किसी भी यूरोपीयके जीवनके लिए एक सक्रिय शक्ति सिद्ध होगा, और अगर वह सत्यान्वेषी है तो वही एक सुधार उसके जीवनमें अनेक सुधारोंका मार्ग प्रशस्त कर देगा। भारतकी यात्रा करनेवाले यूरोपीयोंने हमारे सुखी पारिवारिक जीवन और पारिवारिक स्नेह-सौहार्दकी प्रशंसा की है। यह गुण तो हमारे अस्तित्वका अंग है। पिता अपने

१. आर० एल० स्टीवेनसनके इसी नामके उपन्यासका एक पात्र जो अचेत अवस्थामें दोहरा जीवन जीता था।

बच्चोंको प्यार करता है और बच्चे किसी भी ओरसे बिना किसी खास प्रयत्नके खुशी-खुशी अपने माता-पिताकी आज्ञाका पालन करते हैं। यूरोपके लोगोंने अनुभवसे यह जाना है कि उनके लिए परिवारके सिद्धान्तका विस्तार करके जिस समाजके वे हैं उसे एक राष्ट्र मानना जरूरी है। इसलिए वहाँ देश-भक्ति कोई संवर्धनीय गुण नहीं बच रहा है। यूरोपमें अगर किसीमें इस भावनाकी कमी पाई जाये तो यह विचित्र बात मानी जायेगी और उसका नतीजा जैसा वहाँ प्रचलित है, उस ढंगका सामाजिक बहिष्कार होगा। उन्होंने इस सिद्धान्तको भी समझ लिया है कि ईमानदारी सबसे अच्छी नीति है, और इसलिए वहाँ आपको एक सीमातक तो यह गुण प्रचुर परिमाणमें देखनेको मिलेगा। लेकिन, हमें अभी देशभक्तिके गुणको अपने भीतर विकसित करना है; हम लोग व्यवहारतः एक राष्ट्रके रूपमें पारिवारिक स्नेह-सौहार्दसे आगे नहीं बढ़ पाये हैं। लेकिन, इस विषयपर मैं और अधिक नहीं कहूँगा, क्योंकि मुझे अभी एक पूर्व-निर्धारित कार्य करना है, और इस पत्रको पूरा करते ही मुझे उसमें लग जाना है।

अगर आप 'यंग इंडिया' के लिए चन्दा देनेवाले ५०० ग्राहक तैयार कर सकें, तो मुझे आश्चर्य और सुख होगा। यह इस बातका एक और प्रमाण होगा कि 'यंग इंडिया' जिस चीजको लेकर चल रहा है, उसमें यूरोपीयोंकी दिलचस्पी है।

मेरा स्वास्थ्य धीरे-धीरे बराबर सुधरता जा रहा है। और डाक्टरोंका विचार है कि अगले महीनेके प्रारम्भतक मुझे थोड़ी-बहुत यात्राके लायक हो जाना चाहिए।

हृदयसे आपका,

घनश्यामदास बिड़ला
मार्फत/टॉमस कुक ऐंड सन्स
लुडगेट हिल, लन्दन

अंग्रेजी (एस० एन० १४१७०) की फोटो-नकलसे।

४४. लंकाशायर गुट

चुंगी निकाय (टैरिफ बोर्ड) की रिपोर्टके प्रकाशनमें होनेवाला असाधारण विलम्ब इस बातका लगभग निश्चित संकेत था कि यहाँके भारी मिल-उद्योगको और भी संरक्षण देनेकी कोई सिफारिश स्वीकार नहीं की गई है। सरकार जापानके हितके विरुद्ध और लंकाशायरके हितमें कोई कदम उठाकर जापानको रुष्ट नहीं करना चाहेगी। और वह लंकाशायरके विरुद्ध कोई संरक्षणात्मक कर लगाकर उसे भी नाराज करनेकी हिम्मत नहीं कर सकती। कारण, तत्वतः लंकाशायर ही सरकार है; और भारतीय उद्योगको लंकाशायरके खिलाफ कोई प्रभावकारी संरक्षण देना लगभग आत्म-घातके समान होगा।

लंकाशायर तथा दूसरे विदेशी स्पर्द्धियोंके खिलाफ यहाँके मिल-उद्योगको संरक्षण देनेका सवाल भारतके लिए उसी प्रकार जीवन-मरणका सवाल है, जिस प्रकार कि

लंकाशायर वाले उसे लंकाशायरके लिए मानते है। आयात-सूचीपर जरा एक नजर डालिए तो आपको इस बातकी सचाईका पूरा एहसास हो जायेगा। लंकाशायरसे होनेवाले आयातकी अन्य स्थानोसे होनेवाले आयातसे कोई तुलना ही नही की जा सकती। ब्रिटिश साम्राज्यसे कुल मिलाकर जितना आयात होता है, उसका लगभग आधा सिर्फ लंकाशायरसे होता है। लंकाशायरका उत्कर्ष भारतके सबसे बड़े कुटीर-उद्योगको धूलमें मिलाकर हुआ है और वह टिका हुआ है भारतके करोड़ों असहाय मानवोके शोषण के बलपर। देशी मिल-उद्योगको तो वास्तवमें ऐसा माना जाता है मानो इस क्षेत्रमें अनधिकृत तौरपर घुसा हुआ व्यापारी है और अगर इसे लंकाशायरके हकमें सभ्य तरीकेसे कुचलना सम्भव हो तो कोई भी बहाना बनाये बिना इसे कुचल दिया जाये। लंकाशायरके जबर्दस्त स्वार्थके आगे किसी प्रकारकी नैतिकता को कोई महत्त्व नही दिया जाता। इस उद्योगका अस्तित्व लंकाशायर और भारत दोनोके लिए हानिकर है। इसने भारतको दरिद्र बनाकर रख छोड़ा है तथा भारतकी दरिद्रता लंकाशायरके नैतिक दिवालियेपनकी निशानी है।

भारतके मिल-मालिकोंके सामने यह एक ऐसी बाधा है जिसका पार पाना लगभग अशक्य है। और इसके विरुद्ध खड़े होकर उन्हें अपना प्राप्य तबतक नही मिल सकता जबतक कि वे साहसपूर्वक जनताके हितको अपना हित मानकर और इस तरह उसके साथ मिलकर सरकारको संरक्षण देनेपर विवश नही कर देते। देशको यह संरक्षण प्राप्त करनेका अधिकार है। अगर किसी देशको यह तय करनेका अधिकार है कि उसकी सीमाओंमें कौन लोग रहेंगे और किन लोगोको उसके अस्तित्वके लिए हानि-कर होनेके कारण निकाल देना चाहिए तो यह तय करनेका तो उसे और भी अधिक अधिकार है कि विदेशोंसे कौन-सी वस्तुएँ उसकी सीमामें आने दी जायें; और उसकी आबादीके लिए वे कौनसी हानिकर वस्तुएँ है जिनका आयात रोक दिया जाये।

इस बातमें किसी प्रकारका सन्देह नही हो सकता कि बाहरसे आयात की जानेवाली वस्तुओंमें कपड़ेका आयात सबसे हानिकर है। मिल-उद्योग भले ही कुछ समय-तक फूले-फले, तरह-तरह की पैंतरेबाजियो या अनुकूल घटना-चक्रके कारण इसमें कुछ समयके लिए समृद्धि और उत्कर्ष भी दिखाई दे सकता है; लेकिन जबतक यह तमाम विदेशी कपड़ेके खिलाफ प्रभावकारी संरक्षण प्राप्त नही कर लेता तबतक देर-सबेर इसका विनाश निश्चित है और यह भी तय है कि लोग जितना सोचते है, उससे बहुत पहले ही यह स्थिति आयेगी। किसी-न-किसी दिन जनसाधारणमें सच्ची और स्थायी जागृति आयेगी। हो सकता है, वह जागृति पागलपनसे भरी और अनुशासनहीन हो, लेकिन यह पागलपन भी सुसंगठित और सुनियोजित होगा। या कि (जैसी मुझे उम्मीद है) हो सकता है, वह अनुशासित और अहिंसात्मक ढंगसे सुसंगठित हो। जिस दिन वह जागृति आयेगी, उस दिन देशी मिल-उद्योग, अगर जनता उसे अपना नहीं मान पाती है तो वह उसी आग की लपटोंमें पड़कर स्वाहा हो जायेगा जिसका ग्रास विदेशी कपड़ोको होना ही है। इसलिए यही वह उपयुक्त समय है जब मिल-मालिक खादीके हितमें अपना हित देखने लगें और उसके पक्षमें खड़े होकर उसे संरक्षण

देनेके लिए अनिच्छुक सरकारको संरक्षण देनेपर विवश कर दें। अगर दोनोंके क्षेत्र निर्धारित कर दिये जायें और दोनों एक-दूसरेके क्षेत्रमें किसी प्रकारका हस्तक्षेप न करें तो अभी वर्षोंतक दोनोंके साथ-साथ फूलने-फलनेकी गुंजाइश है। और तब वे सरकारकी उदासीनता बल्कि छिपे विरोधके बावजूद फूल-फल सकेंगे। लेकिन इसकी प्रारम्भिक शर्त यह है कि मिल-मालिक बुद्धिमानीपूर्वक कुछ त्याग करें, उनमें आपसमें एक जीवन्त और प्रबल सहयोग-संगठन और अपने कार्यक्रमको पूरा करनेका फौलादी संकल्प हो।

ऐसी अफवाह थी कि सरकारके निर्णयके उत्तरमें मिल-मजदूरोंकी मजदूरीमें कुछ कटौती करनेकी बात सोची जा रही है, लेकिन यह देखकर मुझे बड़ी खुशी हुई कि इस अफवाहका अधिकृत तौरपर खण्डन किया गया है। मजदूरीमें कटौती करना आत्मघात साबित होता। इस समय जरूरत श्रमिकोंको रुष्ट करनेकी नहीं, बल्कि उनके हितको अपना हित समझकर उनके साथ मिलकर और उन्हें साझेदारों और एजेंटों-के ही समान मिलोंके मालिक मानकर चलनेकी है। अगर साझेदार पूँजी लगाते हैं तो श्रमिक भी अपना श्रम लगाकर उस पूँजीको वस्त्रका रूप देते हैं इसलिए मिल-मालिकों, मिल-मजदूरों और जनताका संगठन एक ऐसा दुर्निवार संगठन होगा जिसकी उपेक्षा करनेकी हिम्मत सरकार कभी नहीं करेगी। क्या मिल-मालिक इस कार्यके लिए जैसी पर्याप्त दूरदर्शिता, साहस और देशभक्ति अपेक्षित है उसका परिचय देंगे? रुपयेका मूल्य बढ़ाकर १ शिलिंग, ६ पेंस कर देनेके बारेमें ऐसा मत प्रकट किया गया था (और वह बहुत हदतक सही था) कि यह इस भारी उद्योगपर किया गया एक प्रहार और लंकाशायरको दिया गया एक उपहार है। चुंगी निकायका फैसला इस उद्योगपर किया गया ऐसा ही एक दूसरा प्रहार है और इसीलिए वह लंकाशायरको दिया गया दूसरा उपहार है। अब मेरे मनमें जो सवाल उठ रहा है वह यह कि इस अन्तिम प्रहारसे मिल-मालिक उचित कार्रवाई करनेके लिए प्रेरित होंगे अथवा नहीं। सिर्फ प्रार्थनापत्र देने या विधान-सभामें प्रस्ताव पास करनेसे कुछ भी नहीं बनेगा। इस सबकी सफलताके लिए इसके पीछे सार्वजनिक कार्रवाईका बल मिलना आवश्यक है; और मेरी तुच्छ सम्मतिमें, मैंने इस सन्दर्भमें जो सार्वजनिक कार्रवाई सुझानेकी धृष्टता की है, उससे नरम किसी भी कार्रवाईकी बात सोचना सम्भव नहीं है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २३-६-१९२७

४५. टिप्पणियाँ

आगामी दौरा

आजकल डॉ० सुब्बाराव और डॉ० कृष्णस्वामी कृपापूर्वक मेरी देख-भाल कर रहे हैं। उनका कहना है कि अगर इस महीनेके अन्ततक मेरा स्वास्थ्य, जैसी कि उम्मीद है, उसी रफ्तारसे सुधरता रहा तो इस बातका खयाल रखते हुए कि अधिक श्रम न पड़े मैं थोड़ा-बहुत दौरा फिरसे आरम्भ कर सकूँगा। इस सम्भावनाको देखते हुए मैं कार्यकर्त्ताओं तथा अन्य सम्बन्धित लोगोंसे इस बातका ध्यान रखनेका अनुरोध करूँगा कि अभी मैं उतना दबाव बरदाश्त नहीं कर सकूँगा जितना कि मुझे मार्च महीनेके अन्ततक बरदाश्त कर सकने लायक समझा जाता था। अतएव मेरे कहीं जानेपर जो जुलूस निकलते हैं और जैसा शोर-गुल होता है, वह सब बन्द रखना चाहिए और लोगोंको बार-बार आगाह कर देना चाहिए कि वे मेरे आस-पास भीड़ लगाकर खड़े न हों और जयजयकार करने तथा मेरे पैर छूने आदिसे बाज आयें। इसी तरह मुझे जहाँ-जहाँ ले जाया जाये, वहाँ-वहाँ मुझसे संस्थाओंको देखनेके लिए जानेकी अपेक्षा न की जाये। एक सभा और कार्यकर्त्ताओंसे अनौपचारिक बातचीत – एक दिनमें मुझसे लगभग इतना ही हो सकेगा। क्या-क्या नहीं करना चाहिए, यह समझानेके लिए मैं चिकबल्लापुरका उदाहरण दूँगा; यद्यपि मैं जानता हूँ कि ऐसा करना अनुदारता की निशानी होगी। चिकबल्लापुरके लोग व्यक्तिशः मेरे प्रति बड़े उदार और कृपालु रहे हैं। जब मैं नन्दीमें था तब चिकबल्लापुरके खास-खास लोग समय-समयपर आकर यह देख जाया करते थे कि मेरी सारी जरूरतें पूरी हो रही हैं अथवा नहीं और सारी व्यवस्था ठीक तो है। वे सचमुच मेरा बड़ा खयाल रखते थे। इसी तरह स्वयंसेवकगण भी, जो सबके-सब मैसूरके प्रमुख परिवारोंके लोग थे, बड़े आदर और स्नेहसे मेरी देख-भाल करते थे। यह सब देखकर एक भाईने मुझसे कहा था कि मैसूरके लोग तो निःस्वार्थ प्रेमका अद्भुत उदाहरण पेश कर रहे हैं, जब कि आपने खास तौरसे इन लोगोंके लिए तो कुछ नहीं किया है और यदा-कदा जल्दीमें बंगलोर हो आनेके अलावा आपने इस प्रदेशको देखा तक नहीं है; इन भाईके मुँहसे सहज ही निकल पड़ी इस बातसे मैं सहमति प्रकट किये बिना नहीं रह सका। चिकबल्लापुरकी स्वागत-समितिने मेरे कुछ कहे बिना ही मेरी जरूरतोंका अनुमान लगाकर उन्हें पूरा करनेमें कुछ भी उठा नहीं रखा था। इसमें उसने बहुत समय और पैसा खर्च किया था। इसलिए अगर मैं अप्रिय बातके किसी उदाहरणके रूपमें चिकबल्लापुरका नाम लेनेसे बच सकता तो मुझे बड़ी खुशी होती।

लेकिन, वहाँ जो-कुछ हुआ वह उस तरहकी बातोंका एक ऐसा सटीक उदाहरण है कि उसका उल्लेख करना आवश्यक है। ऐसा तय हुआ था कि कोई जलूस नहीं निकाला जायेगा और सभा-स्थलतक मुझे शान्तिपूर्वक और गाड़ीको तेजीसे चलाकर

ले जाया जायेगा। सभामें[1] भी किसी तरहका शोर-गुल नहीं होगा। लेकिन मेरी गाड़ीको देखते ही नेता और जनता सब आपा खो बैठे, और यद्यपि बहुत तेज धूप तप रही थी, फिर भी गाड़ीका हुड उठा दिया गया और गाड़ी वहाँसे सभा स्थलतक जुलूसके साथ-साथ चींटीकी चालसे ले जाई गई। श्री हमजा हुसेन साहब स्वागत समितिके अध्यक्ष थे और उस समय मुझे साथ लिवाये जा रहे थे; व्यथित मनसे वे यह सब देखते रह गये; उनसे भी कुछ करते नहीं बना। यद्यपि वे कार्यकारी दीवान हैं और पहले पुलिस कमिश्नर रह चुके हैं, फिर भी वे जानते थे कि इस समय तो उनका वास्ता भारतके दीन-दुःखी लोगोंके प्रतिनिधिसे पड़ा है और इसलिए उन्हें नन्दीके लोगोंका वह सारा व्यवहार, जिसके कारण वे अपना दायित्व नहीं निभा सके, चुपचाप बरदाश्त कर लेना पड़ा। मैंने नेताओंसे, जिनसे मैं नन्दीमें मिल चुका था और जो उस समय गाड़ीके पास थे, अनुरोध किया कि वे इस उत्साहकी बाढ़को रोकें और गाड़ीको जल्दी सभा-स्थलतक ले चलें। उसका जो उत्तर मिला वह यही कि हाँ-हाँ, हम जल्दी ही वहाँ पहुँच रहे हैं। सभामें भी कोई खास व्यवस्था नहीं थी। तिसपर श्रोताओंमें से अधिकांश लोगोंके अंग्रेजीदाँ न होते हुए भी, मानपत्र अंग्रेजीमें ही पढ़कर सुनाया गया। इन पृष्ठोंमें मैंने बार-बार यह कहा है कि जिन सभाओंमें बेचारे गरीब लोग हजारोंकी तादादमें इकट्ठे होते हैं, कमसे-कम ऐसी सभाओंकी कार्यवाही अगर उनकी मातृभाषामें चलाई जाये और आवश्यकता पड़नेपर मुझे उसका हिन्दी अनुवाद दे दिया जाये तो यह परिवेशके ज्यादा अनुकूल होगा। लेकिन उस सभामें मेरे इस अनुरोधकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया। फिर भी चिकबल्लापुरके लिए इतना तो अवश्य कहा जाना चाहिए कि उसकी गलतियोंका कारण भी प्रेम ही था। मुझे बताया गया कि उनके यहाँ ऐसी कोई सार्वजनिक सभा पहले कभी नहीं हुई थी। स्वभावतः वे लोगोंके उत्साहपर पानी नहीं फेरना चाहते थे। उत्साहकी लहरमें पड़कर कुछ समयके लिए वे भी अपना आपा खो बैठे और जहाँतक हिन्दी अनुवादकी बात है, चिकबल्लापुरमें शायद हिन्दी जाननेवाला कोई आदमी था ही नहीं। लेकिन अब दूसरे स्थानोंकी स्वागत-समितियाँ चिकबल्लापुर की अनिवार्य गलतियोंसे लाभ उठायें। वे अपने उत्साहको संयत रखनेके लिए पहले से ही अभ्यास करें। इस उत्साहको वे खादीकी खरीदारी और डटकर चरखा चलानेमें लगायें। यह उत्साहजनित शक्तिका लाभदायक, राष्ट्रीय और समझदारी-भरा उपयोग होगा, और इससे उनके अतिथिको न केवल प्रसन्नता होगी, बल्कि उसके शरीर, मन और आत्मा सभीको शक्ति मिलेगी।

अश्लील विज्ञापन

पीठके बल लेटे-लेटे और कभी कभी डाक्टरोंकी सलाहके अनुसार अपने दिमाग-को गम्भीर विषयोंके अध्ययनसे अलग रखनेकी कोशिश करते हुए मेरी नजर अखबारोंमें छपे विज्ञापनोंपर चली जाती है। कभी-कभी उनसे बहुत-सी बातोंका पता लग जाता है; किन्तु वे होती हैं क्लेशकर। प्रतिष्ठित अखबारोंमें भी मैं अकसर बहुत

१. देखिए खण्ड ३३, "भाषण: चिकबल्लापुरमें", ५-६-१९२७।

ही अश्लील ढंगके विज्ञापन देखता हूँ। उनके शीर्षक बहुत भ्रामक होते हैं। एक विज्ञापनका शीर्षक था 'योगसे सम्बन्धित पुस्तकें'। जब उस विज्ञापनका मजमून देखा तो पता चला कि दसमें से शायद एकाध पुस्तक ही योगसे किसी तरह सम्बद्ध थी; शेषका सम्बन्ध कामसे ही था और उनमें युवकों और युवतियोंको गुप्त उपाय बतानेका वादा करते हुए यह कहा गया था कि वे पश्चात्तापका अवसर आनेके भयसे मुक्त रहकर यौन आनन्दका उपभोग कर सकते हैं। इससे भी बुरी बातें इन विज्ञापनोंमें देखनेको मिली, जिन्हें मैं यहाँ नहीं देना चाहता। शायद ही कोई ऐसा अखबार हो जिसमें शराब और ऐसी औषधोंका विज्ञापन न छपता हो जिनका उद्देश्य युवा मनको दूषित करना है। ऐसे सम्पादक और अखबार-मालिकोंको भी, जो खुद बहुत शुद्ध चरित्रवाले और शराबखोरी, धूम्रपान तथा इसी तरहकी अन्य बुराइयोंके विरोधी हैं, ऐसे विज्ञापनोंसे पैसा कमाते हुए कोई क्लेश नहीं होता जिनका उद्देश्य स्पष्ट ही ऐसी बुराइयोंका प्रचार करना होता है जिनसे वे स्वयं दूर भागते हैं। अकसर इसके उत्तरमें यह दलील दी जाती है कि और किसी तरह अखबार चलाया ही नहीं जा सकता। लेकिन क्या किसी भी कीमतपर अखबार चलाना जरूरी है? क्या उनसे इतना लाभ होता है कि गन्दे विज्ञापनोंसे उत्पन्न होनेवाली बुराई उसके सामने ध्यान देने योग्य नहीं है? हमारा एक पत्रकार संघ है। क्या यह सम्भव नहीं है कि उस संघके जरिये पत्रकारितासे सम्बद्ध सभी लोगोंसे एक ही तरहके नैतिक नियमोंका पालन कराया जाये और ऐसा लोकमत तैयार किया जाये जो किसी भी प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाके लिए निर्धारित नैतिक नियमोंका उल्लंघन करना असम्भव बना दे।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, २३-६-१९२७

४६. तार: रामेश्वरदास पोद्दारको

बंगलोर
२३ जून, १९२७

रामेश्वरदास
धूलिया

एक ही स्थानपर तुम्हारे लिए उपवास-उपचारकी और तुम्हारी पत्नीके लिए डाक्टरी इलाजकी व्यवस्था करना कठिन। क्या तुम [अपनी पत्नीसे] अलग रह सकते हो? क्या तुम्हारी पत्नी जरूरत होनेपर पुरुष डाक्टरसे ऑपरेशन करवा सकती है? डाक द्वारा पूरा जवाब भेजो।

बापू

अंग्रेजी (जी० एन० ७३९) की फोटो-नकलसे।

४७. पत्र : हेलेन हॉसडिंगको

कुमार पार्क, बंगलोर
२३ जून, १९२७

मेरी प्यारी गौरैया[1],

तुम्हारा पोस्टकार्ड मिला। यह जानकर बड़ा दुःख हुआ कि कार्ड लिखते समय भी तुम बीमार ही थीं। लेकिन आशा है, इस पत्रके पहुँचते-पहुँचते तुम अच्छी हो चुकोगी, कमसे-कम इतनी स्वस्थ तो हो ही जाओगी जितना स्वस्थ मैं हो गया लगता हूँ। तुम्हें एक हदसे अधिक बीमार नहीं रहना चाहिए। और वह हद तो पहले ही पार हो चुकी है।

तुम्हारी ज्ञान-वृद्धिके लिए तुम्हारी एक सहयात्रिणीके लिखे एक लेखका कृष्णदास द्वारा किया गया स्वतन्त्र अनुवाद भेज रहा हूँ। कह नहीं सकता कि उसने जिस बातचीतको तुम्हारे साथ हुई बातचीत बताया है, लेखमें उसका विवरण ठीक-ठीक दिया गया है या नहीं।

बंगलोरकी आबोहवा तो बहुत सुखदाई है, मैं यहाँ लगभग २० दिन और रहनेकी उम्मीद करता हूँ। डाक्टरोंको आशा है कि तबतक मैं बिना किसी कठिनाईके जहाँ-तहाँ आने-जाने लायक हो जाऊँगा।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजी (एस० एन० १२५२४) की फोटो-नकलसे।

४८. पत्र : जे० डब्ल्यू० पेटावेलको

कुमार पार्क, बंगलोर
२३ जून, १९२७

प्रिय भाई,

आशा है, मेरा पहला पत्र[2] आपको समयसे मिल गया होगा। आपने अपनी पुस्तक मुझे बड़े मौकेसे भेजी। इन दिनों मैं बीमारीसे ठीक होनेके बाद स्वास्थ्य-लाभके खयालसे आराम कर रहा हूँ, सो मेरे पास थोड़ा-बहुत पढ़ने और बोलकर कुछ पत्र और कुछ-एक लेख लिखानेके अलावा कोई काम नहीं रहता। इसलिए मैंने आपके कार्यक्रम, नीति अथवा शिक्षाके, उसे जो भी कहा जा सकता हो, मुख्य तथ्यको जाननेके खयालसे आपकी पुस्तक उठाई। अभी-अभी उसे समाप्त करके मैं यह पत्र

१. हेलेन हॉसडिंगके स्वभावको देखते हुए स्नेह और विनोदवश गांधीजी उन्हें 'स्पैरो' गौरैया कहा करते थे।

२. १५ जून, १९२७ का पत्र; देखिए खण्ड ३३।

बोलकर लिखवा रहा हूँ। मुझे दुःखके साथ कहना पड़ता है कि पुस्तक मुझे जँची नहीं। इस पुस्तकमें जो तत्त्वकी बात है, उसे तो मैंने बहुत पहले ही करना शुरू कर दिया था। यह बात १९०९-१० की है। एक मित्रने ट्रान्सवालके सत्याग्रहियोंके उपयोगके लिए मुझे १,१०० एकड़ जमीन दी थी। उसे मैंने और उन्होंने टॉल्स्टॉय फार्मका[१] नाम दिया था। वहाँ हम ठीक वही काम कर रहे थे, जो आपने सुझाया है। वहाँ रहनेवाले लड़कों और उनके सगे-सम्बन्धियों, सबको काम करना पड़ता था; लड़कोंको थोड़ा-बहुत पढाया भी जाता था, लेकिन उन्हें काम खूब करना पड़ता था, उन्हे खेलने भी खूब दिया जाता था। अगर आज उनसे पूछा जाये तो उनमें से कुछ-एक शायद यही कहेंगे कि उन्हें कामके बजाय सारे समय खेलने ही दिया जाता तो यह बात उन्हें ज्यादा पसन्द आती, और कुछ अधिक सकोची लोग शायद यह कहेंगे कि उन्हे खेलनेके लिए और अधिक समय तथा कामके लिए और कम समय दिया जाता तो उन्हे अच्छा लगता। लेकिन मैं उस बस्तीमें वैसा कुछ विशेष करके नही दिखा पाया जैसा कि आप अपनी बस्तीमें कर दिखानेका दावा करते हैं। मेरी तो यही कामना है कि आपका यह दावा सही साबित हो।

जिनके पास समयका अभाव है, ऐसे व्यस्त लोगोके लिए सघ द्वारा प्रकाशित अपीलका मैंने बहुत ध्यानपूर्वक अध्ययन किया। मुझे तो ऐसी आशंका है कि आपने रेखा-चित्र १ में भविष्यकी जो तस्वीर पेश की है, वह अभी बहुत समयतक तसवीर-भर रहेगी। हो सकता है, c.d. कालान्तरमें समृद्ध और पुष्ट होकर C.D. का रूप ले ले। लेकिन तब वह A.B. में ही समा जायेगा, और वास्तवमें आज भी यह प्रक्रिया जारी है।

आपकी पुस्तकमें "स्विट्जरलैंडसे एक सबक", "बेल्जियम" और "अमेरिका" शीर्षकसे तीन परिच्छेद हैं। इन परिच्छेदोंको पढ़नेपर मैंने पाया कि ये तीनो देश क्या-कुछ कर रहे हैं, इसके उल्लेखके अलावा आपने कोई विशेष बात तो बताई ही नही है। इसे पढ़नेके बाद न तो स्विट्जरलैंडके तरीकेके बारेमें मेरे ज्ञानमें कोई वृद्धि हो पाई है और न बेल्जियम या अमेरिकाके ही तरीकेके बारेमें। आपने अमेरिकाकी द्रुत यातायात प्रणालीकी नकल करनेकी सलाह दी है; उसे तो पढ़कर ही मेरा सिर भन्ना उठता है। अगर आप (उदाहरणके तौरपर कहिए) कलकत्ताको गतिशील प्लेटफार्मों और एकके-ऊपर-एक चार-चार रेलवे लाइनोंकी प्रणाली आदिसे युक्त करके दूसरा न्यूयॉर्क बना दें और वह शानदार करिश्मा दिखानेके लिए मुझे वहाँ ले जायें तो मेरा खयाल है कि मैं तो उस दृश्य को देखकर ही मर जाऊँगा। मेरे अनेक — बल्कि मैं तो असंख्य कहने जा रहा था — अमेरिकी मित्र हैं। लेकिन, उन सबने तो विश्वासपूर्वक मुझसे यही कहा है कि अमेरिकाकी अतुल समृद्धिके पीछे घोर पतन, अन्धविश्वास और बुराई छिपी हुई है और A.B. तथा B.C. के बीच जबरदस्त असमानता है एवं A.B. बड़ी सफलतापूर्वक B.C. का शोषण कर रहा है। और अकसर B.C. को तो यह भान भी नही रहता कि उसका ऐसा शोषण हो रहा

१. देखिए खण्ड १०।

है। अमेरिकापर लिखे आपके परिच्छेदके विषयमें सोचते ही मुझे कई वर्ष पूर्व "अगर ईसा शिकागो आयें" में स्टेडकी लिखी बातोंका स्मरण हो आता है। और मुझे जानकारी देनेवाले लोगोंने अगर मुझको गलत न बताया हो तो जो बात स्टेडने आजसे लगभग ४० वर्ष पूर्व अपने उस तीखे लेखमें लिखी थी, वह तबकी परिस्थितियों की अपेक्षा आजकी परिस्थितियोंके सन्दर्भमें कहीं अधिक सच है।

बेल्जियम और स्विट्जरलैंडके उदाहरणोंके बारेमें मैं कुछ नहीं कह सकता, क्योंकि उनके बारेमें मैं कुछ जानता ही नहीं। और आपने कोई तथ्य या आँकड़े तो दिये नहीं हैं। आपकी पुस्तक पढ़कर मुझे रस्किन द्वारा किसी पुस्तकमें लिखा वह व्यंग याद आ जाता है, जिसका आशय कुछ इस प्रकार है: अगर मनुष्य यन्त्र बन जायें और फिर इन यन्त्रोंसे हाड़-मांसको अलग निकाल दिया जा सके तो इन्हें ठोक-पीटकर चौकोर ईंटोंकी शकल दी जा सकती है और तब इन मानव-रूपी ईंटोंसे एक शानदार पिरामिड बनाया जा सकता है; इन ईंटोंका मालिक इनसे अपनी इच्छानुसार चाहे जो काम ले सकता है। लेकिन, अब इसे सौभाग्य कहिए अथवा दुर्भाग्य, आपका वास्ता यन्त्रोंसे नहीं, बल्कि हाड़-मांसयुक्त ऐसे समझदार प्राणियोंके साथ है, जिनमें से हर-एकका अपना अलग व्यक्तित्व और अलग विशेषता है तथा हरएक अपनी-अपनी दिशाम आगे बढ़नेके लिए जोर लगा रहा है। मेरी समझमें तो यह बात नहीं आती कि आपने खूबसूरत टाइपमें छपी अपनी पुस्तकमें सुविन्यस्त नगरों, सहकारी योजनाओं, हरित उद्यानमय उपनगरों और नये शैक्षणिक तरीकोंका जो कटा-तराशा चित्र प्रस्तुत किया है, वह आपकी अपेक्षित दिशामें समाजको तबतक कैसे बदल सकता है, जबतक कि मनुष्यकी आत्माको जाग्रत करनेका उपाय नहीं निकाला जाता। अब मैं अन्तमें आपसे फिर वही बात कहूँगा जो पहले कह चुका हूँ, मतलब यह कि आप जरा बड़े पैमानेपर अपनी नीतिकी सफलताका कोई ठोस प्रमाण प्रस्तुत करके दिखायें ताकि कोरे सिद्धान्तके बजाय व्यवहारमें विश्वास करनेवाला मुझ-जैसा व्यक्ति कुछ सीख सके।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत कैप्टन जे० डब्ल्यू० पेटावेल
बाग बाजार
कलकत्ता

अंग्रेजी (एस० एन० १४१७१) की फोटो-नकलसे।

४९. पत्र: हरीन्द्रनाथ चट्टोपाध्यायको

कुमार पार्क, बंगलोर
२४ जून, १९२७

प्रिय भाई,

आपका पत्र[1] मिला। इस पत्रके साथ आपकी चीज भेज रहा हूँ। इसका आप जैसा समझें वैसा उपयोग करें।

आपने मुझे रिश्वतका लोभ दिया है।[2] लेकिन रिश्वत चूँकि एक गैर-कानूनी चीज है, इसलिए यह तो बराबर नकद दी जाती है; आपने तो मुझे साख-पत्र (क्रेडिट नोट) ही दिया है। फिर भी, मुझे भरोसा है कि इस साख-पत्रको खुद मैं या दरिद्रनारायणके प्रतिनिधिके रूपमें मेरा कोई उत्तराधिकारी आवश्यकता पड़नेपर भुना सकेगा।

हृदयसे आपका,

पुनश्च:

मेरे पास हस्ताक्षरके लिए [आनेसे] पहले सभी पत्र एक-दो और हाथोंसे गुजरते हैं। उनमें से एक . . . सिफारिशी चिट्ठियोंके लिए . . .।[3] मैं तो जहाँतक बनता है, किसीको सिफारिशी चिट्ठी देनेसे बचता ही हूँ। मुझे जो जानकारी मिली है, उसमें अगर कोई सचाई हो तो मैं आशा करता हूँ कि आप अपने और भारतके सम्मानकी रक्षा करेंगे। पत्र डाकमें डालनेमें मैंने देर इसलिए कर दी कि जो जानकारी मिली है, उसको देखते हुए मेरा कर्तव्य क्या है, इस सम्बन्धमें मैं अपनी अन्तरात्माका निर्देश जानना चाहता था। आज सुबह मुझे लगा कि संलग्न कागजोंके साथ आपको पत्र भेज ही देना चाहिए; और यह आशा करते हुए कि आपके सूचनार्थ मैं जो जानकारी भेज रहा हूँ, उसे आप उसी भावनासे ग्रहण करेंगे जिस भावनासे यह भेजी जा रही है और यह जानकारी देनेवाले अथवा मेरे विषयमें कुछ अन्यथा नही सोचेंगे। जानकारी देनेवालेके मनमें आपके प्रति कोई दुर्भावना नहीं है।

ईश्वर हम सबका साथ दे।

मो० क० गांधी

अंग्रेजी (एस० एन० १२७७३) की फोटो-नकलसे।

१. २२ जूनका पत्र। श्री चट्टोपाध्यायने गांधीजीसे यूरोपमें उपयोग करनेके लिए एक परिचय-पत्र माँगा था।

२. श्री चट्टोपाध्यायने गांधीजीसे वादा किया था कि लौटकर आनेपर जब वे राष्ट्रीय रंगशालाकी स्थापना करेंगे तो नाटकोंकी भाषा हिन्दी होगी तथा दृश्यों और परिधानोंमें खादीका उपयोग किया जायेगा।

३. यहाँ मूलमें साफ-साफ पढ़ा नहीं जाता।

५०. पत्र : पी० के० चार्लुको

कुमार पार्क, बंगलोर
२४ जून, १९२७

प्रिय मित्र,

आपका पत्र और आपकी पत्रिकाकी एक प्रति भी मिली। पत्रिकाको मैं उलट-पुलटकर देख गया हूँ। मैं तो इसपर आपको बधाई नहीं दे सकता। बिना सोचे-समझे जल्दबाजीमें इस तरहके बहुत-से उपक्रम किये जा रहे हैं। खुद मैं तो यह मानता हूँ कि पत्र-पत्रिकाओंके प्रकाशनमें कुछ अति ही की जा रही है और जरूरतसे ज्यादा पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित करनेसे राष्ट्रका कोई हित नहीं हो सकता। आपकी पत्रिकासे तो मुझे ऐसा कुछ नहीं लगता कि आपके पास लोगोंको देनेके लिए कोई विशेष सन्देश है। इस समय आवश्यकता सिर्फ चुपचाप लगातार काम करते जानेकी है। मैं तो 'कथनीसे करनी भली' वाली कहावतका कायल हूँ। सचमुच कितना अच्छा हो, अगर मैं अब भी आपको इस दिशामें और आगे बढ़नेसे रोक सकूँ।

१८९६में जब मैं मद्रासमें था, उस समय मुझे आपके पितासे मिलनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत पी० के० चार्लु
सम्पादक व प्रकाशक
"धर्म"
६, सुंकुरामा चेट्टी स्ट्रीट, जी० टी०
मद्रास

अंग्रेजी (एस० एन० १४१७२) की माइक्रोफिल्मसे।

५१. पत्र : पी० राजगोपाल अय्यरको

कुमार पार्क, बंगलोर
२४ जून, १९२७

प्रिय राजगोपालन्,

आपकी भेजी रिपोर्ट मैंने पढ ली है। आप अच्छा काम कर रहे हैं। एक ही बार में बहुत ज्यादा करनेकी कोशिश न कीजिए; बल्कि धीरे-धीरे एक-एक कदम करके आगे बढ़िए और इतनी गहराईमें न उतरिए कि आप थाह ही न पा सकें। पहले आर्थिक स्थितिपर ध्यान दीजिए, फिर शारीरिक, तब मानसिक और फिर आध्यात्मिक स्थितिपर। ऐसा करेंगे तो आप ठोस प्रगति कर पायेंगे और कभी असफल ही नही होंगे। अपने इर्द-गिर्द पाँच मीलके गाँवोंकी स्थितिका जायजा लीजिए और जहाँके लोगोंके बारेमें आपको ऐसा लगे कि वे आपकी बातपर चल सकते हैं किन्तु वर्षके कुछ महीने बेकार रहनेके कारण विपन्न अवस्थामें हैं, वहाँ आप उनके सामने चरखेको पेश कीजिए, लेकिन सिर्फ भाषणके जरिए नही, बल्कि व्यावहारिक तौरपर उसकी खूबियोंका प्रदर्शन करके। चरखा संघ द्वारा निर्धारित अधिकतम मजदूरीसे अधिक मेहनताना हरगिज न दीजिए, और अगर लोग आपके सन्देशको न समझें और न स्वीकारें तो आप चिन्ता न कीजिए; लेकिन साथ ही आशा भी न छोड़िए। अगर आपका विश्वास कायम रहता है और आप अपने विश्वासके अनुरूप काम भी करते जाते हैं तो आसपासके गाँव देर-सबेर अनुकूल प्रतिक्रिया भी दिखायेंगे ही। यह तो मैं मान ही लेता हूँ कि अपने आश्रममें आप हाथसे ओटने, धुनने और कातनेका काम कर रहे होंगे, और कोई भी काम जैसे-तैसे नही किया जा रहा है, बल्कि सब-कुछ यथासम्भव अच्छेसे-अच्छे तरीकेसे किया जा रहा है।

मेरी व्यक्तिगत जानकारीके लिए हर महीने एक छोटी-सी रिपोर्ट भेजते रहिए। इस समय मैं 'यंग इंडिया' में इसके बारेमें कुछ नही कहना चाहता। पहले यह संस्था अपनी जड़ तो जमा ले।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत पी० राजगोपालियर
पलायूर
बरास्ता – मुथुपेट

अंग्रेजी (एस० एन० १९७८३) की माइक्रोफिल्मसे।

५२. पत्र : सरोजिनी नायडूको

कुमार पार्क, बंगलोर
२५ जून, १९२७

प्रिय मीराबाई,

आपका स्नेहपूर्ण पत्र मिला। मैं तो यही उम्मीद करता हूँ कि पद्मजाके सोफेपर लेटे रहनेका कारण यह नहीं है कि वह बीमार या थकी हुई रहती है, बल्कि यह है कि वह ज्यादा लाड़-प्यारसे बिगड़ गई है और चाहती है कि उसकी माँ उसे हमेशा दुलराती रहे। अब उसे अपनी बीमारी और कमजोरीपर काबू पाकर किसी बड़े काममें जुट जाना चाहिए और हम बूढ़े लोगोंका भार हलका कर देना चाहिए। आप उसी हालतमें मेरे वास्तविक विश्राम करनेके अधिकारकी बात कर सकती हैं।

अगर अगले साल डॉ० अन्सारीको कांग्रेसकी अध्यक्षता नहीं करनी है तो हमें किसी अन्य पुरुष या स्त्रीको ढूँढ़ना चाहिए। मोतीलालजीके खिलाफ अभी बहुत-सी ताकतें काम कर रही हैं। उनके लिए तो यह भार बहुत ज्यादा होगा। मैं इस विचारसे सहमत नहीं हूँ कि अगले सालके लिए हमें किसी हिन्दूको ही अध्यक्ष चुनना चाहिए। इसके विपरीत, हमारे ध्यानमें जो उद्देश्य है, खुद उस उद्देश्यकी ही दृष्टिसे इस पदके लिए डॉ० अन्सारीके अलावा और कोई उपयुक्त व्यक्ति नहीं है।[1] कांग्रेसमें हिन्दू-मुस्लिम समझौतेका कोई प्रस्ताव वही पास करा सकते हैं। उनका चुना जाना सबको पसन्द आयेगा। हिन्दू लोग निष्ठापूर्वक उनके आदेशोंका पालन करेंगे और एक मुसलमानके अध्यक्ष होनेपर भी ऐसा नहीं होगा — न हो सकता है — कि कांग्रेस मुख्य रूपसे हिन्दुओंकी संस्था न रह जाये। आप इस सुझावपर विचार कीजिए और अगर मनमें कोई शंका हो तो तार द्वारा सूचित कीजिए कि इस विषयपर बातचीत करनेके लिए आप बंगलोरके लिए रवाना हो रही हैं। आज मैंने यथा समय एक तार भेज दिया है।

सस्नेह —

आपका,
"जादूगर"

श्रीमती सरोजिनीदेवी
ताजमहल होटल
बम्बई

अंग्रेजी (एस० एन० १२८६८) की फोटो-नकलसे।

१. देखिए "पत्र : मोतीलाल नेहरूको", २९-६-१९२७

५३. पत्र : शाह चमनलाल डूँगाजीको

कुमार पार्क, बंगलोर
२५ जून, १९२७

प्रिय भाई,

आपका पत्र मिला। आपके साथ जिस सवालपर बातचीत हुई थी, उसपर तो मैं 'यंग इंडिया' में लिखनेका इरादा पहले ही कर चुका था। क्या आप चाहते हैं कि आपके इस पत्रका और इसमें दिये तथ्योंका — विशेषकर इस तथ्यका कि शेरों और बाघोंको खाना देनेके लिए गाय और बैल हर-रोज काटे जाते हैं — मैं सार्वजनिक उपयोग करूँ?

आपने किस आधारपर कहा है कि मैं गो-हत्या बन्द करनेके लिए कानून बनानेके बिलकुल खिलाफ हूँ? मैं चाहूँगा कि आप मुझे वह वक्तव्य दिखायें जिसमें मुझपर ऐसा विचार रखनेका आरोप लगाया गया है। वास्तविकता यह है कि मैंने कभी ऐसा विचार रखा ही नहीं। मैंने जो बात कही है और जिसपर मैं आज भी दृढ़ हूँ वह यह कि अगर समझदार मुसलमानोंका बहुमत ऐसे कानूनके खिलाफ हो तो हिन्दू राज्यमें भी ऐसा कानून नहीं बनाया जाना चाहिए। मैंने यह भी कहा है कि सिर्फ कानून बनानेसे ही गो-रक्षा नहीं हो सकती। लेकिन 'यंग इंडिया' में इस विषयपर विस्तारसे लिखनेका मेरा इरादा है।[1] मुझे उम्मीद है कि आप उस लेखको पढ़ेंगे।

अगर आप इस विषयपर मेरे साथ और भी विस्तारसे बातचीत करना चाहते हों तो इस समस्यामें दिलचस्पी रखनेवाले हरएक भाईका सोमवारके अलावा हररोज ४ बजे शामको स्वागत है। आपको ठहरना न पड़े, इसलिए मेरा सुझाव है कि आप पहलेसे ही कोई समय ले लीजिए ताकि मैं ठीक निर्धारित समयपर आपसे बातचीत करनेको तैयार रहूँ।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत शाह चमनलाल डूँगाजी
अध्यक्ष
श्री गोरक्षा मण्डली
बंगलोर सिटी

अंग्रेजी (एस० एन० १२९१८) की माइक्रोफिल्मसे।

१. देखिए "मैसूरमें गाय", ७-७-१९२७।

५४. पत्र : विलियम स्मिथको

कुमार पार्क, बंगलोर
२५ जून, १९२७

प्रिय श्री स्मिथ,

आपके भेजे कागजात[१] मैं ध्यानपूर्वक पढ़ गया हूँ। शंकालु लोगोंके लिए ये दिलचस्प और उपयोगी हैं। मैं तो पक्का आस्थावान व्यक्ति हूँ, लेकिन साधनहीन और अज्ञानी हूँ। इसलिए मैं चाहता हूँ कि आप मेरे और मुझ-जैसे अन्य लोगोंके लिए —और ऐसे लोगोंकी एक खासी बड़ी संख्या है—कोई ऐसी ठोस योजना तैयार कर दीजिए जिसे पढ़कर कोई भी व्यक्ति, अगर उसे कुशल लोगोंकी सहायता और पैसा सुलभ हो तो, उसे तत्काल कार्य-रूप दे सके। इसलिए क्या आप कोई ऐसी साफ-सुथरी योजना दे सकते हैं जिसे दलील वगैरहसे सजानेकी कोशिश न की गई हो? उसमें योजनाकी रूप-रेखा, आकार और प्रकार बताते हुए आवश्यक सामानका पूरा ब्योरा तथा मशीनों वगैरहपर लागतका अनुमान दिया जाना चाहिए और साथ ही उस व्यवसायको चलानेमें होनेवाले खर्च तथा उससे होनेवाली आमदनीका भी मोटे तौरपर तखमीना होना चाहिए।

आपने और आपके आदमियोंने इम्पीरियल डेरी इंस्टिटयूटमें[२] मुझे जो-कुछ दिखाया, उसपर मैं गम्भीरतासे सोचता रहा हूँ। यों तो इस सम्बन्धमें मुझे कई सवाल पूछने हैं, लेकिन फिलहाल मैं इतना ही कहना चाहता हूँ कि इस संस्थाको भारतकी जरूरतोंके मुताबिक ढालनेके लिए इसमें और दो चीजें जोड़ना आवश्यक है।

वहाँ बधिया करनेके तरीकोंके अध्ययनके लिए कोई सुविधा नहीं दिखाई देती। जबतक गायोंके झुंडको साँड़ोंके साथ बेतरतीब ढंगसे ठूँस-ठाँसकर रखना बन्द नहीं किया जाता तबतक भारत-भरमें इनकी नस्लमें सुधार कर पाना मुझे तो असम्भव ही प्रतीत होता है। इसका एकमात्र उपाय बधिया करना ही दिखाई देता है, और बधिया करनेका प्रचलित देशी तरीका घोर क्रूरतापूर्ण है।

दूसरे, मुझे लगता है कि भारतकी जरूरतोंको वही डेरी पूरा कर सकती है जहाँ चमड़ेको कमाने वगैरहका भी काम किया जाता हो। पाश्चात्य देशोंने तो आर्थिक सफलताके लिए एक सुविधाजनक रास्ता ढूँढ लिया है कि वे जिन पशुओंको भाररूप मानते हैं उनका सफाया ही कर देते हैं। भारतमें हमें पशु-समस्याके आर्थिक पक्षपर इस मर्यादाका ध्यान रखते हुए ही विचार करना है कि पालने-पोसनेपर होनेवाले खर्चके अनुपातमें जिन पशुओंसे कम लाभ होता है या कुछ भी लाभ नहीं होता उन्हें भी हमें खिलाना-पिलाना और रखना तो है ही। इसलिए मुझे लगता है

१. ३-१-१९२७ और १०-६-१९२७ को भेजे कागजात (एस० एन० १२९२६)।

२. देखिए परिशिष्ट १, और मुखचित्र भी।

कि दुग्ध-व्यवसायकी जिस योजनामें इस अनिवार्य मर्यादाका ध्यान न रखा गया हो और उसके निराकरणकी कोई व्यवस्था न की गई हो वह योजना आर्थिक दृष्टिसे दोषपूर्ण है। इन बातोंको ध्यानमें रखकर इम्पीरियल इंस्टिटचूटका विस्तार किया जा सकता है या नहीं, यह कहनेका अधिकार मुझे नहीं है। लेकिन क्या आप इन बातोंके सम्बन्धमें मेरा कुछ मार्ग-दर्शन कर सकते हैं अथवा इससे सम्बन्धित साहित्यकी सूचना दे सकते हैं?

और वैसे, उस डेरीको कुछ-एक दिन देखनेके बाद वहाँसे मैंने जो जानकारी प्राप्त की है उस सबको मैं और अच्छी तरह समझ और ग्रहण कर सकूँ, इसके लिए मुझे सामान्यत: कौन-कौन-सी पुस्तके पढ़नी चाहियें? अगर आपके पास इम्पीरियल डेरीकी प्रवृत्तियोंके सम्बन्धमें कोई साहित्य हो और वह बेचा जाता हो तो मैं उसे खरीदना चाहूँगा।

और अन्तमें मुझे आपने डेरीको ठीक तरहसे देखनेकी जो सुविधाएँ प्रदान की, उनके लिए मैं आपको धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकता।

हृदयसे आपका,

श्री विलियम स्मिथ
इम्पीरियल डेरी एक्सपर्ट
बंगलोर

अंग्रेजी (एस० एन० १२९२७) की माइक्रोफिल्मसे।

५५. पत्र : के० केलप्पनको

कुमार पार्क, बंगलोर
२५ जून, १९२७

प्रिय केलप्पन,

मेरे मनमें तुम्हारा खयाल अक्सर आता रहा है और मैं सोचता रहा हूँ कि मालूम नहीं, तुम क्या कर रहे हो। और अब तुम्हारा पत्र मिला; इसे पाकर बड़ी खुशी हुई। अपना काम तुम्हें किस प्रकार प्रारम्भ करना चाहिए, इस विषयमें मैं तुम्हें सलाह नहीं दे सकता। अगर फिलहाल तुम केरलमें पैसा न भी जुटा सको लेकिन यदि तुम ऐसे विश्वसनीय कार्यकर्त्ता तैयार कर सको जो कुछ त्याग करके सेवा करनेको तैयार हों तो मुझे लगता है कि पैसेकी व्यवस्था की जा सकती है। अगर तुम्हारे पास ऐसे नौजवान हों तो तुम उनकी योग्यताका ब्योरा देते हुए एक सूची और कामकी योजना तैयार कर लो। फिर वह योजना लेकर आओ और उसपर मेरे साथ बातचीत करो। बेशक, अन्ततः उस कामको एक बोर्डके ही नियन्त्रणमें रखना पड़ेगा।

जहाँतक नगरपालिकासे अनुदान लेनेकी बात है, उसे स्वीकार करनेमें, बल्कि उसकी माँग करनेमें भी, कोई हिचकिचाहट नहीं होगी।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजी (एस० एन० १४६१८) की माइक्रोफिल्मसे।

५६. 'नवजीवन' देवनागरीमें

मैं पाठकोंका ध्यान निम्नलिखित पत्रकी ओर आकर्षित करता हूँ:[1]

यह पत्र मुझे एक सज्जनकी ओरसे फरवरीके अन्तमें मिला था। मैंने उसे यह सोचकर रख छोड़ा था कि समय आनेपर उसे प्रकाशित करूँगा। इस बीच, मैं बीमार पड़ गया, इसलिए ज्यादा देर हो गई।

पत्रका हेतु स्तुत्य है। मेरी राय है कि हिन्दुस्तानकी समस्त भाषाएँ देवनागरी लिपिमें लिखी जानी चाहिए। द्रविड़ भाषाओं और उर्दूको मैं अपवादरूप नहीं मानता लेकिन इसे अमलमें लानेमें कठिनाइयाँ अवश्य देखता हूँ। जबतक हिन्दुओं और मुसलमानोंमें वैरभाव है तबतक कोई मुसलमान देवनागरी लिपिमें उर्दू नहीं लिखेगा। मैं फारसी लिपिके त्यागका सुझाव नहीं देता परन्तु मेरा खयाल है कि सामान्य उर्दू पुस्तके देवनागरीमें लिखी जानी चाहिए। लेकिन फिलहाल तो यह खयाल ही रहेगा। अबलत्ता, हिन्दू-मुसलमानोंमें ऐक्य स्थापित हो, उससे पहले यदि गुजरात, बंगाल आदि पहल करना चाहे तो कर सकते हैं।

समस्त स्तुत्य कार्य एक ही व्यक्तिके हाथों नहीं होते। वह यदि उन्हें करनेकी कोशिश करता भी है तो केवल उपहासका पात्र बनता है। इसलिए ये कार्य तभी हो सकते हैं जब उनमें से हरएकको लोग अलग-अलग अपनायें और पागल की तरह उसके पीछे जुटे रहे।

लेकिन 'नवजीवन'के पाठक मुझसे उपर्युक्त पत्र-लेखकके एक सुझावपर अवश्य अमल करवा सकते हैं। यदि 'नवजीवन'के अधिकांश पाठक 'नवजीवन' देवनागरी लिपिमें पसन्द करे तो मैं अपने साथियोसे तुरन्त उसे देवनागरीमें प्रकाशित करनेकी चर्चा करूँ। पाठकोंकी राय जाने बिना पहल करनेकी मुझमें हिम्मत नहीं है। एक लिपि का प्रचार करनेकी अपेक्षा जिन प्रश्नोंपर मैंने वर्षों विचार किया है और जिन प्रश्नोंको मैं अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मानता हूँ, उनके प्रचारकी बातको मैं बहुत ज्यादा जरूरी मानता हूँ। 'नवजीवन'ने अनेक साहस किये हैं लेकिन वे सब बुनियादी सिद्धान्तोंके लिए ही किये हैं। देवनागरी लिपिके लिए मैं 'नवजीवन'के प्रचारको हानि पहुँचानेका खतरा मोल नहीं ले सकता।

१. पत्रका अनुवाद यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखकका सुझाव था कि गांधीजी उत्तर भारतकी सभी भाषाओंके लिए देवनागरी लिपि अपना लेनेका समर्थन करें तथा गुजराती नवजीवन देवनागरी लिपिमें ही प्रकाशित करें।

'नवजीवन'के पाठक-वर्गमें बहुत सारी बहनें हैं तथा कुछ पारसी और कुछ मुसलमान हैं। और मुझे भय है कि इन सबके लिए देवनागरी लिपि पढ़ना यदि असम्भव नही तो कठिन अवश्य है। यदि मेरी यह धारणा सही है तो मैं 'नवजीवन'को देवनागरी लिपिमें नही छाप सकता। चूंकि देवनागरी लिपिका प्रचार मेरा खास विषय नही है, इसलिए मुझे ऐसा लगता है कि उसमें पहल करनेकी जोखिम मैं नही उठा सकता। इसके सिवा, गुजराती 'नवजीवन' देवनागरी लिपिमें प्रकाशित किया गया तो भी हिन्दी 'नवजीवन'की आवश्यकता बनी ही रहेगी। उसके पाठक गुजराती नही समझ सकते।

परन्तु पत्र-लेखकका सुझाव अमलमें लाने योग्य है, उसे समाचारपत्रोंकी ओरसे प्रोत्साहन मिलना चाहिए, और उसके बारेमें 'नवजीवन'के पाठकोका अभिप्राय भी जानना चाहिए, इसीलिए मैंने उपर्युक्त पत्र प्रकाशित किया है। पत्र लिखनेवालेको मेरी सलाह है कि वे पत्र लिखने-भरसे ही सन्तोष न मानें अपितु यदि उन्हे फुरसत हो तो अपने विचारोंका प्रचार करनेके लिए अपना जीवन अर्पित कर दें।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २६-६-१९२७

५७. परोपकारी डॉक्टर

अन्त्यज पहले

डॉक्टर लाला मथुरादासने वढवानके सैकड़ों पीड़ितोकी आँखोके कष्ट दूर कर दिये, इसका वर्णन करते हुए भाई अमृतलाल सेठने[1] मुझे एक पत्र लिखा है। मैं उक्त पत्र लगभग ज्योका-त्यो नीचे दे रहा हूँ।

गुजरे जमानेमें वैद्यगण परोपकारार्थ ही वैद्यक किया करते थे। अपनी आजीविका चलानेके लिए जितना चाहिए उतना उन्हें धनीवर्गसे मिल जाता था किन्तु यह उनकी फीस नही मानी जाती थी। वे मानते थे कि वैद्योका धर्म रोगियोंका इलाज करना है, आजीविका देनेवाला तो ईश्वर है। आज तो सामान्यतः अन्य लोगोकी भाँति वैद्य, हकीम और डॉक्टर, तीनों ही वर्ग; पैसा बटोरनेमें लगे रहते हैं। किन्तु सभी ऐसे नही होते यह लाला मथुरादास जैसे परोपकारी डॉक्टरोने सिद्ध कर दिया है।

आर्यसमाजने अन्त्यजोकी सेवा को अपना विशेष कर्त्तव्य माना है अतः यदि इस भले डॉक्टर ने अन्त्यजोकी सेवा बहुत ही उत्साहपूर्वक की तो इसमें आश्चर्यकी बात नही है। वढवानके कार्यकर्त्ताओने अपने सेवाकार्यमें अन्त्यजोंको प्राथमिकता दी, इसके लिए वे धन्यवादके पात्र हैं। लाला मथुरादासको धन्यवाद देनेवाला मैं कौन हूँ? निम्न पत्रसे सिद्ध होता है कि उनका धन्यवाद तो उनके द्वारा की गई सेवासे प्राप्त सन्तोष-

१. सौराष्ट्रके कांग्रेस कार्यकर्ता तथा बम्बईसे प्रकाशित होनेवाले गुजराती दैनिक जन्मभूमिके संस्थापक।

में ही निहित है। भाई अमृतलाल सेठका पत्र मैं इस आशासे प्रकाशित कर रहा हूँ[1] कि अन्य डॉक्टर, वैद्य और हकीम भी ऐसी सेवावृत्तिका अनुकरण करेंगे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २६-६-१९२७

५८. पत्र: एन० आर० मलकानीको

बंगलोर
२६ जून, १९२७

प्रिय मलकानी,

तुम्हारे पत्रने[2] मेरे मर्मको भेद दिया। महाविद्यालयका क्या होता है, इसकी मुझे कोई परवाह नही, लेकिन किसी व्यक्तिका क्या होता है, इसकी निश्चय ही मुझे बहुत फिक्र रहती है। मैंने तो तुम्हें नेक, दृढ़ और कठिनसे कठिन परिस्थितियोंमें भी अडिग रहनेवाला व्यक्ति समझा था। तुम्हें तोला गया तो तुम कम उतरे। ऐसी अशोभनीय जल्दबाजीमें विद्यापीठ छोड़नेका कोई भी कारण समझमें नही आ सकता। थडानीके[3] व्यवहारसे भी मुझे दुःख हुआ। नेकी बरतनेकी जल्दबाजीमें वे सभ्यजनोचित सामान्य शिष्टाचार दिखाना भी भूल गये।

यह पत्र चाहो तो उन्हें भी दिखा दो। भगवान् तुम्हारा और मेरा कल्याण करे।

तुम्हारा,
बापू

अंग्रेजी (जी० एन० ८७५) और एस० एन० १२५९९ की फोटो-नकलसे।

५९. पत्र: आश्रमकी बहनोंको

रविवारकी रात, ज्येष्ठ वदी १२ [२६ जून, १९२७][4]

प्यारी बहनो,

तुम्हारा पत्र और हाजरी-पत्रक मिल गये। हाजरी-पत्रक मुझे भेजती ही रहना। उससे मुझे बहुत-सी बातें जाननेको मिलती हैं।

मणिबहनसे काफी समाचार पा सका हूँ। भण्डारका काम तो निर्विघ्न पूरा करना। आश्रमको हम कुटुम्ब मानते हैं, और उसे कुटुम्ब मानकर सारे देशको और

१. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

२. २० जूनका पत्र। मलकानीने इस पत्रमें गांधीजीको सूचित किया था कि वे गुजरात विद्यापीठ छोड़कर सिन्ध नेशनल कालेज, हैदराबाद (सिन्ध) में चले गये हैं।

३. एन० वी० थडानी, सिन्ध नेशनल कालेजके आचार्य।

४. वर्षका निश्चय वालजीभाईकी माताकी मृत्युके उल्लेखके आधारपर किया गया है।

उसके द्वारा तमाम दुनियाको परिवार समझनेका सबक सीखना चाहते हैं। इसलिए जैसे कुटुम्बकी जिम्मेदारी लोग मिल-जुलकर किसी तरह निभा लेते हैं, उसी तरह भण्डारके बारेमें करना।

गो-सेवाकी या मेरी और-किसी बातसे तुम्हें डरना नहीं चाहिए। मैं तो जो मुझे सूझता है सो लिखता रहता हूँ, ताकि उसमें से जितना तुम्हें रुचे और जितना तुमसे हो सकता हो उतना तुम अवसर आते ही करने लगो।

वालजीभाईकी माताकी-सी[1] मौत कोई पुण्यशाली ही पायेगा। धन्य है वह पुत्र, धन्य है वह माता और धन्य है वह आश्रम जिसमें ऐसी मृत्यु हुई। इस समय व्रजलाल-भाईकी[2] पवित्र मृत्यु भी याद आ रही है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ३६५५) की फोटो-नकलसे।

६०. एक पत्र

[२७ जून, १९२७के पूर्व][3]

जैसे भूतकालका विचार करना निरर्थक है वैसे ही भविष्यके बारेमें सोचना निरर्थक है। 'मेरे लिए तो एक ही कदम पर्याप्त है', यह किसी अनुभवीकी उक्ति है। हम भविष्यको जानकर करेंगे भी क्या? अथवा हम भूत और भविष्य दोनोंको वर्तमानमें ही समाविष्ट क्यों न मानें? वर्तमान या भूतकालमें ही तो भविष्य निहित है। और जब हमारी आँखोंके आगे हर क्षण परिवर्तन होता ही रहता है तब सुदूर भविष्यका विचार करना तो हवाई किले बनाने जैसा है और हवाई किले तो मूर्ख ही बनाते हैं। वर्तमान यानी प्रस्तुत क्षणमें हमारा कर्त्तव्य। यदि हम अपने वर्तमान कर्त्तव्यको जानकर उसे पूरा करनेमें अपनी पूरी शक्ति लगा दें तो यह माना जायेगा कि हमने महान् पुरुषार्थ किया है। दुःख मात्र-भविष्यके काल्पनिक घोड़े दौड़ाने और भूतकालका रोना रोनेसे उत्पन्न होता है। अतः तात्कालिक कर्त्तव्यको निभानेवालेका न तो पुनर्जन्म होता है और न मृत्यु।

[गुजरातीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरी।
सौजन्य: नारायण देसाई

१. वालजीभाईकी माताने आश्रमसे शहर जाते हुए नदी पार करके ठीक श्मशानमें वालजीभाईकी गोदमें ही प्राण त्यागे थे।

२. व्रजलालभाई कुएमें से घड़ा निकालते समय डूब गये थे।

३. साधन-सूत्रमें यह पत्र २१ जूनके बाद तथा २७ जूनके पहले रखा गया है।

६१. पत्र : तारा मोदीको

वंगलोर

ज्येष्ठ बदी १३, [२७ जून, १९२७][1]

चि० तारा,

तुम्हारा पत्र पढ़कर मुझे बहुत खुशी हुई। तुम्हें पढ़नेके परिश्रमसे बचानेके लिए ही मैंने पत्र नही लिखा था। किन्तु मुझे तुम्हारा ध्यान तो रहता ही है। मैं तुम्हें तन-मनसे हृष्ट-पुष्ट देखना चाहता हूँ। तुम जैसे कठोर व्रतका पालन कर रही हो वैसे कठोर व्रतका पालन जो अपनी युवावस्थामें करता है उसे तो रोग होना ही नही चाहिए। किन्तु हृदयको इतना स्वच्छ बनानेमें युग बीत जाते हैं। यदि पूर्वजन्मके संस्कार हों तो विचारोंके साथ ही हृदय-परिवर्तन हो जाता है। न हो तो उसके होनेतक हमें धैर्यपूर्वक तथा अथक प्रयत्न करते रहना चाहिए।

यह मेरा अनुभव और दृढ़ विश्वास है कि जिसके मनकी गति स्वाभाविक रूपसे निरन्तर आत्माकी ओर बनी रहती है उसे रोग होते ही नही। यों मेरा अनुभव तो स्वल्प ही है किन्तु अल्प द्वारा पूर्णके आकारकी कल्पना की जा सकती है।

फिलहाल तो तुम्हारा जो इलाज चल रहा है उसे धीरजके साथ चलाती रहो और अच्छी हो जाओ। इलाज करनेवाले भाई कौन हैं, वे कितने अनुभवी हैं आदि बातोंके बारेमें तुम जो-कुछ जानती हो, मुझे लिखना। चलने-फिरनेकी उतावली मत करना और जैसा वे कहें वैसा ही करना।

जब तुम्हें लिखनेकी इच्छा हो और तुममें उतनी शक्ति हो तभी मुझे लिखना।

मेरी तबीयत सुधरती जा रही है। प्रदर्शनीके सिलसिलेमें आश्रमसे मणिबहन तथा केशू आ गये हैं। अन्य लोगोंके [कल][2] पहुँचनेकी सम्भावना है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० १९४०) से
सौजन्य : रमणीकलाल मोदी

१. महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।

२. मूल अस्पष्ट होनेके कारण अच्छी तरह नहीं पढ़ा जा सका।

६२. पत्र : डॉ० एम० एस० केलकरको

कुमार पार्क, बंगलोर
२८ जून, १९२७

प्रिय डाक्टर,

आपका पत्र मिला। बेशक जब मैं, हम दोनोंके बीचकी दूरी बढ़नेकी बात कहूँ तो उसका मतलब हमारी विचार-पद्धतियोंकी दूरी बढ़ना ही होगा-उसका अर्थ हमारी स्नेह-भावनाकी दूरी बढ़ना कभी हो ही नही सकता। आपसे मेरा चाहे जितना भी मतभेद हो, आपके दृष्टिकोणसे मेरा दृष्टिकोण चाहे जितना भी भिन्न हो, आपके प्रति मेरा स्नेह कभी कम नही हो सकता। यह कहनेकी जरूरत नही कि मैं आपको खुद अपनी तरह सत्यान्वेषी मानता हूँ। लेकिन, मुझे ऐसा लगता है कि आपके निष्कर्ष बहुत ही अपर्याप्त तथ्योंपर आधारित हैं, और अगर आप अपने फलित ज्योतिष-सम्बन्धी पर्यवेक्षणों अथवा जिसे काला जादू कहते हैं, के आधारपर किसी विज्ञानकी नींव खड़ी करना चाहते हैं तो उसके लिए आपके पास ऐसे पुष्ट और पर्याप्त प्रमाण होने चाहिए जिनके सही होनेमें किसी प्रकार शंकाकी कोई गुंजाइश ही न हो। आपके साथ हुई बातचीतसे मैं जो-कुछ समझ पाया हूँ वह तो यही है कि आपके पास ऐसे तथ्य-प्रमाण नही जान पड़ते जिनके आधारपर आप अपने निष्कर्षोंके अन्तिम होनेका दावा कर सकें अथवा जिनके बलपर आप कोई प्रारम्भिक अनुमान-सिद्धान्त भी निकाल सकें। क्या आप ऐसा नही मानते कि जिन वस्तुओंको हम-जैसे ही ईमानदार और उत्साही लोगोंने खूब देख-परखकर अस्वीकार कर दिया है, उन्हें स्वीकार करनेमें हमें, आप जितनी सावधानी बरत रहे हैं, उससे बहुत अधिक सावधानी बरतनेकी जरूरत है?

क्या आप धूलिया जाकर एक दम्पतिका[1] इलाज करनेके लिए फीस लेनेको तैयार हैं? अगर तैयार हों तो मुझे यह सूचित करनेकी कृपा करेंगे कि आपकी फीस क्या होगी? पतिको बराबर कब्जकी शिकायत रहती है और मुझे लगता है कि इसमें उपवाससे लाभ होगा। पत्नीके रोगके बारेमें मुझे पर्याप्त जानकारी नही है।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी (एस० एन० १४१७४) की फोटो-नकलसे।

१. देखिए "तार: रामेश्वरदास पोद्दार को", २३-६-१९२७।

६३. पत्र : श्रीमती ब्लेयरको

कुमार पार्क, बंगलोर
२८ जून, १९२७

प्रिय श्रीमती ब्लेयर,

आप कितनी भली हैं। जब भी कोई. . .[1], आप उसे मेरे पास जरूर भेज देती हैं। मुझे उम्मीद है कि जिन लोगोंने अपने नाम[2] दिये हैं, वे अन्ततक दृढ़ रहेंगे। बेशक, दार्जिलिंगमें ऊन कातना बिलकुल ठीक है। मुख्य बात तो हाथसे कातना है। मैं आशा करता हूँ कि आप किसी दिन आश्रम आयेंगी। हाँ, मैं अब भी स्वास्थ्य-लाभके लिए आराम कर रहा हूँ, और यहाँ दक्षिण भारतमें जो थोड़ा-बहुत काम कर सकता हूँ, वह तो मुझे करना ही पड़ता है।

हृदयसे आपका,

श्रीमती ब्लेयर
माल विला ३
दार्जिलिंग

अंग्रेजी (एस० एन० १४१७५) की माइक्रोफिल्मसे।

६४. पत्र : जामिनीभूषण मित्रको

कुमार पार्क, बंगलोर
२८ जून, १९२७

प्रिय जामिनी बाबू,

आपका पत्र मिला। संघकी नीति तो यह है कि पृथक खादी-संगठन खोलने या उनमें कार्यकर्त्ताओंको भरती करनेके प्रयत्नोंको प्रोत्साहन न दिया जाये। हाँ, अगर इसके लिए पुख्ता कारण हों तो बात और है। यह तो सम्भव है कि आपके पास भी पर्याप्त कारण रहे हों। मगर मुझे तो उनकी कोई जानकारी है नहीं। जो भी हो, आपको संघसे अपनी बात उसके बंगाल-स्थित एजेंटके जरिये कहनी होगी, और जैसा कि आप जानते हैं, उसके बंगाल-स्थित एजेंट सतीश बाबू हैं। आपको सबसे पहले उनको सन्तुष्ट करना होगा। और अन्तमें, आप शायद यह न जानते हों कि

१. मूलमें यहाँ कुछ स्थान रिक्त है।

२. प्रतिदिन कमसे-कम आधा घंटा कातनेके लिए; देखिए "टिप्पणियाँ", ७-७-१९२७ के अन्तर्गत उपशीर्षक "दार्जिलिंगमें देशबन्धु-दिवस"।

बीमार रहनेके कारण, मैं संघकी कार्यवाहीमें इधर कोई सक्रिय रुचि नहीं ले पाया हूँ। इसलिए मेरा सुझाव है कि इस सम्बन्धमें आप आगे जो लिखा-पढ़ी करें वह अहमदाबादके पतेपर संघके मंत्रीके साथ ही करे। बेशक जरूरत पड़नेपर वे मुझसे सलाह लेते हैं। आपका पत्र मैं सतीश बाबूको भेज रहा हूँ ताकि समय बरबाद न हो।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत जामिनीभूषण मित्र
खालिसपुर आश्रम
पो० ओ० बी० खालिसपुर
(खुलना)

अंग्रेजी (एस० एन० १९७८४) की माइक्रोफिल्मसे।

६५. पत्र : द० बा० कालेलकरको

२८ जून, १९२७

चि० शंकर चाहे जो करे, उसके लिए तुम्हें तनिक भी दुःख नहीं होना चाहिए। वह बेचारा क्या करे, तुम्हारे पीछे दौड़े या काकीकी सीख माने अथवा उसके आसपास जो हवा बह रही है उसके साथ चले। मैं तो रोज यही अनुभव कर रहा हूँ कि मनुष्य बहुत पराधीन है। उसे स्वतन्त्रता केवल मोक्ष प्राप्त करनेकी है। इसके अतिरिक्त वह जो भी करता है उससे उसके पराधीनताके बंधन दृढ़ ही होते हैं। इसकी सचाईकी जाँच तुम आसानीसे कर सकोगे और तब फिर शंकर अथवा काकीकी बात ही नहीं सोचोगे।

बाल काकीके साथ रहना चाहे, इसमें आश्चर्यकी बात नहीं है। इसका इलाज तो यही है कि यदि हम काकीको आश्रममें न लानेका ही निर्णय करें तो हम उसे उसकी इच्छानुसार चुनाव करनेकी सुविधा दें। या तो वह काकीके साथ बेलगाँवमें अथवा वे जहाँ हो वहाँ या फिर आश्रममें, जहाँ हम और लोगोंको रखते हैं वहाँ, रहे। काकी आश्रममें रह ही नहीं सकती, इस निर्णयपर मैं अभी नहीं पहुँचा हूँ। बहुत समय हो गया काकीको लिखवाया था किन्तु अबतक उनका उत्तर नहीं मिला है।

गंगूबहन तुम्हारे पास रहते हुए गंगाबहनके सम्पर्कमें आये यह बात मुझे बहुत पसन्द है। गंगूबहन मुझे बिलकुल ही भोली बालिका जान पड़ती है। गंगाबहन आश्रमकी सभी बहनोंका एक अलग समाज बना लें, यह मुझे तो बहुत अच्छा लगेगा। वे धीरे-धीरे इसे आरम्भ करें और जो उसमें भाग लेना चाहें, वे भाग लें। आदर्शके रूपमें मुझे यह बात बहुत भायेगी कि आश्रममें पति-पत्नी अलग-अलग रहें। किन्तु फिलहाल इसपर अमल करना कठिन जान पड़ता है। किन्तु यदि हम आदर्शको स्वीकार कर लें तो कभी-न-कभी उसपर अमल भी किया जा सकेगा। इस समय तो

आदर्शकी चर्चा किये बिना, आश्रममें जितनी बहनें जहाँ-तहाँ रह रही हैं यदि वे सब एक साथ रहने लगें तो यह माना जायेगा कि हमने एक बड़ा मोर्चा मार लिया।

अहिंसाका मार्ग अन्य सभी मार्गोकी अपेक्षा कठिन है। सत्य, मार्ग नहीं, वह तो ध्येय है। वहाँतक पहुँचनेका एकमात्र मार्ग अहिंसा है। अतः यह आसान हो भी कैसे सकता है? अभी तो हम विचारोंकी अहिंसातक भी नहीं पहुँच सके हैं। कभी-कभी जब हमें अपना धर्म दीपककी भाँति स्पष्ट दिखाई देता है तब भी उसका पालन करनेकी शक्ति भी हममें नहीं होती। ऐसी स्थितिमें इतना ही बहुत है कि यथा-शक्ति आचार और विचारमें अहिंसाकी रक्षा करें और आनन्दसे रहें। यदि 'गीता'का उपदेश सही हो तो उसका अनुवाद करते हुए मुझे उसमें से यही अर्थ निकलता मालूम होता है। . . .[1] दूसरोंके दोष न देखनेमें ही तो अपने दोषोंको देखनेकी बात निहित है। हमें दूसरोंमें जो दोष दिखाई देते हैं वे एक समय हममें भी थे और एक प्रकारसे आज भी हैं। अपने और परायेके भेदको भूलनेकी चेष्टा करते हुए ही तो सूरदास आदि कवियोंने अपनेको कुटिल[2] आदि माना है।

[गुजरातीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।

सौजन्य : नारायण देसाई

६६. पत्र : सुरेन्द्रको

बंगलोर

ज्येष्ठ बदी १४ [२८ जून, १९२७][3]

चि० सुरेन्द्र,

तुम्हारा पत्र मिला। काकासाहबको मैंने एक लम्बा पत्र लिखा है। वे क्यों चिन्ता करते हैं, यह मैं समझ ही नहीं पाता। लक्ष्मीदासने अपने खादी-प्रचार सम्बन्धी नये विचार अभीतक तो मुझे नहीं बताये हैं। आसनोंके सम्बन्धमें मैंने किशोरलालको लिखा है और वे नाथजीसे विचार-विमर्श करके उसके बारेमें मुझे लिखेंगे। मैं चाहता हूँ कि तुमने जो-जो संस्थाएँ देखीं उनके बारेमें अपने अनुभव तुम मुझे लिखो। जैसे कि सासवड़में तुमने क्या देखा? सूपामें क्या देखा? इनमें हर जगह हमारे ग्रहण करने लायक क्या-क्या देखनेमें आया? जहाँतक हो सके हमें तो गुणग्राही बनना है, अतः जहाँ-कहीं हमें कोई अच्छी चीज दिखाई पड़े हमें उससे प्रसन्न होना चाहिए और उसका अनुकरण करना चाहिए। यदि कोई दोष दिखाई पड़े तो उसे सहन करना

१. साधन-सूत्रमें इसी प्रकार दिया गया है।

२. मो सम कौन कुटिल खल कामी।

३. सन् १९२७ में इस दिन गांधीजी बंगलोरमें थे।

चाहिए, क्योंकि हम दुनिया-भरसे यही तो आशा करते हैं कि उसे हमारे दोषोंको सहन कर लेना चाहिये।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (एस० एन० ९४०९) की फोटो-नकलसे।

६७. पत्र : नाजुकलाल नन्दलाल चोकसीको

बंगलोर
२८ जून, १९२७

भाई नाजुकलाल,

तुम्हारा और मोतीका पत्र मिला। मोतीके आलसी स्वभावको न उसके बुजुर्ग बदल पाये और न तुम ही। अब देखें उसकी सन्तान उसके इस आलस्यको दूर कर पाती है या नहीं? आशा है अब तुम्हारा स्वास्थ्य बिलकुल सुधर गया होगा। यह जानकर मुझे कुछ सन्तोष हुआ कि मोतीकी छूत तुम्हें नहीं लगी है। 'कुछ सन्तोष हुआ' इसलिए लिख रहा हूँ क्योंकि दुनियाकी रीत तो ऐसी है कि यदि दो व्यक्ति साथ रहें तो एकको दूसरेकी छूत लगे बिना रहती ही नहीं। इसलिए या तो तुम्हारी छूत मोतीको लगनी चाहिए-सो तो लगी नहीं यह साफ जाहिर है-या फिर मोतीकी तुम्हें। और मुझे यह भय बना रहता है कि शायद यह कभी तुम्हें लग जाये तो। जब प्रसवका समय आये तो मुझे लिखना और समय-समयपर लिखते रहना। अभी तो मैं इसी ओर रहूँगा।

बापूके आशीर्वाद

भाईश्री नाजुकलाल चोकसी
सेवाश्रम
भड़ौंच

गुजराती (एस० एन० १२१४०) की फोटो-नकलसे।

६८. पत्र : राजकिशोरी मेहरोत्राको

कुमार पार्क, बंगलोर
२८ जून, १९२७

चि० राजकिशोरी,

तुमको मैंने दो पत्र लिखे उसका कोई उत्तर मुझको नही मिला है। अब तुम्हारा पत्र मुझको मिलनेसे यह लिखता हूं। मुझको लिखो किस तरह तुम्हारी प्रतिज्ञाका पालन कर रही है। और लड़कोंके हाल बताओ। स्वास्थ्य कैसा है और वाचनमें क्या होता है? १० जुलाईतक मुझको पत्र इसी स्थानपर मिल सकते हैं। उसके बाद आश्रम।

बापूके आशीर्वाद

सी० डब्ल्यू० ६६५९ से।
सौजन्य : परशुराम मेहरोत्रा

६९. पत्र : बनारसीदास चतुर्वेदीको

बेंगलोर
२८ जून, १९२७

भाई बनारसीदासजी,

आपका पत्र मिला है। आश्रमसे उत्तरतक क्यों नहीं आया मैं नहीं समजता हूं। मैं इसकी खोज करता हूं। करीब दो महिनेतक तो मेरा आश्रममें जाना नही होगा ऐसा प्रतीत होता है। आपकी चिट्ठी बीमारीमें मिली उसमें कोइ खराबी न थी।

आपका,
मोहनदास

जी० एन० २५७२ की फोटो-नकलसे।

७०. पत्र : कुवलयानन्दको

कुमार पार्क, बंगलोर
२९ जून, १९२७

प्रिय भाई,

आपका पत्र[1] मिला, धन्यवाद। दुःखके साथ सूचित करना पड़ता है कि गत रविवारसे पहलेवाले रविवारको रक्त-चाप लेनेपर पता चला कि वह १५० से बढकर १६० पर पहुँच गया है। डाक्टर लोग इसके कारण का पता नही लगा पाये। फिर मैंने सर्वांगासनके रूपमें और मेरे द्वारा वर्णित जिस आसनको आपने हलासन कहा था, उसके रूपमें मैं जो-कुछ करता था, वह उनके सामने ही करके दिखाया। उन्होने मुझसे कुछ समयके लिए दोनो आसन बन्द कर देनेको कहा। सो मैंने बन्द कर दिये। वैसे भी, जैसा कि मैंने आपसे पिछले पत्रमें कहा था, रक्तचापके बढ़ते ही मैं आपकी सलाह मिलने तकके लिए सर्वांगासन बन्द कर देता। पिछले रविवारको फिर रक्तचाप लिया गया और इस बार वह ५ डिग्री कम आया। इसलिए मैं समझता हूँ कि अभी कुछ दिनोतक दोनों आसनोंको बन्द रखना ही मेरे लिए अच्छा होगा। मगर, कमसे-कम आपका उत्तर मिलनेतक तो उन्हे बन्द रखूँगा ही।

शेष सब पूर्ववत् चल रहा है—मतलब कि लम्बी साँस लेना, शवासन और मालिश। मैं अब मक्खन भी खाता हूँ और उससे कोई गड़बड़ी नही होती। अब उसकी मात्रा बढ़ाकर छोटे तीन चम्मच कर दी है। अब जबतक आप न कहें कि इस मात्राको बढ़ाना आवश्यक है तबतक इससे अधिक मक्खन लेनेका मेरा इरादा नही है। दूध अब भी ३० औंस ही लेता हूँ। अब मैं जितनी भाखरियाँ खाता हूँ, उन्हें तोल लेता हूँ और पकी हुई अवस्थामें उन भाखरियोंका वजन ३ औंस होता है। तनिक भी व्यतिक्रम होनेपर मेरा रक्त-चाप बढ़ जाता है; इसलिए क्या आप चाहेंगे कि मैं भुजंगासन करूँ? जहाँतक शारीरिक शक्तिका सम्बन्ध है, इन आसनोंको करनेमें मुझे कोई कठिनाई नही होती। और खुद मेरी तो समझमें नही आता कि जब इन आसनोंका शरीरपर कोई बुरा असर देखनेमें नहीं आता तो इनमें से कुछके कारण रक्त-चाप क्यों बढ़ना चाहिए। मेरा खयाल है, जिन लोगोका स्वास्थ्य ठीक होता है, उनका रक्त-चाप इनके कारण नही बढता। अगर आप यह बतायें कि रक्त-चापकी दृष्टिसे कौनसे आसन निश्चित रूपसे हानि-रहित है तो कृपा होगी।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजी (जी० एन० ५०५०) की फोटो-नकलसे।

१. २२ जून, १९२७ का पत्र।

७१. पत्र : अलवीको

२९ जून, १९२७

तुम्हारा सहज-सरल भावसे लिखा पत्र[1] मिला। उक्त पत्र तुमने लिखा तो सम्पादकके नाम है किन्तु मैं उसका उत्तर 'नवजीवन' द्वारा नही दूँगा क्योंकि तुम्हारे मनमें जो शंका उठी है उसका बहुतसे लोगोंके मनमें उठना सम्भव नही जान पड़ता। तुम्हारे पत्रसे मुझे सन्देह होता है कि तुमने 'गीता' का गहरा अध्ययन नही किया है। निष्काम कर्म और तटस्थ (भावसे किये जानेवाले) कर्ममें भेद नहीं है। तुमने ऐसा मान लिया है कि परोपकारका कार्य निष्काम कर्म ही होता है। किन्तु निष्कामता और परोपकार ये दो अलग-अलग गुण हैं। इस जगत्‌में परोपकारके सम्बन्धमें जगह-जगह आसक्तिका भाव दिखाई पड़ता है और इसी कारण परोपकारके नामपर अगणित पाप होते रहते हैं, हुए हैं और होते रहेंगे। मुझे 'गीता' अच्छी लगती है, इसका कारण यही है कि ग्रंथके अलौकिक कर्त्ताने स्वानुभवसे इस भेदको जान लिया था और सूक्ष्मतापूर्वक बारम्बार अलग-अलग शब्दोंमें तथा उन्ही मूल शब्दोंमें भी इस बातको 'गीता' मे स्पष्ट करनेका प्रयत्न किया है। निरामिषाहारके प्रचारमें सहायता करनेमें मेरा तो कोई स्वार्थ नहीं था किन्तु इसके बावजूद मैंने उसे भगवान्‌का कार्य माननेकी बजाय अपना काम मान लिया। और जहाँ ममताका भाव आया वहाँ तटस्थता कहाँ रही, निष्कामता कहाँ रही? उस कामको मैंने अपना माना इसी कारण मैंने उस काममें मुवक्किलके पैसे लगा देनेकी धृष्टता की। आज मैं यह स्पष्ट देख पा रहा हूँ कि ऐसा करनेमें सकामता थी, आसक्ति थी। खादी-कार्य तो परोपकारका ही काम है न? मान लो तुम्हारे पैसे मेरे पास पड़े हैं और मेरे मनमें उन्हें लौटा देनेकी इच्छा भी है। अब यदि मैं बिना-किसी आसक्तिके खादीका प्रचार कर रहा होऊँ तो उन पैसोंको तुरत लौटानेकी सामर्थ्य होते हुए भी मैं इस कार्यमें कदाचित् तुम्हारे पैसोंका उपयोग नहीं करूँगा। केवल खादी-प्रचारके लिए मिले हुए पैसोंसे खादीका व्यापार करना ही मेरा धर्म है और जहाँतक निष्काम भावसे तथा तटस्थतापूर्वक यह काम किया जा सकता है वहाँतक तो मैं इसमें दूसरे पैसोंका उपयोग कभी नहीं करूँगा। अब तो तुम समझ गये होगे कि मैं उक्त मामलेमें किस प्रकार अपनी तटस्थतासे डिगा। यदि मैंने अपने ही पैसे दिये होते तो कोई उलझन नही थी। तटस्थ रहनेका तात्पर्य सहायता न करना नहीं है। जहाँ सहायता करना आवश्यक जान पड़े वहाँ यदि सामर्थ्य हो तो अवश्य सहायता करनी चाहिए। किन्तु दूसरोंके साधनोंका बिना उनकी अनुमतिके उपयोग नहीं किया जा सकता तथा अनुमति लेनेमें भी विवेकसे तो काम लेना ही चाहिए। हा

१. इसमें पत्र-लेखकने गांधीजीसे पूछा था कि उन्हें
निरामिषाहारके प्रचारमें लगा देनेके अपने कार्यको निष्क

ली थी किन्तु मैं उसे अनुमति नहीं मानता। क्योंकि वे स्वतन्त्रतापूर्वक सोचने-विचारने और अपने अभिप्रायको व्यक्त करनेमें असमर्थ थे। उन्होंने केवल मुझपर विश्वास करके ही अपनी स्वीकृति दी थी और सो भी निश्चित रूपसे यह समझकर कि मैं उनके पैसोंका दुरुपयोग होने ही नहीं दूँगा। ऐसी स्थितिमें उनके पैसोंको जरा भी जोखिममें डालना मेरा धर्म नहीं था। इतनेपर भी यदि न समझे हो तो मुझे लिखना।

[गुजरातीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरी से।
सौजन्य : नारायण देसाई

७२. पत्र : जगमोहन डाह्याभाईको

२९ जून, १९२७

नीरोग माताके दूधमें वे सभी तत्त्व होते हैं जो कि शिशुके लिए आवश्यक हैं। शिशुके लिए माताका दूध परिपूर्ण खुराक है। इसलिए उसे फलोंका रस देनेकी तनिक भी आवश्यकता नहीं है। कभी-कभी फलोंका रस देना आवश्यक हो जाता है, उसका कारण यह है कि वहाँ माता संयमी नहीं होती, वह अपनी जीभको वशमें नहीं रख पाती या फिर वह किसी रोगसे पीड़ित होती है जिससे उसका दूध सर्वथा सात्विक या शक्तिप्रद नहीं रह जाता। इसलिए मैं तुम्हें यही सलाह देता हूँ कि यदि शिशु स्वस्थ रहता हो और दिनों-दिन उसकी शक्ति बढ़ती हुई नजर आती हो तो उसे दूधके अतिरिक्त और कोई चीज देनेकी आवश्यकता नहीं, किन्तु यदि शिशु रोये, वह सूखता जाये या ऐसा लगे कि उसके लायक पूरा दूध नहीं उतरता है तो मीठी नारंगी या ताजे अंगूरोंका रस थोड़ी मात्रामें अवश्य दिया जा सकता है।

जो वाक्य मैंने अपनी पुस्तकसे उद्धृत किये हैं वे दो या तीन महीनेके शिशु-पर लागू नहीं होते। किन्तु जब बालक बैठने लायक हो जाये, अपने हाथ-पाँव भली-भाँति चलाने लगे तथा उसके मसूड़े कुछ मजबूत हो गये हों और माताका दूध पी लेनेके बाद भी उसकी भूख न मिटती हो, उस समय उसे ताजे फल खिलानेकी आदत डालना ठीक होगा। संक्षेपमें, पहले उसे दूध देना चाहिए और उसके बाद फल देना आरम्भ करना चाहिए।

[गुजरातीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरी से।
सौजन्य : नारायण देसाई

७३. पत्र : फूलचन्द शाहको

[२९ जून, १९२७ के पश्चात्][1]

मेरी सलाह है कि तुम और देवचन्द भाई परिषद्का कारोबार अपने पास रखनेका आग्रह मत करो। और यदि तुम दोनोंको खादी, अन्त्यज-सेवा, राष्ट्रीय शिक्षा आदि रचनात्मक कार्योंके अतिरिक्त अन्य प्रवृत्तियोंमें भी रस हो और तुममें सामर्थ्य हो तो इस कामकी जिम्मेवारी अवश्य ले लेना और जो उचित हो सो करना। स्वयं मुझे तो उपर्युक्त प्रवृत्तियों तथा गोरक्षा आदि कार्योंके अतिरिक्त राजनीतिक प्रवृत्तिमें न तो अब रस मिलता है और न उसे करनेकी मुझमें सामर्थ्य ही है। इसलिए मैं दूर बैठा हुआ उसे देखता-भर रहता हूँ। इस सम्बन्धमें यदि कोई बात उठाता है तो उससे थोड़ी-बहुत चर्चा कर लेता हूँ और जहाँ लिखे बिना काम ही नही चलता वहाँ कुछ लिख भी देता हूँ। बाकी तो मैं बिलकुल तटस्थ रहता हूँ।

[गुजरातीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरी से।
सौजन्य : नारायण देसाई

७४. हमारा कलंक

श्रीयुत एस० डी० नाडकर्णी जो-कुछ लिखते हैं, बहुत साफ ढंगसे लिखते हैं, और उनके हृदयमें अस्पृश्योंके लिए बहुत स्थान है। अन्यत्र मैं उनका एक पत्र[2] शब्दशः छाप रहा हूँ। उसमें उन्होंने दलित वर्गोंके प्रति समस्त संवेदना उँड़ेल दी है। और सवर्णोंके प्रति अपने मनका क्षोभ निकालनेके लिए उन्होंने मुझपर प्रहार किया है, सो बिलकुल उचित ही किया है। मैं अपने प्रति उनके इस रोष का खयाल न करूँ तो भी मुझे लगता है कि अपनी तीव्र भावनासे वे इतने अभिभूत हो गये हैं कि वे यहाँ उस तर्क-बुद्धिको भी खो बैठे हैं, जो आम तौरपर बराबर उनका साथ देती है। मैं यह कहने का साहस करता हूँ कि यद्यपि अस्पृश्योंका प्रश्न एक विकट प्रश्न है, फिर भी न तो बम्बईमें आयोजित अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी बैठक और न एकता सम्मेलन ही इस विषयपर विचार करनेका उपयुक्त स्थान था। एकता सम्मेलन तो सिर्फ हिन्दू-मुस्लिम एकताके प्रश्नपर ही विचार करनेके लिए बुलाया गया था। अगर कहें कि इन बैठकोंमें अस्पृश्यताकी समस्यापर विचार किया जा सकता था तब तो वहाँ,

१. साधन-सूत्रमें यह पत्र २९-६-१९२७ के बाद दिया गया है।
२. २८ मई, १९२७ का पत्र।

उदाहरणके तौरपर बाल-विधवाओंके कष्टोंपर विचार करना भी उतना ही तर्क-सम्मत होता, क्योंकि उन्हें भी तो उतनी ही भयंकर यातनाएँ सहनी पड़ती हैं। किन्तु, इस पत्रकी किंचित् असंगतिके कारण उस अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सवालकी ओरसे आँखें बन्द नहीं की जा सकती जिसे श्रीयुत नाडकर्णीने बड़े ही जोरदार ढंगसे पेश किया है। मैं उनके इस कथनसे पूरी तरह सहमत हूँ कि अगर हिन्दू-मुस्लिम एकताके बिना स्वराज्य असम्भव है तो जबतक हिन्दू धर्मपर अस्पृश्यताके रूपमें लगे कलंकको नहीं मिटाया जाता तबतक वह और भी असम्भव है। इस प्रश्नसे मेरा कोई सरोकार नहीं कि समय आनेपर जो भी राजनीतिक संविधान तैयार किया जा सकता है, उसमें अस्पृश्योंका स्थान क्या होगा। अगर हम हिन्दुओंका मन साफ नहीं होगा तो अस्पृश्योंका स्थान ऊपर उठानेके लिए संविधानमें चाहे जो भी कृत्रिम व्यवस्थाएँ की जायें, सभी धूलिसात् हो जायेंगी। पृथक निर्वाचक-मण्डलों और संविधानमें किसी वर्ग-विशेषके साथ अलग ढंगके व्यवहारके विरुद्ध मैंने जो कारण पेश किये है, वे अस्पृश्योंके सम्बन्धमें भी उतने ही लागू होते हैं। अस्पृश्यताको दूर करनेका यह काम किसी भी कानूनी व्यवस्थाके द्वारा नहीं किया जा सकता। यह तो तभी हो सकता है जब हिन्दुओंकी आत्मामें इस बुराईके खिलाफ काम करनेकी प्रेरणा हो और वे स्वेच्छासे इस कलंकको मिटा दें। अस्पृश्योंके प्रति सवर्णोंका यह परम कर्त्तव्य है।

> **कहीं ऐसा न हो कि हम प्रतीक्षा ही करते रह जायें और भारतीयोंमें सबसे जरूरतमन्द समाजकी आवश्यकताओंकी ओर हमारा ध्यान तब जाये जब दलित वर्गोंके संघ और सवर्णों तथा अस्पृश्योंके बीचके दंगे हमारी आँखोंमें अँगुली डालकर उस समाजकी आवश्यकताओंके प्रति हमारी आँखें खोलें।**

यह भयावह वाक्य पत्रके अन्तिम हिस्सेमें आया है। इसके पीछे जो सचाई है, उससे इनकार करना असम्भव है। इस वाक्यको पढ़कर मुझे मेरे और स्वर्गीय हरिनारायण आपटेके[1] बीच हुई बातचीतका स्मरण हो आता है। यह बात गोखलेजीकी मृत्युसे ठीक पहलेकी है। हम लोग पूनामें 'सर्वेन्ट्स ऑफ इंडिया सोसाइटी'के कार्यालयमें बातचीत कर रहे थे। मैं यह समझा रहा था कि कतिपय मिशनरियोंकी तरह दलित वर्गोंके बीच असंतोष भड़काने और अशान्ति पैदा करनेके बजाय तथाकथित उच्च वर्गोंके लोगोंके बीच काम करना ज्यादा अच्छा है। मैं इस क्षेत्रमें नया-नया ही आया था। दलित वर्गके लोग जिस दुःखके सागरमें डूब रहे थे, उसकी थाह मैंने स्वर्गीय हरिनारायण आपटेकी तरह गहराईमें उतरकर नहीं ली थी। उस सुधारककी आत्मा शोषक वर्गों द्वारा दलित वर्गोंके साथ किये जानेवाले अन्यायोंके कारण लज्जासे गड़ी जा रही थी। एक दार्शनिक तटस्थताका भाव अख्तियार करते हुए भविष्यकी बात सोचकर मैंने उनसे पूछा कि क्या आप दलित वर्गोंको हमारे खिलाफ भड़कायेंगे। उन्होंने छूटते ही अत्यन्त रोषके साथ उत्तर दिया:

१. (१८६४-१९१९); मराठीके प्रसिद्ध उपन्यासकार।

हाँ, अगर मुझसे बने तो मैं आज ही उन्हें हम सबके खिलाफ विद्रोह करके हमसे अपना वह स्वत्व जबरदस्ती छीन लेनेको प्रेरित करूँ जो हम अपनी इच्छासे और कर्त्तव्य मानकर उन्हें देनेको तैयार नहीं हैं।

अस्पृश्यता-निवारणकी दिशामें काफी प्रगति हुई है। लेकिन, अब इससे कई गुना ज्यादा प्रगति अपेक्षित और आवश्यक है। अधिकांश सुधार खून-खराबीके बाद ही हो पाये हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि एक समय ऐसी स्थिति आ जाती है कि दलितोंमें और अधिक सहनेका धैर्य नहीं रह जाता, और फिर वे कानूनको अपने हाथमें लेकर, दुःख और क्रोधसे उन्मत्त होकर, अत्याचारियोंका सफाया कर देते हैं और फिर अपनी बारी आनेपर अवसर मिलते ही वे खुद ही अत्याचारियोंकी तमाम गलतियाँ दोहराने लगते हैं। इसलिए, यद्यपि आज, मैं समझता हूँ, मेरा मन भी हरिनारायण आपटेकी तरह ही क्षोभसे भरा हुआ है, फिर भी मैं यह आशा करता हूँ कि तथाकथित उच्चवर्गीय हिन्दू समय रहते अपने कदम वापस ले लेंगे और दलित वर्गोंके साथ न्याय करेंगे। इसमें अब काफी विलम्ब हो चुका है। साथ ही मैं यह भी आशा करता हूँ कि अगर वे लोग अपनी गलती महसूस करके प्रायश्चित्त नहीं करते तो भी दलित वर्गोंके लोग अन्यायियोंके खिलाफ विद्रोह करने-जैसा कोई अविवेकपूर्ण काम नहीं करेंगे। मुझे तो इसी आशाके साथ इस बुराईको दूर करनेके लिए काम करना है। मुझे इस आशासे काम करते जाना है कि वे कष्ट-सहन और आत्मशुद्धिकी प्रक्रियासे गुजरते हुए अपने स्वत्व और अपने हिन्दुत्वको दुनियाके सामने प्रतिष्ठित करेंगे और इस तरह यह सिद्ध कर देंगे कि वे उन लोगोंकी अपेक्षा श्रेष्ठ हिन्दू हैं जो आज अपनी करतूतोंसे मनुष्य और ईश्वरकी दृष्टिमें अपने-आपको और हिन्दू धर्मको कलंकित कर रहे हैं। जिन पुरुषों और स्त्रियोंके मनमें अस्पृश्योंके लिए श्रीयुत नाडकर्णीकी ही तरह संवेदना और सहानुभूति है, वे सब इस बीच अस्पृश्योंके कष्टों और कठिनाइयोंके हिस्सेदार बनकर खुद भी अस्पृश्योंकी तरह जीवन बिता सकते हैं और इस तरह उनके सच्चे हितैषी, सच्चे साथी बन सकते हैं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ३०-६-१९२७

७५. चित्तरंजन सेवा-सदन

कलकत्ताके प्रसिद्ध चिकित्सा-शास्त्री और अखिल वंगीय देशबन्धु स्मारक न्यास-मण्डलके सदस्य डॉ० विधानचन्द्र रायने सेवा-सदनके लिए पाँच लाख रुपये देनेके लिए एक अपील जारी की है। पाठकोंको स्मरण होगा कि यह संस्था उस जमीनपर बनी हुई है जो देशबन्धुने अपने जीवन-कालमें ही न्यासियोको सौंप दी थी। इस जमीनका कुछ हिस्सा कर्जके एवजमें रेहन पड़ा हुआ था। देशबन्धुकी मृत्युके तुरन्त बाद स्मारक-कोषके लिए जो धन एकत्र किया गया, उसमें से वह कर्ज चुका दिया गया और एक वर्षसे अधिक समयसे वहाँ सभी साधनोंसे युक्त एक सुव्यवस्थित अस्पताल और दवाखाना चलाया जा रहा है। इस एक वर्षमें वहाँके चिकित्सालयमें बाहर रहकर इलाज करानेवाले २२,००० रोगियोंका इलाज किया गया, जिनमें से ७,०२३ नये रोगी थे। जिन रोगियोका अस्पतालमें भरती करके इलाज किया गया उनकी संख्या ५७९ है, यद्यपि रोगियोके लिए अस्पतालमें कुल २३ खाटें ही हैं। न्यासी लोग ३२ और खाटोकी व्यवस्था करना चाहते हैं। इसमें कोई सन्देह नही कि यह संस्था एक वास्तविक जरूरतको पूरा कर रही है और इसका विस्तार आवश्यक है। विस्तारके लिए और पैसेकी जरूरत होगी ही। जिन लोगोके मनमें देशबन्धुकी स्मृतिके प्रति सम्मान और श्रद्धा है और जो बीमार लोगोंकी सहायता करनेकी आवश्यकता समझते हैं, वे न्यास-मण्डलकी अपीलपर धन देने में विलम्ब नही करेंगे। इस संस्थाकी परिपूर्ण रिपोर्ट प्रकाशित हुई है। इसमें आय-व्ययका प्रमाणित विवरण और सस्थामें इलाज किये गये रोगियोका विश्लेषण दिया गया है। रिपोर्ट डॉ० विधानचन्द्र राय, १४८, रसा रोड साउथ, कलकत्तासे मँगाई जा सकती है। चन्देकी रकमें मन्त्री, देशबन्धु स्मारक न्यास, ३६, वेलिंग्टन स्ट्रीट, कलकत्ताके पतेपर भेजी जा सकती हैं या देशबन्धु स्मारक न्यास, सैन्ट्रल बैंक ऑफ इंडिया लिमिटेड, १०० क्लाइव स्ट्रीट, कलकत्ताके खातेमें जमा कराई जा सकती हैं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ३०-६-१९२७

७६. बंगलोर खादी-प्रदर्शनी

श्रीयुत चक्रवर्ती राजगोपालाचारी और गंगाधरराव देशपाण्डे बंगलोरमें होनेवाली आगामी खादी-प्रदर्शनीको पूर्ण रूपसे सफल बनानेके लिए जोरदार तैयारी कर रहे हैं। वे आकारके बजाय प्रकारको ध्यानमें रखकर चल रहे हैं, इसलिए उन्होंने प्रदर्शनी-की व्याप्तिको जान-बूझकर सीमित रखा है। इसी कारण यह प्रदर्शनी अखिल भारतीय प्रदर्शनी न होकर दक्षिण भारतीय प्रदर्शनी होगी। लेकिन, तकनीकी चीजोंका पूरा प्रदर्शन हो सके और यह प्रदर्शनी एक ऐसा पदार्थपाठ प्रस्तुत कर सके जिससे लोग काफी-कुछ सीख सकें, इस खयालसे वे अन्य प्रान्तोंको भी आवश्यक सहायता देनेके लिए आमन्त्रित कर रहे हैं। इसलिए जो लोग ओटनेसे लेकर हाथसे बुनने तककी खादी तैयार करनेकी तमाम विधियाँ सीखना, इन प्रक्रियाओंमें प्रयुक्त साधनोंका अध्ययन करना और विशेषज्ञों द्वारा उनको चलाये जाते देखना चाहते हैं, वे प्रदर्शनी देखने अवश्य जायें। मैसूरमें खादीके भविष्यके विषयमें यह एक शुभ संकेत है कि राज्यने प्रदर्शनीके खर्चके लिए ५०० रुपयेका अनुदान दिया है, और उद्योग-निदेशक प्रदर्शनी-समितिके सदस्य बन गये हैं। सच तो यह है कि खादीका आर्थिक और लोक-कल्याणकारी पक्ष इतना अधिक महत्त्वपूर्ण है कि आश्चर्य इस बातपर होता है कि राजाओं-महाराजाओंने अबतक इस आन्दोलनको, जितनी चाहिए, उतनी सहायता क्यों नहीं दी। हर व्यक्ति इस बातको स्वीकार करता है कि करोड़ों ग्रामवासियोंको किसी सहायक धन्धेकी आवश्यकता है। ग्रामोद्धारके सम्बन्धमें देशमें बीसियों कागजी योजनाएँ नित्य वितरित की जा रही हैं। लेकिन, जिस तरह खादी-योजना सबके लिए उपयोगी है, उस तरह और कोई योजना उपयोगी नहीं है। और जहाँतक मैं जानता हूँ, जितने बड़े पैमानेपर खादी-योजनाको आजमाया जा रहा है, उतने बड़े पैमानेपर और किसी योजनाको नहीं आजमाया गया। यह कोई छोटी-मोटी सफलता नहीं है कि आज कमसे-कम १,५०० गाँवोंमें खादी-योजनाको क्रियान्वित किया जा रहा है।

इस बातसे किसीको—भले ही वह सरकारी अधिकारी ही क्यों न हो—डरना नहीं चाहिए कि खादीका एक राजनीतिक पहलू भी है। सच तो यह है कि जब खादीसे किसी राजनीतिक परिणामके उत्पन्न होनेकी बात कही जाती है तो बहुतसे सुधी राजनीतिज्ञ भी उसपर हँसते हैं। और अगर खादीके सम्बन्धमें 'राजनीतिक' शब्दका प्रयोग उसी अर्थमें किया जाये जिस अर्थमें कौंसिलोंके सन्दर्भमें किया जाता है तो उनका हँसना वाजिब भी होगा। खादीका राजनीतिक महत्त्व ठीक उसी अर्थमें है जिस अर्थमें शिक्षा, सहकारी योजनाओं अथवा मद्य-निषेधका है। किसी भी देश द्वारा उठाये किसी भी प्रगतिशील कदमका राजनीतिक प्रभाव होना अनिवार्य है। चाहे वाइसराय हो, चाहे राजा-महाराजा अथवा कोई अन्य व्यक्ति, अगर वह देशद्रोही नहीं है तो हिन्दू-मुस्लिम एकता स्थापित करनेके लिए सक्रिय प्रयत्न करना

उसका कर्तव्य है, लेकिन फिर भी इस बातपर कभी कोई नहीं हँसा कि हिन्दू-मुस्लिम एकताका जबरदस्त राजनीतिक महत्त्व है। न मैंने कोई ऐसा आदमी ही देखा है जो इस एकताको बढ़ावा देनेके आन्दोलनसे इस कारण अलग खड़ा हो कि इसका जबरदस्त राजनीतिक महत्त्व है। वास्तविकता यह है कि खादीकी पूर्ण सफलता और तज्जनित राजनीतिक प्रभाव सभीके सहयोग तथा समर्थनपर ही निर्भर करता है – चाहे वह राजनीतिक व्यक्ति हो या गैर-राजनीतिक, राजा हो या भिखारी, जमींदार हो या उसकी रैयत। इसलिए खादीको राजनीतिक उथल-पुथलसे अलग रखनेका पूरा प्रयत्न किया जा रहा है। यह विद्रोहका चिह्न नहीं बल्कि स्वत्वाग्रह, आत्मनिर्भरता और इस संकल्पका द्योतक है कि हम गरीब और अमीर, मजदूर और पूँजीपतिके बीचका कृत्रिम भेद मिटाकर दोनोंमें एक जीवन्त सम्बन्ध और एकता कायम करेंगे। इसलिए मैं यह आशा कर रहा हूँ कि आगामी प्रदर्शनीको सभी वर्गोंका ठोस सहयोग-समर्थन प्राप्त होगा – बंगलोर छावनी (कैंटोनमेंट)की यूरोपीय बस्तीके लोगोंका भी। शेष लोगोंके साथ उनका सहयोग प्राप्त करके भी मुझे उतनी ही खुशी होगी। सच तो यह है कि नन्दी और बंगलोरमें स्वास्थ्य-लाभके लिए मेरे विश्रामके दौरान जो यूरोपीय मित्र मुझे देखने आते रहे हैं, उन सबसे मैंने निस्संकोच भावसे खादीका सन्देश, अर्थात् भारतके करोड़ों क्षुधार्त लोगोंका सन्देश स्वीकार करनेका अनुरोध किया है।

अब दो शब्द मैं बंगलोरके फैशनपरस्त लोगोंसे कहूँगा। मैं देखता हूँ कि त्रिचनापल्लीके एक अध्यापक पहनावे-ओढ़ावेके सम्बन्धमें एक न्यूनतम स्तरको अपनाने की वकालत करते रहे हैं। मैंने यह भी देखा कि अभी कुछ ही दिन पहले श्रीयुत श्रीनिवास शास्त्रीने एक सार्वजनिक सभामें उस चीजके सम्बन्धमें अपना विचार व्यक्त किया जिसे किसी हदतक बंगलोरके फैशनपरस्त लोगोंकी जरूरतसे ज्यादा पोशाक पहननेकी प्रवृत्ति कहा जा सकता है। और फिर मैंने देखा कि खादीमें विश्वास करनेवाले लोगोंके मनमें बंगलोरकी फैशनपरस्तीके कारण खादीको अपनानेमें एक प्रकारका भय और संकोच है। मेरा अनुरोध है कि लोग फैशनकी प्रवृत्तिको दूर करनेके लिए हिम्मतसे काम ले, क्योंकि इस प्रवृत्तिको अपने भूखे पड़ोसियोंकी कीमतपर ही कायम रखा जा सकता है। पैसेवाले लोग वस्त्राभरण या अन्य साजसज्जाके सम्बन्धमें बेशक पूरी सुरुचि बरतें, लेकिन मेरा अनुरोध यह है कि वे इस बातमें अपनी स्थितिकी तुलना अपने भूखे-नंगे भाइयोंसे करते हुए उस अनुपात और औचित्यका तो खयाल रखें ही, जिसका खयाल हर सुव्यवस्थित समाजमें बराबर रखा जाता है। पहनावेकी दृष्टिसे भारतका न्यूनतम मान एक लँगोटी है, जिसमें $\frac{1}{8}$ वर्गगज कपड़ा भी नहीं लगता। अतः हमारे फैशनका इस न्यूनतम मानसे कोई मेल तो बैठना चाहिए। जो लोग भारतको कर्म करनेके लिए जाग्रत करनेके उद्देश्यसे इस न्यूनतम मानको ऊपर उठाना चाहते हैं और भारतकी आवश्यकताओंमें वृद्धि करना चाहते हैं, वे ऐसा न सोचें कि गरीबोंकी उपेक्षा करके पहले सिर्फ अपनी ही आवश्यकताओंमें वृद्धि करके वे इस उद्देश्यको पूरा कर लेंगे। यह तभी पूरा होगा जब कि वे खुद अपनी आवश्यकताओंके

अनुपातमें गरीबोंको भी अपना जीवन-स्तर ऊपर उठानेके लिए सक्षम बनायेंगे और प्रेरित करेंगे। इन करोड़ों लोगोंको अपना जीवन-स्तर ऊपर उठानेमें सक्षम बनाने और उसके लिए प्रेरित करनेको फैशनपरस्त मध्यम वर्गके लिए जो एक व्यापक, प्रभावकारी और शीघ्र फल देनेवाला उपाय है, वह है खादीको अपनाकर उनकी कमाईमें दो पैसेकी वृद्धि करना। बंगलोरमें खादी-कार्यके लिए आर्थिक सहायता बहुतने लोगोंने दी है। लेकिन इतना ही पर्याप्त नहीं है। जबतक लोग खादी नहीं पहनते, तबतक वह वास्तविक प्रगति नही कर सकती। इसलिए बंगलोर तथा आसपासके जिलोंके लोगोंसे मेरा अनुरोध है कि वे सिर्फ प्रदर्शनीको देखकर और इस आन्दोलनको आर्थिक सहायता देकर ही सन्तुष्ट न हो जायें, बल्कि अपनी पोशाकोंके लिए खादीको अपनाकर गरीबोंके साथ तादात्म्य स्थापित करें।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, ३०-६-१९२७

७७. टिप्पणी

उनकी स्मृतिके प्रति न्याय करनेके लिए

'स्टोरी ऑफ माई एक्सपेरीमेंट्स विद ट्रुथ' (आत्मकथा), भाग ३, अध्याय १९ में[1] सिस्टर निवेदिताके विषयमें लिखी मेरी कुछ बातोंपर 'माडर्न रिव्यू' में[2] एक टिप्पणी प्रकाशित हुई है। मेरी बातोंको उद्धृत करनेके बाद पत्रिकामें निम्न टिप्पणी दी गई है:

> पूरी परिस्थितिका विशद विवरण दिये बिना 'द स्प्लेंडर दैट सराउंडेड हर' (उनके आसपासकी चमक-दमक) के उल्लेखसे पाठकोंके मनमें सिस्टर निवेदिताके रहन-सहनके तरीकेके बारेमें गलत धारणा पैदा होती है। सचाई यह है कि जब श्री गांधीने उनको देखा, उस समय वे अमेरिकी वाणिज्य दूतावासमें श्रीमती ओल बुल और कुमारी जोजेफिन मैक्लियडकी अतिथि थीं; और इसलिए उस चमक-दमकके लिए वे स्वयं जिम्मेवार नहीं थीं। उनके सभी मित्रों और परिचितोंको यह बात भली-भाँति ज्ञात है कि वे बोसपाड़ा लेन, बाग बाजारके एक टूटे-फूटे मकानमें संन्यासिनोकी तरह अत्यन्त सादे ढंगसे रहती थीं।[3]

१. यह यंग इंडियाके १४ अप्रैल, १९२७ के अंकमें प्रकाशित हुआ था।

२. जुलाई, १९२७ के अंकमें।

३. टिप्पणीके शेष अंशका अनुवाद यहाँ नहीं दिया जा रहा है। इस अंशने लेखकने अंग्रेजीके 'वॉलॅटाइल' शब्दके प्रयोगपर आपत्ति की थी। उनका कहना था कि अव्वल तो इन्हें यही बात नहीं मालूम है कि श्री गोखलेने सिस्टर निवेदिताके बारेमें गांधीजीसे अंग्रेजीमें बातचीत की थी या नहीं और की भी थी

इस भूल-सुधारको प्रकाशित करते हुए मुझे हर्षका अनुभव हो रहा है। वास्तव-में 'मॉडर्न रिव्यू' में इस टिप्पणीको पढ़नेके बाद ही मुझे मालूम हो पाया कि मैं स्वर्गीय निवेदितासे उनके घरपर नहीं बल्कि अन्यत्र, जहाँ वे अतिथिके रूपमें रह रही थी, मिला था। पाठकोंको मेरी दुखद सीमाओको स्वीकार करके चलना चाहिए। बहुत चाहते हुए भी मै बहुत कम पढ़ पाता हूँ — इतना कम कि जिन लोगोंने आधुनिक भारतके निर्माणमें योगदान दिया है, उन सबकी जीवनियाँ भी नही पढ़ पाया हूँ। मुझे सन्तोष सिर्फ इस बातका है कि इसका कारण मेरा आलस्य नही, बल्कि कर्म-संकुल जीवन रहा है। अपनी युवावस्थाके प्रारम्भसे ही मेरा जीवन आँधी-तूफानोंसे भरा रहा है, जिससे मुझे अधिक पढ़नेका समय नहीं मिल सका। मैं निश्चयपूर्वक यह नही कह सकता कि इससे कुल मिलाकर मुझे लाभ हुआ है अथवा हानि, लेकिन अगर इससे लाभ हुआ है तो मै कहूँगा कि वह अनायास ही हुआ है, इसके लिए मैंने कोई प्रयत्न नहीं किया है। अतः इसके लिए मैं किसी प्रकारके श्रेयका दावा नही कर सकता। और मैं हर सप्ताह जो अपनी जीवन-कथा[१] लिख रहा हूँ, उसमें अगर कुछ स्त्रियो और पुरुषोके विषयमें भी लिखता हूँ तो वह सिर्फ इसलिए कि जहाँतक मुझसे बन सके वहाँतक यह दिखा सकूँ कि सत्यके अन्वेषणमें मेरा मस्तिष्क किस प्रकार काम करता रहा है। इसलिए मै जीवनके उन असंख्य प्रसंगोंकी कोई चर्चा नही करता जो निश्चय ही अन्यथा बड़े रोचक समझे जायेंगे, और इसी प्रकार बहुत-सी स्त्रियों और पुरुषोंका भी उल्लेख छोड़ देता हूँ। और इस कथामें मुझे जिन व्यक्तियोंका उल्लेख करना पड़ता है उनके बारेमें मै जो-कुछ लिखूँ उसे अगर पाठक मेरा आखिरी फतवा अथवा तथ्यकी दृष्टिसे सर्वथा सही मान लें तो यह उन लोगोंके प्रति और मेरे साथ भी अन्याय करना होगा। ऐसे उल्लेखोंके बारेमें यही समझना चाहिए कि इनमें मैंने, जिस समयसे इन उल्लेखोंका सम्बन्ध है, उस समय मेरे मनपर क्या प्रतिक्रिया हुई, इसी बातको प्रकट किया है। इस कथामें मैंने सिस्टर निवेदिता, स्वामी विवेकानन्द, महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर और अन्य लोगोंकी चर्चा सिर्फ अपने सत्यके आकुल अन्वेषणके प्रयत्नोंको समझाने और इस मुद्देको स्पष्ट करनेके लिए की है कि उन दिनों भी दक्षिण आफ्रिकामें मैं जो राजनीतिक कार्य कर रहा था वह उस अन्वेषणका अभिन्न अंग था और उस अन्वेषणको मैंने कभी भी राज-नीतिक कार्यके सम्मुख गौण नही होने दिया। इसलिए मैंने 'मॉडर्न रिव्यू' की इस टिप्पणीको पढ़कर अवसर मिलते ही तुरन्त बड़े हर्षके साथ यहाँ उद्धृत किया है।

तो इस शब्दका प्रयोग किया था अथवा नहीं, क्योंकि यंग इंडियामें प्रकाशित उक्त अध्याय गुजराती नवजीवनसे अनूदित है। इसके बाद उन्होंने 'वोलेंटाइल' शब्दके अंग्रेजी शब्दकोषोंमें दिये गये अर्थोंका हवाला देते हुए इसका मतलब अस्थिर, परिवर्तनशील, चंचल आदि बताया था और कहा था कि इसके विपरीत सिस्टर निवेदिता वास्तवमें बहुत गम्भीर और स्थिरचित्त थीं और हिन्दू-धर्म तथा हिन्दुस्तानके प्रति उनकी आस्था बराबर दृढ़ बनी रही। लेखकने गांधीजीके इस कथनसे सहमति प्रकट की थी कि हिन्दू धर्मके प्रति उनका स्नेह उमड़ा पड़ता था।

१. तात्पर्य गांधीजीकी आत्म कथाके अध्यायोंसे है, जो गुजराती नवजीवनमें २९-११-१९२५ और यंग इंडियामें ३-१२-१९२५ से प्रकाशित हो रहे थे।

अब 'वॉलॅटाइल' शब्दके प्रयोगके बारेमें। यद्यपि यह अनुवाद मैंने नहीं किया है, फिर भी मैं इस शब्दके प्रयोगकी जिम्मेदारीसे अपनेको वरी नहीं मान सकता, क्योंकि आम तौरपर मैं इन अनुवादोंका संशोधन कर दिया करता हूँ, और मुझे याद है कि मैंने इस विशेषणके बारेमें महादेव देसाईसे बातचीत की थी। हम दोनोंके मनमें ऐसी शंका थी कि इस विशेषणका प्रयोग शायद ठीक न हो। चुनाव 'वॉलॅटाइल', 'वायलेंट' (प्रबल) और 'फैनेटिकल' (उग्र)में से करना था। 'वायलेंट' और 'फैनेटिकल'को ज्यादा सख्त माना गया। महादेवने 'वॉलॅटाइल' शब्द चुना था और मैंने उसपर स्वीकृति दे दी। लेकिन उसका प्रयोग करते समय न उनके मनमें और न मेरे ही मनमें वह अर्थ था जो अंग्रेजीके शब्दकोषोंमें दिया गया है।

गोखलेने किस शब्दका प्रयोग किया था, यह मुझे याद नहीं है। मूल लेखमें मैंने 'तेज' शब्दका प्रयोग किया है। सिस्टर निवेदिताके साथ हुई अपनी बातचीत मुझे पूरी तरह याद है। लेकिन मैं यहाँ उसका वर्णन नहीं करना चाहता। जिस व्यक्तिको हिन्दू धर्म और हिन्दुस्तानसे इतना अधिक स्नेह था, उसकी स्मृतिको कोई भी अनुवाद या मूल लेख दूषित नहीं कर सकता। उसे लोग सदा कृतज्ञतापूर्वक हृदयमें सँजोकर रखेंगे।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, ३०-६-१९२७

७८. काशी विद्यापीठ

'यंग इंडिया'के पाठक जानते हैं कि काशी विद्यापीठ अभीतक जीवित कुछ-एक राष्ट्रीय संस्थाओंमें से एक है। काशी विद्यापीठके पंजीयक (रजिस्ट्रार) द्वारा भेजी गई निम्नलिखित सूचना[1] मैं सहर्ष प्रकाशित कर रहा हूँ।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, ३०-६-१९२७

७९. सन्देश : 'फॉरवर्ड'को[2]

३० जून, १९२७

यदि हम स्वराज्यके और देशबन्धुने हमारे लिए जो महान् त्याग किया उसके पात्र बनना चाहते हैं, तो हमें राष्ट्रके हेतु कुछ ठोस एवं रचनात्मक कार्य कर दिखाना चाहिए। जबतक खादीके अलावा कोई और ऐसी चीज जो इसीकी तरह सबकी पहुँचके भीतर हो, खादीका स्थान नहीं ले लेती तबतक हमें इसीके लिए काम करना है।

१. सूचना यहाँ उद्धृत नहीं की जा रही है। इसमें विद्यालयका सत्र पुनः आरम्भ होनेकी तिथि, पढ़ाये जानेवाले विषय, भाषाएँ, दाखिलेके लिए निम्नतम योग्यता आदिका विवरण था।

२. देशबन्धु अंकके लिए।

अगर हम खादी और चरखेको अपनी प्रतिष्ठाके प्रतिकूल और ध्यान न देने योग्य मानें तो खतरा है कि भारत माता भी हमें ध्यान देने योग्य न मानेंगी।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, १-७-१९२७

८०. पत्र : पी० आर० सुब्रह्मण्य शास्त्रीको

कुमार पार्क, बंगलोर
३० जून, १९२७

प्रिय भाई,

श्रीयुत राजगोपालाचारीने मुझे आपका इसी २९ तारीखका पत्र दिखाया। मैं अभी इतना अच्छा नहीं हो पाया हूँ कि लोगोंसे मिलकर उनके साथ लम्बी बातचीत कर सकूँ। इसलिए वैसे तो अगर आप आना चाहें किसी भी दिन ४ और ५ के बीच आ सकते हैं, लेकिन मैं आपसे कोई लम्बी बातचीत नहीं कर पाऊँगा। यदि आपके पास कहनेको कुछ विशेष हो तो मेरा सुझाव यह है कि आप उसे एक साधारण कागजके एक ओर यथासम्भव अधिकसे-अधिक संक्षेपमें लिखकर मुझे भेज दें।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत पी० आर० सुब्रह्मण्य शास्त्री,
५५, मल्लेश्वरम्
बंगलोर

अंग्रेजी (एस० एन० १४१७७) की फोटो-नकलसे।

८१. पत्र : टी० आदिनारायण चेट्टियारको[1]

कुमार पार्क, बंगलोर
१ जुलाई, १९२७

प्रिय भाई,

मुझसे लौटती डाकसे उत्तर भेजनेकी अपेक्षा करना तो बड़ी भयानक बात है। यह संयोग ही है कि मैं आपके इस पत्रका उत्तर उसके मिलते ही दे पा रहा हूँ।

मुझे पूरी आशा है कि आपने अक्षत-कौमार्य विधवाओंका पुनर्विवाह और वय-प्राप्तिके बाद ही लड़कियोंका विवाह करनेके जिन प्रस्तावोंका उल्लेख किया है, उनके

१. यह पत्र २ जुलाईको सेलममें प्रारम्भ होनेवाले "आर्य वैश्य सम्मेलन" के लिए सन्देशके रूपमें भेजा गया था।

सम्बन्धमें आप आगे प्रगति करेंगे। इन दोनोंको मैं बुनियादी सुधार मानता हूँ, और ये तो हिन्दू धर्म, भारत और अपने स्त्री-समाजके प्रति हिन्दुओंका न्यूनतम कर्त्तव्य है।

आशा है, आपका सम्मेलन दलित वर्गो और चरखेको भी नहीं भुलायेगा।

हृदयसे आपका

श्रीयुत टी० आदिनारायण चेट्टियार
तेरहवाँ आर्य वैश्य सम्मेलन
सेलम

अंग्रेजी (एस० एन० १४१७९) की माइक्रोफिल्मसे।

८२. पत्र : सरोजिनी नायडूको

कुमार पार्क, बंगलोर
१ जुलाई, १९२७

आशा है, मेरा पत्र मिल गया होगा। यह पत्र आपको एन्ड्रयूजका तार[1] भेजनेके लिए ही लिख रहा हूँ। जिस सिद्धान्तकी स्थापनाके लिए आप दक्षिण आफ्रिकामें इतनी बहादुरीसे डटी रही उसकी इस सफ़लतासे मेरी दृष्टिमें आपकी ऊँचाई, अगर किसी स्त्रीके विषयमें ऐसा कहना अनुचित न लगे तो, काफी बढ़ी है। इसपर आपको हर तरहसे गर्व करनेका अधिकार है।

आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजी (एस० एन० १२३६३) की फोटो-नकलसे।

१. २५ तारीखको भेजा यह तार इस प्रकार था : "मलान समझौतेके प्रति हृदयसे वफादार। विरोधी संशोधनोंको अस्वीकार कर दिया। ईश्वरकी कृपा है कि सबसे बुरा दौर बीत गया। सरोजिनीको बतायें।"

८३. पत्र : हरीन्द्रनाथ चट्टोपाध्यायको

कुमार पार्क, बंगलोर
१ जुलाई, १९२७

प्रिय भाई,

आपका पत्र मिला। मैं १९२८ के जून महीनेके अन्तकी प्रतीक्षा करूँगा।

आपकी नजरमें जो बहन है, उसके बारेमें तो आपने मुझे कुछ बताया ही नहीं है। इसलिए मैं केवल आम जानकारी ही दे सकता हूँ। कह सकते हैं कि आश्रम एक छोटा-मोटा कारखाना ही है, स्त्री-पुरुष सभी कोई-न-कोई कार्य करनेमें व्यस्त रहते हैं। उनकी सारी प्रवृत्तियाँ मुख्यतः ओटाई-धुनाई, कताई और बुनाईपर केन्द्रित हैं, और स्त्री-पुरुष, लड़के-लड़कियाँ सभी इन कार्योंमें हाथ बँटाते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि आश्रममें ठीक ढंगका एक स्कूल भी है, जहाँ किताबी शिक्षा दी जाती है। लेकिन किताबी शिक्षाके साथ-साथ व्यावसायिक शिक्षाकी उपेक्षा नहीं की जाती। इसलिए कोई यह भी सोच सकता है कि वहाँ किताबी शिक्षा व्यावसायिक शिक्षाके सामने गौण है। ऐसा कहना ठीक ही होगा कि अंग्रेजी जबरन् पढाई जाती है। वहाँ हम अंग्रेजीके अध्यापनको बढ़ावा नहीं देते, और अंग्रेजी पढानेसे पहले संस्कृत और हिन्दीका ज्ञान करानेके नियमका न्यूनाधिक पालन किया जाता है। इसलिए अगर यह बहन हिन्दी न जानती हो, या यदि वह सब-कुछ अंग्रेजीके माध्यमसे ही करना चाहती हो अथवा, उसे सिर्फ पढ़ने-लिखनेसे ही वास्ता हो तो आश्रममें तो उसकी स्थिति पानीसे दूर मछलीकी तरह होगी। अब अगर आप आश्रमके बारेमें विस्तारसे जानना चाहें तो मुझे लिख भेजें। मैं आपका पत्र उत्तरके लिए सही व्यक्तिको दे दूंगा।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी (एस० एन० १२७७५) की फोटो-नकलसे।

८४. पत्र : जे० डब्ल्यू० पेटावेलको

कुमार पार्क, बंगलोर
१ जुलाई, १९२७

प्रिय भाई,

आपके दो पत्र मिले। क्या यह मजेदार बात नहीं है कि हालांकि दोनों पत्र काफी लम्बे हैं, लेकिन मैंने जो सवाल[1] रखा है, उसके बारेमें उनमें नीत्रे तौरसे कुछ नहीं कहा गया है? बेल्जियम क्या-कुछ कर रहा है, स्विटजरलैंडमें क्या-क्या हो रहा है, इसके बारेमें बताना तो आपके लिए निश्चय ही बहुत आसान है। मगर आप लिखनेके अलावा और क्या खास 'काम' कर रहे हैं?

मैं एक सवाल और पूछता हूँ। मेरे पास लगभग ८० एकड़ जमीन है, जिसपर हम लगभग २०० व्यक्ति, स्त्री-पुरुष और बच्चे और इसलिए बच्चोंके माता-पिता भी रह रहे हैं। हम थोड़ी-बहुत खेती करते हैं और दूध वगैरहसे सम्बन्धित काम भी करते हैं। अब आप ही बताइए कि आपकी योजनाके अनुसार हमें क्या करना चाहिए?

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी (एस० एन० १४१७८) की फोटो-नकलसे।

८५. पत्र : बी० एफ० भरूचाको[2]

[२ जुलाई, १९२७ के पूर्व][3]

नागपुर जाकर भी तुम क्या देखोगे? तुम्हें यह बताना तो आवश्यक नहीं है कि सत्याग्रही शस्त्रास्त्र अधिनियमको नहीं तोड़ सकता। आरम्भसे ही सविनय अवज्ञाका मतलब ऐसे कानूनोंको तोड़ना रहा है जो नीति-विरुद्ध हैं। इस तरह जकाती कानूनोंको तोड़ा जा सकता है। जिन कानूनों द्वारा चोरी आदिको निषिद्ध किया गया है, उन्हें नहीं तोड़ा जा सकता। इसी तरह, जो व्यक्ति अहिंसात्मक संघर्ष चलाता है वह गिरफ्तार होनेके अथवा किसी भी अन्य उद्देश्यसे अपने पास तलवार या बन्दूक नहीं रख सकता। लखनऊमें, जहाँ मौलाना मुहम्मद अली और मैं साथ-साथ थे, हमने स्वयं-सेवकोंको अपने-अपने हाथोंमें नंगी तलवारें लिये हुए देखा, लेकिन उनसे तलवारें रखवा दीं। बेजवाड़ामें मौलाना मुहम्मद अली और मैंने स्वयंसेवकोंको, उन्होंने जो लम्बी-

१. देखिए "पत्र : जे० डब्ल्यू० पेटावेलको" २३-६-१९२७।

२. यह गुजराती पत्रका एक अंश है; जो मूल रूपमें उपलब्ध नहीं है। देखिए "सत्याग्रहकी सीमाएँ", १४-७-१९२७

३. श्री भरूचाने यह पत्र नागपुर नगर कांग्रेस कमेटीकी २ जुलाईकी आपात बैठकमें पढ़ा था।

लम्बी लाठियाँ थाम रखी थी, उन्हें रख देनेको मजबूर किया, हालाँकि अपने पास लाठियाँ रखनेके लिए किसी प्रकारके अनुमति-पत्र या परवानेकी जरूरत नही थी।

जो व्यक्ति मर-मिटने, अपने प्राण न्यौछावर कर देनेका संकल्प लेकर निकला है, वह अपने हाथमें तलवार कैसे रख सकता है? संघर्षका स्वरूप बदल देनेके बाद, सत्याग्रहका नाम छोड़ देनेके बाद या शान्ति शब्द हटा लेनेके बाद चाहे जो हो, लेकिन जबतक शान्ति, सत्याग्रह आदि इस संघर्षसे जुड़े हुए हैं, तबतक अशान्ति या असत्यका प्रचार हम कैसे कर सकते हैं? इससे पहले जब मैंने तुम्हें नागपुर-संघर्षका समर्थन करते पाया था तब मुझे बड़ा दुःख हुआ था। लेकिन, अपने मित्रोको भी, उनके गलती करते ही, सही रास्तेपर ले आना हमारे लिए सम्भव नही है। मैंने इतना भी इसलिए लिखा है कि अपने पत्रमें तुमने कहा है कि नागपुरमें क्या हो रहा है, यह देखनेके लिए तुम वहाँ जा रहे हो।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, ४-७-१९२७

८६. सन्देश : दक्षिण भारतके लोगोंको

[२ जुलाई, १९२७][1]

दक्षिण भारतके पुरुषों और स्त्रियोंके नाम लिखे एक पत्रमें महात्मा गांधी कहते हैं :

मुझे इस बातका बड़ा दुःख रहा है कि अचानक मेरा स्वास्थ्य बिगड़ जानेके कारण मै निश्चित तारीखको दक्षिण भारतका दौरा शुरू नही कर सकता। ईश्वरकी इच्छा रही तो मुझे उम्मीद है कि जुलाईमें किसी समय मै यह दौरा शुरू कर पाऊँगा, हालाँकि मूल कार्यक्रममें अब काफी फेरफार कर दिया गया है और उसे काफी कम भी कर दिया गया है लेकिन इस बीच मै उम्मीद करता हूँ कि जिन लोगोने अबतक खादी नही अपनाई है, वे करोड़ो भूखे और अभावग्रस्त लोगोंकी खातिर उसे अपनायेंगे। कारण, जो कोई भी गज-भर खादी खरीदता है, वह उसपर खर्च किया सारा पैसा इस अकालग्रस्त देशके गरीब लोगोकी जेबोमें डालता है, जिसमें से आधेसे अधिक पैसा तो ऐसे लोगोंकी जेबोंमें जाता है जिनके लिए एक-एक पैसेका मतलब जीवनके लिए आवश्यक चीजें खरीदनेके लिए उतना पैसा और मिल जाना है।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, २-७-१९२७

१. यह सन्देश इसी तारीखका बंगलोरसे एसोसिएटेड प्रेस ऑफ इंडिया द्वारा जारी किया गया था।

८७. पत्र : मोतीलाल नेहरूको[1]

कुमार पार्क, बंगलोर
२ जुलाई, १९२७

प्रिय मोतीलालजी,

तो लगता है, आप बंगलोर नहीं आ रहे हैं। मुझसे मिलनेके लिए आपको दक्षिण भारतमें किसी स्थानपर आना पड़े और यहांकी पिघला देनेवाली गर्मी बरदाश्त करनी पड़े, यह मेरी बहुत बड़ी निर्दयता होगी। लेकिन, अगर आप इस महीनेके अन्तमें भी आयें तो सम्भव है, उस समय मैं मैसूरमें किसी आनन्ददायक स्थानपर होऊँ, क्योंकि प्रकृति भारतके मैदानी इलाकोंमें पूरे मैसूरपर सबसे अधिक कृपालु है।

सरोजिनीदेवीने जब आपको पत्र लिखा तभी मुझे भी लिखा, और एक आग्रहपूर्ण तार भेजकर मुझसे कहा कि मैं न केवल उनके निवेदनका समर्थन करूँ बल्कि 'आदेश भी जारी करूँ।' लेकिन मैं जानता था कि इस प्रस्तावपर, जो वैसे तो सदाशयतापूर्ण था किन्तु जिसे बिना समझे-बूझे रखा गया था, आप क्या कहेंगे। मैंने उन्हें लगभग उसी लहजेमें लिखा जिस लहजेमें आपने लिखा और उनसे कहा कि डॉ० अन्सारी ही एकमात्र व्यक्ति हैं जो अध्यक्ष हो सकते हैं। मैंने उन्हें यह भी लिखा कि मै यह बिलकुल नहीं मानता कि उनके अध्यक्ष पदपर होनेसे कांग्रेस द्वारा किये गये किसी समझौतेके महत्त्वमें किसी तरहसे कोई कमी आ जायेगी। मेरे विचारसे तो अगर अन्सारी चुने गये तो कांग्रेस द्वारा कोई तर्कसम्मत समझौता कर सकनेकी सम्भावना बढ़ जायेगी।

आपने ताराके[2] उदयके बारेमें तो मुझसे कहा ही था। अब जब चाँद[3] और तारा उग आये हैं तो घर तो बराबर रोशन रहेगा ही और हमें आशा करनी चाहिए कि अब जल्दी ही एक-न-एक दिन चाँद और ताराको अपना प्रकाश देने, उनकी सहायता करने सूरज भी आयेगा ही। सरूप तो मुझे पत्र लिखनेकी कभी सोचती ही नहीं, लेकिन अगर वह अपने चाँद-सूरज-सितारे सबको पाल-पोसकर मातृभूमिकी सेवाके लिए तैयार कर देती है, तो मैं उसे इस भूलके लिये तुरन्त क्षमा कर दूंगा। आशा है, जच्चा-बच्चा दोनों धीरे-धीरे प्रगति कर रहे होंगे।

इस बीमारीके बाद मैं कल पहली बार किसी कार्यक्रममें शामिल होऊँगा। मुझे खादी-प्रदर्शनीका उद्घाटन करना है। मेरे मुख्य वार्डरों, गंगाधरराव और राजगोपाला-

१. मोतीलालजीके २५ जूनके पत्रके उत्तरमें। इस पत्रमें मोतीलालजीने लिखा था, कि सरोजिनीके पत्रका उत्तर डाकमें डालनेके तुरन्त बाद आपका पत्र मिला। जिन्ना और महमूदाबादके महाराजाने उन्हें अध्यक्ष-पद अन्सारी और जवाहरके बजाय मुझे सौंपनेके लिए उकसाया है।

२. सरूप (विजयलक्ष्मी पण्डित) की दूसरी पुत्री।

३. सरूप की पहली पुत्री।

धारीको व्यस्त रखनेके खयालसे बंगलोरमें ही इस प्रदर्शनीका आयोजन किया गया है। वे तो खादीका व्यापार बड़े जोर-शोरसे कर रहे हैं और अपने कैदीकी बीमारीसे लाभ उठानेमें भी उन्हे कोई संकोच नही होता।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी (एस० एन० १२५९८) की फोटो-नकलसे।

८८. पत्र : वसुमती पण्डितको

बंगलोर
आषाढ़ सुदी ३ [२ जुलाई, १९२७][1]

चि० वसुमती,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम आश्रम पहुँच गई यह अच्छा हुआ। अपने स्वास्थ्यका बराबर ध्यान रखना। तुम्हारा स्वास्थ्य साथ दे और बन सके तो जिन बहनोंने भण्डारका काम अपने जिम्मे लिया है, उनकी मदद करना। मेरा स्वास्थ्य सुधरता जा रहा है। तुम्हारे अक्षरोमें अब भी सुधारकी गुंजाइश है। ज्यो-ज्यों तुम ध्यानसे और हाथको साधकर तथा धीरे-धीरे लिखोगी त्यों-त्यों वे सुधरेंगे। गति तो बादमें अपने-आप बढ जायेगी। लिखाईको भी कताईके समान ही समझो। आरम्भमें कताईकी गति खूब बढ़ा लेनेके बाद मजबूत तार निकालनेमें कठिनाई होती है किन्तु मजबूत तार निकालना सीख लेनेपर अभ्याससे गति तो बढ़ ही जाती है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ५८७) की फोटो-नकलसे।
सौजन्य : वसुमती पण्डित

८९. पत्र : सन्तोजी महाराजको

बंगलोर
आश्विन सुदी ३ [२ जुलाई, १९२७]

श्री सन्तोजी महाराज,

मैंने आपके प्रश्नोंको यत्नपूर्वक सँभालकर रख छोड़ा था और ईश्वरकी कृपासे अब उनके उत्तर देनेका प्रयत्न कर रहा हूँ। आपके प्रश्न अपने उत्तरके साथ ही भेज रहा हूँ जिससे आपको उन्हें याद नही करना पड़ेगा और मुझे उन्हे यहाँ फिरसे लिखना नहीं पड़ेगा। इन सब प्रश्नोंपर मैंने क्रम-संख्या डाल दी है जिससे किसी प्रकारकी गड़बड़ होनेकी सम्भावना न रहे।

१. गांधीजी सन् १९२७ में इस दिन बंगलोरमें थे।

१. गीताका शुद्ध अर्थ तो वही कर सकता है जो उसकी शिक्षाके अनुसार चलनेका प्रयत्न करता है। और जिस हदतक उसका यह प्रयत्न सफल होता है उसी हदतक उसका किया हुआ अर्थ भी शुद्ध होता है। गीता पाण्डित्यकी दृष्टिसे लिखा गया ग्रन्थ नही है। पाण्डित्यकी दृष्टिसे यह गूढ़ ग्रन्थ भी नही है। मेरे विचारमें इस ग्रन्थकी गूढ़ता उसके शिक्षणके अमलकी गूढ़तामें है। लोकमान्य तिलक और शंकराचार्य गीताका क्या अर्थ करते हैं, यह समझनेकी हदतक उनकी टीकाएँ मैंने पढ़ी है। किन्तु उनकी विद्वत्ताके बारेमें कुछ कहनेका मुझे अधिकार नही है। गीताका अर्थ करनेके लिए मैंने ऊपर जो पद्धति सुझाई है उसके अनुसार किसीके किये हुए अर्थके विषयमें मत प्रकट करनेका सवाल ही नहीं उठता। वेदों और उपनिषदोसे गीताका सम्बन्ध है क्योंकि गीता दोनोंका दोहन है।

२. चाहे जितना कष्ट सहकर समत्वकी स्थिति प्राप्त करने और उसे प्राप्त करनेके लिए ज्ञानमय भक्ति अर्थात् फलकी इच्छा किये बिना जीवमात्रकी सेवा करनेके साधनका गीतामें अनेक प्रकारसे वर्णन किया गया है।

३. गीताकी दैवी सम्पद् यानी वह सम्पद् जो आत्मदर्शन कराये। उसका लक्षण राग-द्वेषादिका मन्द पड़ जाना और उसका साधन भगवद्भक्ति है।

४. सामान्यतः पूर्वाचार्योंके ग्रन्थोंको जहाँतक मैं समझ सका हूँ और उनकी शिक्षाओंके बारेमें जो-कुछ जान सका हूँ उसके आधारपर मैं कह सकता हूँ कि मुझे मतभेद दिखाई नहीं दिया।

५. [कल्पना कीजिए कि] एक ब्राह्मण और एक भंगी दोनोंको बिच्छूने काट लिया है। मैं देखता हूँ कि ब्राह्मणकी सहायताके लिए तो एक वैद्य आ पहुँचा है और दूसरेको बुलाया गया है। भंगीकी तरफ वैद्य ताकता भी नही और भंगी सहायताके लिए चीख-पुकार मचा रहा है। उसकी चीख वैद्य भी सुन रहा है, ब्राह्मण भी। यदि ब्राह्मण समदर्शी हो तो वह वैद्यसे कहेगा कि पहले उस भंगीकी सार-सँभाल करो, और बादमें मेरी करना। यदि मैं समदर्शी होऊँगा तो पहले उस भंगीके पास दौड़ा जाऊँगा और बिच्छूने जहाँ उसके डंक मारा होगा उस स्थानको चूस लूँगा तथा जो भी उपचार जानता हूँगा, करूँगा। भंगीका उपचार करनेके बाद यदि ब्राह्मणको मेरी सेवाकी आवश्यकता होगी तो मैं उसकी सेवा करूँगा और उसके बाद ही मैं अपने अन्य कामोंको हाथमें लूँगा। समदर्शी होनेका तात्पर्य है सारी दुनियाकी समान भावसे सेवा करना।

६. गीतामें भगवान्ने स्वजनोंके हननका उपदेश दिया ही नहीं है। जिसे वह न्याय मानता है उस न्यायकी प्राप्तिके लिए जिस समय अर्जुन युद्धमें उतरा उस समय उसके मनमें अपने और परायेका भेद उत्पन्न हुआ। भगवान्ने उसके इस अपने और परायेका भेद करनेके मोह और दौर्बल्यका ही निराकरण किया है। मैं अपने या पराये किसीकी हिंसा नही करूँगा, यदि अर्जुनने ऐसा प्रश्न उठाया होता तो कृष्ण क्या उत्तर देते, इसका तो सिर्फ अनुमान ही लगाया जा सकता है। किन्तु मेरी विनम्र सम्मतिमें तो गीता उक्त प्रश्नका कोई सीधा उत्तर देनेकी दृष्टिसे लिखा गया ग्रन्थ नही है।

७. मुझे ऐसा लगता है कि सनातन वैदिक धर्ममें सार्वभौमिकता और उदारता विशेष मात्रामें है।

८. मुख्य धर्म-ग्रंथ कौनसा है, इस प्रश्नका उत्तर व्यक्तिगत तौरपर ही दिया जा सकता है। मेरे लिए ऐसा ग्रन्थ 'गीता' ही है। विषयानुसार उक्त ग्रन्थोमें आचार-प्रतिपादक और ईश्वर-स्वरूप-प्रतिपादक ये दो भेद तो होते ही हैं। इस प्रश्नमें यदि इससे अधिक और कुछ पूछा हो तो उसे मैं समझ नही सका।

९. विविध धर्मोमें जो आचारभेद है, वह तो समय-समयपर बदलता ही रहता है; ज्यो-ज्यो ज्ञान तथा औदार्य बढ़ता जाता है त्यों-त्यों भेद घटते जाते हैं।

१०. मुझे लगता है कि इस प्रश्नका समावेश नवें प्रश्नमें हो जाता है किन्तु उसे और भी स्पष्ट करनेकी दृष्टिसे इतना लिख रहा हूँ। यह माना जा सकता है कि 'कुरान', 'बाइबल', वेदादिमें जिन आचारोका उल्लेख है वे सब आचार उस काल और देश-विशेषके लिए उचित ही थे। यदि वर्तमान युगमें हमारी बुद्धि उन्हें स्वीकार नही कर पाती तो हमारा कर्त्तव्य है कि हम उन्हें बदल दें अथवा उनको त्याग दें। केवल सनातन सिद्धान्तोको ही कोई बदल नही सकता।

११. अन्य व्यक्तियों और अन्य धर्मोके प्रति हमारा मनोभाव और हमारा आचरण आत्मौपम्यके सिद्धान्तके अनुसार होना चाहिए।

१२. धर्म-ग्रन्थोकी व्याख्याओंमें जो विभिन्नता है उसमें से किसी एक सर्वथा सत्य पक्षको ढूंढ़ निकालना तो मैं करीब-करीब नामुमकिन मानता हूँ। और इसीलिए 'गीता'ने समत्वको सर्वोपरि सिद्ध किया है। पूर्णतः सत्यस्वरूप तो एक ईश्वर ही है। अतः अपूर्ण मनुष्य नम्रतापूर्वक यह माने कि जिस प्रकार हमारा सत्य हमें प्रिय है उसी प्रकार दूसरोको भी उनका सत्य प्रिय होगा ही। इसलिए सभी अपने-अपने मार्गपर चलते रहें और अन्य पक्ष उसमें बाधा न डालें। ऐसा करते हुए जिनका मार्ग अनुभवसे ज्यादा सही और सीधा सिद्ध होगा उसे अन्य लोग भी सहज ही अपना लेंगे।

१३. जबतक शुद्ध आचरणवाला, अनुभवी पुरुष हमें नही मिलता तबतक हम यमनियमादिका पालन करते हुए जिस धर्म-ग्रन्थपर हमारी श्रद्धा हो, उसका श्रवण-मनन करते रहें तथा तदनुसार आचरण करते रहें। जो इतने अज्ञ है कि इतना भी नही कर सकते और उनमें शुद्ध आचरणवाला कोई मनुष्य भी न हो तो फिर उनका रक्षक ईश्वर ही है। मैं 'गीता'के इस वचनको मानता हूँ कि किसी-न-किसी प्रकार उनका भी उद्धार हो ही जाता है। शब्द निश्चय ही अर्थसूचक होते हैं, किन्तु मानो वे सजीव हो, इस तरह उनके अर्थमें भी ह्रास और विकास होता रहता है।

१४. मेरी समझके अनुसार तो पुनर्जन्मकी बात स्वीकार किये बिना यह सिद्ध करना लगभग असम्भव हो जायेगा कि जगत्‌में न्यायका नियम काम कर रहा है। इसके सिवा, कोई जीव अपनी आयुकी अवधिमें, जो कि विराट् काल-चक्रमें एक बिन्दु जितनी ही है, जगत्‌का पूरा अनुभव ले भी नही सकता। मैं तो यहाँतक कह सकता हूँ कि पुनर्जन्मके प्रत्यक्ष प्रमाणका अनुभव मुझे हर क्षण होता रहता है।

१५. जैसे अंधकार और प्रकाश, सुख और दुःख, सत्य और असत्यका अस्तित्व है उसी प्रकार पाप और पुण्यका भी है। किन्तु जैसे सत् और असत्के परे कोई अगम्य और अवर्णनीय वस्तु है उसी प्रकार पाप और पुण्यके उस पार भी कुछ है जिसका अनुभव शरीरकी पहुँचके बाहर है। बौद्ध दर्शन, न्याय, सांख्य आदिकी व्याख्याएँ अकाट्य नही है किन्तु उनके अपने दृष्टिकोणके अनुसार उन्हे समझा जा सकता है और स्वीकार भी किया जा सकता है।

१६. मनुष्यकी विचार-शक्तिके विकासके लिए संस्कारोंकी आवश्यकता अवश्य है। शास्त्रीय किसे कहें इस समस्याका निराकरण तो प्रत्येक समाज अपने-अपने युगके लिए स्वयं ही करता है।

१७. हिंसाका अर्थ है—किसी भी जीवको शरीर, वाणी या मनसे दुःख देनेके हेतुसे दुःख देना। ऐसा न करना अहिंसा है। वेदान्तकी अहिंसा, मैं उसे जैसा समझा हूँ उस रूपमें तो, मुझे ठीक ही मालूम होती है। किन्तु सच तो यह है कि अहिंसाकी मेरी कल्पना वेदान्तके अनुकूल है या नहीं, यह मैं नही कह सकता। और इसी प्रकार मैं यह भी नहीं कह सकता कि वेदान्तका मैंने गहरा अध्ययन किया है।

१८. ब्रह्मचर्यके पालनके लिए मन, वाणी और शरीरको निरन्तर सात्त्विक कार्योंमें लगाये रखना चाहिए। इसलिए सामान्यतः यह कहा जा सकता है कि ब्रह्मचारीका रास्ता भोगी गृहस्थाश्रमीके रास्तेसे ठीक उलटा होना चाहिए। मेरा अनुभव है कि मनोविकारोंका आहारसे घनिष्ठ सम्बन्ध है। लेकिन मैं यह भी जानता हूँ कि आहार स्वच्छ और स्वल्प हो तब भी मनोविकारोंका अनुभव होता है। मतलब यह हुआ कि आहार ब्रह्मचर्यके पालनका एक बड़ा साधन है किन्तु वही सब-कुछ नहीं है। शुद्धतम आहार वनपक्व फल है, इसमें मुझे कोई सन्देह नहीं। एक बात और, भोजनकी क्रिया एकान्तमें होनी चाहिए। असल बात यह है कि स्वादेन्द्रियको जीत लिया जाये तो ब्रह्मचर्य आसान हो जाता है। ज्ञानका सम्बन्ध मनके साथ है और आहारका जड़ देहके साथ—ऐसा कहनेमें दो दोष हैं। एक तो जीवित मनुष्यकी देह सर्वथा जड़ नहीं है और दूसरे जिसे हम मन कहते है, जिसे अनुभवका ज्ञान होता है उस मनका देहके साथ वैसा ही प्रगाढ़ सम्बन्ध है जैसा तेजका सूर्यसे। मृत देह यानी जिससे मन चला गया है वह देह तो न खाता है, न पीता है। यानी, खानेका कार्य देहके द्वारा मन ही करता है। इसी तरह वस्तुतः ज्ञान भी वह देहके द्वारा ही प्राप्त करता है।

१९. ईश्वर यानी जीवमात्र जिसमें एकरूप हो जाते है वह महाजीव। और जीव यानी वह चेतन प्राणी जो इस [सर्वभूताधिवास] एकरूपको नहीं जानता और अपनेको अलग मानता है। यह महाजीव सबमें निवास कर रहा है फिर भी प्रत्यक्ष नहीं है, यही इसकी विशिष्टता है, विचित्रता है—यही इसकी माया है। इस मायाको पारकर उसे पहचानना ही पुरुषार्थ है। किन्तु वह ऐसी वस्तु नहीं है जो इस तरह प्रत्यक्ष हो जाये कि हमारी बुद्धि उसे समझ ले। अतः उसे प्रत्यक्ष करनेका कोई साधन कैसे हो सकता है? किन्तु जिसमें अपने अहंको भूलकर शून्य बन जानेकी शक्ति

है वह उसकी झाँकी पा सकता है; अलवत्ता, वह भी किसी दूसरेको यह झाँकी दिखा नही सकता। उसकी इस झाँकीको देखते ही वह ऐसा चकित हो जाता है, ऐसा मुग्ध वन जाता है कि वह उसीमें मग्न हो जाता है। अपना यह परम आनन्द किसीको वतानेका न उसे भान रहता है और न वह इसकी आवश्यकता महसूस करता है।

२०. शास्त्रकारोके सुझाये हुए सारे मार्गोको मिलाकर मैंने अपने लिए किसी तरह यहाँ-वहाँसे कुछ ले लिया है। इसलिए मेरे लिए यह कहना कठिन है कि मुझे कौन-सा मार्ग मान्य है। मुझे शंकराचार्य प्रिय हैं; रामानुज, मध्व, वल्लभ आदि भी उतने ही प्रिय हैं। मैंने हरएकसे बहुत पाया है किन्तु किसी एकसे ही मेरी तृप्ति हो गई हो, ऐसा नही हुआ।

२१. इस प्रश्नका उत्तर पिछले प्रश्नोके उत्तरमें आ गया माना जाना चाहिए। यज्ञ, दान, तप आदि कर्त्तव्य हैं सही किन्तु इसका अर्थ यह तो नही है कि उनका पालन जिस तरह भूतकालमें होता था ठीक उसी तरह आज भी होना चाहिए। यज्ञ, दान, आदि स्थायी कर्त्तव्य हैं किन्तु उनके अनुष्ठानकी रीति युग-युगमें और देश-देशमें बदलेगी। उदाहरणके लिए, मेरी दृष्टिमें इस देश और इस युगका महायज्ञ चरखा है। इसी तरह इस देश और इस कालके मुमुक्षुके लिए दानका उत्तम रूप देशकी सेवाके लिए तन, मन और धन अर्पण करना है। और अन्नाभाव तथा अकालसे भूखों मर रहे अस्पृश्यादि वर्गके असंख्य पीड़ितोके कष्टको स्वयं अनुभव करना, उसकी आगमें जल मरना — यह आजका तप है। और जो मनुष्य ये तीन कार्य करता है वह अवश्य पवित्र वनेगा और जिस विराट् स्वरूपका दर्शन अर्जुनको हुआ था उसका दर्शन उसे भी होगा।

२२. सगुण और निर्गुण तो अज्ञान या अपूर्ण ज्ञानसे युक्त और ज्ञानकी प्राप्तिके लिए असफल प्रयत्न कर रहे मनुष्यकी भाषाके शब्द हैं। ईश्वर इन शब्दोंसे वर्णित नही होता; वह अवर्णनीय है। अतः उसके वर्णनके लिए निर्गुण शब्दका प्रयोग भी एक निरर्थक कोशिश ही है। लेकिन वह अपने भक्तोके अधीन है अतः उसके लिए हजारकी तो वात ही क्या असंख्य विशेषण लगाये जा सकते हैं और उन-उन भक्तोकी दृष्टिसे उनका औचित्य भी सिद्ध किया जा सकता है। और यह उसकी महान् कृपा है कि वह इन सारे विशेषणोको स्वीकार कर लेता है। इसलिए अगर हम यह कहकर उसका वर्णन करें कि ये सारे शरीर, ये समस्त इन्द्रियाँ, सृष्टिकी अखिल वस्तुएँ — सब ईश्वर ही है तो इसमें कोई दोष नही है। ऐसा कहकर हम उसका वर्णन करनेकी अपनी अयोग्यता स्वीकार कर लेते हैं और इस प्रश्नसे मुक्त हो जाते हैं।

२३. मैं अतिशय नम्रतापूर्वक कहना चाहता हूँ कि मेरे उपवास और मेरा कष्ट-सहन, ये दोनो, ईश्वरका प्रत्यक्ष दर्शन करनेकी इच्छाका ही परिणाम हैं। मैं उपवास या अनशन भी इसीलिए करता हूँ कि इन उत्तरोमें मैंने उसकी जिस झाँकीका थोड़ा-वहुत वर्णन किया है वह झाँकी मैं देख सकूँ। किन्तु उपवास जवरदस्ती नही किया जा सकता। उसके लिए योग्यता चाहिए। उस योग्यताकी प्राप्तिके लिए मैं सतत

प्रयत्न कर रहा हूँ किन्तु यह सम्भव है कि इस देहमें वह योग्यता मुझे न मिले और अपने कर्मोंके फलस्वरूप उसे पाये बिना ही मेरी मृत्यु हो जाये।

आपके सारे प्रश्नोंके उत्तर पूरे हो गये। इनके सिवा आपको कुछ और पूछना हो तो अवश्य पूछें। इन उत्तरोंमें से कुछमें या शायद सबमें आपको एक प्रकारका निश्चयका स्वर जान पड़ेगा। इसे आप धृष्टता या अभिमान न समझें। मैंने अपनी बात जिस तरह लिखी है उस तरह न लिखूँ तो मुझे लगता है कि मैं असत्यका दोषी ठहरूँगा क्योंकि तब उसका मतलब यह होगा कि जिस चीजको मैं मानता हूँ उसे मैं नम्रताकी अपनी गलत धारणाके कारण छिपा रहा हूँ। अतः यदि आपको मेरी यह निश्चयात्मकता अनुचित जान पड़े तो कृपया इस अविनयको क्षमा करें।

पूज्य मालवीयजी महाराज यहीं हैं। उनके साथ अनेक प्रकारकी धर्मवार्त्ता होती रहती है। मैं उन्हें आपकी इच्छा जरूर बता दूँगा।

आपका,
मोहनदास गांधी

गुजराती (एस० एन० १२३२३) की फोटो-नकलसे।

९०. निष्कलंक मजदूरी

वीरमगाम, लखतर आदि प्रदेशोंमें कपास पैदा होती है और यद्यपि वहाँ बाष्प-यन्त्रोंका प्रवेश हो गया है मगर अभी मानव-यन्त्रोंके बिना काम नहीं चल पाता, इसलिए डोंडीसे कपास चुनने इत्यादिकी क्रिया स्त्री-पुरुषों द्वारा ही की जाती है। डोंडीसे कपास चुनना एक-दोका काम नहीं है; उसके लिए कई आदमी चाहिए। इसलिए यदि यन्त्र-युगका प्रभाव बढ़ता रहा तो डोंडीसे कपास चुननेके लिए यहाँ भी किसी दिन यन्त्रका उपयोग होगा ही। पर हालमें तो सौभाग्यसे या दुर्भाग्यसे — जो जिसकी प्रकृतिके अनुकूल हो वह वैसा मान ले — कपास चुननेकी क्रिया स्त्री-पुरुष ही करते हैं, इसलिए मैंने यह काम करनेवाले एक भाईसे कई प्रश्न पुछवाये थे। उक्त प्रश्नोंके उत्तरमें वे भाई लिखते हैं:

> इस प्रदेशमें कपास चुननेका काम न सिर्फ सार्वजनिक और निष्कलंक गिना जाता है बल्कि तन्दुरुस्ती सुधारनेवाला और समयका सदुपयोग करनेवाला भी माना जाता है। इस कारण सम्पन्न तथा गरीब घरके लड़के और स्त्रियाँ और कभी-कभी पुरुष भी कपास चुनते हैं। एक आदमी रोज एकसे डेढ़ मन-तक कपास चुन सकता है और ४० सेरके मनके चार आनेके हिसाबसे सामान्यतः उसे मजदूरी मिलती है मगर कभी-कभी मजदूरी छह या आठ आनेतक भी बढ़ जाती है। मेहनतानेके जो पैसे आते हैं वह स्त्रियोंके निजी पैसे माने जाते हैं और कई कुटुम्बोंमें ये पैसे निर्वाहका साधन भी हैं। कितने ही कुटुम्ब तो

आधे सालकी गुजरके लायक पैसे इसीके द्वारा कमा लेते हैं और एक प्रकारसे कहा जा सकता है कि इस धन्धेमें पूरा कुटुम्ब हाथ बँटाता है।

५०-६० वर्ष पहले अगर मेरी तरह किसीने रुईकी कताईके सम्बन्धमें प्रश्न पूछा होता तो उसे अक्षरशः ऐसा ही जवाब मिला होता। क्योंकि उस वक्त चरखा गरीबीकी नहीं किन्तु कुलीनताकी निशानी था और जिस प्रकार आज कपास चुननेका काम यद्यपि गरीबोंके निर्वाहका साधन है तथापि धनी लोग भी उसे धर्म समझकर करते हैं और उसका पैसा लेनेमें भी संकोच नहीं करते, उसी प्रकार उस समय श्रीमन्त भी निःसंकोच धर्म समझकर कातते थे। और जबतक श्रीमन्तोंने यह धन्धा नहीं छोड़ा तबतक गरीब सुरक्षित थे और कातनेके धन्धेका नाश नहीं हुआ था। ऐसे सार्वजनिक धन्धे जिस हदतक धन्धे हैं, उसी हदतक धर्म भी है। उनमें जबतक श्रीमन्त लगे रहते हैं, तभीतक वे चलते हैं क्योंकि ऐसे धन्धोंमें करोड़पति बननेका अवसर नहीं आ सकता, उनमें सट्टेकी गुंजाइश नहीं होती। ऐसे धंधे तभी टिकते हैं जब सारे लोक-समुदायके कल्याणका विचार किया जाता है। परमार्थकी ओरसे दृष्टि हट जाती है तो सभी करोड़पति बननेके लिए बेचैन हो जाते हैं और इस प्रकारके धन्धे ढूँढ़ने लगते हैं जिनसे करोड़पति बनना सम्भव हो। मनुष्य ऐसे पापपूर्ण और अधोगतिको पहुँचानेवाले प्रलोभनमें न फँसे, इसीलिए वर्णाश्रम धर्मकी खोज हुई थी और उसे हिन्दू धर्मने अपनाया। इस धर्मका तो आज नाममात्र ही रह गया है; उसका मूल स्वरूप नष्ट हो गया है। जहाँ देखिए वहाँ उसका कुरूप ही नजर आता है। धन्धोंका नियमन करनेके लिए जिस धर्मकी खोज हुई थी, वह अब रोटी-बेटीके व्यवहारमें परिमित हो गया है। किसे और कैसे समझाया जाये कि चरखेके पुनरुद्धारमें ही वर्णाश्रमका, शुद्ध धर्मका और यदि ऐसा कहनेमें अविनयका दोष न हो तो, सभी धर्मोंका पुनरुद्धार है?

[गुजरातीसे]
नवजीवन, ३-७-१९२७

९१. एक विद्यार्थीकी परेशानी

एक सरलचित्त विद्यार्थी लिखता है:

> मेरे पत्रमें खादी-सेवक बननेके बारेमें आपने जो-कुछ लिखा, उसे मैंने ध्यानसे पढ़ा। सेवा करनेका तो इरादा है ही। मगर अभी मुझे यह सोचना बाकी है कि खादी-सेवक ही बनूँ या और किसी तरह सेवा करूँ। अभी मुझे ऐसा नहीं लगता कि खादीके उद्धारमें ही आत्माकी उन्नति समाई हुई है। अभी तो मैं हिन्दुस्तानकी आर्थिक हालत सुधरे और वह स्वतन्त्र हो सके, इसलिए कातना जरूरी समझकर समाजके प्रति अपने धर्मका पालन करने लिए ही कातता हूँ। आखिरकार जो सेवा मेरे लिए सबसे अच्छी सिद्ध होगी, मैं वैसा ही करूँगा। अभी तो मेरा यही उद्देश्य है कि जितना ज्ञान प्राप्त कर सकूँ, उतना ज्ञान प्राप्त करके सेवा करनेके लिए तैयार हो जाऊँ।

ब्रह्मचर्य-पालनके बारेमें तो मैं लिख ही क्या सकता हूँ? ईश्वरसे यही प्रार्थना है कि वह ब्रह्मचर्यका पालन करनेकी महत्त्वाकांक्षा पूरी करनेकी शक्ति दे।

मेरी समझमें यह नहीं आता कि आप पाठशालाओंमें ज्ञान और उद्योग दोनोंको एक ही साथ बराबरीका स्थान कैसे देते हैं। मुझे यही लगा करता है कि दोनों काम एक साथ करनेसे हम एक भी काम अच्छी तरह नहीं कर सकते।

हमें उद्योग तो सीखना ही है। मगर क्या यह अच्छा न होगा कि पढ़ाई पूरी करनेके बाद उद्योग सिखाया जाये? कताईको मैं उद्योगमें नहीं गिनता। कातना समाजके प्रति हरएक आदमीका धर्म है और इसलिए हरएकको कातना चाहिए। मगर मुझे लगता है कि दूसरे उद्योग जैसे बुनाई, खेती और उससे सम्बन्धित बढ़ईगिरी वगैरह – पढ़ाईके बाद किये जा सकते हैं। इनमें हरएक काम एक स्वतन्त्र विषय है। एकाध साल इसके लिए दे दिया जाये तो काफी होगा।

मैं आज अपनी हालतपर विचार करने बैठूं, तो मुझे लगता है कि दोनों चीजें बिगड़ रही हैं। तीन घंटे उद्योग करके फालतू वक्तमें कातना और एक बाहरके स्कूलमें पढ़ाये जानेवाले विषयोंके बराबर ही विषय पढ़ना, स्वाध्याय करना और जरूरी कामोंमें शरीक होना सचमुच मुश्किल बात मालूम होती है।

बच्चोंकी पढ़ाई तो कम की ही नहीं जा सकती। इनके लिए सारे विषय सीखना जरूरी ही है। तब इतने विषय पढ़ते और स्वाध्याय करते हुए बच्चों-पर हम ज्यादा बोझ कैसे डालें? बच्चे दिया हुआ काम भी अच्छी तरह न कर सकें, तो फिर स्वाध्याय कर ही कैसे सकते हैं? मैं देखता हूँ कि जैसे-जैसे पढ़ाई आगे बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे स्वाध्याय बढ़ाना जरूरी होता जाता है, और इतना वक्त निकाला नहीं जा सकता।

ये विचार मैंने शिक्षकोंको भी बताये हैं। इस सम्बन्धमें चर्चा भी हुई है। मगर इससे मुझे अभी सन्तोष नहीं हुआ। मुझे ऐसा लगता है कि वे अभी हमारी मुश्किल नहीं समझ सके। क्या आप इस विषयपर विचार करके मुझे समझानेकी कृपा करेंगे?

इस पत्रमें दो सवाल बहुत जरूरी हैं। यह तो पाठक समझ ही सकता है कि यह पत्र मेरे पत्रके जवाबमें है। इसका उत्तर निजी तौरपर देनेके बजाय यदि 'नवजीवन' द्वारा दिया जाये तो यह अन्य विद्यार्थियोंके लिए भी उपयोगी सिद्ध होगा; यह सोचकर मैंने उक्त पत्र तीन महीनेसे सँभालकर रख छोड़ा था।

आत्मोन्नति और समाज-सेवाके धर्ममें जो भेद इस पत्रमें किया गया है, वैसा भेद हिन्दुस्तानमें बहुत लोग करते हैं। मुझे ऐसा फर्क करनेमें विचार-दोष दीखता है। मैं यह मानता हूँ और यही मेरा अनुभव है कि जो चीज आत्मोन्नतिके खिलाफ है,

वह समाजसेवाके भी खिलाफ है। सेवाके कामके जरिये ही आत्माकी उन्नति हो सकती है। सेवा-कार्यका अर्थ है यज्ञ। जो सेवा आत्मोन्नतिमें बाधक है वह त्याज्य है।

ऐसा कहनेवालोंका भी एक पन्थ है कि झूठ बोलकर सेवा हो सकती है। लेकिन यह तो सभी मानते हैं कि झूठ बोलनेसे आत्माकी अवनति होती है। इसलिए झूठ बोलनेसे होनेवाली सेवा त्याज्य है। सच बात यह है कि यह खयाल भी एक भ्रम ही है कि झूठ बोलनेसे सेवा हो सकती है। इसका नतीजा थोड़ी देरके लिए भले ही समाजको फायदेमन्द मालूम हो, लेकिन यह बताया जा सकता है कि उससे हानि ही होती है।

इसके विपरीत, चरखेकी प्रवृत्तिसे समाजको फायदा होता है, दुनियाको फायदा होता है, इसलिए आत्माको फायदा होता है। इसका मतलब यह नहीं है कि हरएक कातनेवाला आत्मोन्नति कर लेता है। जो दो पैसे कमानेके लिए कातता है, उसे उतना ही फल मिलता है। जो आत्माको पहचाननेके लिए कातता है, वह उसके जरिये मोक्ष भी पा सकता है। जो भक्तिभावसे पानी पिलाता है, वह भी मोक्ष लायक बन जाता है। जो दंभसे या रुपयेके लिए चौबीसों घंटे गायत्री मन्त्र जपते हैं, उनमें से पहलेकी अवनति होती है और दूसरा रुपया पाने तक फल पाकर अटक जाता है। जहाँ सर्वोत्तम हेतु और सर्वोत्तम काम होता है वहीं मोक्ष होता है।

असलमें यह जाननेके लिए ही कि सर्वोत्तम हेतु कौन-सा है और सर्वोत्तम कार्य क्या है, ब्रह्मज्ञानकी जरूरत होती है। आत्मोन्नतिके खयालसे खादी-सेवाके लिए योग्यता पैदा करना छोटी-मोटी बात नहीं है। आत्मार्थी खादी-सेवकको राग-द्वेषसे मुक्त होना चाहिए। इसमें सब-कुछ कह दिया गया है। निःस्वार्थ भावसे, सिर्फ गुजारे लायक मिल जानेपर सन्तुष्ट रहकर, रेलके स्टेशनसे दूर छोटेसे गाँवमें प्रतिकूल परिस्थितिमें अटल श्रद्धापूर्वक आसन जमाकर बैठनेवाला एक भी खादी-सेवक अभीतक तो हमें मिला नहीं। ऐसा खादी-सेवक संस्कृत जानता होगा, संगीत जानता होगा और सब धर्मोंको जाननेवाला होगा। वह जितनी कलाएँ जानता होगा, उन सबका वहाँ उपयोग कर सकता है। यदि वह चरखा-शास्त्रके सिवा और कुछ न जानता हो, तो भी सन्तुष्ट रहकर सेवा कर सकता है।

मुद्दतोंका आलस्य, मुद्दतोंके वहम, मुद्दतोंकी भुखमरी और मुद्दतोंका अविश्वास, इस सारे घोर अन्धकारको दूर करनेके लिए तो मोक्षके दरवाजेतक पहुँचे हुए तपस्वियोंकी जरूरत है। इस धर्मका थोड़ा-सा पालन भी बड़े भारी भयसे बचानेवाला है। इसलिए वह आसान है। लेकिन उसका पूरा पालन तो मोक्षार्थीकी तपस्याके समान ही कठिन है।

मेरे कहनेका यह मतलब नहीं कि कोई अपनी पढ़ाई छोड़कर अभीसे खादी-सेवा करने लग जाये। मगर इसका यह अर्थ जरूर है कि जिस विद्यार्थीमें हिम्मत, बल और विश्वास हो, वह आज ही से पक्का निश्चय कर ले कि मुझे पढ़ाई खत्म करके खादी-सेवक बनना है। वह ऐसा करेगा तो आजसे ही उसकी खादी-सेवा शुरू हो जायेगी, क्योंकि वह अपने सारे विषयोंका चुनाव सिर्फ इस सेवाकी योग्यता हासिल करनेके लिए करेगा।

अब दूसरी परेशानीकी जाँच करें:

मेरी समझमें यह नहीं आता कि आप पाठशालाओंमें ज्ञान और उद्योग दोनोंको एक ही साथ बराबरीका स्थान कैसे देते हैं?

यह सवाल मैंने, जबसे देशमें आया हूँ, तभीसे सुना है और तबसे मैंने इसका एक ही जवाब दिया है। वह यह है कि दोनोंको बराबरीका स्थान मिलना ही चाहिए। पहले ऐसा ही होता था। विद्यार्थी समित्पाणि होकर गुरुके घर जाता था, यह उसकी नम्रता और सेवा-भावको बताता था। और वह सेवा गुरुके लिए जंगलसे लकड़ी और पानी वगैरह लानेकी होती थी। यानी विद्यार्थी गुरुके घर खेती, गो-पालन-उद्योग और शास्त्रकी जानकारी हासिल करता था।

आज ऐसा नहीं होता। इसीलिए दुनियामें भुखमरी और दुराचार बढ़ा है। अक्षर-ज्ञान और उद्योग अलग-अलग नहीं हैं। फिर भी उन्हें अलग करनेसे, एक-दूसरे-का सम्बन्ध तोड़ देनेसे ज्ञानका व्यभिचार होने लगता है। उद्योगकी हालत पति द्वारा छोड़ी हुई पत्नी-जैसी है। और ज्ञानरूपी पति उद्योगको छोड़कर मनमानी करनेवाला बन गया है और वह जगह-जगह अपनी बुरी नजर डालता हुआ भी अपनी कामना पूरी नहीं कर पाता, इसलिए आखिरमें मनमानी करनेसे थककर गिर जाता है।

दोनोंमें किसीका पहला दर्जा हो सकता हो तो वह उद्योगका है। बच्चा जन्मसे अपनी अक्ल काममें नहीं लेता, मगर शरीरसे काम लेता है। पहले हाथ-पैर और बादमें आँखें इस्तेमाल करता है। फिर चार-पाँच सालकी उम्रमें समझने — ज्ञान पाने लगता है। समझनेकी शक्ति आते ही वह शरीरको भुला दे, तो शरीर और समझ दोनोंका नाश हो जाये। शरीरके बिना समझ नहीं आ सकती। इसलिए समझका उपयोग शरीरके उद्यममें करना होता है। आजकल शारीरिक मेहनत सिर्फ शरीरको गठीला बनानेके लिए कसरत करनेमें ही रह गई है, जबकि पहले कसरत उपयोगी श्रममें हो जाती थी। कहनेका आशय यह नहीं है कि बच्चे खेलें-कूदें ही नहीं। पर इस खेल-कूदकी गुंजाइश थोड़ी ही होगी और वह शरीर और मनके लिए एक किस्मका आराम होगा। शुद्ध शिक्षामें आलस्यको स्थान नहीं होता। शिक्षा उद्योगकी हो या अक्षर-ज्ञानकी, दोनों रसमय होनी चाहिए। बच्चा पढ़ाई-लिखाई या उद्यमसे ऊब जाये, तो इसमें उसका दोष नहीं, बल्कि शिक्षा और शिक्षकका दोष है।

इस खतको मैंने सँभालकर रख छोड़ा था। इस बीच मेरे हाथ एक किताब आ गई। उसमें मैंने देखा कि अभी इंग्लैंडमें उद्योगके साथ किताबी शिक्षा देनेके केन्द्र खोलनेवाली जो संस्था खड़ी हुई है, उसमें इंग्लैंडके लगभग सभी बड़े आदमियोंके नाम हैं। उनका मकसद यह है कि अभी जो शिक्षा दी जाती है, उसका रुख बदलकर बच्चोंको उद्योग और अक्षर-ज्ञान साथ-साथ सिखानेके लिए उन्हें लम्बे-चौड़े मैदानोंवाली जगहोंपर रखा जाये, जहाँ वे धन्धे सीखें, उनसे कुछ कमा भी लें और लिखना-पढ़ना भी सीख जायें। सम्पादक कहते हैं कि ऐसा करनेसे अक्षर-ज्ञानमें समय ज्यादा लगेगा, मगर वे यह भी कहते हैं कि ऐसा होनेमें फायदा है, नुकसान नहीं। क्योंकि इस बीच विद्यार्थी कमाने लगता है और उसे जैसे-जैसे ज्ञान मिलता जाता है, वैसे-वैसे वह उसे पचाने लगता है।

दक्षिण आफ्रिकामें मैंने जो प्रयोग किये, मेरा खयाल है, वे इस बातकी ताईद करते हैं। जहाँतक मुझे करना आया और मैं उन्हें कर सका, वहाँतक वे सफल हुए थे।

जहाँ शिक्षाका तरीका अच्छा होता है, वहाँ स्ववाचनके लिए नाममात्रको समय चाहिए। विद्यार्थियोको जो जीमें आये वही करने, पढ़ने या बेकार रहना हो तो बेकार रहनेके लिए थोडा वक्त तो चाहिए ही। मुझे अभी मालूम हुआ है कि योग-विद्यामें इसका नाम "शवासन" है। "शवासन"का अर्थ है मुर्देकी तरह लम्बे होकर पड जाना, और शरीर, मन वगैरहको ढीला करके जान-बूझकर जड़की तरह पड़े रहना। उसमें भी रामनाम तो हर साँसके साथ चलता ही रहेगा, मगर वह आराममें कोई खलल नही डालेगा। ब्रह्मचारीके लिए उसकी साँस ही यह नाम होता है।

मगर मेरा कहना ठीक हो तो उसका अनुभव इस विद्यार्थीको और उसके साथियोको भी, जो झूठे नही है, घमंडी नही है और प्रयत्नशील है, क्यो नही होता?

हमारी दयनीय हालत यह है कि हम सब शिक्षक अक्षर-ज्ञानके जमानेमें पैदा हुए और पले हैं। इतनेपर भी कुछकी बुद्धि इस चीजकी कमीको देख पाई है। यह तुरन्त मालूम न हुआ, अब भी नही होता कि सुधार किस तरह किया जाये। फिर जितनी समझ आई है, उतना अमल करनेकी शक्ति नही है। 'रघुवंश', 'रामायण' या शेक्स-पियर पढानेवालोमें बढईगिरी या बुनाईका काम सिखानेकी ताकत नही है। उन्हें खुदको जितना 'रघुवंश' पढाना आता है, उतना बुनाईका काम आता ही नही होगा। आता होगा तब भी उसमें उनकी इतनी दिलचस्पी नही होगी जितनी 'रघु-वंश' में है। ऐसे अधूरे साधनोसे पूर्ण उद्योग और ज्ञान सीखे हुए चरित्रवान विद्यार्थी तैयार करना कोई छोटा काम नही है। इसलिए इस संधि-कालमें अधकचरे शिक्षको और प्रयत्नशील विद्यार्थियोको धीरज और श्रद्धा रखनी ही पड़ेगी। श्रद्धासे समुद्र लाँघा जा सकता है और बड़े-बड़े किले तोड़े जा सकते हैं।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ३-७-१९२७

९२. पत्र : विलियम स्मिथको

कुमार पार्क, बंगलोर
३ जुलाई, १९२७

प्रिय श्री स्मिथ,

आपके दो पत्र, बड़े मनोयोगपूर्वक तैयार की गई टिप्पणियाँ और वह इतालवी पुस्तिका भी मिली जिसमें बधिया करनेके औजारका प्रयोग और सिद्धान्त बताया गया है। इस सबके लिए मेरा धन्यवाद स्वीकार कीजिए।

आपकी टिप्पणियाँ देख गया हूँ, और अगर मंगलवारको शामके ४ बजे आपको फुरसत हो तो आपसे मिलकर मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी।

आपकी महत्त्वपूर्ण टिप्पणियोंका उपयोग क्या मैं 'यंग इंडिया' में अथवा किसी अन्य सार्वजनिक प्रयोजनके लिए कर सकता हूँ?

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी (एस० एन० १२९१९) की माइक्रोफिल्मसे।

९३. भाषण : बंगलोरकी खादी-प्रदर्शनीके उद्घाटनके अवसरपर

३ जुलाई, १९२७

भाइयो,

मेरे लिए यह बहुत बड़े सौभाग्यकी बात है कि आपने मुझसे इस समारोहकी उद्घाटन-विधि सम्पन्न करनेको कहा है। मुझे बहुत दुःख है कि मैं अपना उद्घाटन-भाषण स्वयं नहीं पढ़ सकूँगा। आप यह तो स्वीकार करेंगे ही कि डॉ० सुब्बाराव तथा मेरी सहायता करनेवाले अन्य चिकित्सक मित्रोंने मुझे जो छूट दी है, उसका मुझे अनुचित लाभ नहीं उठाना चाहिए। इसलिए मैं यथासम्भव अधिकसे-अधिक सँभल-सँभलकर चलना चाहता हूँ और अपने शरीरपर कोई अनुचित भार नहीं डालना चाहता। इसलिए, इस प्रदर्शनीके सम्बन्धमें आपके सामने मैं जो कुछ-एक विचार रखना चाहता था, उन्हें मैंने लिखित रूप दे दिया है। श्री तथाचारी इस प्रान्तकी मातृभाषामें किया गया उसका अनुवाद पढ़ेंगे और तब श्री राजगोपालाचारी आपके सामने मूल अंग्रेजी भाषण पढ़ेंगे। मुझे इस बातका बहुत दुःख है कि इस प्रान्तके निवासी उस भाषाको नहीं सीख रहे हैं जो भारतकी राष्ट्रभाषा है अथवा होनी चाहिए। मैं जब-कभी दक्षिण भारत आया हूँ, मुझे इस कमीके बारेमें कुछ-न-कुछ अवश्य कहना पड़ा

है। अब तो आपके यहाँ बंगलोरमें भी एक हिन्दी प्रचार कार्यालय खुल गया है, और चूँकि मैं यह अपेक्षा रखता हूँ कि आप खादीकी ही तरह हिन्दीके सम्बन्धमें भी तमिलनाडु और आन्ध्र देशके स्तरतक पहुँच जायेंगे, इसलिए मुझे उम्मीद है कि आप निकट भविष्यमें इस कमीको पूरा कर लेंगे। अगर अभी मैं अपने सामने सिर्फ मुसलमान भाइयोंको ही उपस्थित देखता तो, मेरी समझमें मैं हिन्दीमें बोल सकता था। वे राष्ट्र-भाषाकी प्रतिष्ठाको बनाये हुए हैं, किन्तु दक्षिणके हिन्दू इस मामलेमें काफी पीछे हैं। मुझे उम्मीद है कि यहाँ मैसूरमें आप लोग अपने मुसलमान भाइयोंसे अच्छी होड़ करेंगे और हिन्दी-ज्ञानकी दृष्टिसे अपनी कमी पूरी करेंगे। इन दो शब्दोंके साथ मैं अपने मित्रसे कन्नड़ अनुवाद पढ़नेका अनुरोध करूँगा।

जब महात्माजीके अभिभाषणका कन्नड़ अनुवाद पूरा पढ़ा जा चुका तो उसके बाद श्री च० राजगोपालाचारीने गांधीजीका निम्नलिखित अंग्रेजी अभिभाषण बड़े ही स्पष्ट स्वरमें पढ़ा:

भाइयो,

इस मनोरम नगरमें आप सबसे मिलकर और अपने बीच वयोवृद्ध नेता पूजनीय पंडित मदनमोहन मालवीयजीको पाकर मुझे अत्यन्त हर्षका अनुभव हो रहा है। अपने हिन्दू संस्कारके कारण मुझे ऐसे किसी भी समारोहमें प्रमुखके रूपमें हिस्सा लेनेमें बड़ी परेशानी होती है, जिसमें वे उपस्थित रहते हैं। क्योंकि जबसे मैं अपने प्यारे देशमें लौटकर आया हूँ तबसे बराबर उन्हें अपने अग्रजके रूपमें देखता आया हूँ। लेकिन, जिस चीजको मैं कर्त्तव्यका आग्रह समझता हूँ, उसके कारण किसी हदतक इस परेशानीपर काबू पा लेता हूँ।

अपनी बीमारीके बाद मुझे सार्वजनिक मंचपर आनेकी इजाजत आज पहले-पहल मिली है। इस अवसरपर मैं मैसूरके महाराजा साहब और जनता, दोनोंको धन्यवाद देता हूँ। पूर्ण रूपसे स्वस्थ होनेके लिए मैं यहाँ काफी दिनोंसे विश्राम कर रहा हूँ और इस पूरे समयमें महाराजा साहब और यहाँकी जनता, दोनों मुझे बहुत स्नेह देते रहे हैं, मेरा बहुत खयाल रखते रहे हैं। आपके उदात्त आतिथ्यने बीमारीमें भी एक आकर्षण भर दिया है। लेकिन, मुझे यह देखकर बड़ा दुःख हुआ कि मेरे मित्रोंने मेरी बीमारीसे नाजायज फायदा उठानेकी कोशिश की। मैंने देखा कि खादीके लिए आपका सहयोग-समर्थन प्राप्त करनेके उद्देश्यसे जारी की गई अपीलमें इन मित्रोंने आपसे कहा कि अगर आप चन्दा देकर तथा अपनी पोशाकके लिए खादीको अपनाकर उसे प्रोत्साहन देंगे तो मैं जल्दी अच्छा हो जाऊँगा। यह मेरी बीमारीका नाजायज फायदा उठाना है। मैं तो आपसे यह कहूँगा कि आप अपने मनसे इस खयालको बिलकुल निकाल दें। अगर खादी आपकी बुद्धिको नहीं जँचती और यदि राष्ट्रके आर्थिक जीवनमें इसका कोई स्थान नहीं है तो मेरे मोहके बावजूद इसे बढ़ने नहीं देना चाहिए। जहाँ बड़े-बड़े राष्ट्रीय हितोंका सवाल हो, वहाँ व्यक्तिगत स्नेह-सौहार्दको बाधक तत्त्व मानते हुए उनका कोई खयाल नहीं करना चाहिए। और अगर मैं इतना सुकुमार हो गया हूँ कि अपनी सनक और भ्रान्त धारणाओं या शायद गलत कार्योंके

लिए भी लोगोंसे समर्थन न मिलनेपर मेरा शरीर शिथिल पड़ जाये तो निश्चय ही राष्ट्रके हितमें यही बेहतर है कि मैं इतना रुग्ण हो जाऊँ और रुग्ण बना रहूँ कि आगे कोई शरारत करनेके लायक न रह जाऊँ।

यह प्रदर्शनी, जिसका उद्‌घाटन करनेका सौभाग्य मुझे शीघ्र ही मिलेगा, सही और उचित ढंगकी अपील है। इसकी रूप-रेखा बहुत सोच-समझकर तैयार की गई है, जिससे आपको यह प्रत्यक्ष दिखाया जा सके कि खादीका क्या महत्त्व है और यह कितना-कुछ पहले ही प्राप्त कर चुकी है। अगर इसका ध्यानपूर्वक अध्ययन करनेके बाद खादी आपकी बुद्धिको जँच जाये, और बुद्धिको ठीक लगनेके बावजूद आप अपने-आपको इसके तकाजोंको पूरा करनेमें असमर्थ पायें, तो अलबत्ता इस हालतमें मेरे प्रति अपने स्नेहसे साहस और बल प्राप्त करके अपनी कमजोरीको दूर कीजिए। कारण यह है कि मैं यहाँ आप लोगोंके सामने रोजगारके अभावमें आधा पेट खाकर दिन काटनेवाले उन करोड़ों मूक भारतीयोंके अपनी मर्जीसे बने प्रतिनिधिके रूपमें खड़ा हूँ जिसे स्वर्गीय देशबन्धु चित्तरंजन दासने दरिद्रनारायणकी उपयुक्त संज्ञा दी थी। खादीके समर्थनके लिए आपके द्वारा दिये गये एक-एक पैसेका, आपके द्वारा खरीदी गई एक-एक गज खादीका मतलब इन करोड़ों लोगोंके प्रति उतनी ठोस और सक्रिय सहानुभूति दिखाना होगा।

तो मैं अब आपको दरिद्रनारायणकी सेवामें लगे कार्यकर्त्ताओंके निष्कर्ष संक्षेपमें बताता हूँ। अगर आप प्रदर्शनीकी दुकानोंपर मिलनेवाले साहित्य तथा उन दुकानोंपर प्रदर्शित खादी-प्रवृत्तिके परिणामोंका धैर्यके साथ अध्ययन करें तो आप उन निष्कर्षोंकी सचाईको खुद ही परख सकते हैं। हाथ-कताईपर सर्वश्री पुणताम्बेकर और एन० एस० वरदाचारी द्वारा लिखे पुरस्कृत निबन्धमें भारतके इस एकमात्र राष्ट्रीय और सार्वजनीन गृह-उद्योगके विनाशका इतिहास और उसके पुनरुद्धारकी सम्भावनाएँ बताई गई हैं। उसमें यह सिद्ध किया गया है कि इस देशमें ऐसे करोड़ों किसान हैं जिनके पास सालमें कमसे-कम चार महीने कोई काम नहीं रहता और उनके लिए अपने ही घरोंमें बैठकर जो एकमात्र काम करना सम्भव है, वह है हाथ-कताई। बहुतसे अच्छे और सद्-आशय व्यक्तियोंने ग्रामोद्धारके लिए बहुत ही बड़ी-बड़ी और आकर्षक योजनाएँ सुझाई हैं। लेकिन, मैं यह कहनेकी धृष्टता करता हूँ कि आज इनमें से किसी भी योजनापर अमल नहीं किया जा रहा है। और कमसे-कम इस पीढ़ीमें तो उनमें से किसीको लागू करना सम्भव नहीं है। इसके विपरीत चरखा सारे देशमें बिना किसी शोर-गुलके धीरे-धीरे प्रगति करता रहा है। इसका पुनरुद्धार १९२० से शुरू हुआ। किन्तु, उस वर्ष भी यद्यपि सभी नगरोंकी मुख्य सड़कोंपर सफेद टोपियोंकी भरमार दिखाई देती थी, फिर भी वास्तवमें अगर बढ़ाकर अन्दाजा लगायें तो भी कुल मिलाकर एक लाखसे अधिक कीमतकी खादी प्राप्त नहीं थी। लेकिन अखिल भारतीय चरखा संघकी रिपोर्टमें, जिसे बहुत सावधानीसे तैयार किया गया है, आप देखेंगे कि सिर्फ १९२६में भारतमें २३ लाख रुपयेकी खादी तैयार की गई और २८ लाख रुपयेकी बेची गई। संघने पूँजीके रूपमें १८ लाख रुपये लगाये। इस खादीको

तैयार करनेके लिए इस साल पचास हजार कातनेवालोंने काम किया। इन कातनेवालोंने कताईमें जो समय दिया उस समय उनके पास आमदनीका कोई और जरिया या कोई अन्य धंधा नहीं था। जिसने जितना समय दिया और जितनी कुशलतासे अपना काम किया उसके अनुसार उसे प्रतिदिन एक पैसेसे लेकर दो आने तककी आमदनी हुई। पचास हजार स्त्रियाँ सिर्फ उतनी मजदूरी पानेके लिए, जो हमें शायद बहुत तुच्छ लगे, इस कामको करनेके लिए उत्सुक थी, यह तथ्य अपने-आपमें इस बातका एक तरहसे पर्याप्त प्रमाण है कि हाथ-कताई आर्थिक दृष्टिसे महत्त्वहीन, अलाभकर या अव्यावहारिक चीज नहीं है। कई स्थानोंपर ऐसा देखा गया है कि स्त्रियाँ रुई प्राप्त करनेके लिए चार-चार मील चलकर जाती हैं। हाथ-कताईको केन्द्र बनाकर कई अन्य धंधे भी खड़े किये गये हैं। बुनकरों, धोबियों, रंगरेजों, छपाई करनेवालों और धुनियोंको, जो अपने धन्धे छोड़ चुके थे या छोड़ते जा रहे थे, हाथ-कताईके पुनरुद्धारमें आशाकी एक नई किरण दिखाई दी है। दस-दस कातनेवालों पर एक-एक नया बुनकर और धुनिया खड़ा हो जाता है और ये बुनकर और धुनिये रोजाना चार आनेसे लेकर आठ आनेतक कमा लेते हैं। इस प्रकार १०० से लेकर १५० रुपयेतक मासिक वेतन पानेवाले न्यूनाधिक पढ़े-लिखे लोगोंका एक पूरा दल १,५०० गाँवोंकी सेवा कर रहा है। इस राष्ट्रीय सेवा संगठनके जरिये कमसे-कम ऐसे १,००० नौजवान और कुछ युवतियाँ भी सम्मानके साथ जीविकोपार्जन करती हैं। कातनेवालों और दूसरे कार्यकर्त्ताओंमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, तथाकथित अस्पृश्य, मुसलमान, ईसाई, पारसी, सिख बल्कि वास्तवमें सभी धर्मों और जातियोंके आदमी शामिल हैं। वैतनिक कार्यकर्त्ताओंके अलावा, बहुत-से अवैतनिक कार्यकर्ता भी ग्रामोद्धारके इस कार्यमें लगे हुए हैं। सतीशचन्द्र दासगुप्त और प्रफुल्लचन्द्र घोषके रूपमें बंगालने आचार्य रायके दो सर्वाधिक तेजस्वी शिष्योंको इस सेवाके हेतु समर्पित कर दिया है। सतीशचन्द्र दासगुप्तने ही आचार्य रायकी रसायनशाला खड़ी की थी और प्रफुल्लचन्द्र घोष सरकारी टकसालमें सिक्कोंके सहायक परीक्षकका काम करते थे। इन दोनोंने अपनी सेवाएँ खादीको अर्पित करनेके लिए आर्थिक दृष्टिसे अत्यन्त लाभदायक उक्त पद छोड़ दिये। बहुत-से नामी वकीलों, बल्कि डाक्टरों तकने, जिनमें से कुछको आप व्यक्तिगत रूपसे जानते हैं, अपने-अपने धंधे छोड़कर इस कामको अपना लिया है। और अब धीरे-धीरे व्यापारी वर्गकी समझमें यह बात आ रही है कि यह एक ऐसी सेवा है जो उनसे इसमें अपनी व्यापार-बुद्धि लगानेकी अपेक्षा रखती है। अब शायद आप यह समझ रहे होंगे कि इस हाथ-कताई आन्दोलनको मैंने आधुनिक युगका सबसे बड़ा सहकारी प्रयत्न क्यों कहा है। पिछले छः सालमें जो प्रगति हुई है वह यद्यपि हमें इस क्षेत्रमें जितना-कुछ करना है उसको देखते हुए नगण्य ही है, फिर भी यदि वह भविष्यका संकेत देती है और ईश्वरकी कृपा हुई तो वह दिन दूर नहीं जब हम देखेंगे कि आज हमारे जो गाँव टूटकर बिखरते नजर आ रहे हैं वे ईमानदारी और धैर्यके साथ निरन्तर उद्यमरत रहनेवाले लोगोंके बसेरे बन गये हैं।

प्रदर्शनीको देखकर आप उन तमाम प्रक्रियाओंको समझ जायेंगे जिनमें से गुजरकर रुई आपके पास खादीके रूपमें पहुँचती है। क्योंकि आप वहाँ ओटाई, धुनाई,

पूनियाँ बनाना, कताई और बुनाई, इन सारी प्रक्रियाओंका प्रदर्शन होते देखेंगे। इन प्रक्रियाओंमें प्रयुक्त बहुत ही सीधे-सादे औजारो और यन्त्रोको भी देखेंगे। रेखा-चित्रोमें आपको इन यन्त्रोकी उत्पादन-क्षमता भी देखनेको मिलेगी। इनमे से अधिकांश हमारे गाँवोंमें ही बड़ी आसानीसे बनाये जा सकते हैं।

श्रोतृ-समूहमें उपस्थित फैशनपसन्द, कलात्मक रुचिवाले और धनाढ्य लोगोंका ध्यान उस भरे-पूरे स्टालकी ओर दिलाना भी मुझे नहीं भूलना चाहिए जहाँ आप बहुत ही सुन्दर ढंगसे काम की हुई और कढ़ाई की हुई नफीस किस्मकी खादी देखेंगे। यह बम्बईकी उन लगभग ४०० लड़कियोके श्रम और कुशलताका परिणाम है जो इस कामसे प्रतिदिन छः आनेसे लेकर डेढ़ रुपयेतक कमा रही हैं। इस संस्थाका संचालन बम्बईकी राष्ट्रीय स्त्री सभा करती है, जिसमें अन्य आत्मत्यागी महिलाओके अतिरिक्त भारतके पितामह दादाभाई नौरोजीकी पौत्री और पेटिट परिवारकी भी एक बहन शामिल है।

मधुसूदन दास कटकके बड़े नामी वकील थे। उड़ीसाकी गरीबीने उन्हें उनके स्वप्न-लोकसे जगाया और तब उन्होने देखा कि यद्यपि हल-बैलके सहारे खेतोंमें काम करना आवश्यक है, फिर भी अगर हम कृषिके साथ किसी ऐसे उद्योगकी भी व्यवस्था नहीं करते जिसके लिए हस्त-कौशल अपेक्षित हो तो हमारा देश शीघ्र ही निठल्ले और सुस्त लोगोंका देश बन जायेगा और अब तो वे खुद ही एक सिद्धहस्त कारीगर बन गये हैं।

लेकिन, अब मुझे और ज्यादा देरतक आपको उस खुराकसे वंचित नही रखना चाहिए जो प्रदर्शनी समितिने आपकी दृष्टि और बुद्धिके लिए तैयार कर रखी है। मेरी यही कामना है कि प्रदर्शनीको देखकर आप ग्रामोद्धारके मुख्य तथ्यके रूपमें खादीके अमूल्य महत्त्वको समझ सकें और वह आपको इस बातके लिए प्रेरित कर सके कि आपमें से जिन लोगोंके पास समय है और जिनमें रुचि है, वे चरखेका सन्देश पहुँचानेके लिए गाँवोंमें जाकर और आपमें से सभी लोग अपनी पोशाक और घरेलू जरूरतोंके लिए खादीको अपनाकर गरीब ग्रामवासियोंके साथ एक जीवन्त सम्बन्ध कायम करें। मैं इसे ईश्वरका काम कहनेकी धृष्टता करता हूँ। इस कामकी सम्भावनाएँ बहुत विस्तृत है, लेकिन इसे करनेवाले श्रमिक बहुत कम है। अगर आप चाहे तो आपमें से हरएक श्रमिकोंकी इस संख्यामें वृद्धि कर सकता है।

मैं अत्यन्त प्रसन्नताके साथ इस प्रदर्शनीके उद्घाटनकी घोषणा करता हूँ और ईश्वरसे प्रार्थना करता हूँ कि अगर उसकी दृष्टिमें यह काम ठीक हो और कार्यकर्त्ता लोग योग्य पाये जायें तो वह इसे अपना आशीर्वाद दे।

भाषण पढ़ दिये जानेके बाद प्रभावोत्पादक मौनके बीच महात्माजीने अन्तमें कहा :

भाइयो,

अब तुरन्त ही मैं मैसूरके उद्योग विभागकी उद्योगशालामें तैयार किये गये चरखेके नमूनेका अनावरण करके उद्घाटन-विधि सम्पन्न करूँगा। श्री गंगाधरराव

देशपाण्डेने समारोहके आरम्भमें ही दिये अपने भाषणमें मुझे यह विधि सम्पन्न करनेके लिए आमन्त्रित करते हुए आप लोगोका ध्यान उस जबरदस्त सहायताकी ओर आकर्षित किया जो इस आन्दोलनको इस राज्यसे और विशेषकर इसके उद्योग विभागसे मिल रही है। इसने ऐसे बहुत-से चरखे तैयार किये है। प्रदर्शनी-प्रागणमें आप तरह-तरहके चरखे देखेंगे। वहाँ आपको पुराने ढंगके चरखे भी देखनेको मिलेंगे, जो न्यूनाधिक जीर्ण-शीर्ण अवस्थामें मैसूरमें आज भी पाये जाते है और साथ ही आपको यह भी देखनेको मिलेगा कि इन छः वर्षोंमें चरखा किस विकास-क्रमसे गुजरा है। अभी मैं आपके सामने जिस चरखेका अनावरण करूँगा वह इस विकास-क्रमकी कोई श्रेष्ठतम उपलब्धि नही है। लेकिन, हमने सोचा कि सबसे पहले मैसूरमें बनी कोई चीज ही आपके सामने पेश करना अवसरके उपयुक्त होगा।

आपको प्रदर्शनीके प्रांगणमें ले जानेके लिए आपका नेतृत्व करनेकी विधि पडित मदनमोहन मालवीय सम्पन्न करेगे। मुझे प्रदर्शनी-प्रागणसे गुजरनेकी परेशानी न उठानी पड़े, इसलिए उन्होंने कृपापूर्वक मेरी खातिर यह काम करना स्वीकार कर लिया है। सायकाल ५-३०से इस समारोहकी कार्यवाहीका संचालन भी वही करेगे। उस समय वे प्रदर्शनीके प्रागणमें जो-कुछ देख चुके होंगे, उसके विषयमें आपको अपना विचार बतायेंगे और इन छ. वर्षोंमें उन्होने खादीके सम्बन्धमें जो-कुछ जाना-समझा है उसके बारेमें भी बतायेंगे। मुझे उम्मीद है कि उन्हे आपको जो भी सन्देश देना होगा, उसे सुननेके लिए आप लोग अवश्य पधारेगे। जब वे नेताओको लेकर प्रदर्शनी प्रांगणमें जायें, उस समय आप लोग उनके आसपास भीड़ लगानेकी कोशिश न करें, अन्यथा प्रदर्शनीमें उन्हें जिन चीजोका अध्ययन करना है उनका अध्ययन करना वास्तवमें सम्भव नही होगा। असलमें यह प्रदर्शनी उन लोगोके अध्ययनके लिए ही आयोजित की गई है जो यह समझना चाहते है कि खादी-आन्दोलनका उद्देश्य क्या है और वह कहाँतक सफल हो पाया है। यह कोई ऐसा प्रदर्शन नही है जिसे प्रदर्शनी-प्रांगणसे बाहर जाते ही भुला दिया जाये। यह कोई सिनेमा नही है। यह वास्तवमें वह नर्सरी है जहाँ कोई जिज्ञासु मानवताका प्रेमी, देशका प्रेमी आकर अपनी आँखोसे सबकुछ देख-परख सकता है। मैं इस आन्दोलनकी उपादेयताके विषयमें शंका रखनेवाले लोगोंको आमन्त्रित करता हूँ कि वे वहाँ जायें और न केवल कुछ क्षणोंतक बल्कि घंटोंतक सब-कुछ ध्यानपूर्वक देखें और सोचें। मैं उन्हें विश्वास दिलाता हूँ कि फिर तो वे स्वयं ही पायेंगे कि उनका वहाँ जाना व्यर्थ नही हुआ, और हो सकता है, उसके बाद उनकी सारी शँकाएँ भी मिट जायें। मैं निष्पक्ष आलोचकोको भी वहाँ जानेको निमन्त्रित करता हूँ। मुझे इसमें तनिक भी सन्देह नही कि वे वहाँ बहुत-सी कमियाँ देखेंगे, रेखाचित्रोंको वे कलात्मक ढंगसे तैयार किया गया नहीं पायेंगे, लेकिन वे यह अवश्य देखेंगे कि उन चित्रोके भीतरसे हृदय बोलता है। उनमें आप ऐसे तथ्य और आँकड़े देखेंगे जिनका संग्रह उन अध्येताओंने किया है जो सिर्फ सत्यकी सेवा करना चाहते है। आप वहाँ देखेंगे कि तथ्योंको कम करके तो बतलाया गया है, लेकिन बढ़ाकर बिल्कुल नही बतलाया गया। इन्ही शब्दोंके साथ अब मैं प्रसन्नता-

पूर्वक चरखेका अनावरण करता हूँ और आशा करता हूँ कि आप सब इस आन्दोलनको अपना समर्थन देंगे, जिसका कि यह पात्र है।

और तब श्री देशपाण्डे एक चरखेको उठाकर गांधीजीके आसनतक ले गये और महात्माजीने तुमुल हर्ष-ध्वनिके बीच उसका अनावरण किया।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू ४-७-१९२७

१४. पत्र : मीराबहनको[1]

४ जुलाई, १९२७

चि० मीरा,[2]

आज मुझे तुम्हारे पत्रकी उम्मीद थी, लेकिन अभीतक तो मिला नहीं। अभी एक और डाक आनेकी कुछ थोड़ी-सी सम्भावना है। मुझे उम्मीद है कि रेलगाड़ीमें तुम्हें बहुत ज्यादा भीड़-भाड़का सामना नही करना पड़ा होगा और तुम्हें गुंटकलमें कोई कठिनाई नही हुई होगी। तुम्हारे जानेके बाद बालुंजकरका तार आया था। उसमें महादेवसे कहा गया था कि वह तुम्हें काकासाहब, स्वयं बालुंजकर और गंगूसे मिलनेके लिए गोलनादमें उतरनेके लिए कहे। लेकिन तुम जा चुकी थी और सिर्फ इस आशामें कि तुम्हारे बम्बईसे रवाना होनेसे पहले ही तुम्हें तार मिल जायेगा (यह आशा थी भी बहुत कम), तुम्हें तार देना ठीक नहीं लगा।

तुमने कितनी अच्छी बात कही? — मैं जुदा हो रही हूँ, लेकिन करीब आनेके लिए। तुम्हारा यहाँ आना भी ठीक था और जब तुम गईं तब जाना भी बिल्कुल ठीक था।

विदाके समयके मेरे शब्दोंको याद रखना। दो महीनेमें हिन्दी पूरी तरह सीख लेनेकी कोशिशमें तुम अपने-आपको परेशान न कर डालना और न अपनी सेहतको ही बरबाद करना। यों हम आशा करते हैं कि तुम यह काम पूरा कर लोगी। लेकिन यदि न कर सको तो कोई हर्ज नहीं; तुम्हारा *काम* तो केवल *कोशिश* करना है। फिर वर्धामें तबतक सिर्फ हिन्दीमें ही बोलनेकी प्रतिज्ञा न लेना जबतक तुम सचमुच अपने अन्दरसे इसकी प्रेरणा अनुभव न करो। यह प्रतिज्ञा न लेनेसे कुछ बिगड़ नही जायेगा। इसमें तुम्हें मेरी पसन्दका खयाल नहीं करना चाहिए। ऐसे मामलोंमें मेरे विचार अथवा मेरी इच्छाओंका खयाल करनेका कोई सवाल नहीं होना चाहिए।

१. **बापूज लैटर्स टु मीरा** नामक पुस्तकमें मीराबहनने पत्रका सन्दर्भ स्पष्ट करते हुए लिखा है कि "इस समयतक मैं भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी छोड़ चुकी थी और बंगलोरमें कुछ दिनोंतक बापूके पास रह आनेके बाद अब मैं कुछ दिनोंके लिए साबरमतीमें रह रही थी, जहाँसे मुझे अपनी हिन्दीकी पढ़ाई आगे जारी रखनेके लिए विनोबाके आश्रम, वर्धा जाना था।"

२. इस पत्रमें तथा मीराबहनको लिखे अन्य पत्रोंमें भी सम्बोधन देवनागरी लिपिमें हैं।

आखिरकार सवाल हिन्दी सीखनेके सबसे अच्छे तरीकेको चुननेका ही तो है। और जो तरीका तुम्हें ठीक लगे वही सबसे अच्छा तरीका है, अन्य कोई नहीं।

सस्नेह,

बापू

[पुनश्च :]

उद्घाटन-समारोह बिना किसी कठिनाईके कल सम्पन्न हो गया। इसमें मुझपर जितना भार पड़ा, उसे मैं निभा गया। समारोहके बाद डॉक्टर लोग आये और उन्हें यह जानकर सन्तोष हुआ कि नब्जकी गतिमें कोई परिवर्तन नहीं है। मुझे उम्मीद है कि यहाँसे जानेके बाद तुम्हे कब्जकी शिकायत नहीं रह गई होगी।

बा०

[पुनश्च :]

इस पत्रको डाकमें डालनेके लिए देनेके तुरन्त बाद मुझे तुम्हारा सुन्दर पत्र[1], जिसकी मैं प्रतीक्षा कर रहा था, मिला। इसे पढ़ना पूर्णतया सुगम है। गलतियाँ बहुत-कम हैं। पत्र लिखती रहना।

बा०

अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ५२४३)से।
सौजन्य : मीराबहन

९५. पत्र : मीराबहनको

मौनवार [४ जुलाई, १९२७][2]

चि० मीरा,

सोमवारका खत तो मैंने साबरमती भेजा है। परंतु यदि खत पहोंचनेके पहले पहोंच गई हय तो सोमवारकी डाक वर्धा भी खाली न जाय इस हेतुसे यह खुश खत भेजता हुं।

तुमारे खतकी आज उमीद थी परंतु नहिं मीला। कल तो आना ही चाहीये।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

गभराना नहिं। साबरमतीका खत इंग्रेजीमें है।

[पुनश्च :]

तुम्हारा हिंदी खत अबी मीला।

सी० डब्ल्यू० ५२४२ से।
सौजन्य : मीराबहन

१. यह पत्र हिन्दीमें था।
२. डाककी मुहरसे।

९६. पत्र : आश्रमकी बहनोंको

मौनवार, आषाढ़ सुदी ५[1] [४ जुलाई, १९२७]

बहनो,

कल तुम्हें याद किया था। प्रदर्शनी आदिके काम पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियोंके अधिक हैं। मीठुबहनने अपना विभाग जैसा सजाया है, वैसा और लोग नहीं सजा सके। और यही स्वाभाविक है। वह तो चौबीसों घंटे यही सोचा करती है कि खादीको सुन्दर कैसे बनाया जाये। थोड़ी-सी लड़कियोंसे आज तो ४०० लड़कियाँ उसकी देखरेखमें काम करने और कमाने या अपने हाथकी खादी पहनने लगी हैं।

मणिबहन अपनी धुनकीसे प्रदर्शनीकी और अपनी शोभा बढ़ा रही है। इतने आश्रमवासी आ जानेके बाद सुबह 'गीताजी'का पाठ जबानी होता है। आजका अध्याय —यानी चौथा—मणिबहन बोली थी। पहला भी वही बोली थी। उच्चारण अच्छा करती है।

शुद्ध उच्चारणसे और अर्थसहित 'गीताजी' पढ़ना तो सभी बहनोंको सीख लेना चाहिए। जैसे भोजन बनाना न जाननेवाली स्त्री शोभा नहीं देती, वैसे ही यह कहनेमें अतिशयोक्ति नहीं कि 'गीताजी' न जाननेवाली स्त्री भी शोभा नहीं देती।

आजकल-भण्डारिन कौन है?

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ३६५६) की फोटो-नकलसे।

९७. पत्र : जे० बी० पेटिटको

कुमार पार्क, बंगलोर
५ जुलाई, १९२७

प्रिय श्री पेटिट,

साथमें एक तार[2] भेज रहा हूँ। तार एन्ड्रयूजने साबरमतीके पतेपर भेजा था और इसकी एक नकल बंगलोरके पतेपर मुझे भी भेज दी थी। इसमें सारी बातें

१. साधन-सूत्रमें आषाढ़ सुदी ६ है जो कि भूल है। यह पत्र प्रदर्शनीके उद्घाटनके दूसरे दिन लिखा गया था।

२. यह तार ४ जुलाईको भेजा गया था और इस प्रकार था: "शास्त्रीके स्वास्थ्यसे चिन्ता। ऊपरसे आर्थिक कठिनाइयाँ क्योंकि भत्ते बिलकुल अपर्याप्त। वाइसरायके विभागको तार दिया। शास्त्रीको रचनात्मक कार्यके अलावा और कुछ पसन्द नहीं। अखबारोंमें इस आशयकी विज्ञप्ति देकर कि पूरा भत्ता नितान्त आवश्यक; जनताको सूचित करें। शायद तीन जगहोंपर उनके निवासकी स्थायी व्यवस्था रखना आवश्यक। होटलोंमें रहना असम्भव। अखबारोंको भेजे मेरे तारोंकी प्रतीक्षा करें।"

बिल्कुल स्पष्ट है। यदि श्री शास्त्रीका स्वास्थ्य बिगड़ जाता है अथवा उनपर आर्थिक कठिनाइयाँ आती हैं तो यह बहुत बुरी बात होगी। खुद मैं तो यह समझता हूँ कि इस मामलेमें भारत सरकार विशेष जरूरतोंको पूरा नहीं कर सकेगी। कोई गलत नजीर कायम करना ठीक नहीं होगा; फिर भी सफलताके लिए श्री शास्त्रीके पास इतनी पर्याप्त धनराशि होनी चाहिए कि वे स्थान-स्थानपर जा सकें और वहाँ उन्हें रहने-ठहरनेके लिए अच्छी जगह मिल सके। भावी एजेंटोंको तीन-तीन स्थानोंपर आवासके प्रबन्धकी जरूरत नहीं रहेगी। लेकिन, श्री शास्त्रीको पहले-पहल रास्ता बनाना है और इसलिए उन्हें परस्पर-विरोधी तत्त्वोंके बीच मेल-जोल स्थापित करनेके लिए न केवल अपने पदका बल्कि अपने विशिष्ट वैयक्तिक गुणोंका भी उपयोग करना है। अतएव उनका अधिक ठोस कार्य तो वही होगा जिसे वे अपने पदकी हैसियतसे नहीं करेंगे। ऐसा कर सकनेके लिए उनके पास पैसा होना चाहिए। भारतके समान दक्षिण आफ्रिकामें भी एक स्थानसे दूसरा स्थान बहुत दूर पड़ता है। रेल-पथसे केपटाउन और डर्बनके बीचकी दूरी १,४०० मील है। इन दोनों नगरोंमें उनके पास रहनेके लिए अपनी जगह होनी चाहिए। यदि वे होटलमें जाकर रहते हैं तो अधिकांश भारतीय, जो गरीब हैं, उनतक नहीं पहुँच पायेंगे।

मैं नहीं समझता कि समाचारपत्रोंमें यह-सब लिखना और पैसेके लिए सार्वजनिक अपील करना मुनासिब होगा। इसलिए एकमात्र उचित रास्ता यही रह जाता है कि साम्राज्यीय नागरिक संघ (इम्पीरियल सिटिजनशिप एसोसिएशन) एक मोटी रकम श्री शास्त्रीको सौंप दे। इसमें कोई देर नहीं की जानी चाहिए। मुझे इस बातके बारेमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि साम्राज्यीय नागरिक संघके कोषमें से इस मदमें खर्च करना बिलकुल वाजिब होगा।

मेरा सुझाव है कि २५,००० रुपये तुरन्त उनके नाम कर दिये जायें, जिन्हें वे व्यक्तिगत सुविधाके लिए जिस तरह आवश्यक समझें उस तरह खर्च करें। हम उनपर इस बातके लिए भरोसा रख सकते हैं कि वे इस रकमका विवेकके साथ उपयोग करेंगे और फाजिल पैसा लौटा देंगे।

पैसे जल्दी भेजे जा सकें, इसके लिए मैं इस पत्रकी एक प्रति समितिके सदस्योंको भेज रहा हूँ, जिन्हें मैं जानता हूँ और जो मेरे खयालसे इस विषयमें दिलचस्पी लेंगे।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

श्रीयुत जे० [बी०] पेटिट
साम्राज्यीय नागरिक संघ
बम्बई

अंग्रेजी (एस० एन० १२३६५) की फोटो-नकल से।

९८. पत्र : जोशीको

कुमार पार्क, बंगलोर
५ जुलाई, १९२७

प्रिय जोशी,

मेरा खयाल है कि आप साम्राज्यीय नागरिक संघ (इम्पीरियल सिटिजनशिप एसोसिएशन) की समितिके सदस्य हैं। संलग्न पत्रमें[1] सारी बातें स्पष्ट हैं। इसमें मैंने जो विचार व्यक्त किये हैं, यदि आप उनसे सहमत हैं तो आप कृपया इसके सम्बन्धमें कार्यवाही करानेमें जल्दी करें।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी (एस० एन० १२३६५) की फोटो-नकलसे।

९९. पत्र : के० एस० नटराजन्को

कुमार पार्क, बंगलोर
५ जुलाई, १९२७

प्रिय श्री नटराजन्,

साथमें श्री पेटिटको लिखे पत्रकी[2] नकल भेज रहा हूँ। मुझे अलगसे इसके अलावा और कुछ कहनेकी जरूरत नहीं है कि यदि आप श्री पेटिटको लिखे पत्रके सारसे सहमत हों तो रकम भिजवानेमें शीघ्रता करायें।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत के० एस० नटराजन्
"इंडियन सोशल रिफॉर्मर"
फोर्ट
बम्बई

अंग्रेजी (एस० एन० १२३६५) की फोटो-नकलसे।

१. देखिए पिछला शीर्षक।
२. देखिए "पत्र : जे० बी० पेटिटको", ५-७-१९२७

१००. पत्र : सतीशचन्द्र दासगुप्तको

कुमार पार्क, बंगलोर
५ जुलाई, १९२७

प्रिय सतीश बाबू,

आपके दो पत्र मिले। पिछला तो कल ही मिला था।

[चरखा संघकी] परिषद्के कामकाजके विषयमें आपने जो पत्र लिखा था, उसे परिषद्के सामने रखा गया। जमनालालजी और शंकरलाल आपको विस्तारसे सब-कुछ लिखेंगे। मैं पहली बैठकके अलावा और किसीमें शामिल नहीं हुआ और पहली बैठककी भी सिर्फ उद्घाटन-विधि सम्पन्न करके कोई भाषण वगैरह दिये बिना चला आया। मेरा खयाल है, परिषद्ने मुझे तमाम प्रशासनिक कार्योंसे मुक्त करनेका मूल प्रस्ताव स्वीकार कर लिया है। अध्यक्ष अब भी मैं ही हूँ; लेकिन जमनालालजी परिषद्के कार्यकारी अध्यक्ष बना दिये गये हैं। मेरा खयाल है, यह उत्तम व्यवस्था है। इस तरह मैं प्रशासनिक मामलोंकी हरएक तफसीलका जायजा लेते रहनेकी परेशानीसे बच जाऊँगा।

परिषद्की बैठकें विभिन्न केन्द्रोंमें करनेका आपका सुझाव मान लिया गया है।

जैसा कि पहले सोचा गया था, संविधानमें पाँच सालतक कोई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन नहीं करना चाहिए। हर साल अधिकारियों, और विशेषकर मन्त्रियोंको बदलते रहना खतरनाक बात है। मन्त्रीको नये-नये सुझाव देकर उसकी सहायता करते रहना चाहिए। लेकिन, हमारी संस्था एक व्यावसायिक संस्था है, इसलिए यदि हम उसे सुदृढ़ नींवपर खड़ा रखना चाहते हैं तो प्रशासनिक नियन्त्रणमें कभी कोई ढील नहीं आनी चाहिए। और खुद मेरा खयाल तो यही है कि शंकरलालसे अधिक चुस्त-दुरुस्त और ईमानदार मन्त्री मिलना असम्भव है।

हेमप्रभादेवीका ताजा हाल बताते हुए आपने जो पत्र लिखा है, उसपर गम्भीरतासे विचार करनेकी जरूरत है। जल्दीमें कुछ न होने दीजिए।

निर्वाहसे सम्बन्धित सुझावसे तो मैं स्तम्भित रह गया हूँ। इस प्रश्नको मेरा मन ठीक तरहसे ग्रहण कर सके और इसके विषयमें मैं शान्तिपूर्वक सोच सकूँ, इसके लिए मुझे काफी समय लगेगा। कुछ करनेसे पहले हम दोनोंका मिलना जरूरी है। मान लीजिए, मैं अगस्तके अन्त या सितम्बरके मध्यतक दक्षिण भारतका दौरा सकुशल पूरा करके छुट्टी पा लेता हूँ, तो क्या आप चाहेंगे कि मैं रुक-रुककर सुविधापूर्वक बंगालका दौरा शुरू कर दूँ? मेरे बारेमें चिन्ता मत कीजिए; क्योंकि मैं जल्दीमें कुछ नहीं करूँगा और दौरा करते हुए अपने स्वास्थ्य और शक्तिको तौलता रहूँगा। जिस खतरेको टाला जा सकता हो, वैसा कोई खतरा मैं नहीं उठाना चाहता। राजगोपालाचारी और गंगाधरराव दोनों इस बातकी पूरी सावधानी बरत रहे हैं कि

अगर गरीबोंकी भलाई नहीं है तो आपके तमाम कल-कारखाने और प्रयोगशालाएँ, जैसा कि राजगोपालाचारीने विनोदमें कहा, वास्तवमें शैतानके कारखानोंसे अधिक कुछ नहीं होंगे। अच्छा तो अगर आप सोचना चाहते हों, जैसा कि सभी अनुसन्धान-छात्रोंको चाहिए तो आपके सोचनेके लिए अब मैंने काफी मसाला दे दिया है।

अन्तमें उन्होंने [कहा कि]... **आपको अपनी मातृभूमि और उसकी सन्तानके प्रति अपने प्रेमके दीपको सदा प्रज्वलित, व्यवस्थित और स्थिर रखना चाहिए। और चूँकि आप वैसा करते हैं, इसीलिए, आप उस ज्ञान और लाभके उपयुक्त पात्र हैं जो आपको इस संस्थानसे मिल रहा है।**[1]

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, २१-७-१९२७

१३४. सन्देश : 'सर्चलाइट' को[2]

१३ जुलाई, १९२७

जो लोग मुझसे सन्देश प्राप्त करना चाहते हैं, उन्हें बार-बार एक ही तरहका सन्देश प्राप्त करनेपर आश्चर्य नहीं होना चाहिए, क्योंकि मेरे पास कहनेको नया कुछ नहीं है। 'सर्चलाइट' के सम्पादक, मालिक और कर्मचारीगण तथा पाठक, सभीको करोड़ों गरीब लोगोंके कल्याणके लिए अपने हिस्सेका काम करना चाहिए, अर्थात् वे खादीके अलावा और कुछ न पहनें; वे सभी तरहके विदेशी कपड़ेका बहिष्कार करें; वे खादी-कार्यके लिए जितना दे सकें उतना दें; और वे प्रतिदिन कमसे-कम आधे घंटेतक अच्छा, एकसार और बुने जाने योग्य सूत कातें और उसे दरिद्रनारायणके नामपर तथा दरिद्रनारायणकी ओरसे अखिल भारतीय चरखा संघको उपहार-स्वरूप दें। मैं यह जान सकूँ कि इस सन्देशको कमसे-कम सम्बन्धित व्यक्तियोंने पढ़ तो लिया है, इसलिए मेरा सुझाव है कि वे मुझे अपना चन्दा भेजें और बतायें कि क्या उन्होंने सन्देशको स्वीकार कर लिया है तथा क्या वे उसके अनुरूप कार्य कर रहे हैं। जिन्हें सन्देश स्वीकार न हो, वे मुझे पोस्टकार्डपर अपनी-अपनी आपत्तियाँ और सन्देशको स्वीकार न करनेके कारण लिख भेजें।

मो० क० गांधी

अंग्रेजी (एस० एन० १४१८२) की फोटो-नकलसे।

१. यह अनुच्छेद १३-७-१९२७ के **हिन्दू**से लिया गया है।
२. १५ जुलाईके वार्षिक विशेषांकके लिए।

सुशीलाका वजन बढा है किन्तु ऐसा नहीं लगता कि उसी अनुपातमें उसके शरीरकी शक्ति भी बढ़ी है। शरीरकी शक्ति बढ़ानेका एक ही मार्ग है — जितनी आसानीसे हजम हो उतनी सात्त्विक खुराक लेना, खुली हवामें शरीर सह सके उतनी कसरत करना तथा यथासम्भव पशु-क्रीड़ासे बचते रहना। ऐसी मानसिक क्रीड़ा भी शरीरको कितना क्षीण करती है, इसका मैं स्वयं एक सजीव उदाहरण हूँ। ३० वर्षकी आयुतक तो मैं सावधान ही नहीं रहा। उसका फल आज भी भोग रहा हूँ। मेरा शरीर अच्छा कहा जा सकता है, बीमारियाँ मैंने कम भोगी हैं तो भी यदि मैं जल्दी चेत गया होता तो मैं जानता हूँ कि मेरा शरीर वज्रके समान होता और मेरी सेवा करनेकी शक्ति भी बहुत ज्यादा होती। मुझे जगानेवाला या जाग्रत रखनेवाला कोई था ही नहीं किन्तु तुम दोनोंको जगाने और जाग्रत रखनेवाला मैं हूँ। मैं चाहूँगा कि मेरे अनुभवोंसे तुम शिक्षा लो।

मेरी तबीयत ठीक रह रही है। अभी यहाँ खादी-प्रदर्शनी हो रही है और चरखा संघकी समितिकी बैठक भी चल रही है इसलिए जमनालालजी, मीठुबहन, जमनाबहन, मगनलाल, केशु, अनसूयाबहन, शंकरलाल आदि आये हुए हैं। एक-दो दिनमें घोंसला सूना हो जायेगा।

अपना पत्र तुम अमरेली नाहक ही भेजते हो। पत्रके ऊपर 'व्यक्तिगत' लिख दिया करो तो कोई उसे पढ़ेगा नहीं। किन्तु तुम क्यों चाहते हो कि आश्रममें कोई भी व्यक्ति तुम्हारा कोई पत्र न पढ़े। इस इच्छामें तो कोई हर्ज नहीं है कि जिस पत्रमें तुमने अपनी नैतिक कठिनाइयोंके सम्बन्धमें प्रश्न किये हों उन्हें कोई न पढे किन्तु सामान्य पत्रोंमें तो ऐसा क्या होता है जिससे तुम चाहो कि उन्हे कोई पढ़े नहीं।

जमनालालजीके पास तुम्हारी जो तसवीर आई है वह हम सब लोगोंने देखी है। तुमने मुझे अथवा बा को भी भेजी है किन्तु वह अभी हमारे हाथ नहीं आई है। कहीं रास्तेमें होगी। किस पतेपर भेजी है इसे जाने बिना पूछताछ करनेमें समय बेकार जाया होता है।

'गीताजी'का अनुवाद तुम्हें नियमपूर्वक मिल रहा होगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ४७२४) की फोटो-नकलसे।

१०२. पत्र : मीराबहनको

कुमार पार्क, बंगलोर
६ जुलाई, १९२७

चि० मीरा,

तुम्हारा तार पाकर मन बेचैन हो उठा है। अबतक कोई पत्र नहीं मिला है। आगेके समाचारकी मैं आतुरताके साथ प्रतीक्षा करूँगा। भगवान् तुम्हारी रक्षा करे।

तुम्हारा,
बापू

अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ५२४४)से।
सौजन्य : मीराबहन

१०३. पत्र : ए० फेनर ब्रॉकवेको

कुमार पार्क, बंगलोर
६ जुलाई, १९२७

प्रिय भाई,

सहपत्रोंके साथ गत १३ जूनका आपका गोपनीय पत्र मिल गया। आपने अपने विधेयकका मसविदा भेजकर मुझे जो सम्मान दिया है, उसकी मैं कद्र करता हूँ, और मैं इंडिपेंडेंट लेबर पार्टीके उन सदस्योंको धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने इस विधेयक-को तैयार किया है।

फिर भी, मैं आपको कोई कामकी सलाह देने या आपका मार्गदर्शन करनेमें असमर्थ हूँ, क्योंकि फिलहाल तो मैं एक अलग दिशामें काम कर रहा हूँ। मैं अपनी सारी ताकत देशकी आन्तरिक शक्तिके विकासमें लगा रहा हूँ, इसलिए संविधान अन्तिम रूपमें कैसा हो इस प्रश्नका अध्ययन करनेके लिए मेरे पास बहुत कम समय है। मैं इस प्रश्नके महत्त्वकी किसी भी रूपमें उपेक्षा नहीं कर रहा हूँ। लेकिन मैं अपनी सीमाओंको समझता हूँ, और इसलिए कोई दस्तन्दाजी न करके और सारे मामलेको सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिसे देखते रहकर ही मैं यथाशक्ति उपयुक्त संविधान स्वीकृत करवानेके आन्दोलनको सहायता देता हूँ। लेकिन, मैं यह मान लेता हूँ कि आपने विधेयकका मसविदा भारतके बहुत-से अन्य लोक-सेवी व्यक्तियोंको भी भेजा

है और उनकी राय माँगी है। अगर कभी मुझे ऐसा महसूस हुआ कि इस सम्बन्धमें मैं कोई उपयोगी काम कर सकता हूँ तो मैं निस्संकोच भावसे आपको लिखूँगा।

हृदयसे आपका

श्रीयुत ए० फेनर ब्रॉकवे
१४, ग्रेट जॉर्ज स्ट्रीट
लन्दन द० प० १

अंग्रेजी (एस० एन० १२५३०) की फोटो-नकलसे।

१०४. पत्र : गिरिराजकिशोरको

कुमार पार्क, बंगलोर
६ जुलाई, १९२७

प्रिय गिरिराज,

आपका पत्र मिला। आपके आत्म-चिन्तनकी बात मुझे पसन्द आई। इस प्रक्रियामें एक खतरा बराबर रहता है। जो व्यक्ति स्थिर-चित्त नहीं होता वह उदास-वृत्तिका बन जाता है और फिर अपने बारेमें तरह-तरहकी बुरी बातोंकी कल्पना करने लग जाता है। यह अवसाद-रोगी (हाइपोकान्ड्रियाक)की स्थिति है। क्या आप जानते है कि चिकित्साशास्त्रमें इस शब्दका क्या अर्थ है? इसका मतलब है ऐसा व्यक्ति जो जिस-किसी रोगका वर्णन पढ़ता है उसके बारेमें यह सोचने लगता है कि यह रोग उसे भी है। इसलिए, जहाँ यह बात सर्वथा उचित है कि व्यक्तिको अपनी जिस कमजोरीका भान हो, उसे वह दूर करे, वहाँ उसे अपने अन्दर किसी कमजोरीकी झूठी कल्पना नहीं करनी चाहिए और मनपर उदासीको नहीं छाने देना चाहिए। सही तरीका यह है कि अपने मनमें ऐसा सोचनेके बजाय कि मैं अधम हूँ, बहुत बुरा हूँ और मैं कभी अच्छा नहीं बन पाऊँगा यह सोचना चाहिए कि मैं अच्छा बनूंगा; क्योंकि ईश्वर नेक और दयालु है; वह मुझे अच्छा बनायेगा। पहला तरीका व्यक्तिको कमजोर बनाता है, दूसरा उसमें शक्तिका संचार करता है।

आपका यह कथन बिलकुल सही है कि आदर्श रसोइया वह है जिसके मनमें खानेवालेके प्रति वैसी ही भावना हो जैसी कि माताके मनमें अपने बच्चोंके प्रति। बेशक, मनमें ऐसी भावना मुश्किलसे आती है; लेकिन अभ्यास करनेसे हर बात सुगम हो जाती है। हर व्यक्तिके साथ धैर्य और सहिष्णुतासे पेश आइए; हर प्रश्नका उत्तर बहुत मीठे शब्दोंमें दीजिए और जो व्यक्ति खाना खा रहा हो वह अगर माँगे तो भले ही खुद अपने लिए और जिन परोसनेवाले लोगोंको अन्तमें भोजन करना हो उनके लिए कुछ भी न बच जाये, लेकिन आप आखिरी चपाती और दालका आखिरी चमचा भी उसके आगे परोस दीजिए। आप अपनी भूख मिटानेके लिए बादमें कुछ पका सकते है। इसमें अतिरिक्त समय लग सकता है, लेकिन उसकी

परवाह न कीजिए। और इसलिए रसोई बनानेवाले और खाना परोसनेवालोंके लिए रसोईका काम खत्म हो जानेके बाद कोई काम निर्धारित नहीं किया जाना चाहिए। उन्हें वक्त-जरूरतके खयालसे बीचमें काफी खाली समय बराबर मिलना चाहिए।

आप अपने-आपको इस कामके लिए अनुपयुक्त न मानें। जो व्यक्ति समाजके लिए और समाजमें, अर्थात् दूसरोंके साथ रहकर काम करना चाहता है वह चाहे रसोईघरमें काम कर रहा हो या सफाईके काममें लगा हो अथवा बुनाई केन्द्रमें काम कर रहा हो, उसके लिए हर जगह लगभग एक ही तरहके गुण अपेक्षित हैं; और इस पावनकारी आगमें तपे बिना कोई भी व्यक्ति सच्चा मानव नहीं बन सकता। इसलिए मैं चाहता हूँ कि आप पूरी तरह शान्त और निरुद्विग्न हो जाइए, अपने कामसे सुख और सन्तोष प्राप्त कीजिए और चाहे जैसी कठिन परिस्थिति आ जाये, उसका मुकाबला कीजिए। मैं जानता हूँ कि यह-सब कहनेमें बहुत आसान है, लेकिन करनेमें उतना आसान नहीं है। फिर भी, हमारे सारे ज्ञानार्जनका और हम जो-कुछ करें उस सबका उद्देश्य समचित्तताकी स्थितिको प्राप्त करना ही होना चाहिए। इसलिए, मैं आशा करता हूँ कि आप कभी पराजय स्वीकार नहीं करेंगे।

जब भी इच्छा हो, मुझे पत्र अवश्य लिखिए। बराबर चुस्त शैलीमें लिखनेकी कोशिश कीजिए। लेकिन अगर आप अपनी बात संक्षेपमें न कह सकें तो आपके लम्बे पत्रोंका भी स्वागत ही है। लेकिन आप ऐसा करें कि लम्बा पत्र लिखनेके बाद उसे घटाकर एक चौथाई कर दें और तब देखें कि आप एक चौथाई स्थानमें वही बात कह सकते हैं या नहीं जो आपने अपने लम्बे पत्रमें कही है। यह अभ्यास अच्छा रहेगा।

हृदयसे आपका,

गिरिराजकिशोर
आश्रम
साबरमती

अंग्रेजी (एस० एन० १४१८०) की फोटो-नकलसे।

१०५. पत्र : जयरामदास दौलतरामको

कुमार पार्क, बंगलोर
६ जुलाई, १९२७

प्रिय जयरामदास,

अगर तुम कौंसिलके कामसे फुरसत पा सको तो मुझे तुम्हारी सख्त जरूरत है। मालवीयजी और मैं एक अखिल भारतीय अस्पृश्यता-निवारण संघकी स्थापनाकी वांछनीयतापर विचार करते रहे है। जमनालाल, राजगोपालाचारी, शंकरलाल, राजेन्द्र बाबू और अन्य लोग भी ऐसा ही सोचते हैं। इस कामको करनेके लिए तुम-जैसा कोई दूसरा व्यक्ति उपयुक्त नही है। जमनालालजीका विचार है कि मै तुम्हें हर हालतमें आ जानेको कहूँ। वैसा मैं नहीं कर सकता। लेकिन, मैंने सोचा कि यह बात तुम्हारे सामने अवश्य रख दूं और अगर तुम्हारी अन्तरात्माको यह स्वीकार हो तो मै चाहूँगा कि तुम अवश्य आ जाओ। लेकिन, अगर तुम सोचते हो कि कौंसिलमें रहकर तुम देशकी सेवाके हित अपनी योग्यताका अधिक अच्छा उपयोग कर सकते हो तो फिर मुझे कुछ नही कहना है। बहरहाल, तुम इस बातपर अच्छी तरह विचार करके मुझे बताओ। अगर तुम किसी ऐसे पक्के निष्कर्षपर पहुँचो जिसे तुम मुझे तार द्वारा सूचित कर सको तो तुम तार भी भेज सकते हो।

हृदयसे तुम्हारा,

श्रीयुत जयरामदास दौलतराम
विधान परिषद् सदस्य
हैदराबाद (सिन्ध)

अंग्रेजी (एस० एन० १४६१९) की माइक्रोफिल्मसे।

१०६. पत्र : लिलियन एडगरको

कुमार पार्क, बंगलोर
६ जुलाई, १९२७

प्रिय मित्र,

कृष्णदासने आपका पत्र और उसके साथ भेजा सूत मुझे दे दिया है। सूत खराब तो बिलकुल नहीं है। हाँ, इसे ज्यादा एकसार जरूर बनाया जा सकता था। मैं नहीं समझता कि इसमें उम्रका कोई व्यवधान है। मैं आपके ही समान अधिक उम्रके ऐसे अनेक लोगोंको जानता हूँ कि जिन्होंने कताई शुरू करके उसमें काफी अच्छी गति प्राप्त कर ली। इसमें सन्देह नहीं कि शुरूमें अधिक धैर्यकी जरूरत होती है।

आपने मुझसे पूछा है कि आप जो थोड़ा-सा सूत कातती हैं, उससे क्या गरीबोंको कोई सहायता मिल सकती है। मैं बेहिचक कहता हूँ, "हाँ, मिल सकती है।" लेकिन, इसका मतलब यह नहीं कि आप जो सूत कातकर भेजें उसकी खादी अलगसे बुनकर गरीबोंको भेज दी जायेगी। सूतके रूपमें हमें जो चन्दा मिलता है, उसका हम ऐसा कोई उपयोग नहीं करते। हम करते यह हैं कि उस सूतको बुने जानेवाले थानमें लगा लेते हैं और उसकी बिक्रीसे जो मुनाफा होता है, उसका उपयोग गरीबोंको कताईके काम और उससे सम्बन्धित दूसरे कार्योंकी सुविधा प्रदान करनेके लिए करते हैं।

मैं आपके इस विचारसे पूर्णत: सहमत हूँ कि व्यक्तियोंके लिए यह बात बहुत कठिन है कि वे दान देनेमें विवेकसे काम ले सकें। गलियोंमें फिरनेवाले भिखमंगोंमें से अधिकांश लोग अगर कुछ और नहीं तो कमसे-कम ऐसे निठल्ले और आलसी तो हैं ही जो एक धन्धेके तौरपर भीख माँगते हैं, और जिनके पास अपनी जरूरतसे ज्यादा पैसा है। इन्हें पैसा, खाना या कपड़ा देनेसे इनका और देशका भी अहित ही होता है। हमने अनुभवसे देखा है कि हम चन्देके रूपमें प्राप्त सूतसे तैयार की गई खादीको गरीबोंके बीच बाँटें तो यह भी उनका कोई भला करना नहीं होता। असली जरूरत न उन्हें भोजन देनेकी है और न कपड़ा देनेकी। जरूरत तो उन्हें ऐसा काम देनेकी है जिसे वे अपने झोंपड़ोंमें बैठकर कर सकें। लेकिन जहाँ कामके साथ-साथ कपड़ा देना जरूरी होता है, वहाँ उसे देते हुए भी हम नहीं हिचकिचाते। लेकिन ऐसी आवश्यकता यदा-कदा ही पड़ती है। मेरे विचारसे, यज्ञके भावसे किसीके द्वारा सूत कातनेका असली महत्त्व स्वयं इस काममें है और इससे देशमें कर्मशीलताका जो वातावरण तैयार होता है, उसे उत्तेजन देने तथा देशके गरीबसे-गरीब लोगोंके प्रति सहानुभूतिकी ठोस और क्रियाशील भावना जगानेमें निहित है।

अब अपने प्रश्नोंके उत्तर लीजिए :

१. पहले सूत निकालकर फिर उसमें बट देना गलत है। सूत तो तकुएके अपने केन्द्रमें चारों ओर घूमते समय ही निकालना चाहिए। इस घुमावसे सूतमें ठीक बट

आ जाता है। सूत निकालना और तकुएका घूमना साथ-साथ चलता है, जिससे लगातार ठीकसे सूत निकालते जानेमें कोई कठिनाई नहीं होती। और जब सूत निकाला जा रहा होता है, उस समय पूनीको अँगुलियोंके बीच इतना दबाकर रखते हैं जिससे बट सूतके उस छोरतक नहीं पहुँच पाता जिसे हम अँगुलियोंसे पकड़े होते हैं।

२. माल अर्थात् उस डोरीपर कभी-कभी मोम लगाना पड़ता है जो चरखेके चक्र और तकुएपर चढ़ी रहती है।

३. तेलका उपयोग ज्यादा नहीं करना है। मशीनोंमें दिये जानेवाले साधारण तेलसे काम चल सकता है। लेकिन, अगर वह सुलभ न हो तो खाना पकानेके तेलसे भी काम ठीक निकल जाता है। धुरीमें, जहाँ वह खम्भोको छूती है, और हत्थोंमें, जिनपर तकुवा टिका रहता है, कभी-कभी दो-चार बूँद तेल डाल देनेसे चरखा ठीक चलता है।

४. घंटा-भर कात लेनेके बाद उस सूतको तकुए परसे उतार देना अच्छा रहेगा। जो लोग तेजीसे कात सकते हैं, वे तो हर बीस मिनट बाद ही सूतको तकुए परसे उतार लेते हैं। जब सूतको उतारते समय वह उलझ जाये तो समझना चाहिए कि तकुएपर सूत कसकर नहीं लपेटा गया है। अगर आपका सूत ठीक तरहसे बटा हुआ हो तो आप उसे हर बार तकुएपर काफी कसकर लपेट सकती हैं और उसे ऐसा लपेटना चाहिए जिससे कुकड़ी छूनेमें मुलायम नहीं, बल्कि सख्त जाने पड़े।

५. जब डोरी टूट जाये और आप अपने काते सूतसे डोरी न बट सकें तो आप उसी डोरीके बराबर कोई भी मोटी डोरी बाजारसे खरीदकर उसका उपयोग कर सकती हैं।

और अन्तमें, अगर आप कताई कलामें प्रवीण होना चाहती हैं और यज्ञ-भावसे कातना चाहती हैं तो यह आवश्यक है कि किसी अच्छे कातनेवालेको कातते हुए देखें। आप जहाँ भी हों — काशीमें हो या दरभंगामें — कहीं भी आपको ठीक ढंगकी सहायता पानेमें कोई कठिनाई नहीं होगी।

आपके प्रयत्नके लिए पूर्ण सफलताकी कामना करता हुआ,

हृदयसे आपका,

कुमारी लिलियन एडगर
मार्फत पोस्ट मास्टर
श्रीनगर (कश्मीर)

अंग्रेजी (एस० एन० १९७८५) की माइक्रोफिल्मसे।

१०७. पत्र : हिन्दी साहित्य सम्मेलनके मन्त्रीको

बेंगलोर
आषाढ़ शुक्ल ७ [६ जुलाई, १९२७][1]

श्रीमान मन्त्रीजी,

आपका तार मुझको कल मिला। मेरा उत्तर आपको मिल गया होगा। उसके पहले जो पत्र मैंने भेजा है वह भी मिला होगा। आपके तारसे मुझको दुःख हुआ। कोर्टमें जानेकी धमकी देना अनुचित था ऐसा मेरा नम्र अभिप्राय है। मैंने तो कई वार कह दिया है, मेरे पत्रमें भी लिखा है कि यदि आप यहांका कार्यको सम्मेलनकी मिल्कीयत मानें तो इस बातका फैसला पंच द्वारा हो सकता है। यदि सम्मेलनके हितके लिये कोर्टसे ही फैसला हो सकता है ऐसा आपका अभिप्राय हो तब तो कोर्टमें ही जाना आपका धर्म हो जायगा यह मैं समझ सकता हूं। यदि कोरटमें ही जाना आप योग्य समझे तो पं० हरिहर शर्माको आप दोषित न समझें। जो कुछ कार्य परिवर्तन हुआ है वह उन्होंने मेरी सम्मतिसे कीया है। मैंने हमेशा यही माना है की दक्षिणका कार्य सम्मेलन द्वारा मै ही चलाता हुं। मेरा विश्वास ऐसा हि रहा है की सम्मेलनको इस कार्य सिपुर्द करके उसकी प्रतिष्ठा में बढ़ा रहा हुं परंतु यदि सम्मेलन और मेरे बीचमें कुछ मतभेद हुआ तो कार्यका कबजा सम्मेलन अपने हाथ लेना नहि चाहेगा और मुझको ही अपनी रायके अनुकुल कार्य करनेमें कोई बाधा नहि डालेगा। मैं तो अभि भी आपकी सहाय इस कार्यमें चाहता हुं परंतु यदि आप युं मानते हैं की जो कुछ पैसे जमनालालजीने इकट्ठे कीये और पंडीतजीने दक्षिणमें कीये वह सब सम्मेलनको मालीक बनानेके लीये था तो मैं लाचार हुं और इस बातका निर्णय पंच या अदालतके मार्फत ही हो सकता है।

आपका,

एस० एन० ११८१७ की माइक्रोफिल्मसे।

1. आषाढ़ शुक्ल ७को गांधीजी इस वर्ष बंगलोरमें थे।

१०८. एक पत्र

[७ जुलाई, १९२७के पूर्व][1]

आपके प्रश्न तो बहुत ही अच्छे हैं, परंतु 'नवजीवन' और 'यं० इं०' पढ़नेवालोंमें अधिक वर्ग ऐसा नही है जो इस प्रश्नका धार्मिक संशोधन करनेके लीये उत्सुक हो। इसलिये आपको ही उत्तर देकर मैं संतुष्ट रहुंगा।

सर जगदीश बोसके विचार कोई नई वस्तु नही है। हमारे शास्त्रोंमें भी वनस्पतीमें उसी प्रकारका जीवकी हस्तीको माना है जैसो मनुष्यमें है। इसलिये 'जीवो जीवस्य जीवनं' यह प्रमाणसिद्ध कथन है उसमें कोई शंका नही है। और यही एक कारण है जिससे शरीर आत्माके लिये उपाधि रूप माना गया है और आत्माकी उच्चतम स्थितिमें शरीरका अभाव आवश्यक माना गया है। यद्यपि प्रत्येक जीव किसी न किसी प्रकारकी हिंसापर ही शरीरको धारण कर सकता है, तदपि किस प्रकारका जीव उसके लिये खाद्य है यह प्रश्न उपस्थित होता है। मनुष्य शरीरकी रचना और ज्ञानीओंका अनुभव बताता है के वनपक्व फलादि ही उसका सच्चा आहार है। शुद्ध मुमुक्षु अग्नि का उपयोग भी नही करेगा। इस आदर्श स्थितिको हम न पहुंचे तो भी यथाशक्ति प्रयत्न करना हमारा कर्त्तव्य है, और इस प्रयत्नमें मांसको किसी जगह स्थान न हो सकता है। वनस्पति जीव हमारे लिये पर्याप्त होना चाहिये।

२. मैं निजी और दूसरोंके अनुभवसे यह कह सकता हूं कि निरामिष भोजनसे इंग्लैंड ऐसे प्रदेशमें मनुष्यको क्षयादि रोगोंका कुछ भी डर नहीं है। हजारों अंग्रेज आज निरामिषाहारी हैं। वे लोग प्रायः अंडा अवश्य खाते है।

३. निरामिष भोजनगृहमें अंडे और दूधका उपयोग होता है। वहां किसी जगह पर मास मिल ही न सकता है न पक सकता है। यह लोग अंडे और दूधको एक ही पंक्तिमें रखते है और वे मानते हैं कि दूध और अंडेका त्याग किया जाय तो वह अच्छी बात है क्योंकि वह वनस्पति हरगीज नही है। मेरा भी यह अभिप्राय है। मनुष्यके लिये बचपनमें माताका दूधको छोड़कर और कोई दूध लेनेका अधिकार नही है। इस बारेमें मुझको 'यं० इं०' में भी कुछ न कुछ लिखना होगा—आत्मकथाके ही प्रसंगमें उसे आप देखेंगे। आज तक मेरा मंतव्य था कि प्रत्येक अंडेमें मुरघीकी उत्पत्ति का संभव है ही है। अब मुझको ठीक पता चला है कि मुरघेको मिलनेके सीवा भी मुरघी अंडा देती है और उसमें से मुरघा या मुरघी पैदा ही नहीं हो सकते हैं। वह अंडा उतना ही निर्जीव और निर्दोष है जितना दूध। जब मैं सोच रहा हूं कि निरामिषाहारमें जबतक दूधको कुछ—स्थान है तबतक अंडेको है या नहीं। इतना तो मैं

१. आत्मकथा (भाग ४, अध्याय ८)में दूधके बारेमें जो विचार व्यक्त किये गये हैं उसके उल्लेखके आधार पर यह तारीख निर्धारित की गई है। उक्त अंश यंग इंडियाके ७-७-१९२७के अंकमें प्रकाशित हुआ था।

जानता हूं कि ब्रह्मचर्यकी दृष्टिसे अंडा त्याज्य वस्तु है जिस तरहसे बहुत सी वनस्पति भी है। परंतु यह विषयान्तर हुआ। आज तो मैं अंडेका ख्याल केवल निरामिषाहारकी दृष्टिसे कर रहा हूं।

आपने पत्र हिंदीमें लिखा उसके लिये आपको धन्यवाद देता हूं।

आपका,

एस० एन० १२३२५ की फोटो-नकलसे।

१०९. टिप्पणियाँ

दार्जिलिंगमें देशबन्धु-दिवस

दार्जिलिंगसे श्रीमती ब्लेयरके लिखे निम्न अनुच्छेदको पढ़कर पाठकोंको खुशी होगी :

> शायद यह जानकारी आपके लिए दिलचस्प हो कि दार्जिलिंग महिला समितिने स्वर्गीय श्री चि० रं० दासकी स्मृतिमें १५ जूनको एक सभा की, जिसमें श्रीमती उर्मिलादेवीने भाषण दिया। भाषण खादी पहनने और अपने देशके गरीब लोगोंकी सहायता करनेके इच्छुक लोगोंके प्रतिदिन कमसे-कम आधे घंटेतक सूत कातनेके दायित्वपर दिया गया। उसके बादके बुधवारको, अर्थात् गत २२ तारीखको, समितिकी नौ सदस्याओंने श्रीमती उर्मिला देवीके समक्ष प्रतिदिन कमसे-कम आधे घंटेतक सूत कातनेकी प्रतिज्ञा की। आगे चल-कर वे शायद अपने-आपको अखिल भारतीय चरखा संघकी सदस्या बननेके लायक पायें। इस समय वे ऊन बुनेंगी, ताकि वे शिशु-चिकित्सालय और अस्प-तालको सर्दियोंके लिए गरम कपड़े दे सकें।[1]

यह बहुत अच्छी बात है कि दार्जिलिंगकी महिलाओंने श्रीमती ब्लेयर द्वारा वर्णित ढंगसे देशबन्धु-दिवस मनाया। मुझे उम्मीद है कि जिन नौ महिलाओंने अपने नाम दिये हैं, वे अपना प्रयत्न निर्बाध रूपसे जारी रखेंगी। इस देशमें लोगोंकी यह आदत है कि वे उत्साहके अतिरेकमें वादे कर बैठते हैं, फिर कुछ समयतक उनको निभाते हैं और फिर कुछ दिन बाद वे उन्हें बिलकुल भूल जाते हैं। मैं आशा करता हूँ कि जबतक एक भी भारतीय पुरुष अथवा स्त्रीको अपने घरमें काम न मिलनेके कारण भूखा रहना पड़ता है तबतक ये सदस्याएँ यज्ञके भावसे सूत कातना जारी रखनेके लिए पर्याप्त दृढ़ताका परि-चय देती रहेंगी। सभी जानते हैं कि लोगोंमें ऐसा कहनेका चलन-सा हो गया है कि अगर उनके पास काम नहीं है तो वे अपना घर छोड़कर कहीं और क्यों नहीं जा सकते, वे बागानोंमें क्यों नहीं चले जाते, वे नगरोंमें क्यों नहीं चले जाते, जहाँ श्रमिकोंकी इतनी माँग है और जहाँ वे आठ-आठ आनेतक रोज कमा सकते हैं। इन पृष्ठोंमें

१. श्रीमती ब्लेयरके इस पत्रके उत्तरके लिए देखिए "पत्र: श्रीमती ब्लेयरको", २८-६-१९२७।

मैंने इस दलीलका खोखलापन कई वार समझाया है। करोड़ों लोग अगर चाहे तो भी अपने घर-वार नही छोड़ सकते। और अगर वे सब ऐसा करे तो यह वहुत वुरी वात होगी। न्यूकैसलमें कोयलेकी खानपर ही पहुँचकर कोई कोयला लेना चाहे तो वह शायद उसे मुफ्त ही मिल जाये या वहुत थोडे पैसे में मिल जाये। लेकिन, वम्वईमें ऐसा नही हो सकता। अगर वम्वईको न्यूकैसलके कोयलेका उपयोग करना ही हो तो उसे यातायातका खर्च उठाना पड़ेगा। इसी तरह वम्वईमें रोजगार मिलना उन करोड़ो लोगोके लिए किसी कामका नही हो सकता जो न अपने घर-वार और खेत-खलिहान छोड़ सकते है, न छोड़ेंगे और न जिन्हे छोड़ने ही चाहिए। इसलिए रोजगारको उनके घरोतक पहुँचाना है। और जिस प्रकार न्यूकैसलमें कोयला मुफ्त या सस्ता मिलेगा उसी प्रकार उनके घरोतक पहुँचाया जानेवाला रोजगार पैसेकी दृष्टिसे देखनेपर वम्वईमें मिलनेवाले रोजगारकी अपेक्षा कम लाभदायक है; लेकिन, अगर हम मानसिक सन्तोष, अन्न और सागसब्जीकी दृष्टिसे देखें तो घरोमें मिलनेवाला काम वम्वईमें मिलनेवाले कामसे वहुत अधिक लाभदायक है।

आदि कर्नाटक

'यंग इंडिया' के सभी पाठकोको शायद यह वात मालूम न हो कि आदि कर्नाटक कौन हैं। वे कर्नाटकके दलित वर्गोके लोग है। जिस प्रकार रानीपरज परिषदमें रानीपरज लोगोके हितैषियोने कालीपरजके स्थानपर अधिक उपयुक्त नाम रानी-परज रखा, उसी प्रकार सारे भारतके दलित वर्गोके लोग स्वभावतः अपनी-अपनी जातियोके नाम वदलकर ऐसे नाम रख रहे हैं, जिनसे किसी प्रकारकी हीनताकी गंध नही आती। इसी भावनासे कर्नाटकके दलित वर्गोके लोग अपने-आपको आदि कर्नाटक कहते हैं। और इसलिए मैं इसी शीर्षकके अन्तर्गत प्रतिनिधि सभामें मैसूरके दीवान द्वारा दिये गये भाषणके दो अनुच्छेदोंकी चर्चा कर रहा हूँ। इस अनुच्छेदोमें वताया गया है:

> इन वर्गोंके लोगोंको शिक्षाके लिए विशेष सुविधाएँ दी गई है और ऐसे तरीके अपनाये गये हैं जो उनकी विशेष परिस्थितियोंके उपयुक्त हैं। इन तरीकों-में छात्रवृत्तियोंकी व्यवस्था, शिक्षा-शुल्कसे छूट, कपड़े और पढ़ने-लिखनेके लिए जरूरी चीजें मुफ्त देना, निःशुल्क छात्रावास आदि शामिल हैं। उन्हें सभी स्कूलोंमें दाखिल होनेका अधिकार तो दिया ही गया है, साथ ही विशेष रूपसे उन्हींके लिए ६०५ स्कूलोंकी व्यवस्था की गई है। कुल मिलाकर इस वर्गके १६,५७५ विद्यार्थी मैसूरमें शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं।

एक सहकारी कृषि योजना भी चालू करनेकी कोशिश की जा रही है, जिसमें भूमि, मवेशी और उचित निर्देशन, सवकी व्यवस्था रहेगी।

इन अनुच्छेदोके अन्तमें यह सुझाव दिया गया है:

> ये लोग हमारी शक्तिके स्रोत हो सकते हैं। तब क्या हम उन्हें अपनी कमजोरीका कारण बनने देंगे? अन्यायकी भावना उनके हृदयको सालती रहती है; उसे सिर्फ प्रेम और दयाका व्यवहार ही दूर कर सकता है। हमारा लक्ष्य

उन्हें अधिकाधिक 'हिन्दू बनाने' का होना चाहिए, क्योंकि वे हिन्दू समाजके ही अंग हैं। वे इस समाजके सदस्य बने रहें, इस उद्देश्यसे हमें उनको हर तरह-की सुविधा देनी चाहिए। अगर हम ऐसा करें तो वे हमारे समाजकी शक्तिमें भारी वृद्धि करेंगे; अगर हम उन्हें ऐसा करनेकी सुविधा नहीं देंगे तो वे उसी प्रमाणमें हमारे समाजकी शक्तिको कम करेंगे। अगर वे हमसे अलग हो गये तो हमारे समाजमें जातीय भिन्नताका एक अतिरिक्त तत्त्व प्रवेश कर जायेगा, जिससे प्रशासनकी समस्याएँ, जो पहलेसे ही बहुत कठिन हैं, और भी उलझ जायेंगी। उनकी स्थिति सुधारनेके लिए हर सम्भव उपायसे काम लेना चाहिए, और हिन्दू समाजके हरएक हितैषीको, मैसूरसे प्रेम रखनेवाले हर व्यक्तिको अपनी पूरी शक्तिसे इस दिशामें सरकार द्वारा किये जानेवाले प्रयत्नोंमें योग देना चाहिए।

यह सुझाव ईसाई तथा मुसलमान धर्म-प्रचारकोंके लिए इस बातकी एक नरम ढंगकी चेतावनी भी है कि वे इन दलित वर्गोंको हिन्दू धर्मसे विमुख करके अपने-अपने धर्मोंमें लानेकी कोशिश न करें। लेकिन अगर वे इस मामलेमें हस्तक्षेप करना ही चाहते हैं तो वे इस तरह हस्तक्षेप करें, ऐसा काम करें जिससे ये लोग अधिक अच्छे हिन्दू बन सकें। अगर सम्बन्धित पक्ष इस सुझावके अनुसार आचरण करते हैं तो यह इस देशमें सच्ची शान्तिकी स्थापनाकी दिशामें ठोस योगदान होगा।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, ७-७-१९२७

११०. मैसूरमें गोरक्षा

मैसूरकी गो-रक्षा समितियोंकी ओरसे मुझे कई पत्र मिले हैं, जिनमें राज्य द्वारा नियुक्त मैसूर गो-रक्षा कमेटीको लिखे मेरे पत्रका[1] विरोध किया गया है। मैंने वह पत्र कमेटी द्वारा भेजी एक प्रश्नावलीके उत्तरमें भेजा था। मद्रासके अखबारोंमें छपे उसके अंशोंको पढ़कर इन गो-रक्षा समितियोंने ऐसा मान लिया कि मैं किसी भी परिस्थितिमें गो-हत्यापर कानूनी पाबन्दी लगानेके बिलकुल खिलाफ हूँ। इन पत्रोंको पढ़कर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ और मैंने मनमें सोचा कि भूल या असावधानीसे मैं क्या कभी ऐसी कोई बात कह गया हूँ कि गोहत्याके खिलाफ कभी कोई कानून बनना ही नहीं चाहिए। इसलिए मैंने गो-रक्षा कमेटीसे अपने पत्रकी एक प्रति भेजनेको कहा और समितिने कृपापूर्वक वह प्रति भेज दी है। चूंकि इस पत्रमें मैंने अपना सुविचारित मत व्यक्त किया है और चूँकि इसके कारण इस अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सवाल में दिलचस्पी रखनेवाले मैसूरके लोगोंके बीच गलतफहमी पैदा हो गई है, इसलिए इसे मैं नीचे पूराका-पूरा उद्धृत कर रहा हूँ।[2]

१. देखिए खण्ड ३२, पृष्ठ ५४३-४४।
२. यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

न तो विभिन्न गो-रक्षा समितियोंके सदस्योंके साथ हुई मेरी चर्चामें और न मेरे सामने इस समय पड़े पत्रोंमें ही मुझे ऐसी कोई बात मिली जिसके कारण मैं इस पत्रमें व्यक्त अपने मतमें कोई परिवर्तन करूँ। पाठक देखेंगे कि मैंने यह कही नही कहा है कि गो-हत्याके खिलाफ कभी कोई कानून नही बनाया जाना चाहिए। मैंने जो कहा है वह यह कि गोहत्यापर तबतक कोई कानूनी पाबन्दी नही लगानी चाहिए जबतक कि जिन वर्गोके लोगोंपर उसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है उस वर्गके प्रबुद्ध बहुमतकी सहमति न हो। इसलिए अगर मैसूर राज्यको इसके मुसलमान प्रजाजनोंका प्रबुद्ध बहुमत गोहत्यापर पाबन्दी लगानेका कानून बनानेकी सहमति दे देता है तो वह ऐसा कानून बनाकर बिलकुल ठीक काम करेगा, बल्कि उस हालतमें वैसा करना उसका फर्ज होगा। गो-रक्षा समितियोके जो सदस्य मुझसे मिले, उन्होंने मुझे यह विश्वास दिलाया कि मैसूरमें हिन्दुओं और मुसलमानोंके पारस्परिक सम्बन्ध बड़े स्नेहपूर्ण हैं और मैसूरके मुसलमानोंका बहुमत कानूनी पाबन्दीका उतना ही हामी है जितने कि हिन्दू; और जब उन्होने मुझे यह विश्वास दिलाया कि बहुत-से यूरोपीय, विशेषकर मिशनरी लोग ऐसी पाबन्दीके पक्षमें हैं तो मुझे बड़ी खुशी हुई। इसलिए, जहाँतक मैसूरमें कानून बनानेके सवालका सम्बन्ध है, अगर मुझसे कही गई बातें सच्ची हैं तो मैसूरमें कानूनी पाबन्दी लगानेका रास्ता बिलकुल साफ है। लेकिन मैंने जो एक बात अपने पत्रमें कही है और जिसपर इन स्तम्भोमें मैंने बार-बार जोर दिया है, उसे यहाँ एक बार फिर दोहराऊँगा। वह बात यह है कि कानूनी पाबन्दीका महत्त्व गो-रक्षाके किसी भी कार्यक्रममें सबसे कम है। लेकिन मुझे जो पत्र मिले हैं उनके स्वरसे और अधिकांश गो-रक्षा समितियोंकी प्रवृत्तियोंसे ऐसा प्रकट होता है कि वे सब सिर्फ कानूनी पाबन्दी लगा दी जानेसे ही सन्तुष्ट हो जायेंगी। मैं ऐसी सभी समितियोंको अपना सारा जोर कानूनी पाबन्दीपर ही लगानेके खिलाफ आगाह करना चाहता हूँ। कानूनोंके बोझसे लदे इस देशमें कानून पहलेसे ही बहुत हैं। लोग ऐसा सोचते जान पड़ते हैं कि किसी बुराईके खिलाफ कानून बना देनेसे आगे कुछ किये बिना वह बुराई दूर हो जायेगी। इससे अधिक भयंकर आत्म-वंचना तो कभी नही देखी गई। कानून तो थोड़े-से अज्ञान या बुराईमें प्रवृत्त मनवाले लोगोके खिलाफ बनाया जाता है और तभी वह प्रभावकारी भी साबित होता है; लेकिन जिस कानूनका विरोध जागरूक और संगठित लोग करें या धर्मके नामपर थोड़े-से कट्टरपंथी लोग ही करें, वह कभी भी सफल नही हो सकता। मैं गो-रक्षाके प्रश्नपर जितना ही विचार करता हूँ मेरा यह विश्वास उतना ही बढ़ता जाता है कि गायों और उनकी सन्ततिकी रक्षा तभी हो सकती है जब लगातार और धैर्यपूर्वक मेरे सुझाये ढंगसे रचनात्मक प्रयत्न किया जाये। मैंने जिस रचनात्मक कार्यक्रमकी रूपरेखा तैयार की है, उसमें कुछ जोड़ने या परिवर्तन करनेकी गुंजाइश हो सकती है या शायद है भी। लेकिन, अगर भारतके पशुओंको विनाशसे बचाना हो तो इस बातमें सन्देह करनेकी कोई गुंजाइश नही है कि एक विस्तृत रचनात्मक कार्यक्रमकी नितान्त आवश्यकता है। और पशुओंकी रक्षाका मतलब वास्तवमें भारतके उन करोड़ों क्षुधार्त पुरुषों और स्त्रियोंकी रक्षाकी दिशामें भी उठाया गया एक

कदम है जिनकी अवस्था आज भारतके पशुओंके ही समान दयनीय हो गई है। भारतके देशी राज्य, निस्सन्देह, अन्य अनेक मामलोंकी तरह इस मामलेमें भी शेष भारतका दिशा-दर्शन कर सकते हैं। और इन राज्योंमें भी शुभारम्भ करनेकी दृष्टिसे कोई राज्य मैसूरसे अधिक उपयुक्त और अधिक समर्थ नहीं है। मैंने जहाँतक देखा-जाना है, उसके अनुसार यहाँके महाराजा काफी लोकप्रिय हैं, जनमत प्रबुद्ध है, हिन्दू-मुस्लिम समस्या यहाँ नहीं है और दीवान साहबका रुख काफी सहानुभूतिपूर्ण है। मैसूरमें दुग्ध-व्यवसायके लिए इम्पीरियल इंस्टिटयूट और पशुपालन केन्द्र भी हैं और श्री विलियम स्मिथ, जो इम्पीरियल डेरीके विशेषज्ञ हैं, बंगलोरमें ही रहते हैं। इस तरह इस राज्यको एक रचनात्मक नीति विकसित करनेके सभी आवश्यक साधन उपलब्ध हैं। और इन खूबियोंमें यह तथ्य भी जोड़ दीजिए कि प्रकृतिने मैसूरको सुन्दर जलवायुका वरदान दे रखा है। किसी हिन्दू राजाको जो विरुद सबसे प्यारा होता है वह है गो-ब्राह्मण-रक्षक होना। गायका मतलब सिर्फ एक ऐसा पशु ही नहीं है जिससे भारतको दूध और अन्य असंख्य लाभ मिलते हैं, बल्कि उसका मतलब एक असहाय, अत्याचार-पीड़ित और निरीह प्राणी भी है। ब्राह्मणका मतलब ईश्वरीय ज्ञान और अनुभवकी प्रतिमूर्ति होता है। लेकिन अफसोस! आज हिन्दू राजा इन्हें पूरा संरक्षण देनेमें असमर्थ हैं और कई तो अगर अनिच्छुक नहीं तो इस ओरसे उदासीन भी हैं। जबतक ये राज्य और इनके प्रजाजन समग्र जनताकी भलाईके लिए एक-दूसरेके साथ सहयोग करके पशुओंकी वंश-वृद्धि, दुग्ध आपूर्ति और मृत पशुओंको ठिकाने लगानेकी व्यवस्थाका नियन्त्रण और नियमन नहीं करेंगे तबतक तो गो-हत्याके खिलाफ चाहे जितने कानून बनाये जायें, उन सबके बावजूद भारतमें पशुओंकी वंश-वृद्धि कसाइयोंके हाथों अकाल मृत्युका ग्रास बननेके लिए ही होगी। जब भारतके पुरुषों और स्त्रियोंको जगन्नियन्ताके सामने न्यायके लिए खड़ा होना होगा उस समय इस बहानेको स्वीकार नहीं किया जायेगा कि वे प्रकृतिके नियमसे अनभिज्ञ थे।

जब मुझे गो-रक्षा समितिके सदस्योंने बताया कि बंगलोर और मैसूरमें मारी गई गायोंका मांस राज्यके चिड़ियाघरोंके जानवरोंको खिलाया जाता है; यहाँ गोमांस दूसरे किसी भी जानवरके मांससे बहुत सस्ता है और आदि कर्नाटक लोग, जो अपने-आपको हिन्दू कहते हैं और हिन्दू माने भी जाते हैं तथा जिन्हें 'रामायण' और 'महाभारत' का उतना ही ज्ञान है जितना किसी अन्य हिन्दूको, गोमांस खानेके आदी हैं तो मैं स्तम्भित रह गया। अगर यह सब सच है तो इस दुरवस्थाकी जिम्मेदारी उन हिन्दुओंकी है जिनकी स्थिति हर दृष्टिसे अच्छी है। अगर आदि कर्नाटक लोग गायकी पवित्रताको स्वीकार नहीं करते तो इसका कारण यह है कि वे अज्ञानके अन्धकारमें पड़े हुए हैं। लेकिन उन हिन्दुओंके लिए क्या कहा जाये, जिन्होंने अपने भाइयोंकी ऐसी जघन्य उपेक्षा की है कि उन्हें हिन्दू धर्मके मूल तत्त्वोंसे भी अवगत करानेकी चिन्ता नहीं की?

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, ७-७-१९२७

१११. राजनीतिक संगठन क्या है?

गत २५ जूनके 'हिन्दू' में मुझे निम्न अनुच्छेद पढ़नेको मिला :

> मुझे पता चला है कि सरकारने सरकारी कर्मचारी आचार-संहिताके नियम २३ (१) के अन्तर्गत सरकारी कर्मचारियोंके खादी-कोषमें, जो अखिल भारतीय चरखा संघके सहायतार्थ खोला गया है, चन्दा देनेपर प्रतिबन्ध लगा दिया है। इस प्रतिबन्धके कारण इस प्रकार बताये गये हैं: (१) यह संस्था अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी सहमतिसे कांग्रेस संगठनके एक अभिन्न अंगके रूपमें स्थापित की गई है; (२) इस संस्थाने साफ घोषणा की है कि यह कांग्रेसकी सदस्यताके लिए सूतका चन्दा प्राप्त और स्वीकार किया करेगी और (३) इसलिए इसे एक राजनीतिक संगठन मानना चाहिए।

अगर 'हिन्दू' के विशेष संवाददाता द्वारा दी गई यह जानकारी सही है तो मद्रास सरकारका यह निर्णय मुझे विकृत निर्णय-बुद्धिका एक उदाहरण और सरकारी कर्मचारियोकी व्यक्तिगत स्वतन्त्रतामें एक जघन्य हस्तक्षेप प्रतीत होता है। अगर इसका उद्देश्य सिर्फ खादी या अखिल भारतीय चरखा संघपर प्रहार करना है, तो मुझे इसमें कोई सन्देह नही कि इस प्रहारसे इन दोनोंका कुछ बिगड़नेवाला नही है। और अगर यह आदेश अखिल भारतीय चरखा संघको कांग्रेससे अपने सारे सम्बन्ध तोड़ लेनेके लिए मजबूर करनेके खयालसे जारी किया गया है तो मैं कहूँगा कि मुझे यह जानकर बहुत दुःख होगा कि इस संघने ऐसा कोई काम किया है जिससे सरकारको इसे कांग्रेस-से अपने सम्बन्ध तोड़ लेनेको मजबूर करनेकी स्थिति उत्पन्न करनी पड़े। संघको इस बातका गर्व है कि वह कांग्रेस-संगठनका एक अभिन्न अंग है, और जबतक वह सम्माननीय राष्ट्रीय संस्था इसे अपने संरक्षणके योग्य मानती रहेगी तबतक संघ उसके झंडेके नीचे काम करना अपने लिए प्रतिष्ठा और सौभाग्यकी बात समझता रहेगा। लेकिन अगर किसी संस्थाको सिर्फ इसलिए राजनीतिक सस्था माना जाता है कि उसकी स्थापना कांग्रेसने की और उसे कांग्रेसका संरक्षण प्राप्त है तब तो इस व्याख्याके अनुसार ऐसे कुत्सित परिणाम निकाले जा सकेंगे जिन्हें, मुझे उम्मीद है, कोई आत्म-सम्मानी सरकारी कर्मचारी बर्दाश्त नही करेगा।

दलित वर्गोके बच्चोके लिए विभिन्न प्रान्तोमें ऐसे कई स्कूल हैं जो कांग्रेसकी देख-रेखमें और कांग्रेसके कोषके पैसेसे चलाये जा रहे हैं और यह तो सभी जानते है कि इनके लिए सरकारी नौकर भी खुले आम चन्दा देते है। क्या उनका ऐसा करना गलत था? और क्या इसी कारणसे 'अस्पृश्यो' के लिए चलाये जानेवाले स्कूल राजनीतिक संस्थाएँ बन जाते है कि उन्हें अपने पैसेसे कांग्रेस चलाती है? प्रान्तीय कांग्रेस कमेटियाँ अकाल पीड़ित सहायता-कोष खोलती आई है और लोगोको उनमें

चन्दा देनेके लिए निमन्त्रित करती आई हैं और अबतक सरकारी कर्मचारीगण भी इनमें चन्दा देते आये हैं। क्या इस प्रकार उन्होंने सरकारी कर्मचारियोंकी आचार-संहिताको भंग किया है? ये सहायता समितियाँ कांग्रेस संगठनकी अभिन्न अंग थीं। और आज भी दलित वर्ग समितियाँ इसकी अभिन्न अंग हैं। इसलिए क्या इन्हें राजनीतिक संगठन मानना चाहिए? कांग्रेस, कांग्रेस संगठन और अपनी प्रवृत्तियोंके अभिन्न अंगके रूपमें अस्पतालोंकी भी स्थापना कर सकती है। तब क्या इसी कारणसे अस्पताल राजनीतिक संगठन बन जायेंगे? खादी इस समय कांग्रेसकी सदस्यताकी शर्तोंका एक अभिन्न अंग है। इसलिए क्या सरकारी नौकरोंके लिए खादी पहनना अपराध है? क्या ऐसा नहीं हो सकता कि कांग्रेसके राजनीतिक, सामाजिक, नैतिक, आर्थिक, चिकित्सकीय आदि अलग-अलग विभाग हों, जिनमें से सभी इस संगठनके अभिन्न अंग होते हुए भी पूर्ण रूपसे स्वशासित और एक-दूसरेसे सर्वथा स्वतन्त्र हों? हर कांग्रेसीको इस बातका दुःख है कि यद्यपि कांग्रेस तमाम राष्ट्रीय संस्थाओंमें सबसे प्रभावशाली और महत्त्वपूर्ण संस्था है, फिर भी अभीतक इसके पास इतने आदमी और पैसे नहीं हैं कि वह राष्ट्रके जीवनके हर क्षेत्रका संगठन कर सके। लेकिन जैसे-जैसे समय बीतता जायेगा और इसको ठीक ढंगके आदमी और पैसे मिलते जायेंगे, वैसे-वैसे यह अपनी प्रवृत्तियोंका विस्तार राष्ट्रीय जीवनके हर क्षेत्रमें करती जायेगी। उस हालतमें यह कहना हास्यास्पद होगा कि इसकी तमाम गैर-राजनीतिक प्रवृत्तियोंमें राजनीतिकी बू है और इसलिए ये सभी प्रवृत्तियाँ सरकारी कर्मचारियोंके लिए अवांछनीय हैं। और अगर सरकारने ऐसा बहिष्कार शुरू करनेकी हिम्मत की तो यह उसकी मौतका फरमान साबित होगा।

मुझे यह ज्ञात है और इस बातका दुःख है कि कांग्रेसके उस ऊँचाईतक पहुँचनेमें अभी बहुत देर है। लेकिन, जिस दिन यह उस ऊँचाईतक पहुँच जायेगी उस दिन सरकारका अस्तित्व इसमें विलीन हो जायेगा, और फिर कांग्रेसके कार्य और प्रभावपर नाराज होनेवाला, उसका विरोध करनेवाला या उसमें हस्तक्षेप करनेवाला कोई नहीं रह जायेगा। सरकार अखिल भारतीय चरखा संघको — अगर 'हिन्दू' में छपी जानकारी सही हो तो — राजनीतिक संगठन करार दे सकी है, इससे प्रकट होता है कि इस समय कांग्रेसका प्रभाव कम है, जनताकी आवाजमें कोई बल नहीं है, और इसलिए सरकारको खुली छूट है कि वह चाहे जो और जितना भी अपमानजनक या हास्यास्पद आदेश जारी करे। मैं तो यही आशा कर सकता हूँ कि ऐसे साहसी सरकारी कर्मचारी अवश्य होंगे जो इस न्याय-विरुद्ध कुत्सित आदेशकी अवहेलना करके चरखा संघको खुलेआम सहायता देंगे, क्योंकि सरकारी आदेश चाहे जो हो, किन्तु मेरी नम्र सम्मतिमें यह पूर्णतः गैर-राजनीतिक संस्था है, और सच तो यह है कि कांग्रेसने उस प्रस्तावमें, जिसके द्वारा इस संघकी स्थापना की गई, बताये गये कारणोंमें स्पष्ट शब्दोंमें कह दिया था कि यह एक गैरराजनीतिक संस्था होगी और गैरराजनीतिक ही बनी रहेगी। वह प्रस्ताव अखिल भारतीय चरखा संघके संविधानका हिस्सा है और नीचे मैं उसे शब्दशः उद्धृत कर रहा हूँ:

> चूँकि हाथ-कताई और खादीके विकासके लिए विशेषज्ञोंकी एक संस्था स्थापित करनेका समय आ गया है और चूँकि अनुभवसे यह प्रकट हो गया है कि उनका विकास एक ऐसी संस्था बनाये बिना सम्भव नहीं है जिसपर राजनीति, राजनीतिक परिवर्तनों या राजनीतिक संस्थाओंका कोई प्रभाव या नियन्त्रण न हो, इसलिए अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी स्वीकृतिसे अखिल भारतीय चरखा संघ नामकी संस्था स्थापित की जाती है। यह संस्था कांग्रेस-संगठनका अविभाज्य अंग होगी, किन्तु उसका अस्तित्व स्वतन्त्र होगा और अधिकार भी अलग होंगे।

इस प्रस्तावनामें दो बातें बिलकुल साफ और जोर देकर कही गई हैं, अर्थात् यह कि इसपर राजनीति, राजनीतिक परिवर्तनों या राजनीतिक संस्थाओंका कोई प्रभाव या नियन्त्रण नही है और इसका अस्तित्व स्वतन्त्र है और इसके अधिकार भी अलग हैं। ऐसे संघको सिर्फ इस बिनापर कि यह कांग्रेसका अविभाज्य अंग है और एक बैंककी तरह इसने कांग्रेसको सूतके रूपमें दिये गये चन्देको प्राप्त करने और रखनेका काम स्वीकार किया है, राजनीतिक संगठन कैसे कहा जा सकता है, यह बात समझमें नही आती। लेकिन, सरकारें तो ऐसे काम अकसर करती हैं, जो समझमें आने लायक नहीं होते। अगर मद्रास सरकारने सचमुच यह कार्रवाई की है तो मैं कहूँगा कि इसके लिए यदि उसने इस सीधे-सादे और समझमें आने लायक कारणसे कि गाँवोंमें चरखेके प्रवेशको और उसके परिणामस्वरूप होनेवाली खादीकी प्रगतिको तथा खादीकी प्रगतिके जो अन्य परिणाम होंगे उन्हें वह पसन्द नही करती, अपने कर्मचारियोंके नाम यह आदेश निकाला होता कि वे अखिल भारतीय चरखा संघसे कोई सरोकार न रखें तो यह अधिक ईमानदारीका काम होता।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, ७-७-१९२७

११२. पिंजरापोलोंके समक्ष उपस्थित काम

अखिल भारतीय गो-रक्षा संघने अपने लिए श्रीयुत वाई० एम० पारनेरकरकी सेवाएँ प्राप्त की हैं। श्रीयुत पारनेरकर अच्छी नस्लकी गायोंकी खोजमें काठियावाड़ गये थे। उन्होंने वहाँ जो-कुछ देखा-परखा उसकी प्रतिक्रियाएँ मुझको लिख भेजी है। उन्होंने तर्कपूर्वक यह सुझाव रखा है कि पिंजरापोलोंको कुशल प्रबन्धके अधीन मध्यम विस्तारकी दुग्ध-शालाओं और पशु-पालन फार्मोके रूपमें विकसित करना चाहिए। इस आशासे कि लोग उनके सुझावपर ध्यान देंगे, मैं उनकी प्रतिक्रियाओको संक्षिप्त रूपमें नीचे दे रहा हूँ:

> प्रसिद्ध गिर नस्लके पशुओंके निवास-स्थान काठियावाड़में आनेपर पशु-प्रेमियोंको जो एक बात सबसे अधिक आकर्षित करती है वह यह है कि यहाँ

बेकाम पशुओं, मुख्यतः गायोंके शरण-स्थलोंके रूपमें बहुत बड़ी तादादमें परोपकारी संस्थाएँ चलाई जाती हैं। इन संस्थाओंको पिंजरापोल कहते हैं। जब शुरू-शुरूमें ये संस्थाएँ खोली गई थीं तब हम उतने गरीब नहीं थे जितने कि आज हैं। तब इस बातका कोई महत्त्व नहीं था कि उनका संचालन आर्थिक दृष्टिसे लाभप्रद ढंगसे किया जाता है अथवा नहीं। लेकिन आज स्थिति बदल गई है। अब तो ऐसी किसी भी संस्थाके दीर्घ कालतक कायम रहनेकी आशा तबतक नहीं की जा सकती जबतक कि उसे ठोस आर्थिक नींवपर नहीं खड़ा किया जाता। पिंजरापोल दीर्घजीवी तभी हो सकते हैं जब वे आत्म-निर्भर हो जायें। हमने पाया कि अकेले काठियावाड़में इन संस्थाओंको चलानेके लिए प्रतिवर्ष आठ लाख रुपये खर्च किये जाते हैं। फिर भी भारत-भरको सबसे ज्यादा दूध देनेवाली गायोंके इस प्रदेशमें थोड़ी-सी भी अच्छी गायें ढूँढ़ पाना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। यह क्षेत्र, जहाँ कभी दूधकी नदियाँ बहती थी, आज शायद ही गायका थोड़ा भी शुद्ध और स्वास्थ्यवर्द्धक दूध पैदा करता हो। पशु-पालनके लिए चरागाहोंकी इतनी अधिक सुविधा होते हुए भी काठी लोग, जो किसी समय एक योद्धा जातिके रूपमें प्रसिद्ध थे, ठीक पोषक तत्त्वके अभावमें कमजोर होते जा रहे हैं। खेतिहर लोग खेती-बाड़ीके लिए बैल बाहरसे मँगवाते हैं। दूध और घीके उत्पादनमें भैंस गायको मात दे रही है और इसलिए, गायका महत्त्व समाप्त होता जा रहा है। वह समय आ गया है जब देशमें मेधावीसे-मेधावी लोगोंको इस अत्यन्त महत्त्वपूर्ण समस्याको सुलझानेमें लग जाना चाहिए।

इस बातसे कोई इनकार नहीं कर सकता कि गो-सेवकका काम कसाईके छुरेसे गायकी रक्षातक ही सीमित नहीं है, बल्कि उसे गायोंकी दूध देनेकी क्षमताका जो ह्रास हो रहा है उसे रोककर इस क्षमताको बढ़ाना भी चाहिए। हम कह सकते हैं कि गायोंको कसाईखानेमें जानेसे बचानेका सबसे कारगर तरीका उन्हें इतना महँगा बना देना है कि कसाई उन्हें खरीद ही नहीं सके। ऐसा तभी किया जा सकता है जब दुग्धका व्यवसाय करनेवाले या गो-पालककी बहीमें आमदनीके जरियोंके रूपमें गायको एक ऊँचा स्थान प्राप्त हो सके। भारतमें औसत गायकी उत्पादन-क्षमता इतनी गिर गई है कि किसी व्यवसायी आदमीके लिए इस धन्धेको अपनाना कठिन हो गया है। इसलिए इस समस्याको धार्मिक या राष्ट्रीय आधारपर सुलझानेकी कोशिश करनी है।

इस कामको मौजूदा पिंजरापोल कर सकते हैं। उनके पास पूँजी है, मकान है और सबसे बड़ी बात तो यह कि उन्हें जनताकी सहानुभूति प्राप्त है। आवश्यकता सिर्फ अच्छी व्यवस्था और उद्यमकी है। जहाँ किसी पिंजरापोलके पास सौ या दो सौ बेकाम गायें हों, वहाँ वह ऊपरसे कुछ ऐसी गायें भी रख सकता है जिनका अपना खर्च तो उनसे होनेवाली आमदनीसे चलेगा ही, साथ ही दूसरी गायोंपर खर्च करनेके लिए भी कुछ बच जायेगा। अगर इनमें गायोंको अच्छी तरह रखा जाये और उनका संयोग बराबर अच्छी नस्लोंके साँड़ोंसे ही

कराया जाये तो कुछ ही दिनोंमें ये पिंजरापोल ऐसे स्थान बन जायेंगे जहाँसे दूधका व्यवसाय करनेवाले लोग अपना व्यवसाय शुरू करनेके लिए आवश्यक जानवर खरीद सकते हैं, खेतिहर लोग बैल प्राप्त कर सकते हैं; अच्छे पशु पालनेका शौक रखनेवाले लोग अच्छे साँड़ोंका लाभ उठा सकते हैं, जरूरतमन्द लोग अपने बीमार पशुओंका ठीक इलाज करवा सकते हैं, गो-पालनकी कलासे अनभिज्ञ लोग अपने पशुओंका पालन करनेके लिए अच्छेसे-अच्छे ढंगका मार्ग-दर्शन प्राप्त कर सकते है, और जो बात सबसे महत्त्वपूर्ण है वह यह कि पालनेमें झूलनेवाले शिशुओंसे लेकर मृत्यु-शय्यापर पड़े बूढ़ों तकको ठीक दामपर दूध और उससे तैयार होनेवाले अन्य पौष्टिक पदार्थ मिल सकते हैं।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, ७-७-१९२७

११३. युगों पुरानी समस्या

अल्मोड़ाके एक संन्यासीने लिखा है:

एक पत्र-लेखकको उत्तर[1] देते हुए गत १५ अप्रैलके 'यंग इंडिया' में आपने कहा है, अगर कोई साँप आपको काटनेकी कोशिश करे तब भी आप उसे मारना नहीं चाहेंगे। मेरे विचारसे यह अनुचित होगा; क्योंकि अव्वल तो इस तरह आप अपनी मृत्युके भागी होंगे, और दूसरे, ऐसे विषैले जीवको मुक्त छोड़कर आप दूसरे लोगोंकी हानिका कारण बनेंगे। अब एक दूसरा उदाहरण लीजिए। अगर किसी घरमें साँप घुस जाये और उस घरका मालिक साँपको मारे बिना उसे अपने घरसे भगा दे तो निश्चित है कि वह किसी दूसरे घरमें घुस जायेगा और उसमें रहनेवाले लोगोंको डँसेगा। उस हालतमें अगर साँप उस दूसरे घरके लोगोंको डँसता है—और उसका डँसना घातक भी हो सकता है—तो उसकी जिम्मेदारी उस व्यक्तिपर होगी जिसने दयाकी झूठी भावनासे प्रेरित होकर उस साँपको मारे बिना अपने घरसे निकाल दिया। साँपकी जातिके बहुत-से अन्य जीव, जंगली जानवर और कीड़े-मकोड़े भी हैं, जो मनुष्यको हानि पहुँचाते या बीमारी फैलाते हैं। निश्चय ही, अगर इन्हें मारनेमें हिंसा मानी जाये तो यह हिंसा इन जीवों द्वारा किये जानेवाले विनाशकी तुलनामें बहुत छोटी हिंसा है। सो इतना तो मानना ही चाहिए कि जब कोई मनुष्य अपनी खातिर हत्या करे तो वह हिंसा है, लेकिन जब हत्या अन्य अनेक मूल्यवान प्राणोंकी रक्षाके लिए की जाये तो वह हिंसा नहीं हो सकती। आखिरकार किसी कामकी अच्छाई-बुराईका निर्णय उसके प्रेरक

१. देखिए खण्ड ३३, पृष्ठ २५३-५४।

> उद्देश्यके आधारपर ही तो किया जाता है, और जब विनाशका उद्देश्य उस हत्याकी तुलनामें अधिक कल्याण करना हो तो वह विनाश कर्त्तव्य हो जाता है और हिंसा नहीं रह जाता। मैं चाहूँगा कि मेरी इस दलीलका जवाब आप 'यंग इंडिया' में दें।

संन्यासीकी दलील युगों पुरानी है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इसमें काफी वजन है। अगर न होता तो प्राचीन कालसे विनाशका जो क्रम चल रहा है वह नहीं चल रहा होता। बिना किसी कारणके मनमाने तौरपर बुरे काम करनेवाले लोग बहुत कम होते हैं। इतिहासमें वर्णित जघन्यतम और क्रूरतम अपराध धर्म अथवा ऐसे ही किसी सौम्य उद्देश्यकी आड़में किये गये हैं। लेकिन, मेरे विचारसे उच्चतम सिद्धान्त, अर्थात् धर्मके नामपर किये जानेवाले विनाशके फलस्वरूप भी हमारी स्थितिमें कोई सुधार नहीं हुआ है। यह सच है कि इस या उस रूपमें कुछ जीवोंका विनाश अवश्यम्भावी है। प्राणी अपनी जीवन-रक्षाके लिए प्राणियोंपर ही निर्भर होता है। इसलिए अगर जीव-विनाश किसी उद्देश्यके लिए आवश्यक भी है तो वह है मनुष्यको प्राप्त हो सकनेवाले उस परमानन्दको कायम रखनेके लिए जो ऋषि-मुनियोंके अनुसार उस अवस्थामें प्राप्त होता है जब मनुष्यके लिए एक भी जीवका नाश किये बिना जीवित रहना सम्भव हो जाता है। और यदि मनुष्य उतना ही विनाश करे जितना अनिवार्य है—जैसे कि वनस्पतियोंके जीवनका विनाश, तो इस शरीरको धारण करते हुए भी वह उस परमानन्दकी अवस्थाको प्राप्त करनेकी आशा कर सकता है। वह दूसरे जीवोंके विनाशपर जीनेकी आवश्यकतासे, विवेकके साथ और प्रयासपूर्वक, जितना ही अधिक छुटकारा पायेगा, सत्य और ईश्वरके उतना ही निकट पहुँचेगा। और इस बातसे कि समस्त मानव-जाति द्वारा उस चीजके स्वीकार करनेकी सम्भावना नहीं है जो उसे शायद एक नीरस और आकर्षणहीन जीवन-सा प्रतीत होगा, मेरे तर्कके औचित्यमें कोई अन्तर नहीं पड़ता। जो लोग ऐसा पूर्ण आत्म-त्यागमय जीवन जीते हैं तथा सृष्टिके तुच्छतम प्राणीके प्रति भी दयाका भाव रखते हैं, वे हमें ईश्वरकी शक्तिको समझनेकी क्षमता देते हैं, मानवताके उत्थापकका काम करते हैं और इसके परम लक्ष्यतक जानेवाले मार्गपर प्रकाश बिखेरते हैं। हमें जीवनको नष्ट करनेका कोई अधिकार नहीं है, क्योंकि हम जीवनकी सृष्टि नहीं कर सकते। ऐसा सोचना तो मुझे नास्तिकता लगता है कि ईश्वरने कुछ जीवोंकी सृष्टि मनुष्य द्वारा, अपने आनन्दके लिए या अपने शरीरको—उस शरीरको जिसके बारेमें वह जानता है कि किसी भी क्षण उसका नाश हो सकता है—कायम रखनेके लिए, नष्ट कर दिये जानेके लिए ही की है। हम नहीं जानते कि जिन्हें हम हानिकर और विषैले जीव कहते हैं वे प्रकृतिकी व्यवस्थामें कौन-सी भूमिका निभाते हैं। विनाशके द्वारा हम प्रकृतिके नियमोंको कभी नहीं जान पायेंगे। हमने मात्र मानव-जातिसे ही नहीं, बल्कि सृष्टिके अन्य प्राणियोंसे भी प्रेम करनेवाले ऐसे लोगोंके बारेमें भी सुना है जो भयंकर वन्य पशुओंके बीच भी सर्वथा निरापद ढंगसे रहते रहे हैं। जीव-मात्रमें इतना पारस्परिक सादृश्य होता है कि जिन लोगोंने बाघ, शेर और साँपका भय त्याग दिया है और

उनके पास मित्रोंकी तरह विश्वासपूर्वक गये हैं, उन्हें इन जीवोंने भी कभी कोई हानि नही पहुँचाई है।

यह तर्क भ्रान्तिपूर्ण है कि अगर मैं उस साँपको, जिसके बारेमें ज्ञात है कि वह विषैला है, नही मारता तो वह अनेक स्त्री-पुरुषोंकी मृत्युका कारण बनेगा। यह किसी भी तरह मेरा कर्त्तव्य नही है कि मैं तमाम विषैले जीवोंको ढूँढ़-ढूँढकर उन्हें मारता फिरूँ। और न मुझे यह मान लेनेकी ही जरूरत है कि जिस साँपसे मेरा सामना होता है, उसे अगर मैं नही मारता तो वह फिर मेरे बाद अपने पाससे गुजरनेवाले व्यक्तिको मार ही डालेगा। उस साँप और अपने पड़ोसियोंके बीच मुझे निर्णायक नही बनना है। अपने पड़ोसियोंसे मैं अपने प्रति जैसे व्यवहारकी आशा रखता हूँ, अगर मैं उनके साथ वैसा ही व्यवहार करता हूँ और जितने खतरेमें मैं स्वयं रहता हूँ उससे अधिक खतरेकी स्थितिमें उनको नही डालता हूँ और अगर मैं उनको हानि पहुँचाकर किसी भी तरह अपना हितसाधन नही करता हूँ तो इतनेसे ही उनके प्रति मेरा कर्त्तव्य पूरा हो जाता है। इस तरह मुझे साँपको अपने पड़ोसियोंके अहातेमें नही छोड़ देना चाहिए, जैसा कि लोग अक्सर करते हैं। मैं अधिक-से-अधिक यही कर सकता हूँ कि उस साँपको जहाँतक सम्भव हो, वहाँतक वैसी जगहमें छोड़ आऊँ जहाँ उससे खतरा नही हो और मैं अपने पड़ोसियोंको आगाह कर दूँ कि पड़ोसमें एक साँप निकला है जिसे मैंने अमुक स्थानमें छोड़ दिया है। मैं जानता हूँ कि इससे मेरे पड़ोसियोंको न तो कोई राहत मिलेगी और न सुरक्षा ही; लेकिन हम सत्यकी राहपर चलनेकी कोशिश करते हुए मृत्युसे घिरे हुए जी रहे हैं। शायद यह अच्छा ही है कि हम अपने जीवनमें पग-पगपर खतरेसे घिरे हुए हैं; क्योंकि इन खतरों और अपने संकटापन्न अस्तित्वके ज्ञानके बावजूद हम जीवमात्रके स्रष्टाके प्रति उतने उदासीन रहते हैं कि अगर इसे कोई चीज मात देती है तो वह बस हमारी आश्चर्यजनक उद्धतता ही।

संन्यासीको दिये गये इस उत्तरसे मैं सन्तुष्ट नही हूँ। उनके पत्रसे, जो मूलतः हिन्दीमें लिखा गया है, प्रकट होता है कि वे भी मेरी ही तरह सत्यान्वेषी हैं। इसलिए मैंने उनकी जिज्ञासाका उत्तर सार्वजनिक रूपसे देनेकी आवश्यकता महसूस की। मेरी अपनी स्थिति बड़ी दयनीय है। मेरी बुद्धिको जीवनका विनाश किसी भी रूपमें असह्य है। लेकिन मेरा हृदय इतना सशक्त नही है कि मैं उन प्राणियोंको मित्र बना सकूँ, जिनके बारेमें अनुभवसे यह ज्ञात होता है कि वे हानिकर प्राणी हैं। दूसरोंमें विश्वास उत्पन्न करनेवाली आत्म-विश्वासकी वह भाषा, जो वास्तविक अनुभवसे ही आती है, मेरा साथ नही दे रही है और जबतक मैं इतना कायर हूँ कि साँपों, बाघों और इसी तरहके अन्य जीवोंसे डरता हूँ तबतक स्थिति ऐसी ही बनी रहेगी। मैंने बहुत झिझकके साथ यह उत्तर देनेका साहस किया है। लेकिन मुझे लगा कि मानव द्वारा मानव नही बल्कि एक खतरनाक जीव माने जानेके भयसे मैं अपने विश्वासको प्रकट न करूँ यह गलत होगा। एक बार दक्षिण आफ्रिकामें ऐसे ही अवसरपर मुझे अपने जाति-धर्मसे च्युत खतरनाक जीव माने जानेका अनुभव

हुआ था। हम कई लोग बैठे हुए बातचीत कर रहे थे कि तभी बातचीत मुड़कर इसी विषयपर आ गई। साथ बैठे मित्र अंग्रेज मिशनरी थे। पुनर्जन्म, गो-रक्षा, शाकाहार आदिके बारेमें मेरे विचारोंपर उन्हें कोई विशेष आपत्ति नही थी, यद्यपि उन्हें ये विचार बहुत अपरिष्कृत लग रहे थे। लेकिन जब मैंने कहा कि अगर ईश्वर मुझे साहस दे तो मैं यह जानते हुए भी कि अमुक साँपको न मारनेका निश्चित परिणाम खुद मेरी मृत्यु होगा, मैं उसे नही मारूँगा[1], तब वे चिढ़ और उकताहटके अपने भावको दबा नहीं सके और वह उनके चेहरोंपर साफ झलक आया। उसे एक दबी हुई हँसीमें छिपानेकी कोशिश करते हुए वे कह ही बैठे, "अरे! तब तो आप एक खतरनाक जीव हैं।"

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ७-७-१९२७

११४. पत्र : बी० एफ० भरूचाको

[७ जुलाई, १९२७ के पश्चात्][2]

तुम्हारे पत्र मिलते रहे हैं। तुम्हें यथाशक्ति उत्तर दे रहा हूँ; किन्तु जिससे तुम्हें पूरा सन्तोष हो जाये ऐसे उत्तरके लिए तो जैसा तुम अक्सर करते हो उसी तरह तुम्हें दौड़कर यहाँ आना चाहिए। जो उत्तर मैं दे रहा हूँ वे तुम्हारे लिए ही हैं। फिर भी यदि तुम मेरा उत्तर छापनेकी अनुमति माँगते हुए मुझे तार करोगे तो मैं तुम्हें रोकूँगा नहीं। किन्तु यह मैं कह देना चाहता हूँ कि मेरा पिछला उत्तर[3] छापनेमें तुमने भूल की है। यह उत्तर मैंने तुम्हें तुम्हारी जानकारी और तुम्हें सावधान करनेके लिए लिखा था, वहाँके सत्याग्रहियोंके सामने परेशानी खड़ी करने अथवा उन्हें रोकनेके लिए नही। जिस समय तुमने मेरी अनुमति माँगी उस समय मैं तो यह समझा था कि मेरे पत्रका आशय तुम्हें पसन्द आया है और चूँकि तुम वहाँ जो युद्ध चल रहा है उसे रोकनेकी इच्छा रखते हो इसलिए मेरे पत्रका उपयोग करना चाहते हो। इसके बजाय तुमने तो उल्टा ही काम किया। यदि तुम मेरा अभिप्राय समझे नही थे या वह तुम्हें पसन्द नही आया था तो उसे वहाँके उन योद्धाओंको बतानेकी कोई आवश्यकता नही थी। मैं यह बिलकुल नहीं समझ पाया हूँ कि उन लोगोंमें फूट क्यों पैदा की गई या कैसे पैदा हो गई। किन्तु अब जो हो गया सो हो गया; उसे अब सुधारा तो जा नहीं सकता।

फिर भी मैं इतना तो कह ही दूँ कि तुम्हें और जो अन्य मित्र नागपुरकी इस लड़ाईको सत्याग्रह-रूप मानते हैं उन्हें उसे जारी रखना ही चाहिए। यदि तुम इसमें कांग्रेसकी सम्मतिकी आवश्यकता जरूरी मानते हो तो तुम्हें दृढतापूर्वक मेरे विचारोंका खण्डन करना चाहिए और कांग्रेसकी सम्मति प्राप्त करनी चाहिए। और

१. देखिए **आत्मकथा**, खण्ड ४, पृष्ठ ३५ तथा खण्ड २९, पृष्ठ १८९-१९१ भी।
२. साधन-सूत्रमें इस पत्रको ७ जुलाई, १९२७ के बाद दिया गया है।
३. देखिए "पत्र : बी० एफ० भरूचाको", २-७-१९२७ के पूर्व।

यदि तुम ऐसा करोगे तो मैं उसे बुरा नही मानूंगा। यदि कांग्रेसकी सम्मति तुम्हें मिल जाती है तो उससे मुझे दुःख नहीं होगा बल्कि मैं तुम्हें बधाई दूंगा। हाँ, यह चेतावनी जरूर देता हूँ कि जो भी तुम करो उसके पहले इस बातका निश्चय कर लो कि तुमने मेरे विचारोंको ठीक-ठीक समझा है या नही। तुम्हारे दूसरे प्रश्नोका उत्तर इस प्रकार है:

१. नागपुर सत्याग्रहकी बिन-माँगी टीका करना मेरा धर्म नही था।

२. भाई आवारीने[1] मेरी सम्मतिके विषयमें जो-कुछ लिखा था उसका खण्डन करनेके सिवा और कुछ कहना मुझे उचित नहीं लगा।

३. भाई आवारीसे मुझे किन बातोके बारेमें पूछना चाहिए था, यह मैं नही समझ सका।

४. अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीमें जो प्रस्ताव पेश हुए उनके लिए तुम मुझे उत्तरदायी कैसे ठहराते हो? मैंने तो उनमें कोई भाग नही लिया था। यह ठीक है कि मुझे कार्यसमितिका सदस्य माना जाता है किन्तु मेरी शर्त यह है कि कमेटीकी बैठकमें मेरी उपस्थितिकी आशा न रखी जाये। हाँ, तुम यह पूछ सकते हो कि जब मैं उपस्थित नही रह सकता तो कमेटीकी सदस्यता क्योकर स्वीकार करता हूँ। यदि तुम ऐसा पूछो तो मुझे स्वीकार करना चाहिए कि मैं अपना बचाव नही कर सकता अथवा ऐसा कहो कि यदि इसका कोई बचाव हो सकता है तो वह बचाव अध्यक्ष महोदय ही कर सकते हैं।

५. अब तुम्हारी समझमे आ गया होगा कि वल्लभभाईको चुननेमें मेरा कोई हाथ नही था बल्कि वल्लभभाईने मुझसे कहा था कि स्वयं उनका जानेका कोई विचार नहीं था। किन्तु वे कमेटीके आग्रहकी अवज्ञा नही कर सके। वल्लभभाई मेरे सिद्धान्तोंको समझनेका जितना दावा करते हैं, उन्हें समझनेका उतना ही दावा क्या तुम नही करते? किन्तु इन दोनों दावेदारोमें से किसका दावा ज्यादा प्रबल है इसका निर्णय तो, यदि ऐसा निर्णय देनेकी मेरी इच्छा हो तो, मैं मरते समय ही दे सकता हूँ। कारण, मैं आज यह कैसे कह सकता हूँ कि किसी विशेष संकटके अवसरपर वल्लभभाई या तुम मेरे विचारोको किस हदतक जान सकोगे? इसके सिवा, मान लो कि मैं स्वयं कमेटीकी बैठकमें उपस्थित होता और शस्त्रोंके उपयोगके विरुद्ध होता फिर भी यदि कमेटी मुझसे आग्रह करती और उसके आग्रहपर मैं नागपुर चला जाता तो इसमें मैं कोई असंगतिका दोष नही देखता। मैं वहाँ जाता, अपने विचार समझाता और तथ्योको समझकर रिपोर्ट पेश कर देता। यदि कोई मेरी बुद्धिको यह समझा सकता है कि सत्याग्रहमें शस्त्र धारण करनेकी बात आ सकती है तो क्या मैं उसे अपनेको समझानेका मौका न दूं? जाँच-पड़ताल किये बिना पहलेसे ही निर्णय कैसे दिया जा सकता है? तब शायद तुम मुझसे यह पूछोगे कि मैंने तुम्हें वह पहला पत्र क्यों लिखा था। यदि तुम ऐसा पूछो तो मैं तुम्हें यह उत्तर दूंगा कि मित्रोंमें इस तरह विचारोंका आदान-प्रदान होना दुनियाकी एक रीति है और विचारोंके

१. मंचरशा आवारी।

ऐसे विनिमयके परिणामस्वरूप अपने विचारोंमें, यदि सम्भव हो तो, परिवर्तन करनेके लिए तैयार रहनेमें मनुष्यता है। उदाहरणके लिए मैं मानता हूँ कि ईश्वरका अस्तित्व है ही किन्तु मैं नास्तिकोंकी बात सुननेसे इन्कार तो नहीं करता।

७. प्रश्न ७ का उत्तर प्रश्न ६ के[1] उत्तरमें आ जाता है, यह तो तुम मानोगे न? न मानो तो लिखना ताकि समय निकालकर मैं फिर जवाब दे सकूँ।

८. प्रश्न ८ का उत्तर भी उपर्युक्त प्रश्नोंके उत्तरमें आ जाता है।

९. तुम्हारा यह कहना कि सत्याग्रहके लिए जिस शान्त वातावरणकी आवश्यकता है वैसा वातावरण यहाँ नहीं है, ऐसा है जो सारे देशके बारेमें लागू होता है। किन्तु सत्याग्रहकी तो और भी अनेक शर्तें हैं। और मैंने सारे देशके वातावरणकी बात लिखी थी जबकि तुम्हारा ध्यान स्थानीय वातावरणतक ही सीमित है। इसे भी मैं इसी बातका उदाहरण मानता हूँ कि तुम मेरे लेखका आशय ठीक-ठीक नहीं समझे।[2]

१०. कांग्रेसके अध्यक्ष मदद करनेके विचारसे पूछताछ करें और इस सत्याग्रहसे तुम्हारे सम्बन्धके बावजूद यदि मैं उनसे यह कह दूँ कि यह सत्याग्रह, सत्याग्रह नहीं है तो इसमें तुम्हें परेशानी क्यों होनी चाहिए? 'मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना' यह कहावत तुम्हारे लिए अज्ञात तो है नहीं?

११. मेरे अन्य कितने ही विचार ऐसे हैं जिन्हें न तो कांग्रेस-अध्यक्ष जानते हैं, न भरूचा, न महादेव, न बा और न स्वयं मैं ही जानता हूँ; इसलिए जब तुम्हें मेरे विचारोंमें कोई नवीन बात नजर आये तब तुम्हें दुःखी नहीं होना चाहिए। तुम्हारे समर्थनसे मुझे जो भी दुःख हुआ है उसे तुम्हारा दुःख दूर करनेके विचारसे मैं वापस लिये लेता हूँ।

१२. मुझे स्वराज्य अवश्य चाहिए।

१३. हमें आत्मरक्षा करना आना चाहिए, इसकी पूरी-पूरी आवश्यकता है।

१४. इसके लिए मेरा हथियार सत्याग्रह है। लकड़ी, लोहा, बिजली आदि दृश्य पदार्थोंसे निर्मित हथियारोंकी व्यर्थता मैं जान चुका हूँ इसीलिए मैंने सत्याग्रह-रूपी अदृश्य हथियारको ढूँढ़ निकाला और उसका आश्रय लिया। किन्तु उसका यह अर्थ नहीं है कि सब लोगोंको इसी अदृश्य शस्त्रका आश्रय लेना चाहिए। दूसरे लोग भले शस्त्रोंके द्वारा स्वराज्य प्राप्त करें और उसकी रक्षा करें। मेरी स्वराज्यकी योजनामें ऐसे शस्त्रोंके लिए भी स्थान है। किन्तु ये शस्त्र मेरे उपयोगके नहीं हैं और इसी तरह वे सत्याग्रहके साथ संगत नहीं हैं।

१५. इसका उत्तर प्रश्न संख्या १४ के उत्तरमें आ गया है।

१६. इसका उत्तर भी सच पूछो तो १४ के उत्तरमें आ गया है तथापि स्पष्टीकरणके लिए कहता हूँ कि सत्याग्रहको जो लोग समझ नहीं पाते या समझनेके बावजूद उसे स्वीकार नहीं कर पाते वे दृश्य शस्त्रोंको धारण करेंगे ही और इसका उन्हें अधिकार भी है। इसके लिए राज्यको तालीमकी व्यवस्था करनी ही पड़ेगी।

१. साधन-सूत्रमें छठे प्रश्नका उत्तर नहीं मिलता।

२. देखिए खण्ड ३३, "नागपुर सत्याग्रह", १९-५-१९२७।

अपने लम्बे लेखके लिए तुमने माफी माँगी है। लेकिन यह तो, जैसा पश्चिमी देशोंमें होता है, जान-बूझकर गुनाह करके माफी माँगने-जैसी बात हुई; एक तरहकी जबरदस्ती है। यदि लम्बा पत्र लिखनेके लिए क्षमा माँगनेकी जरूरत हो तो फिर हम लम्बा पत्र लिखें ही क्यों? लेकिन तुमने तो लिखा और माफी भी माँगी। आज-कल [हर क्षेत्रमें] पश्चिमकी तूती बोल रही है। इसलिए चूँकि इससे मेरे सत्याग्रह-पर कोई आँच नहीं आती मैं तुम्हारी जबरदस्तीके सामने झुककर तुम्हे माफी देता हूँ। अगर कष्ट पाओगे तो तुम्हे उसकी माफी नही मिलेगी, इतना ही नहीं, मुझे तुम्हारे खिलाफ सत्याग्रह भी करना पड़ेगा। यदि आवारीको तुम मेरा सन्देश पहुँचा सकते हो तो उसे कहला भेजना कि खाये-पिये और आनन्द करे। उसके जेल जानेसे मुझे बिलकुल भी दु:ख नही हुआ है। मैं उसे बहादुर मानता हूँ लेकिन मैं यह भी जानता हूँ कि वह नादान है। जिस तरह उसकी जिदकी कोई सीमा नही है वैसे ही उसकी भलाईका भी पार नही है। उसकी नादानी और जिदको मैं सहन कर लेता हूँ और उसकी भलाई, बहादुरी और देशप्रेमका मैं स्तवन करता हूँ।

[गुजरातीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरी।
सौजन्य : नारायण देसाई

११५. भाषण: आदि कर्नाटक विद्यार्थियोंके समक्ष[1]

८ जुलाई, १९२७ के पूर्व

अभी पिछले दिनोंकी बात है कि श्रीयुत शंकरनारायण राव, आदि कर्नाटक लड़कोंके लिए बने बंगलोर राज्य छात्रावासके विद्यार्थियोंको कुमार पार्क लाये. . . . [गांधीजीको बताया गया:] "अब हमारी संस्थामें १४५ विद्यार्थी हैं, लेकिन हमारा इरादा इन लोगोंको जेबखर्चके रूपमें जो एक रुपया प्रतिमास दिया जाता है वह देना बन्द करके और विद्यार्थियोंको भरती करनेका है। मगर विद्यार्थी इस प्रस्तावका विरोध कर रहे हैं।" . . . जब गांधीजीसे उन लोगोंने सलाहके तौरपर दो शब्द कहनेका अनुरोध किया तो उन्होंने तत्काल इसी बातपर अँगुली रखते हुए कहा:

मेरे बच्चो, मुझे यह जानकर दु:ख हुआ कि तुम लोग अपनी सादगीको भूलते जा रहे हो और जेबखर्चको अपने भाइयोके लिए छोड़नेमें संकोच कर रहे हो। सच मानो, मेरे पिताने मुझे कभी जेबखर्च नही दिया और भारतके किसी भी भागमें मध्यवित्त परिवारोके बच्चोंको तुम्हारे समान जेबखर्च नही मिलता। लेकिन राज्य तुम्हें आवास, खाने और शिक्षाकी सुविधा इसलिए नही देता कि तुम आलसी बन जाओ तथा सादगी और आत्मनिर्भरताकी बातको भूल जाओ। तुम्हें चाहिए कि तुम

१. यह भाषण बंगलोरमें दिया गया था और महादेव देसाईके "साप्ताहिक पत्र" (वीकली लैटर) से उद्धृत किया गया है।

अपने कपड़े आप धोओ, अपना खाना खुद बनाओ और अपना सारा काम खुद करो। और मैं तुम लोगोंसे एक बात कहूँ? इस समय तुम्हें देखकर मुझे लगता है कि तुम सब विदेशी हो। क्या तुम बता सकते हो, मुझे ऐसा क्यों लगता है?

विद्यार्थियोंमें से सबसे होशियार विद्यार्थीने तत्काल उत्तर दिया: क्योंकि हम विदेशी वस्त्र पहने हुए हैं।

हाँ, यह बात बिलकुल सच है। कोई कारण नही कि तुममें से हरएक खादी क्यों न पहने। मैं तुमसे सच कहता हूँ कि तुमने इस समय जो टोपियाँ पहन रखी हैं, मैं तुम्हें एक चौथाई दामपर और इससे ज्यादा साफ-सुथरी टोपियाँ दे सकता हूँ। तुम्हारे बड़े-बूढ़े अथवा अध्यापकगण खादी नही पहनते, इससे तुम्हें विचलित नही होना चाहिए। तुम्हारे माता-पिता अथवा अन्य आदि कर्नाटक शराब पीते हैं, गोमांस अथवा मरे हुए पशुओंका मांस खाते हैं, इसीलिए तो तुम वैसा नही करोगे। इसके विपरीत, मुझे आशा है कि तुम इन-सब चीजोंको छोड़ दोगे और अपने सुपरिन्टेंन्डेन्टसे अनुरोध करोगे कि वे तुम्हें खादीके वस्त्र दें। तुम उनसे कहोगे कि अगर खादीके वस्त्र महँगे हैं तो हम अपनी कपड़ेकी जरूरतमें कटौती करनेको खुशी-खुशी तैयार हैं। तुम्हें जानना चाहिए कि देशमें लाखों ऐसे बच्चे है, जिन्हें तुम्हारे समान शिक्षाकी सुविधा प्राप्त नही है, जिन्हें तुम्हारे समान जेबखर्च मिलना तो दूर, पूरा भोजन भी नसीब नही होता। तुम्हारे जेबखर्चसे उनके लिए वह भोजन खरीदा जा सकता है। मैं चाहता हूँ कि तुम लोग उन्हींकी खातिर खादी पहनो और चरखा चलाना सीखो। तुम लोग प्रदर्शनीमें जाकर देखो कि वहाँ क्या-कुछ तुम्हारे सीखने लायक है।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, १४-७-१९२७

११६. पत्र: मीराबहनको

८ जुलाई, १९२७

चि० मीरा,

तुम्हारे पत्र मिल गये हैं। ऐसा लगता है कि उनमें कोई एक पत्र अब भी नहीं मिल पाया है। तुम्हारी ओरसे तार द्वारा और कोई समाचार नही आया इसे मैं इसी बातका सूचक समझता हूँ कि सब-कुछ ठीक है।

तुम जबतक रहना चाहो तबतक रहो और जबतक तुम्हारा स्वास्थ्य बिलकुल ठीक नहीं हो जाता, कमसे-कम तबतक तो अवश्य रहो। स्वास्थ्यको हर हालतमें बनाये रखना है।

सस्नेह,

बापू

अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ५२४६) से।
सौजन्य: मीराबहन

११७. भाषण : बंगलोर खादी-प्रदर्शनीके समापनके अवसरपर

८ जुलाई, १९२७

पुरस्कार-वितरणकी समाप्तिपर, प्रभावोत्पादक मौनके बीच महात्माजीने निम्नलिखित भाषण दिया :

भाइयो,

आपको इस सभाकी कार्रवाईमें दिलचस्पी है, इसे प्रदर्शित करनेका आपके लिए शायद सबसे अच्छा तरीका यह होगा कि समारोहके समाप्त होते ही आप प्रदर्शनीके पण्डालमें जायें और सारी खादी खरीद डालें। राजगोपालाचारीने आपको पिछले छः दिनकी बिक्रीके आँकड़े पढ़कर सुनाये; उन्हे पढ़ते समय उनके मुखपर किसी हदतक सन्तोष और गर्वका भाव था। लेकिन मैं आपके सामने यह स्वीकार करूँगा कि जब मैं खुद आपकी क्षमताकी बात सोचता हूँ तब ८,००० रुपयोकी बिक्रीकी बात मुझे कोई सन्तोष नही देती। जब मैं अपनी कल्पनाकी आँखोसे इतनी सारी दुकानो, बंगलोरमें कपड़ेकी दुकानोंको देखता हूँ और जब मैं उन पोशाकोंको देखता हूँ जो बंगलोरकी अधिकांश स्त्रियाँ और पुरुष पहनते हैं तब मुझे यह आठ हजार रुपयेकी रकम बहुत थोड़ी जान पड़ती है। लेकिन खादी-कार्यकर्त्ता अपनी कठिनाइयोंको जानते हैं। इस आन्दोलनकी प्रगतिके दौरान हर क्षण उन्हे इस बातका अनुभव होता रहता है कि यह कार्य कितना दुष्कर है और इसीलिए अन्य खादी प्रदर्शनियोकी तुलनामें जब वे यहाँ की बिक्रीमें किंचित् वृद्धि पाते हैं तो उन्हें सन्तोष की अनुभूति होती है। राजगोपालाचारीको भी वास्तवमें इसी तरहके सन्तोषकी अनुभूति हुई है। लेकिन मैंने सोचा कि यदि मैं इस सुन्दर प्रदेशमें रहनेवाले आप लोगोका ध्यान, बशर्ते आप करना चाहें तो जो कार्य आपके सम्मुख पड़ा हुआ है, उसकी ओर आकर्षित न करूँ तो यह मेरी भूल होगी।

हमारी सभ्यता शहरी सभ्यता नही है और यदि कल्पना-लोकमें विचरण करनेवाले कुछ लोग यह सोचते हों कि किसी-न-किसी दिन हम अपनी धरतीपर पश्चिमकी शहरी सभ्यताकी स्थापना कर सकेंगे तो मैं, जो खुद भी एक तरहसे कल्पना-लोकमें ही विचरण करनेवाला आदमी हूँ, उन्हें आगाह करता हूँ कि वे कमसे-कम वर्तमान पीढ़ीमें और आगे आनेवाली कुछ पीढियों तक भी ऐसी कोई आशा न रखें। एक पलके लिए सोचिए कि हमारा देश कैसा है? इस विशाल महाद्वीपमें, जो १,९०० मील लम्बा और १,५०० मील चौड़ा है, ७००,००० गाँव हैं; और ये गाँव, पश्चिमके विद्वानोके मतानुसार भी, अत्यन्त प्राचीन कालसे चले आ रहे हैं। अमेरिका एक नया महाद्वीप है। उसमें लाखों एकड़ जमीन बिना जोती-बोयी पड़ी है और आबादी भी कम और दूर-दूर बसी हुई है। जिस समय इंग्लैंडसे लोग अमेरिका पहुँचे, जिस समय कोलम्बस अमेरिका पहुँचा, उस समय वहाँ गाँव नही थे। कमसे-कम जैसे गाँव आप यहाँ

देखते हैं, वैसे तो नहीं ही थे। इसलिए उन्होंने नई सभ्यताका निर्माण किया। हो सकता है कि यह सभ्यता उस भूमिके लिए सर्वथा उपयुक्त और पूर्ण हो, लेकिन जो चीज अमेरिकाकी गैर-आबाद धरतीके उपयुक्त हो, जरूरी नहीं कि वह चीज इस प्राचीन देशके लिए भी उपयुक्त हो, बल्कि वह उसके लिए उपयुक्त नहीं हो सकती और मेरे विचारसे वास्तवमें उपयुक्त नहीं है। क्योंकि इस देशकी परिस्थितियाँ अमेरिका-से सर्वथा भिन्न है। यहाँ बड़ी-बड़ी नदियाँ बहती हैं, उच्चतम पर्वत-श्रृंखलाएँ इसके प्रहरी-का काम करती हैं, यहाँ ऐसे लोग रहते हैं जिन्हें अपने अतीतकी रक्षाका दुनियाकी सभी जातियोंमें सबसे अधिक मोह है, जिनकी अपनी परम्पराएँ हैं, रीति-रिवाज हैं और इन सबको क्षण-भरमें नष्ट नहीं किया जा सकता। इसलिए मैं कहता हूँ कि यदि आप यह समझते है कि आप इस देशमें पश्चिमकी शहरी सभ्यताको ले आयेंगे और अपने गाँवोंको समूल नष्ट कर देंगे तो ऐसा आप केवल एक ही तरीकेसे कर सकते हैं, और वह है इतिहास-प्रसिद्ध चंगेजखाँका तरीका। मैं नहीं जानता कि चंगेजखाँने क्या किया और क्या नहीं किया। लेकिन इतिहासमें जो वर्णन मिलता है, वह यदि सच है तो मैं इतना जानता हूँ कि इस देशमें अमेरिकी सभ्यताको प्रतिष्ठित करनेके लिए पहले आपको चंगेजखाँ-जैसे सैकड़ों नृशंस व्यक्तियोंकी जरूरत पड़ेगी, जो निर्म-मताके साथ ग्रामीणोंको मार डालेंगे और उनमें से ऐसे बलिष्ठ पुरुषों और स्त्रियोंको ढूँढ़ निकालेंगे, जिन्हें वे अपनी फौलादी एवं क्रूर इच्छाके आगे झुका सकते हो तथा इन मानव प्राणियोंका उपयोग इस ढंगसे कर सकें, मानो वे मनुष्य नहीं बल्कि पशु हों। इस स्वप्नको तब अवश्य ही साकार किया जा सकता है। लेकिन यदि आप अपने गाँवोंको सुरक्षित रखना चाहते हैं, यदि आप पश्चिमसे, हम जो सीख सकते हैं, उसकी अच्छी बातोंको आत्मसात् करना चाहते है तब तो बंगलोर, मैसूर और कर्नाटक तथा दक्षिणी प्रायद्वीपसे आये आप लोगोंके लिए और जो थोड़े-से लोग उत्तरसे आये उनके लिए भी यहाँ करनेको बहुत-कुछ पड़ा हुआ हैं।

मैं नहीं जानता कि इन पुरस्कार पानेवाले लोगोंको देखकर मेरे ही समान आपका हृदय भी अभिभूत हुआ है अथवा नहीं। ये ब्राह्मण-अब्राह्मण, हिन्दू-मुसलमान, अमीर-गरीबका भेद नहीं जानते। इन सबमें एक समानता और भी है; वह यह कि ये इस देशकी गरीबीको अपनी गरीबी मानते हैं, इनमें से जो लोग धनी परिवारोंके हैं उन्होंने भी अपने भाग्यको हमारे सामने उपस्थित गरीब लोगोंके साथ जोड़ लिया है। आप घुड़दौड़में जितनी रुचि रखते हैं, आपको घुड़दौड़की भाषाका जितना ज्ञान है, उतनी ही रुचि इस काममें है या नहीं, उतना ही ज्ञान आपको इसकी भाषाका है अथवा नहीं, सो मैं नहीं जानता। भारतके दरिद्रतम लोगोंकी इस सभामें जैसे लोग उपस्थित हैं, उनके बदले यदि आपके सामने फुटबाल, घुड़दौड़ या क्रिकेटके मैदानमें कमाल दिखानेके लिए पुरस्कार पानेवाले लोग होते तो मैं जानता हूँ कि आपमें से कुछ लोग कैसा महसूस करते, आपको उससे कितनी प्रसन्नता होती। लेकिन मुझे यह मालूम नहीं है कि आप कातनेवालों और बुननेवालोंकी भाषा समझते हैं अथवा नहीं। मैं नहीं जानता कि प्रदर्शनी देखनेके बावजूद आप इन प्रक्रियाओंमें निहित अर्थको सचमुच

समझते हैं अथवा नहीं। अगर आप समझते हैं तो मुझे विश्वास है कि इस समय, जब कि दुर्बल शरीरके बावजूद मुझे आपसे अपने मनकी सारी बातें कह डालनेकी एक अदम्य प्रेरणाका अनुभव हो रहा है, मेरे हृदयमें जो भावनाएँ उमड़ रही हैं, वही भावनाएँ आपके हृदयमें भी होंगी।

इतना बोलते-बोलते महात्माजी प्रत्यक्षतः विह्वल हो उठे और उनकी आँखोंमें आँसू भर आये। वे कुछ क्षणतक रुके रहे. . .

मैं भगवान्से प्रार्थना करता हूँ कि वह आपको इस प्रदर्शनीको और उसमें जो-कुछ दिखाया गया है, उसको समझनेकी शक्ति और बुद्धि दे।

मुझे आपसे अब कुछ ज्यादा नहीं कहना है और यदि आपको अपना सन्देश देते हुए आपने मेरा गला अवरुद्ध होते देखा है तो मुझे आशा है उसके लिए आप क्षमा करेंगे। यह चीज मेरे मनपर इतनी छाई हुई है कि अपने-आपको रोक पाना मेरे लिए कठिन हो जाता है, हालाँकि मुझमें भी अपनी मनोगत भावनाओंको छिपाकर बुद्धिकी सामान्य भाषामें आपसे अपनी बात कह सकनेकी सामर्थ्य है। लेकिन कभी-कभी मैं भावनासे अभिभूत हो उठता हूँ, और यही कामना करता हूँ कि काश ईश्वर मुझे, जिस शक्तिके लिए मैं नित्य लालायित रहता हूँ, वह शक्ति दे जिससे मैं अपना हृदय आपके सामने खोलकर रख दूँ ताकि आप लोग जिह्वाकी भाषाको न समझकर हृदयसे बोली जानेवाली भाषाको पढ़ और समझ सकें। भगवान् आपका, तथा इन पुरस्कृत लोगोंका कल्याण करे और इस समारोहके उद्देश्यको सफल बनाये। मैं आप सबको सभामें आनेके लिए धन्यवाद देता हूँ।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, ९-७-१९२७

११८. पत्र : मीराबहनको

९ जुलाई, १९२७

चि० मीरा,

तारके बाद तुम्हारा पत्र भी मिला। तुम्हारे नाम हर हफ्ते जो पत्र लिखा करता हूँ वह तो तुम्हें मिल ही गया होगा। वर्धाके पतेपर भी एक पोस्टकार्ड लिखा था, लेकिन वह सिर्फ यह बतानेके लिए लिखा था कि मैंने असली पत्र साबरमती भेज दिया है। मुझे यह जानकर खुशी हुई कि तुमने अभी कुछ दिन वहाँ रहकर डॉक्टरकी रिपोर्ट ले लेनेका निश्चय किया है। यदि हमें प्रकृतिके सारे नियमोंकी जानकारी होती अथवा यदि उनको जानकर मन, वचन और कर्मसे उनका पालन करनेकी शक्ति हममें होती तो हम खुद भगवान् ही बन जाते और हमें कुछ करनेकी जरूरत ही न रह जाती लेकिन वस्तुस्थिति यह है कि हम उसके नियमोंके बारेमें शायद ही कुछ जानते हों और उनका पालन करनेकी शक्ति हममें नहीं है। परिणामस्वरूप रोगादि होते हैं। इसलिए, हमारे लिए इतना ही पर्याप्त है, हम यह समझ लें कि प्रत्येक बीमारी

प्रकृतिके किसी-न-किसी अज्ञात नियमका उल्लंघन करनेका परिणाम है और हम उसके नियमोंको जाननेका प्रयत्न करें तथा ईश्वरसे उनका पालन करनेकी शक्ति देनेकी प्रार्थना करें। अतएव जब हम बीमार होते है उस समय हृदयसे प्रार्थना करना, कर्म और ओषधि दोनोंका काम करता है।

कल फिर मुझे बहुत काम करना पड़ा और सारा भार बहुत अच्छी तरह, पिछले रविवारसे भी अच्छी तरह, बर्दाश्त कर गया। मुझे तुमसे हिन्दी पत्र प्राप्त करनेकी कोई जल्दी नहीं है।

सस्नेह,

बापू

अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ५२४७)से।
सौजन्य : मीराबहन

११९. पत्र : एन० आर० मलकानीको

९ जुलाई, १९२७

प्रिय मलकानी,

तुम्हारा पत्र मिला। टूटी हुई बोतलको किसी तरह जोड़ा तो जा सकता है, किन्तु उसके मालिकने उसके विषयमें यह जो धारणा रखी थी कि वह अटूट है वह यश तो उसे वापिस नही मिल सकता। तुम्हारे पतनसे[1] मुझे जो आघात पहुँचा है, उसे मैं अभीतक भुला नहीं पाया हूँ। तुम नहीं जानते कि मुझे तुमपर कितना विश्वास था। तुम मेरे उन चन्द सहयोगियोंमें से एक थे, जिनके बारेमें मैं सोचता हूँ कि वे कभी टूट नहीं सकते।

लेकिन मुझे बीती बातोंको भूल जाना चाहिए। मैं कोशिश करूँगा। तुम्हें महाविद्यालयमें वापस आना चाहिए अथवा नहीं, सो मैं नहीं जानता। इसका निर्णय कृपलानीपर ही छोड़ दो। यह आघात इतना तीव्र था कि मैं स्तम्भित रह गया और मैंने कृपलानी अथवा नानाभाईको[2] कुछ भी लिखना उचित नहीं समझा, न उन्होंने ही मुझसे कुछ कहा।

लेकिन यह बात बिलकुल स्पष्ट है कि अब तुम्हें थडानीको काफी पहलेसे ही सूचना दिये बिना सिन्ध नहीं छोड़ना चाहिए। तुम्हारा पश्चात्ताप शुभ और उचित है। तथापि अभी जल्दीमें कुछ करनेकी जरूरत नहीं है। मेरे साथ सम्पर्क बनाये रहना। तुम अपने पश्चात्तापका अपनी पत्नी और साससे जिक्र करना। उन्हें भी महसूस करने दो कि वापसीका क्या मतलब है।

१. देखिए "पत्र : एन० आर० मलकानीको", २६-६-१९२७।
२. नृसिंहप्रसाद (नानाभाई) कालिदास भट्ट, जो उस समय गुजरात विद्यापीठके 'कुलनायक' थे।

अभी कुछ दिन मैं यहीं हूँ।

तुम्हारा,
बापू

अंग्रेजी (जी० एन० ८७६) की फोटो-नकलसे।

१२०. भाषण: एमेच्योर ड्रमैटिक एसोसिएशन, मैसूरमें[1]

[९ जुलाई, १९२७][2]

इस सप्ताहका शुभारम्भ गांधीजीकी उपस्थितिमें पंडित तारानाथके एमेच्योर ड्रमैटिक एसोसिएशन द्वारा अभिनीत 'कबीर' नामक नाटकसे हुआ. . .। इसका उद्देश्य हिन्दी और खादीको लोकप्रिय बनाना था। इसलिए गांधीजीने नाटककी अपनी समालोचनाका सार "आधुनिक रूपमें कबीर", इन दो शब्दोंमें प्रस्तुत करते हुए सभी सम्बन्धित लोगोंकी योग्य प्रशंसा की। उन्होंने सभी लोगोंको इस बातके लिए धन्यवाद दिया कि उन सबने उन्हें तिहरा आनन्द पहुँचाया—एक आनन्द इस बातका कि उन्होंने "अपने मनसे दरिद्रनारायणके प्रतिनिधि बने इस व्यक्तिको एक थैली भेंट की जिसका मूल्य उसमें रखी हुई राशिके आधारपर नहीं आँका जा सकता", दूसरा आनन्द यह कि गांधीजीको दक्षिण भारतमें "शुद्ध उच्चारण-युक्त अच्छी हिन्दी" सुननेको मिली और तीसरा यह कि उन्होंने सभी अभिनेताओंको खादीकी पोशाकें पहने देखा। उन्होंने आगे कहा:

मैं अब अपने किसी भी देशवासीको—फिर चाहे वह राजा हो अथवा किसान, वकील हो या डॉक्टर अथवा व्यापारी या कि वह स्त्री अथवा पुरुष समाजके उच्चतम अथवा निम्नतम वर्गका हो—खादी न पहने देखता हूँ, तब मुझे दुःख होता है। सब खादी पहन सकते हैं इसे अभिनेताओंने इस नाटकमें मूर्त रूप देकर दिखाया है। मुझे उस दिनकी प्रतीक्षा है जब सब लोग हमारी मातृभूमिके इस सामान्य धर्मका पालन करेंगे और मुझे उम्मीद है कि अभिनेताओंने जिसका अभिनय किया है, उसे वे अपने जीवनमें उतारेंगे और वह उनके तथा हमारे जीवनका स्थायी अंग बन जायेगा। सच मानिए, मैं अपने साथ कर्नाटकसे जिन सुखद स्मृतियोंको—अगर ईश्वरकी कृपासे मैं यहाँसे जीवित जा सका तो—ले जाऊँगा उनमें इस शामकी स्मृति कोई कम सुखद न होगी।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, २१-७-१९२७

१. महादेव देसाईके "साप्ताहिक पत्र" से।
२. महादेव देसाईकी डायरीके अनुसार।

१२१. दो तुलाएँ

एक ऐसी कन्याके विषयमें, जिसके विचारहीन माता-पिताने उसका विवाह बचपनमें ही कर दिया था, जिसने पतिको कभी देखा ही नहीं था और 'विधवा' हो गई थी, लिखते हुए मैंने यह मत प्रकट किया था कि मैं उसे विवाहित ही नहीं मानूँगा और इस विवादमें न पड़कर कि उसे विवाहित माना जाये या न माना जाये, उसके माता-पिताको चाहिए कि वे उसका विवाह दुबारा कर दें।

किसी समाचारपत्रमें मेरे इस मतको पढ़कर एक सज्जनने मुझे हिन्दीमें एक लम्बा पत्र लिखा है, जिसका आशय इस प्रकार है :

> जिन कारणोंसे आप बाल-विधवाओंका पुनर्विवाह उचित समझते हैं, वे सभी दूसरी विधवाओंपर भी लागू किये जा सकते हैं। तो फिर क्या आप विधवा-मात्रके पुनर्विवाहको प्रोत्साहन देंगे? मैं तो कहूँगा कि हमें पुरुषोंका भी पुनर्विवाह रोकना चाहिए और विधवा-विवाहकी छूट तो देनी ही नहीं चाहिये।

इस प्रकारकी दलीलसे मनुष्य बहुत पाप करता आया है। मैं ऐसे मांसाहारियोंको जानता हूँ जो बहस करते हैं कि उत्तर ध्रुवमें, जहाँ बारहों महीने बर्फ जमी रहती है, मांस खाना पड़ता है, इसलिए यहाँ गरमीमें भी मांस खानेमें दोष नहीं है।

जहाँ-तहाँसे पापके समर्थनकी दलीलें हमें तुरन्त मिल जाती हैं। पुरुष पुनर्विवाहसे रुकनेवाला नहीं, मगर उसकी आड़ लेकर कहा जाता है कि विधवाको उसका न्याय्य हक देना मुल्तवी रखो। स्वराज्यके लिए हमें नालायक बतानेवाले कहते हैं : 'लायक बनो और स्वराज्य लो।' अछूतोंको दबाकर उनकी अधोगति करनेवाले हम लोग कहते हैं : 'अछूत अच्छे बनें फिर भले ही हमारे साथ मिलें।'

बेईमान बनिये की तरह मनुष्य अपने पास दो तराजू रखता है। एक से लेता है और दूसरीसे देता है। अपने पर्वत-जैसे दोष को राई-जैसा मानता है, और दूसरेके राई-जैसे दोषको पहाड़ मानता है।

यदि पुरुष न्यायबुद्धिसे विचार करें तो वे आसानीसे देख सकते हैं कि विधवाओंको दबानेका उन्हें अधिकार नहीं है। जिस वैधव्यका जोर-जबरदस्तीसे पालन करवाया जाता है वह भूषण नहीं, दूषण है। यह गुप्त रोग है और मौका पाते ही फूट निकलता है। वयस्क स्त्री, विधवा हो जानेपर, फिर विवाह करनेकी इच्छातक न करे तो वह जगद्‌वंद्या है — वह धर्मका स्तम्भ है। परन्तु जिसे पुनर्विवाहकी इच्छा हुई हो और जो समाजके भय या कानूनके अंकुशसे ही रुकी हुई रही हो, वह तो मनसे पुनर्विवाह कर चुकी। वह वन्दना करने लायक नहीं है, वह दयाकी पात्र है और उसे फिरसे विवाह करनेकी छूट होनी चाहिए। पहले थी भी। रूढ़िवश ऊँचे वर्गके माने जानेवाले हिन्दुओंने इस ऐच्छिक धर्मको नियमका रूप दे दिया और इस तरह धर्ममें बलात्कारके तत्त्वको दाखिल किया है।

न्याय कहता है कि जहाँतक विधुर पुरुषको पुनर्विवाह करनेका हक है, वहाँ-तक यह हक उन्हीं शर्तोंपर विधवाको भी होना चाहिए। समाजकी रक्षाके लिए कुछ विशेष प्रतिबन्धोंकी आवश्यकता होती है किन्तु वे दोनोंके लिए एक-समान होने चाहिए और उनमें समझदार पुरुषवर्गकी तरह समझदार स्त्रीवर्ग की सम्मति भी होनी चाहिए।

बाल-विधवा और दूसरी विधवाओंके बीच जो भेद है, उसे भूलना नहीं चाहिए। बाल-विधवाका फिर विवाह कर देना माँ-बाप और समाजका धर्म है। परन्तु दूसरी विधवाओंके बारेमें यह बात नहीं कही जा सकती। उनके सम्बन्धमें इतना ही करनेकी आवश्यकता है कि आज उनपर रूढ़ि या कानूनका जो बन्धन लगा हुआ है, उसे दूर कर दिया जाये। यानी, वह विधवा दूसरा विवाह करना चाहे तो उसे इसकी छूट होनी चाहिए।

बड़ी उम्रको पहुँचे हुए विधुर या विधवाके पुनर्विवाहपर तो केवल लोकमतका ही अंकुश रह सकता है। अभी तो लोकमत उलटी दिशामें बह रहा है। परन्तु जहाँ धर्म, मर्यादा और संयमका पालन व्यापक होगा वहाँ बहुत ही थोड़े स्त्री-पुरुष मर्यादाका उल्लंघन करेंगे। अभी तो धर्म उन्हींका है जो उसे पालें। साठ वर्षका धनिक बूढ़ा दस-बारह सालकी लड़कीसे तीसरा विवाह करते शरमाता नहीं। और समाज उसे सह लेता है। और जब बीस वर्षकी विधवा संयमका पालन करनेकी कोशिशके बावजूद उसका पालन नहीं कर पाती और इसलिए फिर विवाह करना चाहती है तो समाज उसका तिरस्कार करता है। यह धर्म नहीं, किन्तु अधर्म है।

इस बलात्कार, इस अधर्मको दूर करनेके बजाय दूसरे देशोंकी अनीति इत्यादिका हिसाब पेश करना निरर्थक और अप्रासंगिक है। बाल-विधवासे लेकर बूढ़ी विधवातक, सभी सती सीता-जैसी पवित्र हों तो भी मैं कहता हूँ कि अगर वे फिरसे विवाह करना चाहें तो उन्हें रोकनेका किसीको अधिकार नहीं है। उन्हें प्रेमपूर्वक समझाना समाजका काम है किन्तु उन्हें दबानेका समाजको अधिकार नहीं है।

अपने लिए हम जिस गजका इस्तेमाल करते हैं, दूसरेके लिए भी उसीसे काम लें तो दुनियाके तीनों ताप दूर हो जायें और फिर एक बार धर्मकी संस्थापना हो।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १०-७-१९२७

१२२. एक पत्र

कुमार पार्क, बंगलोर
१० जुलाई, १९२७

प्रिय मित्र,

अम्बाला नगरके मुसलमानों द्वारा गत १ तारीखकी सार्वजनिक सभामें पास किये गये प्रस्तावोंकी प्रतियोंके लिए धन्यवाद। अपने पत्रमें आपने प्रस्ताव ५ पर मुझसे खास ध्यान देने और उसके सम्बन्धमें जल्दी ही उचित कार्रवाई करनेका आग्रह किया है। शायद आपको मालूम नहीं है कि अभी हालमें मैं बहुत सख्त बीमार हो गया था और हालाँकि मैं अब ठीक हो गया हूँ, फिर भी अभी पहले जैसा स्वास्थ्य प्राप्त करनेके लिए विश्राम ही कर रहा हूँ। डाक्टरोंकी सलाह है कि मुझे ज्यादा काम नहीं करना चाहिए। मैं उत्तर भारतका कोई अखबार नहीं पढता। जिस एक-मात्र पत्रके बारेमें कहा जा सकता है कि मैं उसे पढ़ता हूँ, वह है मद्राससे प्रकाशित 'हिन्दू'। कभी-कभी बम्बईसे प्रकाशित अंग्रेजीके एक दैनिकपर भी नजर डाल लेता हूँ। इससे तो हिन्दू समाचार पत्रोंमें क्या निकला हैं उसके बारेमें कोई जानकारी मिलती नहीं। उक्त अखबारोंमें मैंने पैगम्बर साहब, या इस्लाम अथवा मुसलमानोके खिलाफ कोई चीज नहीं देखी है। यदि आपके पास उन लेखादिकी कतरनें हों, जिनकी शिकायत प्रस्ताव ५ में की गई है तो मुझे भेजनेकी कृपा करें — जरूरी हो तो उधारके तौरपर ही। मैं उन्हें पढ़कर आपको लौटा दूँगा। निश्चय ही मैं उनके बारेमें अपना विचार लिखूँगा। जहाँतक 'रंगीला रसूल'[1] के मामलेमें दिये निर्णयका[2] सम्बन्ध है, आप बुरा न मानें तो कहूँगा कि इस सिलसिलेमें चलाया जा रहा पूरा आन्दोलन दुर्भाग्यपूर्ण और अनुचित है। मैं इस निर्णयका औचित्य नहीं सिद्ध करना चाहता, लेकिन यह जरूर मानता हूँ कि न्यायमूर्ति दिलीपसिंहके खिलाफ जो-कुछ कहा जा रहा है वह बहुत अनुचित है। हो सकता है, उन्होंने कानूनकी गलत व्याख्या की हो। यदि ऐसा हो तो इसका इलाज एक व्यक्तिके रूपमें न्यायाधीशकी निन्दा करना नहीं है। सही इलाज तो निर्णयके विरुद्ध अपील करना या अगर खुद कानून ही दोषपूर्ण हो तो उसमें संशोधन करानेके लिए आन्दोलन करना है।

मैं 'रंगीला रसूल' के लेखकका बचाव नहीं कर रहा हूँ। यह बात आपके लिए शायद नई हो। मुझे कुछ वर्ष पूर्व इस पुस्तिकाको पढ़नेका अवसर मिला था और उसे पढ़कर मैंने 'यंग इंडिया' में उसकी कड़ी आलोचना की[3] थी। आपको शायद

१. हजरत मुहम्मदकी निन्दा करते हुए 'रंगीला रसूल' नामकी एक पुस्तिका उर्दूमें लिखी गई थी। उसीके खिलाफ अदालतमें मुकदमा दायर किया गया था।

२. देखिये "पत्र: एम० अब्दुल गनीको", ११-८-१९२७।

३. देखिए खण्ड २४, पृष्ठ २६८-६९ तथा ३७४-७६; तथा खण्ड ३५ भी।

यह बात मालूम नहीं है। आप शायद यह भी नही जानते हैं कि अकेले 'रंगीला रसूल'का लेखक ही ऐसा गुमराह व्यक्ति नहीं है जो इस तरह की शरारतें कर रहा हो। और भी बहुत-से लोग हैं। मैंने मुसलमानों द्वारा भी उतनी ही आपत्तिजनक चीजें लिखी देखी हैं जितनी आपत्तिजनक यह पुस्तिका है। जहाँतक मैं जानता हूँ, यह कहना मुश्किल है कि इस श्रेणीके लेखकोंमें, चाहे वे हिन्दू हों या मुसलमान, कौन कम है और कौन ज्यादा; बल्कि दोनो समान रूपसे भर्त्सनीय हैं। लेकिन अगर मुझसे पूछें तो कहूँगा कि इसका इलाज अदालतोंमें नही हो सकता, हिंसाके द्वारा तो हो ही नही सकता। इसका अगर कोई इलाज है तो यह कि ऐसा स्वस्थ हिन्दू-मुस्लिम जनमत तैयार किया जाये जो साम्प्रदायिक आग भड़कानेवाली चीजोंका प्रकाशन असम्भव बना दे। लेकिन मैं जानता हूँ कि अभी मेरे विचार लोगोंको रुचेंगे नही। इसलिए जहाँतक सम्भव होता है, मैं अपने मौनकी नीतिपर आरूढ़ रहता हूँ। आपके पत्रको मैं टाल नहीं सका, और यद्यपि अभी मेरा स्वास्थ्य कमजोर ही है, फिर भी मुझे लगा कि आपको एक काफी विस्तृत उत्तर भेज दूँ। सो एक ऐसे व्यक्तिकी हैसियतसे, जिसे हिन्दू-मुस्लिम एकतासे प्रेम है और उसमें विश्वास है, जो अपनेको आपका मित्र और, यदि आपके लिए यह सम्बन्ध स्वीकार करना सम्भव हो तो, भाई मानता है, मैंने उत्तर लिख दिया है। इसे मैंने प्रकाशनार्थ नहीं लिखा है। मैंने इसे आपके पढनेके लिए और इस प्रयोजनसे लिखा है कि जो अन्य लोग मेरा मत जानना चाहते हों और हिन्दू-मुस्लिम एकताको बढ़ावा देनेकी इच्छा करते हों, उन्हे भी आप यह पत्र पढवा दे। मैं किसी अखबारी विवादमें नहीं पड़ना चाहता, बल्कि पत्रव्यवहार द्वारा भी इस सवालपर चर्चा करना नही चाहता, क्योंकि उससे कोई फायदा होनेवाला नही है। यदि मेरा पत्र आपकी बुद्धिको न जँचे तो मेरा अनुरोध है कि आप इसे अपने दिमागसे बिलकुल निकाल दें और रद्दीकी टोकरीमें फेंक दें। और वैसे आपकी जानकारीके लिए बता दूँ कि अब मैं बैरिस्टर नही हूँ। मैं तो एक गरीब भंगी, मामूली कतैया-भर हूँ।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजी (एस० एन० १२३८४)की माइक्रोफिल्मसे।

१२३. पत्र : जे० बी० कृपलानीको

कुमार पार्क, बंगलोर
१० जुलाई, १९२७

प्रिय प्रोफेसर,

महादेवको लिखे तुम्हारे पत्रके उत्तरमें मैंने कल तुम्हें एक तार भेजा है। अभीतक मैंने जान-बूझकर मलकानीके बारेमें तुम्हें कुछ नहीं लिखा था। उसने अपने त्याग-पत्रकी सूचना देते हुए मुझे पत्र लिखा था।[1] पत्रने मुझे तोड़-सा दिया। क्योंकि मैं मलकानीको अपने ऐसे सहयोगियोंमें एक मानता था, जिनसे मैं कभी डिगनेकी आशा नहीं करता।[2] मुझे इस बातकी चिन्ता नहीं थी कि मलकानीके त्याग-पत्रसे विद्यापीठ-का क्या होगा, लेकिन एक व्यक्तिका पतन हो गया, इस विचारने मेरे अन्तरतमको हिला दिया। यह अच्छी बात है कि उसने अपने कियेपर पश्चात्ताप किया है, लेकिन यदि तुम उसे विद्यापीठमें वापस नहीं लेते तो यह सर्वथा उचित है। जहाँतक उसका सवाल है, यदि वह थडानीको भी उसी तरह अशोभनीय ढंगसे छोड़कर चला आता है जिस तरह हमें छोड़कर चला गया था तो यह उसकी एक और भूल होगी। इसलिए उसकी यह इच्छा कि उसे तीन महीनेके पश्चात् अथवा यदि थडानी उसे इससे पहले मुक्त कर दें तो पहले ही वापस ले लिया जाये, मेरे खयालसे, सर्वथा उचित जान पड़ती है। और मेरा निश्चित मत है कि यदि उसे सच्चा पश्चात्ताप है तो उसको सिन्ध कालेजमें स्थायी रूपसे नहीं रहना चाहिए। कारण यह है कि अगर तुम उसे फिर स्वीकार नहीं करोगे तो उसका मन निश्चय ही बहुत दुःखी होगा। अतएव उसके पत्रके सम्बन्धमें जो निश्चय करना है, वह केवल महाविद्यालयके हितको ध्यानमें रखते हुए करो। और यदि तुम समझते हो कि अन्य प्रोफेसर उसका वापस आना पसन्द नहीं करेंगे तो उसको फिरसे विद्यालयमें रखने लिए मैं तुमपर जोर नहीं डालूँगा। क्योंकि इससे वह भी अटपटी स्थितिमें पड़ जायेगा और जो प्रोफेसर उसकी वापसी पसन्द नहीं करते, उनका भी मन दुःखी होगा। इसलिए यदि तुम उसे वापस लेनेका निश्चय करते हो तो वह हार्दिक सर्वसम्मतिसे होना चाहिए।

हाँ, मुझे नये विनय मन्दिरके बारेमें कुछ-न-कुछ जानकारी प्राप्त होती रही है। मुझे यह जानकर बहुत खुशी हुई कि उसमें विद्यार्थियोंकी संख्या अधिक है। मुझे ऐसी उम्मीद नहीं थी। मैं आशा करता हूँ कि यह संस्था उत्तरोत्तर सफलता प्राप्त करेगी और चाहे इसमें एक बड़ी संख्यामें विद्यार्थी भरती हों अथवा वर्तमान संख्यामें भी कमी आ जाये, परन्तु इसके संस्थापक-जन कभी भी इसका परित्याग नहीं करेंगे।

१. देखिए "पत्र : एन० आर० मलकानीको", २६-६-१९२७।
२. देखिए "पत्र : एन० आर० मलकानीको", ९-७-१९२७।

यदि डा० दलाल अब ऑपरेशन करनेको तैयार हों तो मैं चाहूँगा कि तुम बतासीरका ऑपरेशन करवा डालो।

कीकीबहन मुझे बीच-बीचमें छोटे-मोटे पत्र लिखती रहती है। जहाँतक इस समय मैं कह सकता हूँ, यही कहूँगा कि अक्टूबरसे पहले मेरे वहाँ आनेकी उम्मीद तुम्हें नहीं करनी चाहिए।

हृदयसे तुम्हारा,

आचार्य कृपलानी
गुजरात विद्यापीठ

अंग्रेजी (एस० एन० १२६०३) की फोटो-नकलसे।

१२४. भाषण: अखिल कर्नाटक हिन्दी सम्मेलन, बंगलोरमें[1]

१० जुलाई, १९२७

आज तीसरे पहर मैजेस्टिक थियेटरमें अखिल कर्नाटक हिन्दी सम्मेलनका अधिवेशन हुआ। इसमें बहुत बड़ी संख्यामें लोग उपस्थित हुए। . . . तीन बजेके लगभग महात्माजी सम्मेलनमें आये और उन्होंने सम्मेलनकी उस दिनकी कार्यवाहीका संचालन किया। . . . इसके बाद उन्होंने पिछली हिन्दी परीक्षामें सफल हुए विद्यार्थियोंको प्रमाण-पत्र दिये। इनमें एक महिला भी थी, जो प्रथम श्रेणीमें उत्तीर्ण हुई थी। पुरस्कार-वितरण करनेके बाद हिन्दीमें बोलनेसे पहले महात्माजीने यह जानना चाहा कि कितने लोग अंग्रेजीमें भाषण पसन्द करेंगे। सभामें उपस्थित सब लोगोंने अपने हाथ उठा दिये। इसपर महात्माजीने मुस्कराते हुए उनसे कहा कि अब इसी तरह हाथ उठाकर आप लोग यह बताइए कि क्या आप मेरे भाषणका कन्नड़में अनुवाद चाहेंगे। इसके उत्तरमें सब लोगोंने, यहाँतक कि महिलाओंने भी, अपने हाथ उठा दिये। इसके बाद उन्होंने हिन्दीमें भाषण दिया और गंगाधरराव देशपाण्डेने उसका कन्नड़में अनुवाद किया। आन्दोलनकी उपयोगिताके बारेमें बोलनेके बाद महात्माजीने [कहा[2]]:

भारत आज दो भागोंमें बँटा हुआ है और विन्ध्यसे उत्तरके हिस्सेके लोगोंका दक्षिणके लोगोंके साथ कोई हार्दिक सम्बन्ध नहीं है। दक्षिण भारतका यह कर्त्तव्य है कि वह उत्तर भारतकी, जो कि दक्षिणसे बहुत बड़ा है, भाषा सीखे। एक ओर जहाँ मुझे हिन्दी भाषाके थोड़े-से ज्ञानके बलपर सिन्धसे लेकर बंगाल तककी यात्रा करनेमें सुविधा होती है, वहाँ इन भागोंमें अंग्रेजीके बिना अपनी बातको समझाना

१. यह प्रथम अखिल कर्नाटक हिन्दी सम्मेलन था। यह ९ जुलाईको शुरू होकर १० जुलाईको समाप्त हुआ। गांधीजी इसमें आखिरी दिन गये थे।

२. यह अनुच्छेद हिन्दू, १२-७-१९२७ से लिया गया है।

असम्भव है। जबतक आप हिन्दी नहीं सीखते तबतक आप विन्ध्य पर्वतमालाकी उस दीवारको नहीं गिरा सकेंगे जो दक्षिणको उत्तरसे अलग करती है। मैं नहीं चाहता कि आप अपनी-अपनी मातृभाषाओंकी उपेक्षा करें — आपको उनपर उतना ही गर्व होना चाहिए जितना कि मुझे अपनी मातृभाषापर है — लेकिन यदि हम केवल गुजराती, बंगाली, तमिल और कर्नाटक नहीं बल्कि भारतीय बनना चाहते है, तो हमें हिन्दी सीखनी चाहिए। इसे सीखना कठिन नही है। जिन्होंने इस भाषाको सीखा है, उन्हें इसे सीखनेमें छः महीनेसे ज्यादा समय नहीं लगा है और वह भी सप्ताहमें केवल दो घंटे देकर। मैं आपसे अनुरोध करता हूँ कि आप अपना इतना थोड़ा समय मातृभूमिकी सेवामें लगायें।

सामान्य भाषा और सामान्य लिपि दो भिन्न प्रश्न हैं। जहाँ हिन्दीके ज्ञानसे आप उत्तरके लोगोंके सम्पर्कमें आ सकेंगे, और अपने हृदयकी भावना उनतक पहुँचा सकेंगे, वहाँ यदि आप अपनी-अपनी मातृभाषाओंके लिए देवनागरी लिपिको अपनायेंगे तो उत्तरके लोग आपके नजदीक आयेंगे।

और अब प्रश्न उठता है धनका। मुझे खुशी है कि दक्षिण भारतने हिन्दी-प्रचारके लिए पैसा देना आरम्भ कर दिया है। लेकिन इस कार्यके लिए प्रतिवर्ष १०,००० रुपये खर्च करनेकी आवश्यकता है, और मैं आपसे अनुरोध करता हूँ कि आप इस राशिको दक्षिण भारतमे ही जुटानेकी व्यवस्था करें।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, २१-७-१९२७

१२५. पत्र : मीराबहनको

[१० जुलाई, १९२७][1]

चि० मीरा,

तुम्हारा पत्र मिला। डाक्टरकी हिदायतोंका ठीक-ठीक पालन करना। वर्धा जानेके बारेमें जल्दबाजी करनेकी कोई जरूरत नही। तुम हिन्दीका अभ्यास वहाँ भी उतनी ही अच्छी तरहसे कर सकती हो। वर्धा जानेकी तभी सोचो जब तुम्हें लगे कि उसमें कोई अड़चन नहीं है और वहाँ जाना सर्वथा निरापद है। डॉ० हरि-लाल देसाई काफी सधे हुए और सतर्क आदमी हैं।

मुझे हिन्दीमें पत्र लिखनेके लिए अपने-आपको ख्वाहमख्वाह परेशान न करो। लिखो अवश्य, लेकिन जब तुम्हारा मन करे तभी। तुम मसहरीका उपयोग बेहिचक करना। घूमने-फिरनेके लिए बहुत उतावली न करना।

१. अन्तिम अनुच्छेदमें हिन्दी सम्मेलनकी चर्चाके आधारपर; देखिए पिछला शीर्षक।

आज एक और बैठक हुई थी, इस बार वह हिन्दीके लिए हुई थी। मैं अच्छी तरह निभा गया और मुझे कोई थकावट महसूस नहीं हुई।

सस्नेह,

बापू

अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ५२४५) से।
सौजन्य : मीराबहन

१२६. पत्र : मीराबहनको

११ जुलाई, १९२७

चि० मीरा,

आज तुम्हारा कोई पत्र नहीं आया; लेकिन तार आया, जिसे पाकर मुझे बड़ी खुशी हुई। यह तार पत्रसे भी बढ़कर है, क्योंकि इससे तुम्हारे ताजेसे-ताजे समाचारकी जानकारी प्राप्त होती है। शारीरिक स्वास्थ्यके लिए पेटका ठीक रहना कितना महत्त्व रखता है! यह भी स्पष्ट है कि सिर्फ स्वास्थ्यके लिए भी यदा-कदा उपवास रखना एक अच्छी चीज है। लेकिन तुमको यह बात समझानेकी जरूरत नहीं है।

१६ अगस्ततक मेरा पता बंगलोरका है। बीच-बीचमें कभी-कभी मैं एक-दो दिनोंके लिए बाहर भी जाता रहूँगा। लेकिन १६ अगस्ततक मेरा सदर मुकाम बँगलोर ही होगा।

सस्नेह,

बापू

अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ५२४८) से।
सौजन्य : मीराबहन

१२७. पत्र : गोपालरावको

मौनवार, ११ जुलाई, १९२७

तुम्हारा पत्र मिला। काका साहब जो-कुछ कहते हैं उसपर तो तुम्हें विचार करना ही है।

ब्रह्मचर्यका सम्पूर्ण रस तुम तुरन्त लूटना चाहते हो किन्तु यह इस तरह नहीं हो सकता। विवाह न करनेमें यदि तुम्हे सन्तोषका अनुभव होता हो तो न करना और न होता हो तो विवाहकी व्यवस्था करना। सन्तोषमें और रसमें भेद है, यह तो तुम्हे बतानेकी जरूरत नहीं है।

यह विचार कि आदर्श स्त्री मिल गई तो फिर पति-पत्नीको एक-दूसरेमें विलीन हो जाना चाहिए एक बड़ा भ्रमजाल है। इसमें अनेक लोग फँसे है और

यदि तुम भी उसमें फँस जाओ तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं। यदि अन्ततक न फँसो रहो तो अवश्य आश्चर्यकी बात होगी।

यदि हम विवाहित लोगोंको देखकर तुम्हें इस सत्यकी प्रतीति हो गई हो – और हो तो जानी चाहिए – कि इनका अनुकरण करनेमें कोई लाभ नहीं है तो तुम अभी अविलम्ब नैष्ठिक ब्रह्मचर्यके आनन्दका अनुभव करनेका लोभ छोड़कर विवाहकी नीरसता अथवा यदि तुमने उसका कड़वापन देख लिया हो तो उसके कड़वेपनका ही विचार करना और उस विचारको दृढ़ करना। निरन्तर इस बातका ध्यान करना कि ब्रह्मचर्यमें क्या रस है यह तो भगवान् ही जानता है, किन्तु विवाहमें कोई रस नहीं है इसलिए मैं तो विवाह ही नहीं करूँगा।

विवाह न करनेके लिए इससे उतरती श्रेणीका एक दूसरा विचार यह है: 'मैं यह तो नहीं कहता कि मुझे विवाह करना ही नहीं है; अनुकूल परिस्थितियोंमें मैं विवाह करूँगा। किन्तु इस समय देश गुलाम है, स्त्रियोंकी स्थिति अत्यन्त दीन है और मैं इस काममें लगा हुआ हूँ इसलिए अभी तो मैं विवाह करनेकी बात नहीं सोच सकता। मुझे यह व्रत तो लेना ही चाहिए कि जबतक मेरी कल्पनाका स्वराज्य नहीं मिलता तबतक भले ही रम्भा भी आकर मुझसे पाणिग्रहणकी प्रार्थना क्यों न करे तो भी मैं विवाह नहीं करूँगा।' यदि तुमसे बने तो इस विचारको धारण करना। अपनी कल्पनाके स्वराज्यकी व्याख्या लिख डालना। मैं एक आसान-सी व्याख्या सुझाता हूँ – 'स्वराज्यका दिन तब आया माना जायेगा जब चरखा सारे देशमें व्यापक हो जायेगा और विदेशी वस्त्रका सम्पूर्ण बहिष्कार हो चुकेगा।' यह व्याख्या यदि तुम्हें कठिन लगे तो जो तुम्हें जँचे वैसी एक व्याख्या लिखकर और ऐसा व्रत लेकर कि इस व्याख्याके अनुसार जबतक स्वराज्यकी प्राप्ति नहीं होती तबतक मैं विवाह नहीं करूँगा, अपनी इस प्रतिज्ञाकी एक नकल अपनी कोठरीमें ऐसी जगह टाँगना जहाँ उसे सब लोग देख सकें। एक नकल काका साहबको भेजना और एक मुझे।

यदि यह भी न कर सको तो ऐसा विचार करना: 'मुझे विवाह करनेकी इच्छा है, मैं उसे रोक नहीं सकता। किन्तु जिस तरह सगी बहनसे विवाह नहीं किया जा सकता उसी तरह मैं अपनी जातिकी किसी भी लड़कीसे विवाह नहीं करूँगा। मैं इन संकीर्ण बाड़ोंको तोड़ना चाहता हूँ। जिस लड़कीसे विवाह करूँगा उसे संस्कृत, मराठी, हिन्दी और गुजरातीका ज्ञान होना चाहिए। उसे पैसेका कोई लालच नहीं होना चाहिए। यदि उसके माँ-बाप हों तो विवाहमें उनकी सम्मति मिलनी चाहिए। उसे खादीके प्रति पूरा प्रेम होना चाहिए। मेरे जो अन्यान्य आदर्श हैं उनमें उसका भी विश्वास होना चाहिए और वे उसे समझमें आने चाहिए। उसे अस्पृश्योंके प्रति प्रेम होना चाहिए। शरीरसे बलवान होना चाहिए और किसी दूरके गाँवमें जाकर रहनेके लिए तैयार रहना चाहिए और विवाहित ब्रह्मचर्यकी प्रसिद्ध मर्यादाका पालन करनेकी उसकी इच्छा होनी चाहिए।' यदि यह भी न कर सको तो समझ लेना कि ब्रह्मचर्यका पालन करना तुम्हारे वसकी बात नहीं है और जो पहला मौका हाथ आये तत्काल विवाह कर लेना। ऊपर लिखे अनुसार मर्यादाका पालन करनेका निश्चय

करो तो इस प्रतिज्ञाको लिख लेना और जैसा पिछली प्रतिज्ञाके लिए कहा है वैसा ही इसके लिए भी करना।

यह तो मैंने तुमसे सगुण उपासना की बात कही, साकारकी पूजा सुझाई है। नैष्ठिक ब्रह्मचर्यके लिए जिस ब्रह्मचर्यका पालन किया जाता है वह निर्गुणकी उपासना करने-जैसा है और इसलिए वह सबके लिए कठिन ही है।

मैं जिस मार्गसे चलकर आया हूँ वह मार्ग मैंने तुम्हें बताया। ब्रह्मचर्यकी स्थूल उपयोगितामें से उसके सूक्ष्म रसकी केवल कुछ-एक बूँदें मेरी जीभतक आई हैं, उसका शेष रस तो बुद्धिने ही जाना है। मेरी जीभने उसके अमृत-घूंट नहीं पिये हैं — यह याद रखना।

इस नैष्ठिक ब्रह्मचर्यका रस सचमुच कैसा होता है इसका शब्दोंमें वर्णन करना सम्भव हो तो विनोबा, सुरेन्द्रनाथ आदि जिन्हें मैंने नैष्ठिक ब्रह्मचर्य-पालन करनेवाला माना है, वे ही शायद कर सकते हैं। मैं तो तुम्हारे समक्ष विषय-भोग और विवाह-को जाननेवाला आदमी ब्रह्मचर्यको जिस हदतक जान सकता है उसी हदतक उसे बता सकता हूँ अर्थात् अधूरी बात ही बता सकता हूँ। पूरी बात तो ब्रह्मचर्यका पूर्णतः पालन करनेवाले ही बता सकते हैं।

सम्भव है कि तुम्हें इस पत्रसे भी पूरा सन्तोष न हो। तुम्हें यदि इसमें अपने प्रश्नका उत्तर न मिले तो तुम समझ लेना कि तुम्हारे उस प्रश्न-विशेषका उत्तर इसमें क्यों नहीं है। कारण यही है कि तुम्हारे प्रश्नका उत्तर अनुभवके आधार पर देनेकी मेरी योग्यता नहीं। ऐसी योग्यता न काका साहब की है, न मेरी है, न ऐसे किसी भी व्यक्तिकी हो सकती है जिसने विवाहका अनुभव लिया है। इन्हीं कारणोंसे हम शरीरधारी लोग मोक्षके सुखका केवल अधूरा वर्णन ही कर सकते हैं और वाणी तो वहाँ है जहाँ शरीर है। इसलिए मोक्ष अवर्णनीय ही है और हमेशा अवर्णनीय ही रहेगा। इसी तरह शुद्ध ब्रह्मचर्यके रास्तेका वर्णन नैष्ठिक ब्रह्मचारी ही कर सकता है या फिर हमें शास्त्रोंमें उसके जो वर्णन मिलते हैं उनके आधारपर ही अपनी गाड़ी चलानी पड़ेगी।

[गुजरातीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरी।
सौजन्य : नारायण देसाई

१२८. पत्र : नाजुकलाल न० चोकसीको

बंगलोर
सोमवार, ११ जुलाई, १९२७

भाईश्री नाजुकलाल,

तुम्हारा पोस्टकार्ड मिला। ईश्वर मनुष्यको अपने पतनसे शिक्षा ग्रहण करनेका साधन देता है। तुम दोनोंको पुत्रकी प्राप्तिके रूपमें वैसा ही साधन प्राप्त हुआ है। किन्तु मोती यदि वह चाहे तो, उसके द्वारा अपने जीवनको सार्थक बना सकती है। तुम तो पेशेसे भी शिक्षक हो अतः अब मैं यह देखूंगा कि तुम अपने नवप्राप्त शिशुका पालन-पोषण किस प्रकार करते हो। यह पत्र मोतीको पढ़वा देना।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

इस पोस्टकार्डको सँभालकर रखना।

गुजराती (एस० एन० १२१४१)की फोटो-नकलसे।

१२९. पत्र : रेहाना तैयबजीको

कुमार पार्क, बंगलोर
१२ जुलाई, १९२७

प्रिय रेहाना,

केवल सिद्धान्तकी दृष्टिसे देखें तो इस बातमें कोई सन्देह नहीं है कि तुम्हें अपने मनपसन्द कपड़े पहनने और मित्रोंसे मिलने-जुलनेका अधिकार है। परन्तु जब किसी सैद्धान्तिक अधिकारको ठोस व्यवहारमें लानेकी बात आती है, तब व्यक्तिको असंख्य बातोंका खयाल करना पड़ता है। और मेरी सलाह यह है कि तुम जो-कुछ भी करो, उसे करनेमें तुममें अपने प्रति इतना विश्वास हो कि तुम सारे विरोधका सामना कर सको और अपने आसपासके लोगोंको अपने कार्यके औचित्यके बारेमें यकीन दिला सको। क्या तुम माँके साथ उसी तरह खुलकर तर्क करती हो जैसा कि मुझे लिखे तुम्हारे पत्रोंमें झलकता है? लेकिन तुम वैसा करती हो या नहीं, इसकी जाँच करनेके लिए मैं तुमसे एक बात पूछता हूँ। क्या तुम मुझे अपने पत्रके बारेमें अपने माता-पितासे बातचीत चलानेकी अनुमति दोगी? क्या तुम्हारा पत्र मैं उनके पास भेज सकता हूँ? मैं उत्तर देनेके बाद तुम्हारे सारे पत्रोंको नष्ट कर देता हूँ। तुम्हारे अन्तिम पत्रको जबतक तुम्हारा उत्तर नहीं आ जाता तबतक सँभालकर रख रहा हूँ। स्वयं उनके सम्बन्धमें और

उन्होने जिस ढंगसे अपने बच्चोंका लालन-पालन किया है उसके बारेमें जितना-कुछ मैं जानता हूँ, उससे तो मुझे लगता है कि वे अपने बच्चोकी भावनाका बहुत खयाल रखनेवाले अत्यन्त उदारमना माता-पिता है, और वे अपने वयस्क बच्चोकी स्वतन्त्रतामें हस्तक्षेप नही करेंगे। इसलिए तुम्हारे हालके पत्रोको पढ़कर मुझे आश्चर्य हुआ है। अतः मैं अभी इस समय तुमसे और कुछ नही कहूँगा और तुम्हारे उत्तरकी प्रतीक्षा करूँगा।

इस बीच तुम्हे मेरा सुझाव यह है कि जिन चीजोपर तुम्हारा कोई बस न हो, उनके बारेमें कोई चिन्ता न करो। यदि कपड़ो या मित्रोके चुनावमें अथवा मित्रोके साथ व्यवहार रखनेमें तुम अपने मनकी न कर सको तो यह समझो कि और भी बहुत-से लोग तुम्हारी जैसी ही स्थितिमें हैं, और इस ससारमें ऐसा एक भी मनुष्य नही जिसे मनचाहा करनेकी पूरी-पूरी स्वतन्त्रता हो। स्वतन्त्रतापर लगाये जानेवाले कुछ प्रतिबन्ध व्यक्तिको नीचे गिराते है, और कुछ ऊपर उठाते हैं। जिस प्रतिबन्धको मनुष्य भय या स्वार्थ अथवा ऐसे ही किसी अन्य कारणसे नही, बल्कि दूसरोकी भावनाका खयाल करके अथवा स्नेह-भावके वशीभूत होकर स्वीकार करता है, वैसा कोई प्रतिबन्ध पतनकारी नही होता। मैं इस बातकी कल्पना भी नही कर सकता कि तुम किसी भी हालतमें किसी भी तरहके भयके वशीभूत हो सकती हो।

कल मैंने बहुत अच्छा संगीत सुना। यह सगीत पूरे एक घटेतक चलता रहा। उस समय मैं कात रहा था। मुझे सारे समय तुम्हारी आवाजका ध्यान आता रहा, और यद्यपि वे दोनो आवाजें अच्छी थी फिर भी मैंने महसूस किया कि तुम्हारी आवाज उनसे किसी तरह भी कम नही है, बल्कि मुझे तो तुम्हारी आवाज बेहतर ही जान पड़ी। लेकिन ऐसा शायद इसलिए लगा हो कि तुमपर मेरा विशेष स्नेह है। कुछ भी हो, तुम्हारे पास ऐसा मधुर स्वर है जिसे सुनकर अन्य लोग भी चिन्तामुक्त हो जायें तो फिर अपनी चिन्ताको दूर करनेके लिए भी तुम उसीका सन्धान क्यों नही करती?

सस्नेह,

बापू

कुमारी रेहाना तैयबजी
साउथवुड
मसूरी
सं० प्रा०

अंग्रेजी (एस० एन० ९६०४) की फोटो-नकलसे।

१३०. पत्र : जे० डब्ल्यू० पेटावेलको

कुमार पार्क, बंगलोर
१२ जुलाई, १९२७

छोटे आकारके नौ पृष्ठोंमें लिखे आपके लेखको मैं ध्यानपूर्वक पढ़ गया। लेकिन उसे पढ़नेसे मेरी शंकाओंका समाधान तो क्या होता, वे और भी उलझ गईं। इसे पढ़कर भी मुझे यह नहीं मालूम हो पाया है कि बेल्जियम और स्विट्जरलैंड क्या कर रहे हैं। मैंने आपसे यह तो कभी नहीं कहा[1] कि दक्षिण आफ्रिकामें मैंने जो दो बस्तियाँ बसाईं, वे असफल साबित हुईं। इसके विपरीत, उन्होंने जहाँतक प्रयत्न किया, वहाँतक वे सफल रहीं। मैंने तो आपको सिर्फ यह जानकारी दी थी कि चूंकि ये बस्तियाँ एक हदतक सफल रही थीं, इसीलिए मैं उनसे वह बृहत् निष्कर्ष नहीं निकाल सकता जो आपने अपनी इस योजनासे निकाला है, जिसे किसीने आजमाकर देखा भी नहीं है।

और जहाँतक आश्रमकी बात है, आपने मुझे कुछ नया नहीं बताया है। और जब आप मुझसे यह कहते हैं कि मुझे कोई ऐसी चीज पेश करनी चाहिए जो घंटे-भरमें ही उतना दे सके जितना कि मैं आठ घंटेमें देनेका भरोसा दिलाता हूँ, तब हम एक ऐसे बिन्दुपर पहुँच जाते हैं जहाँ हमारी बातचीतके लिए कोई समान आधार नहीं रह जाता, एक गतिरोध पैदा हो जाता है। ३० करोड़ लोगोंको प्रति घंटा दो आने दे सकने-वाली किसी योजनाकी जानकारी मुझे तो नहीं है। मैंने आपकी योजनापर अपनी शक्ति-भर पूरा विचार किया है, लेकिन वह मुझे जँची नहीं। और न मैं आपके इसी विचारसे सहमत हो सकता हूँ कि धन-संग्रह और समय तथा दूरीकी बाधाको मिटानेकी आधुनिक सनकसे कुछ प्राप्त किया जा सकता है। इसलिए जहाँ आपको हम दोनोंके बीच एक मिलन-बिन्दु दिखाई देता है, वहाँ मुझे ऐसा कुछ नहीं दिखाई देता। आपकी असहयोगकी योजना और सहयोगकी योजना, दोनों मुझे अव्यावहारिक और समझसे परे जान पड़ती हैं। इसलिए, मैं 'यंग इंडिया' के पृष्ठोंमें आपके विचारोंके लिए कोई गुंजाइश नहीं निकाल सकता।

आपने सर आशुतोष और दूसरे व्यक्तियोंसे जो प्रमाणपत्र प्राप्त किये हैं, उनका मुझपर कोई प्रभाव नहीं पड़ा है क्योंकि प्रमाणपत्रोंसे मुझे बड़ी अरुचि है इतनी कि मेरे पास जो भी प्रमाणपत्र थे, सबको मैंने नष्ट कर दिया है। और चूंकि मुझे ऐसा लगता है कि मुझमें किसी योजनाके विषयमें उसके गुण-दोषोंके आधारपर राय बनानेकी क्षमता है, इसलिए प्रमाणपत्र कभी-कभी मेरे लिए बाधा-रूप साबित होते हैं और निरर्थक तो बराबर ही।

१. देखिए "पत्र : जे० डब्ल्यू० पेटावेलको", २३-६-१९२७।

अगर आप चाहते हैं कि मैं आपकी योजनामें रुचि लूँ तो उसके लिए दो बातें जरूरी हैं। मुझे ठोस कार्यके रूपमें कुछ करके दिखाइए और जिस प्रकार मैं अपनी योजनाके सम्बन्धमें यह सिद्ध कर रहा हूँ कि इसे चाहे जितने बड़े पैमानेपर लागू किया जा सकता है और तब भी इससे प्राप्त होनेवाले लाभकी दर वही रहेगी जो इसके छोटे पैमानेपर चलाये जाते समय थी, उसी प्रकार आप भी अपनी योजनाके सम्बन्धमें व्यवहारतः यह बात सिद्ध करके दिखाइए। मैं इस समय अपनी योजनाको १,५०० गाँवोंमें लागू करके दिखा रहा हूँ और मैं यही कामना कर सकता हूँ कि यह सात लाख गाँवोंमें लागू हो सके, लेकिन तब भी लाभकी औसत दर वही रहेगी। आपको मैं इस बातका ध्यान रखनेकी सलाह दूँगा कि जब आप मुझसे पत्र-व्यवहार करते हैं तो उसका मतलब एक ऐसे व्यावहारिक व्यक्तिसे पत्र-व्यवहार करना होता है जो थोथी और बड़ी-बड़ी कल्पनाओंसे बहुत भय खाता है, और जो कागजपर लिखी या छपी सुन्दर और भड़कीली चीजोंसे चमत्कृत होनेवाला नहीं है।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी (एस० एन० १४१८१) की फोटो-नकलसे।

१३१. पत्र : आश्रमकी बहनोंको

मौनवार, आषाढ़ सुदी १३ [१२ जुलाई, १९२७][1]

बहनो,

तुम्हारा पत्र मिला।

इस प्रदर्शनीमें बहनोंने कितना और कैसा भाग लिया, यह तुम मणिबहनसे सुन लेना। मैं तो इतना लिख देता हूँ कि एक बहन हिसाब रखनेमें कुशल थी, कुछ अन्य खादी बेचनेमें उतनी ही कुशल निकली। उन्होंने सोने-चाँदीके तमगे प्राप्त किये हैं। एक अंधी बहन बहुत बढ़िया सूत कात रही थी और उसने सबका ध्यान आकर्षित किया था। एक बहन बहुत बारीक और बलदार कातनेमें पहले नम्बर आई और उसने सोनेका पदक पाया। मणिबहनने आश्रमकी लाज रखी। उसकी पिंजाई सबकी नजर खींचती थी।

यहाँ हिन्दी सम्मेलन भी था। उसमें भी एक बहनने प्रथम पद प्राप्त किया। कुछ बहनें हिन्दी सीखनेका अच्छा प्रयत्न कर रही हैं।

यह सारी जागृति इस प्रदेशमें बहुत सुन्दर ढंगपर हो रही है। मैं तुम्हें लिख ही चुका हूँ न कि दो-तीन बहनें शामकी प्रार्थनाके समय भी मधुर भजन गाती हैं?

१. बंगलोरमें आयोजित खादी-प्रदर्शनी तथा हिन्दी सम्मेलनके उल्लेखके आधारपर इस शीर्षकका वर्ष निर्धारित किया गया है।

शनिवारके दिन एक बहन मुझे वीणा सुना गईं। वे स्वयं भजन बनाती हैं। कहा जाता है कि वीणा बजानेमें वे बड़ी प्रवीण हैं।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ३६५७) की फोटो-नकलसे।

१३२. भाषण: मैसूरके विद्यार्थियोंके समक्ष, बंगलोरमें

[१२ जुलाई, १९२७][1]

भाइयो,

भगवान्‌का शुक्र है कि मैं आपके सामने धीमे स्वरमें ही सही, लेकिन बोल पा रहा हूँ, और वह भी हिन्दीमें। आपको शायद मालूम होगा कि मैं अपने मित्रोंके साथ हिन्दी और अपनी मातृभाषा गुजरातीमें ही बात करता हूँ। लेकिन मैं जानता हूँ कि आप लोग स्कूलों अथवा कॉलेजोंमें और अपने मित्रों और विद्यार्थियोंसे मिलनेपर सिर्फ अंग्रेजीमें ही बातचीत करते हैं। आपने इसकी आदत बना ली है। मेरे विचारसे यह एक बुरी आदत है। आप ज्ञान-प्राप्ति अथवा जीविका अर्जित करनेके लिए अंग्रेजी सीखें, इसपर मुझे कोई आपत्ति नहीं है। लेकिन आप अंग्रेजीको इतना ज्यादा महत्त्व दें और अपनी राष्ट्रभाषा हिन्दीको इतना कम, इस बातपर मुझे जरूर आपत्ति है। मेरे विचारसे अपने मित्रों अथवा सम्बन्धियोंसे बातचीत करते समय आपका अपनी राष्ट्र-भाषा अथवा मातृभाषाको छोड़ किसी अन्य भाषाका प्रयोग करना उचित नहीं। आप अपनी भाषासे प्रेम करें।

मैं अपने विद्यार्थी मित्रोंसे एक अनुरोध करना चाहूँगा और वह यह कि आप जिस लगनसे अंग्रेजी सीखते हैं उसी लगनसे हिन्दी सीखें और विदेशी भाषाकी चकाचौंध-से चौंधिया न जायें। आपने मुझे यह मानपत्र हिन्दी भाषामें देवनागरी लिपिमें छपवाकर भेंट किया है, इसके लिए मैं आपका आभारी हूँ। देशके दरिद्रनारायणकी सेवाके अर्थ आपने मुझे एक थैली भेंट की, इसके लिए मैं आप सबका शुक्रगुजार हूँ। आपने मेरे प्रति अपने प्रेमके कारण इतना-कुछ इकट्ठा किया है, लेकिन इससे मुझे कोई आश्चर्य नहीं होता। मैं जहाँ-कहीं भी जाता हूँ, वहाँ मुझे विद्यार्थियोंसे ऐसा ही सच्चा प्रेम और सेवा प्राप्त होती है। यह आपका धर्म है, यह आपका कर्त्तव्य है। मैं आपसे पूछता हूँ कि आप इस कोषके लिए चन्दा क्यों न दें? आप अपनी पढ़ाईपर कितना पैसा व्यय कर रहे हैं और सारे हिन्दुस्तानमें कितने शहर हैं तथा वहाँ कितना पैसा यों ही बरबाद किया जाता है? लेकिन क्या आप जानते हैं कि जो शहरोंमें रहते हैं, उन्हें पैसा कहाँसे मिलता है? उनके पास यह पैसा गाँवोंसे आता है, जहाँ केवल दुःख ही दुःख है और जहाँ दरिद्र-

१. २१-७-१९२७ के **यंग इंडिया** तथा १३-७-१९२७ के **बॉम्बे क्रॉनिकल**से।

नारायण बसते हैं। आपकी पढाईपर जो पैसा खर्च होता है, वह सब इन्हीं गाँवोंसे आता है और आपकी शिक्षाका स्रोत दुःखमें डूबे हुए यही गाँव हैं। देशका २५ करोड़ रुपया शराबखोरी-जैसे बुरे व्यसनपर बरबाद होता है और क्या आप लोग, जो शहरोंमें रहते हैं, गाँवोंमें रहनेवाले अपने गरीब भाई-बहनोंके लिए दो पैसे भी नहीं दे सकते? दो पैसे देकर उतना-भर प्रायश्चित्त तो कीजिए। आज मैं आप सबको विदेशी कपड़े और टोपियाँ पहने देख रहा हूँ। हमारी सब बहनें भी विदेशी वस्त्र पहने हुए हैं। यह न कहिए कि ये वस्त्र मैसूरके बने हुए हैं, यह न भूलें कि ये वस्त्र विदेशी सूतके बने हुए हैं। आज मैं आपसे यह बात साफ-साफ कह दूं। आप खादी-भण्डारोंमें जायें और वहाँ जाकर चार-पाँच आनेमें खादीकी टोपी खरीदें, इन महँगी टोपियोंको त्याग दें तथा खादी खरीदकर पहनें। ऐसा करके आप देशकी सच्ची सेवा करेंगे।

आज हम विद्यार्थी शब्दके सही अर्थको भूल गये हैं। प्राचीन कालमें जब सभी इसके अर्थको समझते थे तब विद्यार्थी शब्दसे ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणीका बोध होता था और इस शब्दका अर्थ ब्रह्मज्ञान रखनेवाला होता था। यह मुक्तिका परिचायक था, हमारी अपनी मुक्तिका; देशकी मुक्ति अथवा स्वतन्त्रताका। आज मैं आपसे पूछता हूँ कि आपमें से कितने विद्यार्थी ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणी हैं? क्या आप इन्द्रिय-निग्रहके बारेमें, भक्ति और सेवाके सच्चे मार्गपर चलनेके लिए मनको प्रशिक्षित करनेके सम्बन्धमें कुछ जानते हैं? आप जानते हैं हमारे पूर्वज क्या करते थे? यदि आप लोग सच्चे ब्रह्मचारीके कर्त्तव्योंसे परिचित हो जायें, यदि आप सच्चे विद्यार्थी बन जायें तो आज देशमें जो दुःख-दर्द दिखाई देता है, वह न रहे। हमारे प्राचीन ऋषि-मुनि, धर्मप्राण मौलवी और ईसाई सन्त हमारे लिए सच्चे ज्ञानका अक्षय और अमूल्य भण्डार छोड़ गये हैं, जिसका उपयोग करके हम दूसरोंके लिए उपयोगी हो सकते हैं और जिसका अवगाहन हमारे चित्तको प्रतिपल प्रभु-चिन्तनमें रत रखेगा। यदि हम सच्ची मुक्तिकी इच्छा करते हैं तो हमें अपनी स्थूल इच्छाओंका परित्याग कर देना चाहिए। मैं यह नहीं कहता कि आपको युवावस्थामें ही सब प्रकारके मनोरंजन और आनन्दका परित्याग कर योगका अभ्यास करना चाहिए। लेकिन मैं चाहता हूँ कि आप अपने कर्त्तव्यको पहचानें और वही करें जो सच्चे विद्यार्थियोंको और ब्रह्मज्ञानके अभ्यासीको शोभा देता है। आजके नवयुवकोंका स्वास्थ्य वैसा नहीं है, जैसा कि प्राचीन ब्रह्मचारियोंका हुआ करता था; आज वे थियेटर देखने जाते हैं, बुरी चीजें खाते और पीते हैं, इन्द्रियोंको तुष्ट करनेमें गर्वका अनुभव करते हैं। यदि आपका शरीर स्वस्थ नहीं है तो इस बातका मनपर भी प्रभाव होगा, और जब आपका मन स्वस्थ नहीं होगा तो आपको ईश्वरका और अपने कर्त्तव्यका ज्ञान भी नहीं हो सकता। फिर आपमें इन्द्रिय-निग्रह करनेकी इच्छा-शक्ति नहीं रह जायेगी, आप अपना बल-वीर्य खो बैठेंगे तथा दुर्बल एवं शिथिल हो जायेंगे। मैंने सुना है कि कुछ विद्यार्थी दिनमें सात-आठ बार कॉफी पीते हैं। मैं अपने नौजवान मित्रोंको याद दिलाना चाहूँगा कि मैं भी कभी विद्यार्थी था। मैं आपसे पूछता हूँ जब आपको प्यास लगे तब आप क्यों न शुद्ध जल अथवा दूध पियें और भूख लगनेपर ठीक खाना खायें। आप तरह-तरहकी

चीजें खा-पीकर अपने शरीरमें विष क्यों फैलाते हैं? मैं आशा करता हूँ कि आज मैं आपसे जो-कुछ कह रहा हूँ, आप उसके मर्मको पहचानेंगे। आप ब्रह्मचर्यके आदर्शपर विचार करें, बुद्धिपूर्वक उसका मनन करें तथा दृढ़ विश्वासके साथ उसपर आचरण करें। 'भगवद्गीता' में यज्ञपर जोर दिया गया है, 'कुरान' और 'बाइबिल' में भी यही बातें कही गई हैं; अर्थात् जो मनुष्य किसी प्रकारका यज्ञ-त्याग नहीं करता वह सच्चे अर्थोंमें मनुष्य नहीं है। आप इस यज्ञ शब्दपर गौर करें और हमारे देशकी वर्तमान स्थितिको ध्यानमें रखकर उसकी आवश्यकताके विषयमें विचार करें। मैं भगवान्से प्रार्थना करता हूँ कि वह आपको 'यज्ञ' शब्दके अर्थको समझने और स्वयं यज्ञ करने, त्याग करनेके लिए बल और बुद्धि दे। मेरी भगवान्से प्रार्थना है कि वह आपको देशके उन गरीब लोगोंके विषयमें सोचनेकी बुद्धि दे जो इन नगरोंसे बहुत दूर बसे हुए गाँवोंमें रहते हैं और जिनके खून-पसीनेके बलपर, जिनके त्याग-बलिदानके बलपर आप इन नगरोंका निर्माण कर रहे हैं। वास्तवमें देखिए तो इन नगरोंके निर्माणके पीछे उनके और उनके परिवारों तथा बच्चोंके दुःख-दैन्यकी गाथा छिपी हुई है। आप प्रतिदिन आधे घंटे चरखा चलाते और अपना कपड़ा बुनते हुए ईश्वरका ध्यान करें। आप इन सब बातोंपर विचार करें और जब आप प्रतिदिन आधे घंटे ईश्वरका चिन्तन करने लगेंगे तब ईश्वरसे मेरी यही प्रार्थना है कि वह आपको अपने देशके गरीबोंका उद्धार किस तरह किया जा सकता है, यह बात समझनेकी बुद्धि दे। मैं आज आपसे बस इतना ही कहना चाहता हूँ।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, १३-७-१९२७

१३३. भाषण: इंडियन इंस्टिट्यूट ऑफ साइन्समें

बंगलोर
[१२ जुलाई, १९२७][1]

मैं सोच रहा था कि यहाँ कहाँ आ गया? मुझ-जैसे देहातीका, जिसकी वाणी यह सब देखकर विस्मय और आश्चर्यसे मूक हो जाये, यहाँ क्या काम हो सकता है? मैं ज्यादा-कुछ कहनेकी मनःस्थितिमें नहीं हूँ। मैं सिर्फ इतना ही कह सकता हूँ कि आप यहाँ जो बड़ी-बड़ी प्रयोगशालाएँ और बिजलीके वैज्ञानिक उपकरण देख रहे हैं, वे सब करोड़ों सामान्य जनोंके इच्छा और अनिच्छासे दिये गये श्रमका फल है। क्योंकि टाटाने जो तीस लाख रुपये दिये वे कहीं बाहरसे नहीं आये थे, और मैसूर द्वारा दिया गया सारा अनुदान भी कहीं और से नहीं बेगारसे ही प्राप्त हुआ था। अगर हम ग्रामीणोंके पास जाकर उन्हें समझायें कि हम उनके पैसेका उपयोग किस तरह उन बड़ी-बड़ी इमारतों और कारखानोंको खड़ा करनेमें कर रहे हैं जिनसे उन्हें तो नहीं

१. १२-७-१९२७के हिन्दूसे।

लेकिन शायद उनकी भावी पीढ़ियोंको लाभ हो सकता है, तो वे इस बातको नहीं समझेंगे। वे इस बातपर कोई ध्यान ही नही देंगे। लेकिन, हम उन्हे यह सब समझानेकी कोशिश भी नही करते, उन्हें कभी कोई महत्त्व ही नहीं देते और उनसे जो मिलता है उसे अपना हक मानकर उनसे ले लेते है तथा यह भूल जाते है कि "जिसका प्रतिनिधित्व नही है उसपर कर भी नही लगाया जा सकता", यह सिद्धान्त उनपर भी लागू होता है। यदि आप सचमुच इस सिद्धान्तको उनपर लागू करें और यह महसूस करें कि उनके प्रति भी आपकी जवाबदेही है तो आपको इन तमाम उपकरणोंका एक और भी पहलू नज़र आयेगा। तब आपके हृदयमें उनके लिए विशाल स्थान होगा, वह उनके प्रति सहानुभूतिकी भावनासे भरा हुआ होगा, और यदि आप उस भावनाको स्वच्छ और विमल रखेंगे तो आप अपने ज्ञानका उपयोग उन करोड़ों लोगोके कल्याणके लिए करेंगे जिनके श्रमके बलपर आप शिक्षा प्राप्त करते है। आपकी दी हुई थैलीका उपयोग मै दरिद्रनारायणकी सेवाके लिए करूँगा। असली दरिद्र-नारायणको तो मैंने भी नही देखा है, उसके बारेमें कल्पना ही करता हूँ। जिन कतैयोंको यह पैसा मिलेगा, वे भी असली दरिद्रनारायण नहीं हैं। असली दरिद्रनारायण तो किसी दूरस्थ गाँवके अज्ञात कोनेमें रहता है, जहाँ अबतक हम पहुँच नही पाये है। आपके प्राध्यापकने मुझे बताया कि कुछ-एक रसायनोंके गुण-धर्मका पता लगानेके लिए वर्षों प्रयोग करने पड़ेंगे। लेकिन, इन गाँवोंका अनुसन्धान कौन करेगा? जिस प्रकार आपकी प्रयोगशालाओमें कुछ प्रयोग चौबीसों घंटे चलते रहते है, उसी प्रकार करोड़ों गरीब मानवोके कल्याणके लिए आपके हृदयको निरन्तर आकुल रहना चाहिए।

मै साधारण जनोंकी अपेक्षा आपसे बहुत अधिककी अपेक्षा रखता हूँ। आपने जो थोड़ा-बहुत दिया है उसीसे सन्तोष मानकर ऐसा न कहिए कि 'हम तो जितना कर सकते थे, कर चुके, अब चलें टेनिस-बिलियर्ड खेलें।' मै कहता हूँ कि बिलियर्ड-कक्ष और टेनिसके मैदानमें उस ऋणकी चिन्ता कीजिए जो दिन-दिन आपपर चढ़ता जा रहा है। लेकिन, भला भिखारीको पसन्द-नापसन्द करनेका क्या अधिकार है? आपने जो-कुछ दिया उसके लिए मै आपको धन्यवाद देता हूँ। मैंने आपसे जो प्रार्थना की है, उसपर विचार कीजिए और अमल कीजिए। गरीब स्त्रियाँ आपके लिए जो कपड़े तैयार करती है उन्हें पहननेसे न डरें, आप इस भयको भी त्याग दें कि अगर आप खादी पहनेंगे तो आपके मालिक आपको नौकरीसे निकाल देंगे। मै चाहता हूँ कि आप सचमुचमें मर्द बनें और अपने विश्वासोंको लेकर सारी दुनियासे जूझनेके लिए अडिग भावसे खड़े हों। करोड़ों मूक मानवोकी सेवाके लिए आपके मनमें जो उत्साह है, उसे धनकी लालसाके कारण मन्द न पड़ने दें। मै सच कहता हूँ कि आप बेतारके तारके इस वैज्ञानिक उपकरणकी अपेक्षा कही बड़े उपकरणका आविष्कार कर सकते हैं, जो आपके हृदयको करोड़ो लोगोके हृदयोसे जोड़ेगा। उसके लिए बाह्य नहीं बल्कि, आन्तरिक अनुसन्धानकी आवश्यकता है, और सच तो यह है कि अगर आप बाह्य अनुसन्धानके साथ-साथ आन्तरिक अनुसन्धान भी नही करेंगे तो सारा बाह्य अनुसन्धान निरर्थक साबित होगा। आप जो भी आविष्कार करें, उन सबका उद्देश्य

१३५. पत्र : मीराबहनको

१३ जुलाई, १९२७

चि० मीरा,

मैं अभी-अभी एक जगह जानेवाला था कि मुझे तुम्हारा पत्र और तार मिला। तो तुम शनिवारको रवाना हो रही हो। तुमने गंगूके बारेमें जो कहा है, उसे मैंने ध्यानमें रख लिया है। भगवान् तुम्हारी सहायता करे।

सस्नेह,

बापू

अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ५२४९) से।
सौजन्य . मीराबहन

१३६. पत्र : जे० जेड० हॉजको

स्थायी पता : साबरमती आश्रम
१३ जुलाई, १९२७

प्रिय श्री हॉज,

एडिनबरासे लिखा आपका पत्र[1] पाकर बड़ी खुशी हुई। मेरे वे नन्हें-मुन्ने दोस्त अब बड़े हो गये हैं और अच्छी तरहसे हैं, यह जानकर मन प्रसन्न हुआ।

आपने जिन कागजातका जिक्र किया है, सर डैनियल हैमिल्टनसे जब वे मुझे मिल जायेंगे तब मैं उन्हें ध्यानसे पढ़कर सर हैमिल्टन डैनियलको अपने निष्कर्षोंसे अवगत करा दूँगा।

मेरे स्वास्थ्यमें काफी सुधार हो रहा है। श्रीमती हॉजसे मेरा नमस्कार कहें।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत जे० जेड० हॉज,
मार्फत/निसबेस
३१, बारेण्डर पार्क टेरेस
एडिनबरा

अंग्रेजी (एस० एन० १२५०९) की फोटो-नकलसे।

१. १ जून, १९२७का पत्र। इसमें सर डैनियल हैमिल्टनका परिचय देते हुए जे० जेड० हॉजने गांधीजीसे अनुरोध किया था कि वे भारतमें सहकारिता-आन्दोलनके प्रसारमें सर डैनियलकी मदद करें।

१३७. पत्र : शापुरजी सकलातवालाको

कुमार पार्क, बंगलोर
१३ जुलाई, १९२७

प्रिय मित्र,

भरूचाकी मार्फत आपका गत १६ जूनका पत्र मिला। आपने अपने पत्रमें जिस विचारका प्रतिपादन किया है, उसे मैं समझता हूँ और वह मुझे अच्छा भी लगा। टाटाके साथ आपके झगड़ेका निवटारा करानेमें[1] यदि मैं आपकी कुछ सहायता कर सकूँ तो यह मेरे लिए प्रसन्नताकी बात होगी। लेकिन मैं अपनी मर्यादाओंको जानता हूँ और मैं चाहूँगा कि आप भी उन्हें समझें। मैं सिर्फ इतना ही कर सकता हूँ कि जो-कुछ करूँ वह पण्डितजीके द्वारा करूँ और वह मैं कर रहा हूँ।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत शापुरजी सकलातवाला, एम० पी०
हाउस ऑफ कामन्स
लन्दन, एस० डब्ल्यू० १

अंग्रेजी (एस० एन० १२५३२) की फोटो-नकलसे।

१३८. पत्र : डी० सी० बोसको

कुमार पार्क, बंगलोर
१३ जुलाई, १९२७

प्रिय मित्र,

इस बातके लिए मैं बहुत शर्मिंदा हूँ कि अभीतक आपके पिछले सालके ३० जून-के पत्रका उत्तर नहीं दे पाया हूँ। फिर भी, आपको समय-समयपर यह तो सूचित करता ही रहा हूँ कि आपका पत्र मिल गया है और मुझे उसका ध्यान है। इस देरीके लिए मैं अपने सहायकोंको दोषी नहीं ठहराना चाहता। कुछ देर तो अनिवार्य थी और कुछ कामोंको टाला जा सकता था, मगर पत्रके इधर-उधर हो जानेसे ऐसा न किया जा सका। फिर भी, मैं समझता हूँ उत्तर देनेमें अभी बहुत देर नहीं हुई है।

आपके अंग्रेज मित्रने आपको जो सलाह दी है और जिसे आपने पत्रके अन्तमें उद्धृत किया है, उससे मुझे सहमत हो सकना चाहिए। यदि सचमुच कोई और उपाय

१. सकलातवाला लन्दनमें टाटा पेढ़ीके एक पदाधिकारी थे। उन्हें त्यागपत्र देनेको मजबूर किया गया था। यहाँ तात्पर्य उसी मामलेसे है।

न था, तो मुझे पत्र लिखकर आपने निश्चय ही कोई गलती नही की है। कारण यह है कि मेरे सार्वजनिक कार्योमें एक यह भी है कि लोगोंकी उस तरहकी कठिनाइयोको, जिस तरहकी कठिनाइयोकी आपने चर्चाकी है, यदि हल न कर सकूँ तो कमसे-कम उनमें उनका हिस्सेदार तो अवश्य बनूँ। आपने अंग्रेजोके गुणोके बारेमें जो-कुछ कहा है, मै उस सबसे सहमत हो सकता हूँ, बल्कि उनके बहुतसे ऐसे गुण भी बता सकता हूँ जिनको चर्चा आपने अपने पत्रमें नही की। लेकिन, पिछले सात वर्षोसे मुझे सोचने-विचारनेके लिए जो काफी मसाला मिला है, उसके बावजूद उनकी शासन-प्रणालीके सम्बन्धमें मेरी धारणा बदली नही है, अपितु और भी दृढ हो गई है। और आबकारी विभाग इस प्रणालीकी सबसे बड़ी बुराई है। इसलिए अगर इस विभागसे आपके बाहर निकलनेमें मै सहायक हो सकता हूँ तो आपका इसमें रहना मेरे मनको कभी गवारा नही हो सकता। आपका पत्र मुझे आपकी ओर खीचता है। मै आपको राष्ट्रीय सेवाके किसी विभागमें रखना चाहूँगा, यह सेवा कमोवेश मेरे ही नियन्त्रणमें है। और यदि आप कुछ विशेष अवकाश ले सकें तो मै चाहूँगा कि मै जहाँ-कही भी होऊँ वहाँ आकर आप मुझसे मिलें, ताकि मै आपको अपने सामने देख सकूँ और आपने अपने पत्रमें जिन मुद्दोंको उठाया है, उनपर बातचीत कर सकूँ। १५ अगस्ततक मै मैसूरमें हूँ और तबतक मेरा सदर मुकाम बंगलोर होगा। समय-समयपर मेरे बंगलोरसे बाहर जानेकी भी उम्मीद है, लेकिन मैसूर राज्यसे बाहर नही, और इसलिए मै जहाँ भी जाऊँगा, वहाँ बगलोरसे कुछ घंटोमें पहुँचा जा सकता है। बंगलोरमें मै जिस घरमें रह रहा हूँ उसके मालिक आपको बता देंगे कि मै कहाँ हूँ।

इस बीच, मै आपके एक प्रश्नका उत्तर अभी ही दे सकता हूँ। यदि आप सचमुच अपने अन्दर किसी ऐसी प्रेरणाका अनुभव करते है, जो आपके लिए दुर्निवार हो तो आपपर शादी करनेके लिए जितना भी दबाव डाला जाये, उसका प्रतिरोध करना आपके लिए न केवल उचित बल्कि कर्त्तव्य-रूप होगा। यदि आप अपनी वासनापर विजय पा सकें तो मुझे निश्चय है कि आप अपने परिवारके प्रति जो दायित्व महसूस करते है उनका तकाजा भी यही होगा कि आप शादी न करें।

यदि आप मुझसे मिलने आना चाहते हों तो एक बात याद रखिए कि यद्यपि अन्य सभी शर्तें पूरी हो जानेपर आपको अपने परिवारका भरण-पोषण करनेके लिए पर्याप्त मिल सकेगा, लेकिन आप इस स्थितिमें अवश्य हों कि आपको, जहाँ-कहीं जरूरत हो वहाँ नियुक्त किया जा सके, बल्कि यदि आपको ऐसा काम दिया जाये जिसमें यहाँ-वहाँ आते-जाते रहना पडे तो इसमें भी आपको कोई आपत्ति न हो। इसके अलावा अगर आप हिन्दी न जानते हों तो आपको वह भी सीखनी पड़ेगी।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत डी० सी० बोस,
५५, कार्नवालिस स्ट्रीट
कलकत्ता

अंग्रेजी (एस० एन० १२६०१) की फोटो-नकलसे।

१३९. पत्र : एस० रामनाथन्‌को

कुमार पार्क, बंगलोर
१३ जुलाई, १९२७

प्रिय रामनाथन्‌

शेरमहादेवी गुरुकुलवाले श्री महादेव अय्यर यहीं हैं। मुझे मालूम नही था कि आपका इस गुरुकुलसे कोई सरोकार है। लेकिन श्री महादेव अय्यरने मुझे बताया है कि आप इसमें बहुत दिलचस्पी रखते है। जब वी० वी० एस० अय्यर जीवित थे, उस समय अलग-अलग जातियोंके लोगोंके साथ बैठकर खानेके सवालपर जो वाद-विवाद चल रहा था उसके बारेमें उन्होंने मुझसे बातचीत की थी और मुझे लिखा भी था। महादेव अय्यरने श्री अय्यरकी मृत्युके बाद जो घटनाएँ हुई, उनको संक्षेपमें मुझे बताया। अब यदि आप मुझे यह बतायें कि आपका इस गुरुकुलके साथ क्या सम्बन्ध है और वह पक्ष जो महादेव अय्यरके कथनानुसार उनके अथवा गुरुकुलके विरुद्ध है, अब क्या चाहता है तो बड़ी कृपा होगी।

आशा है, आपका बुखार उतर गया होगा।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत एस० रामनाथन्‌
इरोड

अंग्रेजी (एस० एन० १२९३०) की माइक्रोफिल्मसे।

१४०. पत्र : मोतीलाल नेहरूको

कुमार पार्क, बंगलोर
१३ जुलाई, १९२७

प्रिय मोतीलालजी,

यह रहा 'कॉमरेड' सकलातवालाका उनकी विशेष शैलीमे लिखा एक पत्र। उन्होंने डाककी मुहर लगे पत्रकी जो अनुप्रति भेजी है, उससे तो मुझे लगता है कि नैतिक दृष्टिसे उनके दावेको बहुत बल मिलता है। मुझे और कुछ कहनेकी जरूरत नहीं; क्योंकि मैं जानता हूँ वे चाहे जैसी भी भाषाका प्रयोग करे, उनका दावा जिस हद-तक उचित है, उस हदतक उसे स्वीकार करानेकी कोशिश आप करेंगे ही।

मुझे जवाहरलालका एक और पत्र मिला है। उसमें कोई नई बात नही है।

हृदयसे आपका,

पण्डित मोतीलाल नेहरू
आनन्द भवन, इलाहाबाद

अंग्रेजी (एस० एन० १४१८३) की फोटो-नकलसे।

१४१. एक पत्र

आषाढ़ शुक्ल १४ [१३ जुलाई, १९२७][1]

नामके महीमाके बारेमें तुलसीदासने कुछ भी कहनेका बाकी नहिं रखा है। द्वादश मंत्र,[2] अष्टाक्षर[3] इ० सब इस मोहजालमें फसा हुआ मनुष्यके लीये शांतिप्रद है, और जिससे जिसको शांति मीले उस मंत्रपर निर्भर रहे। परंतु जिसको शांतिका अनुभव ही नहिं है और जो शांतिकी खोजमें है उसको तो अवश्य रामनाम पारस मणि बन सकता है। ईश्वरके सहस्र नाम कहे हैं उसका अर्थ यह है की उसके नाम अनन्त है, गुण अनन्त हैं। इसी कारण ईश्वर नामातीत और गुणातीत भी है। परन्तु देहधारीके लीये नामका सहारा अत्यावश्यक है और इस युगमें मूढ और निरक्षर भी रामनाम रूपी एकाक्षर मंत्रका सहारा ले सकता है। वस्तुतः राम उच्चारणमें एकाक्षर ही है और ओंकार और राममें कोई फरक नहिं है। परंतु नाम महीमा बुद्धिवाद से सिद्ध नहिं हो सकता है। श्रद्धासे अनुभवसाध्य है।

मोहनदास गांधी

एस० एन० १२७९७ की फोटो-नकलसे।

१४२. भाषण: महिला-समाज, बंगलोरमें[4]

१३ जुलाई, १९२७

दरिद्रनारायण कभी सन्तुष्ट नही होता, और उसका उदर इतना बड़ा है कि आप जितना भी धन और आभूषण दे सकती हैं, वे सब उसमें समा जायेंगे। आभूषण तो स्त्री-धन है, और आप जैसे चाहें उनका उपयोग कर सकती हैं। आपके असली आभूषण आपके सद्गुण हैं। अपने आभूषणोमें से कुछ आभूषण देकर आप देशके गरीबोंकी सच्ची सेवा करेंगी।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, २१-७-१९२७

१. साबरमती संग्रहालयमें इस पत्रको १९२७ के पत्रोंके साथ रखा गया है।

२. ओम् नमो भगवते वासुदेवाय।

३. ओम् नमो नारायणाय।

४. महादेव देसाईके "साप्ताहिक पत्र" से।

१४३. भेंट: श्री और श्रीमती बियरमको[1]

[१४ जुलाई, १९२७के पूर्व]

गांधीजीके नये मिशनरी मित्रोंमें एक डेनिश दम्पती श्री और श्रीमती बियरम हैं। . . . जब ये लोग आये, उस समय गांधीजी चरखा चला रहे थे।

श्री बियरमने कहा: हमने प्रदर्शनीमें जो चरखे देखे थे, यह उनसे भिन्न है।

गांधीजी: हाँ, यह सफरी चरखा है। बन्द कर देनेपर यह दवाओंकी सन्दूकची-सा दिखने लगता है, और यह हमारे देशके गरीब लोगोंके लिए दवाओंकी सन्दूकची ही है।

प्रदर्शनीके सुखद अनुभव सुनानेके बाद बियरम अपने कालेजके विद्यार्थियोंके बारेमें बातें करने लगे। उन्होंने कुछ खेदके साथ गांधीजीको बताया कि "हमारे कालेजके विद्यार्थियोंकी पोशाक यूरोपीय ढंगकी है।"

गांधीजी: यह बहुत दुःखकी बात है कि ईसाई धर्मको विदेशी पोशाक और खान-पानके विदेशी तौर-तरीकोंके साथ संयुक्त कर दिया जाये।

श्रीमती बियरम: यह सचमुच दुःखकी बात है। लेकिन क्या आप ऐसा नहीं समझते कि परिवर्तनका शुभारम्भ हो गया है?

गांधीजी: हाँ, विचारोंमें परिवर्तन अवश्य आ रहा है, लेकिन उतना ही परिवर्तन आचरणमें नहीं आ रहा है।

इसी सन्दर्भमें उन्होंने कलकत्ता स्थित वाई० एम० सी० ए०के अपने मित्रोंके बारेमें कुछ निजी अनुभव सुनाये।

श्री बियरम: यदि मिशनरी लोग भारतमें टिके रहना चाहते हैं तो उनके कामका क्या रूप होना चाहिए, इस बारेमें क्या आप हमें कुछ बतायेंगे?

[गांधीजी:] हाँ, क्यों नहीं। उन्हें अपना रवैया बदलना होगा। आज वे लोगोंसे कहते हैं कि उनके लिए 'बाइबिल' और ईसाई धर्मको छोड़कर मुक्तिका और कोई मार्ग नहीं है। अन्य धर्मोंको तुच्छ बताना तथा अपने धर्मको मोक्षका एकमात्र मार्ग बताना उनकी आम रीति हो गई है। इस दृष्टिकोणमें आमूल परिवर्तन होना चाहिए। उन्हें लोगोंके सामने अपने असली रूपमें आना चाहिए। और हिन्दुओंको बेहतर हिन्दुओंके रूपमें और मुसलमानोंको बेहतर मुसलमानोंके रूपमें देखकर प्रसन्न होना चाहिए। उन्हें नींवसे काम शुरू करना चाहिए। उन्हें उनमें जो अच्छीसे-अच्छी बातें हैं उनको जानना चाहिए। वे उनके सामने जो चीजें रखें, वे उन बुनियादी गुणोंसे असंगत न हों। इस तरह उनका कार्य ज्यादा प्रभावकारी होगा और वे जो देंगे उसे लोग बिना किसी सन्देह और विरोधी भावनाके ग्रहण कर लेंगे। संक्षेपमें,

१. महादेव देसाईके "साप्ताहिक पत्र" से।

वे लोगोंके पास ज्ञाता और उद्धारकके रूपमें नहीं, बल्कि उनके समाजकी ही एक इकाईके रूपमें जायें, उन्हें अनुगृहीत करनेके लिए नहीं, वरन् उनकी सेवा करने और उनके बीच काम करनेकी भावना लेकर जायें।

श्री बियरम: धन्यवाद। हम अगले वर्ष डेनमार्क जा रहे हैं और अपने साथ आपसे कोई सन्देश ले जाना चाहते हैं।

[गांधीजी:] जो बाहर दिखाई देता है वह वस्तुतः अन्तरकी अभिव्यक्ति होता है, और यदि डेनमार्कके लोग सचमुच हमारी सेवा करना चाहते हैं तो उन्हें चाहिए कि वे हमें सहकारी दुग्धालय और पशुपालनका जीवनदायी व्यवसाय सिखायें।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १४-७-१९२७

१४४. पिंजरापोलोंका सुधार

स्वास्थ्य-लाभके लिए अपने बंगलोर निवासके दौरान इम्पीरियल ऐनिमल हस्बेंडरी ऐंड डेयरी इंस्टिट्यूट (राजकीय पशुपालन व दुग्धशाला संस्थान) को देखनेके लिए मैं बराबर जाता रहा हूँ और वहाँ, जिसे नियमित सबक कहा जा सकता है, वैसा सबक लेता रहा हूँ। राजकीय दुग्धालय विशेषज्ञ और इस संस्थानके प्रधान श्री विलियम स्मिथ तथा उनके सहायकोंने मुझे संस्थानकी कार्यप्रणाली तथा इसके अलग-अलग विभागोंको बहुत अच्छी तरह दिखाया है। मुझे विश्वास है कि इस प्रकार मैं जो भी ज्ञान अर्जित कर पाया हूँ उसका उपयोग मैं अखिल भारतीय गो-रक्षा संघकी ओरसे सत्याग्रह आश्रममें किये जा रहे दुग्ध-व्यवसाय सम्बन्धी प्रयोगोंके संचालनमें करूँगा। श्री स्मिथके साथ मैंने इस विषयपर कई बार बातचीत की और फलत. उनसे पिंजरापोलोंके प्रबन्ध और हमारे गाँवोंमें पशु-पालनके तरीकोंके बारेमें टिप्पणियाँ तैयार कर देनेका अनुरोध किया। उन्होंने मेरा अनुरोध तत्काल स्वीकार कर लिया। उनकी दो मूल्यवान टिप्पणियाँ मुझे मिल चुकी हैं। नीचे मैं पिंजरापोलोंके विषयमें उनकी टिप्पणी दे रहा हूँ:

> **मौजूदा पिंजरापोलोंमें से कुछ-एकका प्रबन्ध, जिन्हें किसी हदतक स्थायी और सुनिश्चित आमदनी होती है, काफी अच्छा है। उनमें थोड़े-से ऐसे पशुओंको भी जो बूढ़े हो जानेके कारण आर्थिक दृष्टिसे लाभदायक नहीं रह गये हैं, आरामके साथ और काफी अच्छी तरह रखा जाता है। लेकिन, इनमें से बहुत-सी संस्थाओंके लिए यह एक आम बात है कि जब-जब व्यापारमें मन्दी आ जाती है और चन्दा भी देरसे मिलता है तब यहाँ पशुओंको फाकेकी हालतमें रखा जाता है। निश्चय ही इससे उन्हें बहुत कष्ट होता होगा। और अन्तमें वे भूखसे दम तोड़ देते होंगे। ऐसे मामलोंमें गोशाला उनके लिए शरण-स्थल न होकर वध-स्थल बन जाती है, और वहाँ वधका तरीका होता है भूखसे तड़पा-**

तड़पाकर निर्ममतापूर्वक मारना। मैंने कमसे-कम छः गोशालाओंमें पशुओंको इस तरह भूखों मरते देखा है। इसलिए मौजूदा पिंजरापोलोंके सम्बन्धमें सबसे पहले ध्यान रखने योग्य बात यह है कि वे किसी भी हालतमें उससे अधिक पशुओंको आश्रय न दें, जितनोंको वे स्वाभाविक रूपसे मर जानेतक ठीक तरहसे खिला-पिला सकें, अच्छी तरह रख सकें, तथा जितने पशुओंकी वे ठीक देख-भाल कर सकें।

जिन पिंजरापोलोंकी सुनिश्चित आय हो और जिन्हें पूंजी मिल सकती है, ऐसे सभी पिंजरापोलोंको, मेरे विचारसे, तीन विभागोंमें बांट देना चाहिए और इन सबका प्रबन्ध किसी ऐसे व्यक्तिके हाथमें हो, जिसने पशुपालन और दुग्ध-व्यवसायका अच्छा प्रशिक्षण प्राप्त किया हो।

१. एक विभाग तो ऐसा हो, जहाँ बूढ़े और आर्थिक दृष्टिसे अनुपयोगी पशुओंको — इनमें भैंसे शामिल नहीं हैं — तबतक अच्छी तरह खिलाया-पिलाया या रखा जाये जबतक कि वे स्वाभाविक मौत नहीं मर जाते।

२. दूसरा हो दुग्धालय विभाग, जहाँ कसाईखानोंसे बचानेके लिए पिंजरापोलोंमें भेजी गई बछड़े देनेकी क्षमता रखनेवाली गायों तथा बछड़ों और दूध देनेवाली अन्य सभी गायोंको व्यापारिक दृष्टिसे चलाये जानेवाले दुग्धालयोंके पशुधनके रूपमें अच्छी तरह खिलाया-पिलाया और रखा जाये तथा उनका दूध निकाला जाये। वहाँ किस गायने कब कितना दूध दिया, इसका हिसाब सावधानीसे रखना चाहिए और अधिकसे-अधिक मुनाफेपर ही दूध बेचना चाहिए। इन गायोंके लिए बहुत अच्छी नस्लके साँड़को उपयोगमें लाया जाना चाहिए और सभी बछड़ोंको अच्छी तरहसे पालना चाहिए। जो बछड़े गोवंश-वृद्धिके लिए अच्छे साँड़ होने लायक न हों उनको बधिया कर देना चाहिए और जो अच्छे साँड़ बन सकते हों उन्हें साँड़ विभागमें भेज देना चाहिए अथवा गाँवोंको दे देना चाहिए। सब बछियोंको पाल-पोसकर दूध और बछड़े देनेवाली गायें बनाना चाहिए। जब इस विभागमें गायों और बैलोंकी संख्या इतनी ज्यादा हो जाये कि पिंजरापोलके लिए उन्हें रखना मुश्किल हो जाये तो उन्हें अच्छे हिन्दू मालिकोंके हाथों इस शर्तपर बेच देना चाहिए कि जब वे इतने बूढ़े हो जायें कि दूध देने और काम करनेके योग्य न रह जायें तब वे लोग उन्हें पिंजरापोलमें वापस भेज दें।

३. तीसरे विभागमें अच्छी नस्लके अच्छेसे-अच्छे साँड़ोंको रखना चाहिए, जिनका उपयोग उस इलाकेके पशु-पालक लोग कर सकें। कुशल प्रबन्धक जिन गायोंके लिए पिंजरापोलके इन साँड़ोंका उपयोग ठीक मानें, उन गायोंके लिए इनका उपयोग मुफ्त करने दिया जा सकता है। किसी गायके लिए जब भी पिंजरापोलके किसी साँड़का उपयोग किया जाये तो उसका विवरण दर्ज कर

लेनेकी सावधानी बरतनी चाहिए। यह विभाग अपने इलाकेके सभी अनुपयुक्त पशुओंको मुफ्त बधिया करनेका भी काम अपने हाथोंमें ले सकता है।

भैंसोंकी नस्लको सुधारनेके लिए कोई खास कदम उठानेकी आवश्यकता नहीं है। भारत किसी भी ऐसे ढोरको नहीं रख सकता, जिसमें दोनों गुण न हों अर्थात् मादा दूध दे और नर हल तथा गाड़ी खींचे और बोझा उठाये। मोटे तौरपर देखें तो भैंसा खेत जोतने या गाड़ी खींचनेके लिए उपयुक्त जानवर नहीं है। फलतः जबतक वंश-वृद्धिके लिए आवश्यक भैंसोंको छोड़कर शेषको जन्म लेते ही मार नहीं डाला जाये तबतक ये देशपर भारस्वरूप बने रहेंगे। भारतके अधिकांश लोग किसी भी पशुको मारना पसन्द नहीं करते; और जो भी हो, भैंसोंका पालन करना और उनके मांसके लिए उनको मारना आर्थिक दृष्टिसे कोई लाभदायक बात नहीं है, क्योंकि भारतमें इस मांसकी कीमत लागत मूल्यसे कहीं कम है।

भारतमें भैंसोंके होने और उनके बढ़नेका कारण गायोंसे कम दूध मिलना है। इसलिए पशुपालनके लिए किये जानेवाले हर तरहके प्रचारका उद्देश्य सभी नस्लोंकी गायोंकी दूध देनेकी क्षमतामें इतनी वृद्धि करना हो कि वे केवल उतना ही दूध न दें जिसे पीकर उनके बछड़े स्वस्थ और मजबूत हों, बल्कि इतना अधिक दें कि उससे उन्हें खिलाने-पिलानेका भी खर्च निकल आये। जब हम इस स्थितिको प्राप्त कर लेंगे तब भैंसोंकी कोई आवश्यकता नहीं रह जायेगी; और उनकी नस्ल आर्थिक कारणोंसे अपने आप समाप्त हो जायेगी। भारतके कई भागोंमें आज यह स्थिति है कि किसान बैल पानेके लिए दो-तीन गायें रखता है और अपनी जरूरतके घी और दूधके लिए एक या दो भैंसें रखता है; किन्तु यह स्थिति ज्यादा दिनोंतक नहीं चल सकती। यह बहुत महँगा पड़ता है और कोई कारण नहीं है कि इस समय बैलोंके लिए जो गायें रखी जाती है वही भविष्यमें इतना दूध क्यों न दें जिसे उनके बछड़े भी पी सकें और जिससे किसानोंकी दूध और घीकी भी आवश्यकता पूरी हो जाये। मांसकी दृष्टिसे हमारे पशुओंकी कोई कीमत नहीं है अथवा बहुत कम है, और हम बैलोंके लिए गायें और दूधके लिए भैंसें नहीं रख सकते। गाय अकेले ही दोनों काम कर सकती है और उसे करना भी चाहिए। इन्हीं कारणोंसे पिंजरापोल संस्थाओंको अपने आपको गायोंकी देखभाल करने और उनकी नस्ल सुधारनेके कामतक सीमित रखना चाहिए। हिन्दुस्तानमें खेती-बाड़ी गायोंकी बैल पैदा करनेकी क्षमतापर निर्भर है, भैंसपर नहीं; और देशके लोगोंका स्वास्थ्य गायोंके दूधसे ही ठीक रह सकता और सुधर सकता है। एक तरहसे देखा जाये तो इस देशमें भैंसोंके लिए कोई स्थान नहीं है। लेकिन वे इसलिए बीचमें आ पड़ी है कि गायें कम दूध देती हैं।

यदि सभी पिंजरापोल सचमुच ऐसे प्रशिक्षित व्यक्ति रखें जो उपर्युक्त ढंगसे पिंजरापोलोंकी देख-भाल कर सकें तो वे निःसन्देह, भारतके लिए बहुत काम कर सकेंगे।

पाठक देखेंगे कि श्री स्मिथने ऊपर जो-कुछ भी लिखा है, वह मौजूदा पिंजरापोलोंकी अपनी सही जानकारीके आधारपर ही लिखा है। उन्होंने मुझे बताया कि उन्होंने अनेक पिंजरापोलोंको देखा है। उनके विचारसे पिंजरापोलोंका उद्देश्य बूढे और अन्य प्रकारसे निकम्मे पशुओंको शरण देना ही नहीं, गोरक्षा करना और लोगोंको गोरक्षाके उपाय बताना भी होना चाहिए। इसके लिए उनके पास सभी साधनोंसे युक्त एक आदर्श दुग्धालय और साँड़ विभाग होना चाहिए। मैं इनमें एक और विभाग भी जोड़ देता हूँ — अर्थात् चर्मशोधन विभाग। मैंने श्री स्मिथसे पिंजरापोलोंमें चर्मशोधन विभागकी भी व्यवस्था करनेके सम्बन्धमें बातचीत की। उन्हें यह विचार पसन्द आया, लेकिन चूँकि वे एक विशेषज्ञ हैं इसलिए वे अपने क्षेत्रके बाहर नहीं जाना चाहते थे। श्री स्मिथने भैंसोंके बारेमें बहुत सोच-विचारकर जो-कुछ कहा है, वह ध्यान देने योग्य है। पशु-वधके सम्बन्धमें वे हमारी तरह संवेदनशील नहीं हैं और न हम उनसे इसकी अपेक्षा ही कर सकते हैं, लेकिन वे यह समझते हैं कि कोई ऐसी योजना, जिसमें निकम्मे पशुओंको मार डालनेका सुझाव हो, भारतके लिए उतनी ही अनुपयुक्त होगी जितनी कि विश्वके किसी अन्य देशके लिए ऐसी योजना जिसमें बूढे और अपंग माता-पिताओंको मार डालनेका सुझाव दिया गया हो। इसलिए उन्होंने हिन्दुओंकी भावनाको समझनेकी अपने तई पूरी कोशिश करते हुए पशु-रक्षणके ऐसे उपाय सुझाये हैं, जो भारतीय परम्पराओंसे मेल खाते हैं। मैं आशा करता हूँ कि पिंजरापोलोंके व्यवस्थापक श्री स्मिथकी इस महत्त्वपूर्ण टिप्पणीमें दिये गये सुझावोंका अध्ययन करेंगे और अपनी व्यवस्थामें आवश्यक परिवर्तन करेंगे। मुझे विश्वास है कि इस परिवर्तनको लागू करनेमें बहुत कम खर्च आयेगा, लेकिन अन्तमें उससे काफी लाभ होगा। श्री स्मिथने मुझे जो एक और टिप्पणी तैयार करके दी है, उसके बारेमें मैं किसी आगामी अंकमें लिखूँगा।[1]

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १४-७-१९२७

१. देखिए "गाँवोंमें मवेशियोंकी दशाका सुधार", ४-८-१९२७।

१४५. अखिल भारतीय लिपि

कुछ दिन पहले एक गुजराती सज्जनने 'नवजीवन' को एक पत्र लिखा था। उसमें मुझे सलाह दी गई थी कि मैं सारे भारत द्वारा एक ही लिपि अपनानेकी आवश्यकताके बारेमें अपने विश्वासको अमली रूप देनेके लिए 'नवजीवन' को देवनागरी लिपिमें छापना शुरू करूँ। मेरा यह दृढ़ विश्वास तो है कि सभी भारतीय भाषाओंकी लिपि एक ही होनी चाहिए और ऐसी लिपि देवनागरी ही हो सकती है, फिर भी मैं पत्र-लेखककी सलाहके मुताबिक काम नहीं कर सका। इसके कारण मैं 'नवजीवन' में अपनी एक टिप्पणीमें[1] गिना चुका हूँ। उन कारणोंको यहाँ दोहरानेकी आवश्यकता नहीं। परन्तु इस बात में जरा भी सन्देह नहीं कि इस महान् राष्ट्रीय जागृतिने हमें जो मौका दिया है, उसका उपयोग हमें एक लिपि अपनानेके विचारको प्रचारित करनेके लिए ही नहीं, बल्कि उस दिशामें कुछ ठोस कदम उठानेके लिए भी करना चाहिए। यह बिलकुल सही है कि इस तरहके एक सर्वांगपूर्ण सुधारके मार्गमें हिन्दुओं और मुसलमानोंका साम्प्रदायिक पागलपन एक बड़ा रोड़ा बना हुआ है। परन्तु भारतमें देवनागरी लिपिको सार्वभौमिक मान्यता तभी मिल सकेगी, जब पहले भारतके सभी हिन्दुओंको इस मतके पक्षमें कर लिया जाये कि संस्कृत और द्रविड़ भाषा-परिवारकी सभी भाषाओंकी लिपि एक ही हो। अभी इस समय बंगालमें बँगला, पंजाबमें गुरु-मुखी, सिन्धमें सिन्धी, उत्कलमें उड़िया, गुजरातमें गुजराती, आन्ध्रप्रदेशमें तेलुगु, तमिल-नाडमें तमिल, केरलमें मलयालम, कर्नाटकमें कन्नड़ लिपियाँ प्रयुक्त होती हैं। बिहारकी कैथी और दक्षिणकी मोड़ी लिपियोंको यहाँ चाहे न भी लेखें। यदि हम सभी व्याव-हारिक और राष्ट्रीय प्रयोजनोंके लिए इन लिपियोंके स्थानपर देवनागरी लिपिका ही प्रयोग करने लगें तो वह सचमुच एक भारी प्रगति होगी। उससे भारत-भरके हिन्दुओं-की एकताको दृढ करनेमें मदद मिलेगी और विभिन्न प्रान्तोंके बीच अधिक निकटका सम्पर्क स्थापित किया जा सकेगा। भारतकी विभिन्न भाषाओं और लिपियोंकी जानकारी रखनेवाले सभी लोग भली-भाँति जानते हैं कि किसी भी नयी लिपिको अच्छी तरह सीखनेमें कितनी मेहनत करनी पड़ती है। कुछ लिपियाँ तो सचमुच बड़ी सुन्दर हैं, और फिर देश-प्रेमकी खातिर कोई भी काम दुष्कर नहीं होता, इसलिए भिन्न-भिन्न लिपियोंको सीखनेमें जो श्रम और समय लगता है वह किसी भी तरह व्यर्थमें गँवाया गया नहीं माना जा सकता। लेकिन करोड़ों साधारण जनोंसे तो हम इस त्यागकी भावनाकी उम्मीद नहीं कर सकते। राष्ट्रके नेताओंको उनके लिए चीजोंको आसान बनाना पड़ेगा। इसलिए हमारी एक ऐसी लिपि होनी चाहिए, जिसे सारे भारतके सभी लोग अपनी-अपनी भाषाओंकी जरूरतोंके अनुसार आसानीसे ढालकर अपना सकें; और सभी भाषाओंकी जरूरतोंके अनुसार ढल सकनेकी जितनी

१. देखिए "नवजीवन देवनागरीमें", २६-६-१९२७।

खूबी देवनागरी लिपिमें है, उतनी और किसी लिपिमें नहीं है तथा इस प्रयोजनके लिए कोई भी दूसरी लिपि उतनी पूर्ण और परिष्कृत नहीं है जितनी कि देवनागरी है। इसी कामको आगे बढ़ानेके लिए एक अखिल भारतीय संगठन भी है, या कहिए, हुआ करता था। मुझे मालूम नहीं कि आजकल वह संस्था क्या कर रही है। परन्तु यदि इस कामको करना है तो या तो पहलेकी उसी संस्थाको अधिक मजबूत बनाना चाहिए या फिर एक नई संस्था खड़ी की जानी चाहिए। हाँ, इस आन्दोलनको किसी भी हालतमें हिन्दी-प्रचार या हिन्दुस्तानीको भारतकी राष्ट्रभाषा बनानेके प्रचार-आन्दोलनके साथ मिलाकर नहीं रखना चाहिए; दोनोंको बिलकुल अलग-अलग ही रखना चाहिए। यह दूसरा काम धीरे-धीरे, पर एक निश्चित गतिसे आगे बढ़ रहा है। एक ही लिपिके प्रयोगसे एक भाषाके प्रसारमें आसानी होगी। परन्तु, दोनोंके प्रयोजनोंमें साम्य एक हदतक ही है। हिन्दी या हिन्दुस्तानीको प्रान्तीय भाषाओंके स्थानपर प्रतिष्ठित करनेकी कोई बात नहीं है; इसका प्रयोजन तो प्रान्तीय भाषाओंकी सहायता करना, उनकी कमीकी पूर्ति करना और अन्तरप्रान्तीय सम्पर्कके माध्यमका काम करना ही है। जबतक हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच तनाव रहता है, तबतक हिन्दुस्तानीके दो रूप बने रहेंगे — फारसी या अरबी शब्दोंसे लदी फारसी लिपिमें लिखी जानेवाली उर्दू, या फिर संस्कृत शब्दोंकी भरमारवाली देवनागरी लिपिमें लिखी हुई हिन्दी। जब दोनोंके बीचका तनाव मिट जायेगा, दोनोंके दिल मिल जायेंगे, तब एक ही भाषाके ये दोनों रूप भी परस्पर घुल-मिल जायेंगे और तब हमारे पास जो भाषा होगी, वह दोनोंका मिश्रण होगी। उसमें संस्कृत, फारसी, अरबी या अन्य भाषाओंके उतने ही शब्द रह जायेंगे जितने कि उसके पूर्ण विकास और पूर्ण अभिव्यंजना-शक्तिके लिए सचमुच जरूरी होंगे।

परन्तु एक ही लिपिको अपनानेका उद्देश्य निस्सन्देह अन्य सभी लिपियोंको हटाकर उनके स्थानपर उस एक लिपिको प्रतिष्ठित करना है, जिससे कि विभिन्न प्रान्तोंके निवासी दूसरे प्रान्तोंकी भाषाएँ आसानीसे सीख सकें। इस उद्देश्यकी पूर्तिका सबसे अच्छा उपाय यही है कि अव्वल तो देशकी सभी पाठशालाओंमें कमसे-कम हिन्दुओंके लिए देवनागरी लिपि सीखना अनिवार्य कर दिया जाये, जैसा कि गुजरातमें है, और दूसरे, विभिन्न भारतीय भाषाओंमें उपलब्ध श्रेष्ठ साहित्य देवनागरी लिपिमें छापा जाये। एक हदतक ऐसा प्रयास किया भी गया है। मैंने देवनागरी लिपिमें मुद्रित 'गीतांजलि' देखी है। परन्तु यह काम काफी बड़े पैमानेपर किया जाना चाहिए और ऐसी पुस्तकोंका प्रचार किया जाना चाहिए। हालाँकि मैं जानता हूँ कि आजकल हिन्दुओं और मुसलमानोंको एक-दूसरेके निकट लानेका कोई रचनात्मक सुझाव पसन्द नहीं किया जाता, फिर भी मैं यहाँ अपनी वह बात दोहराये बिना नहीं रह सकता जो मैं इन स्तम्भोंमें और अन्यत्र भी कई बार कह चुका हूँ — अर्थात् यदि हिन्दुओंको अपने मुसलमान भाइयोंके और निकट आना है तो उनको उर्दू सीखनी चाहिए, और यदि मुसलमानोंको अपने हिन्दू भाइयोंके और निकट आना है तो उनको हिन्दी सीखनी चाहिए। हिन्दुओं और मुसलमानोंकी वास्तविक एकतामें विश्वास रखनेवालोंको दोनोंके

बीच मौजूद पारस्परिक घृणाके वर्तमान विस्फोटसे निराश नहीं होना चाहिए। उनके विश्वासमें यदि सचमुच कोई बल है तो उनको जब भी मौका मिले, उन्हें बिना किसी दिखावेके पारस्परिक सहिष्णुता, स्नेह और सौजन्यका हरएक कार्य प्रयासपूर्वक करना चाहिए। और इस दिशामें हम कमसे-कम यही कर सकते है कि एक-दूसरेकी भाषा सीखें। हिन्दू और मुसलमान दोनों ही एक-दूसरेके धार्मिक ग्रन्थों और एक-दूसरे-के धर्मोंके अधिष्ठापकों और उन्नायकोंके बारेमें घोर अज्ञानी या धर्मान्ध लोगों द्वारा लिखी गई सभी बेहूदा बातोंको अपने दिमागोंमें भरते चले जायें, इसके बजाय क्या यह अच्छा नही रहेगा कि हिन्दू 'कुरानशरीफ' और पैगम्बरके बारेमें मुसलमानोके विचार जाननेके लिए आला काबलियतके अनेक धर्म-प्रवण मुसलमानों द्वारा लिखी गई उर्दू पुस्तकोंका अध्ययन करें; और मुसलमान 'गीता' और श्रीकृष्णके बारेमें हिन्दुओंकी भावनाओंको समझनेके लिए धर्म-प्रवण हिन्दुओ द्वारा लिखी गई उतनी ही अच्छी हिन्दी पुस्तकोंका अध्ययन करें?

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, १४-७-१९२७

१४६. सत्याग्रहकी सीमाएँ

गुजरातीमें लिखे मेरे एक पत्रके[1] एक सर्वथा निर्दोष अनुच्छेदके आधारपर लोगोने सत्याग्रह तथा उसके प्रणेताको ऐसे गलत रूपमें पेश किया है, जिसे मैं विवेक-हीनताका द्योतक कहनेकी धृष्टता करता हूँ। पत्र बिलकुल निजी ढंगका था और इसे मैंने श्री भरूचाके एक ऐसे पत्रके उत्तरमें लिखा था, जिसमें अन्य अनेक विषयोकी चर्चा थी। पत्र सत्याग्रहपर लिखा कोई प्रबन्ध नही है और हर पत्रकी तरह उसमें भी कई ऐसी बातें हैं जिनके बारेमें मूल पत्र-लेखक और उत्तर देनेवालेके बीच पहलेसे ही एक प्रकारकी सहमति होती है। वह समाचारपत्रोंमें प्रकाशनके लिए नही लिखा गया था। पर श्री भरूचाने जब उस अनुच्छेदके प्रकाशनकी अनुमति तार द्वारा माँगी, तो मैंने भी तार द्वारा ही उसकी अनुमति बेहिचक भेज दी। समाचारपत्रका जो विवरण मेरे सामने है, उसको देखकर लगता है कि नागपुरकी सभामें बोलनेवालोंने यह बात कही कि मैंने श्री भरूचाके नाम अपने पत्रमें जो स्पष्टीकरण किया है, वह मुझे तभी कर देना चाहिए था, जब नागपुर सत्याग्रह शुरू किया गया था। मैं इस विचारसे कतई सहमत नहीं हूँ। यदि श्री आवारीने मुझे अपने आन्दोलनका समर्थक न बताया होता तो मैंने उसके प्रतिवादमें वह लेख भी न लिखा होता जो मैंने लिखा है। मेरा तो नियम है कि यदि मैं किसी काममें कोई सहायता नही कर सकता तो मैं उसमें अपनी ओरसे बिना जरूरत या बेवजह हस्तक्षेप करके उसमें कोई बाधा भी नही पहुँचाता। इसीलिए उस समय नागपुरमें सत्याग्रहके विषयमें मैं जो-कुछ जानता

१. देखिए "पत्र: बी० एफ० भरूचाको", २-७-१९२७के पूर्व।

था, उसपर मैंने विस्तारसे अपना कोई मत व्यक्त नहीं किया और मैंने अपने-आपको प्रतिवादतक ही सीमित रखते हुए, देशमें मौजूद आम हिंसात्मक वातावरणके बारेमें अपना मत व्यक्त किया था। और मुझे कहना ही पड़ेगा कि मेरा पत्र जिन लोगोंको दिखा दिया गया था, यदि वे उसमें दिये गये तर्कोंसे सहमत नहीं थे तो फिर मेरे उसी निजी पत्रको साधन बनाकर नागपुर सत्याग्रह स्थगित कर देना उस पत्रका एक बिलकुल ही गैरमुनासिब इस्तेमाल था। और फिर उन लोगोंने जब मेरे पत्रका सार्वजनिक ढंगसे उपयोग करनेका फैसला किया था तो मेरे प्रति उनका यह भी कर्त्तव्य था कि वे उसके उन सभी मुद्दोंको लोगोंको अच्छी तरह समझा देते जिनको वे समझते नहीं थे या जो उनको मेरे पिछले लेखोंको देखते हुए असंगत लग रहे थे। और नागपुरके उत्साही युवकोंके प्रति उनका कर्त्तव्य यह था कि वे उनके सामने ख्वाहमख्वाह एक ऐसा मत रखकर, जिसे वे न तो समझते थे और न जो उनको स्वीकार था, उनके उत्साहको भंग न करते, उन्हें हताश न करते। जहाँतक मेरा सम्बन्ध है, देशमें जो तरह-तरहके पागलपनके काम हो रहे हैं, उनके बारेमें अपनी राय जाहिर करते फिरना मैं अपना फर्ज नहीं समझता। कारण यह है कि मेरे अन्दर इतनी विनम्रता जरूर है कि मैं समझूँ कि मुझे जो काम पागलपन-भरा लगता है, हो सकता है, स्वयं करनेवालोंको वह पागलपन-भरा न लगता हो और वास्तवमें वह बुद्धिमत्ताका श्रेष्ठ उदाहरण ही हो। इसलिए यद्यपि सत्याग्रहके नामपर कई जगहोंपर बहुत-सी चीजें की जा रही हैं फिर भी मैंने उनके बारेमें एक शब्दतक कहनेकी जरूरत नहीं समझी। और नागपुरके नवयुवकों तथा सभी सम्बन्धित व्यक्तियोंको मेरी यही सलाह है कि यदि वे कांग्रेसके नामका इस्तेमाल नहीं करते तो वे किसी भी अन्यायपूर्ण कार्यके विरुद्ध सत्याग्रह करने या उसका अन्य प्रकारसे प्रतिरोध करने के लिए कांग्रेसकी अनुमति लेना किसी भी तरह अनिवार्य न मानें। और यदि वे सचमुच ऐसा मानते हों कि नागपुर सत्याग्रह सर्वथा उचित था, और वह वास्तवमें सत्याग्रह ही था, तब तो उनके द्वारा अपना आन्दोलन फिरसे न छेड़नेका मतलब अपने बन्दी साथियोंके साथ धोखेबाजी करना, उन्हें संकटमें छोड़कर उनसे अलग जा खड़े होना होगा। हाँ, अगर वे मेरे इस मतसे सहमत हों कि जिसे वे सत्याग्रह समझते थे वह वास्तवमें सत्याग्रह था ही नहीं, तो दूसरी बात है।

इतने स्पष्टीकरणके बाद, अब मैं सत्याग्रहके बारेमें अपने उन सदाशय मित्रों द्वारा पैदा की गई कुछ उलझनोंको दूर करनेकी कोशिश करूँगा, जिन्होंने मेरे उस पत्रकी आलोचना की है। मेरा निश्चित मत है कि शस्त्र अधिनियम (आर्म्स ऐक्ट) को सत्याग्रहके तरीकेसे उस ढंगसे भंग करना उचित नहीं था जिस ढंगसे उसे नागपुरमें किया गया। हमें याद रखना चाहिए कि नागपुरकी रिपब्लिकन आर्मी और सरकारके बीच विवादका खास मुद्दा शस्त्र-अधिनियम नहीं, बल्कि अनेक नवयुवक बंगाली देश-भक्तोंकी अन्यायपूर्ण और गैरकानूनी नजरबन्दी थी। इसलिए उस अधिनियमको लेकर सविनय अवज्ञा आन्दोलन छेड़ना हर तरहसे गलत था। कई वक्ताओं ने मेरे पत्रका कुछ ऐसा अर्थ लगाया है जो मेरे विचारसे, न तो उससे निकलता है और न कभी

मेरे मनमें ही था। मैंने तो बहुत पहले, १९१७ या १९१८ में ही, कहा था कि सरकारके काले कारनामोमें सबसे ज्यादा शर्मनाक कारनामा जनताको नि:शस्त्र बनाना ही है। और अहिंसामें पूर्ण विश्वास रखते हुए भी, मैं मानता हूँ कि शस्त्र रखनेके इच्छुक हर भारतीयको पूरा अधिकार है कि वह कानूनी ढंगसे अनुमति लेकर शस्त्र रखे। मैं यह स्वीकार करता हूँ कि हर अच्छी सरकारके लिए शस्त्र-अधिनियम आज जरूरी है और आगे भी रहेगा। मैं इस बातको नही मानता कि हर नागरिकको बिना लाइसेंसके चाहे जितने शस्त्र रखनेका सहज अधिकार है। इसके विपरीत, मैं तो यह मानता हूँ कि सुशासनके लिए यह नितान्त आवश्यक है कि राज्यको सविहित शर्तोंके अतिरिक्त अन्य किसी भी तरहसे शस्त्र रखनेपर पाबन्दी लगानेका पूरा अधिकार हो। मैं मानता हूँ कि अन्यायपूर्ण शस्त्र-अधिनियम या उसके अन्यायपूर्ण प्रशासनके विरुद्ध भी किन्ही परिस्थितियोमें सत्याग्रह छेड़ना संगत हो सकता है—ठीक उसी तरह जैसे कि मेरे विचारसे चोरी तथा अन्य अपराधोंको रोकनेके लिए बनाये गये किसी अधिनियमके विरुद्ध कभी-कभी सत्याग्रह करना उचित हो सकता है। लेकिन मेरा निश्चित मत है कि जिस तरह अपराध अधिनियमके विरुद्ध सत्याग्रह आन्दोलनका तरीका उससे सम्बन्धित विशिष्ट अपराध करना नही हो सकता, उसी तरह एक अन्यायपूर्ण शस्त्र-अधिनियमके विरुद्ध सत्याग्रह करनेका यह तरीका नही हो सकता कि हम शस्त्र लेकर चलने लगें।

हमें सत्याग्रह और सविनय अवज्ञाके बीचका अन्तर भी स्पष्ट समझ लेना चाहिए। सविनय अवज्ञाके सभी रूप सत्याग्रहके ही अंग या समझिए शाखायें है, लेकिन सत्याग्रहके सभी रूप सविनय अवज्ञा नही होते। अब चूँकि नागपुरके मित्रोंने अपना तथाकथित सत्याग्रह या सविनय अवज्ञा आन्दोलन स्थगित कर ही दिया है, इसलिए मैं उनको तथा अन्य लोगोंको भी जतला देना चाहता हूँ कि बंगालके नजरबन्दोके सिलसिलेमें वैध तरीकेसे सत्याग्रह कैसे किया जा सकता है। लोग अगर मुझपर गुस्सा न हों या मेरी खिल्ली न उड़ायें तो मैं शुरू यहीसे करूँ कि खादीके कार्यके जरिये जनताकी ताकत बढाकर और खादीके जरिये विदेशी वस्त्रोंका बहिष्कार करके सत्याग्रह किया जा सकता है। लोग हिन्दू-मुस्लिम एकताका मार्ग प्रशस्त करके सत्याग्रह कर सकते है और उसका मार्ग प्रशस्त करनेका तरीका यह है कि वे दोनोंके झगड़ोंके अवसरोंपर अपने सिर फूटने दें और झगड़े न होनेकी स्थितिमें अपनेसे भिन्न धार्मिक विश्वासवाले लोगोंकी सेवामें बिना किसी दिखावेके रत रहें। यदि इस प्रकारके रचनात्मक कार्योमें उनको कोई रस न आये, और चारों ओर व्याप्त मन, वाणी तथा कर्म की हिंसाके बावजूद सविनय अवज्ञासे कम कोई बात जँचती ही न हो तो उनको मैं व्यक्तिगत सविनय अवज्ञाका निम्नलिखित तरीका सुझाता हूँ। इसे अकेला व्यक्ति भी कर सकता है। उसे यह आशा तो नही करनी चाहिए कि इससे नजरबन्द तुरन्त रिहा कर दिये जायेंगे; हाँ, यह आशा वह अपने मनमें अवश्य सँजो सकता है कि ऐसा व्यक्तिगत त्याग अन्ततोगत्वा नजरबन्दोंकी रिहाई कराकर छोड़ेगा। तो इस व्यक्तिगत सविनय अवज्ञाका तरीका यह हो सकता है—

लोगोंका एक जत्था, या केवल एक ही व्यक्ति नागपुरसे कलकत्ताके गवर्नमेन्ट हाउस-तक पद-यात्रा करे, और यदि पद-यात्रा सम्भव न हो या उसमें ज्यादा झंझट हो, तो रेल-यात्राके लिए अपने मित्रोंसे पैसे इकट्ठे करके कलकत्ता पहुँचे। कलकत्ता पहुँचनेपर एक ही सत्याग्रही गवर्नमेन्ट हाउसतक पद-यात्रा करे और जहाँ उसे रोका जाये वही रुक जाये। वह वहीं खड़े होकर नजरबन्दोंकी रिहाई या अपनी खुदकी गिरफ्तारीकी माँग करे। इस अवज्ञाकी विनयशीलता बनाये रखनेके लिए सत्याग्रहीको बिलकुल ही निहत्था रहना चाहिए और अपमान, ठोकरों या इससे भी बुरे बरतावको विनय-पूर्वक सहन करके अपनी माँगपर दृढ रहना चाहिए और अपनी गिरफ्तारीका जरा भी विरोध नहीं करना चाहिए। वह अपने साथ जेबमें अपना भोजन, पानीकी एक बोतल, अपनी तकली और अपने धर्मके अनुसार 'गीता', 'कुरान', 'बाइबिल', 'जेन्दावेस्ता' या 'ग्रन्थसाहब' की प्रति रख सकता है। यदि इस प्रकारके सच्चे सत्याग्रहियोंकी संख्या काफी हो जाये, तो वे अत्यन्त अल्प अवधिमें सारे वातावरणको अवश्य ही बदलकर रख देंगे। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार कि एक हल्की-सी फुहार एक ही दिनमें भारतके मैदानी इलाकोंको हरी-भरी घासकी चादरसे ढँक देती है।

अब यहाँ यह प्रश्न सर्वथा संगत होगा कि 'यदि आप सचमुच इसे ठीक समझते हैं, तो फिर आप ही इसे पहले शुरू क्यों नहीं करते, फिर चाहे एक भी व्यक्ति आपके पीछे न चले?' मेरा उत्तर है: मैं ऐसा वीरोचित कार्य कर सकने योग्य पवित्रता या खरापन अपने-आपमें नहीं पाता। मैं मन, वाणी और कर्मकी वह अपेक्षित पवित्रता पैदा करनेमें अपने जीवनका हर क्षण लगा रहा हूँ। परन्तु अभी तो जो स्थिति है, उसमें मैं मानता हूँ कि अनेक मनोविकार मुझे विचलित कर डालते हैं। मैं जिनको गलत मानता हूँ वैसे काम देखकर या उनके बारेमें सुनकर मेरा मन क्रोधसे भर उठता है। मैं अपने बारेमें विनम्रतापूर्वक इतना ही दावा करता हूँ कि मैं मनके इन विकारों और आवेगोंको बडी हदतक नियन्त्रित रख सकता हूँ और उनको अपने ऊपर हावी होनेसे रोक सकता हूँ। परन्तु इस प्रकारके वीरोचित कार्यके लिए पवित्रता-की मेरी अपनी कसौटी तो यह है कि गलत कामों या बुराईसे घृणा करते हुए भी मनमें ऐसे विकार या आवेग पैदा ही न हों। मैं जब यह महसूस कर लूँगा कि मैं बुराईकी बात भी सोचनेमें नितान्त असमर्थ हो गया हूँ, तब मैं किसी की सलाहके बिना भी इसमें कूद पड़ूँगा, चाहे सब लोग मुझे निरा पागल ही क्यों न कहने लगें। उस मनःस्थितिमें मैं वाइसराय भवनके दरवाजेपर दस्तक देनेमें या जहाँ भी ईश्वर मुझे भेजे वहाँ जाकर मटियामेट किये जा रहे अपने इस देशके अधिकारोंकी माँग करनेमें किंचित् भी नहीं हिचकूँगा। और मेरा विश्वास है कि ईश्वरसे भय खानेवाला हर व्यक्ति ऐसी आदर्श स्थितिको प्राप्त कर सकता है।

इस बीच कोई सत्याग्रहका विद्रूप न करे; उसकी झूठी नकल न उतारे। यदि बन सके तो सत्याग्रहका खयाल मनसे बिलकुल निकाल दे और फिर जो उसके जीमें आये उसे निर्बाध रूपसे करनेके लिए उसके सामने सारा मैदान खाली पड़ा हुआ है। जिस समुद्रका मानचित्र न हो, जिसमें रास्ता दिखानेके लिए कोई प्रकाश-स्तम्भ न

हो, उस समुद्रमें तो कप्तानको अपने जहाजको चाहे जहाँ ले जानेका दुस्साहस करनेका अधिकार है। लेकिन जिस कप्तानको यह मालूम हो कि इस सागर-क्षेत्रमें अमुक स्थान-पर एक मार्ग-दर्शक प्रकाश-स्तम्भ है, वह यदि अपने जहाजको मनमाने ढगसे चलाये या भूलसे तारोको ही प्रकाश-स्तम्भ न मान बैठनेके लिए आवश्यक सावधानी नही बरते, तो उसे अपने पदके अयोग्य ही माना जायेगा। यदि पाठक बुरा न मानें तो मैं उनसे कहूँगा कि मैं अपने-आपको भारतीय राजनीतिके मानचित्र-रहित सागरके एक मात्र प्रकाश-स्तम्भ – सत्याग्रह – का संरक्षक मानता हूँ। और इसीलिए, मैंने आपको यह सलाह दी है कि सत्याग्रहके इच्छुक लोग यदि सत्याग्रहके इस संरक्षककी सलाह ले लिया करें तो ज्यादा अच्छा हो। पर मैं यह भी जानता हूँ कि सत्याग्रहपर मेरा कोई स्वत्वाधिकार नही है; इसलिए मैं अपने सहकर्मियोकी स्वीकृतिको ही अपने संरक्षक-पदका आधार मान सकता हूँ।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, १४-७-१९२७

१४७. समान तुलापर

सेवामें,
सम्पादक, 'यंग इंडिया'
महोदय,

आप यह स्वीकार करते हैं कि जिस प्रकार हिन्दू-मुस्लिम एकताके बिना स्वराज्य असम्भव है, उसी प्रकार अस्पृश्यता-निवारणके बिना भी वह असम्भव है। मैं दोनों बातोंको एक साथ मिलाकर कहूँगा कि अस्पृश्यता-निवारणके बिना हिन्दू-मुस्लिम एकता असम्भव है – दूसरे शब्दोंमें हिन्दू जातिकी आपसी एकताके बिना हिन्दू-मुस्लिम एकता असम्भव है। आशा है, मेरी इस मान्यतासे आप सहमत होंगे। जो लोग इस बातकी सचाईको महसूस करते जान पड़ते हैं, उनमें एक एन्ड्रयूज भी हैं।

लेकिन जो भी हो, मैं यहाँ आपके "हमारा कलंक" शीर्षक लेखके बारेमें, जिसमें आपने अपने नाम लिखे और जिस (३० जूनके) अंकमें यह लेख प्रकाशित हुआ है उसी अंकमें छपे मेरे पत्रकी चर्चा करनेकी कृपा की है, कुछ कहनेकी अनुमति चाहता हूँ। लेख अन्यथा बड़ा उपयोगी बन पड़ा है, लेकिन उसके सम्बन्धमें मेरी एक छोटी-सी शंका है। यदि इस कारणसे कि हिन्दू-मुस्लिम एकता स्वराज्यके लिए आवश्यक है, मुसलमानोंके लिए विशेष राजनीतिक सुविधाओंकी व्यवस्था की जा सकती है. . .[1] तो फिर दलित वर्गोंको

१. यहाँ अनुवादमें कुछ अनावश्यक अंश छोड़ दिया गया है।

ही भाग्यके भरोसे क्यों छोड़ दिया जाये, जब कि आप यह स्वीकार करते हैं कि शेष राष्ट्रके साथ उनकी एकता स्वराज्यके लिए उतनी ही आवश्यक है, जितनी कि हिन्दू-मुस्लिम एकता? हम इन योजनाओं और समझौतोंमें अपने समाजकी बाल-विधवाओंके कष्टोंके-निवारणकी चर्चा इसलिए नहीं करते कि (१) ये विधवाएँ अपने-आपमें एक विशिष्ट समुदाय नहीं हैं, (२) इनकी सहायताके लिए कानून बनाये गये हैं और (३) हममें से अधिकांश लोग (चाहे यह सही हो या गलत) ऐसा नहीं मानते कि उनकी अवस्थामें सुधार करना स्वराज्यकी अनिवार्य शर्त है। अगर स्पृश्यों और अस्पृश्योंकी पारस्परिक एकताके लिए कानून बनाना बेकार है तो हिन्दू-मुस्लिम एकताके लिए भी वह उतना ही निरर्थक है। लेकिन, हम व्यवहारमें देखते क्या हैं? स्वराज्य और हिन्दू-मुस्लिम एकताके नामपर हमारे कानूनों, समझौतों और योजनाओंमें सिर्फ उन्हीं लोगोंकी (सही या गलत) जरूरतोंका खयाल रखा जाता है जो अपनी जरूरतों और माँगोंका डंका ऊँची आवाजमें पीटते हैं और जो समुदाय सचमुच सबसे अधिक जरूरतमन्द है उसकी जरूरतोंका कोई खयाल नहीं किया जाता। और बहानेके तौरपर यह दलील दी जाती है कि किसी भी समुदायके लिए विशेष व्यवस्था करना एक आवश्यक बुराई है।

तो अब मेरा कहना यह है कि अगर समुदाय-विशेषके लिए विशेष व्यवस्था करना एक आवश्यक बुराई है तो इस बुराईको वहाँ बरदाश्त कीजिए जहाँ यह सबसे अधिक आवश्यक हो — अर्थात् इसे उन दलित वर्गके लोगोंकी हदतक बरदाश्त कीजिए जिनके बारेमें आप पहले ही स्वीकार कर चुके हैं कि ये लोग मुसलमानोंकी तुलनामें विशेष व्यवहारके कहीं ज्यादा हकदार हैं। किन्तु, सिर्फ जोरदार आवाजमें अपनी जरूरतोंका डंका पीटनेवालोंके सम्बन्धमें, अर्थात् हमारे मुसलमान देश-भाइयोंके सम्बन्धमें तो इस बुराईको बरदाश्त करना ठीक नहीं होगा। जातीय प्रतिनिधित्वकी जानी-मानी बुराइयोंके बावजूद और किसी रूपमें जातीय प्रतिनिधित्वको स्वीकार करना भी हो तो भी सभीके साथ निष्पक्षता बरतते हुए इसे स्वीकार किया जाये. . .।[1]

मैं पत्र-लेखकके इस विचारसे पूर्णतः सहमत हूँ कि अगर स्वराज्यके किसी भी भावी संविधानमें किसी एक जातिके लिए विशेष व्यवस्था की जाये तो उसी स्थितिमें पड़ी दूसरी जातियोंके लिए भी वैसी व्यवस्था करनी पड़ेगी — चाहे उसके लिए माँग और आन्दोलन किया जा रहा हो अथवा नहीं। हिन्दू-मुस्लिम एकताके विषयमें लिखे अपने हालके लेखमें[2] मैंने अपनी यह सोची-समझी राय जाहिर की है कि हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच होनेवाले किसी भी समझौतेके सम्बन्धमें कोई कानून नहीं बनाया

१. पत्रके शेष अंशका अनुवाद नहीं दिया जा रहा है।

२. देखिए "हिन्दू-मुस्लिम एकता", १६-६-१९२७।

जाना चाहिए। जबतक हृदय परिवर्तन नही होता तबतक कोई भी विशेष कानून जातियो और समुदायोंके बीच सच्ची और जीवन्त एकता स्थापित नही कर सकता। और जब हृदय-परिवर्तन हो जाये तब तो ऐसे कानूनकी आवश्यकता ही नही रह जायेगी। और जो बात हिन्दू-मुस्लिम एकतापर लागू होती है, वह दलित वर्गके लोगोपर और अधिक लागू होती है। जबतक तथाकथित उच्चवर्गीय हिन्दुओका हृदय स्वच्छ नही हो जाता और वे दलित वर्गके साथ न्याय करनेको तत्पर नही हो जाते तबतक किसी भी संरक्षणात्मक कानूनसे उन्हे कोई लाभ नही होगा। और जब उनका हृदय स्वच्छ-पवित्र हो जायेगा तब फिर ऐसे किसी कानूनकी आवश्यकता ही नही रह जायेगी। इस समय भी कानूनन उन्हें सार्वजनिक स्कूलो और सार्वजनिक कुओके उपयोगका अधिकार प्राप्त है, लेकिन तथाकथित उच्चवर्गीय हिन्दू उन्हे उनका उपयोग नही करने देते। इसलिए, मेरी ही तरह इस क्षेत्रमें सुधार करनेके काममें जो लोग लगे हुए हैं उन्हे मेरा सुझाव यह है कि वे स्वय दलित वर्गकी स्थितिमें सुधार करनेकी ओर अपना ध्यान केन्द्रित करे। इसका उपाय यह है कि उनके लिए वे स्कूल खोलें, कुए खुदवायें, मन्दिर बनवायें और सुधारक लोग स्वयं भी उन स्कूलो, कुओ और मन्दिरोंके बजाय, जिनका उपयोग दलित वर्गोको न करने दिया जाये, इन्ही स्कूलो, कुओ और मन्दिरोका उपयोग करे।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, १४-७-१९२७

१४८. भाषण: तुमकुर नगरपालिका द्वारा दिये गये मानपत्रके उत्तरमें[1]

१४ जुलाई, १९२७

भाइयो,

मै इस मानपत्रके लिए आपको धन्यवाद देता हूँ, लेकिन कितना अच्छा होता, यदि आपने यह मानपत्र मुझे अंग्रेजीमें न दिया होता। मै अपने सामने कितने ही मुसलमान और हिन्दू भाइयों तथा बहनोंको बैठे देख रहा हूँ और यदि आपने अपनी मातृभाषा अथवा राष्ट्रभाषा हिन्दीका प्रयोग किया होता तो ये लोग उसे अच्छी तरह सुनते और समझते तथा मुझे भी उस मानपत्रको प्राप्त करके प्रसन्नता होती। मै आशा करता हूँ कि आप इस बातको समझें कि इन लोगोको, आम जनताको, ही इस सबके महत्त्वको समझनेकी जरूरत है। उन्हे इसके महत्त्वको समझना चाहिए और परस्पर एक-दूसरेको समझना चाहिए। वे परस्पर भाई-भाई है तथा हमारी मातृभूमिकी दो आँखें है। उन्हें समझानेके लिए हमे उस भाषाका प्रयोग करना चाहिए जिसे वे समझते है।

१. गांधीजीके हिन्दी भाषणका कन्नड अनुवाद गंगाधरराव देशपाडेने किया था।

मुझे यह देखकर खुशी हो रही है कि आपमें से बहुत-से लोगोंने खादी पहन रखी है। लेकिन मैं यह चाहता हूँ कि आप केवल आजके इस समारोहके लिए ही खादी न पहनें, वरन् जिन्दगी-भर इसको पहनते रहें तथा गाँवोंमें रहनेवाले अपने भाइयों और बहनोंको भी, जब आप उनसे मिलें, खादी पहननेको तैयार करें। आज यहाँ आप लोगोंके लिए एक खादी वस्त्रालय खोला जा रहा है। मैं चाहता हूँ कि आप सब लोग वहाँ जायें और उस भण्डारका सारा कपड़ा खरीदकर उसे खाली कर दें। मैं जानता हूँ, आपके यहाँ हमारा खादी-कार्य प्रगतिपर है। मेरी भगवान्से प्रार्थना है कि वह आपको कार्य जारी रखनेके लिए बुद्धि और बल दे। मुझे उम्मीद है, आप इस बातको अच्छी तरह समझते हैं कि इस देशके दीन-दुखियोंके इस कार्यमें आप सबको पूरी मदद देनी चाहिए।

मैं आज आपसे एक बात कहना चाहता हूँ। मैं यह जानना चाहूँगा कि आपमें से कितने लोग आदि कर्नाटक हैं? (उपस्थित जनसमुदायमें से कुछ लोगोंने हाथ उठाये) आपके अनेक भाई और बहनें यहाँ नहीं आयी हैं। आपने और जो नहीं आये हैं उन सबसे भी मैं यह कहूँगा कि आपकी जातिके उद्धारके लिए बहुत-कुछ किया जा रहा है। आपकी मैसूर पार्लियामेन्टमें (प्रतिनिधि सभामें) दीवान साहबने अपने अभिभाषणमें इस प्रश्नकी चर्चा की है। मुझे यह जानकर खुशी हुई है कि महाविभव इस प्रान्तके दलितोंके उद्धारके कार्यमें बहुत दिलचस्पी लेते हैं। आपकी इस अवस्थासे मुझे सहानुभूति है। हमने अपने ही भाइयों और बहनोंमें से कुछके साथ जो व्यवहार किया है, उसके प्रायश्चित्त-स्वरूप हमें अपने-आपको पंचम मानना होगा।

लेकिन मैं यहाँ आपसे, आदि कर्नाटक समाजके सदस्यों अथवा प्रतिनिधियोंसे बात करना चाहता हूँ। मैं जहाँ-कहीं भी गया हूँ, मैंने इस समाजके लोगोंको बुरी आदतोंसे ग्रस्त पाया है — जैसे कि वे गोमांस अथवा भैंस आदिका मांस खाते हैं। उन्हें समझना चाहिए कि वे महान् हिन्दू समाजके अन्तर्गत आते हैं और उन्हें गो-मांस नहीं खाना चाहिए। अनेक मित्रोंने, अनेक सच्चे और नेक व्यक्तियोंने भारतकी भिन्न-भिन्न जातियोंके बीच आपसमें प्रेम और भाईचारेकी भावनाको बढ़ानेके विचारसे अपनी इस आदतको छोड़ दिया है। मेरे सैकड़ों मित्रोंने, अंग्रेज और मुसलमान दोनों ही ने, अपनी इस आदतको छोड़ दिया है। मैं ऐसे अनेक प्रतिष्ठित मुसलमानोंको जानता हूँ जो गो-हत्याके पक्षमें नहीं हैं। आपके अपने राज्यमें ही गो-रक्षाके लिए एक संस्था है, और गो-हत्याको रोकनेके लिए आन्दोलन भी चल रहा है। मुझे खुशी है कि आपके शासक इस आन्दोलनमें दिलचस्पी रखते हैं। आप काफी बड़ी संख्यामें यहाँ उपस्थित हुए हैं, लेकिन कितनी गायें जीवित हैं और कितनी गायोंकी हत्या की जाती है? बंगलोरकी दुग्धशालाके श्री विलियम स्मिथने बताया है कि मैसूर राज्यमें बहुत-ज्यादा पशुओंका वध किया जाता है, आवश्यकतासे कहीं अधिकका, लेकिन मैं जानना चाहूँगा कि आप यह सब करते ही क्यों हैं?

हमारा देश किसानोंका देश है और एक राष्ट्रके रूपमें हम प्राचीन कालसे अपने पशु-धनपर निर्भर रहते आये हैं। मैं जब नन्दी हिल्समें था, उस समय मेरे मित्र मुझे अच्छा दूध दिया करते थे, लेकिन मैं जानता हूँ कि हमारे देशमें अच्छा दूध मिलनेमें

हर जगह कितनी कठिनाई होती है। हमारे देशमें कितने बच्चे हैं और क्या हम कह सकते हैं कि हमारे पास उन सब बच्चोंको देनेके लिए गायका अच्छा दूध पर्याप्त मात्रामें उपलब्ध है? हमारे अपने हितमें, हमारे देशके हितमें, मैं उनसे अनुरोध करना चाहता हूँ कि वे मांस खानेकी आदत न बनायें।

आपने अपने मानपत्रमें बताया है कि आपके यहाँ बिजली और पानीकी व्यवस्था होनेवाली है।

मैं आपको इसके लिए बधाई तो देता हूँ, लेकिन आपको साफ बता दूँ कि मैंने आपसे अपेक्षा की थी कि आप मुझे अन्य विषयोंके बारेमें आश्वासन देंगे। क्या आप मुझे यह आश्वासन दे सकते हैं कि इस शहरके बच्चोंको सस्ता और शुद्ध दूध काफी मात्रामें मिलेगा? आपने मुझे यह नहीं बताया कि आप गोवध-निषेध कानूनको छोड़कर इस सम्बन्धमें जो-कुछ किया जा सकता था, वह आप कर चुके हैं या नहीं। आपने मुझे यह बताया कि आपके शहरकी आबादी १५,००० है, लेकिन आप यह बताना तो भूल ही गये कि आपके मवेशियोंकी संख्या कितनी है? हमारे देशमें एक समय ऐसा भी था जब लोगोंके धन और सम्पदाको अमुक परिवारमें कितने बच्चे हैं और उनके पास कितने मवेशी हैं, इसके अनुसार आँका जा सकता था। मैं आपसे सच कहता हूँ कि आप जल-योजना पर जो तीन लाख रुपया खर्च करने जा रहे हैं, उससे बहुत-कम पैसेमें अथवा बिजलीपर लगाये जानेवाले ५०,००० रुपयेसे भी कम लागतमें आप यहाँ एक आदर्श दुग्धशाला खोल सकते हैं। आप इससे बहुत-ही कम पैसेमें एक दुग्धशाला खोल सकते हैं, जिससे लोगोंको पानीके समान, दूध भी आसानीसे मिल सके। क्या आपने अपने पंचम भाइयोंको गो-मांस और मद्यका त्याग करनेके लिए समझाया है? आपने स्वास्थ्य और सफाईके बारेमें क्या किया है? मैंने पश्चिमकी तरह-तरहकी बुराइयोंकी ओर इंगित किया है, लेकिन उनकी स्वास्थ्य और सफाई-सम्बन्धी व्यवस्था हमारे लिए पदार्थपाठ प्रस्तुत करती है। मेरे लिए लोगोंके स्वास्थ्य-सफाई सम्बन्धी ज्ञानकी कसौटी उनके पाखानोंकी स्थिति है, और मुझे बताया गया है कि यहांके पाखानोंकी स्थिति घिनौनी है। हममें से जो लोग कट्टरतम परम्परावादी और अत्यन्त शिक्षित तथा विद्वान् हैं, वे भी सफाई-सम्बन्धी नियमोंका उल्लंघन करनेमें संकोच नहीं करते, हालाँकि सभी धर्म-ग्रन्थोंमें कहा गया है कि स्वास्थ्य अथवा सफाईके किसी भी नियमका उल्लंघन करना पाप है। मेरा आपसे अनुरोध है कि आप इस प्रश्नपर गम्भीरतासे विचार करें और आदर्श भंगी बननेका प्रयत्न करें। जबतक आप अपने हाथोंमें झाड़ू और टोकरी नहीं लेते, आप अपने शहरों और नगरोंको स्वच्छ नहीं बना सकते।[1]

क्या आप जानते हैं कि इन बातोंमें पश्चिमके नगरोंने कितनी प्रगति की है? यदि आप चाहते हैं कि आपके नागरिक स्वच्छ और स्वस्थ जीवन व्यतीत करें तो आपको पश्चिमका अनुकरण करना चाहिए और अपने शहरको साफ रखना चाहिए। मैं इतने शहरोंमें गया हूँ, लेकिन इस सम्बन्धमें किसी भी शहरसे सन्तुष्ट नहीं हूँ। आपको स्वच्छता और सफाईकी आदत डालनी चाहिए और यदि आप रोग और

१. यह अनुच्छेद ४-८-१९२७ के यंग इंडियामें प्रकाशित महादेव देसाईके 'साप्ताहिक पत्र' से लिया गया है।

गन्दगीसे बचकर रहना चाहते हैं तो आप सबको अपने शहरका भंगी आप ही बनना चाहिए।...

अन्तमें मैं आपसे एक बात और कहूँगा। देशके दीन-दुःखी जनोंकी खातिर मैं आपसे अनुरोध करता हूँ कि आप चरखा चलाना शुरू करें। यह मत कहिए कि आपके पास समय नहीं है। यदि आप सवेरे सात बजे सोकर उठते हैं तो मैं आपसे अनुरोध और विनती करता हूँ कि आप पाँच बजे उठें और दो घंटेके लिए चरखा चलायें।

तो मैं आपसे कहता हूँ कि मैं आपके सामने जो चरखा रख रहा हूँ वह उद्यमका प्रतीक है, और आलसी लोग इसे नहीं चला सकते। समय ही सम्पदा है, और 'गीता' का वचन है कि जो समय नष्ट करते हैं, महाकाल उनका नाश करता है।[1]

प्रतिदिन दो घंटा चरखा कातकर आप देश और उसके करोड़ों गरीबोंके लिए बहुत-कुछ कर सकेंगे। मैं आपके पास यही माँगने आया हूँ। मैं आप सबको इस स्वागत और मानपत्रके लिए धन्यवाद देता हूँ। भगवान् आपका भला करे।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, १८-७-१९२७

१४९. भाषण : तुमकुर प्राणी-दया संघमें[2]

१४ जुलाई, १९२७

भाइयो,

आपके मानपत्र और थैलीके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। मुझे इस बातकी भी खुशी है कि आपने यह मानपत्र अपनी मातृभाषामें दिया है। आपने मुझे इसका अंग्रेजी अनुवाद दिया था, लेकिन मैंने उसे नहीं पढ़ा है। इसके विपरीत, जब उसे आपकी सुन्दर कन्नड़ भाषामें पढ़ा जा रहा था तब मैंने उसे ध्यानसे सुना और मैं काफी हदतक समझ भी गया, क्योंकि कन्नड़, तमिल, तेलुगु और इस देशकी अन्य सभी भाषाएँ हमारी राष्ट्रभाषा हिन्दीकी बहनें हैं। आज सवेरे नगरपालिकाकी ओरसे दिये गये मानपत्रके उत्तरमें मैं गो-रक्षापर विस्तारसे बोला, और मैं आशा तथा कामना करता हूँ कि आप हमारे देशकी निरीह गायोंके लिए की गई मेरी प्रार्थनाको याद रखेंगे। शायद आप जानते होंगे कि इस उद्देश्यके लिए बेलगाँवमें एक बड़ा संघ है और उन्होंने मुझसे उस संघका अध्यक्ष बननेका अनुरोध किया है। हमारे यहाँ साबरमतीमें भी एक ऐसी ही संस्था है। आपने आज मुझे जो धन दिया है, वह गो-रक्षाके निमित्त इसी संस्थाको दिया जायेगा। लेकिन हम वहाँ जो-कुछ कर रहे हैं, मैं चाहता हूँ कि वह सब आप यहीं मैसूरमें करें। आपने हमारे कार्यके बारेमें 'यंग इंडिया' और 'नवजीवन' के पृष्ठोंमें पढ़ा ही होगा। मैं चाहता हूँ कि आप उस कार्यको

१. यह अनुच्छेद ४-८-१९२७के यंग इंडियामें प्रकाशित साप्ताहिक पत्र' से लिया गया है।

२. गांधीजी हिन्दीमें बोले थे।

यहीं करें और आप सब मिलकर करे। क्योकि, भाइयो, याद रखिए, चाहे खादीका कार्य हो अथवा गो-रक्षाका, उसे कोई एक व्यक्ति पूरा नही कर सकता। और यह भी याद रखें कि अपने मवेशियोकी रक्षामें आपके देशकी आर्थिक समृद्धि निहित है। गाय देशकी माता है और यदि आप 'माँ' शब्दके मर्मको अच्छी तरहसे जानते है, तो आप भारतकी प्रगति और कल्याणके लिए गो-रक्षाके महत्त्वको महसूस करेंगे। मैं आपकी कृपाके लिए एक बार फिर आपको धन्यवाद देता हूँ।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, १८-७-१९२७

१५०. भाषण : मद्वागिरिमें[1]

१५ जुलाई, १९२७

भाइयो,

इस गरीब देशकी सेवाके लिए आपने मुझे एक थैली और मानपत्र भेंट किया है, जिसके लिए मैं आप सबको धन्यवाद देता हूँ। आप जानते है कि गरीबोकी सेवाका काम बहुत बड़ा है; गरीबोकी संख्या — दरिद्रनारायणका आकार विशाल है, उनका उदर सबसे बड़ा है। दरिद्रनारायण गाँवोमें बनी झोपड़ियोमें रहनेवाले तुच्छतम और दरिद्रतम लोगोके दिलों और साँसोंमें निवास करते है। वे शहरोसे बहुत दूर, गाँवोके अज्ञात कोनोमें रहते है; उन्हे एक जून भी पेट-भर भोजन नही मिलता, लेकिन आप लोग उन्हीके पैसेसे, उन्हीके श्रम और उन्हीकी कमाईसे शहरो और नगरोका निर्माण कर रहे है। आपको बाहरसे, विदेशी व्यापारसे धन नहीं मिलता, आप तो अपने व्यापारके द्वारा केवल उसे बाहर ही भेजते है। क्या आप जानते है कि कपासका कितना व्यापार होता है और यहाँ कितनी कपास पैदा होती है? उदाहरणके लिए, मिस्रमें इसकी कितनी कीमत है और यहाँ कितनी? किसीने कहा है कि जो देश अपना कच्चा माल विदेशोको भेजता है वह कभी भी प्रगति नही कर सकता। फिर भी, इस भयं-कर गरीबीको दूर करनेका एक रास्ता है, और वह है खादी-कार्य। तो आप अपनी रुई बाहर न भेजें। आप उसे कातें व बुनें और पहनें। मैं जानता हूँ कि आपने इसी उद्देश्यके लिए मुझे यह थैली दी है, लेकिन आप ज्यादा दे सकते थे। अगर मेरी तबीयत ठीक होती तो मैं इसी क्षण चरखा लेकर आपके बीच घूमना शुरू कर देता और आपसे अनुरोध करता कि आप हमेशा मेरे साथ चरखा चलाते रहिए। आप-में से कुछ लोगोने, बहुत-से लोगोंने आज खादी पहनी है। आपने गरीब बुनकरोको कुछ पैसे दिये है, इसके लिए मैं आपका आभारी हूँ, लेकिन मैं आपसे पूछता हूँ कि क्या आप इसे हमेशा पहनेंगे? अगर नही तो आपका मुझे यह थैली भेंट करना किसी कामका नही है। अगर आपको गरीबोकी मदद करनी है, अगर आप, चाहे जिस जाति अथवा

१. गांधीजी हिन्दीमें बोले थे।

धर्मके हों, अपने धर्मका पालन करना चाहते हैं, यदि आप यह सोचते और आशा करते हैं कि आपकी मातृभूमि फले-फूले, यदि आप ईश्वरका ध्यान करते हैं तो खादी पहनना आपका कर्त्तव्य है, आपका धर्म है। क्या आप उस धर्मका पालन करेंगे?

तुमकुरमें कल जो सभाएँ हुईं, उनमें मैंने अपने पंचम भाइयोंसे अनुरोध किया था कि वे गोमांस अथवा किसी तरहका भी मांस न खायें। आज यहाँ मैं अपने पंचम भाइयोंसे इसके सम्बन्धमें कुछ विशेष नहीं कहूँगा। बस इतना ही कहूँगा कि गोमांस न खायें, शराब न पियें, पाप और रोग-विहीन शुद्ध एवं पवित्र जीवन व्यतीत करें। मुझे खुशी है कि आपके यहाँ लोकमान्य तिलकके नामसे एक भवन है। मैं आशा करता हूँ कि आप भारतके उस सपूतके जीवनका स्मरण करेंगे और उनके सिद्धान्तोंके अनुसार आचरण करेंगे। भाइयो, मैं आप सबको धन्यवाद देता हूँ।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, १८-७-१९२७

१५१. भाषण: तुमकुरकी सार्वजनिक सभामें[1]

१६ जुलाई, १९२७

भाइयो,

आपने मुझे थैलियाँ और मानपत्र भेंटमें दिये हैं। इनके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। मेरे यहाँ आकर बैठनेसे पहले ही श्री हमजा हुसैनने मुझसे कहा था कि मैं आपके सामने अंग्रेजीमें बोलूँ। मैं यह बात माननेवाला नहीं हूँ। यहाँ ऐसे बहुतसे लोग हैं, जिनसे अगर मैं अंग्रेजीमें बात करूँ तो उनके लिए वह अपमानजनक होगा। आप लोगोंमें से कितने हैं, जिन्होंने अपने घरकी स्त्रियोंको अंग्रेजी सिखाई है? या यह कि आप देखना चाहते हैं कि मैं अंग्रेजी जानता भी हूँ या नहीं? (हँसी) अगर ऐसी बात है तो मैं आपको बताता हूँ कि मैं इसकी फीस लूँगा और आपको मेरा इम्तहान लेनेकी काफी बड़ी फीस देनी पड़ेगी। आप कह सकते हैं कि मुझे जो थैलियाँ दी गई हैं, वे फीस ही तो हैं। जी, नहीं। मैं जानता हूँ कि आपने मुझे थैलियाँ इसलिए दी हैं कि आप देशके गरीबोंकी मदद खाने-पीनेकी चीजोंकी शक्लमें नहीं, बल्कि खादीके कामकी शक्लमें करना चाहते हैं। आप शायद नहीं जानते कि देशमें कितने ज्यादा गरीब लोग हैं। क्या आपको मालूम है कि इस देशके दरिद्रनारायणका पेट कितना बड़ा है? आप जितना भी देंगे, उनके लिए पूरा नहीं पड़ेगा। आप दरिद्रनारायणको शायद न जानते हों। वे आपके शहरों और कस्बोंसे दूर, बहुत दूर गाँवोंमें रहते हैं, जहाँ आप उन्हें देख नहीं पाते। आप उन्हें पहचानते नहीं हैं, क्योंकि आपमें से इतने सारे लोग, इतनी सारी महिलाएँ विदेशी वस्त्र पहनकर आई हैं। क्या आपको मालूम है कि मैंन-चेस्टरका बना वस्त्र खरीदनेमें खर्च किया गया हर रुपया हमारे देशका दारिद्र्य

[1] गांधीजीने हिन्दीमें भाषण किया था।

बढ़ाता है? आपके देशके गाँवों और झोपड़ियोंमें जब गरीब लोग भूखे मर रहे हैं, तब क्या यह उचित है कि आप अपना रुपया-पैसा दूर मैनचेस्टरको भेजें? मैं चाहता हूँ आज आप इस मामलेपर अच्छी तरहसे गौर करें और मैं चाहता हूँ कि आप इसे अपने दिलोंमें गहराईसे महसूस करें। अगर आप सचमुच महसूस करते हैं कि हमारे देशमें कितनी भयंकर गरीबी है तो मैं चाहता हूँ कि उससे आप यही नतीजा निकालें कि आपको विदेशी वस्त्र पहनना छोड़ देना चाहिए। आप आज अपने मनमें इस बातका पक्का निश्चय कर लें कि आप खादी पहनकर तथा खादीके काममें, गरीबोंके इस काममें, मदद देकर देशकी गरीबीको दूर करनेमें अपना शक्ति-भर योग देंगे। मुझे खुशी होती है आपको यह बतलानेमें कि इस कामके लिए मैंने जब मददके लिए हाथ फैलाया था तो बंगलोरके महिला सेवा-समाजकी महिलाओंने अपने जेवर-जवाहरात मेरी झोलीमें डाल दिये थे। वे जानती थीं कि उनका सबसे सच्चा जेवर उनका दिल ही है और शरीरको सजानेवाले जेवरात सच्चे नहीं हैं।

भाषण समाप्त करनेसे पहले मैं आपसे एक बात और कहना चाहता हूँ। मैं आप सबका बड़ा अहसान मानता हूँ, खासकर तुमकुरकी स्वागत-समितिका, जिसने मेरे यहाँ ठहरनेके लिए सारी सुविधायें की हैं। इतने अच्छे इन्तजामके लिए मैं एक बार फिर आपको धन्यवाद देता हूँ। यहाँके हाई स्कूलके हेडमास्टरने मुझे बतलाया है कि उन्होंने गरीब बच्चोंकी मददके लिए एक कोष शुरू किया है और उसको वे मेरे नामपर गांधी-कोष नाम देना चाहते हैं। भाइयो, आप जानते हैं कि मैं स्वयं बड़ा गरीब आदमी हूँ, इसलिए देशके सभी गरीबोंसे मेरी एक रिश्तेदारी है। मुझसे अगर बन पड़ता तो कमसे-कम एक पाई तो मैं इस कोषमें जरूर दे देता, लेकिन मेरे पास अपनी तो एक पाई भी नहीं है। मैं जो भी खाता-पीता या पहनता हूँ वह सब आपका ही है, और बहुत अरसा हुआ मेरी आमदनी तो बन्द हो चुकी है। इसलिए मेरे पास इसमें देनेके लिए एक पाई भी नहीं है। पर मैं जानता हूँ कि आप सभी लोग इस कोषमें कुछ-न-कुछ दे सकते हैं। हमारे देशमें बेशुमार गरीब विद्यार्थी हैं। उन सबको आपकी मददकी दरकार है। मुझे उम्मीद है कि आप सब लोग कमसे-कम अपने शहरके गरीब विद्यार्थियोंकी मदद करेंगे और इस कोषको उपयोगी बनायेंगे। उसकी एक पाई भी मनोरंजन या दूसरे किसी कामपर खर्च मत कीजिए। कोषको उसी कामपर खर्च कीजिए, जिसके लिए इसे शुरू किया गया है। मैं आपको एक बार फिर धन्यवाद देकर आपसे विदा लेता हूँ।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, १८-७-१९२७

१५२. पत्र: मीराबहनको

कुमार पार्क, बंगलोर
१७ जुलाई, १९२७

चि० मीरा,

मैं दो दिन बाहर रहा और कल कोई तार नहीं आया। पर मैं समझता हूँ कि तुम अपने पिछले तारके मुताबिक कल साबरमतीसे वर्धाके लिए रवाना हो गई होगी।

जब क्रिया नकारात्मक हो तब नकारात्मक क्रिया-विशेषण हमेशा क्रियाके साथ ही रहना चाहिए और जब कर्त्ताकी विशेषता कई शब्दोंमें बतलाई जाये, तो विशेषता बतलानेवाला वाक्यांश कर्त्तासे पहले आना चाहिए। इसलिए तुम्हारा लिखा मूल वाक्य 'अब कोई नहीं बातचीत करनेके लिए अन्दर आयेंगे' इस तरह होना चाहिए: 'अब बातचीत करनेके लिए कोई अन्दर नहीं आयेंगे।'

वैसे तो तुम 'कोई सुधार' भी कह सकती हो, पर 'कुछ' कहना ज्यादा ठीक रहेगा। 'कुछ' परिमाणका सूचक है, और 'कोई' का प्रयोग अंग्रेजीके 'समवन' के अर्थमें होता है। लेकिन कभी-कभी 'कुछ' के स्थानपर 'कोई' का भी प्रयोग किया जाता है। जब भी परिमाण या मात्राका बोध कराना हो तो 'कुछ' शब्दके प्रयोगमें गलतीकी गुंजाइश कम रहेगी। तुम 'कोई दूध' नहीं कह सकतीं, 'कुछ दूध' ही कहना पड़ेगा।

तुम मेरी जानकारीके लिए मुझे बतलाओ कि कताई, प्रार्थना, रसोई, इत्यादिमें क्या सुधार चाहती हो। मैं तभी तुमको बतला सकूँगा कि तुमने जल्दबाजीमें कोई गलत नतीजा तो नहीं निकाला; या अगर मैं तुम्हारे सुझावको मान लूँगा, तो वैसा सुधार करनेके लिए कह सकता हूँ।

किसी भी व्यक्तिकी कड़ीसे-कड़ी आलोचना करनेका अधिकार तभी प्राप्त हो सकता है जब वह पहले पड़ोसियोंको अपने स्नेह और अपने विवेकका पूरा-पूरा विश्वास दिला चुका हो, और जब उसे स्वयं इस बातका पूरा भरोसा हो जाये कि यदि लोग उसका निर्णय स्वीकार नहीं करेंगे या उसपर अमल नहीं करेंगे, तो भी उसका मन किंचित् भी क्षुब्ध नहीं होगा। दूसरे शब्दोंमें, आलोचना करने योग्य बननेके लिए यह जरूरी है कि व्यक्तिके मनमें प्रेम हो, चीजोंको सही और स्पष्ट रूपमें ग्रहण करनेकी क्षमता हो और वह व्यक्ति हर अर्थमें सहिष्णु हो।

तुमने भणसालीके लिए 'इमोशनल' के अर्थमें 'भावनात्मक' शब्दका प्रयोग किया है। परन्तु यहाँ चूँकि तुम 'इमोशनल' शब्दसे उनका गुण नहीं, बल्कि अवगुण बताना चाहती हो, इसलिए 'भावनात्मक' शब्द ठीक नहीं है। हाँ, एन्ड्रयूजकी सराहनाके तौरपर तुम उनको 'भावनात्मक' कह सकती हो। भणसालीके बारेमें तुम जो कहना चाहती हो, उसके लिए शायद 'स्वप्नावस्थ' शब्द ज्यादा ठीक रहेगा। अर्थात् वह व्यक्ति जो स्वप्नोंके संसारमें रहता है और यथार्थको नहीं देखता या शायद तुम

भणसालीको सनकी कहना चाहती हो। वह उदात्त भावनाओंवाला व्यक्ति है। परन्तु मुझे उसके बारेमें कुछ चिन्ता होती जा रही है। एकाधिक व्यक्तियोंने मेरा ध्यान उसकी अतिभावुकताकी ओर आकर्षित किया है। तुम यदि उसको किसी तरह अपने प्रभावमें ला सकी हो, तो थोड़ा-बहुत पत्र-व्यवहार करके पूरी होशियारीसे उसके बारेमें उससे ही चर्चा चलाना। परन्तु तुम वही करना जो तुमको पसन्द आये। मैं तुम्हारा काम बढ़ाना नहीं चाहता।

कल मैं मैसूर जा रहा हूँ और वहाँसे २३को लौटूँगा। अपने कार्यक्रमकी एक प्रति भेज रहा हूँ। यदि स्वास्थ्यने साथ दिया तो इस कार्यक्रमके मुताबिक चलूँगा। पर तुम अपने पत्र बंगलोरके पतेपर लिखती रहना। मैं कहीं भी रहूँ, एक दिनके अन्तरसे मुझे पत्र मिलते रहेंगे। कार्यक्रम अभी अस्थायी तौरपर ही बनाया गया है, इसलिए सावधानी रखना ज्यादा ठीक रहेगा।

सस्नेह,

बापू

अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ५२५०)से।

१५३. पत्र : ए० आई० काजीको

स्थायी पता : साबरमती आश्रम
१७ जुलाई, १९२७

प्रिय काजी,

लम्बे अर्सेके बाद आपका खत पाकर बड़ी खुशी हुई। ट्रान्सवालसे मतभेदोंके बारेमें यहाँ इतनी दूरसे आपको कोई ठीक-ठीक सलाह दे पाना कठिन है। लेकिन मुझे आशा है कि श्री शास्त्रीके वहाँ पहुँच जानेसे मामला कुछ सुलझ गया होगा।

मैंने जोहानिसबर्गसे तार मिलते ही उसका उत्तर भेज दिया था। आशा है, वह यथासमय मिल गया होगा। आगे जो-कुछ हो उससे मुझे अवगत कराते रहिए।

यह जानकर खुशी हुई कि मणिलाल दम्पती प्रसन्न हैं और दोनों राष्ट्रकी सेवामें लगे हुए हैं।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत ए० आई० काजी
दक्षिण आफ्रिकी भारतीय कांग्रेस
१७५, ग्रे स्ट्रीट,
डरबन (नेटाल)

अंग्रेजी (एस० एन० १२३६१) की फोटो-नकलसे।

१५४. पत्र : विजयपाल सिंहको

कुमार पार्क, बंगलोर
१७ जुलाई, १९२७

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। बादाम और अंगूरका उल्लेख मैंने उदाहरणके तौरपर किया था। स्थानीय तौर पर मिलनेवाले फल और मेवे निस्सन्देह सबसे अच्छे रहेंगे। परन्तु पोषक तत्त्वोंकी दृष्टिसे देखा जाये तो दूसरी तरहकी जलवायुमें डालके पके फलोंके सेवनमें भी कोई हर्ज नहीं; हाँ शायद विटामिनोंमें कुछ कमी हो जाती हो; किन्तु ये ताजा नींबूके रूपमें बड़ी आसानीसे सुलभ हो जाते हैं। हम गरीब लोगोंके लिए तो सबसे अच्छा आदर्श आहार शायद मूँगफली, नारियल और हरी सब्जियाँ ही हैं, जो कि हर कहीं सुलभ हैं। परन्तु मैं यह बिना किसी निश्चित अनुभवके कह रहा हूँ। इसलिए मैं लोगोंसे कहता रहता हूँ कि वे आहार-सम्बन्धी प्रयोगोंके मामलेमें मेरी बात आँख मूँदकर न मान लें। परन्तु जिनके पास अपना कुछ प्रत्यक्ष अनुभव है और जिन्होंने विज्ञानकी क्रियात्मक शिक्षा पायी है, ऐसे लोग मनुष्यके लिए विभिन्न फलोंकी शारीरिक और मानसिक उपयोगिताओंका पता लगानेके लिए कुछ प्रयोग-परीक्षण करें तो सचमुच वे इस क्षेत्रमें काफी महत्त्वपूर्ण सेवा कर सकते हैं। और इस क्षेत्रमें अनुसन्धानकी सम्भावनाएँ अपरिमित हैं।

स्वास्थ्य-रक्षाके लिए उपवास करते हुए काफी जल लेते रहना जरूरी होता है। मुझे खाली पानीसे मतली आने लगती थी, इसलिए मैं नमक और सोडा लिया करता था। दिल्लीके अनशनसे पहलेके सभी अनशनोंमें मैंने शुद्ध जलके अतिरिक्त अन्य किसी चीजका सेवन नहीं किया था। परन्तु उससे मतली-सी आनेके कारण मैं अधिक मात्रामें जल भी नहीं ले पाता था। मेरे एक मित्रने अभी कुछ ही दिन पहले ४० दिनका उपवास पूरा किया था और वे उस दौरान पूरे परिमाणमें सिर्फ ताजा जल ही लेते रहे, किन्तु उनका स्वास्थ्य बहुत बढ़िया बना रहा।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत विजयपाल सिंह बी०ए०, एल-एल०बी०, एम०एल०सी०,
प्रेमभवन,
मेरठ

अंग्रेजी (एस० एन० १४१८४) की फोटो-नकलसे।

१५५. पत्र : उत्तम भिक्खुको

कुमार पार्क, बंगलौर
१७ जुलाई, १९२७

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला, धन्यवाद। बर्मा जा सकता तो मुझे कितनी खुशी होती! परन्तु मैं जो थोड़ी-बहुत शक्ति फिर हासिल कर सका हूँ उसे यदि मैं बनाये रख सका तो इस वर्षके अधूरे पड़े कार्यक्रमको पूरा करनेमें ही उसे लगाना पड़ेगा। उसके बाद मेरा क्या बनेगा, नही कह सकता।

बर्माके भारतसे अलग होनेके सवालपर मैं यही कह सकता हूँ कि यदि बर्माके लोग अलग होना ही चाहते हों तो उनके साथ मेरी पूरी सहानुभूति है। पर अगर उनको भारतके साथ रहनेमें लाभ हो, तो मैं अवश्य चाहूँगा कि वे सम्बन्ध-विच्छेद न करे। वर्तमान स्थितिमें तो मुझे यही लगता है कि भारत आजकल ब्रिटेनके साथ मिलकर बर्माका शोषण कर रहा है। हम दोनोंकी संस्कृतियोंका मूल एक ही है, इसलिए मुझे यह बात बहुत अच्छी लगती है कि बर्माको भारतमें मिला दिया जाये। परन्तु इस प्रकारका संविलयन सहज, और तब स्वाभाविक ढंगसे होना चाहिए, जब दोनो ही अपनी-अपनी स्वतन्त्र शक्तिको पहचान ले। पर मैं स्वीकार करता हूँ कि मैं यह कोई बड़े अनुभवके आधारपर नही कह रहा हूँ। इसलिए मैं एक सामान्य सिद्धान्त ही सामने रख सकता हूँ, वह यह कि बर्मा अलगसे एक सम्पूर्ण प्रभुता-सम्पन्न राज्य बने या भारतका एक प्रान्त बनकर रहे, इसके निर्णयका एकमात्र आधार यही होना चाहिए कि बर्माका अपना हित किस बातमें है। 'यंग इंडिया'में इसकी चर्चा शुरू करके मैं आपके पक्षको सबल या निर्बल नही बनाना चाहता। यह तो मैं बर्माकी अपनी यात्राके बाद समस्याको स्वयं समझ लेनेके बाद ही कर सकूँगा, बशर्ते कि ईश्वर मुझे इसका अवसर दे। मैं आपका पत्र प्रकाशित नही कर रहा हूँ।

हृदयसे आपका,

उत्तम भिक्खु
महाबोधि सोसाइटी
४-ए०, कालेज स्क्वेअर
कलकत्ता

अंग्रेजी (एस० एन० १४१८५) की फोटो-नकलसे।

१५६. पत्र : नरगिस कैप्टेनको

कुमार पार्क, बंगलोर
१७ जुलाई, १९२७

तुम्हारा खत मिला। तुमने जिन छोटे-छोटे गाँवोंका वर्णन किया है, मेरी बड़ी इच्छा है कि उनको मैं पंचगनी जाकर खुद देख पाता। लेकिन अब ऐसा होगा नहीं क्योंकि मैंने थोड़ा-बहुत दौरा करना शुरू कर दिया है, और अगर मेरी सेहतपर इसका कोई बुरा असर न पड़ा तो यह सिलसिला सालके अन्ततक जारी रहेगा। इस परिस्थितिमें मैं तो यह चाहूँगा कि तुम कुछ बहनें मिलकर मेरे कन्धोंसे दौरोंकी यह जिम्मेदारी थोड़ी कम कर दो। तुम खुद दौरे करो। लेकिन चूँकि तुम लोग करोगी नहीं, इसलिए मुझ बेचारे एक साधारणसे आदमीको ही जगह-जगह झोली फैलाये घूमना पड़ेगा।

मीठूबहन, रतनबहन और जमनाबहन यहीं हैं और अभी कुछ दिन और रहेंगी। मीठूबहनने नफीस किस्मकी खादी काफी मात्रामें बेच ली है।

मुझे पता नहीं कि तुम्हारा मतलब मेरे बारेमें लिखी किस किताबसे है। जहाँ-तक मेरी जानकारी है, किसीने भी इधर दो-तीन महीनोंमें तो ऐसी कोई किताब नहीं लिखी है।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजी (एस० एन० १४१८६) की फोटो-नकलसे।

१५७. पत्र : के० जे० नारायणन नम्बूद्रिपादको

कुमार पार्क, बंगलोर
१७ जुलाई, १९२७

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। आपसे मेरा कहना यही है कि हमारे देशकी अस्पृश्यताके मूलमें अमीर और गरीबके बीचका भेदभाव नहीं है। मुझे तो लगता है कि इसके मूलमें जिनके पास किताबी ज्ञान है, उनका इस ज्ञानसे वंचित लोगोंके प्रति तिरस्कार-का भाव है, और यह भाव जान-बूझकर बरती जा रही क्रूरताकी चरम सीमातक पहुँच चुका है। धर्मकी आड़में किये जानेवाले अन्यायोंमें शायद यही सबसे जघन्य है, और आपको इसका समर्थन करते देखकर मुझे पीड़ा होती है और आश्चर्य भी।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत के० जे० नारायणन नम्बूद्रिपाद
वाडक्कांचेरी पो० ऑ०
(कोचीन राज्य)

अंग्रेजी (एस० एन० १४६२०) की माइक्रोफिल्मसे।

१५८. भाषण: बंगलोर नगरपालिकाके मानपत्रके उत्तरमें[1]

१७ जुलाई, १९२७

भाइयो,

आपने अपनी नगरपालिका परिषद्की ओरसे मुझे मानपत्र भेंट किया, इसके लिए आपको धन्यवाद। मैं इस बातके लिए माफी चाहता हूँ कि मैं इतनी ऊँची आवाजमें नही बोल सकता कि आप सब भाई सुन सके। आपने मानपत्रमें बतलाया है कि आप नगरपालिका परिषद्के सदस्योंकी हैसियतसे क्या कर रहे है। आपके कामसे मुझे बडी खुशी हुई और उसके लिए मैं आपको बधाई देता हूँ। अपने नगरमें तरुणोके लिए अनिवार्य शिक्षा चालू करनेके लिए आप धन्यवाद के पात्र है। और आपने इस सुन्दर नगरमें चौड़ी-चौड़ी सड़कों और बिजलीका जो इन्तजाम किया है, उसके लिए मुझे आपको बधाई देनी पड़ेगी। आपने इस मानपत्रमें जो विवरण दिया है, उससे मुझे लगता है कि आपकी नगरपालिकाका काम ठीक पटरीपर चल रहा है, और आपने जो-कुछ हासिल किया है, उससे सभी लोगोंको सन्तोष होगा। मैं आपको बतला दूँ कि स्वराज्यका सच्चा बीज नगरपालिकाके काममें ही है और मैं चाहता हूँ कि आप इस बातको समझें।

मैं कुछ दिनोसे आपके साथ रह रहा हूँ; पर स्वास्थ्य खराब होनेसे मैं चूँकि बाहर आ-जा नही सकता था, इसलिए आपकी नगरपालिकाका काम, खास तौरसे सार्वजनिक सफाई वगैरहके सम्बन्धमें किया जानेवाला काम खुद जाकर अपनी आँखोंसे नही देख पाया। लेकिन मैं समझता हूँ कि वह आम तौरपर अच्छा ही है। मुझे बतलाया गया है कि आपके यहाँके उच्च और मध्यम वर्गके लोग स्वस्थ है। यदि यह बात सही है, तो मैं आपसे एक सवाल पूछना चाहूँगा। क्या आपके नगरमें गरीब लोग भी है? अगर हाँ, तो क्या आपने नगरपालिकाके सदस्योंकी हैसियतसे उनके मकानोंको साफ-सुथरा और सेहतमन्द बनाये रखनेके लिए काम किया है? क्या आप उनके जीवनमें दिलचस्पी लेते हैं, क्या आप इसकी फिक्र करते है कि वे किस तरह रहते हैं और अपने मकानोंको किस हालतमें रखते हैं? आपने अपने मानपत्रमें यह नही बतलाया कि आपके नगरमें मेहतरोकी क्या दशा है, न ही आपने यह बतलाया कि आप नगरमें बच्चों, बड़ों और बीमारोंके लिए अच्छा दूध सुलभ करनेके लिए क्या करते है। आपके नगरमें अनेक दुकानदार और व्यापारी है जो आपको कर अदा करते हैं। क्या आपने उनके बारेमें कोई पूछ-ताछ की है? क्या वे गाँवोंसे आनेवाले गरीब खरीदारोंको अच्छा आटा और राशन देते हैं? आपके बाजारोंमें दूर-दूरके गाँवोंसे चीजें आती है और आप उनकी मनमाने ढंगसे खरीद करते है पर क्या आपने कभी यह जाननेकी कोशिश की है कि वे दूर-दूरके गाँवोंमें अपने घरोंमें किस तरहकी

१. गांधीजीने हिन्दीमें भाषण दिया था।

जिन्दगी बसर करते हैं? आपके इस मानपत्रसे मुझे इसका पता नहीं लगता कि नगरमें कितने लोग आदतन शराबी हैं और कितने लम्पट हैं और आपने नगरको उन लोगोंसे दूषित होनेसे बचानेके लिए क्या किया है? मैं यह भी जानना चाहूँगा कि आपके नगरमें गायों और मवेशियोंकी क्या दशा है और आपने इस दिशामें क्या काम किया है? क्या आप इन सवालोंके जवाब दे सकते हैं; यदि हाँ, तो मैं आपके साथ और ज्यादा बातें कर सकता हूँ। और यदि नहीं, तो मैं चाहता हूँ, मेरा अनुरोध है कि आप इन सब सवालोंपर गौर करें और नगरपालिकाके अपने काममें इनका हमेशा खयाल रखें।

आपकी नगरपालिकाने चरखेको स्थान दिया है। इसके लिए मैं सचमुच आपका बड़ा शुक्रगुजार हूँ। मुझे लगता है कि आप गरीबोंका खयाल रखते हैं। मुझे पूरा यकीन है कि आपका यह काम जाहिर करता है कि आपने महसूस कर लिया है कि देशको और ज्यादा गरीबीसे बचाने, अपने नगरके गरीब भाई-बहिनोंकी मदद करनेका एकमात्र उपाय चरखेको अपनाना ही है। इसके लिए मैं सचमुच आपका बड़ा ही आभार मानता हूँ। मुझे इस बातसे भी खुशी हुई कि आप नगरपालिकाके कर्मचारियोंको खादी दे रहे हैं। आज यहाँ इकट्ठे हुए आप लोगोंमें से अनेक समझते हैं कि मदद करनेका बस एक ही तरीका है — खादी खरीदना। गरीबोंका कुछ ध्यान रखिए। वे जो वस्त्र आपके लिए बुनते हैं उसे खरीदिए और उनको भरोसा दिलाइए कि आप खादी खरीदते रहेंगे और उनको अपना मेहनताना मिलता रहेगा। मैं ईश्वरसे प्रार्थना करता हूँ कि मुझे स्वास्थ्य प्रदान करनेवाले इस नगरको वह दिन-दिन अधिक समृद्ध बनाये। आप सबने मुझे अपना प्रेम दिया है, मैं इसके लिए आपको धन्यवाद देता हूँ। ईश्वर आपका और आपकी नगरपालिकाका भविष्य उज्ज्वल करे।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, १८-७-१९२७

१५९. भाषण: बंगलोरके मजदूरोंकी सभामें[1]

१७ जुलाई, १९२७

भाइयो,

आपने मुझे राष्ट्रभाषा हिन्दी, मैसूरकी मातृभाषा कन्नड़ और तमिल भाषामें भी मानपत्र दिये हैं। अपने देशके गरीबोंकी सेवाके लिए आपने मुझे एक थैली भी भेंट की है। इस सबके लिए मैं आपका हृदयसे आभार मानता हूँ। गरीबोंकी सेवाके लिए आपने जो भेंट दी है, उसपर मुझे कोई आश्चर्य नहीं है, क्योंकि मैं खुद पिछले पैंतीस वर्षोंसे मजदूर रहा हूँ। मैं जब दक्षिण आफ्रिका गया था, तभीसे मैं

१. महाराजा मिल्सके मल्लेश्वरम् मजदूर संघके मजदूरोंकी सभामें। उनके मानपत्रमें रोग-शय्यापर पड़े एक मजदूरकी बर्खास्तगी, राज्यमें मजदूरोंकी दयनीय स्थिति, सरकारकी उपेक्षा और मजदूर आन्दोलनके प्रति जनताकी आम उदासीनताका उल्लेख था। गांधीजीके हिन्दी भाषणका कन्नड़ अनुवाद गंगाधरराव देशपाण्डेने किया था।

मजदूरोंके कष्टोंसे बड़ी अच्छी तरह वाकिफ रहा हूँ। मैंने खुद भी वैसे ही कुछ कष्ट झेले हैं, इसलिए मैं जानता हूँ कि ऐसे मामलोंमें बाहरसे शायद ही कभी कोई सहायता मिलती है। हमें अपनी मदद आप ही करनी चाहिए, तभी ईश्वर हमारी मदद करेगा। मेरा अपना तो यही अनुभव है। दक्षिण आफ्रिकामें जिन दिनों इन कष्टोंका बोझ दु:सह बन गया था, तब हमने देखा कि दूसरा कोई भी हमारी मदद उतनी अच्छी तरह नहीं कर सकता जितनी कि हम खुद कर सकते हैं और हम धीरजके साथ स्वयं कोशिश करते रहे और सदा ही सही मार्गपर चलते रहे। ऐसा करनेसे ही हमको राहत मिली। अहमदाबादमें भी हमारा यही तजरबा रहा। मजदूरोंने किसी भी सम्पत्तिको आग नहीं लगाई, उन्होंने मालिकोंको डराया-धमकाया नहीं, किसीको नुकसान नहीं पहुँचाया और वे सभी उचित तरीकोंसे, सही मार्गपर चलते हुए अपने उद्देश्यके लिए संघर्ष करते रहे। वे शान्तचित्त रहकर कष्ट-सहन करते हुए संघर्ष करते रहे; उन्होंने अपने मालिकोंसे कहा: "हम कष्टोंके भारसे दबे जा रहे हैं और तुम सुखी हो, ईश्वर तुमको और भी सुखी बनाये।" इसका ठीक असर पड़ा और सचाईकी जीत हुई।[1] कष्ट-सहनके शान्त और साहसपूर्ण मार्गपर इसी भावनासे चला जाता है। इसीको 'सत्याग्रह' कहते हैं। इसका मतलब है कि आप सत्यको आधार बनाकर ही अपना आग्रह करते हैं और अपने उद्देश्यके लिए संघर्ष करनेके दौरान कभी भी सत्य और औचित्यके मार्गसे भटकते नहीं हैं। इसका मतलब है सत्यकी विजय, इसका मतलब है अपनी मदद आप करना। याद रखिए कि आपको अपनी मदद स्वयं करनी है। यह मार्ग आपमें से प्रत्येकके लिए खुला हुआ है; नवयुवक हों, या बूढ़े सभी इसको अपना सकते हैं।

आपने मानपत्रमें कहा है कि आपकी मिलोंमें कामकी परिस्थितियाँ अन्य मिलोंके मुकाबले ज्यादा कठिन हैं। मैं नहीं जानता कि इसमें कितनी सचाई है, लेकिन यदि यह सच है तो मुझे इसका दुःख है। लेकिन मैं एक बात जानता हूँ, और वह यह कि आपकी मिलके डायरेक्टर मेरे एक मित्र चन्दावरकरके दामाद हैं और वे आपके साथ पूरी सहानुभूति रखेंगे। उन्होंने मुझे मिलोंमें आनेको निमन्त्रित किया था और मेरी हर बात माननेकी बात कही थी। मैंने श्री राजगोपालाचारीको भेजा था। उन्होंने आपके यहाँ जाकर मामलेकी पूरी जानकारी हासिल की थी। यह बात आपकी हड़तालके दिनोंकी है। उसके बादसे अब आपकी क्या हालत है, मैं नहीं जानता। पर हालत जो भी हो, इतना आप हमेशा याद रखें कि इसमें आपको अपनी मदद आप करनी है, और आपको अपने पैरोंपर खड़ा होना सीखना है। मैं पूछता हूँ, क्या आप ऐसा कर सकते हैं? आप तो आपसमें ही लड़ रहे हैं, आप मिल-जुलकर कोई भी सम्मिलित प्रयास नहीं करते, और सच पूछिए तो अभीतक आपमें से सभीने अपनी दशा सुधारनेके बारेमें सच्चे दिलसे सोच-विचार ही नहीं किया है; आपमें से कई लोग फालतू बातोंमें अपना समय गँवाते रहते हैं। आप दिलमें यह महसूस ही नहीं करते कि आपमें से एकका दु:ख आप सभीका दु:ख है। आप दारू पीते हैं,

१. देखिए खण्ड १४।

ताश और जुआ खेलते हैं। अगर आप अपनी दशा सुधारना चाहते हैं, अगर आप मनुष्यके रूपमें अपने पैरों खड़े होना चाहते हैं, तो आपको यह सब नहीं करना चाहिए। आपने मुझे यह थैली दी है, इसीलिए न कि आप जानते हैं कि देशमें करोड़ों लोग आपसे भी ज्यादा गरीबीमें दिन काट रहे हैं, आपसे भी ज्यादा क्षुधार्त हैं। आपको समझना चाहिए कि आपको इन गरीबोंकी मदद करनी ही है। आपको यह नहीं भूलना चाहिए कि आप अपनी मिलोंमें जो कपड़ा तैयार करते हैं वह आपके या आपकी जनताके लिए नहीं, बल्कि व्यापारके लिए है। वह आपके मालिकोंके मुनाफेके लिए है, वह आपके देशके गाँवोंमें बसनेवाले गरीब लोगोंको मदद देनेके लिए, उन्हें रोटीका एक टुकड़ा भी दिलानेके लिए नहीं होता। आपको खादी पहननी चाहिए और इस तरह उन लोगोंकी मदद करनी चाहिए जो आपके लिए कपड़ा बुनते हैं। पहले आपको ही उनकी मदद करनी चाहिए, क्योंकि अमीर लोग आसानीसे मदद करने नहीं आते। आपको खादी खरीदकर और पहनकर उनकी मदद करनी चाहिए।

मैं जानता हूँ कि आजकल जो इतने सारे झगड़े खड़े होते रहते हैं, इनकी वजह यही है कि मिल-मालिक और साझेदार आपसमें अपनेको एक मानते हैं और मजदूरोंको अपनेसे अलग। यह समस्या उसी दिन हल होगी जब वे महसूस करने लगेंगे कि मजदूर भी उनके अपने हैं, उनके साथी हैं और मजदूरोंका हित ही उनका अपना हित है। इस बातका ज्ञान हो जानेपर मिलें फलने-फूलने लगेंगी, क्योंकि तब श्रम और पूँजीके हित एक-दूसरेसे अलग या भिन्न-भिन्न नहीं रहेंगे। एक दिन ऐसी भावना पैदा अवश्य होगी, क्योंकि यही धर्म है, धर्मका यही तकाजा है। लेकिन जबतक वह दिन नहीं आता, ऐसी भावना पैदा नहीं होती, तबतक आपका कर्त्तव्य है कि आप अपने उद्देश्यके लिए संघर्ष करते रहें; पर उसे एक धर्म मानकर चलें और सत्य तथा न्यायके मार्गसे कभी विचलित न हों। मैंने आज आपसे जो बातें कही हैं, उनपर आप खूब अच्छी तरह विचार करें। यह मत सोचिए कि अपनी दशा सुधारने या अपनी कोशिशोंको कामयाब बनानेका आपके सामने इसके अलावा कोई दूसरा रास्ता भी है। धर्मके मार्गके अलावा, या न्यायशीलताके अलावा और कोई मार्ग है ही नहीं। इस बातको हमेशा याद रखिए। ईश्वर आपको अपने सभी प्रयासोंमें सामर्थ्य और सफलता दे।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, १८-७-१९२७

१६०. पत्र : मीराबहनको

अधूरा जाँचा है

१८ जुलाई, १९२७

चि० मीरा,

कल तुम्हे एक पत्र लिखा है। इसलिए आज ज्यादा कुछ नही लिखना चाहता।

वालुजकरको तुमने अपनी स्थिति साफ-साफ बताकर बहुत अच्छा किया और तुम्हारी स्थिति बिलकुल ठीक भी है। तुम्हारे हिस्से जो काम आये उसे करनेमें तुम्हें पूरी आजादी होनी चाहिए। गंगूको भी तुम्हारे दामनसे चिपके नही रहना चाहिए। उसे ऐसी तालीम देनी चाहिए जिससे वह स्वतन्त्र रूपसे अपना विकास कर सके। लेकिन यह देखते हुए कि वह तुम्हारी देखरेखमें रहना चाहती है, तुम उससे प्रेमपूर्ण व्यवहार करना और जितना कुछ उसे दे सको, देना।

वहाँ तुम अपने स्वास्थ्यके सम्बन्धमें कोई प्रयोग न करना, बल्कि जो जरूरी हो वही खुराक लेना। जैसा तुम आश्रममें किया करती थी, उसी तरह जितने फलोंकी तुम्हें जरूरत हो, कहकर मँगवा लिया करना; और यदि कोई तुम्हारे पास फल भेजे तो अपनी जरूरत-भरका रखकर बाकी रसोईघरको, यानी विनोबाके पास भेज दिया करो। ऐसा मत सोचना कि तुम्हें उनकी जरूरत है तो दूसरोंको भी है। दूसरोंको ज्वारकी जरूरत होती है, लेकिन तुम्हें तो नही होती। यह बात शायद दुर्भाग्यपूर्ण है कि फल सुस्वादु व्यंजन भी है, और आहार भी है। इतना ही काफी है कि हम सुस्वादु व्यंजनोको भी दवाकी तरह समुचित मात्रामें लेना सीख ले। फिर तो अगर वे दूसरोंको न मिलें तब भी हम जी कड़ा करके उन्हें खा सकते है। वैसे यह स्थिति है बहुत खतरनाक और इसमें जो खतरे है वे इतने जाहिर हैं कि उनके बारेमें बतानेकी आवश्यकता नही है। लोगोंने तो जरूरतकी आड़ लेकर दुराचार-तक करनेमें संकोच नही किया है। लेकिन, यदि हम अपने-आपपर निरन्तर कड़ी दृष्टि रखें तो इन बुरे परिणामोंका भय रखनेकी कोई जरूरत नही। वैसे तो हम जिधर भी मुड़ें उधर खतरे-ही-खतरे हैं। लेकिन चाहे कुछ भी हो, हमें अपने मूल स्वभावके अनुसार ही चलना चाहिए।

यह पत्र, जितना चाहता था उससे बड़ा हो गया है।

सस्नेह,

बापू

[पुनश्च :]

मैं बिलकुल ठीक हूँ।

अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ५२५१)से।

सौजन्य : मीराबहन

१६१. पत्र: जे० बी० कृपलानीको

१८ जुलाई, १९२७

प्रिय प्रोफेसर,

नानाभाईने मुझे बतलाया कि तुमने (लगभग?) ऐसी धमकी दी है कि यदि मलकानीको वापस नहीं लिया गया तो तुम भी विद्यापीठ छोड़ दोगे। यह रुख गलत है। तुम धमकियाँ देकर उदारता पैदा नही कर सकते। और यदि विद्यापीठ मलकानी-को वापस लेना ठीक नही समझता तो उसे उदारतासे रहित कैसे मान लिया जाये? मलकानीको फिरसे रखनेका काफी विरोध किया जा रहा है, इसलिए उसको बहाल करनेका आग्रह गलत होगा। अपने मतपर फिर विचार करो।

जो भी हो, मुझे मलकानीकी ओरसे अभी अन्तिम उत्तर नहीं मिला है। मैं उससे और उसके बारेमें पत्र-व्यवहार कर रहा हूँ। मेरे लेखे तो मलकानीकी भूल समूचे राष्ट्रकी एक दुखद घटना है। उसकी पुर्नानियुक्ति तो कोई खास महत्त्वकी चीज नहीं। मेरे सामने तो एक ही प्रश्न है कि मलकानीके खण्डित व्यक्तित्वको जोड़कर फिरसे अखण्ड व्यक्तित्ववाले मनुष्यका रूप कैसे दिया जाये। मैं इसका हल निकालनेका भरसक प्रयास कर रहा हूँ।

सस्नेह,

बापू

अंग्रेजी (एस० एन० १२६०९) की फोटो-नकलसे।

१६२. पत्र : जे० बी० पेटिटको[1]

कुमार पार्क, बंगलोर
१९ जुलाई, १९२७

प्रिय श्री पेटिट,

श्री शास्त्रीके बारेमें मेरे पत्रपर[2] आपने तुरन्त कार्रवाई की, धन्यवाद। हाँ, मेरी तो यही राय है कि सरकारके खिलाफ कुछ भी नही कहना है। आपने जो बात कही है, मैं समझता हूँ कि उसमें बहसकी गुंजाइश है। सरकारी नौकरी-सम्बन्धी विनियमोका मंशा यही है कि सरकारके किसी भी अधिकारीको उन लोगोसे एक छदाम भी नही लेनी चाहिए, जिनकी उसे सेवा करनी है। परन्तु मुझे लगता है कि यदि कोई वाइसराय, उदाहरणके तौरपर मान लीजिए, अपने क्षेत्राधिकारसे बाहर भी भारतके लिए कोई अच्छा काम करना चाहे और इसके लिए वह इंग्लैंडके अपने मित्रों और सम्बन्धियोसे सहायता प्राप्त करता हो तो उसे सार्वजनिक रूपसे ऐसी सहायता प्राप्त करनेसे रोका नही जायेगा। मुझे इसमें कोई सन्देह नही है कि श्री शास्त्रीके इस मामलेमें सरकार उचित सहायता नही करेगी।[3] मेरे पत्रका अभिप्राय इससे ज्यादा गहरा था। मेरा मत यह है कि सरकार शायद एक निश्चित

१. उनके १६ जुलाईके पत्रके उत्तरमें। श्री पेटिटने उस पत्रमें लिखा था कि [इम्पीरियल सिटीजनशिप] एसोसिएशन श्री शास्त्रीका खर्च नहीं उठा सकती। गांधीजीकी जानकारीके लिए, जे० बी० पेटिटके नाम एम० हबीबुल्लाका १२ जुलाई, १९२७ का एक पत्र भी उसके साथ भेजा गया था। हबीबुल्लाने लिखा था: "सरकार या उसके प्रतिनिधि (एजेंट) को किसी भी गैर-सरकारी संस्थाकी रुपये-पैसेकी मददकी जरूरत पड़नेका तो कोई सवाल ही नहीं उठता। . . . उनको ढाई हजार पौंड प्रतिवर्ष वेतनके रूपमें मिलेंगे, जो दक्षिण आफ्रिकाके मन्त्री-परिषद्के स्तरके मन्त्रीको मिलता है। इसके अलावा पाँच सौ पौंड प्रतिवर्षका भत्ता और सरकार द्वारा किरायेपर लिया साज-सामान सहित एक बँगला और सरकार द्वारा ही खरीदी एक कार भी मिलेगी; साथमें कारके लिए दो सौ पौंड प्रतिवर्षका रख-रखाव भत्ता भी। उनको बँगलेके लिए अपने वेतनका दस प्रतिशत प्रतिवर्ष किरायेके रूपमें और फर्नीचर आदिके कुछ व्ययका दस प्रतिशत प्रतिवर्ष फर्नीचरके इस्तेमालके लिए अदा करना पड़ेगा। हमारी अपनी जानकारीके मुताबिक तो उनको आयकर नहीं भरना पड़ेगा। . . . मुझे यकीन है कि आप भी मानेंगे कि इन शर्तोंको कोई भी कंजूसी-भरा करार नहीं कह सकता।"

२. ५ जुलाई, १९२७ का पत्र।

३. भत्तोंकी राशि बढ़ानेके सुझाव रखे गये थे।

सीमासे आगे नहीं जायेगी। जो भी हो, मैं इस बारेमें और अधिक बहस नहीं करना चाहता।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत जहाँगीर बी० पेटिट
पेटिट बिल्डिंग
३५९, हॉर्नबी रोड
फोर्ट
बम्बई

अंग्रेजी (एस० एन० १२३६७) की फोटो-नकलसे।

१६३. पत्र : एन० बी० थडानीको

कुमार पार्क, बंगलोर
१९ जुलाई, १९२७

प्रिय थडानी,

आपका पत्र मिला। मेरी बात आपने कतई नहीं समझी। मुझे तो यह भी मालूम नहीं था कि आपका विद्यालय बस नामका ही राष्ट्रीय है। मेरी यह शिकायत तो थी नहीं कि मलकानी राष्ट्रीय विद्यालयको छोड़कर सरकारी कालेजमें चले गये। यदि मलकानी महाविद्यालयसे सरकारी कॉलेजमें जानेकी बजाय ज्ञानकी तलाशमें सर्वथा आत्म-त्यागकी भावनासे प्रेरित होकर उत्तरी ध्रुव चले गये होते, या मान लीजिए कि असहयोग आन्दोलनके ही परिणामस्वरूप स्थापित किये गये काशी विद्यापीठ या बिहार विद्यापीठमें भी गये होते और इन दोनोंसे मेरा भी थोड़ा-बहुत सम्बन्ध है, तो भी मेरी शिकायत अपनी जगह ज्योंकी-त्यों बनी रहती। और जिस ढंगसे आपने काम किया है, यदि श्रीप्रकाश बाबू और राजेन्द्रबाबू भी उसी तरह महाविद्यालयके अधिकारियोंकी आँख बचाकर मलकानीको बहका ले जाते, तो मैं उनके आचरणको भी असज्जनतापूर्ण ही मानता। इस मामलेसे मुझे इतना गहरा सदमा इसलिए लगा कि मलकानीके बारेमें मेरी राय बहुत अच्छी थी। मलकानीसे पहले दूसरे प्रोफेसर भी महाविद्यालय छोड़कर गये हैं। उनके आचरणसे मुझे कोई दुःख नहीं हुआ, क्योंकि उनसे मैंने कोई बड़ी आशा नहीं की थी। पता नहीं, मैं अपनी बात अब भी स्पष्ट कर पाया हूँ या नहीं। सिन्ध या गुजरात या किसी भी अन्य प्रान्तमें मैं कोई भेद-भाव नहीं बरतता। यदि मलकानी सिन्धमें कहीं तैनात होते और गुजरातका कोई आदमी उनको बहकाकर अपने यहाँ ले गया होता तो भी मुझे इतना ही बुरा लगता और मैं यही बातें कहता; वह इसलिए कि तब भी मेरी यही भावना होती कि मलकानीमें कमजोरी थी तभी तो वे लोगोंके बहकावेमें आ गये।

आपकी कठिनाइयोंको भी मैं किसी कदर कम करके नहीं आँकता, न आपके उद्देश्यकी अहमियतको ही कम समझता हूँ, लेकिन मुझे लगता यह है कि आपने अपना उद्देश्य पूरा करनेके लिए एक आपत्तिजनक रास्ता अपनाया। आप मलकानी-का मनोबल तोड़कर कभी भी सिन्धी नवयुवकोंका मनोबल दृढ नहीं बना सकते। गुजरातमें अपनी डूबती नौकामें पतवार सँभाले, भूखों मरते मलकानीको उनकी पत्नी और उनकी सास गुस्सा भरी आँखोंसे देख रही होतीं और उनके मित्र लोग मलकानीके पागलपनपर नाराजीसे बकझक कर रहे होते, यह एक ऐसा दृश्य होता जो मलकानीको आपके बच्चोंके आदर्श प्रोफेसरके रूपमें उभारकर सामने लाता और सारा देश उस उच्चादर्शपूर्ण उदाहरणसे कुछ सीख सकता था। क्या अब भी मेरा अभिप्राय आप बिलकुल स्पष्ट रूपमें नहीं समझ पाये? आप क्षण-भरके लिए भी अपने मनमें ऐसा विचार मत लाइए कि मैंने इसे इतना महत्व सिर्फ इसलिए दिया कि इससे गुजरात महाविद्यालय परेशानीमें पड़ने जा रहा है। मैंने अपने जीवनमें ऐसी अनेक संस्थाएँ बनते-बिगड़ते देखी हैं, और इनमें से कुछके साथ मेरा काफी गहरा सम्बन्ध भी रहा है। मेरे लेखे तो उनका महत्त्व इसी बातमें निहित था कि उन्होंने देशके लिए कुछ वीर नवयुवक कार्यकर्त्ता प्रस्तुत करके अपना कर्त्तव्य पूरा कर लिया। आपको यह जाननेमें शायद दिलचस्पी होगी कि इस्तीफा वापस लेनेका जो पत्र मलकानीने भेजा था, उसे लेकर विद्यापीठकी सीनेटमें काफी गरमागरमी रही है। कई प्रोफेसरोंने जो पहले भी हमेशा ही मलकानीका थोड़ा-बहुत विरोध करते थे, मलकानीको फिर उसी पदपर बहाल करनेका बहुत ही सख्त विरोध किया। फिर इस सवालके बारेमें मेरी राय पूछी गई। मैंने अपनी यही राय दी कि जब इतना विरोध हो रहा है तो मलकानीको बहाल नहीं करना चाहिए। खुद मलकानीके लिए और उन प्रोफेसरोंके लिए भी यह स्थिति बहुत अटपटी होगी। इससे महाविद्यालयका भी नुकसान होगा। इसलिए जहाँ-तक मलकानीका सम्बन्ध है, महाविद्यालयके हित-अहितके प्रश्नका जो फैसला होना था हो चुका है। हाँ, खुद मलकानीका सवाल जो हमारे लिए निरन्तर दु:ख और चिन्ताका कारण बना हुआ है, ज्योंका-त्यों कायम है। मैं अपनी राय दे चुका हूँ। वह यह है कि मलकानी एक गलत कामपर दूसरा गलत काम करके सफेदी नहीं पोत सकते, और इसलिए अब उन्हें आपको तबतक छोड़कर नहीं जाना चाहिए जबतक कि आपको उस जगहके लिए कोई दूसरा आदमी न मिल जाये। परन्तु यदि आप मेरी राय पूछें, तो वह बिलकुल यही है कि मलकानीको तभीतक आपकी संस्थामें रहना चाहिए जबतक कि उनका रहना बिलकुल अनिवार्य हो, आपको तुरत ही उस पदके लिए दूसरे आदमीकी खोज शुरू कर देनी चाहिए, आदमी खोजनेके लिए आपको एक अवधि निर्धारित कर लेनी चाहिए और उस अवधिमें आपको दूसरा आदमी मिले या न मिले, उसके समाप्त होते ही मलकानीको आपकी संस्थाको छोड़ देनी चाहिए और या तो अपनी पसन्दका कोई काम करना चाहिए या फिर मैं जो काम भी उनसे कराऊँ वही करना चाहिए। मै आपको बता दूँ कि मैं अबतक भी उस सदमेसे अपनेको पूरी तरह सँभाल नहीं पाया हूँ। बारडोलीके मामलेने भी मेरी नींदमें कभी बाधा

नहीं पहुँचाई थी, पर मलकानीका मामला पहुँचा रहा है। इसपर आपको मुझसे यह कहनेका पूरा अधिकार है कि यदि आप 'गीता'की उस सीखपर अमल नहीं करते जिसका आप इतना दम भरते हैं और यदि आप बिना किसी ठोस आधारके लोगोंको इतना विश्वास देते हैं तो फिर आपपर कोई तरस क्यों खाये। मैं आपका फैसला सिर-माथे लूँगा और अपनी सफाईमें बस इतना ही कहूँगा कि मैं अपने मूल स्वभावपर इस तरह एकाएक काबू नहीं पा सकता। कृपया यह पत्र मलकानीको पढ़वा दीजिए।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत एन० बी० थडानी
हैदराबाद (सिन्ध)

अंग्रेजी (एस० एन० १२६०६) की फोटो-नकलसे।

१६४. पत्र : के० एस० कारन्तको

कुमार पार्क, बंगलोर
१९ जुलाई, १९२७

प्रिय मित्र,

आपका पत्र और पदक प्राप्त हुआ। आपके प्रश्नोंके उत्तर ये रहे:

१. मैं नहीं समझता कि अपने साहूकारोंकी खातिर बीमा कराना किसीका कोई नैतिक दायित्व हो सकता है। इतना काफी है कि आदमीके शरीरमें जबतक जान रहे तबतक वह अपने साहूकारोंका रुपया चुकानेमें एड़ी-चोटीका पसीना एक करता रहे। और सबसे बढ़िया बात तो यह है कि कभी किसी भी कारण कोई कर्ज ही न लिया जाये। बीमेके सम्बन्धमें यह नैतिकता बतलानेके साथ ही मैं आपको आगाह कर दूँ कि सिर्फ मेरी राय जानकर ही आप अपनी बीमा पॉलिसी खारिज मत कर दीजिए। मेरी रायके कारण नहीं, लेकिन अगर आपके मनमें खुद ही ऐसा भाव पैदा हो जाये कि बीमा पॉलिसी लेना गलत है तो दूसरी बात है, लेकिन जबतक बात ऐसी नहीं हो तबतक पॉलिसी बनाये रखनेमें न तो कुछ गलत है और न कोई पाप ही है। इसलिए मैं जल्दबाजीमें पॉलिसी छोड़ देनेसे आपको रोकूँगा। बीमा पॉलिसी-जैसी वैध चीजोंको, जिन्हें आम तौरपर बिलकुल उचित माना जाता है, छोड़ना तभी ठीक होगा जब पहले आपके मनमें ईश्वरके प्रति एक निश्चित, जीवन्त आस्था पैदा हो जाये और आप ईश्वरपर ही पूर्णतया निर्भर करने लगें। इस प्रकारके त्यागके पहले और भी अनेक मानसिक परिवर्तन होने जरूरी हैं।

२. मेरा खयाल है कि आपने विवाह-समारोहमें शामिल होकर बिलकुल ठीक किया। यह बताता है कि वचन देनेमें जल्दबाजीसे काम नहीं लेना चाहिए।

३. मैं कीर्तनों और नाटकोंमें काफी बड़ा अन्तर मानता हूँ। नाटकोंकी समस्या काफी गम्भीर है, और चूँकि आप अभिनेताओंके जीवनके बारेमें स्वयं सब-कुछ जानते हैं, इसलिए उस पेशेसे दूर रहना ही ज्यादा अच्छा रहेगा। लेकिन मुझे इसके सम्बन्धमें पूरी और प्रामाणिक जानकारी नहीं है। नाटकोंका जन्म मानव जातिके साथ ही हुआ। मैं नहीं कह सकता कि नाटकोंने मानवको कितना उन्नत बनाया है। मैंने नाटकका इतिहास नहीं पढ़ा। इसलिए आपको मेरी रायको ही प्रमाण मानकर नहीं चलना चाहिए। इसमें आप या तो अपने ही विवेकसे काम लें या फिर किसी ऐसे पथ-प्रदर्शकके पास जायें जो इसके बारेमें सचमुच आत्मविश्वासके साथ मार्ग-दर्शन कर सके और जिसके जीवनकी पवित्रताके बारेमें आप निःशंक हों। चौथे प्रश्नका उत्तर भी इसीमें आ जाता है।

५. मैथुनमें पुरुष तो हर बार कुछ-न-कुछ जीवनी शक्ति खोता ही है, पर स्त्रियोंमें ह्रासकी यह प्रक्रिया केवल प्रसवसे आरम्भ होती है।

६. एम० ब्यूरो महाशयने स्वप्न-दोषका कोई उल्लेख नहीं किया है। यह निस्सन्देह हानिकारक होता है। उन्होंने पुरुषके शरीरमें आवश्यकतासे अतिरिक्त पोषक तत्त्वोंके वीर्य बननेका ही उल्लेख किया है, बस। लेकिन वीर्यका संवर्धन और संरक्षण करना अपेक्षित है, जिससे सन्तानोत्पत्तिकी इच्छा होनेपर उसका उपयोग किया जा सके अथवा उसे आत्मिक शक्तिमें रूपान्तरित किया जा सके। मेरा अपना यही विश्वास है। एम० ब्यूरो महाशयका भी यही मत है या नहीं मैं नहीं कह सकता, क्योंकि अभी मेरे पास यहाँ वह पुस्तक नहीं है।

आपके मित्रोंको अगर यह जानकारी रहे कि आपको दिये गये उनके उपहार सार्वजनिक कार्योंके लिए ही उपयोगमें लाये जायेंगे, तो उन उपहारोंको स्वीकार करनेमें कोई हर्ज नहीं। हो सकता है कि अपने मित्रोंको उपहार देकर ही सार्वजनिक कार्योंमें सहायता करना उन्हें ज्यादा अच्छा लगता हो। लेकिन इसमें भी कोई संदेह नहीं कि सबसे अच्छी बात तो यही होगी कि मित्रोंको ऐसा तरीका अपनानेसे विरत किया जाये।

हृदयसे आपका,

श्री के० एस० कारन्त
मार्फत श्री जी० एन० पोई
निहालचन्द बिल्डिंग
न्यू क्वीन्स रोड
गिरगाँव, बम्बई

अंग्रेजी (एस० एन० १४१८७) की फोटो-नकलसे।

१६५. पत्र : एम० एस० केलकरको

कुमार पार्क, बंगलोर
१९ जुलाई, १९२७

प्रिय डाक्टर,

आपकी विवेकपूर्ण चेतावनीकी कृपाके लिए धन्यवाद। मैं तो बस उसी डाक्टर-की सलाहपर चल रहा हूँ जो यहाँ बराबर मेरी जाँच करता रहता है। वह यहाँ विक्टोरिया अस्पतालका प्रधान है और एक काफी होशियार और सधे हुए चिकित्सकके रूपमें मशहूर है। फिर भी, मैं इस बातका खयाल रखते हुए ही दौरा करता हूँ कि मुझे कोई ज्यादा श्रम न पड़े। पर मैं आपकी इस बातसे बिलकुल सहमत हूँ कि यदि मैं समुद्र-तटके किसी स्थानमें जमकर रहूँ तो ज्यादा अच्छा रहेगा। हाँ, आपके पत्रने मुझे और अधिक सतर्क कर दिया है। मैं अपनी सेहतका पूरा खयाल रखूँगा और आवश्यकता पड़नेपर अपने ऊपर और अधिक प्रतिबन्ध लगानेमें संकोच नहीं करूँगा।

मैं उत्तमचन्दके साथ सम्पर्क बनाये हूँ। मैं जानता हूँ कि उनके और काकासाहब-के भी स्वास्थ्यमें काफी सुधार हो रहा है। उनके स्वस्थ होनेका राज निश्चय ही आपकी चिकित्सामें होगा। मुझे यह जानकर भी बड़ी प्रसन्नता हुई कि गंगाबहनका स्वास्थ्य भी निरन्तर सुधर रहा है।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी (एस० एन० १४१८८) की फोटो-नकलसे।

१६६. पत्र : सूरजप्रसाद माथुरको

स्थायी पता : साबरमती आश्रम
१९ जुलाई, १९२७

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मेरे जीवनका मौजूदा तौर-तरीका, मेरे पिछले जीवनकी प्रतिक्रियाके रूपमें समझना गलत होगा। मैं अपने पिछले जीवनकी स्वयं जो भर्त्सना करता हूँ, उसमें शायद अतिरंजना हो। याद रखनेकी बात यह है कि मैं अपनी भर्त्सना उसी मानदण्डको सामने रखकर करता हूँ जो मैंने अब अपने लिए निश्चित कर लिया है। अपनी पत्नीके साथ सहवासके दिनोंमें भी सम्पूर्ण संयमके जीवनके प्रति मेरे मनमें बड़ा आकर्षण था। किन्तु यद्यपि मेरी आत्मा तो ऐसे जीवनके लिए लालायित थी, फिर भी इन्द्रियाँ उसके साथ नहीं चल पाती थीं। मैं इन्द्रियोंको बड़े प्रयत्नके बाद ही काबूमें कर सका और ईश्वरने भी निश्चय ही इसमें मेरी सहायता की। वह इस

तरह कि एक तो ईश्वरने ऐसे संयोग उत्पन्न किये जिससे मुझे बहुधा अपनी पत्नीसे दूर रहना पड़ा, और दूसरे, उसने अक्सर मेरे सामने ऐसी परिस्थितियाँ खड़ी की जिनका सामना करनेके लिए भी अपनी विषय-वासनाको नियंत्रित करना जरूरी हो गया। मैं नही समझता कि औसतन एक आदमी अपनी पत्नीके साथ जितनी बार लिप्त होता है, मैं उससे अधिक बार हुआ हूँ। लेकिन इस प्रकारकी तुलना करना ही अपने-आपमें गलत है। वासनामें अपने लिप्त रहनेका औचित्य ठहरानेके लिए यह तर्क कभी नही देना चाहिए। प्रत्येक व्यक्तिको अपने आचरणके नियम स्वयं ही निश्चित करने चाहिए और फिर पूरी सख्तीके साथ उनके अनुसार ही अपना जीवन चलाना चाहिए। पाप तो आखिरकार मनकी एक स्थिति है। और यह तो सही है कि पापकर्म करनेवालेको प्रकृतिके हाथो अवश्य ही दण्डित होना पड़ेगा, पर पापका ज्ञान न होनेपर वह अपने-आपको दोषी नही मानेगा। लेकिन मुझे तो ज्ञान है, इसलिए मैं अपने पापकर्मको उचित नही ठहरा सकता और न अपनेको दोष-मुक्त ही मान सकता हूँ। दूसरा आदमी तो उसे अज्ञानवश करता है, इसीलिए वह अपने-आपको दोषी नही ठहराता और समाज भी शायद उसे दोषी नही ठहराता। मैं समझता हूँ कि इतनेमें आपकी सभी बातोका उत्तर आ गया है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत सूरजप्रसाद माथुर
अध्यापक
सर हारकोर्ट बटलर हाई स्कूल
हेलेन लॉज,
शिमला

अंग्रेजी (एस० एन० १४१८९) की फोटो-नकलसे।

१६७. पत्र : गंगाधर शास्त्री जोशीको

कुमार पार्क, बंगलोर
१९ जुलाई, १९२७

प्रिय मित्र,

पत्र लिखने और मेरे प्रश्नोका उत्तर देनेका कष्ट उठानेके लिए आपको धन्यवाद। क्या आप आयुर्वेदिक चिकित्सा-पद्धतिकी वर्तमान स्थितिमें भी उसे सस्ती, सरल और कारगर मानते हैं। १८९१ से ही मैं अपने ढंगसे आयुर्वेदकी सफलताके लिए सक्रिय रहा हूँ और जितना मुझसे बन पड़ा मैंने वैद्योपर पैसा खर्च किया है और अपने मित्रोको उनपर खर्च करनेको प्रेरित करता हूँ। परन्तु मेरे अपने अनुभवके मुताबिक यह पद्धति न तो सस्ती सिद्ध हो पाई, न सरल और न कारगर ही। कुछ नुस्खे तो बड़े ही पेचीदा किस्मके होते हैं। वैद्योंको भी उतना ही पैसा लेते देखा-सुना गया

है जितना कि डिग्रीधारी डाक्टर लोगोंको। मैं ऐसे आयुर्वेदाचार्योंको भी जानता हूँ जो आजकल १,००० रुपये प्रतिदिन फीस लेते हैं। ऊँचे-ऊँचे आयुर्वेदाचार्योंकी फीस गरीबोंके वसकी नहीं होती। और दुर्भाग्य यह कि मैंने अनेकानेक मरीजोंको आयुर्वेदिक चिकित्सासे कोई लाभ न होता देखकर पाश्चात्य देशोंकी डिग्रियाँ-प्राप्त चिकित्सकोंकी शरणमें जाते हुए भी देखा है। वैसे, मैंने इसका उलटा भी होते देखा है। लेकिन लगता है कि इस हालतमें एलोपैथीका पलड़ा भारी रहा। मेरी अपनी इच्छा तो यही रही है और अब भी है कि आयुर्वेदिक पद्धति सफल सिद्ध हो; भले ही उसका कारण इतना ही हो कि मैं एक कट्टर शाकाहारी व्यक्ति हूँ और कई कारणोंसे जिन्हें यहाँ बतानेकी जरूरत नहीं, मेरे मनमें एलोपैथीके प्रति एक बड़ा भय बना हुआ है। लेकिन आयुर्वेदिक और एलोपैथिक दोनों ही प्रकारकी दवाइयोंके बारेमें थोड़ा-बहुत अध्ययन करके मैंने मामूली घरेलू चिकित्साके लिए भी आयुर्वेदकी बजाय एलोपैथिक दवाओंका ही प्रयोग करना उचित समझा है। मिसालके तौरपर मैं कह सकता हूँ कि मलेरियाके लिए कुनैन, मामूली दर्दके लिए आयोडिन और रोगाणुओंका नाश करके चीजोंको शुद्ध करनेके लिए 'कोण्डीजफ्लुइड'से ज्यादा कारगर कोई चीज मुझे दिखाई नहीं दी। लेकिन मैं अपने अनुभवोंका वर्णन करनेमें आपका समय नष्ट नहीं करना चाहता। यदि आपको असुविधा न हो तो कृपया अपनी इस बातका खुलासा कीजिए कि आयुर्वेदका उद्देश्य थोड़े समयके लिए रोगसे राहत दिलानेके बजाय शरीरके समूचे तंत्रको ही शुद्ध बनाना है। आपने जो पुस्तिकाएँ भेजनेकी कृपा की है, मैं उनको समय मिलनेपर अवश्य देखूँगा। मैं उन मित्रोंकी रायका भी इन्तजार करूँगा जिनको आपने मेरे पत्र दिखाये हैं। यदि पण्डित सातवलेकरसे आपको सम्बन्धित पुस्तकें न मिलें तो कृपया मुझे लिखिएगा।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत गंगाधर शास्त्री जोशीजी
९/२ सदाशिव पेठ
पूना सिटी

अंग्रेजी (एस० एन० १४१९०) की फोटो-नकलसे।

१६८. पत्र: सतीशचन्द्र दासगुप्तको

कुमार पार्क, बंगलोर
१९ जुलाई, १९२७

प्रिय सतीशबाबू,

आपका पत्र उसी दिन मिला जिस दिन डॉ० राय यहाँ आये। उन्होंने मुझे प्रतिष्ठानके बारेमें बड़ी चिन्तनीय सूचना दी। उन्होने बताया कि आपका स्वास्थ्य इस योग्य बिलकुल नही है कि आप काम कर सकें, फिर भी चूँकि सोदपुरमें आपकी उपस्थिति जरूरी है इसीलिए आप कलकत्ता वापस जा रहे हैं। उन्होने यह भी कहा कि क्षितीश बाबूपर कामका भार बहुत अधिक बढ़ गया है। मैं जानता हूँ कि डॉ० राय निराशाका पक्ष ही अधिक देख पाते हैं, इसलिए मैंने उनकी दी हुई सूचनाको उतना महत्त्व नही दिया। पर मेरा खयाल है कि सार-रूपमें उनकी बात सही है। इसलिए आप मुझे वहाँके कामका सारा हालचाल लिखिए। लेकिन मैं आपसे आश्वासन चाहता हूँ कि काम चाहे जिस प्रकारका भी हो, आप अपने ऊपर उसका अत्यधिक भार नही पड़ने देंगे। जानता हूँ, आप इसपर हँसेंगे और फबती कसेंगे "खुदरा फजीहत दिगरा नसीहत"। लेकिन सच मानिए, मैं समझता हूँ कि मैं अपनी शक्ति संरक्षित रखनेका भरसक प्रयत्न करता हूँ। फिर मेरी रक्षाके लिए इतने सारे सतर्क लोग भी तो मेरे साथ रहते हैं। सचमुच मेरे लिए यह शर्मनाक बात है कि इतना सब होनेके बावजूद मैं जब-तब बीमार पड़ जाता हूँ। मुझे बीमारीसे अपना बचाव करनेमें समर्थ होना चाहिए था। लेकिन मैं पहले भी कई बार कह चुका हूँ कि मुझे इस सबकी समझ जीवनमें इतने विलम्बसे आई कि फिर अपने शरीरको सभी बीमारियोसे लोहा लेने लायक बना पाना सम्भव नही रह गया। शक्तिकी मितव्ययिता की मेरी अपनी धारणाके मुताबिक मैंने तीस वर्षकी अवस्थातक तो शक्तिका अपव्यय करनेका कोई भी अवसर हाथसे नही जाने दिया था। इसके बाद ही मैंने सच्चे अर्थमें शक्तिका संरक्षण शुरू किया, लेकिन समझ धीरे-धीरे, थोड़ा-थोड़ा करके ही आई। मेरे जीवनमें बीमारियोका यह भी एक, लेकिन सबसे मुख्य, कारण है। मैं चाहता हूँ कि मेरे सभी सहकर्मी मेरी गलतियोंसे सबक लें। लेकिन यह तो कोरी दार्शनिकता ही है। आप जानते ही हैं कि मैं क्या कहना चाहता हूँ। खादी या प्रतिष्ठान — दोनों एक ही हैं — किसीके भी सम्बन्धमें आप चिन्तित मत रहिए। होना यह चाहिए कि हमारे पास जितनी शक्ति है, स्फूर्ति है, अपने वश-भर हम उसका ज्यादासे-ज्यादा उपयोग करते रहें; अपना काम पूर्ण विनम्रतापूर्वक करते रहे और फिर जनक महाराजकी तरह कह सकें "खादी रहे या जाये, इससे अन्तर क्या पड़ता है?"

बंगालके दौरेके बारेमें यह है कि जबतक आप स्वयं दौरेकी भाग-दौड़ बर्दाश्त करने लायक स्वस्थ न हो जायें तबतक मुझे वहाँ बुलानेकी इच्छा न करे। आप

इसके बारेमें तबतक लोगोंसे चर्चा मत कीजिए जबतक आप यह न देख लें कि आजमाइशके तौरपर किये जानेवाले मौजूदा दौरेमें मेरा स्वास्थ्य कैसा रहता है। मैं स्वीकार करता हूँ कि मैं बहुत ज्यादा चंगा नहीं हूँ और न बहुत ज्यादा शक्तिका ही अनुभव करता हूँ। पर मैं जिस डाक्टरकी देखरेखमें हूँ, वह काफी होशियार और चौकस आदमी है। उसने मुझे बतलाया है कि रक्तके दबाव या किसी और बातमें कोई बिगाड़ नही है और अब मैं बिलकुल अच्छा हूँ।

हिन्दू-मुस्लिम समस्याको मैं अपने मनसे दूर ही रखता हूँ, क्योंकि उसके बारेमें सोचनेसे मुझे असहनीय पीड़ा होने लगती है। फिर भी वहाँ जो भी घटे, उसकी पूरी सूचना मुझे जरूर देते रहिएगा।

मैंने अपनी शक्ति बचानेके खयालसे ही हेमप्रभादेवीको अलगसे पत्र नही लिखा है। पर मुझे उनका ध्यान सदा बना रहता है।

सस्नेह,

आपका,

अंग्रेजी (एस० एन० १९७८७) की माइक्रोफिल्मसे।

१६९. पत्र: आश्रमकी बहनोंको

मौनवार, आषाढ़ बदी ५ [१९ जुलाई, १९२७][1]

बहनो,

आज मुझे बहुतसे पत्र लिखने हैं, परन्तु इसे कैसे छोड़ा जा सकता है?

इसलिए एक वारमें दो निशाने लगाने हैं। यह एक अंग्रेजी वाक्यका अनुवाद है। उसका शब्दार्थ यह है: एक पत्थरसे दो चिड़ियाँ मारना। ऐसी कहावतें तो वही गढ़ी जा सकती हैं जहाँ पग-पगपर हिंसा होती हो। मेरा अनुवाद भी दोषरहित नहीं है, फिर भी हम किसीको मारनेकी दृष्टि रखे बिना भी तो निशाना लगा सकते हैं।

मुझे जो निशाने लगाने हैं, उनमें से एक तो है तुम्हें पत्र लिखना; और दूसरा चि० वसुमतीके पत्रका जवाब भी उसीमें दे देना। वह पूछती है: "आप कहते हैं कि बहनोंको जैसे रोटी बनाना आना चाहिए, वैसे ही गीताका उच्चारण भी आना चाहिए। यह कैसे हो सकता है? इसमें तो बहुत समय चला जायेगा।"

समय तो जायेगा ही, परन्तु दृढ़ सकल्पसे क्या नही हो सकता? अधिक नहीं थोड़ा वक्त भी दिया जाये, तो काम हो सकता है। बड़ी उम्रमें रोटी बनानेमें भी मुसीबत होती है। फिर भी वह मेहनतसे बन सकती है। बहनोंको उच्चारण नही आता,

१. पत्रमें कर्नाटककी बहनोंके संस्कृत उच्चारणकी प्रशंसा की गयी है और आश्रमकी बहनोंसे अपना उच्चारण सुधारनेका अनुरोध किया गया है। इसकी चर्चा पिछले एकाधिक पत्रोंमें है; और वे सब पत्र इसी वर्षके हैं।

इसमें दोष उनका नहीं, माँ-बापका और विवाहित हों तो ससुरालवालोंका है। मगर औरोंका दोष देखकर हम क्यों रोयें? दोष कैसे दूर किया जा सकता है, यह जान लें। आश्रममें हम अपनी ही बुराई देखते हैं और फिर उसे दूर करनेकी कोशिश करते हैं। इस कामके पीछे पागल होनेकी भी जरूरत नहीं है। आश्रमके दूसरे छोटे-मोटे जरूरी काम करते हुए जितना हो सके उतना प्रयत्न उच्चारणके लिए करें।

मेरे लिखनेका मुद्दा तो यही था कि कर्नाटकमें बहुत-सी बहनें गुजरातके पुरुषोंसे भी अधिक शुद्ध उच्चारण करती हैं।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ३६५८) की फोटो-नकलसे।

१७०. पत्र : जेठालाल गांधीको

बंगलोर
आषाढ़ बदी ५ [१९ जुलाई, १९२७][1]

भाई जेठालाल,

तुम्हारा पत्र और स्नातकोंके बारेमें प्रकाशित तुम्हारी पत्रिका मिली। पत्रिका आज ही पढ़ पाया। मैं देखता हूँ कि इसमें तुमने खूब मेहनत की है। पत्रिका उपयोगी है। अवकाश मिलनेपर 'यंग इंडिया' और 'नवजीवन' में भी मैं उसका उपयोग करनेका विचार रखता हूँ।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]
साबरमती स्नातक विभाग, पुस्तक ६, संख्या ४, शिशिर १९८४, पृ० ३४

१७१. भाषण : मैसूरमें विद्यार्थियोंके समक्ष[2]

१९ जुलाई, १९२७

प्रिन्सिपल साहब, आचार्यगण, बहनो और भाइयो,

आपने मानपत्र देकर मुझे सम्मानित किया है। इसी तरह इस देशके दरिद्र-नारायणकी सेवाके लिए ७०० रुपयोंकी एक थैली भेंट करके भी आपने मेरा सम्मान किया है। मैं इन दोनोंके लिए सच्चे मनसे आपको धन्यवाद देता हूँ। मुझे खेद है कि आपके सामने मैं अपना समूचा हृदय उँडेलकर नहीं रख सकता, जितना मुझे कहना है उतना सब नहीं कह सकता। गाँवों और शहरों दोनोंही जगह समान रूपसे आपने मेरे प्रति जो अपार कृपा दिखाई है, उसका मैं थोड़ेसे-थोड़ा प्रतिदान भी नहीं दे सकता।

१. इस तारीखको गांधीजी बंगलोरमें थे।
२. गांधीजीने हिन्दीमें भाषण दिया था और गंगाधरराव देशपाण्डेने उसका कन्नड़में अनुवाद किया था।

किसी भी विद्यार्थीको ऐसा कोई आग्रह नहीं रखना चाहिए कि मैं इस प्रकारके समारोहमें अंग्रेजीमें भाषण करूँ। अगर मैं अंग्रेजीमें बोलूँ तो यहाँ उपस्थित लोगोंमें से कुछ लोग मेरी बात नही समझेंगे। इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि मुझे अंग्रेजीसे बड़ा लगाव है। किन्तु यदि हम अपनी मातृभूमिकी पर्याप्त सेवा करना चाहते हैं और यदि हमारा उद्देश्य विभिन्न वर्गोमें ज्यादा आपसदारी और मैत्रीका भाव पैदा करना हो तो वह अंग्रेजीके ज्ञानका प्रचार करके नही किया जा सकता। इसीलिए मैं विद्यार्थियोंसे एक आग्रह करता हूँ और उनको यही मेरा सन्देश भी है कि विद्यार्थियोंको हिन्दीका ज्ञान बढ़ाना चाहिए और अपने-आपको मातृभूमिकी सेवामें लगाना चाहिए। अपने देशके विद्यार्थियोंके साथ दस वर्षोसे मेरा सम्पर्क है, तभीसे जब मैं स्वदेश लौटकर आया था। मैं विद्यार्थियोंकी कठिनाइयों, उनके कष्टोंसे परिचित हूँ। मैं लगभग हर रोज उनसे मिलता रहा हूँ। मैं उनकी कमजोरियाँ भी जानता हूँ। मेरा यह सौभाग्य रहा है कि उनके हृदयमें मेरे लिए स्थान है। वे मेरे सामने अपना हृदय उँडेलनेमे संकोच नहीं करते, बल्कि मुझे अपनी वे बातें भी निस्संकोच भावसे बतला देते हैं जिनको वे अपने माता-पिता तकसे नही कहते। मुझे नही सूझता कि मैं उनके अशान्त मनको कैसे शान्त करूँ, या उनको क्या सन्देश दूँ। उनके दुःखोंसे मैं दुखी होता हूँ, और उनके कष्टोंको कम करनेके लिए मैं प्रयत्नशील रहा हूँ। लेकिन इस संसारमें सच्ची सहायता यदि कोई कर सकता है तो वह ईश्वर ही है। हमें उसीकी ओर देखना चाहिए। अन्य कोई भी कारगर सहायता नहीं कर सकता। ईश्वरपर अविश्वास करने, उसे न माननेसे बढ़कर दूसरा कोई पाप संसारमें नही। आजकलके विद्यार्थियोंमें नास्तिकताकी भावना प्रबल होती जा रही है। इस स्थितिको देखकर मुझे हार्दिक संताप होता है। जब भी हिन्दू विद्यार्थियोंसे मेरी मुलाकात होती है, मैं उनको ईश्वरका ध्यान करने, प्रार्थना करने और रामनाम जपनेकी सलाह देता हूँ। वे मुझसे तरह-तरहके सवाल पूछते हैं — जैसे यह कि ईश्वर कहाँ है, राम कहाँ है? मुसलमान युवकोंसे भेंट होनेपर मैं उनसे 'कुरान शरीफ' पढ़ने, उसकी हिदायतोंके मुताबिक अपनी जिन्दगीको ढालनेकी बात कहता हूँ। वे भी मुझसे इसी तरहके सवाल पूछते हैं। ईश्वरको नकारनेकी ओर ले जानेवाली शिक्षा देश-सेवा या मानवताकी सेवाके काम नहीं आ सकती। आपने अपने मानपत्रमें मेरी देश-सेवाका जिक्र किया है। मैंने जितना कुछ किया है, ईश्वरके प्रति अपना कर्त्तव्य निभानेके भावसे ही किया है। और इसीको मैं सही चीज मानता हूँ। ईश्वर आकाशमें नहीं रहता, न वह स्वर्गमें वास करता है, न कहीं और। वह तो हरएक मानवके हृदयमें विराजमान है — मानव चाहे हिन्दू हो या मुसलमान, ईसाई हो या यहूदी, पुरुष हो या स्त्री।

मैं मानता हूँ कि गरीबोंकी सेवामें ही ईश्वरकी, देशकी, सच्ची सेवा है — उन गरीबोंकी सेवामें, जिन्हें देशबन्धु दासने उचित ही दरिद्रनारायण कहा है। पर ऐसी सेवा सचाईके साथ पूरे हृदयसे की जानी चाहिए। मैं जब विद्यार्थियोंको देखता हूँ तो मेरा हृदय सहानुभूतिसे भर आता है। यदि आपके हृदयमें खोट हो तो फिर न तो कालेज, न पुस्तकालय और न यह वातावरण ही आपकी सहायता कर सकता है, कोई

भी चीज आपको सही मार्गपर नही ला सकती। शुद्ध हृदय उसी व्यक्तिका है जो दूसरेको कष्ट में देखकर स्वय भी कष्ट अनुभव करने लगे। हमारे देशमें सौ व्यक्तियोमें से दसको दिनमें एक बार भी भोजन नसीब नही होता। क्या हमारे देशके विद्यार्थियोको इसकी जानकारी नही है? इसकी जानकारी होते हुए भी वे अपना समय और पैसा सिनेमा और नाटक देखनेमें खर्च करते रहते है। क्या यह उचित है? क्या देश-सेवाका यही ढग है? कालेजोंमें आप जो शिक्षा पा रहे है वह देशके गरीबोंके कामकी नही है। ऐसी शिक्षा तभी कामकी बन सकती है जब वह लोगोको पीड़ित मानवताकी सेवामें लगा सके। मै इसीलिए आपसे कहता हूँ कि मानवताकी सेवा ही ईश्वरकी सच्ची सेवा है। इस उद्देश्यको ध्यानमें रखकर आपको खादी पहननी चाहिए और रोजाना आध घंटे सूत कातना चाहिए। अपने मानपत्रमें आपने चरखेको फिरसे चालू करानेके मेरे प्रयत्नोंका उल्लेख किया है। लेकिन यदि आप मानपत्रोमें मेरी प्रशंसा करनेमें ही अपने कर्त्तव्यकी इतिश्री मानें, और सूत-कताईको आगे बढ़ानेके लिए स्वय कुछ भी न करें, तो उसे निरी चापलूसी ही कहा जायेगा। मैं आपका अधिक समय नही लेना चाहता। विद्यार्थियोंके कर्त्तव्योंके सम्बन्धमें मैंने अन्यत्र विस्तारसे चर्चा की है।[1] आप उसे पढ़ सकते हैं। मै ईश्वरसे सदा यही प्रार्थना करता हूँ कि वह देशके युवक-वर्गको फूलने-फलनेका वरदान दे, आपको देश-सेवामें प्रवृत्त करे। ईश्वर आप सबका कल्याण करे।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, २१-७-१९२७

१७२. पत्र : मीराबहनको

स्थाए पता : कुमार पार्क, बंगलोर
२० जुलाई, १९२७

चि० मीरा,

प्रार्थनाके सम्बन्धमें तुम्हारा पत्र मिला। पत्र सुन्दर है। तुमने अपने बारेमें स्वयं सावधानी रखनेकी जो बात कही है, वह भी मुझे पसन्द आई। प्रेमका अर्थ है अपार धैर्य, और यह कि हम खुद अपनी कमजोरियोके बारेमें जितने ही अधीर हों, अपने पड़ोसियोंकी कमजोरियोके प्रति उतनी ही सहिष्णुता बरतें। अपने पड़ोसियोंकी कमजोरियाँ तो हमको बड़ी आसानीसे दिखाई पड़ जाती हैं; पर हमें इसकी कोई जानकारी नही रहती कि वे उनपर विजय पानेके लिए कितनी कोशिशें कर रहे हैं। खैर, मैंने तुम्हारा पत्र आश्रमको भेज दिया है और छगनलालको लिख दिया है कि प्रबन्ध-मण्डलको उसे पढ़कर सुना दे और सोचे कि उसके सम्बन्धमें क्या कारंवाई की जा सकती है। एक चीजका ध्यान हमेशा रखना चाहिए: आश्रमकी प्रार्थना-सभाएँ

१. देखिए "भाषण : मैसूरके विद्यार्थियोंके समक्ष, बंगलोरमें", १२-७-१९२७।

जितने सच्चे मन और भक्ति भावसे महकती हुई होनी चाहिए वैसी नहीं हो पातीं, इसका वास्तविक कारण मेरी अपनी खामियाँ हैं। इसका एहसास न तुम्हें है और न किसी अन्य व्यक्तिको। प्रार्थनाका माहात्म्य मेरी समझमें काफी उम्र बीत जानेपर आया, और चूँकि मेरे अन्दर अपने आपको संयमित रखनेकी अच्छी क्षमता है, इसलिए मैं धैर्यपूर्वक और कष्टसाध्य प्रयत्नोंके द्वारा इधर कुछ वर्षोंसे उसके बाह्य स्वरूपके अनुरूप अपनेको ढालनेमें सफल हो गया हूँ। परन्तु क्या मैं उसके आन्तरिक स्वरूप, उसकी भावना के अनुरूप भी अपनेको बना सका हूँ? मेरा उत्तर है—नहीं। यह सही है कि प्रार्थनाके बिना जीवन मुझे बड़ा ही नीरस लगने लगेगा, पर प्रार्थनाके समय मैं प्रार्थनामें निहित सन्देशमें बिलकुल लीन नहीं हो पाता। लगातार प्रयत्नके बावजूद मेरा मन मनमाने ढंगसे इधर-उधर भटकता रहता है। यदि मैं महान् अलीकी भाँति अपने-आपको प्रार्थनामें बिलकुल लीन कर सकूँ तो फिर तुमको वह शिकायत नहीं रह जाये, जिसका तुमने अपने पत्रमें बिलकुल ठीक ही उल्लेख किया है। अब तुम्हारी समझमें यह बात आ गई होगी कि मैं बाह्य स्वरूपका पालन न करनेवालों, या उसमें ढिलाई करनेवालोंके प्रति भी इतनी सहिष्णुता क्यों दिखाता हूँ। इसीलिए मैं दूसरे लोगोंपर कोई अत्यधिक कठोर अनुशासन थोपनेसे डरता हूँ। मैं अपनी कमजोरी जानता हूँ, इसीलिए उनकी कमजोरियोंके प्रति मैं सहानुभूति रखता हूँ और आशा करता हूँ कि यदि मैं इस क्षेत्रमें ऊपर उठ सकूँगा तो वे भी अवश्य मेरे साथ ऊपर उठेंगे। अब तुम पहलेसे ज्यादा अच्छी तरह समझ जाओगी कि मैं इतने सारे लोगोंसे बार-बार क्यों कहता रहा हूँ कि मेरा व्यक्तित्व जैसा मालूम पड़ता है उससे मुझे मत मापो, मुझे तो इस बातसे मापो कि आश्रमके लोगोंके जीवनमें मेरा व्यक्तित्व कैसा प्रतिबिम्बित हुआ है। मेरे व्यक्तित्वको परखनेका अचूक और एकमात्र साधन आश्रम ही है—खासकर तब जब मुझे आश्रमसे अलग रखकर उसे परखा जाये।

अब किसीसे मिलनेका समय हो चुका है।

सस्नेह,

बापू

अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ५२५२)से।

सौजन्य : मीराबहन

१७३. पत्र : लीज बुर्जासको[1]

स्थायी पता : साबरमती आश्रम
२० जुलाई, १९२७

प्रिय मित्र,

गौरैयाकी[2] मार्फत आपका रुक्का पाकर बड़ी प्रसन्नता हुई।

ज्यों-ज्यों उम्र बीतती जाती है, जीव-मात्रकी अभिन्नताके सिद्धान्तकी प्रतीति मुझे अधिकाधिक होती जाती है। किन्तु साथ ही मुझे उस सिद्धान्तपर चलना कम कठिन लगनेके बजाय उत्तरोत्तर अधिक कठिन ही लगता जाता है। जबतक हम अपने 'अहं' को मिटाकर सर्वथा शून्य नहीं बना देते तबतक इस सिद्धान्तको चरितार्थ करना असम्भव मालूम होता है।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी (एस० एन० १२५२५) की फोटो-नकलसे।

१७४. पत्र : हेलेन हॉसडिंगको

कुमार पार्क, बंगलोर
२० जुलाई, १९२७

प्यारी गौरैया,[3]

तुम्हारा पत्र[4] मिला। तो तुम पत्र और पोस्टकार्डके बीच अन्तर मानती हो। मैं तो नहीं मानता। पर यह बतलाओ कि पोस्टकार्डको तुम पत्र क्यों नहीं मानती? दोनोंमें अगर कोई अन्तर है तो वह डाक-विभागके लिए ही है। परन्तु, चूँकि हम डाक-विभागमें नहीं हैं और हमसे जहाँतक बन पड़े, हमें गरीब होनेके नाते अपने विचारोंके आदान-प्रदानका सबसे सस्ता साधन ही अपनाना चाहिए और पोस्टकार्डमें अगर हम अपनी सारी बात रख सकते हैं तो उसे पत्र ही मानना चाहिए।

मुझे अब भी अपने पत्र बोलकर ही लिखाने हैं। कारण यह है कि यद्यपि मुझे ऐसा मरीज माना जा सकता है जिसे अस्पतालसे छुट्टी मिल गई है, फिर भी मेरी हालकी बीमारीकी याद मनमें अब भी बहुत काफी और ताजा है।

१. लीज बुर्जासके २३-६-१९२७ के पत्रके उत्तरमें।

२. हेलेन हॉसडिंग।

३. हेलेन हॉसडिंगके स्वभावको देखते हुए स्नेह और विनोदसे गांधीजी उन्हें 'स्पैरो' (गौरैया) कहा करते थे।

४. २५ जून, १९२७ का पत्र।

कृष्णदास अखिल भारतीय चरखा संघके कामसे और अपने गुरु और शायद अपने माता-पिताके भी दर्शन करने बिहार गया हुआ है। वहाँसे वह आश्रम जाकर अपना वह साहित्यिक कार्य पूरा करेगा, जिसकी उसे बड़ी चिन्ता लगी हुई है।

तुमने पूछा है कि "यदि रोगोंका कारण हमारे अनुचित आचरण हैं तो फिर उस शिशुके सम्बन्धमें इस नियमको कैसे लागू किया जाये जो जन्मसे ही अन्धा है?" मैं समझता था कि तुम बौद्ध होनेके नाते आत्माके देहान्तरण और पूर्व-जन्ममें उतना ही विश्वास रखती होगी जितना कि वर्तमानके अस्तित्वमें। मेरा तो पक्का विश्वास है कि हमारा वर्तमान अस्तित्व हमारे पिछले कर्मोंका ही प्रतिफल है। मैं यह नहीं मानता कि हर जन्म एक नई आत्माका जन्म है। इसलिए मेरे तई जन्म और मृत्यु दोनों ही समानार्थी शब्द हैं, वे एक ही अवस्थाको व्यक्त करनेवाले दो शब्द हैं। तुम यदि आत्माके देहान्तरणके सिद्धान्तका गहराईसे विश्लेषण करो तो तुम स्वयं इसका उत्तर दे सकोगी, और इस प्रश्नका भी कि "वायुमण्डलमें इतने जीवाणु क्यों मौजूद रहते हैं?"

'पर्ल'[1] और 'लाल'[2] तथा ऐसे कई अन्य लोग भी जिनसे तुम्हारी सिर्फ दुआ-सलाम है लेकिन जिनके नामतक तुमको ठीकसे याद नहीं आयेंगे, उच्चारण करना तो दूरकी बात है, इन दिनों मेरे साथ हैं तथा अभी कुछ दिन और रहेंगे। मेरा सदर मुकाम अभी बंगलोरमें है और लगभग अगस्तके अन्ततक यहीं रहेगा।

मैं तुम्हारा पत्र कृष्णदासको भेज रहा हूँ। साथमें उस मित्रके नाम लिखा पत्र भी भेज रहा हूँ।

तुम्हारा,
मो० क० गांधी

अंग्रेजी (एस० एन० १२५२६) की फोटो-नकलसे।

१ और २. ज्ञात नहीं। हेलेन हॉसडिंगने लिखा था: "आपका उसपर स्नेह है, यह बात उसे सदा ही नयी उड़ानें भरने और नये संघर्षोंके लिए अपने पंख तोलनेकी नई स्फूर्ति प्रदान करती रहती है। मैं तो पर्लके ही शब्दों, विचारोंको दोहरा रही हूँ. . .।"

१७५. पत्र : जवाहरलाल नेहरूको

कुमार पार्क, बंगलोर
२० जुलाई, १९२७

प्रिय जवाहरलाल,

तुम्हारे दोनों पत्र मिल गये। मेरे पत्र लिखने और तुम्हारा पत्र आनेकी तिथियोंके बीच घटनाएँ बड़ी तेजीसे घटती रही हैं। महमूदाबादके[1] और श्री जिन्नाके जोर देनेपर, सरोजिनीदेवीने मुझसे कहा है कि मैं आगामी वर्षमें अध्यक्ष-पद सँभालनेके लिए तुम्हारे पिताजीसे आग्रह करूँ। मैंने उनकी रायसे पूरी असहमति व्यक्त की और उनसे कह दिया कि यदि किसीके अध्यक्ष बननेकी सम्भावना है तो डॉ० अन्सारीके ही, हालाँकि वे भी बहुत थोड़ा ही काम कर पायेंगे।

हालात बदसे-बदतर होते जा रहे हैं; और यह बिलकुल स्पष्ट है कि हमें अभी ज्यादा कड़वे घूँट पीनेके लिए तैयार रहना चाहिए। पर मैं इस सारी प्रक्रियाको जरूरी मानता हूँ। राष्ट्र-निर्माणकी प्रक्रियाका यह एक आवश्यक अंग है कि अन्दर भिदा हुआ सारा जहर उभरकर सतहपर आ जाये। यह बिलकुल सच है कि अबतक जो चीज अन्दर-ही-अन्दर घुन लगा रही थी, वह अब ऊपरी परत फोड़कर सतहपर आ गई है और आँखोंसे दिखाई पड़ने लगी है।

मैंने कल अखबारोंमें तुम्हारी, कमला, कृष्णा और इन्दुकी तसवीरें देखीं; या शायद इन्दु उनमें नहीं थी, मुझे ठीकसे याद नहीं। उनमें लगता था कि तुम्हारा चेहरा और शरीर भी कुछ भर आया है। आशा है कि तसवीरें वास्तविकताके अनुरूप ही होंगी।

मैं अभी शारीरिक दृष्टिसे पूरी तरह चंगा तो नहीं हो पाया हूँ, पर मैंने अपना अधूरा दौरा फिर शुरू कर दिया है। हाँ, उसमें थोड़ा फेर-बदल करके, उसे कमसे-कम कष्ट-साध्य बना लिया है। मैं दौरा शुरू न करता, पर चन्देकी रकमें सब जगह रुकी पड़ी थी और उन जगहोंपर खुद मेरे जानेपर ही हाथमें आ सकती थी।

शंकरलाल और अनसूयाबहन मेरे साथ ही हैं और वह जत्था भी, जिसका मैंने पिछले पत्रमें जिक्र किया था।

अंग्रेजी (एस० एन० १२६११) की फोटो-नकलसे।

१. साधन-सूत्रमें "मुहम्मदाबाद" दिया है।

१७६. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

स्थायी पता: कुमार पार्क, बंगलोर
२० जुलाई, १९२७

पिछली दो डाकोंसे मैंने आपको कोई पत्र नहीं भेजा। इस समय भी लिखनेके लिए कोई खास बात नहीं है। पर आपको यह जानकर खुशी होगी कि दक्षिण आफ्रिकासे लौटनेके बाद भारतमें अपने निवासके इन बारह वर्षोंमें पहली बार मुझे सही मानेमें पण्डित मालवीयजीके सम्पर्कमें काफी दिनोंतक रहनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है। वे उटकमण्ड जानेके बजाय यहीं बंगलोरमें टिक गये थे और तबतक टिके रहे जबतक कलकत्तामें रिजर्व बैंक कमेटीकी बैठकमें शामिल होनेके लिए उन्हें यहाँसे प्रस्थान नहीं कर देना पड़ा। हम लोग एक ही घरमें रहे और हमने कई विषयोंपर वार्ता की। हम लोग एक मामलेमें एक निश्चित निष्कर्षपर पहुँचे। वह यह कि दलित वर्गोंके उत्थानके लिए अखिल भारतीय चरखा संघ और अखिल भारतीय गो-रक्षा संघ-जैसा एक अखिल भारतीय अस्पृश्यता संघ बनाया जाये, जिसका अपना एक निश्चित रचनात्मक कार्यक्रम हो। अभी मेरे पास इस योजनाकी रूपरेखापर चर्चा करनेका समय नहीं है। पर मैं एक ऐसे दक्ष मन्त्रीकी तलाशमें हूँ जो सचमुच इस काममें विश्वास रखता हो और जो अन्य सभी काम छोड़कर पूरे दिलसे इसीमें अपना पूरा समय लगा सके। ऐसा मन्त्री मिलते ही हम इस सम्बन्धमें आगे कार्रवाई करेंगे।

जमनालालजीने मुझे वह परिपत्र दिखाया था, जो आपने मित्रोंके पास भेजा है। देख रहा हूँ कि आपका दिमाग उस वातावरणमें किस तरह काम कर रहा है। मैं आपको आगाह करना चाहता हूँ कि दो भिन्न पदार्थोंके लिए एक ही तरहकी माप और तोलका उपयोग मत कीजिए। हमारी आँखें सज्जित बैठकोंके फर्नीचर देखने-समझनेकी काफी अभ्यस्त हैं। पर क्या वे ऊपरके नीलाकाशकी शोभा निरखनेमें उतनी सहायक सिद्ध हो सकती हैं?

मैंने हलके-फुलके दौरे फिरसे शुरू कर दिये हैं। पता नहीं, इतनी जल्दी दौरे शुरू करके मैंने ठीक किया है या नहीं। लेकिन मैं रोज अपनी शक्तिको तोल रहा हूँ।

यदि लालाजी[1] आपके साथ हों तो मेरा उनसे स्नेह-वन्दन कहिए, और बता दीजिए कि यदि वे पूरे तौरपर आराम करके फिरसे अपने कामके लायक शक्तिसे भरपूर होकर नहीं लौटेंगे तो उनके साथ मेरा कसकर झगड़ा होगा।

आपका,

अंग्रेजी (एस० एन० १४१९२) की फोटो-नकलसे।

१. लाला लाजपतराय।

१७७. भाषण: मैसूरके हिन्दी भाषा सेवा-समाजमें[1]

२० जुलाई, १९२७

महात्माजीने उत्तीर्ण हुए विद्यार्थियोंको प्रमाणपत्र वितरित करनेके बाद . . . हिन्दीमें अपना भाषण दिया। देशभक्त गंगाधररावने भाषणका वाक्यशः अनुवाद कन्नड़ भाषामें प्रस्तुत किया।

महात्माजीने कहा कि आपके अध्यक्ष श्री एम० वेंकटकृष्णैया हैं। आप सब लोग उन्हें मैसूरके वयोवृद्ध पथ-प्रदर्शक कहते हैं। "वयोवृद्ध पथ-प्रदर्शक" शब्द भी मुझे बड़ा प्रिय लगता है, लेकिन मैं चाहूँगा कि आप श्री वेंकटकृष्णैयाको मैसूरके "वृद्ध पितामह" कहें, जैसा कि श्री गंगाधररावने कहा है। या आप चाहें तो इनके लिए हिन्दी, संस्कृत या कन्नड़से कोई दूसरा बेहतर नाम चुन लें। आप लोगोंने मुझे जो मानपत्र दिया है उसके पीछे एक सन्देश है। वह सन्देश यह है कि हिन्दी भारतकी सर्वसामान्य भाषा बननी चाहिए, और भारतमें रहनेवाले सभी लोगोंको, वे किसी भी सम्प्रदायके क्यों न हों, एक राष्ट्रके रूपमें एकता-बद्ध होना चाहिए। आज हमारे पास कोई ऐसी भाषा नहीं है, जो सभी देशवासियोंकी भाषा हो। हमारे दिल भी एक नहीं हैं। ब्राह्मणों और अब्राह्मणों, हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच फूट है, और खुद हिन्दू समाजके अन्दर भी अछूत लोग हैं, जिनको इस तरह बिलकुल अलग रखा गया है, जैसे वे हिन्दू समाजका हिस्सा ही न हों। हमारे दिल एक-दूसरेके करीब आनेके बजाय एक-दूसरेसे अलग, दूर जा पड़े हैं। देश-भरके लिए एक सर्वसामान्य भाषा बनानेका उद्देश्य सभी देशवासियोंको एक करना है। और जब सब लोग सर्व-सामान्य भाषाके एक ही सूत्रमें बँध जायेंगे, तब सभी लोग "वयोवृद्ध पथ-प्रदर्शक" का अर्थ समझने लगेंगे। थोड़ी देरके लिए मान लीजिए कि आप पाण्डवोंके कालमें रह रहे हैं और वृद्ध भीष्म आपके पास आये हैं। अब अगर आप कहें कि "वयोवृद्ध पथ-प्रदर्शक" आये हैं, तो वह कितना हास्यास्पद लगेगा। भीष्म और उनकी प्रतिज्ञाएँ आपको हमेशा याद रखनी चाहिए। आप जब भी भीष्मका ध्यान करेंगे, हर दिल हिम्मत और बहादुरीसे भर जायेगा, और हरएकको भीष्मकी प्रतिज्ञाएँ जरूर याद आ जायेंगी और मनमें एक जागृति पैदा होगी। आप यदि हर रोज सुबह भीष्मका ध्यान करें, अपने-आपको उनके जैसा सोचने लगें, तो मैं कहता हूँ कि आपके अन्दर हिम्मत और बहादुरी पैदा हो जायेगी और राष्ट्रके कायाकल्पके लिए ये चीजें बहुत ही जरूरी हैं।

१. द्वितीय हिन्दी दीक्षान्त-समारोहके अवसरपर।

मैसूरमें हिन्दीके प्रचार-कार्यने बड़ी प्रगति की है, इसकी मुझे बहुत खुशी है। मैं उन प्रचारकोंको धन्यवाद देता हूँ, जिन्होंने ११ महीनेमें ७०० लोगोंको हिन्दी पढ़ाई है। श्री जमनाप्रसाद कहते है कि इस जैसे समारोहको 'कनवोकेशन' नहीं कहना चाहिए। उनको इस शब्दके प्रयोगसे डर-सा लगता है। जहाँतक मेरा खयाल है, मुझे समझ नहीं पड़ता कि इसे 'कनवोकेशन' कहनेमें गलती क्या है। इस शब्दका सीधा-सा मतलब है — एक जगह इकट्ठे होना और आपसमें बातचीत करना। लेकिन हमारी शिक्षा-दीक्षाके अंग्रेजीके साथ जुड़ जानेके कारण ऐसे अवसरको एक बड़ा शानदार समारोह समझा जाने लगा है। अगर आप सब लोग आज हिन्दीका प्रचार करने, खुद हिन्दी सीखने और अपनी सहानुभूति प्रदर्शित करनेका संकल्प कर लें, तो यह बहुत बड़ी बात होगी और आजका दिन चिर-स्मरणीय बन जायेगा।

महात्माजीने अपना भाषण समाप्त करते हुए कहा :

आपसे मेरा अनुरोध है कि आप सब लोग रुपये-पैसे जुटाकर और प्रोत्साहन देकर हिन्दीके प्रचारमें योग दें। आपको इसके लिए बाहरके चन्देका मोहताज नहीं बनना चाहिए। इसकी जरूरत भी नहीं है। इस कामके लिए एक-दो साल या इससे भी अधिक समयतक जितने पैसेकी जरूरत हो, उतना आपको इकट्ठा कर लेना चाहिए। मैं तो समझता हूँ कि इतना चन्दा इसी समारोहमें उपस्थित लोगोंसे इकट्ठा किया जा सकता है। मैं यही कामना करता हूँ कि भविष्यमें और ज्यादा प्रगति हो और वह स्थायी भी हो। प्रमाणपत्र पानेवाले सौभाग्यशाली व्यक्तियोंसे मेरा यही अनुरोध है कि वे हिन्दीका उपयोग देश-सेवाके लिए ही करें। आपने मानपत्र देकर मेरा सम्मान किया और मुझे इस समारोहमें शामिल होनेका मौका दिया है, इसके लिए मैं आप सबको धन्यवाद देता हूँ।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, २२-७-१९२७

१७८. भाषण: मैसूरमें भेंट किये गये मानपत्रोंके उत्तरमें[1]

२० जुलाई, १९२७

महात्माजीने कई मानपत्रोंका सम्मिलित रूपसे उत्तर देते हुए कहा कि मुझपर आपका प्रेम इतना है कि आपने मेरे वक्तकी बचत करने और मुझे सुविधा देनेके लिए अपने सभी मानपत्र मुझे एक साथ भेंट करनेका इन्तजाम किया। मैं इसके लिए आपका आभारी हूँ। मुझे यह जानकर खुशी हुई कि महाराजाकी सरकारने खादी आन्दोलनके प्रति सहानुभूति दिखाई है और नगरमें बाहरसे आनेवाली खादीसे चुंगी हटा लेनेकी बात मान ली है। मुझे भेंट किये गये सभी मानपत्रोंमें खादी और चरखा आन्दोलनोंका उल्लेख किया गया है। मुझे यह देखकर बड़ी खुशी हुई है कि मैसूरके लोग खादी और चरखेको पसन्द करते हैं; लेकिन मेरे अनुभवने मुझे सिखाया है कि मानपत्रोंमें बाँधे गये तारीफोंके पुल देखकर धोखा नहीं खाना चाहिए, क्योंकि लोग प्रशंसा करने तक ही रहे हैं, इससे आगे बढ़कर अमलमें उन्होंने कुछ भी नहीं किया है।

मैसूरका सुन्दर नगर, इसके महलों और शानदार इमारतों, इसकी चौड़ी और अच्छी सड़कों, बड़े-बड़े सुव्यवस्थित उद्यानों और उपवनोंको देखकर मेरा मन बड़ा प्रसन्न हुआ। लेकिन यह चित्रका एक ही पहलू है। और जब मैं दूसरे पहलूके बारेमें, नगरों और देहातोंमें बसनेवाले दुःख-दर्दमें डूबे हुए गरीब लोगोंके बारेमें सोचता हूँ तो मेरा दिल भर आता है। मैं भारतमें वह दिन देखना चाहता हूँ जब यहाँके महाराजा और उनके मन्त्री लोग गरीबी और मुसीबतोंमें गर्क गरीबोंके प्रति प्रेम और दया दिखलायेंगे जिससे कि गरीबों और अमीरोंके बीचकी खाई पाटी जा सके। मैं महलों और शानदार इमारतों, या उद्यानों और उपवनोंसे नफरत नहीं करता। पर मैं चाहता हूँ कि भारतमें अमीरों और गरीबोंमें दिली एकता रहे। मैंने पिछले सात वर्षोंमें जितना-कुछ किया है, उसका एक यही मकसद रहा है कि गरीबों और अमीरोंके बीचकी खाई पाटी जाये, दोनोंमें अधिक नजदीकी सम्पर्क स्थापित हो। दोनोंके बीचकी यह खाई भद्रावतीके कारखाने और कोलारकी सोनेकी खानोंके कामसे नहीं पाटी जा सकती। भद्रावतीका कारखाना और सोनेकी खानोंका काम भी बेशक बहुत जरूरी है। परन्तु अमीरों और गरीबोंके बीच सम्पर्कका क्षेत्र केवल हाथ-कते सूतके जरिये ही बनाया जा सकता है। आप शायद जानते होंगे कि ऋषिकेश और गंगोत्रीके बीच लक्ष्मणझूला पुल हाथ-कते सूतकी रस्सियोंसे ही बनाया गया है। तो इसपर

१. मानपत्र मैसूर नगरपालिका परिषद्, मैसूर जिला मण्डल, मैसूर कांग्रेस कमेटी, दत्तात्रेय गो-रक्षण मण्डली और कनियार जाति तथा अन्य नागरिकोंकी ओरसे भेंट किये गये थे। गांधीजीने इनका उत्तर हिन्दीमें दिया था, जिसका कन्नड अनुवाद गंगाधरराव देशपाण्डेने प्रस्तुत किया था।

किसीको नाक-भौंह सिकोड़नेकी जरूरत नहीं। आप जब एक बार चरखा चलाना शुरू कर देंगे तो आपकी समझमें आ जायेगा कि मैंने चरखेके बारेमें जो भी कहा वह सब बिलकुल ठीक है। मुझे यह जानकर बेहद खुशी हुई है कि मैसूरके महाराजा साहब भी चरखा चलाते हैं और इस प्रकार उन्होंने अपनी प्रजाके सामने एक मिसाल पेश की है।

कनियार लोगोंसे मुझे यही कहना है कि मैं उनके दुःखोंसे दुःखी हूँ। हिन्दू समाज जबतक एक भी हिन्दूको समाजसे बहिष्कृत रखेगा तबतक मैं भी अपने-आपको पंचम ही मानता रहूँगा। अस्पृश्यताके कलंकको मिटाये बिना मैं स्वराज्यकी कल्पना ही नहीं कर सकता।

परन्तु मैं कनियार लोगोंसे पूछना चाहता हूँ कि वे अपने-आपको पंचमोंसे ऊँचा क्यों मानते हैं और वे अपने-आपको चार वर्णोंमें सम्मिलित क्यों कराना चाहते हैं? शास्त्रोंको मैं जहाँतक समझ पाया हूँ उससे तो यही समझमें आता है कि कोई भी वर्ण किसी दूसरेसे ऊँचा नहीं है। मैंने तो यही समझा है कि ब्राह्मण अपने धर्म, अर्थात् सेवा-धर्मके पालनकी हदतक दूसरे वर्णोंके लोगोंसे श्रेष्ठ है। इसी तरह अपने धर्मका पालन करनेमें, अर्थात् शक्तिशाली लोगोंसे शक्तिहीनोंकी रक्षा करनेमें क्षत्रिय अन्य वर्णोंके लोगोंसे श्रेष्ठ हैं। एक वर्ण दूसरे वर्णका शोषण करे, इसमें कोई बड़ाई नहीं है। कनियारोंको युधिष्ठिरके उदाहरणपर चलना चाहिए। युधिष्ठिरने तबतक स्वर्गमें प्रवेश करनेसे इनकार कर दिया था जबतक कि उनके कुत्तेको भी प्रवेशकी अनुमति नहीं दी गई। कनियारोंको भी तबतक अपने अधिकारोंके लिए आतुर नहीं होना चाहिए जबतक कि आदि कर्नाटकोंको भी हिन्दू समाजमें समुचित स्थान नहीं मिल जाता। मुझे इस बातकी बड़ी खुशी है कि कनियार लोग गोमांस और दारूका सेवन नहीं करते।

मन्दिरोंमें प्रवेशके बारेमें महात्माजीने कहा कि आप लोगोंको मन्दिरोंमें जानेका उतना ही अधिकार है जितना कि मुझे या अन्य किसी हिन्दूको है। मुझे यह सुनकर बड़ी पीड़ा हुई कि कनियारोंको मन्दिरमें प्रवेश नहीं करने दिया जाता। लेकिन आपको अपने सारे कष्ट धैर्यपूर्वक झेलने चाहिए। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि महाराजा साहब और उनकी सरकार कनियारोंकी दशा सुधारनेके लिए भरसक प्रयत्नशील रही है। एक चीज है जो आपको तथा अन्य हिन्दुओंको भी करनी चाहिए, वह यह कि आप तपश्चर्या द्वारा अपनी आत्मशुद्धि कीजिए। हिन्दू शास्त्रोंमें लिखा है कि ब्रह्मा भी सृष्टिकी रचनाका काम तभी कर पाये थे जब उन्होंने तपश्चर्याका सहारा लिया। पार्वतीने तपश्चर्याके बलपर ही परमेश्वरको पति-रूपमें प्राप्त किया था। इसी प्रकार कनियार भी तपश्चर्याके बलपर अपने सभी अधिकार प्राप्त कर सकते हैं।

गो-रक्षण मण्डलीके मानपत्रके उत्तरमें महात्माजीने कहा कि मुझे यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि मैसूरमें हिन्दू और मुसलमान बड़े मेल-मिलापसे रहते हैं। यह

जानकर भी बड़ी खुशी हुई कि अधिकांश मुसलमान गोवध-बन्दीके सवालपर हिन्दुओं-का समर्थन करते हैं। दोनों ही जातियाँ इसके लिए बधाईकी पात्र हैं। मैं चाहता हूँ कि भारतकी सभी जातियाँ मैसूरके उदाहरणपर चलें और आपसमें मैत्रीभाव बनाये रखें। गो-रक्षाके लिए कानून बनानेके बारेमें मैं अपने विचार बता ही चुका हूँ। जिन राज्योंमें मुसलमानोंका बहुमत हिन्दुओंका समर्थन करता है, उन राज्योंमें गो-वध रोकनेके लिए कानून बना देना राज्यके लिए सर्वथा उचित होगा। परन्तु गो-रक्षाका आन्दोलन करनेवाले जबतक गो-वध रोकनेके लिए रचनात्मक कार्य नहीं करते तबतक ऐसा नहीं कहा जा सकता कि उन्होंने इस दिशामें कोई उपयोगी काम किया है, उनको मैं अर्सेसे यही समझानेकी कोशिश कर रहा हूँ कि इस दिशामें रचनात्मक कार्य क्यों करना चाहिए। जिस प्रकार ज्ञानके बिना मुक्ति सम्भव नहीं, उसी प्रकार गो-रक्षाके मामलेमें भी मात्र अंधभक्तिसे काम नहीं चलेगा। मैंने अपने लेखों और भाषणोंमें इसकी विस्तारसे चर्चा की है। आपको उनका अध्ययन करना चाहिए।

अन्तमें महात्माजीने उन तमाम संस्थाओंको धन्यवाद दिया जिनकी ओरसे उस दिन मानपत्र भेंट किये गये थे। उन्होंने महिलाओंसे अनुरोध किया कि वे खद्दर खरीदें और हाथ-कताईमें दिलचस्पी लें। राष्ट्र-गानके साथ आरम्भ हुई यह सभा राष्ट्रगानके साथ ही विसर्जित हो गई।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, २५-७-१९२७

१७९. टिप्पणियाँ

स्वर्गीय सर गंगाराम

सर गंगारामके निधनसे हमारे बीचसे एक सुयोग्य और व्यावहारिक कृषिविद्, एक महान् परोपकारी पुरुष और विधवाओंका बन्धु उठ गया। सर गगाराम यों तो वयोवृद्ध थे, किन्तु उनमें युवकोंका-सा उत्साह था। उनकी आशावादिता भी उतनी ही प्रबल थी, जितना कि उनका अपने विचारोंका आग्रह। इधर मुझे काफी हृदतक उनके सम्पर्कमें भी आनेका सुअवसर मिला था। और यद्यपि हम अनेक बातोंमें एक-दूसरेसे भिन्न मत ही रखते थे, तथापि मैंने देखा कि वे एक सच्चे सुधारक और महान् कार्यकर्त्ता थे। उनकी वय और अनुभवके प्रति पूरा आदर रखते हुए मैंने बड़ी दृढता और आग्रहके साथ उनके अनेक विचारोंसे असहमति प्रकट की। भारतकी गरीबीके सम्बन्धमें उनकी कतिपय मान्यताएँ सर्वथा विलक्षण ढंगकी थी, किन्तु जैसे-जैसे उनकी इन मान्यताओंके प्रति मेरा विरोध बढता गया वैसे-ही-वैसे मेरे प्रति, जिसे वे अपनी तुलनामें कलका नौजवान मानते थे, उनका स्नेह भी बढ़ता गया। वे मेरे

साथ लम्बी बातचीत और बहस-मुबाहसा करनेके लिए इतने उत्सुक थे तथा मुझे अपने विचारोंका कायल कर देनेकी उन्हें इतनी दृढ़ आशा थी कि उन्होंने खुद अपने खर्चेसे मुझे इंग्लैंड ले चलने तककी बात कही थी और मुझे विश्वास दिलाया था कि वे मेरे दिमागसे पागलपनकी सारी बातें निकाल देंगे। उन्होंने बहुत गम्भीरतापूर्वक मेरे सामने यह प्रस्ताव रखा था और यद्यपि मैं उसे स्वीकार नहीं कर सका, तथापि उनके इंग्लैंड जानेसे पहले मैंने उन्हें पत्र लिखा था, जिसमें उनसे मिलकर उन्हें उस चरखेका कायल कर देनेका वादा किया था, जिसे वे सिर्फ जला देने लायक ही मानते थे। अतः पाठक अनुमान कर सकते हैं कि उनकी अकस्मात् मृत्युका समाचार सुनकर मुझे कितना दुःख हुआ होगा। पर यह तो ऐसी मृत्यु है, जो हम सबके लिए स्पृहणीय हो सकती है। क्योंकि वे इंग्लैंड किसी आमोद-प्रमोदके लिए नहीं गये थे, बल्कि ऐसे कार्यके लिए गये थे जिसे वे अपना अत्यन्त आवश्यक कर्त्तव्य समझते थे। इसलिए वे तो कर्त्तव्य-क्षेत्र ही में काम आये। भारतके लिए यह हर दृष्टिसे गौरवकी बात है कि सर गंगाराम-जैसे व्यक्ति उसके सपूतोंमें से एक थे। दिवंगत सुधारकके कुटुम्बी जनोंको मैं अपनी बधाई और समवेदना साथ-साथ भेजता हूँ।

१९२८ की कांग्रेसके अध्यक्ष

आगामी वर्षके लिए डॉ० अन्सारीका राष्ट्रीय कांग्रेसके अध्यक्षके रूपमें चुना जाना निश्चित ही समझिए। राष्ट्रके किसी भी कोनेमें उनके चुनावका विरोध करनेवाला कोई नहीं है। डॉ० अन्सारी जितने अच्छे मुसलमान हैं, उतने ही अच्छे भारतीय भी हैं। उनमें धर्मान्धताकी भावना होनेकी तो किसीने कभी शंका भी नहीं की है। वर्षोतक वे लगातार कांग्रेसके संयुक्त मन्त्री रहे हैं। हालमें उन्होंने साम्प्रदायिक एकता स्थापित करनेके लिए जो प्रयत्न किये हैं, उन्हें सब जानते हैं। और सच तो यह है कि अगर बेलगाँवमें मुझे, कानपुरमें श्रीमती सरोजिनीदेवीको और गोहाटीमें श्रीयुत श्रीनिवास अय्यंगारको इस पदके लिए चुननेकी बात न आती, तो इनमें से किसी भी अधिवेशनके अध्यक्ष डॉ० अन्सारी ही चुने जाते। क्योंकि जब ये चुनाव हो रहे थे, तब उनका नाम प्रत्येक आदमीकी जबानपर था। परन्तु कुछ खास कारणोंसे उन अवसरोंपर डॉ० अन्सारीको नहीं चुना जा सका, और अब तो ऐसा लगता है, मानो भाग्यने तब उनका चुनाव इसीलिए नहीं होने दिया था जिससे वे ऐसे मौकेपर आयें जब देशको उनकी सबसे ज्यादा जरूरत हो। अगर हिन्दू-मुस्लिम एकताकी कोई योजना तैयार करनी हो, जो दोनों पक्षोंके लिए स्वीकार्य हो, तो निःसन्देह डॉ० अन्सारी ही उसे कांग्रेसमें मंजूर करवा सकते हैं। मैं इस विचारसे विनम्रतापूर्वक अपनी असहमति प्रकट करता हूँ कि चूंकि कांग्रेसमें हिन्दुओंका प्राधान्य है, इसलिए उसका अध्यक्ष भी हिन्दू ही होना चाहिए, जिससे यह कहा जा सके कि उस योजनाको हिन्दुओंने खुले दिलसे मंजूर किया। इसके विपरीत मैं तो यह मानता हूँ कि ऐसी योजनाका शुभारम्भ करनेके लिए इससे अधिक अच्छी पूर्वपीठिका नहीं हो सकती कि देशमें जो विषाक्त वातावरण मौजूद है उसके बावजूद एक ऐसी राष्ट्रीय संस्था, जिसमें हिन्दुओंकी संख्या बहुत ज्यादा है, सर्वानुमतिसे और सम्पूर्ण हृदयसे एक मुसलमानको अपना अध्यक्ष चुने।

अकेली यही बात हिन्दुओंकी ओरसे इस बातका साफ प्रमाण होगी कि हिन्दू दिलसे एकता चाहते हैं। और साधारण मुस्लिम समाजमें राष्ट्रीय विचारोंवाले मुसलमानोंमें डॉ० अन्सारीसे अधिक आदृत और कोई नही है। इसलिए मेरे खयालसे तो यह हर तरहसे वांछनीय है कि अगले सालके लिए डॉ० अन्सारी ही राष्ट्रीय कांग्रेसके कर्णधार हों। कारण यह है कि केवल किसी योजनाको मंजूर कर लेना ही हमारे लिए काफी नही है। दोनों पक्षों द्वारा उसे मंजूर करानेकी बनिस्वत उसे कार्यमें परिणत करना शायद कही अधिक जरूरी है। और यदि हम मान लें कि दोनों पक्षोंको सन्तोष देनेवाली कोई योजना मंजूर हो जायेगी, तो उसपर अमल करते समय अविरत सावधानीकी आवश्यकता होगी। डॉ० अन्सारी इस कामके लिए सबसे अधिक योग्य व्यक्ति हैं। इसलिए मैं आशा करता हूँ कि राष्ट्रीय कांग्रेस किसी व्यक्तिको जो सर्वोच्च सम्मान प्रदान कर सकती है उसके योग्य पात्रके रूपमें सभी प्रान्त एकमतसे डॉ० अन्सारीके नामकी ही सिफारिश करेंगे।

उदयपुरमें खादी

कुछ अर्सा हुआ, दैनिक पत्रोंमें यह खबर छपी थी कि बिजोलियाके खादी कार्यकर्त्ता गिरफ्तार कर लिये गये हैं, और वहाँके खादी-संगठनके व्यवस्थापकसे यह वचन माँगा गया है कि उनसे मिलनेके लिए जो भी आयेगा उसके बारेमें वे अधिकारियोंको सूचित करेंगे। इस खबरके मिलते ही श्रीयुत जमनालालजी सही परिस्थितिको जाननेके लिए उदयपुर पहुँचे। उदयपुरमें अधिकारियोसे मिलकर बिजोलिया होते हुए जमनालालजी अखिल भारतीय चरखा संघकी परिषद्की बैठकमें शामिल होने तथा दक्षिण भारतीय खादी-प्रदर्शनीके समय उपस्थित रहनेके लिए बंगलोर आये। बंगलोरमें उन्होने मुझे बताया कि बिजोलियामें दो खादी-कार्यकर्त्ता वास्तवमें गिरफ्तार कर लिये गये थे। पर वे खादीका काम करनेके कारण नही बल्कि राज्यकी राजनीतिमें हस्तक्षेप करनेके सन्देहमें गिरफ्तार किये गये थे। अधिकारियोंने जमनालालजीको विश्वास दिलाया कि वे खादीके काममें कोई विघ्न डालना नही चाहते, बल्कि वे तो उलटे खादी-कार्यकर्त्ताओंका स्वागत करते हैं और कुछ निश्चित शर्तोंपर खादीके कामकी खासी सहायता भी करनेके लिए तैयार हैं। फिर जमनालालजी बिजोलियाके अधिकारियोसे भी मिले। और अब यह तय हो गया है कि खादी-कार्यकर्त्ताओंसे कोई वचन नहीं लिया जायेगा, क्योंकि स्थानीय अधिकारियों और जमनालालजीके बीच यह तय हो गया है कि खादी-कार्यकर्त्ता प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष, किसी भी तरहसे राज्यकी राजनीतिमें हस्तक्षेप नही करेंगे, वे अपनी प्रवृत्तियोंको खादीके उत्पादन और बिक्रीके लिए लोगोंको संगठित करनेतक ही सीमित रखेंगे। जमनालालजीको यह वचन देनेमें कोई आपत्ति नही हो सकती थी। इसका सीधा-सादा कारण यह है कि चरखा संघकी निश्चित और अपरिवर्तनीय रीति चली आई है कि देशी राज्योमें वह अपने-आपको शुद्ध खादीके कामतक ही सीमित रखे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २१-७-१९२७

१८०. अभावग्रस्त नगरपालिकाएं

जिन लोगोंको इस बातकी चिन्ता रहती है कि नगरपालिकाओं, स्थानिक निकायों (लोकल बोर्ड्स) और जिला निकायोंका काम-काज सुचारु रूपसे चले, उन्हें श्रीयुत वल्लभभाई पटेलका वह छोटा-सा भाषण जरूर पढ़ना चाहिए, जो उन्होंने गुजरातकी नगरपालिकाओं और स्थानिक निकायोंके प्रथम सम्मेलनमें दिया था। वह ऐसे तथ्योंसे भरा पड़ा है, जिन्हें जानकर मन जितना हैरान हो जाता है उतना ही अशान्त भी। वे कहते हैं कि एक ओर जहाँ अधिक अधिकार देकर इन संस्थाओंकी जिम्मेदारियोंको बढ़ा दिया गया है, वहाँ दूसरी ओर इन जिम्मेदारियोंको निभानेके साधनोंको किसी-न-किसी प्रकार कम कर दिया गया है। वे स्वयं ही एक ऐसी नगरपालिकाके अध्यक्ष हैं जो भारतकी पहले दर्जेकी नगरपालिकाओंमें से एक है, अतः इस क्षेत्रमें सेवाका भी उन्हें दीर्घ अनुभव है। स्वयं सरकारको अहमदाबाद नगरपालिकाकी सुन्दर व्यवस्थाके लिए उनकी मुक्त-कण्ठसे, साफ-साफ शब्दोंमें प्रशंसा करनी पड़ी है। उन्होंने जिस लगनसे अपनी नगरपालिकाके लिए काम किया है, वैसी लगनसे शायद ही किसीने किया हो। एक बार अध्यक्षका स्थान मंजूर कर लेने पर उन्होंने फीरोजशाह मेहताके समान अपने इस पदसे सम्बन्धित कार्यको अन्य किसी भी राष्ट्रीय कार्यकी अपेक्षा, फिर चाहे वह कितना ही बड़ा और जरूरी क्यों न हो, अधिक महत्त्व दिया है। एक बार अपने धर्मका निर्णय कर लेनेपर उन्होंने बराबर उसीको प्राथमिकता दी है, यद्यपि अक्सर किसी उच्चतर धर्मको उनकी असाधारण योग्यता तथा लगनके साथ काम करनेकी शक्तिकी आवश्यकता रही है। इसलिए इस विषयसे सम्बन्ध रखनेवाले प्रत्येक व्यक्तिके लिए उनके भाषणका ध्यानपूर्वक अध्ययन करना आवश्यक है। उन्होंने अपनी मान्यताओंकी पुष्टि ठोस तथ्योंके बलपर की है और उन तथ्योंकी जाँच-पड़ताल जो चाहे, कर सकता है। उनका खयाल है कि बम्बई प्रान्तकी १५७ नगर-पालिकाएँ बहुत ही कठिन परिस्थितियोंमें काम कर रही हैं। कहीं-कहीं नगरपालिका-की पाठशालाओंमें काम करनेवाले शिक्षकोंकी तनख्वाहें बहुत दिनोंसे बकाया पड़ी हुई हैं। कामको देखते हुए उनकी आमदनी सचमुच बहुत कम है। धनाभावके कारण उन्हें नगरकी स्वच्छता-सम्बन्धी योजनाओंको खटाईमें डाले रखना पड़ता है। ऐसे ही कारणोंसे अनिवार्य शिक्षा-सम्बन्धी योजनाओंको अलग रख दिया गया है। अपनी बहुत-सी बातोंकी सचाई सिद्ध करते हुए उन्होंने अपने ही दुःखद अनुभवोंको प्रमाण-रूपमें पेश किया है, नगरपालिकाओंमें सरकारकी कंजूसी-भरी नीतिकी उन्होंने कड़ी आलोचना की है।

अध्यक्षने यदि सरकारकी आलोचना की है तो नागरिकोंको भी नहीं बख्शा है। उनकी भी वे उतने ही कड़े शब्दोंमें टीका करते हैं। वे कहते हैं :

> हमारे शहरोंके निवासियोंके रहन-सहनका ढंग ऐसा है, मानो वे शहरोंमें नहीं, बल्कि गाँवोंमें रह रहे हों। इसलिए अनेक घरोंमें स्वच्छता-सफाईके

लिए कोई व्यवस्था ही नहीं होती; लोग गन्दी और बेकार चीजें डालनेके लिए कोई बर्तन नहीं रखते। घनी बस्तियोंमें रहते हुए भी वे मवेशी पालने और उन्हें जैसे-तैसे रखनेमें भी नहीं हिचकिचाते। ग्वाले गायों और भैंसोंके झुंड लेकर आते है, और बिना किसी बातकी परवाह किये, जहाँ जी में आता है, उन्हें लेकर बस जाते है। मोटे तौरपर कहें तो लोग स्वास्थ्य और स्वच्छता-सम्बन्धी मामूलीसे-मामूली नियमोंके पालनकी भी परवाह नहीं करते। न वे उन नियमोंका पालन अपने लिए करना जानते हैं और न अपने पड़ोसियोंके लिए। अपने घरके कूड़ेको अपने पड़ोसियोंके अहातोंमें फेंक देना तो आम बात है। अपने मकानोंकी ऊपरी मंजिलोंसे वे पानी या कूड़ा फेंकनेमें भी जरा नहीं हिचकिचाते। ऐसा करते हुए वे पासकी सड़कोंपर जाने-आनेवालोंका कोई खयाल नहीं करते। वे जहाँ चाहे थूक देते हैं, जहाँ जी में आये वहीं पाखाना-पेशाब कर देते हैं। गाँवोंकी दशा भी इससे अच्छी नहीं है। गाँवके पास पहुँचते ही घूरोंपर हमारी नजर पड़ती है। गाँवके तालाब गन्दे पानीके कुंड होते हैं, और कुओंके पास गन्दगी फेंकना तो एक आम बात है।

श्रीयुत वल्लभभाई पटेलके इस कथनसे अधिकांश लोग सहमत होंगे कि "ऐसे मामलोमें सरकारी सहायताकी अपेक्षा रखना गुनाह है।"

मेरा खयाल है कि नगरपालिकाओंमें जो प्रपंच चलते रहते है और जिनके कारण सच्चे कार्यकर्त्ताके लिए काम करना लगभग असम्भव हो जाता है, उनका उल्लेख उन्होंने अपने भाषणमें जान-बूझकर नहीं किया है। कुछ अच्छेसे-अच्छे कार्यकर्त्ताओंने ऐसी परिस्थितियोंमें काम करनेका प्रयत्न किया, परन्तु अन्तमें उन्हें भी निराश ही होना पड़ा। इलाहाबादमें इन छल-प्रपंचोंने पण्डित जवाहरलाल नेहरूको और पटनामें बाबू राजेन्द्रप्रसादको बहुत परेशान किया। देशबन्धु चित्तरंजन दासने ऐसी ही कठिन परिस्थितियोमें बडी मर्दानगीके साथ अपना प्रयत्न जारी रखा, और इस जिम्मेदारीने उनको करीब-करीब तोड़कर रख दिया। बात यह है कि नगरपालिकाके मतदातामें अभी नागरिकताकी जिम्मेदारीकी भावनाका उदय ही नही हुआ। वह किसी भी प्रकार अपने-आपको तमाम नागरिकोंकी भलाईके लिए जिम्मेदार ही नही समझता। हमारी शिक्षाप्रणाली ही ऐसी नही है कि आदमीको सामाजिक जिम्मेदारियोके विषयमें समुचित शिक्षा और पदार्थ-पाठ मिले। इसीलिए नगरपालिकाओके सदस्य भी अपने-आपको किसीके प्रति जिम्मेदार नही समझते।

जिन दिनो असहयोग-आन्दोलन पूरे जोरपर था, उन्ही दिनों मैंने कहा था कि यदि लोग अपनी नागरिक जिम्मेदारीको अच्छी तरह समझने लग जायें तो नगरपालिकाओका तीन-चौथाई काम तो सरकारकी सहायता और आश्रयके बिना ही हो जाये। मेहमदाबादकी नगरपालिकाके कार्यके तथ्यों और आँकड़ोके आधारपर मैंने यह साबित किया था कि शहरोंमें रहनेवाले लोग स्वास्थ्य, सफाई आदिकी व्यवस्था कानूनन् स्थापित नगरपालिकाओंके बिना ही अच्छी तरहसे कर सकते है।

और सो भी एक नगरपालिका इस सबपर जितना खर्च करती है उससे आधे खर्चमें ही। मैंने यह भी दिखाया था कि सरकारकी मंजूरीसे कानूनी तौरपर स्थापित नगरपालिकाकी जरूरत तो वही होती है, जहाँ नगरपालिकाके सदस्योंसे लोग सहयोग न करते हों, या जब वे अपनी सुधार-योजनाओंको लोगोंकी इच्छा न होनेपर भी उनपर जबरदस्ती लादना चाहते हों। मैंने समझाया था कि मेहमदाबाद-जैसे छोटे-से स्थानमें तो नागरिकोंको अपनी सड़कोंपर प्रकाशकी व्यवस्था करनेके लिए, टट्टियों और रास्तोंको साफ करनेके लिए तथा पाठशालाओंकी देख-भाल करनेके लिए किसी विस्तृत प्रबन्ध-तन्त्रकी कोई जरूरत ही नहीं है और यदि नागरिक भले हों, अथवा यदि चोर-उच्चकोंसे शान्तिप्रिय नागरिकोंकी रक्षा करनेके लिए वे अपने ही रक्षक दल बना लें, तो नगर-रक्षाके लिए उन्हें पुलिसकी भी कोई जरूरत नहीं हो सकती। जो जनताके सच्चे सेवक हैं, वे नगरपालिकाके सदस्य बनेंगे तो प्रसिद्धि पाने या प्रपंच करने और अपने जरूरतमन्द मित्रों तथा रिश्तेदारोंको नौकरी दिलानेके लिए नहीं, बल्कि जनताकी सेवा करनेके लिए। इसलिए जरूरत इस बातकी है कि कार्यकर्त्ता जनताको नागरिकोंके रूपमें अपने कर्त्तव्य समझायें और ठीक आचरण करनेकी शिक्षा दें। लेकिन, इसका तरीका सिर्फ व्याख्यान झाड़ना नहीं, बल्कि चुपचाप समाजकी सेवा करते जाना होना चाहिए; और सेवा करते हुए उन्हें किसी प्रतिदानकी, यहाँतक कि धन्यवाद कि भी अपेक्षा नहीं रखनी चाहिए। इसके विपरीत, उन्हें इस बातके लिए तैयार रहना चाहिए कि जब वे जनतासे अपने अन्धविश्वासों या गन्दी आदतोंको छुड़ानेकी कोशिश करेंगे तो उन्हें क्रुद्ध जनताकी घृणाका पात्र बनना पड़ सकता है, बल्कि जनता उनके साथ इससे भी बुरा सलूक कर सकती है। सफाईके कामकी देख-रेख करनेवाले एक ऐसे इन्स्पेक्टरका किस्सा मुझे मालूम है जिसे लोगोंने लगभग मार ही डाला था। उस बेचारेका दोष सिर्फ इतना ही था कि जिस शहरकी सफाईकी देखभाल करनेके लिए उसे वेतन मिलता था, उसकी सफाईकी जिम्मेवारी उसने बड़ी मुस्तैदीसे निभाई और जो लोग एक प्रकारकी अपराधपूर्ण उपेक्षा बरतते हुए सड़कोंको गन्दा किया करते थे, उन सबकी वह बिना कोई भेदभाव किये धर-पकड़ करने लगा था।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २१-७-१९२७

१८१. 'जी' वार्ड जिला कांग्रेस कमेटी खादी भण्डार

'जी' वार्ड जिला काग्रेस कमेटी, बम्बईके श्रीयुत एम० एन० पडवेकरने इस स्तम्भमें प्रकाशित खादी भण्डारोंकी सूचीमें उनके भण्डारका नाम छूट जानेकी ओर मेरा ध्यान आकर्षित किया है। अनजाने हुई इस भूलको मैं खुशी-खुशी सुधार रहा हूँ। अखिल भारतीय चरखा सघ अपनी जानकारीमें आये सभी खादी भण्डारोंकी एक विस्तृत सूची बनानेकी कोशिशमें लगा हुआ है। ऐसी अवस्थामें इस प्रकारकी भूलें लाजिमी हैं।

पत्र-लेखकने लिखा है:

> बिक्री अच्छी न होनेके कारण पहले इस दुकानको बन्द करनेकी बात सोची जा रही थी, लेकिन कुछ जोशीले कार्यकर्त्ताओंने रविवारों और सभी छुट्टियोंके दिन फेरी लगाकर खादी बेचनी शुरू कर दी क्योंकि अन्य दिन तो उन्हें जीविकाके लिए अपने-अपने कामपर जाना पड़ता था। इससे दुकान बच गई है। बम्बईमें बस यही एक दुकान है जो खादीको घर-घर पहुँचानेका प्रयास करती है; और कार्यकर्त्ताओंको भरोसा है कि यह भण्डार कुछ ही समयमें खादीका सन्देश नगर और उपनगरीय बस्तियोंके हर घरमें पहुँचा देगा।

मैं कार्यकर्त्ताओंकी सफलताकी कामना करता हूँ।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, २१-७-१९२७

१८२. पत्र : मीराबहनको

मैसूर
२१ जुलाई, १९२७

चि० मीरा,

तुम्हारा पत्र मिला। अगर किसी तरह हो सका तो मैं तुम्हारे लिए शान्ति-वाला कमरा ठीक करनेकी कोशिश करूँगा।

सस्नेह,

बापू

अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ५२५३) से।
सौजन्य : मीराबहन।

१८३. पत्र : एस० वी० कोजलगीको

स्थायी पता: कुमार पार्क, बंगलोर
२१ जुलाई, १९२७

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। दौरेपर रहनेके कारण मैं उसका उत्तर समयपर नहीं दे पाया। उक्त पत्र मैंने गंगाधररावको दिखा दिया है। मैं देखता हूँ कि आप दोनों ही देश-सेवक होते हुए भी स्वभावमें एक-दूसरेसे बिलकुल भिन्न हैं, या कहिए कि मुझे ऐसा लगता है।

मैं दौरा पूरे आत्म-विश्वासके साथ आरम्भ नहीं कर पाया हूँ। मुझे बस यही लगा कि मेरे शरीरमें जो थोड़ी-बहुत शक्ति आ गई है, उसका उपयोग सँभल-सँभल-कर करते हुए मैं अपने दौरेके पूर्व-निर्धारित कार्यक्रमको कुछ सुगम रूप देकर उसे पूरा करने और खादी-कार्यके लिए चन्दा उगाहनेकी कोशिश कर सकता हूँ। सच तो यह है कि दौरा केवल खादीके कामको ही आगे बढ़ानेके उद्देश्यसे आरम्भ किया गया था। देशकी वर्तमान स्थितिमें आम किस्मका प्रचार-कार्य करनेकी न तो मेरी कोई इच्छा थी और न मेरे अन्दर उतनी क्षमता ही थी। मेरे लिए तो खादी ही मेरा प्रचार-कार्य है। वह इसलिए कि यदि केवल इसी कामको पूर्णतया सफल बनाकर दिखा दिया जाये तो अन्य सभी काम अपने-आप सधते जायेंगे। मेरा अपना खयाल यह है कि कमसे-कम एक रचनात्मक कार्यको हम बड़े पैमानेपर इतना सफल बनायें जिससे दुनियाकी नजर उसकी ओर खुद-ब-खुद जा सके। आज स्थिति यह है कि जनताको अपनी क्षमतापर विश्वास नहीं रह गया है, और वह मान बैठी है कि उसे किसी भी रचनात्मक काममें कोई सफलता नहीं मिल सकती।

गंगाधरराव भी मेरी ही तरह जी-जानसे खादीके काममें जुटे हुए हैं। इसलिए वे मुझे खादीकी बिक्री या उत्पादन अथवा खादी-कार्यके लिए चन्देकी दृष्टिसे लाभप्रद सिद्ध हो सकनेवाले जिस-किसी स्थानमें ले जाना चाहेंगे, मैं सहर्ष जाऊँगा। इसीलिए मैं आपसे दौरेमें साथ चलनेके लिए नहीं कह रहा हूँ, लेकिन मुझे आशा है कि जहाँ-जहाँ मैं जाऊँगा, उन स्थानोंमें रहनेवाले अपने मित्रोंको पत्र लिखकर आप गंगाधररावकी या खादीकी जितनी भी सहायता कर सकते हैं, अवश्य करेंगे।

अगस्तके अन्ततक तो मैं मैसूरमें ही व्यस्त रहूँगा। इसके बाद यदि शरीरमें शक्ति रही तो तमिलनाडके जिलोंका दौरा करूँगा। इसलिए कर्नाटकके दौरेके लिए यदि इस वर्ष समय दे भी पाऊँगा तो अक्टूबरके मध्यसे पहले तो उसकी सम्भावना नहीं ही है। लेकिन मैसूरका दौरा पूरा कर चुकनेके बाद ही मैं निश्चित तौरपर कुछ कह सकूँगा। मैंने हर स्थानके लोगोंको कहलवा दिया है कि कार्यक्रममें जितनी

भी काट-छाँट की जा सकती हो, की जाये और जिन स्थानोंपर न जानेसे काम चल सके, उनको छोड़ दिया जाये।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत एस० बी० कोजलगी
बीजापुर

अंग्रेजी (एस० एन० १२६१२) की फोटो-नकलसे।

१८४. पत्र : य० म० पारनेरकरको

मैसूर
२१ जुलाई, १९२७

प्रिय पारनेरकर,

यहाँ मैसूरकी पैलेस डेरीमें जो प्रपत्र प्रयोगमें लाये जाते हैं, उन्हें मैंने हमारे मार्गदर्शनके लिए मँगा लिया है। मैं प्रपत्र साथमें भेज रहा हूँ।

मैंने मगनलालसे बात की थी और हम दोनों इस नतीजेपर पहुँचे कि हम जो भी देखें-सुनें या जिन नई चीजोंपर भी ध्यान जाये, उन सबको विधिवत् दर्ज करते जाना चाहिए। इन प्रपत्रोंसे इस आवश्यक कार्यमें सहायता मिल सकती है। मैं यह तो चाहूँगा ही कि हम अपनी डेरीमें ये प्रपत्र हिन्दी या गुजरातीमें रखें।

हृदयसे आपका,

सहपत्र : १

अंग्रेजी (एस० एन० १२९२०) की माइक्रोफिल्मसे।

१८५. पत्र : के० पी० पद्मनाभ अय्यरको

स्थायी पता : कुमार पार्क, बंगलोर
२१ जुलाई, १९२७

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। अपने पत्रमें लिखा पथ्य लेनेकी सलाह क्या आपने व्यापक अनुभवों और प्रयोगोंके आधारपर दी है? और अगर बात ऐसी ही हो तो मैं आपके द्वारा किये गये प्रयोगोंकी जानकारी प्राप्त करना चाहूँगा। क्या आपने केले और कच्चे नारियलके पानीसे प्राप्त होनेवाले पोषक तत्त्वोंके बारेमें पूरा-पूरा विचार कर लिया है? क्या यह सच नहीं है कि केले और नारियलमें प्रोटीन नहीं होता और होता भी है तो बहुत कम; लेकिन इसके विपरीत दूधमें अपेक्षाकृत काफी अधिक प्रोटीन

होता है? और क्या यह भी सच नहीं है कि चूंकि नारियलसे प्राप्त होनेवाली चिकनाईको हमारा शरीर पशुओंसे प्राप्त होनेवाली चिकनाई अर्थात् घीकी अपेक्षा कम ग्रहण कर पाता है, इसीलिए वह घीसे कम सुपाच्य भी होता है? क्या आप बच्चोंके लिए गायका दूध पीनेके बजाय कच्चे नारियलका पानी पीना ज्यादा ठीक मानेंगे?

हृदयसे आपका,

श्रीयुत के० पी० पद्मनाभ अय्यर
सब असिस्टैंट सर्जन
ए० ई० डिस्पेंसरी
पुडुकोट्टाई
बरास्ता तूतीकोरन

अंग्रेजी (एस० एन० १४१९३) की फोटो-नकलसे।

१८६. भाषण: आदि कर्नाटकोंके समक्ष

मैसूर
[२१ जुलाई, १९२७][1]

आपसे मिलकर मुझे खुशी भी हुई और दुःख भी। खुशी इस बातकी कि आपसे मिलकर मुझे अपने-आपको शुद्ध करनेका अवसर मिला और दुःख इस बातका कि स्वास्थ्य और कुछ अन्य कारणोंसे मुझे महलोंमें ठहरनेकी बात माननी पड़ी है, हालाँकि मैं खूब जानता हूँ कि आप कितनी बुरी स्थितिमें रहते हैं। सत्य या ईश्वर, जिसमें मेरी निष्ठा है, मुझसे हर क्षण कहता रहता है कि मेरी जगह महलोंमें नहीं, आपके बीच ही है। वैसे हो सकता है कि इसकी जड़में एक क्षणिक उमंग ही हो, त्यागकी एक क्षणिक इच्छा मनमें पैदा हुई हो और यह उसीकी आवाज हो। हो सकता है कि यहाँसे जाते ही मैं आपको और आपकी झोंपड़ियोंको बिलकुल ही भूल जाऊँ। परन्तु यह भी सम्भव है कि ईश्वर मुझे किसी दिन उस कामको सम्पन्न करनेकी शक्ति दे दे, जिसे मैं इतना ज्यादा पसन्द करता हूँ। आज तो मैं आपको सिर्फ यह भरोसा दिलाने आया हूँ कि आपकी भलाईमें दिलचस्पी रखनेवाले और इसके लिए काम करनेवाले लोगोंकी तादाद दिन-दिन बढ़ती जा रही है। आपकी सेवामें अपने-आपको खपा देनेवाली ब्राह्मण महिला बधाईकी पात्र हैं। मेरा पक्का विश्वास है कि हिन्दू धर्म निकट भविष्यमें अस्पृश्यताके इस कलंकसे मुक्त हो जायेगा। ईश्वरकी नजरमें न कोई ऊँचा है और न कोई नीचा, और अपने-आपको किसीसे ऊँचा या श्रेष्ठ समझनेवाले को शास्त्रोंने मूर्ख कहा है। लेकिन जहाँतक आपकी बात है, मुझे पूरा यकीन है कि आपकी मुक्ति आपके अपने ही हाथोंमें है। गो-रक्षा हिन्दुओं-

१. २५-७-१९२७के हिन्दूमें प्रकाशित विवरणसे।

का कर्त्तव्य है, तब आप हिन्दू होते हुए गो-मांस और मृत पशुओंका भक्षण कैसे कर सकते हैं? मुझे बताया गया है कि आप उसे इसलिए खाते हैं कि वह सस्ता पड़ता है। लेकिन ऐसी कोई चीज लाख सस्ती होनेपर भी सस्ती नहीं हो सकती जो धर्म-विरुद्ध हो, और ऐसी कोई चीज लाख मँहगी होनेपर भी मँहगी नहीं पड़ सकती, जो धर्मसम्मत हो। मैं आपसे सच कहता हूँ कि आपके साथ हेल-मेल रखनेके लिए सनातनी हिन्दुओंको राजी करनेमें मुझे बड़ी मुश्किलका सामना करना पड़ता है। वे कहने लगते हैं कि आप लोग गो-मांस, दारू और ऐसी ही अन्य वस्तुओंका सेवन करते हैं। इसीलिए आप यदि अपने-आपको शुद्ध बनायेंगे तो मेरे लिए यह काम आसान हो जायेगा। इसपर आप व्यंग्यपूर्वक यह मत कहिए कि 'सवर्ण' हिन्दू भी तो हमसे कोई अच्छे नहीं हैं। मैं जानता हूँ कि वे अच्छे नहीं हैं, परन्तु वे अपने अहं-कारके कारण मेरी बात नहीं सुनेंगे। आपको उनकी नकल नहीं करनी चाहिए। आपको तो अपने-आपको ऊँचा उठाना है। इसलिए आपको आत्म-शुद्धि करनी है। और यदि आप आत्म-शुद्धि कर ले तो फिर संसारकी कोई भी ताकत आपको आगे बढ़नेसे नहीं रोक सकेगी।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, ४-८-१९२७

१८७. पत्र : कुसुमबहन देसाईको

बंगलोर
आषाढ़ बदी ८, सं० १९८३
२२, जुलाई १९२७

चि० कुसुम,

हरिभाईके बारेमें तुम्हें क्या लिखूँ? सिर्फ तुम्हींको उनका वियोग खटकेगा सो बात नहीं। बहुतोंको दु:ख हुआ है। परन्तु वह सहन करने योग्य है। सब अपने-अपने समयपर जुदा होते हैं। हमें भी यही करना है। इतनी बात भी तुम्हें लिखनेकी जरूरत नहीं थी, क्योंकि भाई नाजुकलाल लिखते हैं कि तुमने बहुत हिम्मत दिखाई है और हरिभाईसे शिक्षा पानेवालीको यही शोभा देता है, क्योंकि तुम उनकी पत्नी की अपेक्षा शिष्या अधिक थी।

अब तुम्हारा क्या करनेका विचार है? मुझे ध्यान नहीं है कि तुम्हारे माता-पिता आदि हैं या नहीं। जो भी स्थिति हो बताना। यदि आश्रममें रहना चाहो तो वह भी बताना। मुझे निःसंकोच लिखना।[1]

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]
बापुना पत्रो – ३ : कुसुमबहेन देसाईने

1. देखिए "एक सत्याग्रहीका देहान्त", ७-८-१९२८।

१८८. पत्र : नाजुकलाल चोकसीको

[२२ जुलाई, १९२७]

भाईश्री नाजुकलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। इससे पहले मुझे डाक्टर चन्दूलालका तार मिल गया था, और मैंने उसका उत्तर दे दिया था। उम्मीद है, वह मिल गया होगा।

इसके साथका पत्र चि० कुसुमको दे देना।[१] उसका सारा हाल मुझे लिखना। आशा है, चि० मोती और बच्चा दोनों सानन्द हैं।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (एस० एन० १२१४०-अ) की फोटो-नकलसे।

१८९. पत्र : रामेश्वरदास पोद्दारको

आषाढ़ बदी १० [२३ जुलाई, १९२७][२]

भाई रामेश्वरदास,

आपका पत्र मिला। नानासाहेब देवको मैं लीख रहा हुं। जो उद्यमका आरंभ हुआ है बहोत स्तुत्य है। इस काममें काकासाहेब या विनोबाको मददका आवश्यकता होगी तो नानासाहेब मुझे लीखेंगे।

रामनाम हृदयमें रखो।

बापूके आशीर्वाद

जी० एन० १८४ की फोटो-नकलसे।

१. देखिए पिछला शीर्षक।

२. देखिए खण्ड ३३ "पत्र : रामेश्वरदास पोद्दारको", ५-६-१९२७के पूर्व तथा १२-६-१९२७।

१९०. भाषण: मैसूरमें विदाई-समारोहके अवसरपर

२३ जुलाई, १९२७

महात्माजीने अपने भाषणके दौरान मैसूरके नागरिकोंको चन्दोंकी राशियोंके लिए धन्यवाद देते हुए कहा कि आपके नगरके एक प्रमुख नागरिक, साहूकार डी० बनुमंयाने पन्द्रह सौ एक रुपये दिये हैं और मैंने उनको वचन दिया है कि उनकी दी हुई राशि इसी राज्यके गरीबोंके कामपर खर्च की जायेगी। मैं और मेरे सहकर्मी चाहते हैं कि जहाँतक बन पड़े, मैसूरसे मिली हुई राशि मैसूरमें ही खर्च की जाये। वैसे, आम तौरपर होता यह है कि जिन क्षेत्रोंमें गरीबोंकी संख्या बहुत ज्यादा नहीं होती या जहाँ खादीका उत्पादन बढ़ानेके लिए कुछ भी करनेकी गुंजाइश नहीं होती, वहाँसे जमा की हुई राशि देशके उन क्षेत्रोंपर खर्च की जाती है जिनमें बहुत ज्यादा गरीबी हो और जो अपने-आप कोई बड़ी राशि जमा न कर सकते हों। उदाहरणके तौरपर उत्कलको लीजिए। उत्कल प्रान्तमें गरीबी बहुत ही ज्यादा है और इसलिए वे बिलकुल चन्दा जमा नहीं कर पाते। इस कारण देशके अन्य भागोंमें इकट्ठी की गई राशियाँ उत्कल प्रान्तके खादी-कार्यपर और इस तरह वहाँके गरीबोंको भोजन जुटानेपर खर्च करनी पड़ती हैं।

बम्बई और कच्छने बड़ी-बड़ी राशियाँ दी हैं, परन्तु बम्बईमें उसकी एक पाई भी खर्च नहीं की जा सकती। वहाँ जितनी भी राशि जमा की जाती है, सारीकी-सारी दूसरी जगहोंपर ही खर्च की जाती है। मैंने मारवाड़में अपने मारवाड़ी मित्रोंसे लाखों रुपये इकट्ठे किये, पर मारवाड़में उन्हें खर्च नहीं किया गया।

एक बात आपको ध्यानमें रखनी चाहिए कि दक्षिण भारत और उत्तर भारत दोनों अलग-अलग नहीं हैं। इसी तरह दक्षिण भारतमें आन्ध्र, तमिलनाड और कर्नाटक अलग अलग नहीं हैं, आपको कभी ऐसा नहीं सोचना चाहिए कि इनमें या दक्षिण और उत्तर भारतमें परस्पर कोई सम्बन्ध ही नहीं है। आप सभीको कर्नाटककी खुशहालीके लिए प्रयास करना चाहिए। वह सिर्फ कर्नाटककी ही खुशहाली नहीं होगी; बल्कि उससे सारा देश उन्नत और समृद्ध होगा।

शहरमें इकट्ठी की गई राशियोंका और विशेषकर कृष्णराज सागर जाते हुए, रास्तेमें तपेदिक आरोग्याश्रमके मरीजोंसे जो ५१ रुपयेकी राशि मिली थी, उसका उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा कि मैंने वहाँके मरीजोंको देखा और मेरे मनपर उनका बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा। पण्डित मालवीयजीके शब्दोंमें कहें तो वह शुद्ध हृदयसे दी गई 'शुद्ध कौड़ी' है। मैंने नहीं सोचा था कि वे कुछ देंगे, और जब बिना माँगे ही ऐसा शुद्ध दान मिलता है तो दान लेनेवालोंपर एक भारी जिम्मेदारी आ जाती है। मुझे

केवल यही 'शुद्ध कौड़ी' प्राप्त नहीं हुई है; इसी तरहके और भी दान मिलते रहते हैं। इसलिए ईश्वरसे यही प्रार्थना करता रहता हूँ कि एक पाई भी कहीं गलत ढंगसे खर्च न हो पाये; पाई-पाई उसी कामपर खर्च की जाये जिसके लिए वह इकट्ठी की गई है। दान देनेवालोंको ही नहीं आम लोगोंको भी सारा हिसाब-किताब देखना चाहिए और गलतियाँ या गड़बड़ियाँ हों तो बतानी चाहिए। यदि वे इस ओर ध्यान नहीं देते और जो लोग आज कोषके कर्ता-धर्त्ता हैं, वे कलको गुजर जाते हैं तो फिर इसका इन्तजाम करनेवाला या कामको आगे चलानेवाला कोई नहीं रह जायेगा।

भारतमें अनेक संस्थाएँ, अनेक धर्मार्थ संस्थाएँ हैं, उनमें से अनेकोंकी निधियाँ व्यक्तिगत कामोंके लिए इस्तेमाल होती हैं। यदि जनता अपनी जिम्मेदारी समझे तो यह सब असम्भव हो जाये। मैं सबसे अनुरोध करता हूँ कि आप इसका ध्यान रखें कि चरखा-कार्यके लिए इकट्ठा किये गये चन्देकी राशि ठीक ढंगसे खर्च की जाये। लेकिन इस दायित्वके सफल निर्वाहके लिए हमें कर्त्तव्य और दायित्वकी भावनासे अनुप्राणित व्यक्तियोंकी आवश्यकता है।[1]

कर्नाटकके लोगोंमें कार्य-कुशलताकी कोई कमी नहीं। आपके बीच एक जाने-माने इंजीनियर[2] हैं, संगीतज्ञ हैं और एक प्रसिद्ध कलाकार[3] है, और भी अनेक लोग हैं, जिनके नाम अन्य क्षेत्रोंमें विख्यात हैं। अब मैं चाहता हूँ कि आपके बीचसे एक अत्यन्त ही सिद्धहस्त कताई-विशेषज्ञ और निकल आये। यहाँ खादीकी तीन दुकानें हैं। मेरी तो कामना थी कि इनसे आपका काम न चलता, आपके लिए और ज्यादा दुकानें खोलनी पड़तीं; परन्तु मैं जानता हूँ और इस सभासे स्पष्ट दिख रहा है कि ये तीन दुकानें भी आपकी जरूरतसे ज्यादा हैं। खादीसे हमदर्दी रखनेवाले अनेक लोग आज भी खादी नहीं पहन रहे हैं। इसलिए तीनके बजाय एक ही दुकान रखें, लेकिन उसे अच्छी तरह चलायें। कई संस्थाओंने चरखा अपना लिया है। मुझे बतलाया गया था कि महाराजा साहबके अंग-रक्षकोंने भी कातना शुरू कर दिया है। पर मैं यह भी जानता हूँ कि यह काम कितने अबकचरे ढंगसे किया जा रहा है। इन सभी संस्थाओं और कातनेवाले अंग-रक्षकोंके लिए भी कताईका एक विशेषज्ञ रखना जरूरी है। बेसुरे संगीतकी तरह, बेढंगा सूत भी किसी कामका नहीं होता। दरिद्रनारायणकी सेवा करनेके इच्छुक सभी लोगोंको मैं विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि चरखेका एक अपना संगीत, इसकी एक अपनी कला, अपना आर्थिक पहलू और एक अपना ही आनन्द होता है। मैंने मैसूरकी अनेक संस्थाएँ देखी हैं। मैंने प्रिन्सेस कृष्णराजमन्नी आरोग्याश्रम देखा, जहाँसे मुझे कोई आशा नहीं थी, पर जहाँके मरीजोंने करोड़ों गरीब भाइयोंके लिए अपने प्रेमके सच्चे प्रतीकके रूपमें आग्रहपूर्वक अपनी भेंट दी। मैंने अंधे-गूँगोंका आश्रम देखा, जहाँके नेत्रहीन युवकोंने

१. यहाँ तकका अंश २५-७-१९२७के हिन्दूमें प्रकाशित विवरणसे लिया गया है।

२. डॉ० एम० विश्वेश्वरैया।

३. वेंकटप्पा।

दो दिनतक संगीतसे मेरी आत्माको तृप्त किया। मैंने अनाथ और अशक्त बालकोंका आश्रम और आदि-कर्नाटक बालकोंकी पाठशाला भी देखी है। इनसे महाराजाकी मानवीयताका परिचय मिलता है। पर मेरा कहना है कि आपको इस मानवीयताकी परिधिको अभी और आगे बढ़ाना है। यह हमारी उदारताकी प्रवृत्तिका ही प्रताप है कि समाजमें अन्धे और अशक्तोंको भी भूखों नहीं मरना पड़ता। परन्तु हमारे देशके करोड़ों ग्रामवासी ऐसे हैं जो भीख माँगनेके लिए हाथ नहीं पसार सकते और जो बहुत ही छोटी-छोटी जोतोंपर जीविकाके लिए निर्भर रहते हैं और इसलिए जिन्हें अक्सर भूखे रहना पड़ता है। उनकी भुखमरी और गरीबीके लिए हम लोग ही जिम्मेदार हैं। मैसूर तो मानवीयतापूर्ण और समाज-सेवी संस्थाओंका घर है। इसीलिए मेरा आपसे अनुरोध है कि आप लोग भूखों मरते करोड़ों मेहनतकशोंके लिए भी कोई व्यवस्था अवश्य करें।

आप दो तरहसे भाग्यशाली हैं। आपके प्रदेशकी जलवायु अत्युत्तम है, प्राकृतिक छटा मनोरम है, और साथ ही आपके महाराजा भले और उदार प्रवृत्तिके हैं, वे सदा अपनी प्रजाके कल्याणकी बात सोचते रहते हैं। ऐसे राज्यमें तो एक भी भिखारी नहीं रहना चाहिए और न किसीको भूख और गरीबीसे कष्ट पाना चाहिए। मैंने आज कृष्णराज सागर बाँध देखा। सर एम० विश्वेश्वरैयाकी इंजीनियरीका वह चमत्कार देखकर मेरा मन विभोर हो उठा। मैंने सुना है कि विश्व-भरमें उस तरहका बस एक ही बाँध और है। ऐसी उद्यमशीलताके प्रदेशमें दरिद्रनारायणके लिए भी कुछ व्यवस्था कीजिए, बस यही मेरा अनुरोध है। आपने मुझे अपने प्रेमसे सराबोर कर दिया है, इसके लिए मैं आपका आभारी हूँ और ईश्वरसे यही माँगता हूँ कि मैं अपने-आपको इस प्रेमके योग्य सिद्ध कर सकूँ।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, ११-८-१९२७

१९१. पत्र: एन० आर० मलकानीको

कुमार पार्क, बंगलोर
२४ जुलाई, १९२७

प्रिय मलकानी,

तुम्हारा सुन्दर पत्र मिला। जल्दबाजीमें कुछ भी मत होने दो। मैंने चार दिन पहले थडानीको विस्तारपूर्वक एक पत्र[1] लिखा था और वह तुम्हें पढ़वा देनेके लिए भी कहा था।

गुजरात विद्यालयका तो इस समय प्रश्न ही नहीं उठता। पर अगर तुम अपने-आपको बिलकुल मेरे हवाले कर दो और सब-कुछ मेरी मर्जीपर छोड़ दो, तो मैं कई तरहसे तुम्हारा उपयोग कर सकता हूँ। लेकिन यह महत्त्वकी बात नहीं है।

१. देखिए "पत्र: एन० वी० थडानीको", १९-७-१९२७।

तुम जिन-जिन लोगोंकी रायकी जरा भी कद्र करते हो उन सबके साथ बैठकर शान्त मनसे दृढ़ताके साथ चर्चा करो, और फिर देखो कि तुम्हारा अपना विचार क्या बनता है। मेरे साथ स्थायी रूपसे रहनेका अर्थ तो तुम समझते ही हो। वैसा करनेमें हो सकता है, तुम्हें फाँसीके तख्तेपर चढ़ना न पड़े, पर तुम्हें उसपर इस तरह चढ़नेके लिए हमेशा तैयार तो रहना पड़ेगा, मानो तुम किसी सिंहासन या आचार्यके आसन-पर बैठने जा रहे हो।

थडानी मेरे इससे पहलेवाले पत्रको, या तुम्हारे नाम मेरे पत्रोंको बिलकुल भी नहीं समझ सके। पता नहीं, मेरे पिछले पत्रका वे क्या अर्थ लगायेंगे।

हृदयसे तुम्हारा,
बापू

अंग्रेजी (जी० एन० ८७७) की फोटो-नकल तथा एस० एन० १२६१६ से भी।

१९२. पत्र: एन० आर० मलकानीको

२४ जुलाई, १९२७

प्रिय मलकानी,

इतने दिनोंसे जिसकी मैं आशा लगाये था, तुम्हारा वह पत्र मुझे मिल गया।

मैं तुम्हारी स्थिति समझता हूँ। तुम निश्चय ही सबसे पहले थडानीके साथ हुआ अपना करार पूरा करो। अब तुमने सिन्धी-साहित्य-सभाका काम अपने ऊपर ले लिया है और जाहिर है कि तुम बाढ़-सहायता सेवाके कामसे तो हाथ खींच नहीं सकते। इन जिम्मेदारियोंसे छुट्टी पानेपर मुझे लिखो। इस बार जल्दबाजी नहीं करनी है। तुम्हें अपनी पत्नी और सासके साथ बैठकर हर चीजपर विस्तारसे बात कर लेनी चाहिए। अभी तुम वहाँके कामोंको आजमाकर देखो और अगर इस आजमाइशके दौरान तुम्हें पूरी तरह मेरे साथ रहनेकी अपेक्षा किसी दूसरे काममें ज्यादा दिलचस्पी महसूस होने लगे, तो तुमको निश्चय ही छुटकारा दे दिया जायेगा। मेरे साथ रहनेके लिए तभी आओ जब तुम्हें ऐसा लगे कि इसके बिना तुम्हारा काम चल ही नहीं सकता। यह तो तय ही है कि तुम अपने हाथमें जो भी काम लोगे, उसे पूरी कुशलताके साथ सम्पन्न करोगे। हाँ, यह जरूर है कि मैंने तुम्हें "चन्द चुने हुए लोगों" में से माना था और मैं उसीके अनुसार तुमसे बड़ी-बड़ी आशाएँ बाँधे बैठा था। मगर किसीको जबरदस्ती तो उस साँचेमें ढाला नहीं जा सकता। उसे उस अवस्थामें स्वभावतः आत्मिक तुष्टिका अनुभव होना चाहिए। इसलिए मैं चाहता हूँ कि तुम अपने-आपको अच्छी तरह ठोक-बजाकर देख लो और तब अगर मन यहाँ वापस आनेको कहे तो आओ। यहाँ आनेका मतलब फूलोंकी सेजपर सोना नहीं, बल्कि कर्म-संकुल जीवन होगा। वैसे तो मेरे मनमें अनेक योजनाएँ हैं, लेकिन मैं

नही कह सकता कि अगर तुम आज ही यहाँ आ जाओ तो मैं तुम्हे किस काममें लगाऊँगा। बस इतना ही कह सकता हूँ कि तुम्हे वही तैनात करूँगा जहाँ सबसे अधिक कठिनाई होगी।

यह पत्र तुम अपने जितने भी मित्रोंको चाहो दिखा दो।

थडानीकी बातपर अफसोस हुआ। मैं जानता हूँ कि मेरे बारेमें उनकी गलतफहमी ज्यादा दिन नही रहेगी। मैंने गुस्सेके कारण नही, अपने स्नेहके कारण ही कड़ी भाषाका प्रयोग किया था।

जयरामदाससे पूछो कि उनको रुपये-पैसोकी जरूरत तो नही है। बाढ़-सहायता कार्यके लिए तुम्हारे पास काफी कार्यकर्त्ता है या नही? मेरा अनुभव है कि यदि सच्चे कार्यकर्त्ता पर्याप्त संख्यामें न हो तो रुपये-पैसोसे कुछ नही बनता।

सस्नेह,

तुम्हारा,
बापू

अंग्रेजी (जी० एन० ८७३) की फोटो-नकलसे।

१९३. पत्र : रेहाना तैयबजीको

कुमार पार्क, बंगलोर
२४ जुलाई, १९२७

प्रिय रेहाना,

तुम्हारा खत मिला। चूँकि तुम कहती हो कि तुम्हारे और वालिदाके बीच चीजें तय हो चुकी हैं, इसलिए मैं उनको या तुम्हारे वालिदको उसके बारेमें कुछ भी नही लिख रहा हूँ। अब तो यही उम्मीद करता हूँ कि तुम अपना रास्ता आप बना लोगी, और अगर तुम्हारे दिमागमें यह बात साफ हो कि तुम क्या चाहती हो और तुम उसपर पूरी नम्रतापूर्वक मजबूतीसे जमी रहोगी तो तुम निश्चय ही अपना रास्ता बना लोगी।

किसी भी उद्योगको संरक्षण देना हमारा कर्त्तव्य नही है। लेकिन अगर अपनी बुनियादी जरूरतें पूरी करनेमें किसी उद्योगको संरक्षण देना हमारा कर्त्तव्य हो भी तो जाहिर है, हम उसीको संरक्षण देंगे जो हमारे पड़ोसियोंको, जिन्हें हमारी सहायताकी सबसे ज्यादा जरूरत है, सहारा देता हो। यही तुम्हारे सवालका जवाब है।

सस्नेह,

हृदयसे तुम्हारा,
बापू

अंग्रेजी (एस० एन० ९६०५) की फोटो-नकलसे।

१९४. पत्र : के० टी० चक्रवर्तीको

कुमार पार्क, बंगलोर
२४ जुलाई, १९२७

प्रिय मित्र,

आपका इसी ११ तारीखका पत्र मिला। आपने ईश्वरसे सही मार्ग दिखाने की प्रार्थना की है, आशा है ईश्वर आपकी प्रार्थना सुनेगा।

'यंग इंडिया' का कौन-सा अनुच्छेद देखकर आपने यह सोचा कि १९०१में कांग्रेसने मेरे साथ जो व्यवहार किया था, उसे मैं अत्यन्त ही अपमानजनक मानता हूँ? खैर, मेरे साथ सभीने जो भी व्यवहार किया था उससे ज्यादा अच्छे व्यवहारकी न तो मुझे अपेक्षा थी और न उसका मुझे कोई अधिकार ही था। आपने जिस प्रस्तावनाका उल्लेख किया है, वह मुझे याद नहीं पड़ती। हाँ किसी अन्य स्थलपर मैंने सुरेन्द्रनाथ बनर्जीके अपने प्रति पितृवत् व्यवहारका जिक्र जरूर किया है। सर दिनशा वाछाने जिस प्रकार मुझे रोका था, उसका उन्हें पूरा अधिकार था।[1] स्थिति सचमुच असहनीय बन जायेगी, यदि हर नवयुवक थोड़ी-बहुत सेवाके बलपर ही अपने लिए वे सभी सुविधाएँ और विशेषाधिकार माँगने लगे जिनका हक देशके पुराने और मँजे हुए नेताओंको ही हो सकता है। आप देखेंगे कि [आत्मकथाके] इन अध्यायोंमें गोखले का नाम बार-बार आया है। उसका सीधा-सादा कारण बस यही है कि उन्होंने दूसरोंके मुकाबले मुझको अपना विशेष स्नेह दिया और मेरा खास खयाल रखा, लेकिन मैं ऐसा कुछ नहीं समझता कि उन्होंने मेरे साथ विशेष व्यवहार इसलिए किया कि मैं उसका योग्य पात्र था या इसलिए कि मैं जिस सम्मानका पात्र था, उसे देनेमें जहाँ अन्य लोग चूक गये वहाँ उनको मुझे वह उचित सम्मान देनेका खयाल रहा। क्या आप नहीं देख पाते कि मैंने उन अध्यायोंमें यह सिद्ध करनेका प्रयत्न किया है कि गोखले और मेरे बीच एक स्वतःस्फूर्त सम्बन्ध बन गया था, ठीक वैसे ही जैसे कि पति और पत्नीके बीच होता है। यह कैसी विडम्बना होगी यदि कोई स्त्री, सिर्फ इसलिए कि वह एक पुरुष-विशेषको ही अपनी ओर आकर्षित कर सकी है, यह सोचने लगे कि केवल उस पुरुष विशेषने उसके गुणोंकी कद्र की और अन्य सभीने उसका अपमान किया है। क्या आप नहीं समझते कि ऐसी चीजें प्रकट करती हैं कि प्रकृतिके अपने कुछ रहस्यपूर्ण तरीके हैं, और इस प्रकारके स्नेह-बन्धनोंका मूल

१. देखिए आत्मकथा, भाग ३, अध्याय १५।

कारण पूर्व जन्म और पूर्व जन्मके सम्बन्धोंके सिद्धान्तके आधारपर ही कुछ हदतक समझा जा सकता है।

हृदयसे आपका,

के० टी० चक्रवर्ती
चटगाँव

अंग्रेजी (एस० एन० १२६१५) की फोटो-नकलसे।

१९५. एक पत्र

कुमार पार्क, बंगलोर
२४ जुलाई, १९२७

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। जनरल डायरको लकवा लगनेकी खबर सुनकर सचमुच दु:ख हुआ। मैं नही समझता कि उनके लकवेसे पीड़ित होनेका जलियाँवाला बागमें किये उनके कृत्यसे कोई अनिवार्य सम्बन्ध है। क्या आपने इस प्रकारके अपने विश्वास-के लाजिमी नतीजोंपर विचार किया है? हम जिनको बड़े ही भले और पवित्र व्यक्ति मानते है, वे भी तो आखिर गम्भीर बीमारियोके शिकार बनते रहे हैं। मुझे ही देखिए। पेचिश, आन्त्रपुच्छ और इस बार मामूली लकवेसे मेरे पीड़ित होनेकी बात आपको मालूम ही होगी। और मुझे बड़ी पीडा होगी, यदि कोई भला अंग्रेज सोचने लगे कि मेरी इन बीमारियोका कारण अंग्रेजी सरकारके प्रति मेरा उग्र विरोध ही है। उनको मेरा विरोध उग्र ही लगता होगा। हालाँकि मेरा विश्वास है कि प्रत्येक रोग वर्तमान या पूर्वजन्ममें प्रकृतिके किसी-न-किसी नियमके उल्लघनका ही प्रत्यक्ष परिणाम होता है, पर हमारे पास ऐसे तथ्योंका अभाव है, जिनके आधारपर हम हर मामलेमें यह निश्चित कर सके कि किस उल्लंघनके फलस्वरूप ये रोग हुए।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी (एस० एन० १४१९४) की फोटो-नकलसे।

१९६. पत्र : खुर्शीदको

कुमार पार्क, बंगलोर
२४ जुलाई, १९२७

तुम्हारा खत पहुँचनेकी इत्तिला दे रहा हूँ। मैं सोच ही रहा था कि इतने दिनोंसे तुम लोगोंमें से किसीका भी खत क्यों नहीं आया। कितना अच्छा रहता कि इस सफरमें तुम मेरे साथ होतीं, क्योंकि यह एक बड़ा ही खूबसूरत इलाका है। यहाँ कला काफी दिखाई पड़ती है और संगीत भी बहुत बढ़िया है।

किसी देशी राज्यमें तुम्हें संगीत शिक्षिकाका काम मिलनेके बारेमें आखिरकार क्या होता है, अवश्य लिखना।

मेरी सेहत अच्छी है।

हृदयसे तुम्हारा,

कुमारी खुर्शीद
नेपियन सी रोड
बम्बई

अंग्रेजी (एस० एन० १४१९५) की फोटो-नकलसे।

१९७. पत्र : कुवलयानन्दको

कुमार पार्क, बंगलोर
२४ जुलाई, १९२७

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। अपने शरीरके बारेमें जितनी भी सावधानी मैं बरत सकता हूँ, बरत रहा हूँ और दौरेमें कमसे-कम मेहनत करनेकी कोशिश कर रहा हूँ। मैं आपकी इस बातसे बिलकुल सहमत हूँ कि यदि दौरा करना बिलकुल बन्द ही रखता तो शायद ज्यादा अच्छा होता। लेकिन यहाँ जब डाक्टरने मेरी हिम्मत बढ़ाई तो मुझे भी लगा कि अब दौरेको स्थगित रखनेका मुझे कोई अधिकार नहीं। आखिर आदमीको इस जीवनमें कुछ जोखिम तो उठानी ही पड़ती है और . . .[1] शरीर, जिसे एक दिन तो नष्ट होना ही है। यदि कोई दुर्घटना हो गई तो उसके लिए मैं योगासनोंके अभ्यासको किंचित् भी दोषी नहीं मानूँगा; दोषी मैं अपने-आपको ही मानूँगा इसलिए कि मैंने ऐसा प्रयोग क्यों किया, जिसमें कोई खतरा मौजूद था।

१. साधन-सूत्रमें यहाँ स्थान रिक्त है।

आसनोंका अभ्यास पहलेकी तरह चल रहा है। जब भी चाहें, आनेकी कृपा अवश्य करें।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी (एस० एन० १४१९६) की फोटो-नकलसे।

१९८. पत्र: सुन्दरलाल माथुरको

कुमार पार्क, बंगलोर
२४ जुलाई, १९२७

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। काली या लाल कोई भी मिट्टी हो, पर साफ हो तो काम दे जायेगी। कमसे-कम सात दिनतक मिट्टीकी पट्टी लगातार रखनी चाहिए और यदि लाभ दिखाई पड़े तो आप उसे तबतक जारी रख सकते हैं जबतक आपको यह न लगे कि अब काफी हो चुका है। अजीर्णके लिए तो मिट्टीकी पट्टियाँ जारी रखते हुए भी पूरा उपवास रखकर बीच-बीचमें खूब पानी पीनेसे बड़ा लाभ होता है। और यदि आप उपवास रखें तो दिनमें एक बार एनिमाके द्वारा अँतड़ियाँ साफ कर लेनी चाहिए।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत सुन्दरलाल माथुर, बी०ए०, एलएल०बी०
वकील
पीरगैब
मुरादाबाद (सं० प्रा०)

अंग्रेजी (एस० एन० १४१९७) की फोटो-नकलसे।

१९९. पत्र: जे० डब्ल्यू० पेटावेलको

कुमार पार्क, बंगलोर
२४ जुलाई, १९२७

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। यह न समझें कि मैं आपसे ऊब जाऊँगा। मुझे उबाना इतना आसान काम नहीं है। लेकिन, थोड़े ही दिनोंमें आप खुद ऐसा मानकर कि इस आदमीके साथ सिर खपाना बेकार है, मुझे छोड़ देंगे। क्योंकि आपका ताजा पत्र भी मुझे वह खुराक नहीं देता जो मैं चाहता हूँ।

वह अद्‌भुत और सफल आदर्श बस्ती कौन-सी है जिसका आपने अपने लेखमें उल्लेख किया है? काश, मैं आपको यह समझा पाता कि लिखिए कम और कीजिए

ज्यादा। मै आपको बता चुका हूँ कि मै साबरमतीमें क्या-कुछ कर रहा हूँ। यह काम मुझे उसी ढंगका लगता है जिस ढंगका काम आपने सुझाया है; हाँ, उस अमेरिकी ...[1] के बिना ही जो आपका आदर्श है, लेकिन मेरा नही। उदाहरणके लिए आपने जो कहा है कि जहाँ हम भारतीय लोग एक दानेसे केवल ७० दाने पैदा करते हैं वहाँ जर्मन लोग ७०,००० दाने पैदा करते हैं, उससे क्या बनता-बिगड़ता है? कारण यह है कि जो बात जर्मनीपर लागू होती है, वह भारतपर लागू नही होती और न आगे कई पीढ़ियोंतक लागू होगी। मैं आपकी एक और आदत भी दूर कर सकूँ तो बड़ा अच्छा हो। वह यह कि आपके मनमें जितने भी विशिष्ट और बड़े लोगोंके नाम आते है, उन सबको आप बिना सोचे-समझे अपनी दलीलमें घसीट लाते हैं। क्या आप एक वैज्ञानिककी तरह ऐसा नही कर सकते कि हर तथ्यकी जाँच करके खुद देखें और जो लोग आपके निष्कर्षको पढ़ें, उन्हें खुद ही उस निष्कर्षको व्यवहारमें परख कर देखनेका अवसर दें और इस तरह अपनी बातको लोगोंके गले उतारनेकी कोशिश करें? निश्चय ही अबतक आपको यह समझ लेना चाहिए था कि ठोस और तथ्यपूर्ण बातोंका समर्थन करनेके लिए बड़े-बड़े व्यक्तियोंके प्रमाणोंकी आवश्यकता नही होती और अगर होती भी है तो सिर्फ थोड़ी-बहुत प्रेरणा देनेके लिए होती है। किन्तु जब उनका सहारा ऐसी बातोंका समर्थन करनेके लिए लिया जाता है जिनकी सचाई और महत्त्व सन्दिग्ध होते हैं तो उनसे कोई लाभ होना तो दूर, शायद हानि ही होती है।

अगर मैं आपकी पत्रिकाका प्रधान सम्पादक होऊँ तब तो नमूनेके तौरपर आपके भेजे अंकोंमें मैंने जो-कुछ पढ़ा है, उसमें से ९० प्रतिशतको निकाल दूँ और आपसे उसे, उसमें कही गई बातोंको ठोस तथ्य देकर प्रमाणित करते हुए, फिरसे लिखनेको कहूँ और जब आप लिख दें तो शायद फिरसे उसे और भी संक्षिप्त कर दूँ। जरा सोचिए तो कि इससे व्यस्त पाठकोंका कितना समय बचेगा, छपाईमें खर्च होनेवाली कितनी स्याही बचेगी, कम्पोजिटरों और प्रूफ-संशोधकोंपर खर्च होनेवाला कितना पैसा बचेगा? इस तरह छपकर जो सामग्री तैयार होगी, वह वैज्ञानिक कसौटी-पर भी बिलकुल खरी उतरेगी और यदि वह सामग्री सामयिक हुई तो पत्रिकाकी प्रतियाँ हाथों-हाथ बिक जायेंगी।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी (एस० एन० १४१९८) की फोटो-नकलसे।

१. यहाँ साधन-सूत्रमें स्थान रिक्त है।

२००. भाषण: बंगलोरके नागरिक और सामाजिक विकास संघमें[1]

२४ जुलाई, १९२७

भाइयो,

मैंने आपके संघके कार्यके बारेमें सुना है और इसे सुनकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है। आज आपने मुझे अपनी प्रवृत्तियोंको जाननेका मौका दिया है और मुझे यह जानकर बड़ा सन्तोष हुआ है कि उन प्रवृत्तियोंमें से एक प्रमुख प्रवृत्ति यहाँके आदि कर्नाटक लोगोंकी अवस्थामें सुधार करनेका प्रयत्न करना है। हालाँकि अपने नगरको उन्नत बनानेके तरीकोंमें एक मुख्य तरीका इस तरहके संघकी स्थापना भी है, फिर भी मैं आपसे कह सकता हूँ कि अपने आदि कर्नाटक भाइयों और बहनोंकी अवस्था सुधारनेके कार्यसे बड़ा और कोई पुण्य-कार्य नहीं है। लेकिन जैसा कि खुद आपने अपने मानपत्रमें बताया है, आपने इस दिशामें काफी-कुछ किया है, फिर भी अभी बहुत-कुछ करना बाकी है। आप अच्छी तरह जानते हैं कि जबतक इस देशमें एक भी ऐसा मन्दिर है जिसके द्वार आदि कर्नाटक लोगोंके लिए बन्द हैं, जबतक आपमें एक भी ऐसा व्यक्ति है जो आदि कर्नाटकोंको भाई मानकर अपने पास नहीं आने देता तबतक यह कार्य कभी भी पूरा नहीं होगा, सम्पन्न नहीं होगा।

आप बेचारे आदि कर्नाटकोंकी हालतको बेशक अच्छी तरह जानते हैं और यह भी जानते हैं कि गोमांस खाना हिन्दू धर्मका अंग नहीं है। इसके विपरीत, हिन्दू धर्म सभीको गो-रक्षाका आदेश देता है और आप लोगोंने, जो इस बातको अच्छी तरह जानते हैं, क्या गाँवोंमें रहनेवाले अपने इन भाइयोंको यह बात सिखाई है? हिन्दू धर्मके इस पक्षका ज्ञान न होनेके कारण इन लोगोंमें, जो हिन्दू ही हैं, बुरी आदतें आ गईं, लेकिन आप ऐसा व्यवहार कीजिए जिससे वे समझें कि आप हिन्दू धर्मानुसार उनके जीवनको बेहतर बनानेमें सहायता करनेके लिए सचमुच उत्सुक हैं। उन्हें यह बात समझानेके लिए आपको उनके सामने अपना हृदय खोलकर रख देना चाहिए। यदि आप अपने संघके सच्चे सदस्य हैं तो आपको उनके प्रति अपने कर्त्तव्यको निभाना चाहिए।

आप यह न सोचें कि आपका एक ही कर्त्तव्य है, देश-सेवा करना। आपका समाजके प्रति भी कोई कर्त्तव्य है, और ये दोनों एक-दूसरेपर निर्भर हैं। एक कर्त्तव्यकी उपेक्षा करके आप दूसरे कर्त्तव्यका पालन नहीं कर सकते। आप दोनोंको एक-दूसरेसे जुदा नहीं मान सकते। आप यह देखेंगे कि अपने भाइयोंको ऊँचा उठानेमें, अपनी सामाजिक बुराइयाँ दूर करनेमें, अपने समाजको देशकी सच्ची शक्तिका स्रोत बनानेमें और साम्प्रदायिक मेल-जोल स्थापित करनेमें, हिन्दुओं और मुसलमानोंमें पूर्ण और

१. गांधीजी हिन्दीमें बोले थे और गंगाधरराव देशपाण्डेने उसका कन्नड़ अनुवाद करके सुनाया था।

स्थायी मित्रता कायम करनेमें भी आपकी देश-सेवा निहित है। इस तरह आप देखेंगे कि आपके लिए दोनों कर्त्तव्य एक हैं और यदि आप देशकी सेवा करना चाहते हैं तो आपको चाहिए कि आप जिस समाजमें रहते हैं, उसकी भी सेवा करें।

इस सबको समझ लेनेपर आप अपना ध्यान बाल-विवाह प्रथाकी घोर बुराइयोंकी ओर दें। इसको आप धर्म या शास्त्र-सम्मत बात न कहें कि आप एक दुधमुँही बच्चीके साथ विवाह कर सकते हैं या कि आपके साथ उसका विवाह करके उसे आपकी धर्मपत्नी बननेको कहा जा सकता है। फिर भी मैं अपने ऐसे अनेक मित्रोंको जानता हूँ जो अच्छे वकील, डाक्टर और प्रबुद्ध व्यक्ति हैं लेकिन जिनका विवाह तेरह वर्षसे भी कम उम्रकी लड़कियोंसे हुआ। (हँसी) भाइयो, यह कोई हँसनेकी बात नहीं है, इसपर तो हमें लज्जा आनी चाहिए, हमारी आँखोंमें आँसू भर आने चाहिए। मैं आपसे सच कहता हूँ कि हमारे समाजमें इससे ज्यादा बुरी बात और कोई नहीं है। आपको इसपर गम्भीरतासे विचार करना चाहिए, इसे हँसीमें नहीं उड़ा देना चाहिए। हमारे नौजवानोंको निश्चय कर लेना चाहिए कि वे पन्द्रह वर्षसे कम आयुकी लड़कीसे विवाह नहीं करेंगे। इस सुधार-कार्यमें वास्तवमें इन्हीं लोगोंको सहायता करनी चाहिए। आप सबको, चाहे नौजवान हों या बूढ़े, इस कार्यमें मदद करनी चाहिए।

आपने उस महान् पुरुष गंगारामका[1] नाम तो सुना ही होगा। इस महान् पुरुषने अपने इंजीनियरिंगके कौशलसे पंजाबमें बड़े-बड़े काम किये हैं, ठीक उसी तरह जिस तरह कि आपके महान् पुरुष सर विश्वेश्वरैयाने यहाँ मैसूरमें किये हैं। लेकिन उन्होंने इस सबसे बड़ा जो कार्य किया है, वह है विधवा-विवाहके क्षेत्रमें किया गया काम। इसी तरह आपको भी विधवा-विवाहके कार्यमें योगदान देना चाहिए। लेकिन मैं आपसे पूछता हूँ, विधवा कौन है? विधवाको हम लोग अत्यन्त सम्मानकी दृष्टिसे देखते हैं, लेकिन क्या आप १४-१५ वर्षकी लड़कीको सिर्फ इसीलिए विधवा कह सकते हैं कि उसने अपना पति खो दिया है? यदि किसी माता-पिताने गरीबी अथवा अन्य कारण-वश अपनी तेरह वर्षीय लड़कीका विवाह कर दिया है और उसके पतिकी तत्काल अथवा एक साल बाद मृत्यु हो जाती है तो क्या आप यह कह सकते हैं कि वह विधवा है और उसे बादका अपना सारा जीवन कष्टमें, दुःखमें व्यतीत करना है? हमारा ध्यान दिन-ब-दिन इस प्रश्नकी ओर खिंचता जा रहा है और अब हम इसकी उपेक्षा नहीं कर सकते और न इसके प्रति उदासीन रह सकते हैं। उसके इस कष्टको स्थायी मत बना दीजिए। जब आप पुरुषोंको पुनर्विवाह करनेका अधिकार प्राप्त है तब आप स्त्रियोंको इस अधिकारसे वंचित क्यों रखते हैं? आपको यह समझना चाहिए कि आपको उन्हें यह अधिकार देना है और मैं आपसे पूछता हूँ कि क्या आप यह कार्य करके अपने समाजकी सबसे सच्ची सेवा करेंगे?

अन्तमें एक बात और। मैंने देखा है कि आपके संघ-जैसी संस्थाएँ अपनी गति-विधियोंको शहरोंतक ही सीमित रखती हैं। ऐसा नहीं होना चाहिए। आपको शहरोंसे

१. देखिए पृष्ठ २२७-२८।

बाहर जाकर गाँवों और पुरवोंके कल्याणके लिए भी काम करना चाहिए। मेरा आपसे अनुरोध है कि आप इसे याद रखें। भगवान् आपके सघको, उसके पुनीत प्रयत्नोंको सफल बनाये।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, २५-७-१९२७

२०१. पत्र : मीराबहनको

२५ जुलाई, १९२७

चि० मीरा,

तुम्हारा लम्बा पत्र मिला लेकिन इसमें तुमने जितने विषयोंकी चर्चा की है, उनको देखते हुए इसे लम्बा नही कहा जा सकता।

बिच्छुओंसे होशियार रहना। एक बर्तनमें मिट्टी बराबर तैयार रखनी चाहिए और उसे अक्सर धूप दिखाते रहना चाहिए। अगर किसीको बिच्छू काट ले तो तुम्हें काफी मिट्टीका उपयोग करना चाहिए, और जब भी सम्भव हो तब, यदि काटे हुए स्थानपर घाव न हुआ हो तो, कपड़े आदिमें बाँधकर मिट्टीकी पट्टी लगानेके बजाय सीधे चमड़ीपर ही उसका लेप चढ़ा देना चाहिए। अगर दर्द न जाये तो घंटे, आधा घंटे बाद पट्टी या लेप बदलते रहना चाहिए।

अब मासिक-धर्मके बारेमें। तुम्हें शायद मालूम होगा कि इस अवधिमें आश्रममें स्त्रियाँ अलगाव नही बरतती। लेकिन, मुझे नही मालूम कि ठीक-ठीक क्या करना चाहिए। इस मामलेमें वास्तवमें स्त्रियाँ ही सहायता कर सकती है। क्योंकि वे ही कह सकती हैं कि इस हालतमें क्या चीजें जरूरी हैं। मुझे लगता है कि इस हालतमें स्त्रियोंको अस्पृश्य माननेका कारण पुरुष द्वारा अपनी वासनापर नियन्त्रण रख पानेकी असमर्थता है। सिर्फ वासनाको तुष्ट करनेकी दृष्टिसे रजस्वला स्त्रीका स्पर्श वर्जित करनेसे शायद काम नही चला, लेकिन जब यह तय कर दिया गया कि स्त्रीका इस अवस्थामें किसी भी तरहसे स्पर्श न किया जाये और यह एक धार्मिक नियम बन गया तब शायद पुरुष इस निषेधका पालन करने लगा। पता नही, पाश्चात्य संसारमें पुरुष इस अवधिमें स्त्रियोंके साथ कैसा व्यवहार करते हैं या मुसलमान लोग इस परिस्थितिमें क्या करते हैं। फिलहाल, तुम्हें अपनी खोज जारी रखनी चाहिए और अगर इस विषयपर कोई साहित्य हो तो उसे पढ़ना चाहिए। अगर तुम इस विषय-पर अपने कुटुम्बियोंसे पत्रव्यवहार कर सको तो करो। और अब चूँकि इसमें लग ही गई हो तो मैं इसके बारेमें जो भी जानकारी प्राप्त कर सकता हूँ, प्राप्त करनेकी कोशिश करूँगा।

प्रार्थना आदिके बारेमें तुमने जो-कुछ कहा है, उसे मैं समझता हूँ।
मैसूरके कार्यक्रमका भार मैं मजेमें बरदाश्त कर गया।
सस्नेह,

बापू

अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ५२५४)से।
सौजन्य : मीराबहन

२०२. पत्र : आश्रमकी बहनोंको

मौनवार, आषाढ़ बदी १२ [२५ जुलाई, १९२७][1]

बहनो,

आजका पत्र तुम्हारी हाजिरीके बारेमें लिखना चाहता हूँ। हाजिरीमें अनियमितता बहुत पाता हूँ। आश्रममें बहनोंका सामाजिक जीवन और उनकी सामाजिक सेवा इस स्त्री-वर्गसे शुरू होती है। इसलिए जैसे हम रोज खानेका नियम बीमारी आदिके कारण ही तोड़ते हैं, वैसे ही कक्षामें हाजिरी देनेका नियम भी ऐसे किसी बड़े कारणसे विवश होकर ही तोड़ सकते हैं। बहनोंने इस कक्षामें नियमित रूपसे आनेका व्रत लिया है। तो फिर वे इस व्रतको कैसे तोड़ सकती हैं? जिस प्रकार शरीरके नियमोंका पालन करके शरीरकी रक्षा की जाती है उसी प्रकार संस्थाके नियमोंका पालन करके संस्थाको और समाजके नियमोंका पालन करके समाजको कायम रखा जाता है। इसलिए क्या तुम मुझे यह आश्वासन नहीं दे सकती कि ऐसे किसी कारणके बिना जिसके विषयमें दो मत हो ही नहीं सकते कोई भी बहन गैरहाजिर नहीं रहेगी?

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ३६५९) की फोटो-नकलसे।

१. गांधीजी द्वारा उपस्थिति पंजिकाकी जाँचके आधारपर इस शीर्षकका वर्ष निर्धारित किया गया है।

२०३. पत्र : वसुमती पण्डितको

मौनवार [२५ जुलाई, १९२७][1]

चि० वसुमती,

तुम्हारे दोनो पत्र मिल गये हैं। तुम जितना चाहे अध्ययन करो किन्तु अपने स्वास्थ्यका ध्यान रखना। मैं समझता हूँ कि तुम हरिभाईकी विधवा चि० कुसुमसे मिलने जाओगी। यदि जाओ तो उसकी स्थितिके बारेमें जानकारी प्राप्त करना। मैंने उसे पत्र लिखा है।[2] उसकी क्या इच्छा है? क्या उसके माता-पिता हैं? उसकी आयु कितनी है? उसकी आर्थिक स्थिति कैसी है? वह शान्त है या दुःखी? यदि तुम उसके विवाहके बारेमें कुछ जानती हो तो लिखना और यदि न जानती हो तो जाननेकी कोशिश करना। मैं सोचता था कि इस बारेमें किसी रोज हरिभाईसे ही सब-कुछ जान लूँगा किन्तु वे तो चले गये।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ६१६) की फोटो-नकलसे।
सौजन्य : वसुमती पण्डित

२०४. पत्र : कुँवरजी पारेखको

मौनवार, [२५ जुलाई, १९२७][3]

चि० कुँवरजी,

मैं तुम्हें रोज याद करता हूँ। यह पोस्टकार्ड यही बतानेके लिए लिख रहा हूँ। समय ही नही मिलता। रामदास तुम्हारे समाचार देता रहता है। उम्मीद है तुम्हारा मन शान्त होगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (एस० एन० ९७०३) की फोटो-नकलसे।

१. पत्रमें हरिभाईकी मृत्युके उल्लेखसे।
२. देखिए "पत्र : कुसुमबहन देसाईको", २२-७-१९२७।
३. एस० एन० रजिस्टरसे।

२०५. पत्र : चेंगिया चेट्टीको[1]

कुमार पार्क, बंगलोर
२६ जुलाई, १९२७

प्रिय मित्र,

श्रीयुत राजगोपालाचारीने मुझे आपका पत्र दिखाया। खादी-कोषकी व्यवस्थाके सम्बन्धमें आपने मुझे जो चेतावनी दी है, उसके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। मैं नहीं जानता कि खिलाफत-कोषका क्या हुआ। मुझे तो सिर्फ इतना ही मालूम है कि जिस बैंकमें यह रकम रखी गई थी उसका दिवाला निकल गया। लेकिन मैं आपको बता दूँ कि खिलाफत-कोषकी व्यवस्थामें मेरा कभी कोई हाथ नहीं था। खादी-कोषके लिए मैं अवश्य उत्तरदायी हूँ। अखिल भारतीय चरखा संघकी एक परिषद् है; सारी निधियोंको रखने और उनकी व्यवस्था करनेका काम उसीके सुपुर्द है। सेठ जमनालाल बजाज, जो एक पुराने और प्रतिष्ठित व्यापारी हैं तथा कई व्यापारिक प्रतिष्ठानोंके निदेशक हैं, इस संघके कोषाध्यक्ष हैं। बम्बई बैंकके स्वर्गीय घेलाभाई बैंकर-के सुपुत्र श्री शंकरलाल बैंकर इसके मन्त्री हैं। पैसा अच्छी साखवाले जाने-माने बैंकोंमें रखा जाता है। समुचित ढंगसे हिसाब-किताब रखे जाते हैं और अविकृत लेखापाल (चार्टर्ड एकाउन्टेन्ट) समय-समयपर उनकी जाँच करते हैं। अधीनस्थ संगठनोंके हिसाब-किताबकी जाँच करनेके लिए निरीक्षक नियुक्त किये गये हैं। कोषके संरक्षण और उसके उचित वितरणके लिए जो-कुछ सम्भव हो सकता है, सब किया जा रहा है।

साथमें अखिल भारतीय चरखा संघकी ओरसे प्रकाशित रिपोर्ट भेज रहा हूँ। उसमें आप लेखापाल द्वारा जाँचा हिसाब-किताब भी देखेंगे। रिपोर्टको पढ़नेके बाद अथवा उससे पहले भी यदि आप रकमकी सुरक्षाके लिए कोई सुझाव देना चाहें तो मैं उसका स्वागत करूँगा।

अब महिला-समाजमें महिलाओंसे अपने आभूषण दे देनेके मेरे अनुरोध[2] तथा इन आभूषणोंको 'स्त्री-धन' कहनेके बारेमें। इनके सम्बन्धमें मेरे विचार बहुत निश्चित और दृढ़ हैं। मैं जबसे भारतमें हूँ तबसे, बल्कि जब दक्षिण आफ्रिकामें था तभीसे भारतीय तथा यूरोपीय बहनोंको भी अपने आभूषणोंका परित्याग कर देनेके लिए निस्संकोच भावसे प्रेरित करता आया हूँ। मुझे याद है, बहुत पहले, १९०६ में ही स्वर्गीय सुरेन्द्रनाथ बनर्जीने भी लाहौरमें महिलाओंसे अपने-अपने गहने देशकी खातिर दे देनेका अनुरोध किया था, और मुझे यह भी याद है कि महिलाओंने उनपर गहनोंकी बौछार कर

१. यह पत्र गांधीजीने चेंगिया चेट्टीके २१ जुलाईके पत्रके उत्तरमें लिखा था। इसमें चेंगिया चेट्टीने गांधीजीसे पूछा था: "खादी-कोषकी व्यवस्था करनेके लिए क्या कोई कमेटी नियुक्त की गई है?" उन्होंने गांधीजीके स्त्रीधन-सम्बन्धी विचारोंकी भी आलोचना की थी।

२. देखिए "भाषण: महिला-समाज, बंगलोरमें", १३-७-१९२७।

दी थी। मैं नहीं समझता मैं ऐसा अनुरोध करके कोई अनुचित काम कर रहा हूँ। सचमुच आप पहले व्यक्ति हैं जिसने इस विषयमें आपत्ति की है। वस्तुतः मेरे अनेक सम्पन्न मित्र मेरे अनुरोधसे खुश हुए हैं, और जब मैं तिलक स्वराज्य-कोषके लिए ऐसा अनुरोध कर रहा था, तब उनमें से कुछ लोग मुझे अपने घर ले गये थे और उन्होंने मुझसे कहा था कि मैं उनके घरकी स्त्रियोंसे अपने आभूषण देनेका अनुरोध करूँ, उसमें उनका मन्शा यह था कि उनके घरकी स्त्रियाँ कीमती हीरे-जवाहरात पहनने और इकट्ठा करनेका मोह छोड़ दें। अमीर लोगोंके घरोंमें सादगी लानेके अपने प्रयत्नमें कुछ हदतक सफल होनेपर मुझे बहुधा सार्वजनिक रूपसे धन्यवाद दिया गया है। बहनोंपर कभी भी अनुचित दबाव नहीं डाला गया है। जब भी किसीकी पत्नीने देशकी खातिर अपने गहनोंका दान किया है, तब मैं यही मानकर चला हूँ कि इसमें पतिका भी सहयोग है। जबतक छोटी लड़कियोंके अभिभावकों अथवा माता-पिताओंने अपनी स्वीकृति नहीं दी तबतक मैंने उनसे कभी कुछ स्वीकार नहीं किया है। फिर भी मैं यह मानता आया हूँ कि पतियोंका दम्भपूर्वक यह मान बैठना गलत है कि उनकी पत्नियाँ आभूषणोंका क्या करें, क्या नहीं करें, यह उनके अधिकारकी बात है। यही एक ऐसी चीज है जिसपर एकमात्र उन्हींका अधिकार है और मेरा खयाल है कि उन्हें अपने आभूषणों का चाहे जो करनेका सम्पूर्ण अधिकार होना चाहिए। लेकिन यह मेरा अपना निजी विचार है और इस मामलेमें व्यवहारमें जो-कुछ हुआ है, उससे इसका कोई सम्बन्ध नहीं है।

कुछ ऐसे भी लोग हैं जिन्होंने उत्साहमें आकर विदेशी कपड़ोंका परित्याग तो कर दिया था और उनकी होली भी जलाने दी थी, लेकिन अब वे अपने कियेपर पछता रहे हैं। तो क्या आप यह समझते हैं कि उनके साथ मुझे भी पश्चात्ताप करना चाहिए कि मैंने उनसे वह कार्य करनेके लिए क्यों कहा जो उन्होंने उस निर्मल क्षणमें किया और जिसे करना उनका पुनीत कर्त्तव्य था? यदि आप ऐसा समझते हैं तो मैं एक बार फिर नम्रतापूर्वक कहूँगा कि मैं आपसे सहमत नहीं हूँ। जब मैंने विदेशी वस्त्रोंको, जिनमें से कुछ काफी कीमती भी थे, जला डालनेका अनुरोध किया था, उस समय मुझे कोई पश्चात्ताप नहीं हुआ था, इतना ही नहीं जनताने उस अनुरोधको जिस उत्साहसे स्वीकार किया, उसके लिए भी मेरे मनमें कोई पछतावा नहीं है। ईश्वरने मुझे जिन अनेक पुनीत कार्योंमें शामिल होनेका सौभाग्य प्रदान किया है, विदेशी वस्त्रोंकी होली जलानेके कार्यको मैं उन्हींमें से एक मानता हूँ।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत एम० चेंगिया चेट्टी
चामराजपेट
बंगलोर सिटी

अंग्रेजी (एस० एन० १२६१८) की माइक्रोफिल्मसे।

२०६. पत्र : राजकिशोरी मेहरोत्राको

वंगलोर
२६ जुलाई, १९२७.

चि० राजकिशोरी,

तुम्हारा पोस्टकार्ड मिला है। वैसे ही लिखती रहो। आजकल पठन-पाठन क्या हो रहा है? दिनचर्या क्या है? शरीर प्रकृति कैसी है? अगस्त मासतक मै वेंगलोरमें ही हूं। शक्ति आ रही है।

बापूके आशीर्वाद

सी० डब्ल्यू० ४९६३ से।
सौजन्य : परशुराम मेहरोत्रा

२०७. पत्र : जेठालाल जोशीको

वंगलोर
आषाढ़ कृष्ण १३ [२६ जुलाई, १९२७]

भाई जेठालालजी,

आपका पत्र मिला।

तकलीके साथ गायत्री जप जपनेमें कुछ हानि नही देखता हुं, लाभ ही है। विशेपत: जब सूत यज्ञार्थ काता जाय, अर्थात् गरीवोंके निमित्त दानके लिये।

आपकी धर्मपत्नी अपने पिताके घर जानेके समय खादीके ही वस्त्र पहनकर जाय और मात-पिता खादी छोड़नेका आग्रह करे तो उनको विनयसे समजावे। मात-पिता क्रोध करे तो शांतिसे सहन करे। यदि उसमें उतनी हिम्मत न हो अथवा मातपिताका क्रोध सहन करनेकी शक्ति न हो तो उनको प्रसन्न करनेके लिये जब तक आवश्यक हो जो वस्त्र वे देवे उसे पहने।

एक ही समय खानेका व्रत लेनेकी आवश्यकता नही है। दो समयका एक समयमे खा लेनेमें दोष और हानि है। रात्री भोजन छोड़ना आवश्यक है सही, और प्रत्येक भोजनमें अल्पाहारी रहना आवश्यक है।

आप क्या काम करते है? और क्या क्या कर सकते हैं? आपका अभ्यास क्या है इ० मुझको लिखें।

संभव है कि आपको दूध अच्छा आश्रममें से मिल सकेगा। आप वहाँ दर्याफ्त कीजिए। आश्रममें से आपको दूध घर पर पहुँचा नही सकेंगे।

आपका,
मोहनदास

जी० एन० १३५५ की फोटो-नकलसे।

२०८. एक पत्र

२६ जुलाई, १९२७

आपका पत्र मिला। धर्मपत्नी यदि अपवित्र हो गई है तो मैं इसके लिए आपको भी दोषी मानता हूँ। आप उससे दूर चले गये थे। उस बालाका सम्भवतः न तो आपके साथ विवाह करनेमें कोई हाथ था और न आपसे बिछुड़नेमें उसकी सहमति थी। यदि वह विषय-भोगके बिना न रह सके और पतित हो जाये तो इसमें उसका क्या दोष निकालना? जब पुरुष गिरता है तब स्त्री जी मसोसकर रह जाती है। आपकी पत्नीने जिस पुत्रको जन्म दिया है यदि वह आपका नहीं है तो आप उससे सम्बन्ध तोड़ सकते हैं। लेकिन मुझे लगता है कि उस बालाका भरण-पोषण तो आपको ही करना चाहिए। अगर वह आपको छोड़ दे अथवा जिसके साथ उसने विषय-भोग किया है उसके साथ रहने लगे तो इसे आपको सहन करना होगा। केवल लज्जावश आप अपनी पत्नीके साथ रहनेके लिए बँधे हुए नही है। आप उससे दूर गये इसीसे वह पथभ्रष्ट हुई, ऐसा समझकर और उसपर तरस खाकर यदि आप अब उसके साथ रहनेकी बात सोचें तो इसमें भी कोई अनीति नहीं है। लेकिन यह कदम तो आप तभी उठा सकते हैं जब उस स्त्रीको अपने कियेपर पश्चात्ताप हो और आपके साथ रहनेमें उसे सन्तोष हो। यदि उसका मन सर्वथा व्यभिचारी हो गया हो तो उसका त्याग करना ही आपका कर्त्तव्य है।

[गुजरातीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरी।
सौजन्य: नारायण देसाई

२०९. भाषण : बंगलोरके यूनाइटेड थियोलॉजिकल कालेजमें[1]

[२६ जुलाई, १९२७][2]

[गांधीजीने कहा कि] देशकी आम जनताकी सेवा करनेकी आकांक्षा रखने-वालों को सबसे पहले तो यह चाहिए कि वे हिन्दीका ज्ञान प्राप्त करें। उन्होंने आगे कहा :

मैं यह स्वीकार करता हूँ कि पिछली पीढ़ीकी गलतीके कारण हमें अंग्रेजी माध्यमको अपनाना पड़ा। लेकिन, यदि आप विन्ध्य पर्वतमालाके पारकी भारतीय जनताके हृदयतक पहुँचना चाहते हैं तो आपको इस व्यवधानको दूर करना ही होगा। आपको किस प्रकारकी सेवा करनी चाहिए, इसके सम्बन्धमें मैं ज्यादा-कुछ कहनेकी जरूरत नहीं समझता, क्योंकि आपने चरखेके सन्देशका अनुमोदन करके मेरे लिए अपनी बात कह सकना बहुत आसान बना दिया है। आपने दलित वर्गोंकी बात कही है, लेकिन हमारे देशमें एक ऐसा विशाल जनसमुदाय है जो इन तथाकथित दलित वर्गोंके लोगोंसे भी अधिक दलित अवस्थामें जी रहा है। और वही जनसमुदाय असली भारत है। रेलमार्गोंका यह विस्तृत जाल तो उस जनसमुदायको बाहर-बाहरसे छूता-भर है, और अगर आप उनकी स्थितिका सही अन्दाजा पाना चाहते हैं तो जरा इन रेलमार्गोंसे हटकर कुछ भीतर जाकर वस्तु-स्थितिको देखिए। उत्तरसे दक्षिण और पूर्वसे पश्चिमकी ओर फैले ये रेलमार्ग उन नालियोंकी तरह हैं जिनसे जनसाधारणकी सम्पत्ति बहकर बाहर निकल जाती है और बदलेमें उसे कुछ भी नहीं मिलता। लॉर्ड सैलिसबरीने इसे 'खून चूसना' कहा था। और हम नगरोंमें रहनेवाले लोग खून चूसनेके इस व्यापारमें भागीदार बनते हैं। लॉर्ड सैलिसबरीका यह मुहावरा सुननेमें चाहे जितना बुरा लगे, लेकिन यह वस्तु-स्थितिकी सच्ची तसवीर पेश करता है। इस वर्गको मैंने किसी हदतक जाना है, अक्सर उसके अभावों और आवश्यकताओंके विषयमें चिन्तित मनसे सोचा है; और अगर मैं चित्रकार होता तो इन लोगोंका चित्र खींचकर आपको इनकी दशाका सही दर्शन कराता। उस चित्रमें आप देखते कि इनकी सूनी-सूनी आँखोंमें कोई चमक, कोई तेज, जीवनका कोई चिह्न शेष नहीं रह गया है। हम उनकी सेवा कैसे करें? टॉल्स्टॉयने एक बहुत सजीव और अर्थ-गर्भित वाक्य कहा है: "हम अपने पड़ोसियोंकी पीठ परसे उतर जायें।" अगर हर आदमी सिर्फ यही काम कर दिखाये तो उसका मतलब होगा कि ईश्वर उससे जितनी सेवाकी अपेक्षा रखता है, उतनी उसने कर दी। यह बात कुछ चौंका

१. महादेव देसाईके लिखे "मिशनरियोंके साथ बातचीत" ("टॉक्स विद मिशनरीज") शीर्षक लेखसे। गांधीजीकी इस चर्चाका आधार कालेजका यह ध्येय-वाक्य था: "खुद अपनी सेवा करानेके बजाय दूसरोंकी सेवा करो।"

२. महादेव देसाईके "साप्ताहिक पत्र" के अनुसार।

देनेवाली है, लेकिन आप तो ऐसी संस्थामें है जहाँ आप सेवाकी कला सीख रहे हैं। इसलिए आपको अपने मनमें इसका पूरा आशय खुद ही स्पष्ट कर लेना चाहिए। आप तार्किक पद्धतिसे इस आधारभूत स्थापनाके सारे फलितार्थ निकालिए और फिर देखिए कि आपका निष्कर्ष क्या होता है। अगर आपको उन दीन-दु:खी लोगोंके सिरका बोझ हलका करनेका मेरे सुझाये उपायसे कोई भिन्न उपाय सूझता है तो आप मुझे बताइए। मैं खुद ही एक शिक्षार्थी हूँ, मेरा कोई निजी स्वार्थ नहीं है और जहाँ भी मुझे सत्य दिखाई देता है, उसे ग्रहण करके मैं उसपर आचरण करनेकी कोशिश करता हूँ।

अमेरिकासे एक मिशनरी मित्रने पत्र लिखकर मुझे सुझाव दिया कि जनसाधारणमें चरखेका प्रचार[1] करनेके बजाय मुझे किताबी शिक्षाका प्रचार करना चाहिए। मुझे उनके इस अज्ञानपर तरस आया, विशेषकर इसलिए कि उन्होंने पत्र बहुत निश्छल भावसे हृदयकी प्रेरणावश लिखा था। मैं नहीं समझता कि ईसामसीह भी कोई बहुत पढ़े-लिखे थे और यदि आरम्भिक कालके ईसाइयोंने किताबी ज्ञान हासिल किया तो वह सिर्फ इसी उद्देश्यसे कि वे अपना सेवा-कार्य ज्यादा अच्छी तरह कर सकें। लेकिन मेरा खयाल है कि मनुष्य अपना पूरा विकास कर सके, इसकी पहली शर्तके रूपमें नये करार (न्यू टेस्टामेन्ट) में कहीं भी उसके मात्र किताबी ज्ञान हासिल करने पर तनिक भी जोर नहीं दिया गया है। ऐसा नहीं कि मैं किताबी शिक्षाको महत्त्व नहीं देता। मगर यहाँ सवाल इस बातका है कि किसी चीजको कितना महत्त्व दिया जाये। जिस प्रकार अनुपयुक्त स्थानमें रखी चीज कूड़ेके अलावा और कुछ नहीं होती, यहाँ शिक्षाकी भी स्थिति वैसी ही है। और जब कभी मैं लोगोंको किसी अच्छी चीजपर अनुचित जोर देते देखता हूँ तो मेरी आत्मा विद्रोह कर उठती है। किसी बच्चेको अक्षर-ज्ञान करानेसे पहले उसे खाना-कपड़ा देना और अपना निर्वाह आप कर सकनेकी शिक्षा देना जरूरी है। मैं यह नहीं चाहता कि उसे बड़े ही लाड़-प्यारसे पाला जाये; मैं चाहता हूँ कि वह आत्म-निर्भर बने। इसलिए हमें ऐसा करना है जिससे बच्चे अपने हाथ-पैरोंका इस्तेमाल करना सीख जायें। इसीलिए मैं कहता हूँ कि सेवाकी पहली शर्त यही है कि हम चरखेका सन्देश लोगोंतक पहुँचायें।

आप लोगोंने खादीको संरक्षण देनेकी बात कही है। मुझे यह अच्छा नहीं लगा। इसकी ध्वनि ठीक नहीं है। आप संरक्षक बनना चाहते हैं या सेवक? जबतक लोगोंमें खादीको सरक्षण देनेका भाव रहेगा तबतक वह सनक या फैशनकी ही चीज बनी रहेगी; लेकिन जब लोगोंको उसकी लगन लग जायेगी तब वह सेवाका प्रतीक बन जायेगी। जिस क्षण आप खादीका प्रयोग शुरू करते हैं वास्तवमें उसी क्षणसे सेवा करने लग जाते हैं। पिछले ३५ वर्षोंसे मैं लगातार गरीबोंके सम्पर्कमें रहा हूँ और इस दौरान मैंने यही देखा है कि सेवा-धर्म अत्यन्त सरल है। इसे कालेजों और स्कूलोंमें सीखनेकी जरूरत नहीं है। इसे तो कहीं भी सीखा जा सकता है। यहाँ फिर वही सवाल उठता है कि किसी चीजको कितना महत्त्व दिया जाये। खुद यह कला तो उस प्रक्रियाके

१. देखिए "पत्र: डब्ल्यू० बी० स्टोवरको", १६-६-१९२७।

समान ही सीधी-सादी है, जिसके द्वारा सॉल, पॉल बन गया था।[1] उसमें यह परिवर्तन पलक मारते ही आ गया था। इसी तरह हृदय-परिवर्तन होते ही आप सच्चे सेवक बन जायेंगे। ईश्वर इस बातको समझनेमें आपकी सहायता करे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ११-८-१९२७

२१०. भाषण: बंगलोरकी पुराण-विद्या समितिमें

२६ जुलाई, १९२७

भाइयो,

मैं नहीं जानता कि मेरी आवाज आप सबतक पहुँचती है या नहीं। मुझे दुःख है कि मैं ऊँचा नहीं बोल सकता। आपके मानपत्र, फूलमालाओं और मुझे इस शान्ति-मन्दिरमें लानेके लिए मैं आपको हृदयसे धन्यवाद देता हूँ। मुझे स्वीकार करना चाहिए कि मैं इस स्थानके लिए उपयुक्त व्यक्ति नहीं हूँ, क्योंकि एक लम्बे अर्सेसे साहित्यसे मेरा कोई वैसा सम्बन्ध नहीं रहा है जैसे सम्बन्धकी यह समिति अपेक्षा करती है, और उसकी यह अपेक्षा ठीक भी है। ३५ सालके लम्बे अर्सेसे मुझे लगातार, जीवनके अपेक्षाकृत कम शान्तिपूर्ण क्षेत्रोंमें, कर्त्तव्य-रत रहना पड़ा है; फलस्वरूप मैं बहुत चाहते हुए भी साहित्यिक अध्ययनसे वंचित रहा हूँ। कुछ समय-तक जब मैं जेलमें था, उसको छोड़कर मुझे साहित्यके अध्ययनका और कोई मौका नहीं मिला। मैंने आपकी पत्रिका देखी है और मैं आपको अपने कार्यके लिए बधाई देता हूँ। आपने बताया है कि आप लोग अनुसन्धान-कार्यमें दिलचस्पी रखते हैं और मैं देखता हूँ कि आप इस कार्यको पूर्ण और सम्यक् ढंगसे करते रहे हैं।[2]

मेरा सुझाव है कि आपमें से कोई उस कारणकी खोज करे, जिससे यह देश अस्पृश्यताके अभिशापसे ग्रस्त हुआ। मेरी इच्छा है कि मैसूरके विद्वज्जन, जिनमें से कुछ अत्यन्त उच्च कोटिके विद्वान् हैं, यह बतानेके लिए शास्त्रोंसे प्रमाण ढूंढ़ निकालें कि अस्पृश्यता हिन्दू धर्मका अंग नहीं हो सकती, और यह सिद्ध करें कि हमारे आदि पुरुष, जिनसे हमें वेदोंकी प्रेरणापूर्ण थाती मिली और जिन्होंने हमें उपनिषदोंकी बहु-मूल्य विरासत दी, अस्पृश्यतामें विश्वास नहीं करते थे — मैं भी नहीं करता — तथा अस्पृश्यता हिन्दू धर्मके लिए एक ऐसा विजातीय तत्त्व है जो उसके स्वरूपको बिगाड़ता है। मैं आपसे सच कहता हूँ, यदि आप ऐसा कर सकें तो आपने देशकी पहले जितनी सेवाएँ की हैं, यह कार्य उनसे किसी भी तरह कम न होगा। मेरे जैसे कार्यकर्त्ता अपने ही ज्ञान और विवेकके आधारपर कहते हैं कि अस्पृश्यता हिन्दू धर्मका अंग नहीं

१. सॉल प्रारम्भमें ईसामसीहका विरोधी था, किन्तु बादमें हृदय-परिवर्तन होनेपर वही उनका प्रसिद्ध शिष्य पॉल बन गया। न्यू टेस्टामेंट, अध्याय ९।

२. यह अनुच्छेद २७-७-१९२७ के हिन्दूसे लिया गया है।

है। मैं विद्वान् नहीं हूँ और मैंने शास्त्रोको मूल रूपमें नही पढा है, लेकिन मेरी हिन्दू आत्मा इस गर्हित प्रथाके विरुद्ध विद्रोहकी भावनासे भर उठती है। फिर भी मैं आपकी संस्थासे सम्बद्ध विद्वानों और शोधकर्त्ताओंसे यह अपेक्षा करता हूँ कि वे मेरे जैसे कार्यकर्त्ताओंको ऐसे प्रामाणिक प्रख्यापनोसे सज्जित कर दें जिनकी ओर पण्डित लोग भी सहज ही ध्यान दें सकें, और वे कार्यकर्त्ताओंको ऐसे सशक्त और निर्विवाद प्रमाणोंसे युक्त कर दें जिनके आगे कट्टरपन्थियोंका विरोध समाप्त हो जाये। आपकी समितिको यह गौरव और सौभाग्य प्राप्त करना चाहिए कि वह कार्यकर्त्ताओको अन्यत्र कही प्राप्त न हो सकनेवाले प्रामाणिक शास्त्र-वचन उपलब्ध कराकर उन्हे अपना काम करनेमें अधिक सक्षम, अधिक समर्थ बनाये।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, १८-८-१९२७

२११. पत्र: ज० प्र० भणसालीको

[२६ जुलाई, १९२७ के पश्चात्][1]

'यंग इडिया' के लिए तुम्हारा पत्र मुझे मिला। पहले तो इस पत्रको पढ़कर मैं हँसा और उसपर एक छोटी-सी टिप्पणी लिख डाली तथा उसे 'यंग इडिया' के लिए टाइप करनेके लिए भेज दिया। किन्तु आज सवेरे जब मैं उठा और तुम्हारे पत्रका विचार आया तो मैं दु.खी हुआ और मेरी हँसी गायब हो गई। कारण, तुम्हारे इस पत्रमें मैं अविनय और समझका अभाव देखता हूँ। जिन पुरानी बातोके विपयमें तुमने मतभेद प्रगट किया है वे अब मुझे याद नही हैं। हाँ, इतना याद है कि हमारी बातचीत हुई थी किन्तु मैं तो हमेशा यही समझता रहा कि ऐसे हर प्रसंगपर मैं तुम्हें अपनी बात समझा सका था। किन्तु यदि वैसा न हो तो अपने पत्रमें तुमने मुझे जो प्रमाणपत्र दिया है वह ठीक नही है और तुम्हारे पत्रसे यह सूचित होता है कि जिस मानसिक निर्वलताका आरोपण तुम मुझमें इस समय कर रहे हो वह तो मुझमें हमारे प्रथम परिचयके समयसे ही चली आई है। मेरी मानसिक निर्वलता प्रकाशित हो, इसका तो मुझे कोई दु.ख नहीं होता किन्तु मुझे इस बातका दु.ख अवश्य है कि मेरी यह निर्वलता तुम मुझसे आजतक छिपाते आये। और मुझे दूसरा दु.ख इसका है कि तुम्हारे इस पत्रमें कुछ बातोंको तोड़-मरोड़कर पेश किया गया है। इसके सिवा, आज अहमदाबादसे तार आया है कि वहाँ बहुत भारी बरसात होनेके कारण अधिकांश काम-काज बन्द पड़ा है और यदि इस बार 'यंग इंडिया' को निकालना सम्भव नही हुआ तो पहले भेजी हुई सामग्री ही इतनी ज्यादा है कि अगले सप्ताहका पूरा 'यंग इंडिया' उसीसे भर जायेगा। अतः इतने समयकी व्यवस्था तो प्रकृतिने ही कर दी है कि तुम्हारे जवाबकी राह देखी जा सकती है। तुम मुझपर जल्दीमें लिख डालनेका दोप

१. साधन-सूत्रमें यह पत्र २६ जुलाई, १९२७की सामग्रीके बाद दिया गया है।

लगाते हो किन्तु मुझे उसमें जल्दबाजीका लेशभी दिखाई नहीं पड़ता। तथापि चूंकि तुम्हारे इस पत्रसे मुझे दुःख हुआ है इसलिए मुझे यह अवश्य लगता है कि इसके सम्बन्धमें कुछ भी जल्दीमें न लिख डालूँ। तुम्हारे अन्तिम पत्रसे मैं यह समझा हूँ कि तुम अपनी माँकी बीमारीके कारण ही अपनी सामान्य आदतके अनुसार मुझसे मिलनेके लिए नहीं दौड़े आये। इसलिए यदि अब उनकी तबीयत अच्छी हो गई हो तो मैं चाहूँगा कि तुम मुझसे मिल जाओ। अलबत्ता, यदि तुम्हें ऐसा लगता हो कि तुम्हें गलतफहमी हो ही नहीं सकती तो मैं मिलना जरूरी नहीं समझता। अगर तुम्हारा यही मत हो तो मुझे लिखना, या तार देना और तब मैं तुम्हारा पत्र अवश्य प्रकाशित करूँगा।

[गुजरातीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरी।
सौजन्य: नारायण देसाई

२१२. पत्र: ज० प्र० भणसालीको

[२७ जुलाई, १९२७][1]

तुम्हारा पत्र (या अल्टिमेटम?) मिला। लगता है मेरा पत्र पहुँचनेके पहले ही तुमने अपना पत्र भेज दिया। मेरा आग्रह है कि तुम उतावली न करो। तुम्हें उतावली नहीं मालूम होती क्योंकि तुम उपवासके लिए अधीर हो उठे हो। मुझे तो इसमें उतावली ही मालूम होती है। तुम ऐसा कुछ करना चाहो तो वह तुम्हें मेरे समक्ष ही करना चाहिए। यदि इस नीतिको तुम स्वीकार करो तो यह अल्टीमेटम तुम वापस ले लो। तुम्हें उपवाससे रोकनेके लिए मेरे पास तीन बहुत आग्रहपूर्ण पत्र आये हैं। एक भाई किशोरलालका, दूसरा रमणीकलालका और तीसरा मीराबहनका। मीराबहन तुमसे लम्बे अरसेके बाद मिली, तुम्हें देखकर बहुत दुःखी हुई, तुम्हारा चेहरा उसे 'विचित्र' लगा, तुम्हारी बात भी 'विचित्र' लगी और ऐसा लगा कि तुम बहुत 'इमोशनल' [भावुक] हो गये हो। ये सब शब्द उसीके हैं। पत्र हिन्दीमें था किन्तु यह अंग्रेजी शब्द उसमें उसीके द्वारा प्रयुक्त हुआ है। मैंने उसे सीधे तुम्हें लिखनेको[2] कहा था। इसका भी जवाब आ गया है और वह लिखती है कि इस हदतक जानेकी उसकी हिम्मत नहीं होती — इस डरसे कि ऐसा करनेसे शायद तुम्हें बुरा लगेगा। तीन व्यक्तियोंकी ये तीन रायें मैंने तुम्हें बताईं फिर भी यदि मैं तुम्हारे पास होता और तुम मुझे अपनी बात समझा सकते तो मैं तुम्हें उपवास करनेकी अनुमति दे देता और आशीर्वाद भी देता। किन्तु जब मैं तुमसे दूर बैठा हुआ हूँ तो मुझे अपने ऊपर इन पत्रोंका असर भी होने ही देना चाहिए। तुम्हारा प्रस्तुत पत्र तुम्हारे पिछले पत्रसे असंगत जान पड़ता है।

१. देखिए अगला शीर्षक।
२. देखिए "पत्र: मीराबहनको", १७-७-१९२७।

कारण, आजतक तो तुम मेरी अनुमतिकी आशा रखते आये हो और मैं ऐसा समझता था कि यदि मेरी अनुमति न मिले तो तुम उपवास नहीं करोगे। किन्तु इस अन्तिम पत्रमें तुम अनुमतिकी उपेक्षा करते मालूम होते हो; उसकी आशा नहीं रखते और आशीर्वाद माँगते हो। यदि तुमने अनुमतिकी आशा रखी हो तो वह मैं तुम्हें दे नहीं सकता। जो बात मुझे उचित नहीं मालूम होती उसकी अनुमति मैं कैसे दे सकता हूँ? मुझे तो यह भी लगता है कि तुम जो करना चाह रहे हो उसमें तुम्हें मेरी अनुमति मिल भी जाये तो भी मुझे और तुम्हें, दोनोंको कार्यवाहक मंडलकी अनुमति भी लेनी चाहिए। ऐसी अनुमति मिल जानेपर यदि कोई व्यक्ति इस तरहका काम करनेके लिए मुक्त हो सकता हो तो वह व्यक्ति शायद मैं हो सकता हूँ। कारण, आश्रमके संस्थापक और सत्याग्रहके स्वतन्त्र तथा मौलिक प्रयोगोंके कर्त्ताकी हैसियतसे मुझे यह छूट दी जा सकती है — यद्यपि इसके बारेमें भी मुझे थोड़ी शंका तो है ही। बात यह है कि संस्थाकी रचना करनेके बाद मुझे भी अपने लिए अपनी इच्छासे ऐसा कोई काम करनेका अधिकार नहीं लेना चाहिए जिससे संस्थाको नुकसान पहुँचे। मैंने जब सात दिनका उपवास किया था तब भी यह प्रश्न मेरे सामने था और उसके बारेमें कुछ चर्चा भी हुई थी।

यह इतनी आत्मकथा मैंने तुम्हें तुम्हारे धर्मका भान करानेके उद्देश्यसे लिखी है। मैं यह मानता हूँ कि तुम जिस तरहका उपवास करना चाहते हो वैसे उपवासके लिए विशेष परिस्थितियोंमें स्थान हो सकता है। किन्तु मैं तो यहाँसे स्पष्ट देख सकता हूँ कि इस मामलेमें वैसी परिस्थिति नहीं है। और जिस वस्तुको मैं अनुचित मानता हूँ उसे मैं आशीर्वाद कैसे दे सकता हूँ? इसलिए यदि तुम अपने आग्रहपर आरूढ़ रहना ही चाहो तो मैं इतना ही कह सकता हूँ कि मैं तुम्हारा आग्रह सहन कर लूँगा और उसे अपरिहार्य मानकर अनिच्छा और दुःखके साथ स्वीकार कर लूँगा। जो भी कदम उठाओ, उसे उठानेके पहले स्वस्थ चित्तसे कार्यवाहक मण्डलके साथ चर्चा करना और अपने निजी मित्रोंसे भी उसकी चर्चा करना। लीलावहनके प्रति अपने कर्त्तव्यका विचार करना। वह तुम्हारे कार्यसे सहमत हो तो मैं उसकी सम्मतिकी कोई कीमत नहीं करूँगा; हाँ, वह उसका विरोध करे तो उसके विरोधकी बहुत कीमत करूँगा — क्योंकि तुमने उसकी बाँह पकड़ी है। यदि तुम अपना अल्टिमेटम वापस ले सको और वापस लो, तथा मुझे अभय दो यानी ऐसा आश्वासन दो कि मेरी अनुमतिके बिना तुम उपवास नहीं करोगे तो मैं तुम्हारे साथ उपवासकी नैतिक मीमांसाके सम्बन्धमें और अपने पिछले पत्रोंमें तुमने जो सवाल उठाये हैं उनके सम्बन्धमें, अभी तो पत्रोंके द्वारा और बादमें यदि जरूरत मालूम हुई तो अवसर आनेपर प्रत्यक्ष बातचीतके द्वारा, चर्चा करनेके लिए तैयार हूँ। मैं चाहता हूँ कि हमारा मित्र-वर्ग और कार्यवाहक मण्डल भी यह पढ़ ले; तुम इसे उन्हें पढ़नेके लिए दे देना। ईश्वर तुम्हारी सहायता करे।

[गुजरातीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरी।
सौजन्य : नारायण देसाई

२१३. पत्र : मीराबहनको

कुमार पार्क, बंगलोर
२७ जुलाई, १९२७

चि० मीरा,

तुम्हारा पत्र मिला। बेशक तुम्हें मालूम ही है कि वर्धा आश्रम साबरमती आश्रमकी ही एक शाखा है। लेकिन वर्धामें अनुशासनकी ओर विशेष ध्यान दिया जाता है, और विनोबा स्वतन्त्र रूपसे इस चीजका विकास कर रहे हैं, इसमें न वे मुझसे कोई सलाह माँगते हैं और न उन्हें मेरी सलाहके कारण उत्पन्न किसी तरहकी बाधाका सामना करना पड़ता है। साबरमतीमें जिस तरह परिवर्तन और नये-नये प्रयोग होते रहते हैं उस तरह वर्धामें नहीं होते। इसके अलावा साबरमतीका प्रबन्ध वर्धा आश्रमकी तरह किसी एक ऐसे व्यक्तिके हाथमें नहीं है, जिसपर किसी बाहरी शक्तिका नियन्त्रण न हो। लेकिन वास्तवमें हर दृष्टिसे, साबरमती आश्रम और वर्धा आश्रमको एक और अविभाज्य मानना चाहिए।

लेकिन अब अगले दो महीनोंके लिए तुम्हारा मन हर तरहसे मुक्त रहना चाहिए। यहाँतक कि तुम्हें इन स्थानोंके बारेमें भी नहीं सोचना चाहिए। इन दो महीनोंमें तुम्हारा एकमात्र उद्देश्य अपने कार्य और स्वास्थ्यकी ओर ध्यान देना है।

मुझे भणसालीने अन्तिम चेतावनी भेजी है कि वह ६ अगस्तसे लम्बा उपवास करनेका इरादा रखता है। मैंने उसे इसके विरुद्ध आगाह कर दिया है और उससे अनुरोध किया है कि वह कमसे-कम तबतक उपवास शुरू न करे जबतक मैं आश्रम आकर उससे इस विषयपर बातचीत नहीं कर लेता। पत्र आज जा रहा है। उसके उपवासके इरादे और वह जैसी सूरत बनाये रहता है, उसके बारेमें तुम्हारे विचारका उल्लेख भी पत्रमें कर दिया है। मुझे उम्मीद है कि वह मेरा अनुरोध मान लेगा।

तुम रोज क्या खाना खाती हो?

सस्नेह,

बापू

श्रीमती मीराबाई
सत्याग्रहाश्रम
वर्धा

अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ५२५५)से।
सौजन्य : मीराबहन

२१४. पत्र: फ्रैन्सिस्का स्टैंडेनेथको[1]

स्थायी पता: साबरमती आश्रम
२७ जुलाई, १९२७

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मुझे खुशी है कि मैंने आपके लिए जिन मित्रोंको[2] परिचय-पत्र दिया था, उनसे आपका इतना निकटका सम्बन्ध बन गया है। मैं उन्हें अपने धनी-मानी परिचितोंमें सबसे नेक और भले लोग मानता हूँ।

आपके पत्रसे मुझे ऐसा लगता है कि आप सिर्फ रुईसे सूत कातनेको ही कताई मानती हैं। लेकिन ऐसी बात नही है। ऊन कातना भी महत्त्वपूर्ण है, हालांकि रुईसे कातनेका कोई मुकाबला नही है। कारण यह है कि करोड़ो लोग मैदानी इलाकोंमें ही रहते हैं और उन्हें बहुत-कम ऊनी वस्त्रोंकी जरूरत पड़ती है। जब भी बने, आप बेशक रुईसे कातिए, लेकिन रुईके अभावमें ऊनसे कातनेमें क्या हर्ज है? और फिर ऊन कातकर आप अपने इस्तेमालके लिए कपड़ा बुनवा सकती हैं। आपको जानना चाहिए कि मैं खुद बिना किसी दुविधाके हाथ-कते ऊनका इस्तेमाल करता हूँ। अभी यह पत्र बोलकर लिखवाते समय भी मैं ऊनी कम्बल ओढ़े हुए हूँ, जो हाथ-कती ऊनसे बुना हुआ है। जहाँ मैं स्वास्थ्य-लाभ कर रहा हूँ, वहाँ आजकल भी अच्छी सर्दी पड़ती है। मैं स्वामी आनन्दसे आपको कुछ हाथ-कती ऊन और एक कम्बल भी भेजनेको कह रहा हूँ। कम्बलका इस्तेमाल आप ओढ़नेके लिए भी कर सकती हैं, या चाहें तो उससे ब्लाउज वगैरह भी बना सकती हैं। यह मुलायम तो नही होगा, लेकिन तब आप उससे बने ब्लाउज वगैरहके नीचे कोई मुलायम कपड़ा पहन कर उसे ऊपरसे पहन सकती हैं।

मैं देखता हूँ कि आप संस्कृत और अन्य भाषाओंके अध्ययनमें बहुत लगन और धैर्यके साथ जुटी हुई हैं।

जब भी आपके पास कुछ फाजिल पैसा हो, तब आप दोनों, थोड़े दिनोंके लिए ही सही, भारत आइए। अपनी आँखों देखिए कि यहाँ क्या-कुछ हो रहा है। शायद तभी आपको यहाँकी सच्ची तसवीर देखनेको मिलेगी और इससे आपके मनमें आम तौरपर भारतके प्रति और खास तौरपर मेरे तथा आश्रमके प्रति जो कतिपय अतिरंजित धारणाएँ हो सकती हैं, आप सम्भवतः उन्हें भी सुधार सकें। मैं चाहता हूँ कि सारी चीजोंको उनके असली रूपमें या कमसे-कम निकटसे देखने में वे आपको

१. फ्रेन्सिस्का स्टैंडेनेथके २६ जुलाईके पत्रके उत्तरमें।

२. रणछोड़लाल अमृतलाल ठक्कर और भोगीलाल ठक्कर।

जैसी लगें उस रूपमें जानना चाहिए। इतनी दूरसे वे आपको जैसी लगती हैं, उस रूपमें उन्हें जाननेसे काम नहीं चलेगा।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी (एस० एन० १२५२७) की फोटो-नकलसे।

२१५. पत्र : तारिणीप्रसाद सिन्हाको

स्थायी पता : साबरमती आश्रम
२७ जुलाई, १९२७

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मैं 'यंग इंडिया' कार्यालयसे कह दूँगा कि 'मैंचेस्टर गार्जियन' के लिए 'यंग इंडिया' की जो प्रति भेजी जाती है वह व्यक्तिश: श्री डिक्स-के नाम ही भेजी जाये।

जहाँतक परिवर्तनके सुझावका[1] सवाल है, मुझे अभीतक श्री डिक्सकी बात जँच नहीं पाई है। मेरे लिए तो यह "सत्यके प्रयोग" की ही बात है। लेकिन चूँकि मैं एक अंग्रेजकी तरह अंग्रेजी शब्दोंका बिलकुल ठीक-ठीक प्रयोग करना नहीं जानता इसलिए मैं चाहूँगा कि श्री डिक्स, यदि उन्हें समय मिल सके तो, अपनी बात और अच्छी तरहसे समझायें।

भगवान्‌की बातको भी डिक्स आत्म-विज्ञापनके लिए प्रयुक्त एक थोथी कलाबाजी मानते हैं। इसके सम्बन्धमें तो मैं पूरी विनम्रताके साथ इतना ही कह सकता हूँ कि मेरे लिए वह एक बहुमूल्य तथ्य है और जितनी सच यह बात है कि इस समय मैं आपको पत्र लिख रहा हूँ, मेरी हदतक वह तथ्य इससे भी ज्यादा सच है।

कृपया यह पत्र श्री डिक्सको दे देंगे।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी (एस० एन० १२५२९) की फोटो-नकलसे।

१. श्री तारिणीप्रसाद सिन्हाने गांधीजीको ई० डब्ल्यू० डिक्सका यह सुझाव सूचित किया था कि उनकी आत्मकथाका अंग्रेजी नाम द स्टोरी ऑफ माई एक्सपेरिमेण्ट्स विद ट्रुथके बजाय "द स्टोरी ऑफ माई स्ट्रगिल्स विद ट्रुथ" रखा जाये।

२१६. पत्र : शापुरजी सकलातवालाको

स्थायी पता : साबरमती आश्रम
२७ जुलाई, १९२७

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। यदि मैं आपके उत्कट अनुरोधको मान सकूँ तो मुझे बड़ी खुशी हो। आप तो चाहेंगे कि मैं इसे स्वीकार कर लूँ, लेकिन मैं देखता हूँ कि आपका और मेरा दृष्टिकोण अलग-अलग है। आप यह न सोचें कि खादी-कार्यके विपरीत, मजदूरोंके सम्बन्धमें मेरी प्रवृत्ति केवल अहमदाबादतक ही सीमित है। अगर मजदूर अन्यत्र मेरे मार्ग-दर्शनको स्वीकार करें, तो मैं निश्चय ही सर्वत्र उनका संगठन करनेको तैयार हूँ। लेकिन अभी तो मैं अहमदाबादके श्रमिकोका मार्ग-दर्शन करके ही सन्तुष्ट हूँ और मुझे उम्मीद है कि यदि यह प्रयोग अहमदाबादमें सफल रहा तो सारा भारत इसका अनुकरण करेगा।

खादी-आन्दोलन और मजदूर-आन्दोलनमें कोई समानता नहीं है। यदि मजदूर-आन्दोलनकी तरह खादी-आन्दोलनका संचालन भी कई स्वतन्त्र संगठनोंके हाथमें हो, तो मुझे अपनी गति-विधियोंको शायद उन्हीं संगठनोंतक सीमित रखना पड़ जायेगा जो मेरी बातको सुनेंगे। असंगठित मजदूरोंको संगठित करनेके लिए मेरे पास कोई जादुई शक्ति नहीं है। समस्त भारतके मजदूरोंके साथ मेरा प्रत्यक्ष और सजीव सम्पर्क होनेका कारण यह है कि मैं जहाँ-कहीं भी जाता हूँ, वहीं वे मुझसे मिलनेके लिए उमड़ पड़ते हैं। लेकिन यह सम्पर्क इतना मजबूत नहीं है कि मैं उन्हें अपने ढंगसे संगठित कर सकूँ। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि जिस क्षण मैं यह महसूस करूँगा कि मैं इस क्षेत्रमें आकर उपयोगी काम कर सकता हूँ, उस क्षण मैं अखिल भारतीय संगठनको अपनी सेवाएँ अर्पित करनेमें कोई संकोच नहीं करूँगा।

खादी-कोषके बारेमें मैं केवल इतना ही कह सकता हूँ कि आपने जो-कुछ लिखा है वह बिना जाने लिखा है। अव्वल तो मेरी अन्तरात्माको खादी-कोषका उपयोग, जिस घोषित उद्देश्यसे वह एकत्र किया गया है, उसके अलावा किसी अन्य कार्यमें करना स्वीकार ही नहीं होगा; फिर इसके अतिरिक्त नियम भी ऐसा है कि उसमें मेरे लिए उसका वैसा उपयोग करनेकी गुंजाइश ही नहीं रह जाती।

कुछ दिन हुए मैंने समाचारपत्रोंमें पढ़ा था कि आपका एक छोटा-सा ऑपरेशन हुआ है और अब आप ठीक भी हो रहे हैं। आशा है, अबतक आप पूर्णतया ठीक हो गये होंगे।

कुछ दिन पहले मैंने आपके निजी मामलेके बारेमें तो लिखा ही था; मुझे उसका ध्यान बराबर बना रहेगा।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी (एस० एन० १२५३३) की फोटो-नकलसे।

२१७. पत्र : सी० वी० वैद्यको

कुमार पार्क, बंगलोर
२७ जुलाई, १९२७

प्रिय श्री वैद्य,

इस पत्रके लिए मैं आपको धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकता। हास्यका पुट देकर आपने इसे बड़ा मजेदार बना दिया है। इसे मैं पंडित सातवलेकरको नहीं भेज रहा हूँ। इसके बजाय इसके तथ्यों पर, या ज्यादा ठीक शब्दका प्रयोग करूँ तो कहना चाहिए कि आपके मतों पर—क्योंकि किसीके द्वारा बताये तथ्य आखिरकार उसके मत ही तो होते हैं—स्वयं ही मनन कर रहा हूँ।

जब मैं वकालत करता था, उन दिनों ऐसे न्यायाधीशोंके भाग्यसे मुझे अकसर ईर्ष्या हुआ करती थी जिनके बारेमें मैं जानता था कि यदि वे ईमानदार होते तो सही निर्णयपर पहुँचनेमें उन्हें निश्चय ही बहुत मुश्किल पड़ती। लेकिन, इस बातको जानते हुए भी मैंने स्वयं न्यायाधीशकी स्थिति स्वीकार कर ली है; और चूँकि मैं मूल ग्रंथोंसे अनभिज्ञ हूँ, इसलिए अब वेदोंकी सही व्याख्या या व्यवहार अथवा बहुत पहले हुए अपने पूर्वजोंके आचरणको जाननेकी मैं बड़ी कोशिश कर रहा हूँ। मगर आप ऐसा मत समझिएगा कि बहुत पहले हुए अपने पूर्वजोंके बारेमें सोचते हुए मेरी दृष्टि डार्विनकी तरह बन्दरोंतक जाती है। परस्पर-विरोधी मतोंके दो पाटोंके बीच पड़कर कुचल जानेका तो कोई खतरा मुझे है नहीं; क्योंकि मैं मानता हूँ कि लिखित वेदोंकी चाहे जो व्याख्या की जाये अथवा हमारे प्राचीन पूर्वजोंका आचार-व्यवहार चाहे जो रहा हो, हमें तो आधुनिक खोज और स्वयं अपनी अन्तरात्माके आदेशके अनुसार अपने व्यवहारका नियमन करनेका पूरा अधिकार है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत सी० वी० वैद्य
पूना शहर

अंग्रेजी (एस० एन० १२६२१) की माइक्रोफिल्मसे।

२१८. पत्र : एस० रामनाथन्‌को

कुमार पार्क, बंगलोर
२७ जुलाई, १९२७

प्रिय रामनाथन्‌,

आपके दोनों पत्र मिले। मुझे उम्मीद है, अब आप पूरी तरह चंगे हो गये होंगे।

मैं जबसे मैसूरसे वापस आया हूँ, तबसे श्री महादेव अय्यर लगभग रोज मुझसे मिलने आते हैं और मैं भी रोज चन्द मिनट उनको देता हूँ। यदि मुझे कुछ खास कहने लायक लगा तो मैं आपको फिर पत्र लिखूँगा।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत एस० रामनाथन्‌
अ० भा० च० सं०
इरोड

अंग्रेजी (एस० एन० १२९३३) की माइक्रोफिल्मसे।

२१९. पत्र : नरगिस कैप्टेनको

कुमार पार्क, बंगलोर
२७ जुलाई, १९२७

मैं जानता हूँ कि तुमने मुझे इतने दिनोंसे पत्र क्यों नहीं लिखा है। लेकिन फिर भी मुझे तो तुम्हें लिखना ही पड़ेगा। जमनाबहन और मीठूबहन दोनोंको लिखे तुम्हारे पत्र मैंने देखे। मेरी मीठूबहनके साथ काफी लम्बी बातचीत हुई, और मैं देखता हूँ कि वैसे तो वे अत्यन्त स्नेही महिला है और उनमें कार्य व सेवा-कार्यकी अत्यधिक क्षमता है, लेकिन साथ ही वे बहुत क्रोधी और शंकालु स्वभावकी हैं। यशवन्तप्रसादके प्रति उनके मनमें एक शंका घर कर गई है, जिसे मैं सर्वथा निराधार मानता हूँ। उसे वे अपना पक्का दुश्मन मानने लगी है। इससे जमनाबहनका उनके साथ काम करना लगभग असम्भव हो गया है। इसलिए कुल मिलाकर मुझे यही लगता है कि यदि उन्हें नफीस खादीके विकासके लिए अपनी इच्छानुसार काम करनेके लिए अकेले छोड़ दिया जाये तो अच्छा हो। इस काममें उन्होंने खास महारत-हासिल कर ली है, और अपना सारा समय वे इसमें लगाती हैं। आखिरकार उनका हिसाब-किताब इस अर्थमें बिलकुल ठीक है कि उसमें एक-एक पैसेकी आमदनी और खर्चका ठीक-ठीक लेखा-जोखा दिया गया है। हाँ, हिसाब-किताब प्रचलित नियमके अनुसार नहीं

रखा गया है। लेकिन मेरे खयालसे अब वैसे रखा जा रहा है। हिसाब-किताबकी नियमित रूपसे जाँच भी की जा सकती है। और जबतक वे ऐसा करती है, कोई कारण नही कि उनके कार्यको स्त्री-सभाकी एक स्वतन्त्र शाखाकी तरह क्यो न माना जाये। फिर भी उन्हें जब तुम्हारी सेवाओंकी जरूरत पड़े, उसके लिए तुम सब अपने-आपको तैयार रख सकती हो। 'तुम सब' इसलिए कह रहा हूँ कि मीठूबहनको जबतक जरूरत न पड़े तबतक उन्हें किसीका हस्तक्षेप पसन्द नही आता। उनके इस रवैयेसे मुझे सहानुभूति है, क्योकि अत्यन्त शंकालु स्वभावकी होनेके कारण, जिसका कि उन्हें कोई एहसास नही है, वे यदि शान्तिसे काम करना चाहती है तो अन्य कोई रवैया अपना ही नही सकती। मैंने उन्हें यह समझानेका प्रयत्न किया कि यशवन्तप्रसादका कोई अपना स्वार्थ नही है और उन्हें आपके कामसे सिर्फ इसलिए दिलचस्पी है कि जमनाबहन इस काममें लगी हुई है और सभी बहनें उनकी मदद लेना पसन्द करती है। लेकिन मै उनकी शंकाको दूर नही कर सका। इसके विपरीत, उन्होने अपनी शंकाको फिर दुहराया और कहा कि समय आनेपर मेरी ही तरह आपकी आँखें भी खुल जायेंगी और आप यशवन्तप्रसादके कपटी स्वभावको पहचान जायेंगे। उनका यह रवैया वैसे तो बड़े दु:खका विषय है, लेकिन हमें तो जैसी भी स्थिति है, उसीमें से जो-कुछ अधिकसे-अधिक मिल सकता है, उसे पाना है। दुर्भाग्यसे इससे पहले भारतकी महिलाओंने कभी संगठित रूपसे काम नही किया है। इसलिए उन्हें इस तरह काम करनेमें अभी थोड़ा समय लगेगा। सच तो यह है कि भारतके पुरुष भी अनेक सफल संगठनोंको नही चला पा रहे हैं। उनमें भी आपसी झगड़े और शंका-सन्देह बने ही रहते हैं। इस मामलेमें मै तुमपर जरूरतसे ज्यादा बोझ नही लादना चाहता। लेकिन यदि तुम मीठूबहन और अन्य लोगोंको बुला भेजो, और चूंकि वे सब तुम्हें अपना आला कमाण्डर मानती है, इसलिए यदि तुम उनके कान खीचो और उन्हें एक साथ मिल-जुलकर काम करनेके लिए राजी कर सको तो यह बहुत अच्छा होगा।

मै देखता हूँ कि घर जानेके बादसे तुम्हारा स्वास्थ्य बहुत ठीक नही रहा है। लेकिन तुम्हें असलमें खूब स्वस्थ रहना चाहिए। जबतक तुम कश्मीर नही जाती, मुझे सन्तोष नहीं होगा। हालाँकि मैंने कश्मीर देखा नही है, लेकिन मैंने उसके बारेमें काफी सुना है। बहुत सम्भव है कि कश्मीरकी सेहतमन्द हवा तुम्हे माफिक पड़े।

मुझे पत्र अवश्य लिखना और अपने स्वास्थ्यके बारेमें बताना। कितना अच्छा होता, यदि तुम यहाँ आ सकती। मौसम सचमुच बहुत अच्छा है और हमारे लिए तो यहाँ काफी ठण्डक है, लेकिन हो सकता है तुम्हारे लिए वैसा न हो।

श्रीमती नरगिस कैप्टेन
कोमरा हॉल
पंचगनी

अंग्रेजी (एस० एन० १४१९९) की फोटो-नकलसे।

२२०. पत्र : एस० बी० कोजलगीको

कुमार पार्क, बंगलोर
२७ जुलाई, १९२७

प्रिय मित्र,

देखता हूँ, मेरे पत्रसे आपको दु:ख पहुँचा है। लेकिन मैं नहीं जानता कि ऐसी स्थितिमें मैं और कर भी क्या सकता था। आपने जो श्लोक उद्धृत किया है, वह बिलकुल ठीक है। नारीको अपने पतिके वक्षस्थलसे लगकर गौरवका अनुभव होना ही चाहिए। अपने समीप खड़े उस अचल वृक्षके प्रति लताकी निष्ठा भी होनी ही चाहिए जो उसकी रक्षा करता है, और उससे लिपटकर गौरवका अनुभव होना भी स्वाभाविक ही है। और अगर मैं चरखा संघके नेता अथवा अध्यक्षके रूपमें अपने उन साथी कार्यकर्त्ताओंपर, जिन्हें मैं हमेशा साथ पाता हूँ और जो अपने सुपुर्द किये गये कार्यको करनेके लिए सदा तत्पर रहते हैं, विश्वास नहीं करता तो मैं अपने कर्त्तव्यके प्रति द्रोह करता हूँ। आपके द्वारा उद्धृत श्लोकमें कविने जिन तीनोंके[1] नाम लिये हैं, उनके अस्तित्वके लिए क्या यह अनिवार्य शर्त नहीं है? मेरे निकट आइए, मुझसे प्रणय-याचना कीजिए और फिर देखिए कि मैं किस तरह आपकी वफादार पत्नी बन जाता हूँ। आप मेरे समीप अचल वृक्षके समान बनकर देखिए, फिर मैं सहज ही आपसे लताकी तरह लिपट जाऊँगा। आप अपने-आपको खादी-कार्यमें लीन कर दीजिए और फिर मेरी नकेल पकड़कर आप मुझे चाहे जिस ओर ले जाइए। लेकिन यदि आप इन तीनोंमें से एक भी बात नहीं करते तब तो मैं तटस्थ-भावसे आपको एक ऐसे खरे आलोचकके रूपमें ही स्वीकार करूँगा, जिसका काम समाचारपत्रोंमें स्पष्टीकरण देते फिरना है। आप तब भी मेरे मित्र और साथी कार्यकर्त्ता बने रहेंगे और मैं आपसे ऐसी सेवाकी अपेक्षा करूँगा, जो मेरे विचारसे, आप कर सकते हैं।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी (एस० एन० १९७९०) की माइक्रोफिल्मसे।

१. पंडिता वनिता लता।

२२१. पत्र : प्रभावतीको

बंगलौर
आषाढ़ कृष्ण १४ [२७ जुलाई, १९२७][1]

चि० प्रभावती,

तुम्हारा पत्र मिल गया है। अब तुम्हारे बारेमें क्या हो रहा है मुझको लिखो। तुम्हारे लिये मैंने ऐसा ही मान लिया था कि तुमको बीमारी हो ही नही सकती है। अबके पत्रसे पता चलता है कि तुमको भी बीमारी हो गई। क्या हुआ था। मेरा स्वास्थ्य तो अच्छा रहता है। आजकल थोडा दौरा भी कर लेता हूँ। परंतु अगस्तके अंत तक बंगलोर ही केन्द्र होगा।

बापूके आशीर्वाद

जी० एन० ३३२० की फोटो-नकलसे।

२२२. पत्र : टी० परमशिव अय्यरको

कुमार पार्क, बंगलोर
२९ जुलाई, १९२७

प्रिय मित्र,

आपके पत्र और चेतावनीके लिए धन्यवाद। आपका पत्र पढ़कर स्थिति मेरे सामने कुछ ज्यादा स्पष्ट तो हुई नही। भद्रावतीके बारेमें आपने जो लिखा है, उसे मैं पढ़नेकी कोशिश करूँगा।

खैर, अब संक्षेपमें यह बताइए कि कृष्णराज सागरके बारेमें आपको क्या आपत्ति है। आपने सर एम० विश्वेश्वरैयापर झूठका आरोप लगाया है। आपकी समझसे इसमें उनका क्या हेतु हो सकता है? मैंने उनके चरित्रके बारेमें जो-कुछ सुना है, वह उनके पक्षमें जाता है। कर्नाटकके बाहर लोग उन्हें बहुत बड़ा देशभक्त मानते हैं। मैं व्यक्तिगत रूपसे भारतको अमेरिका बना देनेकी उनकी महत्त्वाकांक्षाके बिलकुल विरुद्ध हूँ। और भारतके हर गाँवमें बिजली ले आनेका उनका जो स्वप्न है, उससे भी मैं सहमत नही हूँ। लेकिन इस मूलभूत मतभेदने मुझे इतना अन्धा नहीं बना दिया है कि मैं उनकी महान् योग्यता और उनकी महान् सेवाओंको देख ही न पाऊँ। इसलिए मेरे मनमें उनका जो ऊँचा स्थान है उससे मैं उन्हे तबतक

१. १९२७ में इस तारीखको गांधीजी बंगलोरमें थे।

नही हटा सकता जबतक कि उसके लिए निश्चित और असन्दिग्ध प्रमाण नही दिये जाते।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत टी० परमशिव अय्यर
अवकाशप्राप्त न्यायाधीश
'ह्वाइट हाउस'
बंगलोर सिटी

अंग्रेजी (एस० एन० १२६२३) की माइक्रोफिल्मसे।

२२३. पत्र : एस० डी० नाडकर्णीको

कुमार पार्क, बंगलोर
२९ जुलाई, १९२७

प्रिय मित्र,

आपने देवनागरी लिपिको अखिल भारतीय लिपिके रूपमें अपनानेके बारेमें जो पत्र लिखा है, उसे मैं प्रकाशित करनेका इरादा नही रखता। मुझे काकासाहब कालेलकरने इसी तरहका और इससे भी अधिक विस्तृत एक पत्र लिखा था, लेकिन मैंने उसे भी प्रकाशित करनेका लोभ संवरण कर लिया, क्योकि इससे उलझन पैदा होनेके सिवाय और कुछ नही होगा। देवनागरीका सुधार, वह कितना ही वांछनीय क्यो न हो, मुख्य विषय नही है। यदि हम विचारकोंको एक सामान्य लिपिके रूपमें देवनागरीको अपनानेके लिए प्रेरित कर सके, तो जहाँ आवश्यक होगा, वहाँ इसमें सुधार तो अवश्यमेव होगा।

व्यक्तिगत रूपसे मुझे आपका यह सुझाव पसन्द है कि अक्षरोंपर शिरोरेखा लगाना छोड़ दिया जाये। काकासाहब तो इससे भी आगे जाते है, और गुजराती लिपिको अपनानेका सुझाव देते हैं, जो नागरी लिपिका ही सुधरा हुआ रूप है। लेकिन मैंने काकासाहबके सुझावको प्रकाशित नही किया है, क्योकि इससे कभी न खत्म होनेवाले एक लम्बे विवादका सिलसिला शुरू हो जायेगा, और भारतके विचारशील लोगोंका ध्यान मुख्य विषयसे हट जायेगा। यद्यपि मैं यह मानता हूँ कि देवनागरीका किसी-न-किसी रूपमें सुधार आवश्यक है, लेकिन फिलहाल मैं इसपर कोई ध्यान नहीं देना चाहता। यदि सभी एक सामान्य लिपिको, चाहे वह कितनी ही अपूर्ण क्यो न हो, स्वीकार कर लेते है तो उससे राष्ट्रीय शक्तिकी भारी बचत होगी और वह विभिन्न भाषा-भाषी प्रान्तो द्वारा परस्पर एक-दूसरेके समीप आनेकी दिशामें उठाया गया एक कदम होगा।

मैं 'नवजीवन' देवनागरीमें प्रकाशित क्यों नहीं करता, आपकी जानकारीके लिए मैं इसका कारण बताये देता हूँ। 'नवजीवन' का अपना एक सीमित उद्देश्य है। इसका सन्देश प्रभावकारी हो, इसके लिए हमने इसकी ग्राहक-संख्यामें कमी आ जानेकी स्थितिको भी स्वीकार किया। आप शायद नहीं जानते कि एक समय 'नवजीवन' और 'यंग इंडिया', दोनोंमें से प्रत्येककी ग्राहक-संख्या लगभग ३०,००० हो गई थी, लेकिन आज वह ७,००० से भी कम है। जिस उद्देश्यको लेकर इन पत्रोंको आरम्भ किया गया था, उसको सफल बनानेके लिए यदि यह संख्या शून्यतक भी पहुँच जाये तो मुझे चिन्ता नहीं होगी। देवनागरीको अपनाना उस उद्देश्यका हिस्सा नहीं था। 'नवजीवन' के पाठकोंमें एक बहुत बड़ी संख्या महिलाओं, पारसियों और मुसलमानोंकी है और ये लोग गुजराती टाइपको भी कुछ दिक्कतसे पढ़ पाते हैं। 'नवजीवन' के सम्पादनमें जो थोड़े-से संस्कृत शब्द प्रयोगमें लाये जाते हैं, उन पाठकोंको इन शब्दोंको भी समझनेमें कठिनाई होती है। अगर मैं देवनागरीको अपनाता हूँ तो ये सब लाचार हो जायेंगे और उकताकर 'नवजीवन' को और मुझे त्याग देंगे। जिन्हें उच्चवर्गीय कहा जा सकता है, उन लोगोंमें तो मेरे विचारसे 'नवजीवन' के बहुत कम पाठक हैं।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत एस० डी० नाडकर्णी
कारवार
(उत्तर कनारा)

अंग्रेजी (एस० एन० १२६२५) की फोटो-नकलसे।

२२४. पत्र : टी० आर० महादेव अय्यरको

कुमार पार्क, बंगलोर
२९ जुलाई, १९२७

प्रिय मित्र,

मेरे विचारसे तो आम लोगों और विशेषकर दाताओंको समय रहते सूचना दे देनेके बाद आपके लिए यह सर्वथा उचित, बल्कि आवश्यक होगा कि यदि तथाकथित प्रबन्ध-समिति, अर्थात् अपने-आपको इस समितिके संघटक बतानेवाले लोग पंच-फैसलेके लिए तैयार नहीं होते तो आप गुरुकुलकी चल-अचल सारी सम्पत्ति उन्हीं लोगोंको सौंप दें।

मैंने आपके प्रश्नोंके जो उत्तर दिये हैं, उन्हें किसी भी तरह कानूनी सलाह मत मानिए। मेरी सामान्य बुद्धिने मुझे जो कहा, वह मैंने लिख दिया। और यद्यपि आपके द्वारा उन उत्तरोंको प्रकाशित करनेपर मुझे कोई आपत्ति नहीं होगी, फिर भी

मैं चाहूँगा कि आप उन्हें प्रकाशित न करें, क्योंकि मैं उनमें से किसी भी उत्तरको लेकर सार्वजनिक विवादमें नही पड़ना चाहता।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत टी० आर० महादेव अय्यर
तमिल गुरुकुल
शेरमहादेवी

अंग्रेजी (एस० एन० १२९३५) की फोटो-नकलसे।

२२५. पत्र : टी० टी० शर्मनको

कुमार पार्क, बंगलोर
२९ जुलाई, १९२७

प्रिय मित्र,

आपके पत्र साथके आपके साप्ताहिककी एक प्रति भी मिली। मुझे लगता है कि मेरा आपके पत्रके लिए कुछ लिखना बिलकुल बेकार होगा, क्योंकि मैं उसे नही पढ सकता और इसलिए नहीं जानता कि उसमें आप क्या-कुछ देते हैं। मुझे याद नही पड़ता कि मैंने कभी किसी ऐसे पत्रके लिए कुछ लिखा हो, जिसकी नीति और सिद्धान्तोसे मैं परिचित न होऊँ और जिनके संचालकोके बारेमें भी मुझे कोई जानकारी न हो। अतएव, मुझे उम्मीद है कि आप मुझे क्षमा करेंगे तथा मुझे विश्वास है कि इस समय मेरा स्वास्थ्य जैसा चल रहा है, उसे देखते हुए आप नही चाहेंगे कि मैं आपके पत्रके अनुवादके लिए किसी मित्रको कष्ट दूँ और फिर उसे पढ़ने-समझनेमें इतना सारा समय लगाऊँ।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत टी० टी० शर्मन
सम्पादक
'विश्वकर्नाटक'
बगलोर सिटी

अंग्रेजी (एस० एन० १४२०१) की माइक्रोफिल्मसे।

२२६. पत्र : एन० शंकर अय्यरको

कुमार पार्क, बंगलोर
२९ जुलाई, १९२७

प्रिय मित्र,

आपके भेजे चेखवकी कहानीके अंश और मिलकी खादीसे सम्बन्धित जानकारीके लिए धन्यवाद। मैं जानता हूँ कि कुछ मिलें खुले आम ऐसा कपड़ा बेच रही हैं, जिसे मिलकी खादी कहा जाता है। मैं खादी-संगठनोंके जरिये इस धोखा-धड़ीको कम करनेके लिए काम कर रहा हूँ।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत एन० शंकर अय्यर
१४, पाटकर्स बिल्डिंग
बाँदरा
बम्बई नं० २०

अंग्रेजी (एस० एन० १९७९१) की माइक्रोफिल्मसे।

२२७. पत्र : राधासुन्दर दासको

कुमार पार्क, बंगलोर
२९ जुलाई, १९२७

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मुझे दुःख है कि आपके आवेदन-पत्रको स्वीकार नहीं किया गया। लेकिन इससे आपको निराश नहीं होना चाहिए, और न उन लोगोंके प्रति क्रोध करना चाहिए, जिन्होंने आपके आवेदन-पत्रको अस्वीकार कर दिया है। ऐसी बातें तो हमेशा होती ही रहती हैं। और यह सोचना गलत होगा कि चूँकि हमारे आवेदन-पत्रोंको स्वीकार नहीं किया गया है इसलिए अन्याय हुआ है। कृपया आप मुझे अपनी गति-विधियों और प्रगतिके बारेमें सूचित करते रहिए।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत राधासुन्दर दास
गिउड़ी डाकघर
वीरभूम जिला

अंग्रेजी (एस० एन० १९७९२) की माइक्रोफिल्मसे।

२२८. पत्र: एच० जी० पाठकको

कुमार पार्क, बंगलोर
२९ जुलाई, १९२७

प्रिय हरिभाऊ,

आपका पत्र मिला। हिन्दीमें न लिखनेके लिए क्षमा माँगनेकी कोई आवश्यकता नहीं। लेकिन अबसे छः महीने बाद आपको हिन्दीमें लिखते देखकर मुझे निस्सन्देह बड़ी प्रसन्नता होगी।

यहाँ अ० भा० च० सं०की परिषद्की जो बैठक हुई थी, उसकी किसी कार्य-वाहीमें मैंने भाग नहीं लिया। मैंने वह प्रस्ताव भी नहीं देखा जिसकी प्रति आपने मुझे भेजी है। मैंने जमनालालजी और परिषद्के अन्य सदस्योंको वचन दिया था कि जबतक वे खुद ही मुझसे नहीं कहेंगे, तबतक उनके किसी भी काममें दखल नहीं दूँगा।

आपको प्रस्तावमें जो बात उचित प्रतीत नहीं होती, उसके लिए मैं चाहूँगा कि आप जमनालालजी अथवा श्री बैंकरको लिखें। लेकिन मैं आपकी इस बातसे पूर्णतया सहमत हूँ कि अनावश्यक प्रतिबन्धोंके द्वारा कार्यकर्त्ताओंके रास्तेमें बाधा नहीं डालनी चाहिए। मैं नहीं समझता कि परिषद् नवयुवकोंकी राहमें कोई बाधा डालना चाहती है।

अब २,५०० रुपयेके कर्जके सम्बन्धमें। मैं नहीं समझता था कि इस रकमका उपयोग 'गांधी शिक्षणमाला' खरीदनेके लिए नहीं, बल्कि श्री कानिटकरके कर्जकी रकम अदा करनेके लिए किया जायेगा, और ये पुस्तकें ऋणकी रकमके एवजमें बन्धक रखी जायेंगी। मैंने यह भी नहीं सोचा था कि पुस्तकोंकी बिक्रीसे जो मुनाफा होगा, वह अ० भा० च० सं०को दे दिया जायेगा। जहाँतक हमारे बीच हुई बातचीतकी मुझे याद आती है, मैंने ऐसा-कुछ तो नहीं कहा था जिससे यह लगे कि मेरे मनमें इससे किसी तरहका मुनाफा कमानेका खयाल था। लेकिन यदि कुछ मुनाफा होता भी है तो मुनाफेकी वह रकम 'स्वराज्य'की व्यवस्थाके लिए खर्च की जा सकती है। श्री कानिटकरको आखिरकार 'स्वराज्य'के हितका उतना ही खयाल है, जितना कि किसी अन्य चीजका। आप चाहें तो जमनालालजीके साथ अपने पत्रव्यवहारमें इस पत्रका उपयोग कर सकते हैं। और यदि आवश्यक हुआ तो परिषद्की अगली बैठकमें प्रस्तावमें वैसा परिवर्तन कर दिया जायेगा। लेकिन मैं नहीं समझता कि आपके उद्देश्योंके लिए प्रस्तावके वर्तमान रूपमें कोई परिवर्तन करनेकी जरूरत है।

पुस्तककी प्रतियोंको "जमानत" कहनेके बजाय उन्होंने सौदेको "बिक्री" कहा है, लेकिन ये दोनों बातें एक ही हैं और लाभका सवाल तो बहुत दूरकी बात है।

इसके लिए जिस वचनपत्र (प्रोनोट) की जरूरत है, वह तो आपको बेशक शीघ्राति-शीघ्र भेज देना चाहिए — प्रस्तावमें आप कोई परिवर्तन करवाना चाहते हों तब भी।

परिषद्‌पर महाराष्ट्रके प्रति पूरी तत्परता न दिखानेका आरोप मेरे खयालसे ठीक नहीं है। यह सच है कि आपको परेशानी उठानी पड़ रही है, और शायद ऐसी परेशानीकी ही वजहसे कार्यकर्त्ता भावुक हो उठते हैं और परिषद्से ऐसी अपेक्षा करने लग जाते हैं जिसे वह वास्तवमें पूरी नहीं कर सकती। लेकिन अगर आप परेशानियोंके कारण अपने सिद्धान्तोंके प्रति अपनी आस्थामें कमी नहीं आने देते तो ऐसी परेशानियाँ आपको सेवाके लिए और भी अधिक योग्य बनायेंगी।

आपने लोकमान्यके संस्मरण लिखनेकी बात कही है। ऐसा कहकर तो आप मुझपर अतिरिक्त बोझ डाल रहे हैं, जब कि अभी मुझमें बहुत कम शक्ति है और उसे मैं अपने वर्तमान कार्यमें लगाना चाहता हूँ। और फिर मैं चाहे कुछ भी लिखूँ, लोकमान्य अथवा उनके जीवन-कार्यके प्रति मेरे दृष्टिकोणके सम्बन्धमें लोगोंके मनमें जो धारणा बन गई है, वह उससे नहीं बदल सकती। वह तो तभी बदल सकती है जबकि मेरा आचरण सदा सही रहे और आचरणके सही अथवा गलत होनेका निर्णय तो मेरी मृत्युके बाद ही हो सकता है। इसलिए यदि मैं कुछ लिखता भी हूँ तो निश्चय ही मुझे वह उस सुफलकी आशासे नहीं लिखना चाहिए जिसका प्रलोभन आपने दिया है।

बेकारीके सम्बन्धमें मैं नहीं जानता, यहाँसे बैठे-बैठे मैं क्या कर सकता हूँ। मैं तो सिर्फ यही कह सकता हूँ कि आपको सभी सम्भावित नाम तकनीकी विभागको भेज देने चाहिए। व्यक्तिगत रूपसे मैं समझता हूँ कि प्रत्येक इच्छुक व्यक्तिको खादी-कार्यमें जगह दी जा सकती है। लेकिन मैं सभी साथी कार्यकर्त्ताओंमें ऐसा विश्वास पैदा नहीं कर सकता। और इसलिए, जहाँतक ऐसे व्यावहारिक कार्यका सम्बन्ध है, अच्छा यही होगा कि आप फिलहाल मुझे निर्जीव ही समझ लीजिए। यदि मैं फिर जी उठूँ और व्यावहारिक कार्यमें कूद पड़ूँ तो आप निस्सन्देह मेरे पास आयें। लेकिन फिलहाल तो आपको श्री बैंकरके पास ही जाना होगा। आप एक नीति निर्धारित कर लीजिए और फिर देखिए कि बहुत-से लोगोंको जगह दी जा सकती है अथवा नहीं। सिर्फ इस कारणसे कि अब आप मुझपर भरोसा नहीं कर सकते, आप बेकार किन्तु सक्षम व्यक्तियोंकी समस्याके समाधानकी ओरसे निराश न हों और न उनके लिए काम करना छोड़ें।

अब मिल-मालिकोंके साथ सहयोग के बारेमें। दरअसल उनके साथ हमें नहीं, बल्कि हमारे साथ उन लोगोंको सहयोग करना है। अतएव, इस समय हमारा सहयोग खादीको सस्ता करने, उसे और ज्यादा मजबूत बनाने तथा मिल-मालिकोंको सरकारसे जितनी मिल सके, उतनी सहायता दिलानेमें ही निहित है।

मेरी सारी बातें साफ तो हो गई है न? मैं अन्नपूर्णाबाईके व्रतको ध्यानमें रखूँगा। आप कृपया श्री बैंकरको पत्र लिखकर उनसे कहें कि वे आपकी भेजी पॉलिसीकी प्राप्तिकी सूचना आपको विधिवत् भेज दें।

श्री जोगलेकरके छोटे करघेकी मैं उत्सुकताके साथ प्रतीक्षा करूँगा।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत एच० जी० पाठक
२८३, सदाशिव पेठ
पूना शहर

अंग्रेजी (एस० एन० १९७९३) की माइक्रोफिल्मसे।

२२९. पत्र : कुसुमबहन देसाईको

बंगलोर,
२१ जुलाई, १९२७

चि० कुसुम,

मैं तो तुम्हारे पत्रकी प्रतीक्षा कर ही रहा था। कुछ हाल तो मुझे चि० वसुमतीने लिखा था, जिसकी अब तुम्हारे पत्रने पूर्ति कर दी।

हरिभाईके विद्यार्थियोको तुम सँभाल लो और वे तुम्हारी देख-भाल और रक्षा करें, इससे अच्छा मुझे और कुछ नही जान पड़ता। परन्तु इस कामकी जिम्मेदारी तुम उठा सकती हो या नही, यह तो तुम्ही ज्यादा जान सकती हो। मैं देखता हूँ कि तुम जिस हदतक हरिभाईकी पत्नी थी उसी हदतक उनकी शिष्या भी थीं। तुम्हारा मन कहाँतक तैयार हुआ है, यह तो तुम और तुम्हारे हितेच्छु यानी हम सब, अनुभवसे ही जानेंगे। अपने मनका हमें हमेशा पता नही होता।

चि० वसुमती तथा भाई छगनलाल जोशीके पत्रसे जान पड़ता है कि तुम्हारे विवाहमें तुम्हारा काफी हाथ था। हरिभाईसे ही विवाह करनेका आग्रह तुम्हारा ही था। तुम अपने इस चुनावको अनेक प्रकारसे सुशोभित कर सकती हो। जो लड़की अपनेसे बहुत बड़ी उम्रके पुरुषको पतिके रूपमें पसन्द करती है, वह उसके शरीरको नही परन्तु उस शरीरके स्वामीको वरण करना पसन्द करती है। हरिभाईका शरीर छूट गया। परन्तु वे स्वयं तो आज भी तुम्हारे पास हैं, और जबतक तुम चाहो तबतक तुम्हारे पास रहेंगे।

मुझसे जो पूछना चाहो, पूछ लेना। इस मासके अन्त तक मैं बंगलोरमें ही हूँ।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]
बापूना पत्रो : कुसुमबहन देसाईने

२३०. मिशनरियोंके साथ बातचीत[1]

[२९ जुलाई, १९२७][2]

गांधीजीने बातचीत शुरू करते हुए कहा कि दक्षिण आफ्रिकामें में मिशनरियोंके निकट सम्पर्कमें आया और तभीसे में उनका मित्र रहा हूँ।

लेकिन मित्र होते हुए भी मैं बराबर उनकी आलोचना करता रहा हूँ। लेकिन मेरी आलोचनाका उद्देश्य सिर्फ उनकी टीका-टिप्पणी करते रहना, उनमें ख्वाहमख्वाह दोष निकालते रहना नहीं रहा है। उनकी आलोचना भी मैंने इसीलिए की है कि मुझे लगा कि उनकी भावनाओंको ठेस पहुँचानेका खतरा उठाकर भी यदि मैं अपने दिलकी बात साफ-साफ कह देता हूँ तो मैं मैत्रीके धर्मका और भी अच्छा निर्वाह करूँगा। उन्होंने मुझे कभी ऐसा अवसर नहीं दिया, जब मुझे लगा हो कि मेरी बातोंसे उन्हें चोट पहुँची है; और मेरी आलोचनापर उन्होंने किसी प्रकारकी नाराजगी तो कभी दिखाई ही नहीं।

इसके बाद गांधीजीने भारतके मिशनरियोंके समक्ष दिये अपने प्रथम भाषणका उल्लेख किया, जिसका विषय स्वदेशी था। उन्होंने कहा कि इस बातको अब बारह वर्ष हो चुके हैं और इस बीच बहुत सारी गलतफहमियाँ भी दूर हो गई हैं।

इन चन्द प्रारम्भिक शब्दोंके बाद अब मैं आपके परमार्थ-कार्य और अपने कामके बीच जिस भेदको स्पष्ट करना चाहूँगा वह यह है कि जहाँ मैं अपने-अपने धर्ममें लोगोंके विश्वासकी जड़को मजबूत कर रहा हूँ, वहाँ आप उसे कमजोर बना रहे हैं। मैंने बराबर यही माना है कि आप जिन लोगोंकी सेवा करने जाते हैं, यदि उनके धार्मिक विश्वासोंको — उन विश्वासोंको, जो चाहे जितने अपरिष्कृत हों किन्तु उनके लिए बड़े मूल्यवान हैं — स्वीकार करके चलें तो आपके कामका रूप और भी निखर आये। मेरी बातके मर्मको ठीक तरहसे ग्रहण करनेके लिए शायद यह जरूरी है कि आप 'बाइबिल'के सन्देशको, आज हमारे चारों ओर जो-कुछ हो रहा उसे ध्यानमें रखते हुए, नये दृष्टिकोणसे समझें। शब्द तो वही हैं, लेकिन उनके अर्थ बराबर अधिक विस्तृत, अधिक गहरे होते चले जाते हैं; सम्भव है कि नई खोजोंको — मेरा मतलब आधुनिक विज्ञानकी खोजोंसे नहीं, बल्कि अध्यात्मकी दुनियामें प्रत्यक्ष अनुभवोंके रूपमें हुई उन खोजोंसे है जो सभी धर्मोंके लिए समान रूपसे ग्राह्य है — ध्यानमें रखकर 'बाइबिल'की बहुत-सी बातोंकी नये सिरेसे व्याख्या करना आवश्यक हो। सेंट जॉनके बुनियादी वचनोंको नये दृष्टिकोणसे पढ़ने, उनकी नये सिरेसे व्याख्या करनेकी जरूरत

१. महादेव देसाईके लिखे इसी शीर्षक लेखसे।

२. महादेव देसाईके "साप्ताहिक पत्र" से।

है। मैं ऐसा मानने लगा हूँ कि हम मानव-प्राणियोंकी तरह ही शब्दोके अर्थका क्रमशः विकास होता रहता है। उदाहरणके लिए सबसे अधिक अर्थगर्भित शब्द ईश्वरको ही ले। उसका अर्थ हम सबके लिए एक ही नही है। वह व्यक्तिके अनुभवपर निर्भर करता है, प्रत्येक व्यक्तिके निजी अनुभवके अनुसार बदलता रहता है। सथालोके लिए ईश्वरका अर्थ कुछ और है और उनके पड़ोसमें रहनेवाले रवीन्द्रनाथ ठाकुरके लिए, कुछ और। हो सकता है, ईश्वर और हिन्दू धर्मका जो अर्थ मैं लगाता हूँ, वह सनातनियोको स्वीकार न हो। लेकिन, स्वयं ईश्वर परम सहिष्णु है, उसके नामपर चाहे कोई कुछ करे, उसे चाहे जितने गलत रूपमें पेश किया जाये, वह सब कुछ बरदाश्त करता है। यदि हम सभी धर्मोंके लोगोके आध्यात्मिक अनुभवोका समन्वय कर दें तो उसका जो परिणाम निकलेगा, वह मानव-मनकी उस निगूढ़तम आकांक्षाको तृप्त कर सकेगा। ईसाई धर्म १९०० वर्ष पुराना है, इस्लाम १३०० वर्ष; लेकिन दोनोमें से किसीकी सम्भावनाओके बारेमें कोई क्या जानता है? मैंने वेदोको मूल रूपमें नही पढ़ा है, लेकिन उनके सारको ग्रहण करनेका प्रयत्न किया है, और यह कहनेमें मुझे कोई हिचक महसूस नही हुई है कि भले ही वे १३,००० वर्ष पुराने हो—या इतना ही क्यों, हो सकता है कि वे लाखो वर्ष पुराने हो, क्योंकि अनादि ईश्वरके वचन भी अनादि ही हैं—किन्तु इनका अर्थ भी हमें अपने अनुभवके प्रकाशमें ही लगाना चाहिए। हमारी समझनेकी शक्तिकी कुछ सीमाएँ है, इसीलिए हमें ईश्वरकी शक्तिको तो उन सीमाओसे बँधा नही मानना चाहिए। इसलिए भारतको कुछ सिखानेकी इच्छासे आनेवाले आप लोगोसे मैं कहूँगा कि आप इससे कुछ ग्रहण किये बिना इसे कुछ दे नही सकते, यहाँसे कुछ सीखे बिना इसे कुछ सिखा नही सकते। अगर आप यहाँ अपने अनुभवोंकी निधि लुटाने आये हैं तो इस देशके पास जो-कुछ है, उसे ग्रहण करनेके लिए तो अपने हृदयके द्वार खोलिए। मैं विश्वास दिलाता हूँ कि यदि आप ऐसा करेंगे तो आपको निराश नही होना पड़ेगा और न उसका यही मतलब होगा कि आपने 'बाइबिल'के सन्देशको गलत समझा है।

इसके बाद कुछ दिलचस्प प्रश्नोत्तर हुए, जिन्हें मैं संक्षेपमें नीचे दे रहा हूँ:

प्र० : तब फिर हम कर क्या रहे है? हम ठीक काम तो कर रहे हैं न?

उ० : हाँ, ठीक काम ही कर रहे है, लेकिन गलत तरीकेसे। मैं चाहता हूँ कि आप लोगोंकी अपनी-अपनी धार्मिक श्रद्धा और विश्वासकी जडको कमजोर करनेके बजाय उसे बल दीजिए। मैसूरके दीवानने मैसूर विधान सभाके अपने अभिभाषणमें कहा था कि आदि कर्नाटकोंको बेहतर हिन्दू बनाना चाहिए। उन्होने ऐसा इसलिए कहा कि आदि कर्नाटक हिन्दू समाजके अंग हैं। इसी तरह मैं आप लोगोंसे कहूँगा कि आप भी हमें बेहतर हिन्दू, अर्थात् आज हम जैसे हैं, उससे श्रेष्ठ मनुष्य बनाइए। किसीके ईसाई हो जानेपर भी उसके परिवेशसे उसका सम्बन्ध क्यो तोड दिया जाना चाहिए? बचपनमें मैंने लोगोंको यह कहते सुना था कि ईसाई होनेका मतलब तो यह होता है कि हमारे एक हाथमें ब्रांडीकी बोतल हो और दूसरेमें गोमांस। अब स्थिति कुछ सुधर गई है, लेकिन आज भी किसीको ईसाई बनानेका मतलब

अक्सर उसे अपने राष्ट्र-धर्मसे विमुख कर देना और यूरोपीय रंगमें रँग देना होता है। क्या बेहतर आदमी बननेके लिए यह जरूरी है कि हम अपनी सादगीको छोड़ दें? आप कृपया हमारी सादगीपर प्रहार न करें।

हमारे सामने सेवा करना और धर्मकी शिक्षा देना, सिर्फ यही दो सवाल नहीं हैं; एक तीसरा सवाल भी है, अर्थात् लोगोंको ईसा मसीहके आगमन और हमारे पापोंके प्रायश्चित्तके लिए उनके बलि चढ़ जानेका शुभ सन्देश भी देना है। यह शुभ सन्देश देनेका सही तरीका क्या है? हमें लोगोंके अपने-अपने धार्मिक विश्वासोंको कमजोर बनानेकी जरूरत नहीं है, लेकिन ऐसी चीजोंके सम्बन्धमें, जो वास्तवमें धर्मका अंग नहीं हैं, उनके मूढ़तापूर्ण विश्वासोंसे तो उन्हें विमुख करना ही चाहिए।

अब यह सवाल तो मुझे अर्थ और व्याख्याके विवादमें पड़नेको मजबूर करता है। मैं उस विवादमें तो नहीं पड़ूँगा लेकिन इतना कह सकता हूँ कि ईश्वरको वही १९०० वर्ष पहले, एक ही बार शूलीपर नहीं चढ़ना पड़ा था, एक ही बार कष्ट नहीं सहना पड़ा था। वह आज भी शूलीके कष्टको झेल रहा है, वह प्रतिदिन हमारे पापोंका प्रायश्चित्त करनेके लिए मरता है और फिर नया शरीर धारण करके उठ खड़ा होता है। यदि संसारको उसी ऐतिहासिक ईश्वरके भरोसे जीना पड़ता जो आजसे २००० वर्ष पूर्व मर चुका है, तो कहना मुश्किल है कि उससे उसे क्या सन्तोष मिलता। इसलिए, आप उस ऐतिहासिक ईश्वरकी बात लोगोंसे मत कहिए, बल्कि स्वयं अपने जीवन और आचरणमें उसे सजीव-रूपमें लोगोंको दिखाइए। दक्षिण आफ्रिकामें मैं अनेकानेक मित्रोंके सम्पर्कमें आया और बहुत-सी पुस्तकें भी पढ़ीं। इनमें पियर्सन, पार्कर और बटलरकी कृतियाँ भी थीं। मैंने पाया कि हर व्यक्तिने ईसाई धर्मकी अपनी एक अलग व्याख्या दी है। तब मेरे मनमें यह विचार आया कि मुझे इन परस्पर-विरोधी व्याख्याओंमें सिर नहीं खपाना चाहिए। अपनी मान्यताओं और विश्वासोंका इजहार शब्दोंमें करनेके बजाय उन्हें अपने जीवनमें उतारकर दुनियाको दिखाना कहीं अच्छा है। सी० एफ० एन्ड्रयूज तो लोगोंको कभी भी धर्मकी शाब्दिक सीख नहीं देते। वे निरन्तर अपने काममें लगे हुए हैं। उन्हें करनेको काफी काम मिल जाता है और जहाँ कोई काम मिलता है कि बस, वे उसीमें जुट जाते हैं, और शूलीके कष्ट सहने, दुनियाके लिए दुःख उठानेका कोई श्रेय भी नहीं लेते। मैं सैकड़ों सच्चे ईसाइयोंको जानता हूँ, लेकिन एन्ड्रयूजसे श्रेष्ठ मुझे कोई नहीं लगा।

लेकिन, जड़ पदार्थोंमें चेतन शक्तियोंकी कल्पना करके उनकी पूजा करने-जैसी बातोंके सम्बन्धमें क्या किया जाये? क्या लोगोंके इन अन्धविश्वासोंको भी नहीं सुधारना चाहिए?

हम तथाकथित 'अस्पृश्यों' और पिछड़े वर्गोंके लोगोंके बीच काम करते रहे हैं, लेकिन हमने उनके धार्मिक विश्वासोंकी कभी कोई चिन्ता नहीं की, चाहे उन विश्वासोंका सम्बन्ध जड़ पदार्थोंमें चेतन सत्ताके आरोपणसे रहा हो या किसी और चीजसे। ज्योंही हमारा जीवन सही मार्गपर आरूढ़ हो जाता है, सारे अन्धविश्वास

और अवाछनीय बातें दूर हो जाती हैं। मै उनके विश्वासोंकी ओर कोई ध्यान नहीं देता, उनसे सिर्फ सही काम करनेको कहता हूँ। और जिस क्षण वे वैसा करने लगते है, उसी क्षण उनका विश्वास भी सही दिशा पकड लेता है।

आप सादगीकी बात कहते हैं। लेकिन मोटर गाड़ियोंके इस युगमें हम कर भी क्या सकते हैं? खुद अपनी ही मिसाल लीजिए। आप मोटरगाड़ीके बिना तो यहाँ नहीं आ सकते थे।

नही, मोटर गाड़ी कोई आवश्यक चीज नही है। कमसे-कम मुझे तो यहाँ आनेके लिए उसकी आवश्यकता नही थी। अगर ईश्वर चाहता है कि आप उपयोगी काम करें तो आपसे उपयोगी काम करानेका साधन भी वही ढूंढेगा। मोटर गाड़ियाँ हमारे आध्यात्मिक अनुभवका सार तो नही हैं। ईसा मसीह या मुहम्मदके समयमे तो मोटर गाड़ी नही थी। फिर भी अपने कामके लिए उन्हें कभी इसकी कमी महसूस नही हुई। मै सच्ची प्रगतिके लिए इन्हें जरूरी नही मानता। हमें विनयशील बननेकी जरूरत है। और विनय तथा सादगी सिर्फ बाहरी दिखावेकी चीजें नही हैं। जब पॉल विनयकी बात कहते है तब उनका मतलब हार्दिक विनयसे है। सच्चे ईसाईको बोलने-की जरूरत नही होती। वह तो बस अपना अंगीकृत काम करता रहता है। मेरा ही उदाहरण लें। दक्षिण आफ्रिकामें मैने जो काम किया, उसमें भाषणोका स्थान सबसे गौण था। जो १६,००० व्यक्ति मेरे साथ एकजुट होकर उठ खडे हुए, उनमें से अधिकाशने मुझे देखातक नही था, मेरा भाषण आदि सुनना तो दूर रहा।

जब हमें लगता है कि सत्य तो वही है जो ईसाई धर्ममें है तब फिर हम दूसरे धर्मोंकी आलोचना कैसे न करें?

यह सवाल मुझे सहिष्णुताके कर्त्तव्यपर कुछ कहनेको बाध्य करता है। अगर आप यह नही सोच सकते कि दूसरे धर्म भी आपके धर्मके समान ही सच्चे हो सकते है तो कमसे-कम इतना तो मानिए कि दूसरे लोग भी आपकी ही तरह सच्चे हैं। मुझे यह कहते हुए हर्ष हो रहा है कि ईसाई मिशनरियोकी असहिष्णुता आज उतनी भद्दी शक्लमें प्रकट नहीं होती जितनी भद्दी शक्लमें उसके नमूने कुछ वर्ष पूर्व देखनेको मिलते थे। ईसाई साहित्य संस्था (क्रिश्चियन लिटरेचर सोसाइटी) के प्रकाशनोंमें हिन्दू धर्मका जैसा मजाक उड़ाया गया है, उसपर तनिक सोचकर देखिए। अभी पिछले ही दिनों एक महिलाने मुझे लिख भेजा कि अगर मै ईसाई धर्मको स्वीकार नही करता तो मैं जो-कुछ कर रहा हूँ, सब बेकार होगा। और कहनेकी जरूरत नही कि ईसाई धर्मसे उनका मतलब जिस रूपमें वे उसे समझती हैं, वही ईसाई धर्म है। अन्तमें मैं तो इतना ही कह सकता हूँ कि यह सही रवैया नही है।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, ११-८-१९२७

२३१. पत्र: कमला दासगुप्तको

कुमार पार्क, बंगलोर
३० जुलाई, १९२७

प्रिय बहन,

तुम्हारा पत्र व्यक्तिगत ढंगका है, लेकिन उसका उत्तर मैं बोलकर लिखा रहा हूँ। आशा है, तुम इसका बुरा न मानोगी।

अकेली तुम ही ऐसी लड़की नहीं हो जिसे उन कठिनाइयोंका सामना करना पड़ रहा है, जिनका तुमने अपने पत्रमें उल्लेख किया है। लेकिन यदि तुममें धैर्य है, हर स्थितिमें अपने आदर्शोंपर दृढ़ रहनेकी क्षमता है और तुम विनम्र हो तो तुम्हें अपने माता-पिताके दबावपर विजय प्राप्त करनेमें कोई कठिनाई नहीं होगी। क्योंकि आखिरकार, उन्हें तो सामान्य अनुभवके अनुसार ही चलना है और सामान्य अनुभव यह है कि नौजवान लड़के और लड़कियाँ बहुधा उत्साहके क्षणोंमें उच्च आदर्शोंकी कल्पना करते हैं, जिन्हें वे अन्तमें पूरा नहीं कर पाते। मैं खुद ही ऐसे अनेक उदाहरण जानता हूँ। इसलिए माता-पिता बहुत सतर्क रहते हैं तथा अपने बच्चोंके उच्च आदर्शोंको अधिक महत्त्व देते हुए हिचकते हैं। यदि तुम्हारे माता-पिता तुम्हारे विवाहका आग्रह रखते हैं तो वे तुम्हे साबरमती आश्रम जानेकी अनुमति कैसे दे सकते हैं? और फिर मैं तुमसे यह भी कह दूँ कि तुम अपने मनमें आश्रमकी बहुत लुभावनी तस्वीर न बनाना। यह तो मशक्कत करनेवाले उन लोगोंकी जगह है जो हाथ-पैरसे काम करनेकी आवश्यकता और उसके नैतिक मूल्यमें विश्वास रखते है। और फिर यहाँ अंग्रेजी बहुत कम बोली जाती है। यहाँपर हिन्दीका ज्ञान होना अनिवार्य है।

मैं बैथून कॉलिजकी लड़कियोंके स्तरको अच्छी तरह जानता हूँ। उस कॉलिजमें जो सुविधाएँ दी जाती हैं और वहाँ लड़कियाँ अपने लिए जिन सुख-सुविधाओंकी व्यवस्था करती हैं, उन्हें यदि तुम जीवनके लिए अनिवार्य वस्तुएँ मानने लगी हो तो तुम आश्रमके सादे जीवनसे शायद ही सन्तुष्ट हो पाओगी। लेकिन मेरी चेतावनीके बावजूद यदि तुम अपने मनमें आश्रमके प्रति आकर्षण महसूस करती हो और यदि तुम्हारे माता-पिता तुम्हें आश्रम आनेकी अनुमति दें तो मैं तुम्हारा नाम व्यवस्थापक-मण्डलके पास भेज दूँगा।

अपने अगले पत्रमें मुझे अपने बारेमें और ज्यादा बताना। अपनी आयु और अपने पिताका धन्धा बताना और अन्य जो जानकारी देना तुम्हें जरूरी लगे वह सब लिख भेजना।

हृदयसे तुम्हारा,

श्रीमती कमला दासगुप्त
१, अखिल मिस्त्री लेन, कलकत्ता

अंग्रेजी (एस० एन० १२६२६) की माइक्रोफिल्मसे।

२३२. पत्र : डॉ० बा० शि० मुंजेको

कुमार पार्क, बंगलोर
३० जुलाई, १९२७

प्रिय डाक्टर मुंजे,

आपका वह पत्र पाकर मुझे तसल्ली हुई जिसमें आपने दुर्घटनाका पूरा हाल लिखा है। भगवान्‌का शुक्र है कि आपको जो चोट लगी है, उससे आपके शरीरको कोई स्थायी क्षति नही पहुँची है। आप सब लोग बाल-बाल बच गये!

कृपया आप अपने पौत्रसे कहिए कि वह बड़े भाग्यसे तनिक भी चोट खाये बिना बच निकला है और अब इस सौभाग्यका उपयोग उसे देशके लिए कुछ बड़े काम करके करना चाहिए। उसे मनमें ऐसा पक्का संकल्प कर लेना चाहिए कि उसको अपने पितामह और मुझ जैसे अपने वृद्ध समकालीन लोगोंकी अपेक्षा कुछ ज्यादा करके दिखाना है, और इस संकल्पके साथ उसे आजसे अपने-आपको देशकी सेवाके लिए अर्पित कर देनेकी तैयारीमें लग जाना चाहिए।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी (एस० एन० १४२०२) की फोटो-नकलसे।

२३३. पत्र : एकनाथ श्रीपाद पटवर्धनको

कुमार पार्क, बंगलोर
३० जुलाई, १९२७

प्रिय मित्र,

अपनी बीमारी और इधर-उधर आते-जाते रहनेके कारण मैं बहुत दिनोंतक आपके पत्रका उत्तर नही दे पाया; इसके लिए क्षमा करें। यदि मैं ठीक होता और पहलेकी तरह काम करनेकी स्थितिमें होता तो मैं आपकी कठिनाईको दूर करनेके लिए अवश्य ही कुछ करता। लेकिन इस समय तो मैं सचमुच लाचार हूँ। जैसा कि आप जानते ही हैं, मैंने व्यवस्थाका लगभग सारा कार्य छोड़ दिया है। बस, सिर्फ पत्र-व्यवहार और सम्पादनका काम करता हूँ और जितना दौरा करना बिलकुल जरूरी है, उतना दौरा रुक-रुककर आराममे करता हूँ। जमनालालजी संघके कार्यकारी अध्यक्ष हैं और मैं चाहूँगा कि आप उनसे सम्पर्क करें और उन्हें अपनी बात समझायें।

बीमार पड़नेसे पहले मैंने जमनालालजीसे आपके पूरे मामलेके बारेमें बातचीत की थी। हालाँकि संघकी परिषद्‌की बैठकके लिए जमनालालजी अभी हाल ही में यहाँ आये थे, लेकिन मैंने बैठककी कार्यवाहियोंमें भाग नही लिया और न जमनालालजीसे

व्यवस्थाके सम्बन्धमें क्या-कुछ किया जाये, इस विषयपर कोई बातचीत ही की। दरअसल मैंने बहुत पहलेसे ही सोच रखा था कि मैं आपके विद्यालय और आपकी कठिनाइयोंका अध्ययन करूँगा। लेकिन बीमार हो जानेके कारण मैं असमर्थ हो गया और फलतः यह और इस तरहकी अन्य योजनाएँ भी घपलेमें पड़ गईं। इसलिए मैं आशा करता हूँ कि आप मुझे क्षमा करेंगे।

साथवाले कागज रजिस्ट्रीसे सोमवारको भेज दूँगा।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत एकनाथ श्रीपाद पटवर्धन
प्रमुख
तिलक महाविद्यालय
महाल, नागपुर

अंग्रेजी (एस० एन० १९७९४) की माइक्रोफिल्मसे।

२३४. पत्र: वी० वी० दास्तानेको

कुमार पार्क, बंगलोर
३० जुलाई, १९२७

प्रिय दास्ताने,

तुम्हारा पत्र मिला। मुझे दुःख है कि मैं तुमसे नहीं मिल सका। यदि मुझमें बीमार पड़नेसे पहले-जैसी सामर्थ्य होती तो निस्सन्देह, मैं खादी-सेवामें स्थान पानेके लिए उत्सुक एक भी व्यक्तिको सिर्फ इस कारणसे निराश न करता कि अब हमारे पास उनके लिए गुंजाइश नहीं है। लेकिन जमनालालजी और शंकरलालको तो अपनी क्षमता और आत्म-विश्वासके अनुसार ही सारी व्यवस्था करनी है। तुम्हे इसके पक्ष-विपक्षके सम्बन्धमें उन्हींसे बातचीत करनी चाहिए। मैं भी बातचीत करूँगा लेकिन मैं तो जरा इत्मीनान और सुविधासे ही करूँगा। यह तो ठीक ही है कि यदि तुमसे बने तो तुम्हें कदापि आत्म-विश्वास नहीं खोना चाहिए। लेकिन यदि हम सचमुच असहाय हैं तो हमें बहादुर बननेका ढोंग नही करना चाहिए। सबसे बड़ी बात तो यही है कि हमें सच्चा होना चाहिए।

हृदयसे तुम्हारा,

श्रीयुत वी० वी० दास्ताने
अ० भा० च० सं० (महाराष्ट्र शाखा)
पिम्पराला डाकघर

अंग्रेजी (एस० एन० १९७९५) की माइक्रोफिल्मसे।

२३५. भाषण: चामराजेन्द्र संस्कृत पाठशालामें

बंगलोर
३० जुलाई, १९२७

मुझे संस्कृतमें मानपत्र देकर आपने मेरा जो सम्मान किया है, उसके लिए मैं आपका आभारी हूँ। मैं मानता हूँ कि हरएक हिन्दू लड़के व लड़कीको संस्कृत अवश्य सीखनी चाहिए और हरएक हिन्दूको संस्कृतका इतना पर्याप्त ज्ञान होना चाहिए जिससे वह अवसर आनेपर संस्कृतमें अपने विचार प्रकट कर सके।

मुझे यह सुनकर बहुत दुःख हुआ कि मैसूर राज्यमें कुछ ऐसे पंडित हैं जो शूद्रों और पंचमोंको संस्कृत सिखानेमें हिचकते हैं। मैं नहीं जानता, यह मान्यता कहाँतक शास्त्र-सम्मत है कि शूद्रोंको संस्कृत और इसलिए वेदोंको पढ़नेका अधिकार नहीं है। लेकिन एक सनातनी हिन्दूके नाते मेरा यह निश्चित मत है कि यदि शास्त्रोंमें इसके लिए कोई प्रमाण हो तो भी शास्त्रोंके शब्दार्थके पीछे पड़े रहकर हमें अपने धर्मकी आत्माका हनन नहीं करना चाहिए। मनुष्यके समान शब्दके अर्थका भी विकास होता रहता है, और यदि कोई वैदिक वचन भी विवेकबुद्धि तथा अनुभवके विपरीत पड़ता हो तो उसे त्याग ही देना चाहिए। इस तरह, जहाँतक मैं शास्त्रोंको समझता हूँ, मेरा खयाल है कि आज हम अस्पृश्यताको जिस रूपमें समझते हैं, वैसी अस्पृश्यताके लिए उनमें कोई प्रमाण नहीं है, और भारतके विभिन्न भागोंके अस्पृश्योंके बारेमें मेरा जो अनुभव रहा है उससे तो मैंने यही जाना है कि यदि व्यक्तिशः तुलना की जाये तो बौद्धिक अथवा नैतिक, किसी भी दृष्टिसे 'अस्पृश्य' लोग अपने 'स्पृश्य' भाइयोंसे उन्नीस नहीं पड़ते। मैं दलित वर्गके ऐसे अनेक लोगोंको जानता हूँ जो हममें से किसीसे भी कम स्वच्छ और नैतिक जीवन नहीं जी रहे हैं, और मैंने ऐसे आदि कर्नाटक लड़कोंको भी देखा है जो संस्कृत श्लोकोंको पढ़ने और उनका सस्वर पाठ करनेमें यहाँके किसी भी ब्राह्मण लड़के या लड़कीसे कम नहीं हैं। इसलिए मैं इस बातके लिए आपका आभारी हूँ कि आपने मुझ-जैसे क्रान्तिकारी विचार रखनेवाले व्यक्तिको अपने यहाँ बुलाया और केवल बुलाया ही नहीं, बल्कि उसे मानपत्र भेंट किया और उसमें उसके उन विचारोंका अनुमोदन किया। बहुतसे ब्राह्मणोंको तकली चलाते देखकर मुझे बहुत खुशी हुई है, लेकिन मैं चाहता हूँ कि आप सिर्फ जनेऊ बनानेके लिए ही तकली न चलायें। यज्ञोपवीत तो तकलीपर कते सूतसे बनाया ही जाता रहेगा, लेकिन आप अपने कपड़े भी चरखेपर कते सूतसे ही बनायें। मैं सच कहता हूँ, जब मैंने लड़कों और लड़कियोंको विदेशी कपड़े पहन-कर धर्मग्रन्थोंके श्लोकोंका उच्चार करते देखा तो मुझे बहुत दुःख हुआ। अगर कमसे-कम कहूँ तो यह बात मुझे बिलकुल असंगत जान पड़ी। बाहरी आचार-व्यवहार किसी भी तरह धर्मके असली तत्त्व नहीं हैं, लेकिन ये आचार-व्यवहार बहुधा उसके आन्तरिक रूपके दर्पण हुआ करते हैं, और इसलिए जब-कभी मैं किसी संस्कृत कालेजमें या ऐसी संस्थामें जाता हूँ जहाँ आर्य संस्कृतिकी शिक्षा दी जाती है तो मैं यही आशा करता हूँ

कि वहाँ मुझे अपने प्राचीन ऋषियोंके आश्रमोंका-सा सादा और पवित्र परिवेश देखनेको मिलेगा। मुझे दुःखके साथ कहना पड़ता है कि आपने मेरी आशा पूरी नही की, और इसलिए अब मै शिक्षकों और माता-पिताओंसे अनुरोध करता हूँ कि वे बच्चोको हमारी प्राचीन संस्कृतिका सच्चा प्रतिनिधि बनाये।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, १८-८-१९२७

२३६. प्रकृतिका 'कोप'

प्रकृति कभी कोप नहीं करती। उसके नियम अच्छी घड़ीकी भाँति अचूक काम करते है। उनमें संशोधन-परिवर्द्धन नही होता। उसने न तो अपने लिए इसका अधिकार रखा है और न उसे इसकी आवश्यकता ही है। प्रकृति सम्पूर्ण है इसीसे उसका विधान भी सम्पूर्ण है।

लेकिन हम उसके विधानको नही जानते, इसीसे जब वह अकल्पित काम करती है तब उसे हम प्रकृतिके कोपके नामसे पुकारते है। गुजरातपर ऐसा ही कोप इस समय प्रकृतिने किया है। बंगलोरमें बैठे हुए मै इस छोटे-मोटे प्रलयकी[1] कल्पना कैसे कर सकता हूँ। इस प्राकृतिक कोपके विस्तारको जाननेके मेरे साधन तो वल्लभभाई द्वारा भेजा गया तार, आश्रमसे प्राप्त एक तार तथा समाचारपत्रोमें प्रकाशित खबरें ही हैं।

यह हमारे पापका दण्ड है या कोई ऐसी क्रिया है जिससे हमें, अगर हम विशेष शर्तोंको पूरा करें तो, आवश्यक लाभ मिल सकता है, यह तो ईश्वर ही जाने। हमारे लिए उचित यही है कि उसे हम अपने पापोंका फल मानें। नैतिक पाप और आर्थिक पापमें बड़ा भेद नही है। इतना ही नही, अपितु दोनोंमें निकटका सम्बन्ध है। झूठ बोलना, नदीके पानीको मैला करना और खेतमें गेहूँके बजाय अफीम अथवा तम्बाकूकी फसल बोना, इन तीनों पापोंमें प्रमाणका भेद है, नीतिका नही। ऐसी बात नहीं है कि झूठ बोलनेवालेकी आत्माका हनन होता है और पानी गन्दा करनेवालेकी आत्मा का हनन नहीं होता अथवा अफीमकी फसल बोनेवाले व्यक्तिकी आत्मा सुखी होती है। जैसे-जैसे हमारा ज्ञान शुद्ध होता जाता है वैसे-वैसे हमें अपने पाप ज्यादा स्पष्ट होते जाते है।

लेकिन जबतक पापोंके हमारे इस ज्ञानमें वृद्धि न हो तबतक हम पालथी लगाकर बैठे रहें और अपनी आँखोंसे जो नुकसान हुआ देखें उसके निवारणका कोई उपाय न करे तो हम मूर्ख कहलायेंगे।

वल्लभभाईने प्रान्तीय कमेटीकी[2] ओरसे एक कोष खोला है। मणिलाल कोठारी[3] उसमें पैसा जुटानेके कार्यमें रत हो गये है और उन्हें परोपकारी धनिकोंने ३०,००० रुपये

१. गुजरातमें जुलाई, १९२७ में आई भयंकर बाढ़की ओर संकेत है।

२. गुजरात प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी।

३. सौराष्ट्रके कांग्रेसी कार्यकर्त्ता जिन्होंने गुजरात प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीके मन्त्रीकी हैसियतसे अनेक वर्षों तक काम किया।

दे भी दिये हैं, ऐसा उनका तार है। मेरा अनुरोध है कि सब सज्जन उसमें जितना दे सकते हों दें। जहाँ आसमान ही फट पड़ा हो वहाँ थेगली लगानेसे क्या होगा तथापि यदि सब लोग यथाशक्ति मदद देंगे तो जनताको उससे कुछ सान्त्वना अवश्य मिलेगी। समिति जिनतक पहुँच सकेगी उनतक अवश्य पहुँचेगी। अभी तो किसका कितना और क्या नुकसान हुआ है इसका अनुमान भी वह शायद ही लगा पाई होगी। ये पंक्तियाँ लिखते समय – एक अगस्तके दिन – इस विपत्तिसे सम्बन्धित जिस ब्योरेका ज्ञान मुझे नहीं है वह इनके प्रकाशित होनेतक तो प्रकट हो ही चुकेगा। उसे समझकर जिन्होंने अबतक कुछ नहीं दिया वे इसमें पैसा दें और इस सहायता-कार्यमें अपना योगदान दें।

[गुजरातीसे]
नवजीवन, ७-८-१९२७

२३७. पत्र : मीराबहनको

१ अगस्त [१९२७]

चि० मीरा,

तुम्हारा हिन्दीमें लिखा हुआ सुन्दर पत्र मिला। तुम्हारी समय-तालिका अत्यन्त व्यस्ततापूर्ण जान पड़ती है। अलग-अलग कार्योंके लिए निर्धारित घंटोंके बीच तनिक भी अवकाश नहीं रखा गया है। मेरा खयाल है, सभीपर यही बात लागू होती है। अगर आदमी एकाग्रचित्त रहे, व्यर्थ ही परेशान न हो और बेकारकी बातों अथवा विचारोंमें समय नष्ट न करे तो ऐसे कार्यक्रमपर अमल किया जा सकता है।

तुम जानती ही हो कि इस समय गुजरात बहुत संकटमें है। वर्षासे बहुत नुकसान हुआ है, और आश्रम भी इससे अछूता नहीं रहा। मुझे एक तार भी मिला है, जिसमें बताया गया है कि कान्तिलाल, जो हिसाब-किताब देखता था, नदीमें डूब गया। यह आत्महत्याका मामला जान पड़ता है। मुझे अभीतक निश्चित ब्योरा नहीं मिला है।

मैं कलसे चार दिनतक बंगलोरसे बाहर रहूँगा; शुक्रवारकी शामको लौटूंगा।

अभी बस इतना ही।

सस्नेह,

बापू

अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ५२५६) से।
सौजन्य : मीराबहन

२३८. पत्र : वी० एस० श्रीनिवास शास्त्रीको

बंगलोर
१ अगस्त, १९२७

प्रिय भाई,

दक्षिण आफ्रिकासे लिखा आपका पहला पत्र पाकर बहुत प्रसन्नता हुई। पत्रके आशापूर्ण स्वरसे मुझे बड़ा ढाढ़स बँधता है।

देखता हूँ, ट्रान्सवालके कारण आपको कुछ परेशानी हो रही है। लेकिन मुझे पूरी उम्मीद है कि वहाँके लोग अन्ततः आपकी बात जरूर सुनेंगे।

सामाजिक कार्यकर्त्ताओंके लिए आपकी अपीलपर मेरा ध्यान गया है। यहाँसे तो आपको ज्यादा कार्यकर्त्ता नहीं मिलेंगे। मुझे मालूम है कि देवधर एक दल भेजने की, बल्कि खुद ही उसे लेकर जानेकी भी सोच रहे हैं। लेकिन मेरा अपना खयाल तो यह है कि यह मुख्यतः स्थानीय कार्यकर्त्ताओंका काम है। लेकिन, चाहे यह काम स्थानीय कार्यकर्त्ता करें, या यहाँसे बुलाये गये कार्यकर्त्ता, यह काम करने लायक है और इसे करना ही है। इस सारी शरारतके लिए भारत सरकार, नेटाल सरकार और बागान-मालिक कुछ कम दोषी नहीं हैं। एक बार एक तरहका वातावरण बन जानेपर उसकी जगह फिर दूसरी तरहका वातावरण तैयार करना बहुत कठिन होता है। भगवान् आपको सब-कुछ करनेकी शक्ति प्रदान करे।

अपने स्वास्थ्यका ध्यान रखिएगा।

एन्ड्रयूजने आपके खर्चके बारेमें मुझे तार[1] भेजा था। उसके सम्बन्धमें यहाँ क्या-कुछ किया गया, यह सब आपको बताना बेकार होगा। लेकिन मुझे पता चला है कि आपको सारी आवश्यक सहायता मिलेगी। इस सम्बन्धमें मुझे तो कोई चिन्ता नहीं रह गई है। जहाँतक आपका सम्बन्ध है, आप किस ढंगसे रहते हैं, इससे कोई फर्क पड़नेवाला नहीं है। प्रभाव तो आपकी अपनी आन्तरिक शक्तिका ही होगा और उस शक्तिका प्रभाव दरअसल होने भी लगा है।

मेरा स्वास्थ्य ठीक चल रहा है और लगभग अक्टूबरके अन्ततक मेरे दक्षिण भारतमें ही रहनेकी सम्भावना है। यह पूरा महीना तो मैसूरमें ही लग जायेगा; उसके बाद ही यहाँसे निकल पाऊँगा।

सस्नेह,

आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ९२२९) से।
सौजन्य : एस० आर० वेंकटरमण।

१. देखिए "पत्र : जे०.बी० पेटिटको", ५-७-१९२७।

२३९. पत्र: हिन्दी साहित्य सम्मेलनके मन्त्रीको

बेंगलोर

१ अगस्त, १९२७

श्रीमान् मन्त्री महोदय,

पंडीत हरिहर शर्माको आपने भेजा हुआ श्रा० क्र० १०[1] का पत्रकी नकल मुझको भेजी गई है। शर्माजी रामेश्वरम् गये हैं।

आपके तार और पत्रके उत्तरमें मैंने कई दिनोंके पूर्व निवेदन कीया है, उसका आपके तरफसे कुछ प्रत्युत्तर न होनेके कारण मैं समझता हुं आपको वह उत्तर नहिं मीला होगा।

यदि वह उत्तर नहिं मीला है तो आपको फिर निवेदन करूं। जो कुछ परिवर्तन मद्रास हिंदी प्रचार कार्यालयमें हुआ है वह मेरी सम्मतिसे और जाहेरमें हुआ है। इसमें शर्माजीका कुछ दोष नहिं है। शर्माजीको आप अवश्य आपका नौकर न समझें। कार्यालयकी मालेकीके बारेमें आप और मेरे बीचमें बड़ा मतभेद है। यह बात पुराणी है। आपको मैंने वर्धा[ा]में भी इस बातका स्पष्टीकरण कर दीया था। यदि आप उचित समझे तो इस मतभेदका निर्णय पंच द्वारा हो सकता है। यदि पंचके पास जानेमें सम्मेलनका अहित समझे तो आप जो कुछ कोरटके इलाज लेना उचित समझे मेरे पर ही लेनेकी कृपा करें।

आपका,

एस० एन० १२७७७ की माइक्रोफिल्मसे।

२४०. पत्र: रामदास गांधीको

मौनवार, १ अगस्त, १९२७

चि० रामदास,

देवदासको लिखा तुम्हारा पत्र मैंने पढ़ा है। कान्ति और रसिकके बारेमें तुम जो देखो वह मुझे लिखना, किन्तु मैं चाहता हूँ कि तुम उसकी चिन्ता बिलकुल न करो। हमें ऐसे कामकी तनिक भी चिन्ता नही करनी चाहिए जो हमारे जिम्मे न हो फिर चाहे वह महत्त्वपूर्ण या निजी ही क्यों न हो। धर्मकी, 'गीता' की यही शिक्षा है। या तो किसी कामको निजी माना ही न जाये या फिर जो काम हमारे हाथमें है उसीको निजी मानकर उसमें तन्मय हो जायें। यदि हमारे पिता हमसे दूर हों

१. तदनुसार २३ जुलाई, १९२७।

२. ६ जुलाई, १९२७।

तो हमें उनकी भी चिन्ता नहीं करनी चाहिए और ईश्वरपर विश्वास रखकर यही मानना चाहिए कि वह तो सभीका रक्षक है और अपने कार्यके लिए जिसे चाहता है उसे साधन बना लेता है। यदि हमारे पिता हमारे पास ही हों और कोई अन्य व्यक्ति उनकी सेवामें नियुक्त हो तथा हमारे हिस्से कोई दूसरा काम आ जाये तो ऐसी स्थितिमें भी उपर्युक्त नियम ही लागू होता है। जो नियम पिताके सम्बन्धमें लागू होता है वही भाई, भतीजे और स्त्री-पुत्रादिके सम्बन्धमें भी समझना चाहिए। अपना काम सीखनेके लिए तथा आश्रमके वातावरणसे जितना ग्रहण कर सको उतना ग्रहण करनेके लिए ही तुम वहाँ हो। ऐसा करते हुए तुम्हें और भी बहुतसी बातें देखने-सुननेको मिलेंगी किन्तु तुम्हारा कर्त्तव्य इतना ही है कि अपनी इस जानकारीको तुम जिम्मेदार व्यक्तितक पहुँचा दो। इसी प्रकार हम समाजमें शान्तिपूर्वक रह सकते हैं। यदि दुनियाके ठेकेदार बननेकी कोशिश करेंगे तो मारे जायेंगे।

वहाँके ईश्वरीय कोपका तुम्हें ठीक अनुभव हुआ।[1] इस बारेमें मुझे लिखना। अपने स्वास्थ्यके बारेमें भी पूरी खबर देना।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरी।
सौजन्य: नारायण देसाई

२४१. पत्र: आश्रमकी बहनोंको

श्रावण सुदी ४ [१ अगस्त, १९२७]

बहनो,

इस बार डाक अनियमित हो गई है। सोमवारकी डाक ठेठ कल पहुँची। आशा है इतनी बरसात और बाढ़के कारण तुममें से कोई घबराई नहीं होगी। ऐसे मौके यह परीक्षा लेनेके लिए आते हैं कि हमने जिन्दगीका सबक सीखा है या नहीं। हमारी कोशिशोंके बावजूद यदि आश्रम बह जाये तो क्या और रह जाये तो क्या? और जो बात आश्रमकी है, वही अहमदाबादकी है। आश्चर्यकी बात तो यह है कि इतनी बाढ़ आनेपर भी इतना बच गया। मगर हमें क्या पता कि बचनेमें लाभ है या बह जानेमें? बचा सो गया और गया सो बचा हो तो किसे मालूम? मगर बचना सबको अच्छा लगता है, इसलिए बच जाते हैं तो ईश्वरका उपकार मानते हैं। किन्तु सच पूछा जाये तो हर हालतमें और हर समय उसका एहसान ही मानना चाहिए। इसीका नाम समत्व है।

१. भीषण वर्षा और बाढ, देखिए अगला शीर्षक।

मगर कान्तिलाल गये उसका क्या?[1] इस दु:खको कैसे सहा जाये? उसे भी सहन करना चाहिए। बुद्धि कर्मानुसारिणी होती है। कान्तिलालने अगर आत्महत्या ही की हो तो उसका कारण मैं कुछ-कुछ समझता हूँ। मगर हमें कारणकी झंझटमें नहीं पड़ना चाहिए। हम तो यही निश्चय करें कि आत्महत्या हरगिज न करेंगे। आत्महत्या करनेवाले संसारकी झूठी चिन्ता करनेवाले होते हैं या फिर दुनियासे अपने दोषोंको छिपानेवाले होते हैं। हम जो नहीं हैं वह दिखनेका ढोंग कभी न करें; जो न हो सके उसे करनेका मनोरथ न करें।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ३६६०) की फोटो-नकलसे।

२४२. भाषण: आरसीकेरे जंकशनपर लम्बानियोंके समक्ष[2]

२ अगस्त, १९२७

आप सबको खद्दर पहनना चाहिए; इसे आपके भाई तैयार करते हैं और इसको खरीदनेपर आप जो भी पैसा खर्च करते हैं उससे उनका पेट भरता है। आप सबको शराब पीना और मांस खाना छोड़ देना चाहिए। यदि आप मेरे प्रति सच्चा प्रेम और स्नेह-भाव रखते हैं तो आपको मेरी बात सुननी चाहिए और मेरे कहे अनुसार चलना चाहिए। आपको यह बात भी अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए कि जब आपकी बिरादरीमें किसी लड़कीका एक बार विवाह हो जाये तब फिर अपने पुराने रिवाजके अनुसार आपमें से किसी दूसरेको उसे उठा ले जाकर उससे पुनः विवाह नहीं करना चाहिए। यह रिवाज बहुत बुरा और हिन्दू धर्मके विरुद्ध है।

लम्बानी स्त्रियोंकी ओर मुड़कर गांधीजीने कहा कि इस समय आपने जिस तरहके भारी-भरकम गहने पहन रखे हैं, उस तरहके गहने आपको नहीं पहनने चाहिए।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, ५-८-१९२७

१. देखिए "पत्र: मीराबहनको", १-८-१९२७।
२. स्टेशन प्लेटफॉर्मपर, मैसूर प्रदेश लम्बानी संघकी ओरसे दिये गये अभिनन्दन-पत्रके उत्तरमें।

२४३. पत्र : सी० वी० वैद्यको[1]

कुमार पार्क, बंगलोर
३ अगस्त, १९२७

प्रिय श्री वैद्य,

मुझे आपका पत्र बहुत पसन्द आया। मैं जानता हूँ कि आपमें एक न्यायाधीशका सहज गुण है और आप एक लम्बे अर्सेतक ग्वालियरमें न्यायाधीशके पदपर रहे हैं। लेकिन आपके पत्रने मेरे मनमें उत्सुकता जगा दी है, और मुझे आपकी पुस्तकोंको पढ़नेके लिए अवश्य ही समय निकालना पड़ेगा। वे मराठी में लिखी हुई हैं या अंग्रेजीमें? हमारे यहाँके जो अच्छे लेखक हैं, और मैं बहुत दिनोंसे जानता हूँ कि उनमें एक आप भी हैं, उनकी कृतियोंसे भी मैं बिलकुल अनभिज्ञ हूँ। आशा है, आप मुझे इसके लिए क्षमा करेंगे। क्या करूँ, किस्मतने मुझे इस तरहकी चीजें पढ़नेका कभी समय ही नहीं दिया।

आप बताते हैं कि आपने अपनी पुस्तकोंमें यह दिखाया है कि वैदिक कालमें हमारे पूर्वज गो-मांस खाया करते थे। क्या विद्वान् लोग आपके इस निष्कर्षसे सहमत हैं?

हृदयसे आपका,

श्रीयुत सी० वी० वैद्य
सदाशिव पेठ
पूना सिटी

अंग्रेजी (एस० एन० १२६२९) की फोटो-नकलसे।

२४४. पत्र : डॉ० गुरुदास रायको

कुमार पार्क, बंगलोर
३ अगस्त, १९२७

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मुझे पूरा यकीन है कि आप इंग्लैंड और स्काटलैंडमें यूरोपीय कपड़ेके बिना काम चला सकते हैं, बशर्ते कि आप साथमें हाथ-कते काफी ऊनी वस्त्र ले जायें। यदि आप काश्मीरके हाथ-कते अत्यन्त सुन्दर ऊनी वस्त्र खरीदें, तो हो सकता है कि वे जरा ज्यादा मँहगे पड़ें। आप शायद नहीं जानते होंगे कि जब पण्डित मोतीलाल नेहरू स्कीन-कमेटीके[2] सदस्यके रूपमें यूरोप जानेकी तैयारी कर रहे थे, उस समय उन्होंने अपनी सारी ऊपरी पोशाक, यहाँतक कि जाकिट भी हाथ-कते

१. ३ जुलाई, १९२७के श्री वैद्यके पत्रके उत्तरमें (एस० एन० १२६२७)।

२. भारतमें सैनिक महाविद्यालयकी स्थापनाके सवालकी जाँच करनेके लिए सर एण्ड्रयू स्कीनकी अध्यक्षतामें नियुक्त कमेटी।

ऊनी कपड़ेकी ही बनवाई थी। आप चाहें तो हाथ-कते नेपाली कम्बल खरीद सकते हैं। वे काफी गर्म रहेंगे और खूब सस्ते भी पड़ेंगे।

आप कितने कपड़े ले जायें यह कह सकना तो बहुत मुश्किल है। लेकिन यदि मुझे वहाँ जाना होता तो मैं आधा दर्जन कम्बल साथ ले जाता। मेरा खयाल है कि आप पतलून पहनेंगे? आपको पतलून आदिके लिए उपयुक्त ऊनी कपड़ा मिल सकता है। आप खादी प्रतिष्ठानवाले सतीशबाबूसे पूछ देखिए; यदि वे आपके लिए ऊपरी पोशाक-की व्यवस्था न कर सकें तो मैं जानता हूँ कि बम्बईका खादी भण्डार तो अवश्य कर सकता है, क्योंकि भण्डारने इंग्लैंड जानेवाले अनेक भारतीयोंके लिए बिलकुल ठीक ढंगकी ऊपरी पोशाककी व्यवस्था की है। खादी प्रतिष्ठानका पता आपको मालूम ही होगा — १७०, बहू बाजार स्ट्रीट, कलकत्ता। खादी भण्डारका पता है, प्रिन्सेस स्ट्रीट, बम्बई। अन्दर पहने जानेवाले कपड़े तो आप मजेमें सूती खादीसे बनवा सकते हैं।

हृदयसे आपका,

डॉ० गुरुदास राय
बालागढ़ डाकघर
हुगली जिला, बंगाल

अंग्रेजी (एस० एन० १४२०५) की फोटो-नकलसे।

२४५. पत्र : वी० वी० दास्तानेको

कुमार पार्क, बंगलोर
३ अगस्त, १९२७

प्रिय दास्ताने,

तुम्हारा पत्र मिला। यह विचार मुझे पसन्द आया कि खादीके प्रसार-प्रचारके लिए मालवीयजी महाराष्ट्रका दौरा करें; लेकिन मैं नहीं चाहता कि अभी तुम उन्हें कोई कष्ट दो। उनका स्वास्थ्य तो इन दिनों वैसे ही खराब है, इसलिए हमें किसी भी हालतमें उनपर कोई बोझ डालनेका भागी नहीं बनना चाहिए। और फिर, कार्य-कर्ताओंको काम करनेके लिए उत्साहित करनेके उद्देश्यसे जनतामें और जागृति फैलाने तथा बड़ी-बड़ी सभाएँ करनेकी भी अभी आवश्यकता नहीं है। मेरे दौरेसे जनतामें जो जागृति और स्फूर्ति आई थी, अभी तो तुम्हें उसीको स्थायी उपलब्धियोंका रूप प्रदान करनेका पूरा समय नहीं मिल पाया है। जिन विभिन्न खादी-केन्द्रोंकी स्थापना की गई है, इस समय तो तुम्हें उन्हींकी नींव मजबूत करने और उनका विकास करनेकी आवश्यकता है। तुम विभिन्न केन्द्रोंके कामपर नजर रखो और खुद पिम्प-राला केन्द्रकी नींव सुदृढ़ करो। इस सबका मतलब यह है कि इस समय तुम्हें किसी बड़े दौरेका प्रबन्ध करनेके कामसे मुक्त रहना है। और तीसरे, यदि प्रोफेसर काले, 'केसरी' से सम्बन्धित व्यक्ति तथा अन्य लोग, जो अभीतक खादीसे दूर रहे हैं, खादीकी

ओर आकृष्ट होने लगे हैं तो हमें चाहिए कि हम उनमें इस भावनाको चुपचाप बढ़ने दें। उसके लिए मेरे अथवा तुम्हारे प्रोत्साहनकी कोई जरूरत नही है; लेकिन यदि हमें इस क्षेत्रमें कोई ठोस उपलब्धि मिलती है, अर्थात् यदि हम खादीका उत्पादन बढ़ाते हैं, चुपचाप प्रयत्न करते हुए नियमित रूपसे उसकी किस्ममें सुधार करते जाते हैं, उसकी कीमतें कम करनेमें सफल होते हैं और बराबर अधिकाधिक नौजवानोंको रोजगार देते रहते हैं तो उनकी भावनाको निश्चय ही प्रोत्साहन मिलेगा। तुम्हें प्रेरणा और उत्साह देनेवाली बातोंके बिना भी काम चलाना सीखना चाहिए। चाहिए न?

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजी (एस० एन० १९७९६) की माइक्रोफिल्मसे।

२४६. पत्र: ए० रंगस्वामी अय्यंगारको

कुमार पार्क, बंगलोर
३ अगस्त, १९२७

प्रिय रंगस्वामी,

पता नही, आपने नागपुर सत्याग्रहके सम्बन्धमें जो गश्ती चिट्ठी भेजी है, आप उसके उत्तरकी अपेक्षा रखते है या नहीं। लेकिन यदि अपेक्षा रखते हो तो 'यंग इंडिया' में हाल ही में लिखे अपने लेखमें[1] मैंने जो-कुछ कहा है, उससे ज्यादा कहनेकी मैं नहीं सोच सकता। उस लेखमें जो-कुछ मैंने लिखा है, यदि उससे ज्यादा जानकारीकी आवश्यकता हो अथवा यदि कमेटी मुझसे और प्रश्न पूछना चाहती हो तो मैं खुशीके साथ उनके उत्तर दूँगा। अगर मेरा ही खयाल करके मेरे मतको कोई महत्त्व न देना सम्भव हो तो इस पत्रका उपयोग किसी अहम दस्तावेजके रूपमें करनेकी जरूरत नहीं है।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १४२०६) की फोटो-नकलसे।

१. देखिए खण्ड ३३, "नागपुर सत्याग्रह" १९-५-१९२७।

२४७. पत्र : आर० बी० ग्रेगको

कुमार पार्क, बंगलोर
३ अगस्त, १९२७

प्रिय गोविन्द,

तुम्हारा पत्र मिला। अभी मैं दौरेपर हूँ और यह पत्र बोलकर लिखवा रहा हूँ। यह दौरा मैं रुक-रुककर सुविधापूर्वक कर रहा हूँ ताकि मेरे स्वास्थ्यपर कोई बुरा असर न पड़े। वैसे अब मेरा स्वास्थ्य दिन-ब-दिन बेहतर होता जा रहा है।

तुम्हारी कृतिकी टाइप की हुई प्रतिकी मैं उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा करूँगा। मिलनेपर मैं निश्चय ही उसे अच्छी तरह पढ़ जाऊँगा और अपना मत तुम्हें सूचित कर दूँगा। यदि कोई सुझाव देना हुआ तो वह भी दूँगा।

तुम्हारा जो ऑपरेशन होनेवाला है, उसके बारेमें मुझको यह बतानेकी क्या जरूरत है कि तुम उसका खर्च क्यों नही दे सकते? मैं बड़ी आसानीसे इसका प्रबन्ध कर सकता हूँ। लेकिन तुम इसे दिसम्बरतक टालना क्यो चाहते हो? क्या यह बेहतर नही होगा कि तुम पन्द्रह-एक दिनोके लिए कोटगढ़के कामसे फुरसत निकालकर ऑपरेशन अभी करवा लो, अथवा ऐसा कहूँ कि जितनी जल्दी मैं डॉ० दलालसे इसके लिए समय ले सकूं उतनी जल्दी करवा लो? तुम्हारा उत्तर मिलनेपर मैं उन्हें लिखूँगा।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजी (एस० एन० १४२०८) की फोटो-नकलसे।

२४८. पत्र : कृष्णदासको

हासन
३ अगस्त, १९२७

प्रिय कृष्णदास,

तुम बंगलोरसे जाते समय जो पत्र छोड़ गये थे, वह मुझे मिल गया था। उसमें उत्तर देने लायक कोई बात नही थी। सुब्बैयाको लिखा तुम्हारा पत्र मैंने अब पढ़ लिया है और मुझे यह जानकर बहुत खुशी हुई कि तुम मुजफ्फरपुरमें सफल रहे। तुम जो पत्र छोड़ गये थे उसमें तुमने दरभंगासे फिर पत्र लिखनेका वादा किया था। वह पत्र अभीतक नही आया है। मैं यह जाननेके लिए बहुत उत्सुक हूँ कि तुम भले-चंगे हो और मैं गुरुजीके स्वास्थ्यके बारेमें भी सब-कुछ जानना चाहता हूँ।

यह पत्र मैं हासन नामक स्थानसे बोलकर लिखवा रहा हूँ, हम कल शाम यहाँ आये हैं। हम ५ को फिर बंगलोर पहुँचेंगे और ९ तारीखको पुनः अपना दौरा शुरू

कर देंगे। मैं अभी मैसूरका ही दौरा कर रहा हूँ। इस महीनेके अन्ततक तो बंगलोरसे अपना डेरा स्थायी तौरपर नहीं ही उखाड़ूँगा। लेकिन यदि कार्यक्रममें कोई परिवर्तन हुआ तो तुम्हें सूचित कर दूंगा।

गुजरातमें जो भयानक वर्षा हुई है, उसके बारेमें तो तुमने सब-कुछ सुना ही होगा। आश्रमको भी इससे थोड़ा-बहुत नुकसान पहुँचा है। बेचारा कान्तिलाल, जो आश्रममें हिसाब-किताब देखनेका काम करता था, डूबकर मर गया। ऐसा लगता है कि उसने आत्महत्या कर ली, लेकिन अभी मुझे पूरा ब्योरा नहीं मिल पाया है। मैं उसकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ।

हृदयसे तुम्हारा,

श्रीयुत कृष्णदास
मार्फत श्रीयुत सतीशचन्द्र मुकर्जी
लालबाग
दरभंगा
बिहार

अंग्रेजी (एस० एन० १४२०४) की फोटो-नकलसे।

२४९. पत्र: शंकरको

हासन
३ अगस्त, १९२७

प्रिय शंकर,

तुम्हारा पोस्टकार्ड मिला। देखता हूँ कि तुम तो वहाँके वातावरणके अभ्यस्त हो चुके हो। यदि वहाँ बहुत ज्यादा सर्दी महसूस हो तो बदनको ठीकसे ढँककर रखना। लेकिन, वहाँकी आबोहवा बहुत सेहतमन्द है और वह तुम्हें अवश्य रास आयेगी।

मुझे समय-समयपर पत्र लिखते रहना।

हृदयसे तुम्हारा,

श्रीयुत शंकर,
मार्फत मथुरादास त्रिकमजी
पंचगनी कैसल
पंचगनी

अंग्रेजी (एस० एन० १४२०७) की माइक्रोफिल्मसे।

२५०. पत्र : जयन्ती-समारोह समितिके मन्त्रीको

हासन
३ अगस्त, १९२७

प्रिय मित्र,

आपने मुझे महाराजाकी रजत जयन्ती-समारोहके[1] लिए जो निमन्त्रण भेजा है उसके लिए मैं आपका आभारी हूँ। मैं आशा करता हूँ कि समारोह इस अवसरकी महत्ताके अनुरूप ही होगा।

हृदयसे आपका,

मन्त्री
जयन्ती-समारोह समिति
बंगलोर सिटी

अंग्रेजी (एस० एन० १४२०९) की माइक्रोफिल्मसे।

२५१. भाषण : हासनके टाउन हॉलमें[2]

३ अगस्त, १९२७

भाइयो,

आपने मुझे मानपत्र भेंट किये हैं और एक थैली भी भेंट की है; इसके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। आपके खादी-कार्यके बारेमें जानकर और आपकी खद्दर सहकारी समितिका उद्‌घाटन करनेका निमन्त्रण पाकर भी मुझे बहुत खुशी हुई। आप आदि कर्नाटकोंके उत्थानके लिए जो काम कर रहे हैं, उसके लिए भी मुझे आपको धन्यवाद देना चाहिए। मगर धन्यवाद देनेके साथ-साथ मैं आपको यह भी याद दिला दूँ कि सिर्फ स्कूल आदिकी स्थापना करके ही इस महान् कार्यको पूरी तरहसे निष्पन्न नहीं किया जा सकता। असलमें तो यह कार्य आपको अपने दिलमें करना है। आपको अस्पृश्यता-सम्बन्धी विचारोंको अपने मनसे बिलकुल निकाल देना चाहिए। आपको मालूम होना चाहिए कि शास्त्रोंमें ऐसे विचारोंके लिए कोई आधार नहीं है। जब आप सबमें खादीका उपयोग करनेसे भ्रातृत्वकी भावना आ जायेगी, जब आप लोग परस्पर यह महसूस करने लगेंगे कि हम सब – हिन्दू और मुसलमान, स्त्री और पुरुष – एक हैं, जब आप सबमें एकताकी वह भावना आ जायेगी तभी हमारी

१. ८ अगस्त १९२७ को।
२. जिला बोर्ड और हासन नगरपालिका द्वारा भेंट किये गये मानपत्रोंका संयुक्त रूपसे उत्तर देते हुए।

स्थिति और देशकी दशा सुधरेगी, उससे पहले नहीं। यही खादीकी शक्ति है और जब आप खादी सहकारी समितिकी स्थापना कर रहे हैं तो आप सबको उसके जरिये इस महान् कार्य में सहयोग देना चाहिए। वह कार्य है अपने देशके भूखे लोगोंको भोजन देना, क्योंकि जब आप खद्दर खरीदते हैं तथा दूसरोंसे भी खद्दर खरीदवाते हैं तो उससे निश्चित हो जाता है कि जिन्होंने उसे बुना और काता, उन्हें मजदूरी और भोजन मिलेगा। क्या आप इस कार्यमें मदद देंगे?

मैं आपसे मददके लिए अनुरोध कर रहा हूँ। आप बुकर टी० वाशिंगटनके टस्केजी संस्थानकी पद्धतिपर आदि कर्नाटकोंके लिए संस्थान स्थापित करनेका जो प्रयत्न कर रहे हैं, उसके लिए मैं एक बार फिर सन्तोष प्रकट करता हूँ। भाइयो, अब सारे देशमें ऐसी अनेक संस्थाओंको स्थापित करनेकी आवश्यकता है। सेवा और बलिदान-के क्षेत्रमें जनरल आम्स्ट्रांग और बुकर टी० वाशिंगटनके नाम बड़े आदरके साथ लिये जाते हैं। मैं चाहता हूँ कि आप उनके कार्यकी महत्ताको समझें और महसूस करें। मेरी इच्छा है कि हमारे शिक्षित मित्र इसे समझें। मैं यह भी चाहता हूँ कि वे इस बातको महसूस करें कि लोगोंको बौद्धिक संस्कार देते समय उन्हें श्रमकी महत्ताके सिद्धान्तको भी उनके मनमें भरना चाहिए, जैसा कि उन संस्थाओंमें किया जाता है। कृपया इसे याद रखें। आपने मेरा जो स्वागत किया है, उसके लिए मैं आप सबको धन्यवाद देता हूँ।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, ५-८-१९२७

२५२. प्रदर्शनीमें बिक्री

श्रीयुत सीताराम शास्त्रीने निम्नलिखित तार भेजा है:

> **बंगलोर प्रदर्शनीमें आन्ध्र शाखाकी दुकानपर, ४,०८५ रुपयेका कपड़ा प्रदर्शित; बिक्री — फुटकर १,७०५ रुपये और थोक १,५१६ रुपये।**
>
> **मसूलिपटम सत्यनारायण सूचित करते हैं कि प्रदर्शनीकी दुकानपर ३,०५१ रुपयेका कपड़ा प्रदर्शित; बिक्री — फुटकर ९८० रुपये, थोक ९६६ रु०।**

इसका मतलब हुआ कुल मालका ८० प्रतिशत और ६३ प्रतिशत। यह प्रतिशत सचमुच बहुत अच्छा है।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, ४-८-१९२७

२५३. भारतीय जहाजरानी

सिन्धिया जहाजरानी कम्पनी (सिन्धिया स्टीम नैविगेशन कम्पनी) के नये जहाज 'जलवाला' के जलावतरणकी विधि श्रीयुत विट्ठलभाई पटेलके हाथो सम्पन्न हुई, लेकिन इससे किसी प्रकारके राष्ट्रीय गौरव अथवा आनन्दकी भावनाका संचार नही होता। यह तो हमें मात्र हमारी अवदशाका ही स्मरण दिलाती है। हमारे तुच्छ बेड़ेमें एक छोटा-सा जहाज और जुड़ जानेसे क्या फर्क पड़ता है? और तब तो हमारा दु:ख और भी बढ़ जाता है जब हमें खयाल आता है कि हमारे व्यापारिक जहाजी बेड़ेको किसी भी क्षण ऐसे लड़ाकू बेड़ेका रूप दिया जा सकता है जिनका उपयोग खुद हमारी स्वतन्त्रता अथवा ऐसे अन्य राष्ट्रोकी स्वतन्त्रताको कुचलनेके लिए किया जाये जिनके साथ भारतका कोई झगड़ा नही है, बल्कि जिनकी आकाक्षाओंके प्रति उसकी सम्पूर्ण सहानुभूति भी हो सकती हैं; उदाहरणके लिए चीनको ले सकते है। चीन द्वारा अपनी स्वतन्त्रताके लिए शस्त्र उठानेकी हिम्मत करने पर उसे सजा देनेके लिए यदि सरकार किसी भी स्वदेशी कम्पनीके किसी भी जहाजमें अपनी सेनाको वहाँतक ले जानेके लिए उसका उपयोग करना चाहे तो इससे उसे रोकनेवाली कोई चीज नही है। इसलिए इस अवसरपर अगर विट्ठलभाई पटेलको, जो केन्द्रीय विधान सभाके अध्यक्ष होनेके बावजूद आजतक प्रबल देश-भक्त बने हुए है, भारतके व्यापारिक बेड़ेको जान-बूझकर नष्ट कर देनेके प्रयत्नोंका इतिहास स्मरण हो आया तो इसमें आश्चर्यकी कोई बात नही। उन्होंने श्रोताओंको बताया कि:

> एक समय ऐसा था जब भारतीय जहाज-मालिकोंके उत्तम कोटिके जहाज —जिनका निर्माण, संचालन और व्यवस्था सब भारतीय ही करते थे— भारतके मूल्यवान उत्पादनोंको लेकर दूर-दूरके देशोमें जाया करते थे। . . . लेकिन, कुछ परिस्थितियोंके कारण भारतीयोंके लिए इस उद्यममें लगे रहना अत्यन्त कठिन हो गया और यह उद्योग समूल नष्ट हो गया तथा आगे चलकर भारतीयोके लिए इस क्षेत्रमें अपनी विगत गरिमाको पुनः प्राप्त कर सकना बहुत मुश्किल हो गया गया।

वक्ताने उक्त परिस्थितियोके बारेमें कुछ बताना योग्य नही समझा, किन्तु उन्होने आगे कहा:

> यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि पिछले ५० वर्षोंमें भारतमें कुछ जहाजरानी कम्पनियाँ खोली भी गई, लेकिन भाड़ा-दरोंमें कमी करनेके तरीके तथा अन्य ऐसे उपायोंसे, जिनके बारेमें जितना-कम कहा जाये उतना ही अच्छा है, इनके अस्तित्वको समाप्त कर दिया।

लेकिन, अगर किसी रोगीको किसी बातसे थोड़ी-सी भी आशा बँधती है, वह तनिक-सी भी शक्तिका अनुभव करता है तो उसे इससे बड़ा सन्तोष मिलता है, और उसके शरीरमें जरा-सी अप्रत्याशित शक्ति आ जानेपर उसके परिवारके सभी सदस्य उसके साथ मिलकर खुशियाँ मनाते हैं। उसी प्रकार सिन्धिया जहाजरानी कम्पनीके इस नये प्रयासके प्रथम परिणाम 'जलबाला' के उद्घाटनपर विट्ठलभाई पटेलको भी आनन्द और आशाका अनुभव हुआ। अब हम यही आशा करें कि यह जहाज ऐसे ही अनेक जहाजोंकी निर्माण-शृंखलाकी पहली कड़ी साबित होगा और निकट भविष्यमें भारतके जहाज-निर्माणके इस पुराने उद्योगका पुनरुद्धार किया जा सकेगा। हमें यह आशा भी करनी चाहिए कि किसी दिन कोई देशभक्त भारतके बनाये जहाजकी जलावतरण-विधि ऐसी शुभ परिस्थितियोंमें सम्पन्न करेगा जब इस तरहका कोई खतरा नहीं रहेगा कि उसका उपयोग खुद हमारे खिलाफ अथवा किसी अन्य राष्ट्रके विरुद्ध लड़ी जानेवाली लड़ाईमें किया जायेगा और न यही भय रहेगा कि उसका प्रयोग किसी अन्य देशका शोषण करनेके लिए किया जायेगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ४-८-१९२७

२५४. सांस्कृतिक कताई

एक अंग्रेज मित्रने २१ अप्रैलके 'स्कॉट्समैन' की एक कतरन भेजी है। इसका शीर्षक है "लयका महत्त्व" (वैल्यू ऑफ रिदम)। शिल्प-शिक्षकोंके संस्थानके तत्त्वावधानमें एडिनबरामें हुए ईस्टर सम्मेलनमें कताईका प्रदर्शन भी किया गया था। उपर्युक्त लेखमें प्रदर्शनका विवरण दिया गया है। डॉ० जॉन गनने इस सभाकी अध्यक्षता की थी। श्री विलियम किर्कनैस एफ० एस० ए० (स्कॉट०) ने कताईपर भाषण दिया था। मैं यहाँ 'स्कॉट्समैन' में प्रकाशित दिलचस्प रिपोर्टको शब्दशः उद्धृत कर रहा हूँ:[1]

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ४-८-१९२७

१. यहाँ नहीं दी जा रही है। वक्ताने चंचल चित्तवाले बच्चोंको शिक्षित करनेके लिए कताईकी बहुत प्रशंसा की थी।

२५५. गाँवोंमें मवेशियोंकी दशाका सुधार

इस सप्ताह मैं गाँवोमें मवेशियोकी दशामें सुधार करनेकी एक सहकारी योजनापर विलियम स्मिथ द्वारा लिखी टिप्पणी[1] प्रकाशित कर रहा हूँ। ७ जुलाईके अंकमें[2] प्रकाशित पिंजरापोल-सम्बन्धी योजना तो ऐसी है जिसे लगभग तुरन्त लागू किया जा सकता है। कारण यह है कि उसके लिए जिन साधनोंकी आवश्यकता है वे सब तैयार पड़े हैं और जो-कुछ करना है वह इतना ही कि उनमें जरूरी सुधार और वृद्धि कर दी जाये। लेकिन, व्यापारके लिए घी तैयार करनेवाले क्षेत्रोसे बाहर पड़नेवाले और शहरोंसे दूर बसे गाँवोंके लिए सुझाई इस योजनाको कार्य-रूप देना जरा कठिन है। लेकिन सच्चा सुधार तो इन असंख्य गाँवोंसे ही शुरू करना है, क्योंकि आर्थिक तंगी और लोगोंके पशु-पालनसे अनभिज्ञ होनेके कारण यही गाँव कसाईखानोंको वध करनेके लिए पशु देनेवाले असली केन्द्र हैं। अगर कोई ध्यानसे विचारकर देखे कि इतने सारे पशु भारतके असंख्य कसाईखानोंमें किस प्रकार पहुँचते है तो वह पायेगा कि एजेंट लोग, जिनका एकमात्र धर्म, चाहे जैसे भी हो, जल्दीसे-जल्दी अधिकसे-अधिक पैसा बनाना है, शहरोसे दूर बसे इन्ही गाँवोंसे कसाईखानोके लिए जानवर खरीदते हैं। गो-सेवक बनना कोई आसान बात नही है और कोई चाहने-भरसे ही गो-सेवक नही बन सकता। उसे अपनी कलाका उतना ही अध्ययन करना है जितना कि किसी डाक्टर या वकील या इंजीनियरको करना पड़ता है और उसे परिश्रम तो इनसे भी अधिक करना है। इसलिए जो लोग पशुओं और भारतीय गाँवोंके कल्याणके इच्छुक हैं, उन्हे कुछ चुने हुए गाँवोंमें श्री स्मिथकी योजनाको लागू करनेके विचारसे ध्यानपूर्वक उसका अध्ययन करना चाहिए। ऐसा नही है कि जरूरतके मुताबिक इसमें कोई फेर-बदल नही किया जा सकता। पशु-पालन और सहकारी योजनाओंसे सर्वथा अनभिज्ञ लोगोंके लिए यह एक आदर्श योजनाका काम दे सकती है। और इसमें सरकारी सहकारिता विभागके उल्लेखसे किसी असहयोगीके भी बिदक उठनेकी जरूरत नही है। इस समय राष्ट्रीय असहयोग आन्दोलन-जैसी कोई चीज तो चल नही रही है। जब वह आन्दोलन चल रहा था, तब भी उसका सम्बन्ध सभी सरकारी विभागोसे नहीं था। उन दिनों भी बहुत-से ऐसे असहयोगी थे जो सहकारी समितियोको त्याज्य नहीं मानते थे, और आज भी मैं ऐसे अनेक व्यक्तियोंको जानता हूँ जो अपने-आपको असहयोगी बताते हैं, हालांकि वे सक्रिय सहकारी संगठनोके सदस्य हैं। लेकिन जो गो-सेवक सरकार द्वारा कानूनन स्थापित किसी सहकारी समितिका लाभ उठाना नही चाहता वह भी इस योजनाका उपयोग कर सकता है। बल्कि मैं तो ऐसा सोचता हूँ कि क्या यही बेहतर नही होगा कि कुल मिलाकर

१. यहाँ नहीं दी जा रही है।

२. देखिए "पिंजरापोलोंके समक्ष उपस्थित काम" ७-७-१९२७।

सरकारी सहकारी समितिका आश्रय लिये बिना काम चलाया जाये। अगर सहकारी विभाग पूरे मनसे सलाह-मशविरा देनेको तैयार हो तो वह उससे सलाह ले सकता है और अगर उस विभागमें साँड़ उपलब्ध हों तो साँड़ोंका उपयोग भी कर सकता है। असल बात तो यह है कि ग्रामवासियोको पशुओंकी अवस्था और नस्ल सुधारनेकी शिक्षा देनेका काम शुरू कर देना चाहिए। जो योजना सुझाई गई है, उससे उस दिशामें सहायता मिलती है। श्री स्मिथका कहना है कि अगर इस योजनाको ठीक ढंगसे लागू किया जाये तो पशुओंकी उपयोगिता और उनसे मिलनेवाले दूधकी मात्रा दुगुनी हो सकती है।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, ४-८-१९२७

२५६. गुजरातकी सहायता करें

गर्वीला गुजरात आज धूलि-धूसरित है। अबतक जो सिर्फ देना ही जानता था, उसे आज खुद ही भिक्षा-पात्र उठाना पड़ रहा है। अबतक अखबारी खबरोके सिवाय मुझे दूसरे जरियोंसे कोई सूचना नही मिली है। यद्यपि श्रीयुत वल्लभभाई पटेल अपने निजी तारोंके द्वारा मुझे बुरीसे-बुरी खबरके लिए तैयार कर रहे थे, मगर वे पूरा ब्योरा नहीं भेज सके। हासनसे लौटनेके बाद[1] अभी-अभी उनका एक तार मिला है। वह मैं नीचे दे रहा हूँ:

> नर्मदा और काठियावाड़के उत्तरमें स्थित गुजरातका अधिकांश भाग उजड़ गया है। लोग बेघर हो गये हैं। ढोर और मालमता बह गया है। कुल नुकसानका अन्दाजा तो करोड़ोंके हिसाबसे ही लगाया जायेगा। बड़ौदाके अलावा और सब जगह प्राण-हानि कम हुई है। १०० इंच वर्षा होनेसे खेड़ाकी हालत सबसे बुरी है। बोरसदसे अभीतक कोई सम्पर्क स्थापित नहीं किया जा सका है। गुजरात और काठियावाड़के सभी हिस्सोंसे मददकी दर्दनाक माँग आ रही है। २ अगस्तको एक सार्वजनिक सभा हुई, और अकाल-निवारण-समिति बनाई गई। अहमदाबाद जिलेमें बाढ़-पीड़ितोंको अन्न बाँटनेके लिए तीन लाख रुपये और टूटे-उजड़े घरोंको फिरसे बसानेके लिए कर्ज देनेके लिए दस लाख रुपये इकट्ठे करने हैं। प्रान्तिक समितिके अधीन प्रान्तीय स्तरपर सहायताका काम अलग होना है। अमृतलाल ठक्कर, लक्ष्मीदास पुरुषोत्तम और नरहरि परीखके अधीन क्रमशः आनन्द, नडियाद और अहमदाबादमें सहायता-केन्द्र खोले गये हैं। मगनलाल गांधी बोरसद जाकर वहाँसे सम्पर्क स्थापित करेंगे। दूसरे स्थानोंमें

१. गांधीजी हासनसे ४ अगस्तकी शामको लौटे थे।

भी आदमी भेजकर सहायताका काम शुरू कर देनेकी कोशिश की जा रही है। अमृतलाल सेठ काठियावाड़के इलाकेमें पहुँचने और वहाँ सहायताका प्रबन्ध करनेकी कोशिश कर रहे हैं। तात्कालिक समस्या तो लोगोको समयपर खानेकी चीजें उपलब्ध कराकर उनके प्राण बचानेकी है। यहाँ उपलब्ध साधन अपर्याप्त हैं। आप फौरन ही सारे हिन्दुस्तानके नाम तत्काल सहायताके लिए अपील निकालिए।

नडियादसे श्रीयुत फूलचन्द शाहने खेड़ाके सम्बन्धमें विस्तृत तार भेजा है। भड़ौंच-निवासी डॉ० चन्दूलालने नाराजगी-भरा तार भेजकर मुझसे पूछा है कि गुजरातका दु.ख दूर करनेके लिए मैं क्या करनेकी सोच रहा हूँ। अखबारी खबरोको देखकर मैं स्तम्भित रह गया हूँ। जो लोग दक्षिणकी बाढके बारेमें कुछ जानते होंगे, वे लोग किसी हदतक कल्पना कर सकते हैं कि गुजरातके कुछ हिस्सोमें कैसी भयानक तबाही हुई होगी। खेड़ा की समृद्धिका श्रेय उसके मेहनती और सूझ-बूझवाले किसानोको है। अपनी सारी फसलको बह जाते और खेतोमें अपने मूल्यवान और सुन्दर ढोरोंकी लाशोको सड़ते देखना उनके लिए कोई हँसी खेल नही है।

मैं जानता हूँ कि करोड़ों रुपयोकी फसल, ढोर और सम्पत्तिकी क्षति तथा साथ ही खेतोंकी खादके बह जानेसे जो नुकसान हुआ है उसे हम लोग पूरा नही कर सकते। मगर जिनका सर्वस्व जाता रहा है, उनके मनके क्लेशको मानवीय सहानुभूतिसे बहुत हदतक दूर किया जा सकता है। मुझे पूरी आशा है कि जिन लोगोकी नजरोंसे यह अपील गुजरेगी, वे समर्थ होगे तो अपने हिस्सेकी सहायता तुरन्त भेजेंगे।

श्रीयुत पटेल तपे-परखे सिपाही हैं और सेवाके सिवा उनका कोई दूसरा धन्धा नही है। उनके अधीन योग्य कार्यकर्त्ताओका एक दल है। इसलिए दाताओको धनके बेकार खर्च किये जाने या गबन कर लिये जानेका कोई डर नहीं होना चाहिए। वाजिब तौरसे जाँचा गया हिसाब प्रकाशित किया जायेगा और हर रकमकी प्राप्ति 'यंग इंडिया' और जरूरी होनेपर 'नवजीवन' में भी स्वीकार की जायेगी। वे सहायताका काम इस उद्देश्यसे स्थापित की जानेवाली दूसरी समितियोके साथ मिलकर ही करेंगे। असली बात तो मदद देनेकी है। इसलिए जिस दाताको इस तरहका जो संगठन पसन्द हो और जिसपर उसका सबसे अधिक विश्वास हो, वह उसी सगठनको चन्दा दे। हाँ, लोग इस बातका ध्यान रखें कि वे जो-कुछ दे रहे है वह उनकी सामर्थ्यको देखते हुए न्यूनतम नही, बल्कि अधिकतम हो।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, ११-८-१९२७

२५७. पत्र : एच० हारकोर्टको[1]

स्थायी पता : साबरमती आश्रम
४ अगस्त, १९२७

प्रिय मित्र,

आपके स्नेहपूर्ण पत्रके लिए धन्यवाद। आप शायद नहीं जानते कि जो न्यायाधीश मेरे मुकदमेकी सुनवाई कर रहा था, उसके सामने मैंने वही विचार पेश किये थे, जो आपने व्यक्त किये हैं, अर्थात् यह कि यदि मेरे दृष्टिकोणको स्वीकार नहीं किया गया तो सरकारको मुझे गिरफ्तार करके जेल भेजना ही होगा।[2] मेरे सामने सरकारको इन दोमें से कोई एक काम करनेकी चुनौती देनेके अलावा और कोई सम्मानपूर्ण रास्ता नहीं था, और मेरे विचारसे जो लोग सही या गलत, अपने-आपको शोषित-प्रताड़ित मानते हैं, वे हिंसात्मक विद्रोह न करें, इसका भी एकमात्र विकल्प यही था। लेकिन अपने जीवनका अधिकांश समय मैंने दो समुदायोंके बीच भेद करनेवाली चीजोंके बजाय उन्हें एक-दूसरेके निकट लानेवाली चीजोंकी खोज निकालनेमें लगाया है और आज भी मैं वही कर रहा हूँ। लेकिन मेरे अनुभवने मुझे बहुत साफ बता दिया है कि प्रत्येक ईमानदार व्यक्तिके जीवनमें ऐसे अवसर आते ही हैं जब वह अपने-आपको ऐसे मुक़ामपर पाता है, जहाँसे अपनी राह बदल देना उसके लिए जरूरी हो जाता है, और लाचार होकर इस तरह राह बदलनेको ही मैंने 'असहयोग' कहा है।

हृदयसे आपका,

श्री एच० हारकोर्ट
११९, जिप्सी हिल
लन्दन एस० ई० १९

अंग्रेजी (एस० एन० १२५३५) की फोटो-नकलसे।

२५८. पत्र : जी० ए० पाटकरको

स्थायी पता : साबरमती आश्रम
४ अगस्त, १९२७

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। एक निधि खोलनेका आपका विचार प्रशंसनीय है; लेकिन मुझे भय है कि वह चलेगा नहीं। जिस व्यक्तिको प्रतिमाह सिर्फ ५० रुपये मिलते हों, उसके लिए उनमें से ५ रुपये बचा सकना कोई छोटी बात नहीं है, और मैंने देखा है जो लोग बचाकर दे सकते हैं, उनमें से भी बहुत ही कम लोग ऐसे होते हैं जो

१. श्री हारकोर्टके १२ जुलाई, १९२७ पत्रके उत्तरमें।
२. देखिए खण्ड २३, पृष्ठ १२४।

नियमित रूपसे चन्दा देते हैं। इसके अलावा आपके सुझाये ढंगसे यदि जरूरी पूंजी इकट्ठी कर भी ली जाये तो उससे उद्योगोंकी स्थापना करना कोई आसान बात नहीं है। उद्योग स्थापित करनेके लिए पूंजीके अतिरिक्त और बहुत-सी चीजोंकी जरूरत होती है। तीसरी बात यह है कि स्वास्थ्य बिगड जानेकी वजहसे मैं काम-काजमें पहलेसे बहुत-कम समय लगा पाता हूँ और जितना लगा सकता हूँ, वह सारा खादी-कार्यमें ही चला जाता है। इसलिए यदि आपके मित्रोंको अपने हिस्सेका चन्दा इस राष्ट्रीय उद्योगके लिए देनेसे सन्तोष हो, तो मुझे उसे ग्रहण करके बड़ी प्रसन्नता होगी — लेकिन किसी और उद्योगके लिए नहीं।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत जी० ए० पाटकर
बम्बई

अंग्रेजी (एस० एन० १४२११) की फोटो-नकलसे।

२५९. पत्र : स्वामीको

[४ अगस्त, १९२७के पश्चात्][1]

तुम्हारे दो पत्र मिले। एक तुम्हें मुक्त करनेके विषयमें और दूसरा गुजरात-में आई बाढके विषयमें।

तुम्हारी मुक्तिकी माँगका काकाके[2] साथ हुए झगड़ेसे कोई सम्बन्ध नहीं है, यह मैं समझ गया हूँ और विश्वास करता हूँ। यदि मुझे ऐसा लगा कि तुम्हें मुक्त करना ही होगा तो मेरे वहाँ पहुँचे बिना ऐसा करना सम्भव नहीं है। कारण, अपने स्वभावके अनुसार ऐसा कोई निर्णय करनेके पहले मुझे मुख्य व्यक्तियोंकी जानकारी तो कर ही लेनी चाहिए। तभी मुझे यह सूझेगा कि क्या किया जा सकता है। भाई मोहनलालके विषयमें मैं कुछ जानता नहीं हूँ। तुम्हें पूरा विश्वास हो कि तुम उक्त काम करते हुए और अपनी इच्छानुसार यहाँ-वहाँ घूमते रहनेके बावजूद जिम्मेदारीके साथ यहाँका काम चलाते रहोगे तो मुझे इसमें कोई आपत्ति नहीं है। किन्तु जबतक तुम जिम्मेदारी स्वीकार न करो तबतक मेरा निश्चिन्त रहना तो तभी हो सकता है जब मैं भाई मोहनलालकी जानकारी ले लूँ और यह काम उन्हींको सौंप दूँ या देख-रेखके लिए किसी अन्य व्यक्तिको नियुक्त कर दूँ। इस समय तो इन दोमें से, मुझे लगता है, कुछ भी नहीं किया जा सकता। अभी तो न्यासका मामला भी अधरमें लटका हुआ है।

कामके सम्बन्धमें तुम यहाँ आ ही रहे हो, इसलिए जब तुम आओगे तब ज्यादा चर्चा करूँगा। काका प्रसन्न हैं। मैं तीन दिन बाहर घूम-फिरकर आया हूँ। इस

१. पत्रमें बाढ़की चर्चा और इसी तारीखको यंग इंडियामें प्रकाशित वल्लभभाईकी अपीलके आधारपर।
२. दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर।

यात्रामें काकाको साथ नही ले गया था। काकाके विषयमें मेरी ओरसे तुम निर्भय रहना, क्योंकि मैं किसीसे जबरदस्ती कुछ करा लेनेवाला व्यक्ति नही हूँ। यदि तुम आओगे और मुझे समझाओगे तो मैं तुम्हारे द्वारा सुझाये विचारको पूरा-पूरा महत्त्व दूँगा और यदि तुम नही आये तो तुम्हारे इस विचारको जितना समझा हूँ उस सीमा-तक उसे कार्यान्वित करनेका प्रयत्न करूँगा। यदि तुम्हारा यह आशय हो कि काकाके मार्गदर्शन करनेका अधिकार ही मुझे नही है तो मै इस नीतिको स्वीकार नही कर सकता। यह मैंने इसलिए कहा कि तुम्हारे पत्रमें मुझे ऐसी ध्वनि प्रतीत हुई है। तुम मित्रताका जो अर्थ करते मालूम पड़ते हो वह मुझे जँचता नही है। मित्रताका ऐसा ही कुछ अर्थ बचपनमें मै करता रहा। यदि मेरी यह धारणा ठीक है कि तुम भी ऐसा ही अर्थ कर रहे हो तो मै सोच-समझकर यहाँतक कह सकता हूँ कि यह धर्मविरुद्ध है। मैंने 'नवजीवन' में ही कही यह लिखा है कि इस जगत्में ईश्वरके सिवा दूसरा कोई मित्र हो ही नही सकता। हम सब तो साथ-साथ काम करनेवाले बैल-मात्र हैं, बस इतना ही है कि कोई हमारे ज्यादा निकट है और कोई कम। किन्तु यह तो मैंने एक नया ही विषय छेड़ दिया। इसे जाने दो। अन्तमें इतना ही कहना है कि यदि मैं जितना सम्भव हुआ उतना अनुकूल होकर तुम्हें सन्तोष दे सका तो काफी है।

अब मलाबारसे जो पैसा मिला है उसके सम्बन्धमें मेरी राय यह है कि हमें इस पैसेका उपयोग गुजरातमें नही करना चाहिए। हमें यही समझकर चलना चाहिए कि मेरे द्वारा प्रकाशित सूचनाकी अवधि जिस समय बीत गई उस समय वह पैसा भी खत्म हो गया। मेरी समझमें शुद्ध नीति तो यही है। उस समय उस पैसेका पूरा-पूरा उपयोग नहीं हुआ था और वह बच गया था, यह एक आकस्मिक वस्तु है। यह अलग बात है कि परिस्थितिसे विवश होकर और अपनी कमजोरीके कारण हम दूसरी तरह व्यवहार करें। मैं तो केवल अपना मत प्रकट कर रहा हूँ। किन्तु, यदि तुम्हें या वल्लभभाईको मेरा यह मत पसन्द न आये तो तुम मुझे जरूर लिखना और बताना कि क्या किया जाना चाहिए। ऐसे काममें संकोचको कोई स्थान नही हो सकता। हमारे बीच तो होना ही नहीं चाहिए।

अब वहाँ आनेके विषयमें: तुम्हारा पत्र पढ़कर एक बार तो मुझे ऐसा लगा कि चल पड़ूँ। किन्तु पौन घंटा भी नहीं हुआ होगा कि मेरा मोह दूर हो गया। मैं यात्रा करने लायक नही हूँ। अपने शरीरको मै ठीक पहचानता हूँ। एकान्तमें बैठकर विचार करने और काम करनेकी शक्ति तो अभी पर्याप्त मात्रामें शेष है। किन्तु समुदायमें बैठकर बातचीत करनेकी, एकके-बाद-एक लोग आते जायें और मैं उनका मार्गदर्शन करूँ, उन्हें समझाऊँ, रिझाऊँ, नाराज होऊँ और इस तरह उनसे काम कराऊँ — इसकी शक्ति फिलहाल तो चली गई समझना चाहिए। अन्तमें शायद यह हो सके। इस समय तो आरामसे पड़े रहने और सोनेकी शक्ति ही बढ़ती जा रही है। ऐसी स्थितिमें मुझे लगता है कि मेरा वहाँ आना, आश्रममें बैठना और स्वयंसेवकोंको इकट्ठा करना सम्भव नही होगा। इसके सिवा मैं ऐसा

भी मानता हूँ कि घूमे-फिरे बिना काम नही चल सकता। घूमे-फिरे बिना बैठे-बैठे नये आदमियोंसे काम लेनेका कौशल तो मुझमें कभी था भी नहीं। यदि वल्लभभाईकी अपीलके[1] बावजूद हमें काफी स्वयंसेवक नहीं मिलते तो हमें अपनी मर्यादा समझ लेनी चाहिए। यदि ज्यादा पैसा इकट्ठा हो जाये तो हम उसे पड़ा रहने दें या जो दूसरे लोग हमसे ज्यादा काम कर सकते हों उन्हें दे दें। दूसरी ओर यदि हमें ऐसा लगता हो कि हमारी इतनी प्रतिष्ठा है कि हम पैसा तो इकट्ठा कर सकते है किन्तु कार्यकर्ता इकट्ठा करनेकी शक्ति हममें नही है तो उचित यही होगा कि हम चुपचाप बैठे रहें, पैसेकी माँग करके अपनी प्रतिष्ठाको बेचनेसे बचें। तुम शायद जानते न होगे कि मलाबारमें सभीके पास अतिरिक्त पैसा बच गया था, उसका कारण स्वयंसेवकोंका अभाव नही था। कारण यह था कि जिस समय सब-कुछ जड़-मूलसे उखड़ जाता है, नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है, उस समय लोगोंके काम करनेका ढंग कुछ अलग होता है और वे जिनकी बरबादी हुई है उनका खयाल भी नही करते। दुनियामें ऐसी शक्ति नही है जो करोड़ों आदमियोंके हुए नुकसानकी भरपाई कर दे। इसलिए हम यहाँ-वहाँ कुछ पैवन्द ही लगा सकते है और मैं मानता हूँ कि हमें यही करना चाहिए। इसका ध्यान अवश्य रखना चाहिए कि ऐसा करते हुए धूर्त और चोर इकट्ठा किया हुआ पैसा खा न जायें, रक्षक भक्षक न बन जायें। यदि हम इतना कर सकें तो मानना चाहिए कि गंगा नहा आये। ऐसी बाढ देखकर तो लगता है कि हम बचपनमें जो कहते थे वह वेद-वाक्य ही है — यानी, यह ईश्वरका गेंदबल्लेका खेल है। एक दिन तो ऐसा भी होगा जब आजसे भी ज्यादा बड़ी बाढ, प्रलय आयेगी। उस समय भी कुछ लोग तो बाकी बच ही जायेंगे, जो गये हुओंका शोक नही करेंगे, जो हुआ है उसपर हँसेंगे और वंशवृद्धि करते रहेंगे। इसका यह अर्थ नही करना चाहिए कि मैं ऐसा कहना चाहता हूँ कि हम निर्दय हो जायें या लोगोंकी राहतके लिए कुछ भी न करें तो भी कोई बात नही है। नही, मेरा यह मतलब बिलकुल नहीं है। किन्तु मैं यह जरूर कहना चाहता हूँ कि लोगोंका जो नुक-सान हुआ है उस सारे नुकसानकी जिम्मेदारी हम उठा लें, इसकी बिलकुल जरूरत नही है। इस नुकसानके कारण लोगोंको जो दुःख हुआ है उस दुःखको दूर करनेमें हमसे जितना कुछ हो सकता हो उतना करके हम सन्तुष्ट हो सकते हैं। मैं इस बातको बिलकुल नही मानता कि हमें इस अवसरका उपयोग करके स्वयंसेवकोंकी एक सेना खड़ी करनी चाहिए और एक बार पुनः गुजरातको जगानेका कार्य करना चाहिए। जब ठीक घडी आयेगी, लोगोंमें वृद्धि होगी और विधिका यह विधान होगा कि इस कार्यका निमित्त हमें ही बनना है, तो आज कुछ हो या न हो, उस समय न केवल गुजरात जागेगा बल्कि सारा भारत ही जाग उठेगा। किन्तु यह तो मेरे लिए श्रद्धाकी बात है। उसका विचार करनेके लिए यह उपयुक्त स्थान नहीं है। इस समय तो इतना ही काफी है कि वर्तमान परिस्थितियोंमें हम जो-कुछ कर सकते हों उतना कर डालें।

१. ४-८-१९२७के यंग इंडियामें प्रकाशित।

इससे ज्यादा तो मुझे और कुछ सूझता नहीं है।

[गुजरातीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरी।
सौजन्य : नारायण देसाई

२६०. पत्र : मीराबहनको

कुमार पार्क, बंगलोर
५ अगस्त, १९२७

चि० मीरा,

तुम्हारा पत्र मिला। वर्धा और साबरमतीमें तुम जो भेद करती हो, उसे मैं समझता हूँ और उसका बुरा नहीं मानता। यह जानकर खुशी हुई कि तुमने भणसालीको पत्र लिखा है। आश्रमके सम्बन्धमें तो मैंने तुम्हें जो-कुछ लिखा है, उससे आगे कहनेके लिए कुछ रह नहीं जाता।

हिन्दी सीखनेका काम तुमपर भार-रूप नहीं बनना चाहिए। तुम्हें यह मानकर नहीं चलना चाहिए कि यह तो एक ऐसा काम आ पड़ा है जिसे जैसे भी हो, पूरा करना ही है। जिस क्षण तुम्हारा मन ऊबने लगे, उसी क्षण इसे छोड़ देना चाहिए। मैं तुम्हें बता ही चुका हूँ कि मुझमें अपार धीरज है, और यदि तुम हिन्दी सीखनेका काम दो महीनेमें पूरा नहीं कर सकोगी तो इसके लिए मैं तुमसे जवाब तलब नहीं करूँगा। इस कामको तुम्हें इस तरह करना है जिससे तुम्हें आनन्द आये; और जिस क्षण तुम्हें थकावट महसूस हो, उसी क्षण तुम्हें इसे छोड़ देना चाहिए।

यदि मुझे मालूम होता कि तुम्हारे आश्रम पहुँचते ही तुम्हें क्या काम दिया जायेगा तो मैं अवश्य बता देता, लेकिन मैं खुद ही नहीं जानता। अंग्रेजी पढ़ानेका काम दिये जानेके खिलाफ तुमने जो दलील दी है, उससे मैं पूर्णतया सहमत हूँ और मैं निश्चय ही तुम्हें वह काम न देनेका प्रयत्न करूँगा। इस समय जहाँतक मैं समझ सकता हूँ, तुम्हें कोई ऐसा काम दिया जायेगा जिसे दूसरोंके साथ मिल-जुलकर करना होगा। क्योंकि मैं चाहता हूँ कि तुम भिन्न-भिन्न स्वभावके व्यक्तियोंके साथ निभा सको और चाहे जितनी भी प्रतिकूल परिस्थिति हो अपना काम कर सको। वैसे अगर तुम्हें कोई खास काम करना पसन्द हो तो अवश्य बताओ। मेरी अपनी आदत तो यह है कि मैं किसी बातको लेकर पहलेसे ही परेशान नहीं होता, जब उसके बारेमें निर्णय करनेका समय आता है, तभी उसकी चिन्ता करता हूँ। लेकिन यदि तुम इस सबके सम्बन्धमें अभीसे सोचना चाहो तो बेशक सोचो, और मेरे साथ पत्रों द्वारा विचार-विमर्श करो। किसी भी हालतमें तुमसे सलाह-मशविरा किये बिना तो मैं तुम्हें कोई काम देता नहीं। मैं तुम्हारी पसन्द तो जानना ही चाहूँगा। चाहे वह अभी हो या तुम्हारे आश्रम पहुँचनेके बाद।

जबतक तुम्हें प्रेरणा नहीं मिलती तबतक राव साहबको पत्र न लिखनेका विचार ठीक ही है। कोई जल्दी नही है और जबतक तुम्हें ठीक भाषा नही सूझती, तबतक तुम्हें लिखनेकी कोई जरूरत नहीं।

मैं आज सवेरे ही दौरेसे वापस आया और तुम्हारा पत्र पाया। फिर ९ तारीखको दौरा शुरू होगा। तब मैं शायद लगभग १० दिन बाहर रहूँगा। लेकिन तुम्हारा बंगलोरके पतेपर पत्र भेजना ज्यादा ठीक रहेगा। पहले मैंने बंगलोर सिटी कहा था, लेकिन देखता हूँ, सिर्फ बंगलोर लिखनेसे तुम्हारे पत्र दो घंटे पहले पहुँचते हैं। कुमार पार्क, सिटी कार्यालय वितरण-क्षेत्रमें नही, बल्कि केन्द्रीय कार्यालय वितरण-क्षेत्रमें पड़ता है।

सस्नेह,

बापू

श्रीमती मीराबाई
वर्धा

अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ५२५८) से।
सौजन्य : मीराबहन

२६१. तार : मीराबहनको

५ [अगस्त, १९२७][1]

मीराबाई
सत्याग्रहाश्रम
वर्धा

पत्र यथासमय डाक में डाल दिया गया है।[2] सब ठीक है। प्यार।

बापू

अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ५२५७) से।
सौजन्य : मीराबहन

१. डाककी मुहरसे।
२. देखिए पिछला शीर्षक।

२६२. पत्र : मैसूरके महाराजाको

बंगलोर
५ अगस्त [१९२७][1]

प्रिय मित्र,

आपके राज्यारोहणके बाद अगला सोमवार[2] आपके जीवनका शायद सबसे ज्यादा खुशीका दिन होगा। इस अवसरपर मैं आपको किन शब्दोंमें बधाई दूँ? केवल शुभकामनाके शब्दोंसे काम नहीं चलेगा, चाहे वे शब्द कितने ही शुभेच्छापूर्ण क्यों न हों। लेकिन मुझे लगता है कि एक सच्चे मित्रके नाते मुझे इस अवसरपर कमसे-कम इतना अनुरोध तो अवश्य करना चाहिए कि आपने शहरमें रहनेवाले मध्यम-वर्गीय लोगोंके लिए जो-कुछ इतनी सफलतापूर्वक किया है, वह सब आपको अपनी निर्धनतम प्रजाके लिए भी करना चाहिए। अगले सोमवार तककी अल्प अवधिमें आप, शायद कुछ विशेष न कर सकें। लेकिन क्या शराबके व्यापारपर रोक लगा सकना असम्भव है? यह लोगोंको बरबाद कर रही है।

मैं जहाँ भी गया हूँ वहाँ मैंने आपकी उदारता और पवित्रताकी प्रशंसा ही सुनी है, इससे मुझे बहुत खुशी हुई है। लेकिन इतने अच्छे शासनमें भी शराबखोरीकी बुराई मौजूद हो, यह बात कुछ ठीक नहीं जान पड़ती।

लेकिन यह पत्र तो एक मित्र दूसरे मित्रको अपनी हार्दिक शुभकामनाएँ प्रकट करनेके लिए लिख रहा है, इसलिए मुझे इसको सर्वथा एक भाषणका रूप नहीं देना चाहिए। भगवान् आपको दीर्घायु बनाये जिससे आप अपनी प्रजाको सुखी रख सकें और अपने राज्यको हर तरहसे एक आदर्श राज्य बना सकें।

मैं सोमवारको भगवान्से प्रार्थना करूँगा कि वह आपकी समस्त सदिच्छाओंको पूरा करे।

आपका,
मित्र

[पुनश्च :]

इस पत्रकी प्राप्ति स्वीकार करनेकी कोई बाध्यता न मानें।

महाराजा मैसूर

अंग्रेजी (एस० एन० १२६३०) की फोटो-नकलसे।

१. १९२७ में इस तारीखको गांधीजी बंगलोरमें थे।

२. महाराजाके राज्यारोहणकी रजत-जयन्ती ८ अगस्त १९२७ को मनाई गई थी। इस अवसरपर गांधीजीका एक औपचारिक सन्देश भी समाचारपत्रोंमें प्रकाशित हुआ था; देखिए अगला शीर्षक।

२६३. सन्देश: रजत जयन्तीके लिए

[५ अगस्त, १९२७][1]

मुझे यह देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई है कि आजतक किसीने महाराजा साहबके विरुद्ध कभी कुछ नहीं कहा है। कभी-कभी तो मैं सोचने लगता हूँ कि कहीं ऐसा तो नहीं कि मित्रोंने किसी भी बुरी खबरको मुझतक न पहुँचने देनेके लिए साँठ-गाँठ कर रखी हो। मैंने महाराजा साहबके बारेमें जो अच्छी बातें सुनी हैं, भगवान् करे, वे सब सच्ची हों और सदा सच्ची ही रहें। मैसूरके लोगोंके साथ मैं भी कामना करता हूँ कि महाविभव दीर्घायु हों, जिससे वे दीर्घ-कालतक राज्य और प्रजाकी उचित सेवा कर सकें।

अंग्रेजी (एस० एन० १२६३०) की फोटो-नकलसे।

२६४. मूलचन्द अग्रवालके प्रश्नोंके उत्तर[1]

[५ अगस्त, १९२७][2]

[प्र० :] १. क्या आप प्रकृति, आत्मा और ईश्वर इन तीनोंके पृथक अस्तित्वमें विश्वास रखते हैं?

[उ० :] विश्वास तो अवश्य रखता हूँ, लेकिन यह 'पृथक' मेरे गले नहीं उतरता, क्योंकि यद्यपि तीनोंके नाम अलग-अलग हैं, लेकिन वे तत्त्वत: एक ही हैं।

२. आत्मा एक है अथवा अनेक? यह उस परमात्मा, अर्थात् ईश्वरका ही एक अंश है अथवा इसका अलग अस्तित्व है?

ऐसा जान पड़ता है कि आत्माएँ अनेक हैं, लेकिन इस दृश्यमान अनेकताके पीछे वास्तविक एकता छिपी हुई है।

३. यदि यह [ईश्वरका] एक अंश है तब तो उसे सम्पूर्ण ज्ञानसे युक्त होना चाहिए, सभी बुराइयोंसे रहित होना चाहिए और ईश्वरके सभी गुणोंसे विभूषित होना चाहिए — ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार अग्नि, जल अथवा स्वर्णका कोई भी कण उस सम्पूर्णके सभी गुणोंसे सम्पन्न होता है, जिससे वह विलग हुआ है।

तत्त्वत: तो आत्मा सभी बुराइयोंसे रहित है, लेकिन जिस प्रकार अपने स्रोतसे अलग हुई जलकी बूंद किसी गन्दे तालाबमें जा मिलनेपर कुछ समयके लिए उस

१. अनुमानत: यह भी उसी तारीखको लिखा गया था जिस तारीखको पिछला शीर्षक।

२. देखिए अगला शीर्षक।

तालावकी गन्दगीसे युक्त जान पड़ती है, उसी प्रकार मूल स्रोतसे अलग हो जानेपर आत्मा भी अपने परिवेशमें व्याप्त बुराई तथा अन्य सारे दोषोंकी भागीदार बन जाती है।

४. हम बहुधा देखते हैं कि मनुष्य बुरे कर्म करता है। यह बुराई कहाँसे आती है?

हमारे लिए इतना जानना ही पर्याप्त होना चाहिए कि इस संसारमें बुराई है और हमें उससे बचना है। यदि हम इसके उद्गमको जान लें तो हम सर्वशक्तिमान् ईश्वर ही न बन जायें। लेकिन इस समय तो हम गन्दे तालावमें पड़ी उस बूँदकी-सी दुर्भाग्यपूर्ण स्थितिमें हैं, और जबतक हम बुरे कर्म करते हैं तबतक हमें उनका फल भोगना ही पड़ेगा।

५. संसारमें हम भिन्न-भिन्न प्रकृतिके लोग देखते हैं। जो कर्मरत रहते हैं और सत्कार्य करते हैं उन्हें पुरस्कार मिलता है; जो गलत अथवा बुरे कार्य करते हैं वे दण्डित किये जाते हैं और उन्हें कष्ट भोगना पड़ता है। यह सब धर्मके सिद्धान्तके अनुरूप ही होता है। जब कोई कष्ट भोगता है — जैसे कि इस समय भारतमें किसान अथवा श्रमिक भोग रहा है — तब वह अपने पिछले कर्मोंके फलस्वरूप ही भोगता है और यही ईश्वरेच्छा है। तो फिर उसको कष्टसे उबारनेके लिए उसकी मदद करके हम ईश्वरेच्छामें हस्तक्षेप क्यों करें?

यदि भारतीय किसान भारतीय समाजसे बिलकुल अलग-थलग किसी पहाड़की चोटीपर रहता होता तो हम शायद उसकी उस स्थितिके लिए उत्तरदायी न होते। लेकिन चूँकि वह उसी समाजका अंग है जिससे हम सम्बद्ध हैं, इसलिए जिस प्रकार तालाबमें गिरी हुई जलकी वह बूँद अपने-आपको तालावकी गन्दगीके उत्तरदायित्वसे मुक्त नहीं मान सकती उसी प्रकार हम भी अपने-आपको उस किसानकी स्थितिके उत्तरदायित्वसे मुक्त नहीं रख सकते। एक सवाल यह है कि ईश्वर इस बुराईको बनाये हुए ही क्यों है। मगर मैं जब यह महसूस करता हूँ कि इसका कारण केवल उसीको मालूम है तो मुझे बड़ी प्रसन्नता होती है।

६. दूसरोंकी भलाईके लिए अपनी शक्ति खर्च करनेके बजाय क्या हमें नहीं चाहिए कि हम अपनी शक्तिको ज्ञानोपार्जनमें अथवा अपनी, या बहुत हो तो अपने रिश्तेदारों और पड़ोसियोंकी सुख-सुविधाके लिए धनोपार्जनमें लगायें और उनकी सुख-सुविधाके लिए भी सिर्फ यह सोचकर कि वे जरूरतके समय हमारी मदद कर सकेंगे?

जिस कारणसे हमें अपने रिश्तेदारोंकी मदद करनी चाहिए, ठीक उसी कारणसे क्या हमें उन शेष लोगोंकी भी मदद नहीं करनी चाहिए, जिन्हें हम अज्ञानवश अपने रिश्तेदार नहीं मानते? हम तो जलकी बूँदके समान हैं। यह बूँद अपने सुदूरस्थ पड़ोसियोंमें व्याप्त गन्दगीको भी भोगती है, क्योंकि इसके निकटस्थ पड़ोसी अपने

पडोसियोंसे प्रभावित रहते हैं और फिर वे पडोसी अपने पड़ोसियोंसे और इसी तरह सम्बन्धोंका यह क्रम सबसे दूरस्थ गन्दी बूंदतक चला जाता है।

७. आप और अन्य लोग 'स्वराज्य'की परिभाषा करते हुए कहते हैं कि स्वयंपर नियन्त्रण रखना, अपने-आपको सुधारना और अच्छा बनाना ही स्वराज्य है; और दूसरी ओर यह भी स्पष्ट ही है कि यदि व्यक्ति अपने-आपपर नियन्त्रण रखे, अपनेमें सुधार करे तो समाज अथवा राष्ट्र खुद-ब-खुद सुधर जायेगा, क्योंकि राष्ट्र व्यक्तियोंसे ही बना है।

यह बात बिलकुल सही है कि आत्म-शासनका ही नाम स्वराज्य है।

अंग्रेजी (जी० एन० ७६५) की फोटो-नकलसे।

२६५. पत्र : मूलचन्द अग्रवालको

बेंगलोर
श्रावण शुक्ल ८ [५ अगस्त, १९२७][1]

भाई मुलचंदजी,

आपके प्रश्नोंका[2] उत्तर 'यं० इं०' में देनेकी आवश्यकता नहिं समजता हुं। इससे कुछ और पूछना है तो पूछीये।

आपका,
मोहनदास

जी० एन० ७६५ की फोटो-नकलसे।

१. गांधीजी १९२७ में इस तारीखको बंगलोरमें थे।
२. देखिए पिछला शीर्षक।

२६६. पत्र : डब्ल्यू० ल्यूतॉस्लॉवस्कीको

स्थायी पता : साबरमती आश्रम
६ अगस्त, १९२७

प्रिय मित्र,

अब मैं 'यंग इंडिया' में[1] आपके प्रश्नोंके उत्तर देने जा रहा हूँ, और यदि आप आगे और प्रश्न पूछना चाहते हों तो पूछनेमें संकोच न कीजिएगा।

स्वास्थ्यकी रक्षाके लिए आपने जो तीन नियम बताये हैं, वे मुझे पसन्द आये। दो को तो मैं अच्छी तरह समझता हूँ। क्योंकि मैं खुद ही व्यर्थ चिन्ता करनेमें विश्वास नहीं करता और हमेशा सोनेके लिए समय निकालनेकी कोशिशमें रहता हूँ तथा मुझमें काफी हदतक लगभग चाहते ही सो जानेकी क्षमता भी है। उपवासकी बात भी मैं समझता हूँ, लेकिन मैं उस तरहसे उपवास नहीं करता, जिस तरहसे आप करते जान पड़ते हैं। आपका कहना है कि आप हर समुद्र-यात्रापर जानेसे पहले १० या १५ दिन उपवास रखते हैं। इसे जरा साफ करके समझानेकी जरूरत है। १० या १५ कहनेसे संख्याका स्पष्ट निर्देश नहीं मिलता। क्योंकि, जो व्यक्ति उपवास रखता है, उसके लिए १० दिन या १५ दिन एक ही बात नहीं है; ५ दिनकी कमी-बेशी उसके लिए बहुत मानी रखती है—कमसे-कम मेरा तो यही अनुभव है। और यह उपवास क्या है? क्या आप इस उपवासके दौरान पानीके अलावा और कुछ नहीं लेते, फल या दूध कुछ भी नहीं? क्या आपने उपवाससे पहले और उपवासके बादका अपना वजन लिख रखा है? आपने कितनी बार ऐसे उपवास रखे हैं? अब आपका वजन क्या है और 'हर समुद्र-यात्रा' से आपका क्या अभिप्राय है? उसकी अवधि कितनी होती है? उदाहरणके तौरपर, यदि आप एक दिनके लिए समुद्र-यात्रा-पर जाते हैं, क्या तब भी आप उपवास रखते हैं? आप कहते हैं कि बहुत ज्यादा व्यस्त रहनेपर आप दोपहरके करीब केवल एक बार भोजन करते हैं। उस भोजनमें क्या-क्या चीजें होती हैं? और क्या आप सवेरे अथवा शामको पानीके अलावा और कोई पेय नहीं लेते, न कोई फल या दूध, कुछ नहीं लेते? फिर आप आगे कहते हैं कि आप तभी उपवास करते हैं जब आपका वजन बहुत बढ़ जाता है। तो क्या आपके कहनेका तात्पर्य यह है कि प्रत्येक समुद्र-यात्रासे पहले आपका वजन बहुत ज्यादा बढ़ जाता है? और फिर आपका वजन बढ़ क्यों जाता है, जबकि स्पष्टतः जान तो यही पड़ता है कि आप अल्प भोजन करनेवाले व्यक्ति हैं? और जब आप काम-काजमें बहुत व्यस्त नहीं होते, उस समय आप दिनमें कितनी बार भोजन करते हैं?

१. देखिए "अनेकतामें एकता", ११-८-१९२७।

फिर आपने कहा है कि आप अपना पेट साफ करनेके लिए हर रोज कमसे-कम ५ गैलन पानीका प्रयोग करते हैं और जबतक पानी बिलकुल साफ और स्वच्छ रूपमें बाहर नहीं आने लगता तबतक इसे जारी रखते हैं। आपने यह भी कहा है कि जब आपका वजन बहुत बढ़ जाता है तब आप ऐसा करते हैं। पानीके प्रयोगसे आपका क्या अभिप्राय है? क्या यह एनिमा है अथवा जब आप दिनमें एक बार भोजन कर रहे होते हैं तब भी ५ गैलन पानी पीते हैं? यदि आप पानी पीते हैं तो इसे पेशाबके रास्ते बाहर निकालते हैं अथवा पाखानेके रास्ते? मेरा और मेरे जिन मित्रोंने लम्बे अर्सेतक उपवास किया है, उनका अनुभव तो यह है कि उपवास करने पर, एनिमा लेनेके अलावा और किसी भी स्थितिमें, पानीको पाखानेके रास्तेसे बाहर नहीं निकाला जा सकता; उसे तो पेशाबके रास्तेसे ही निकालना पड़ता है। शायद आप जानते होंगे कि उपवास अथवा आहार-सम्बन्धी समस्त प्रयोगोंमें, चाहे वे स्वास्थ्यके लिए किये जाते हों अथवा आध्यात्मिक विकासके लिए, मेरी गहरी अभिरुचि है।

हृदयसे आपका,

प्रोफेसर डब्ल्यू० ल्यूतॉस्तॉवस्की
जेजीलोन्स्का ७ एम० २, विलनो
(पोलैंड)

अंग्रेजी (एस० एन० १२५१३) की फोटो-नकलसे।

२६७. तार: जमनालाल बजाजको

[६ अगस्त, १९२७को अथवा उसके पश्चात्][1]

जमनालालजी
सत्याग्रहाश्रम
साबरमती

१४ तारीखको इलाहाबादमें होनेवाली हिन्दी सम्मेलनकी बैठकमें तुम्हारी उपस्थिति अनिवार्य समझता हूँ। तुम्हें अन्य सदस्योंसे भी जानेके लिए कहना चाहिए।

बापू

अंग्रेजी (एस० एन० १५१७२) की फोटो-नकलसे।

१. साधन-सूत्रमें गुजरातीमें लिखी एक टिप्पणीसे प्रकट होता है कि यह तार उसी दिन भेजा गया था जिस दिन अगले दो तार भेजे गये।

२६८. तार: सरोजिनी नायडूको[1]

[६ अगस्त, १९२७ को अथवा उसके पश्चात्][2]

सरोजिनीदेवी
ताजमहल

वल्लभभाईके साथ बराबर सम्पर्क बनाये हुए हूँ। अपने वहाँ आनेकी आवश्यकताके बारेमें उनसे सलाह कर रहा हूँ।

गांधी

अंग्रेजी (एस० एन० १५१७३) की फोटो-नकलसे।

२६९. तार: वल्लभभाई पटेलको

[६ अगस्त, १९२७ को अथवा उसके पश्चात्]

वल्लभभाई

सरोजिनीदेवीका कहना है कि लोगोंको नैतिक प्रोत्साहन देनेके लिए मुझे वहाँ आना चाहिए। क्या मेरा आना नितान्त आवश्यक है? मैं अब भी सक्रिय रूपसे कुछ काम करने अथवा बैठकों आदिमें लम्बी बातचीत करनेमें असमर्थ हूँ।

बापू

अंग्रेजी (एस० एन० १५१७३ ए) की फोटो-नकलसे।

१. यह तार ६ अगस्त, १९२७ को प्राप्त श्रीमती सरोजिनी नायडूके इस तारके उत्तरमें भेजा गया था: "प्रिय बापू स्वास्थ्यका खतरा उठाकर भी गुजरात अवश्य आइए। आपका आना आवश्यक। इस घोर संकटके समय लोगोंको नैतिक प्रोत्साहन और शान्ति प्रदान करें। इस निवेदनमें सभी मित्र शामिल हैं।"

२७०. एक सत्याग्रहीका देहान्त

भाई हरिलाल माणिकलाल देसाईको शायद 'नवजीवन' के सब पाठक न जानते हों। कुछ ही दिन पहले भड़ौंचमें उनका देहान्त हो गया। उनके पास रहनेवाले एक मित्र लिखते हैं कि उनके मुखपर अन्ततक प्रसन्नताकी झलक थी।

भाई हरिलालने असहयोग आन्दोलनके समय बड़ौदा हाई स्कूल छोड़ दिया था। वहाँ वे फ्रान्सीसी भाषा पढ़ाते थे। तबसे लेकर मृत्यु-पर्यन्त असहयोगपर उनका विश्वास अविचल बना रहा। उन्होंने सत्यको जैसा समझा वैसा यथाशक्ति उसका पालन करनेका प्रयत्न किया। अतः मैंने उन्हें सत्याग्रही कहा था। उनकी नम्रता उनके सत्यके आग्रहको शोभान्वित करती थी। असहयोगके प्रारम्भिक कालमें वे कुछ समयके लिए मेरी यात्राओंमें मेरे साथ घूमे थे। उस समय उनकी कार्य करनेकी स्वच्छता, सूक्ष्मता और सावधानीने मुझे मुग्ध किया था। उन दिनों मेरे अनेक पत्रोंका उत्तर वे ही देते थे और ऐसी अन्य मदद भी करते थे। इस सहवासकी अवधिमें मैं देख सका था कि वे सत्याग्रह और असहयोगका अध्ययन बहुत सूक्ष्मतासे करते थे। कपडवंजमें उन्होंने केवल अपने ही प्रयत्नसे खादीका काम शुरू किया था और उसे सुशोभित किया था। अन्तिम वर्षोंमें वे भड़ौंच शिक्षा-मण्डलकी मदद कर रहे थे और इस सिलसिलेमें शिक्षणका जो भी कार्य उन्हें सौंपा जाता, उसे करते थे। सत्याग्रहका कोई शुभ अवसर आनेपर जो व्यक्ति उसमें एकदम जुट सकते हैं ऐसे जिन व्यक्तियोंके नाम मैंने अपने मनमें लिख रखे हैं उनम हरिलाल भाईका नाम भी था। निर्दय कालने उस नामको मिटा दिया है। लेकिन सत्याग्रहीको इससे भी दुःख नहीं होना चाहिए। सत्याग्रही साथी जितनी मदद जीतेजी करता है उतनी ही मरनेके बाद भी करता है। 'मरकर जीना' ही उसका महामन्त्र है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ७-८-१९२७

२७१. पत्र : मीराबहनको

७ अगस्त, १९२७

चि० मीरा,

इस बार तुम्हें ज्यादा नहीं लिख पाऊँगा, क्योंकि मेरे पास लिखनेका बहुत सारा काम पड़ा हुआ है। गुजरातकी बाढ़से उत्पन्न समस्या और मुलाकातियोंसे निबटनेमें ही मेरा सारा समय निकल जाता है।

वालुंजकरने तुम्हें जो-कुछ बताया है उसके बारेमें मैंने काकासाहबसे चर्चा की है। वे कहते हैं कि उनका मतलब यह तो बिलकुल नहीं था कि वे वालुंजकरके साथ मिलकर स्त्रियोंके लिए कोई आश्रम खोलकर उनके शिक्षणका काम करनेको तैयार और इच्छुक हैं। उन्हें यह कार्य प्रिय है; लेकिन अभी वे अपने-आपको उसके लिए तैयार नहीं मानते।

सस्नेह,

बापू

[पुनश्च :]

तुम्हारा पत्र मिला। सोमवारका पत्र यथासमय डाकमें डाल दिया गया था। हो सकता है कि तुमने पत्रपर लिखी तारीखसे अनुमान लगाया हो कि वह सोमवारका नहीं था। इसे सोमवासरीय पत्र ही मानना चाहिए। इसपर तुम रविवारकी तारीख देखोगी, क्योंकि यह कल रातको लिखा गया था। आजकल मैं मौन लेनेके बाद अक्सर रविवारकी ही रातमें अगले दिनके लिए पत्र लिख दिया करता हूँ। ऐसा मैं इसलिए करता हूँ कि सोमवारको लगातार काम न करना पड़े। बेशक तुम्हें इतना नहीं पढ़ना चाहिए जिससे तुम्हारी आँखोंपर जोर पड़े।

बापू

अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ५२५९) से।
सौजन्य : मीराबहन

२७२. पत्र : गुलजार मुहम्मद 'अकील' को

कुमार पार्क, बंगलोर
७ अगस्त, १९२७

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मुझे इस बातकी खुशी है कि आपने मुझे पत्र लिखा।

हाँ, 'रंगीला रसूल' नामक पुस्तकके बारेमें चल रहे दुर्भाग्यपूर्ण विवादसे मैं सचमुच अवगत हूँ। आप कदाचित् न जानते हो कि जब आपको इस पुस्तक और इसकी विषय-वस्तुके बारेमें जानकारी मिली, शायद उससे बहुत पहले ही यह मेरे हाथ आ गई थी। और मैंने 'यंग इंडिया' के स्तम्भोमें इसकी कड़े शब्दोंमें भर्त्सना भी की थी। इस बातको अब तीन वर्ष हो चुके हैं। इस समय मेरे पास 'यंग इंडिया' की फाइल नही है। लेकिन पुस्तक कोई हालमें प्रकाशित नही हुई है। यदि आप 'यंग इंडिया' के नियमित पाठक न हो तो मुझे बताइए। मैं प्रबन्धकसे सम्बन्धित सामग्री आपको भेजे देनेके लिए सहर्ष कहूँगा।

मैंने वर्तमान विवादमें कोई भाग नही लिया है, क्योंकि मेरा खयाल है कि इस सम्बन्धमें मुसलमान लोग जो आन्दोलन कर रहे है, वह लगभग बिलकुल गलत है। उन्होने न्यायाधीशकी[1] जो निन्दा की है, उसके लिए कोई आधार नही है। कानूनमें सशोधन करानेके लिए आन्दोलन करना सर्वथा उचित है। लेकिन आन्दोलन हो या न हो, सरकारको तो कानूनका कड़ाईसे पालन करना ही पड़ेगा।

जहाँतक इस बातका सवाल है कि किसका कितना दोष है, सचाई यह है कि जितनी और जैसी कटु तथा अश्लील बातें इस्लामके खिलाफ लिखी गई है, हिन्दू-धर्मके खिलाफ भी कमसे-कम उतनी और वैसी ही अश्लील बातें तो लिखी ही गई हैं। यह सब मैंने 'यंग इंडिया' के पृष्ठोमें बड़े स्पष्ट शब्दोमें कहा है।

मैं सभी अखबार तो नही पढ़ता। लेकिन, हिन्दुओं द्वारा सम्पादित अखबार मुझे 'रंगीला रसूल' के लेखककी कार्रवाईका जोरदार शब्दोमें अथवा किसी भी रूपमें समर्थन करते नहीं दिखाई देते, और न यही लगता है कि उन्होने किसी और तरहसे पैगम्बरके प्रति अनादरका भाव ही प्रदर्शित किया है। इस सम्बन्धमें आपके ध्यानमें जो अखबार है, यदि आप उन्हें मेरे पास भेज सके तो मैं आपका आभारी होऊँगा। अथवा यदि आप उन अखबारोके नाम और अंक-सख्या लिख भेजेंगे तो मैं स्वयं ही उन्हे मँगवा लूँगा।

मुझे यह जानकर दुःख हुआ कि आप समझते है, मैं भी साम्प्रदायिकतासे प्रभावित हो गया हूँ। जहाँतक मैं अपने-आपको जानता हूँ, मैं आपको आश्वासन दे

१. न्यायमूर्ति दिलीपसिंह; देखिए "एक पत्र", १०-७-१९२७।

सकता हूँ कि मुसलमान भाइयोंके लिए मेरे मनमें जो भाव १९२० में था, वही आज भी है, और भगवान्से मेरी यह सतत प्रार्थना है कि मेरे जीवनके अन्ततक मेरे मनमें ऐसा ही भाव बना रहे।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

श्री गुलजार मुहम्मद 'अकील'
हाथी गेट
बटाला (जिला गुरुदासपुर)
पंजाब

अंग्रेजी (एस० एन० १२३८५) की माईक्रोफिल्मसे।

२७३. पत्र : विलियम स्मिथको

कुमार पार्क, बंगलोर
७ अगस्त, १९२७

प्रिय श्री स्मिथ,

इतालवी ढंगसे बधिया करनेके सम्बन्धमें लिखा आपका पत्र और साथमें राजकीय पशु-प्रजनन फार्म, करनालके अधीक्षकका पत्र भी मिला।

मैं आपके द्वारा प्रकाशित करने लायक चीज तैयार करनेकी कोशिश करूँगा। लेकिन मुझे उम्मीद है कि आप देर होनेका बुरा नहीं मानेंगे; क्योंकि आप जानते ही हैं, मेरे पास बहुत ज्यादा समय नहीं रहता। लेकिन मैं प्रबन्धकसे ठीक-ठीक आँकड़े और ब्योरा देनेको कह रहा हूँ।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी (एस० एन० १२९२१) की माइक्रोफिल्मसे।

२७४. पत्र : य० म० पारनेरकरको

कुमार पार्क, बंगलोर
७ अगस्त, १९२७

प्रिय पारनेरकर,

साथमें दो पत्र भेज रहा हूँ। इन्हें आप अपनी फाइलमें लगा लें और जब समय निकाल सकें तब इन पत्रोंको ध्यानमें रखकर मुझे संक्षेपमें ऐसी जानकारी लिख भेजें जिसके आधारपर मैं वैसा लेख लिख सकूँ जैसा कि श्री विलियम स्मिथ चाहते हैं।

आशा है, अब वहाँका वातावरण आपको पूरी तरह रास आने लगा होगा और आप दोनो बिलकुल स्वस्थ होंगे।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत पारनेरकर
डेरी
आश्रम
साबरमती

अंग्रेजी (एस० एन० १२९२२) की माइक्रोफिल्मसे।

२७५. पत्र : सतीशचन्द्र दासगुप्तको

कुमार पार्क, बंगलोर
७ अगस्त, १९२७

प्रिय सतीश बाबू,

आपका पत्र मिला। आपको डॉ० रायसे वही सहायता लेनी चाहिए जो वे अपनी मर्जीसे खुशी-खुशी दे सकते हों। खादीको अन्ततः अपने गुणों और अपने पैरोंपर खड़ा होना है। यदि हम अपने महापुरुषोंसे सच्चा सहयोग प्राप्त कर सकें तो बहुत अच्छा; लेकिन न कर सकें तो भी हमें चिन्ता तो करनी ही नहीं चाहिए। हमें इस शाश्वत सत्यपर भरोसा रखना चाहिए कि इस दुनियामें जो-कुछ भी अपने-आपमें सही और ठीक है और जिसको एक जीवन्त शक्तिका सहारा प्राप्त है, वह मर नहीं सकता।

आपकी कठिनाइयोंको मैं अच्छी तरह समझ सकता हूँ। और यदि मेरे पास रुपयोंसे भरी थैली हो तो आपकी आर्थिक कठिनाईको दूर करनेके लिए मैं उसे

तुरन्त एक्सप्रेस पार्सलसे भेज दूँ; लेकिन मुझे भी कुछ मिलनेकी बहुत ज्यादा उम्मीद नही है। इन हिस्सोंमें जो-कुछ भी मैं इकट्ठा कर पाऊँगा, वह सब तो यहीके विकास-कार्यमें लगा देना होगा। इसलिए बंगालको आर्थिक सहायता देनेका केवल एक ही रास्ता है कि जब आप तैयार हों तब मैं बंगाल आऊँ और चन्दा इकट्ठा करनेके लिए आपके साथ वहाँका दौरा करूँ।

इस साल तो कुछ बन नहीं पायेगा; और यहाँका कार्यक्रम भी इस साल पूरा नही हो सकेगा, उसे अगले वर्ष लगभग मार्चके अन्ततक जारी रखना पड़ेगा। इस बीचमें रामदासके विवाहके सिलसिलेमें केवल पन्द्रह दिन आश्रममें रहूँगा। इसलिए मै चाहता हूँ आप यह सोचकर चलना सीख लें कि आपको हमारा कारोबार, अब इस कामको कारोबारकी संज्ञा दी जा सकती है, हमारे पास जितनी पूँजी है, उसीसे चलाना है। अतएव मैं चाहूँगा कि आप, क्षितीश बाबू और आपसे सम्बद्ध अन्य लोग परस्पर मिलकर विचार-विमर्श करें और एक ऐसा कार्यक्रम तैयार करे जिससे आप समस्त चिन्ता और दुविधासे मुक्त हो जायें। एक बार जब हम अपनी मर्यादाओंको जान लेंगे तो फिर चिन्ता करना छोड़ देंगे।

आपके पत्रसे मुझे लगता है कि खास कलकत्तामें कोई कार्यालय नही होगा और सारा काम-काज सोदपुरसे ही चलाया जायेगा। कलकत्तामें एक भण्डार तो होगा, अथवा वह भी नहीं? यदि आप यह सोचते हों कि कलकत्तामें कोई भण्डार नही होना चाहिए, अर्थात् अगर वहाँ कोई भण्डार आत्मनिर्भर नहीं हो सकता तो उसका न होना ही बेहतर है तो मुझे इसमें कुछ बुरा नही लगेगा।

मेरा स्वास्थ्य फिलहाल भी ठीक चल रहा है। यदि बाढके कारण गुजरात जानेका कोई ऐसा तकाजा नहीं आ गया जिसे टाला न जा सकता हो तो मैं इस महीनेकी २८ तारीखतक बंगलोर और उसके आसपासके इलाकोंमें ही रहूँगा। गुजरात जानेके लिए मुझपर दबाव तो डाला जा रहा है। लेकिन जबतक वल्लभभाईको जरूरत नहीं पड़ती तबतक मैं नहीं जाऊँगा। क्योंकि मै जानता हूँ कि यदि मै सक्रिय कार्य नही कर सकता तो मेरी उपस्थिति-मात्रसे कुछ बननेवाला नही है।

आपका,

बाबू सतीशचन्द्र दासगुप्त
खादी प्रतिष्ठान
सोदपुर

अंग्रेजी (एस० एन० १९७९७) की माइक्रोफिल्मसे।

२७६. पत्र : आश्रमकी बहनोंको

मौनवार [८ अगस्त, १९२७][1]

बहनो,

आज तो मुझे थोड़ेमें काम चलाना होगा। ज्यादा लिखनेका समय नहीं है और लिखनेको भी कुछ नहीं है।

तुमने मणिबहनके लौटनेके बारेमें पूछा था उसका जवाब लिखना मैं भूल ही जाता हूँ। वह बहुत करके यहाँसे २० तारीखके बाद रवाना होगी और पूना और बम्बईमें एक-एक दिन रहनेके बाद भड़ौंच जायेगी। उसके बाद वहाँ पहुँचेगी।

आजकल आश्रममें हमारी कड़ी परीक्षा हो रही है। मैं चाहूँगा कि इसमें तुम सभी वीर सिद्ध होओ और वीर बनी रहो। हमारी जिम्मेदारी बहुत बड़ी है। हम हर समय हृदयमें रामका स्मरण करें तो हमारा बाल बाँका नहीं हो सकता।

काकासाहबकी तबीयत यहाँ ठीक रहती है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ३६६२) की फोटो-नकलसे।

२७७. पत्र : जे० बी० पेटिटको

कुमार पार्क, बंगलोर
९ अगस्त, १९२७

प्रिय श्री पेटिट,

मैं आपको एक बार फिर कष्ट दे रहा हूँ। आशा है, आप इसके लिए मुझे क्षमा करेंगे। सम्भवत. एन्ड्रयूजने आपको तार दिया है कि वे २० तारीखको वापस लौट रहे हैं। मैं देखता हूँ कि निगमने उन्हें एक मानपत्र भेंट करना तय किया है। 'यंग इंडिया' में अपने लेखमें[2] मैंने सुझाव दिया है कि इस अवसरपर व्यापक पैमानेपर सार्वजनिक प्रदर्शन होना चाहिए। कारण सिर्फ इतना ही नहीं है कि हम एन्ड्रयूजको जितना सम्मान दे सकें, वे उस सबके योग्य पात्र हैं, बल्कि यह बात भी है कि यदि यह अभिनन्दन-समारोह एक नीरस समारोहका रूप न लेकर जन-भावनाके प्रबल प्रदर्शनका माध्यम बनता है तो दक्षिण आफ्रिकामें इसका जबरदस्त राजनीतिक प्रभाव पड़ेगा और उससे श्री शास्त्रीके हाथ मजबूत होंगे।

१. समयके अभावके उल्लेखसे; देखिए "पत्र : मीराबहनको", ७-८-१९२७ भी।

२. देखिए "इस परमार्थ-साधकका स्वागत करें", ११-८-१९२७।

इस पत्रको लिखनेका मुख्य उद्देश्य यह सुझाव देना है कि साम्राज्यीय नागरिक संघ (इम्पीरियल सिटिजनशिप एसोसिएशन) उन्हें दक्षिण आफ्रिकामें शैक्षणिक कार्यों तथा ऐसे ही अन्य प्रयोजनोंपर खर्च करनेके लिए एक मोटी थैली भेंट करे। आपने सम्भवतः सामाजिक. . .के[1] लिए श्री शास्त्रीकी अपील देखी होगी। इस सबमें श्री एन्ड्रयूज भी शामिल रहे हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि दक्षिण आफ्रिकाके हमारे भाइयोंको खुद ही साधन ढूंढ़ने चाहिए, लेकिन उनकी क्षमता और इच्छा-शक्ति दोनों ही सीमित हैं। यहाँसे भेजी जानेवाली किसी भी सहायतासे वहाँके कार्यकर्त्ताओंका उत्साह बढेगा और श्री शास्त्रीके हाथ मजबूत होंगे। और मैंने श्री एन्ड्रयूजको सार्वजनिक रूपसे थैली भेंट करनेका जो सुझाव दिया है वह इसलिए कि जन-भावनाके प्रदर्शनकी दृष्टिसे इसका जो महत्त्व है, वह अधिक उजागर हो सके। बल्कि अपने लेखमें तो मैंने निगमको यह सुझाव भी दिया है कि वह कोई बेशकीमती मंजूषा भेंट करनेके बदले थैली भेंट करनेका ही निर्णय करे, बशर्ते कि उसके नियमोंके मातहत ऐसा किया जा सकता हो।

मैं इस पत्रकी एक प्रति श्री नटराजन्को भेज रहा हूँ।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजी (एस० एन० १२३६९) की फोटो-नकलसे।

२७८. पत्र : के० एस० नटराजन्को

कुमार पार्क, बंगलोर
९ अगस्त, १९२७

प्रिय श्री नटराजन्,

मैं साथमें श्री पेटिटको लिखे अपने पत्रकी नकल आपके विचारार्थ भेज रहा हूँ। पत्रमें सारी बातें स्पष्ट हैं, अलगसे कुछ कहनेकी जरूरत नहीं।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

श्रीयुत के० एस० नटराजन्
बम्बई

अंग्रेजी (एस० एन० १२३६९) की फोटो-नकलसे।

१. साधन-सूत्रमें यहां कुछ स्थान रिक्त है।

२७९. पत्र : कोण्डा वेंकटप्पैयाको

कुमार पार्क, बंगलोर
९ अगस्त, १९२७

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। आपने जिन कागजातका उल्लेख किया है, उन्हे महादेव अभीतक मेरे सामने नही रख सके हैं; क्योंकि उन्होंने मुझे अत्यन्त व्यस्त पाया है।

स्याहीकी जाँच करके आपको अपना मत बताऊँगा।

आपकी पुत्रीका स्वास्थ्य कैसा है और उसकी पढ़ाई कैसी चल रही है? उसे किसी दिन आश्रम अवश्य आना चाहिए।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत कोण्डा वेंकटप्पैया
गुंटूर

अंग्रेजी (एस० एन० १४२१२) की माइक्रोफिल्मसे।

२८०. पत्र : ई० एस० पटवर्धनको

कुमार पार्क, बंगलोर
९ अगस्त, १९२७

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मैं इसे सेठ जमनालालजीको भेज रहा हूँ और उन्हें लिख रहा हूँ कि इस मामलेपर वे सावधानीपूर्वक विचार करें और जो-कुछ उचित तथा सम्भव समझें, करें। इससे आगे जाकर मुझे उनपर कोई जोर नहीं डालना चाहिए।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

श्रीयुत ई० एस० पटवर्धन
अध्यक्ष
तिलक विद्यालय
नागपुर

अंग्रेजी (एस० एन० १४२१५) की माइक्रोफिल्मसे।

२८१. पत्र : जामिनीभूषण मित्रको

कुमार पार्क, बंगलोर
९ अगस्त, १९२७

प्रिय जामिनी बाबू,

आपका पत्र मिला। आपने मुझमें विश्वास जाहिर किया है, इसकी मैं कद्र करता हूँ। लेकिन आपने जो रवैया अपनाया है वह गलत है। मैं ठीक होता तो भी अकेले कुछ कर सकनेकी सामर्थ्य मुझमें नहीं थी। लेकिन, यह देखते हुए कि मैं व्यवस्थाके काममें हाथ नहीं बँटा सकता, मैं और भी सामर्थ्यहीन हूँ। इसमें तो कोई सन्देह ही नहीं कि जितनी अच्छी तरह आप और सतीश बाबू एक-दूसरेको जानते हैं, उतनी अच्छी तरह मैं और आप एक-दूसरेको नहीं जानते। और जब आप उनको अपना दृष्टिकोण नहीं समझा सकते तो फिर मैं इसमें सहायता कैसे कर पाऊँगा? लेकिन, अगर आप सोचते हों कि सतीश बाबूके मनमें आपके खिलाफ पूर्वग्रह है तो आपमें इतना आत्म-विश्वास तो होना ही चाहिए कि आप संघके मंत्री और सतीश बाबूके अलावा परिषद्के अन्य सदस्योंको इस बातकी प्रतीति करा सकें कि उनके मनमें आपके खिलाफ सचमुच पूर्वग्रह है। हाँ, मैं आपको इतना भरोसा दिला सकता हूँ कि आपको जो-कुछ भी कहना हो, उसपर अव्वल तो श्री शंकरलाल बैंकर और फिर परिषद्के अन्य सदस्य मनमें सतीश बाबूका कोई खयाल किये बिना निष्पक्ष-भावसे विचार करेंगे। फिर डॉ० राय भी हैं। निस्सन्देह, वे जितनी सतीश बाबूकी सुनेंगे उतनी ही आपकी भी। क्योंकि मैं जानता हूँ कि उनके मनमें आपके लिए कितना स्नेह है। और अगर मेरी राय पूछें तो मैं तो यह भी कहूँगा कि सतीश बाबू जान-बूझकर आपके साथ कोई अन्याय नहीं करेंगे। बल्कि दरअसल तो उन्होंने आपके बारेमें मुझे एक ऐसा पत्र भी लिखा था, जिसमें आपके प्रति उनका स्नेह ही प्रकट होता था। इसलिए अगर आप सतीश बाबूसे मिलकर अपने-आपको इस बारेमें आश्वस्त कर सकें कि उनके मनमें आपके प्रति कोई पूर्वाग्रह नहीं है तो मुझे सबसे ज्यादा खुशी होगी। आखिरकार आपके रास्तेमें बाधा डालकर उन्हें अपना कोई स्वार्थ तो नहीं साधना है। उन्होंने सुख-सुविधा और ऐशकी जिन्दगीको छोड़कर, अभाव, कष्ट और आत्म-विलोपनका जीवन स्वीकारा है। अगर मेरा कहना गलत हो तो आप बताइए। मुझे यह देखकर बड़ा दुःख होता है कि आत्म-त्यागी कार्यकर्त्ता भी एक साथ मिल-जुलकर उस उद्देश्यके लिए काम करनेमें नहीं लगे रह सकते जो सबको समान रूपसे प्रेय है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत जामिनीभूषण मित्र
खलीसपुर आश्रम
डाकघर बालीखोल
खलीसपुर, खुलना (बंगाल)

अंग्रेजी (एस० एन० १३७१८) की माइक्रोफिल्मसे।

२८२. पत्र : स्वामीको

९ अगस्त, १९२७

तुम्हारा आखरी तार[1] मिला। उसका जवाब तारसे दिया है, वह मिला होगा। तुम्हारे तार और तुम्हारे पत्रसे तुम्हारा प्रेम और तुम्हारा दुःख छलकता है। तुमसे मैं यही आशा रखता हूँ।

मेरा कर्त्तव्य प्रेमकी अतिशयताको रोकनेका है। तुम्हारे भेजे हुए आँकड़ोंको देखकर मुझे ऐसा नही लगा कि हमारी स्थिति आज २५ हजार रुपया देने लायक हो। अभी तो हम कठिनाईसे आय और व्ययको समान रख सकते हैं, ऐसा ही लगा है।

किन्तु यदि हमारे पास २५ हजार रुपये पडे हैं तो क्या इससे यह सिद्ध नही होगा कि हम कहीं-न-कहीं बहुत ज्यादा मुनाफा कर रहे हैं अथवा अपने कर्मचारियों-को पूरा वेतन नही देते?

ऐसा हो या न हो किन्तु मुझे लगता है कि यदि हमारी शक्ति इतना पैसा दान करनेकी है तो यह दान गुप्त रीतिसे ही किया जा सकता है। यदि हमारी छोटी-सी संस्था इतना बड़ा दान देती है, तो इससे दूसरी सस्थाओंको चोट पहुँचेगी और उससे द्वेपकी भावना उत्पन्न होगी। यह तो स्पष्ट है कि उसका अनुकरण नही हो सकता। और दानका विज्ञापन तो तभी होना चाहिए जब हम यह चाहते हो कि उसका अनुकरण किया जाये। अन्यथा सामान्यतः यह कहा जा सकता है कि वह दान शुद्ध दान नही है, आडम्बर है।

हमारे लिए ठीक स्थिति तो यह मानी जायेगी कि हममें दान देनेकी शक्ति ही न हो। तुम्हारी पत्रिकासे यह जान पडता है कि हमारे कर्मचारियोंके घरोंको इस बाढसे काफी नुकसान हुआ है। यदि हममे शक्ति हो तो इस सहायता-कार्यमें हमारी सस्थाका ठीक योगदान यह होगा कि अपने पैसेका उपयोग उनके घरोंकी मरम्मत आदि करानेमें करें ताकि इस कार्यका बोझ सार्वजनिक निधिपर न पडे।

तुम्हारे तारका पूरा अर्थ हम लोगोंमें से किसीकी समझमें नही आया। यदि तुमने यह सोचा हो कि संस्थाके कर्मचारी आदि प्रति माह जितना कम ले सकें उतना कम लें और बाकी पैसा निधिको दान कर दें तो मेरी सलाह यही है कि उनका यह पैसा ज्यों-ज्यों इकट्ठा हो त्यों-त्यों आप लोग उसका उपयोग ढेढ और भंगियोंके लिए करते जायें। यदि हम ऐसा करें तो यह एक स्थायी कार्य होगा। तात्कालिक आवश्यक सहायता तो सबको मिल ही जायेगी और सब लोग, जो-कुछ

१. इस तारमें स्वामी आनन्दने सुझाव दिया था कि बाढ़-पीड़ितोंकी सहायताके लिए नवजीवन पच्चीस हजार रुपये अपनी बचतसे दे और यह प्रस्ताव किया था कि सस्थाको कोई आर्थिक हानि न हो इस दृष्टिसे वे अभी उसमें दो वर्षतक और बने रहेंगे।

किया जाना है, उसके लिए कोई-न-कोई उपाय ढूँढ़ लेंगे, ऐसा मैं मानता हूँ। मैं चाहता हूँ कि यदि हमारी कमाईका धन शुद्ध हो तो उसका शुद्धतम उपयोग ही होना चाहिए।

किन्तु यदि तुम चाहो तो मेरे इन शब्दोंको अर्थहीन प्रलाप भी मान सकते हो। हो सकता है मैंने बातको बिना समझे ही इतना कुछ लिख दिया हो। वल्लभभाई, जमनालालजी आदिके साथ सलाह-मशविरा करके जो-कुछ करना चाहो सो तुम्हें करनेकी छूट है और जो-कुछ तुम करोगे उसमें मैं अपनी सहमति प्रदान करूँगा। ऊपर प्रकट किये गये विचारोंको यदि तुम अपने मुद्रणालयके एक कार्यकर्त्ताका भावोच्छ्वास समझकर उन्हें जितना मान दे सको उतना दोगे तो मुझे पूरा सन्तोष हो जायेगा।

तुम दो वर्षके लिए और बँध जाओगे किन्तु यह तो मुझे अच्छा लगेगा।

अभी मैं तुम्हें जितना-कुछ भेज रहा हूँ वह काकाको दिखाकर ही भेजा जा रहा है और आगे ऐसा ही होता रहेगा। जहाँ उनका विरोध न देखो वहाँ उनकी सहमति समझना।

आज यदि मेरे पास मेरी शक्तिसे अधिक और गम्भीर दूसरे काम न होते तो अभी और भी बहुत-कुछ लिखता।

[गुजरातीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरी।

सौजन्य : नारायण देसाई

२८३. एक अपील

बंगलोर
१० अगस्त, १९२७

भाइयो,

यह अपील गुजराती-भाषी हिन्दुओं, मुसलमानों, पारसियों और अगर कोई ईसाई हों तो उनसे की जा रही है। अन्य नागरिकोंको तो एक अन्य कोषमें अपने-अपने हिस्सेका दान देनेका अवसर मिलेगा, जिसके शीघ्र ही आरम्भ किये जानेकी मैं आशा कर रहा हूँ।

यह अपील गुजरातकी भयंकर बाढ़के सिलसिलेमें की जा रही है। ऐसी बाढ़ वहाँ पहले कभी आई हो, ऐसा लोगोंको याद नहीं है। इसलिए मैं आशा करता हूँ कि सभी गुजराती भाई और बहनें इस कोषमें अपनी शक्ति-भर पूरा दान देंगे। दानमें प्राप्त राशियाँ अहमदाबाद नगरपालिका और गुजरात प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीके अध्यक्ष श्रीयुत वल्लभभाई पटेलको भेज दी जायेंगी।

यह अपील सर्वश्री चिमनलाल भोगीलाल देसाई, रावजीभाई पटेल और छोटालाल कोठारीकी ओरसे की जा रही है। प्रत्येक दातासे[1] अनुरोध है कि वे दानमें दी गई राशिके साथ अपना नाम भी लिख भेजें ताकि 'यंग इंडिया' और 'नवजीवन' के पृष्ठोंमें उन्हें सही-सही छापा जा सके।

[पृष्ठ ३ और ४]

संकट-कालमें सहायता-कार्यका संगठन करनेके लिए। इस कामके लिए जिन गुजरातियोंकी जरूरत गुजरातमें नहीं है या जिन्हें गुजरातके कामसे छुट्टी दी जा सकती है उन्हें ऐसे स्थानोंकी ओर ध्यान देना चाहिए जहाँ सहायता सबसे ज्यादा जरूरी है। गुजरातके दु:खके कारण गुजरातियोंको दूसरे प्रान्तोंकी जरूरतोंकी ओरसे आँखें बन्द नहीं कर लेनी चाहिए। वर्तमान संकटका हमें ऐसा उपयोग करना चाहिए जिससे हम आजकी अपेक्षा कम प्रान्तवादी और अधिक राष्ट्रवादी बन सकें। इस देशमें रहनेवाले ईश्वरकी सृष्टिके तीस करोड़ मानव प्राणियोंमें से जो छोटेसे-छोटे हों और हमसे अधिकसे-अधिक दूरी पर रहते हों, उनके लिए भी हमारे मनमें बिलकुल अपनेपनकी भावना होनी चाहिए।

अंग्रेजी (एस० एन० १२७९७) की फोटो-नकलसे।

२८४. पत्र: डॉ० मु० अ० अन्सारीको

कुमार पार्क, बंगलोर
१० अगस्त, १९२७

प्रिय डॉ० अन्सारी,

आपके 'विस्फोटक' वक्तव्यका मसविदा मिला। उसपर मैंने और पंडितजीने, हमारे लिए जितना सम्भव था, उतने विस्तारसे बातचीत की। उसे पढ़कर मैं चौंका होऊँ, ऐसी कोई बात नहीं है। हमारे आसपासका वातावरण ही ऐसा है जो आदमीके मनको कमजोर बनाता है और आप चाहे जो कीजिए, जो कहिए, लोगोंकी ओरसे कोई अनुकूल उत्तर नहीं मिलता। ऐसी हालतमें हममें से जो बड़ेसे-बड़ा आदमी है, वह भी क्षण-भरके लिए हतबुद्धि हो जाता है। जाहिर है कि आपपर वही घुटन हावी हो गई है। इसमें आपकी कोई गलती नहीं है। और इसलिए जिस तरह ख्वाजाके अपने बड़े-बड़े वादोंसे मुकर जानेपर भी मैं यह कह सका था कि मैं अब भी तुमसे प्यार कर सकता हूँ, ठीक उसी तरह आपसे भी कह सकता हूँ, हालांकि मानना पड़ेगा कि आपसे एक चूक हुई है। मैंने 'मानना पड़ेगा' इसलिए कहा है कि आप अब भी असहयोगमें विश्वास रखते हैं, लेकिन आपके विचारसे परिस्थितियाँ हमसे हमारे वर्तमान आचरणसे भिन्न आचरणकी अपेक्षा रखती हैं और आप इस भ्रममें

१. यहाँ पृष्ठ २ समाप्त हो जाता है। फोटो-नकलकी जिल्दमें पृष्ठ २ के बाद जो पृष्ठ ३ और ४ आये हैं वे किसी और अपीलके अंश प्रतीत होते हैं और फोटो-नकलके मूल पृष्ठ ३ पर पुनः पृष्ठ संख्या ५ दे दी गई है। किन्तु उक्त दो पृष्ठ जो किसी दूसरी अपीलके हिस्से हैं इसके आगे दिये जा रहे हैं।

पड़ गये हैं कि भिन्न आचरण करनेसे असहयोग जल्दी किया जा सकेगा। मेरा विश्वास ऐसा नहीं है। लेकिन, मैं अपना विश्वास या अविश्वास आपपर तो नही थोप सकता न, आपको जैसा स्वाभाविक लगे, वैसा ही कीजिए।

लेकिन मुझे जो सुझाव देना है वह इस तरह है। उन विचारोंको आप अपने-तक ही सीमित रखें। उन्हें प्रकाशित करना आपके लिए किसी भी तरहसे जरूरी नहीं है। क्योंकि अगर मैं राजनीतिज्ञ नही हूँ तो आप तो और भी नही है। स्वराज्यकी स्थापना हो जानेपर आप कूटनीतिक सेवामें नही जाना चाहेंगे, और न सैनिक सेवामें ही। कानूनके महकमेसे तो आप दूर ही रहना चाहेंगे। यदि स्वराज्य स्थापित होनेतक भी कताई घर-घरमें प्रवेश नही कर जाती तो जिस प्रकार मैं सभी बड़े और महत्त्वपूर्ण विभागोंको छोड़कर कताई-विभागको ही हाथमें लेना चाहूँगा, उसी प्रकार आपको भी अगर चिकित्सा-विभागका प्रधान बनाकर चिकित्साशास्त्रके क्षेत्रमे किये जानेवाले तमाम अनुसन्धानोंके लिए, चाहे वे बहुत सोच-समझकर किये जायें या जैसे भी, पूरे पैसेकी व्यवस्था कर दी जाये तो आप इसीमें खुश रहेंगे। कानून, कूटनीति, सेना और अन्य सारे विभाग हम मोतीलालजी और उनके साथियोके जिम्मे छोड़ देंगे। हाँ, अगर पण्डितजीको लगेगा कि शौकतअली अच्छे सहयोगी होंगे तो वे भले ही उन्हें सैनिक विभाग सौंप दें।

अगर मेरा सोचना ठीक है तो मुझसे और आपसे, और विशेषकर आपसे, विधान सभा और विधान परिषद्के कार्यक्रमों, संविधान-रचना और न जाने ऐसे ही कितने विषयोंपर या अगर ज्यादा ठीक शब्दोंका प्रयोग करूँ तो कहना चाहिए कि 'कितने ही बेतुके विषयोंपर' होनेवाली चर्चामें योग देनेकी अपेक्षा नही की जायेगी। इसलिए मेरा खयाल है कि यदि आप दुनियाको साफ-साफ यह बता दें कि इन विषयोंपर आपका अपना कोई विचार नहीं है तो आप ईश्वर अथवा भारतीय जनसमुदायके प्रति कोई अपराध नहीं करेंगे। इन विषयोंको तो विशेषज्ञों और राजनीतिज्ञोंके जिम्मे छोड़ देना चाहिए। मुझे यकीन है कि आप ऐसे किसी भ्रममें नही होंगे कि मैंने जो आपके चुनावके[1] लिए पहल की उसका कारण यह था कि मैं आपको बहुत विचक्षण राजनीतिक, विचारक या ऐसा-कुछ मानता हूँ। देशने आपके चुनावका एक स्वरसे स्वागत किया है क्योंकि आप एक सच्चे और नेक मुसलमान है, आपको अपने देशसे प्रेम है, आपमें किसी तरहका पाखण्ड नही है, आप अपनी सीमाओंको पहचानते है, आप सदा बुद्धिपूर्वक सोचकर काम करते हैं। मगर इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि आपको हिन्दू-मुस्लिम एकताकी सच्ची लगन है और इसके सम्बन्धमें आपके विचार ऐसे है जिन्हें आप अपने देशभाइयोंके सामने रखनेमें कोई संकोच नहीं करेंगे, बल्कि जिन्हें उनके सामने रखनेके लिए आप आतुर हैं और जिन्हें कार्य-रूप देनेके लिए अगर संगोनोंका इस्तेमाल करना पड़े तो उनका इस्तेमाल करके भी आप उन्हें कार्य-रूप देंगे। आपके चुनावसे प्रकट होता है कि हमारे चारो ओर जो पागलपन मचा हुआ है, उसके बावजूद देश आन्तरिक शान्तिके लिए व्याकुल

१. कांग्रेसके अध्यक्ष-पदके लिए।

है, और धर्मके नामपर की जानेवाली बेईमानी, फरेब, अनैतिकता और हिंसासे वह तंग आ चुका है। इसलिए, मेरा अनुरोध है कि आप अपने वक्तव्यको फाड़कर फेंक दीजिए। उस विचारको आप अपनेतक ही सीमित रखिए, अपने चुनावको शोभा, गरिमा और कृतज्ञताके साथ स्वीकार कीजिए, और दुनियाको साफ-साफ बता दीजिए कि देशके सामने रखनेको आपके पास कोई अपना राजनीतिक कार्यक्रम नहीं है; जहाँतक उसका सम्बन्ध है, आपका रवैया ठीक-ठीक एक न्यायाधीशके रवैयेके समान निष्पक्ष होगा और ऐसे सवालपर विचार करनेवाली बैठकोंमें आप मात्र एक सभाध्यक्षकी तरह कार्यवाहियोंका संचालन करेंगे, व्यवस्था बनाये रखेंगे और बहुमतके निर्णयोंको लागू करेंगे; और आपने अपने चुनावको सिर्फ एक ही उद्देश्यसे स्वीकार किया है कि अपने कार्य-कालमें आप अपनी समस्त शक्ति लगाकर देशको आन्तरिक शान्ति प्राप्त करनेकी दिशामें ले जा सकें। कारण, एक मुसलमान और कट्टर राष्ट्रवादी होनेके नाते देशके प्रति आपका यह कर्त्तव्य है कि आप ऐसी आन्तरिक शान्ति स्थापित करनेके लिए, जो सभी पक्षोंके लिए सम्मानजनक हो, अपनी समस्त शक्ति और प्रतिभा लगाकर हजरत मुहम्मदके धर्मके गौरव और देशके सम्मानकी रक्षा करें। आपसे इससे अधिककी अपेक्षा कोई नहीं रखता। और अगर आप किसी और चीजमें हाथ डालेंगे तो गोया आप अपने दायरेसे बाहर जायेंगे।

आपको तार नहीं दिया, क्योंकि सोचा कि इस तरह मैं गरीब कतैयोंके चन्द रुपये बचा दूँगा। तार वगैरह देनेका काम तो मैंने पण्डितजीके लिए छोड़ दिया है, क्योंकि तार विभागको संरक्षण देनेमें वे मुझसे कहीं अधिक समर्थ हैं। जब आपने उन्हें अपना डाकिया बनाया तो मैं भी इस सम्मानसे क्यों वंचित रहूँ? सो इस उत्तरको पहुँचानेका काम मैं उन्हींको सौंप रहा हूँ। और यह उत्तर पा लेनेके बाद आप काँटोंके उस ताजको अस्वीकार करनेकी हिम्मत न कीजिएगा जो एक कृतज्ञ देश आपके सिरपर रख रहा है; इसी तरह आप अपने वक्तव्यको भी प्रकाशित करनेकी हिम्मत न कीजिएगा, चाहे उसमें व्यक्त विचार जितने भी महत्त्वपूर्ण क्यों न हों। अगर आप अपने बैठकखानेमें जमा हुए, हुक्केका आनन्द ले रहे कुछ-एक मित्रोंके सामने इन विचारोंको रखना चाहें, तो वैसा करके बेशक आप मजमेको मजेदार बनाइए। लेकिन, आपके विचार बैठकखानेकी चारदीवारीसे बाहर न जाने पायें।

इस पत्रसे आप पूरी तरह अंदाजा लगा सकते हैं कि मैं कितना स्वस्थ हूँ और कितना अस्वस्थ। स्वास्थ्यकी निशानी इस पत्रकी लम्बाई और इसमें व्यक्त किये गये विचार हैं। और अस्वस्थताका अन्दाजा आप सिर्फ इसी बातसे लगा सकते हैं कि न चाहते हुए भी इस पत्रको, जो एक पुराने मित्रके नाम लिखा बिलकुल व्यक्तिगत ढंगका स्नेह-पत्र है, मुझे बोलकर ही लिखवाना पड़ा।

न आनेके लिए आपको माफी माँगनेकी क्या जरूरत है? अगर मैं अपनेको वैसी नाजुक हालतमें पाऊँगा तो आपको तार देनेमें तनिक भी नहीं हिचकूँगा, और २१ से ज्यादा दिनोंका उपवास लेनेपर भी जरूर तार भेजूँगा। और मैं जानता हूँ कि आप चाहे जिन कामोंमें लगे हों, आप सबको छोड़कर अपने बीमार दोस्तको देखने

भागे-भागे आयेंगे — भले ही वह सिर्फ उससे आखिरी विदा लेने या उसकी उपवास करनेकी पागलपन भरी आदतको छुड़ानेके लिए ही क्यों न हो। अभी तो आप इसी तरह हजार रुपये रोजानाके हिसाबसे बनाते जाइए, मगर एक शर्त है। वह यह कि अपनी इस अधर्मकी कमाईका एक खासा प्रतिशत गरीब कर्तैयोंके लिए – चाहे सिर्फ प्रायश्चित्तके तौरपर ही क्यों न हो – अलग रखते जाइए।

क्या मैं यह आशा करूँ कि उत्तरमें एक तार भेज कर आप मुझे आश्वस्त करेंगे?

हकीमजीसे मिलिए तो कह दीजिए कि इस तरह मुझे बिल्कुल भुला देनेका नतीजा अच्छा नहीं होगा।

हृदयसे आपका,

डॉ० मु० अ० अन्सारी
नं० १, दरियागंज
दिल्ली

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १२८७०) की फोटो-नकलसे।

२८५. पत्र : टी० आर० महादेव अय्यरको

कुमार पार्क, बंगलोर
१० अगस्त, १९२७

प्रिय मित्र,

पत्र लिखनेमें देर हुई इसके लिए क्षमा करेंगे। डॉ० वरदराजुलु आनेवाले थे, इसलिए मैं जान-बूझकर एक-दो दिन रुका रहा। अब मैंने उनसे भी इस मामलेपर बातचीत कर ली है। उनका कहना है कि मलय प्रायद्वीपके लोग भी कमेटीके साथ हैं, और वे सचमुच ऐसा मानते हैं कि मुझे इस सम्बन्धमें कोई चिन्ता नहीं करनी चाहिए, क्योंकि उनके खयालसे कालान्तरमें उस सम्पत्तिका कब्जा कमेटीको फिरसे मिल जायेगा, यह निश्चित है। खुद मेरी राय तो यह है कि जहाँ जातिगत प्रतिबन्धोंको माननेवाले बहुत सारे लोग हों, वहाँ ऐसी सुविधा तो होनी ही चाहिए कि वे अपने बच्चोंको इस विकल्पके साथ कि उनके खान-पानकी अलग व्यवस्था की जायेगी, गुरुकुलमें भेज सकें। लेकिन, जिनके हाथमें सत्ता है, उनमें से अधिकांश लोग अगर इस विचारसे सहमत न हों और एक ऐसा कड़ा नियम बनाना चाहते हों जिसके अनुसार जातिगत प्रतिबन्धोंका पालन करनेवालोंको उस संस्थामें कोई स्थान न मिले तो आपको शोभनीय ढंगसे तत्काल उसकी सम्पत्तिका कब्जा छोड़ देना चाहिए। डॉ० वरदराजुलुका कहना है कि आपके पक्षमें कोई प्रभावशाली मत नहीं है। अगर यह सच हो तो मामलेको पंच-फैसलेके लिए सौंपना मुझे बेकार ही लगता है। अगर

आपका इरादा गुरुकुलकी सम्पत्तिका कब्जा तत्काल छोड देनेका हो तो अपने इस कदमका औचित्य सिद्ध करनेके लिए आप इस पत्रका उपयोग कर सकते हैं।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत टी० आर० महादेव अय्यर
नं० १, कृष्णमाचारी मार्ग
नुंगुमवक्कम
कैथिड्रिल डाकघर मद्रास

अंग्रेजी (एस० एन० १२९३६-ए) की माइक्रोफिल्मसे।

२८६. पत्र: एस० श्रीनिवास अय्यंगारको

कुमार पार्क, बंगलोर
१० अगस्त, १९२७

प्रिय मित्र,

कल हमारी एक अच्छी-सी, पारिवारिक गोष्ठी हुई थी। उसमें दो अब्राह्मण और तीन ब्राह्मण या आजकी भाषामें कहूँ तो दो असहयोगी और तीन सहयोगी थे। मैं तो हर हालतमें अल्पमतमें ही था। लेकिन आश्चर्यकी बात कि सभी उपस्थित लोग तमाम मतभेद और वर्ण-भेद भूल गये और एकमत होकर यह तय किया कि आपको श्री आर० के० षन्मुगम चेट्टीके नाम एक सुन्दर और छोटा-सा स्नेहपूर्ण पत्र लिखनेकी सलाह दी जाये, आपसे इसके लिए अनुरोध और आग्रह किया जाये। पत्रमें आप श्री चेट्टीको लिखें कि वे तत्काल आकर आपसे बातचीत करें। यह निर्णय इसलिए लिया गया क्योंकि हमें लगा कि ब्राह्मण, कांग्रेसका अध्यक्ष और स्वराज्यवादी दलका नेता होनेके नाते आपकी स्थिति दलके बेचारे अब्राह्मण सदस्यसे अच्छी है। हमें यह भी लगा—और ऐसा न समझें कि श्री चेट्टीकी रायसे प्रभावित होनेके कारण यह लगा—कि यद्यपि ऐसा कोई पत्र भेजना आपको किसी हदतक अटपटा लग सकता है, फिर भी आप हमारे निर्णयका किसी खास हिचकिचाहटके बिना सम्मान करेंगे।

आपको इस बातचीतका मजमून बतानेकी जरूरत मैं नहीं समझता; क्योंकि वह तो आपको श्री सत्यमूर्तिसे मालूम ही हो जायेगा, और फिर आप एक ऐसे आदमीसे, जो आपकी ही तरह रुग्ण है, किसी तरहका स्पष्टीकरण देने या बहस-मुबाहसे में पड़नेकी अपेक्षा तो नहीं ही करेंगे। हाँ, अगर पंडितजी, जिनका स्वास्थ्य आजकल पहलेसे अच्छा है और जो बड़े उत्साहमें हैं, स्वराज्यवादी दलके प्रधान और कांग्रेसके भूतपूर्व अध्यक्षके नाते सीधा आदेश जारी करनेके बजाय आपको मामलेको स्पष्ट करने और बातचीत करनेके लिए मजबूर करना चाहें तो भले ही वे वैसा करें। लेकिन जहाँतक मेरा सम्बन्ध है, मैं आपसे सिर्फ इतनी ही अपेक्षा रखूँगा कि आप

वह स्नेहपूर्ण पत्र लिख देंगे, लेकिन अंग्रेज कूटनीतिज्ञोंकी तरह मनमें दुराव रखते हुए नहीं, बल्कि अपनी अच्छीसे-अच्छी शैलीमें।

अखबारमें आपकी बीमारीका समाचार देते हुए एक छोटा-सा समाचार छपा था। उसे देखा तो मन चिन्तित हुआ; लेकिन, आपका तार पाकर आश्वस्त हुआ। आशा है, यह पत्र मिलनेतक आप इतने अच्छे हो चुके होंगे कि आपको जो थकाने-वाली यात्रा करनी पड़ेगी उसकी परेशानियोंको बरदाश्त कर सकें।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत एस० श्रीनिवास अय्यंगार
मइलापुर
मद्रास

अंग्रेजी (एस० एन० १४२१३) की फोटो-नकलसे।

२८७. पत्र : वालजी गो० देसाईको

बंगलोर
श्रावण सुदी १२ [१० अगस्त, १९२७][1]

भाईश्री वालजी,

हमारे मण्डलमें जिसने वेदोंका अध्ययन किया हो ऐसे तुम्हीं हो। आज तुम्हें 'वैदिक धर्म' पत्रिकाका एक अंक भेज रहा हूँ। उसे ध्यानपूर्वक पढ़ना और उसके विषयमें अपना मत देना। क्या यह मत ठीक है कि वैदिक कालमें मांस-भक्षण और खासकर गोमांसका भक्षण शिष्टानुमोदित आचार नहीं माना जाता था और यज्ञमें पशुओंका होम नहीं होता था? और यदि ठीक है तो श्री वैद्य[2] आदि विद्वान् इसके विरुद्ध मत प्रकट करते हैं, उसके विषयमें तुम्हारा क्या कहना है?

दुग्धालय, चर्मालय आदिका विवरण तुम्हें नियमपूर्वक भेजते रहना चाहिए ऐसा मैं चाहता हूँ।

आशा है तुम्हारी तबीयत ठीक होगी।

मोहनदासके वन्देमातरम्

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ७३९३) की फोटो-नकलसे।
सौजन्य : वालजीभाई देसाई

१. सन् १९२७ में गांधीजी इस तारीखको बंगलोरमें थे।
२. चिन्तामणि विनायक वैद्य, संस्कृतके विद्वान् और पुरातत्त्ववेत्ता।

२८८. पत्र: छगनलाल जोशीको

बुधवार, १० अगस्त, १९२७

भाईश्री छगनलाल,

मैं तुम्हारे पत्रसे यह नही समझ सका कि आखिर पुरुषोत्तम काम-धन्धेसे मुक्त हुआ या नहीं। विद्यार्थियोंपर तुम सच्चा असर तो तभी डाल सकोगे जबकि तुम सब लोग अपना बचा हुआ समय शारीरिक परिश्रम और दस्तकारीमें लगाने लगो और विद्यार्थियोंको यह अनुभव हो कि इन कामोमें तुम्हें रस मिलता है। यदि तुम यह कहो कि तुम्हें समय ही नही मिलता तो उसके प्रत्युत्तरमें मैं कहूँगा कि इन कार्योमें तुम्हारी रुचि ही नही है, इसीसे समय नही मिल पाता। यह तो मुझे साफ-साफ दिखाई दे रहा है कि हमारे विद्यार्थियोंके मनमें कमाई करनेकी इच्छा है। हम खुद कभी गरीबी नही भोगते और न हम सचमुचमें मजदूर ही हैं, यह एक चीज तो है ही। इसके सिवा ऐसा भी नही है कि हममें से सभी धनोपार्जन करना नापसन्द ही करते हों। इस बारेमें इतना ही कहा जा सकता है कि धनोपार्जन करना हमें नापसन्द होना चाहिए और हम वैसा करनेका प्रयत्न कर रहे हैं। विद्यार्थी भी इस स्थितिसे आगे कैसे जा सकते हैं? अस्तु, इसके पहले कि विद्यार्थी भविष्यके रंगीन सपने देखना बन्द करें आश्रमको काफी प्रगति करनी होगी। सच बात तो यह है कि हमारा त्याग और हमारा प्रयास दूसरोंकी तुलनामें भले ही उज्ज्वलतर दिखाई पड़ते हों किन्तु वास्तवमें वे दोनो हैं नगण्य ही। सम्भव है इसमें हमारा कोई दोष न हो और परिस्थितिके कारण ही ऐसा होता हो किन्तु इस वजहसे हम कमसे-कम उसकी उपेक्षा तो न करें।

मैंने आज काकासाहबसे तुम्हारे पत्रपर चर्चा की थी। हमें जब भी समय मिलता है इस प्रकारकी चर्चा किया ही करते हैं। इस सम्बन्धमें काका विस्तारसे लिखेंगे। अतः मैं विशेष कुछ नही लिख रहा हूँ। किन्तु इतना तो स्वीकार करता हूँ कि जबतक काका कार्यसमितिके उपप्रधान हैं तबतक उनका नैतिक उत्तरदायित्व तो बना ही रहेगा। और इसलिए दूर होनेके बावजूद तुम्हें उनकी सम्मति लेनेका पूरा अधिकार है। सम्मति देनेके उत्तरदायित्वको काका निभा सकेंगे या नही इस बातपर हम दोनो विचार कर रहे हैं। किन्तु इस मामलेमें जिसे हम दोनोंसे ज्यादा अधिकार है वे स्वामी तो दूर बैठे हुए हैं। वे क्या सोचते हैं, इसपर भी हमें विचार करना होगा।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।

सौजन्य: नारायण देसाई

२८९. एक और खादी भण्डार

शिमोगाकी खद्दर सहकारी समिति लिमिटेडके अवैतनिक मन्त्रीने लिखा है कि कर्नाटकके खादी भण्डारोंमें, इस समिति द्वारा शिमोगामें चलाया जानेवाला खादी भण्डार भी शुमार होना चाहिए। यह भण्डार अभी हालमें ही खोला गया है। इस भण्डारका उल्लेख करते हुए मुझे बड़ी खुशी हो रही है लेकिन मैं सभी नये भण्डारोको आगाह किये देता हूँ कि इन्हें व्यापारिक पद्धतिपर चलाया जाना चाहिए और इनका संचालन उन लोगोंके हाथोंमें होना चाहिए, जिन्हें खादीकी विक्रीकी कलाकी थोड़ी-बहुत जानकारी हो। हर कोई खादी भण्डारको सफलतापूर्वक नहीं चला सकता; जिन लोगोंने कपड़ेकी दुकानें चलाई हैं, उनमें से भी हर कोई उसे नहीं चला सकता। खादी भंडारके व्यवस्थापकको खादीकी भिन्न-भिन्न किस्मोंकी जानकारी होनी चाहिए, और उसे असली और नकली खादीकी पहचान होनी चाहिए। उसे लोगोंके सामने खादीको इस तरह पेश करनेकी कला भी आनी चाहिए कि वे सहज ही उसके प्रति आकृष्ट हों; और सबसे जरूरी बात तो यह है कि उसे बहुत ईमानदार होना चाहिए। शिमोगा भण्डार-जैसे अन्य भण्डारोंको भी मैं पूरे ब्योरेके साथ अपने-अपने नाम मन्त्री, अखिल भारतीय चरखा संघ, अहमदाबादके पास भेजनेको आमन्त्रित करता हूँ।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, ११-८-१९२७

२९०. दक्षिण आफ्रिकावासी भारतीय

भारतके प्रथम राजदूत एक भी क्षण बरबाद किये बिना अपने उद्देश्यकी पूर्तिके लिए जी-तोड़ परिश्रम कर रहे हैं। वे कभी यूरोपीयोंको तो कभी अधिवासी भारतीयोंको समयानुकूल और प्रसंगोचित शब्दोंमें समझाते हुए बड़ी लगनसे सच्ची एकताके बीज बोनेमें जुटे हुए हैं; और ऐसा लगता है कि इन दोनों समुदायोंके बीच वे काफी सफल भी हो रहे हैं। यूरोपीय लोग बड़ी शालीनताके साथ उनकी अद्भुत योग्यता और सराहनीय निष्पक्षताको स्वीकार करते हैं। और भारतीय लोग, भारतके इस सपूत द्वारा कही एक-एक बातके पीछे जो अपार चारित्रिक बल होता है, उसे कृतज्ञताके साथ स्वीकार करते हैं।

अब उन्होंने भारतीय अधिवासियोंसे सार्वजनिक स्वास्थ्य, सफाईके लिए सामाजिक कार्यकर्त्ताओंका एक दल तैयार करनेकी अपील की है। हमें उम्मीद करनी चाहिए कि उनकी अपीलको अनसुना नहीं किया जायेगा, और वहाँके धनी-मानी तथा शिक्षित भारतीय उसका उत्तर उसी उत्साहके साथ देंगे जिस उत्साहके साथ उन्होंने कुछ महीने पूर्व डर्बनमें सी० एफ० एन्ड्रयूज द्वारा की गई अपीलका उत्तर दिया था। यह

बात उस समयकी है जब वहाँ चेचक फैल गई थी और श्री एण्ड्रयूजने सफाईका काम अपने हाथमें लेकर उसमें सहायता देनेकी अपील की थी। श्रीयुत शास्त्री सरकारके प्रतिनिधि हैं। फिर भी, अगर रायटरकी रिपोर्ट सही है तो उन्होंने गिरमिटिया भारतीयोंकी सफाई-विषयक आवश्यकता और सामाजिक कल्याणकी अपराधपूर्ण उपेक्षाके लिए सरकारको भी नहीं बख्शा। गिरमिटिया भारतीयोंके बीच सफाईकी उपेक्षाके लिए वास्तवमें तीन पक्ष जिम्मेदार हैं — भारत सरकार, गिरमिटियोंके मालिक और दक्षिण आफ्रिकी सरकार। यदि भारत सरकार इस सम्बन्धमें एक न्यूनतम स्तरका आग्रह रखती, यदि मालिकोंने अपने इन मजदूरोंको मनुष्य समझकर उनमें थोड़ी दिलचस्पी ली होती, और अगर स्थानीय सरकार गिरमिटिया भारतीयोंको दक्षिण आफ्रिकाके भावी नागरिकोंके रूपमें देखती तो वे लोग पाँच सालकी गिरमिटकी अवधिमें आधुनिक सफाई-सम्बन्धी आदतें सीख लेते। कारण, पाँच सालकी गिरमिटकी अवधिमें उन्हें बैरकोंमें रहनेवाले सिपाहियोंकी तरह रहना पड़ता था और सफाईके सम्बन्धमें जो भी उचित विनियम बनाये जाते, उनका पालन उनसे मजेमें करवाया जा सकता था — ठीक उसी तरह जिस तरह उनसे श्रम-सम्बन्धी उन विनियमोंका पालन करवाया जाता था, जो बहुधा सफाई-सम्बन्धी विनियमोंकी अपेक्षा कहीं अधिक सख्त और कठोर होते थे। लेकिन यह तो बीते दिनोंकी बात है। अब भारतीय, विदेशोंमें गिरमिटिया मजदूरोंके रूपमें नहीं जाते।

प्रश्न यह है कि वर्तमान भारतीय अधिवासियोंको आदर्श नागरिक कैसे बनाया जाये। यदि सरकार तथा भारतीय अधिवासी परस्पर सहयोग करें तो हालतमें सुधार कर सकना और ऐसा स्वस्थ भारतीय जनमत तैयार कर सकना असम्भव नहीं है जो किसी प्रकारकी अस्वच्छता और गन्दगीको बरदाश्त न करे। अब भारतीय अधिवासी सफाईका काम करनेवाला एक दल तैयार करके अपनी जिम्मेदारी निभायें; इस दलके लोग शौचालयों तथा गली-कूचोंको साफ करें तथा सफाईके नियमोंसे अनभिज्ञ लोगोंको सफाईके प्रारम्भिक नियमोंसे अवगत करायें, जैसा कि उन्होंने १८९७ में डर्बनमें किया था। श्रीयुत शास्त्री अपने कार्यमें तबतक सफल नहीं होंगे जबतक कि वहाँके भारतीय अधिवासी इच्छापूर्वक, समझदारीके साथ और पूरे हृदयसे उनकी मदद नहीं करेंगे। उन्हें कानूनके इस सुन्दर सिद्धान्तका पालन करना चाहिए कि जो लोग न्याय अथवा समानताकी माँग करने आयें वे अपना दामन साफ रखें। भारतीय अधिवासी शरीर, मन और आत्मासे स्वच्छ बनें और इस तरह उन्हें दक्षिण आफ्रिकामें इस राजदूतकी उपस्थितिके रूपमें जो स्वर्ण अवसर मिला है, उसका अधिकसे-अधिक लाभ उठायें, क्योंकि इस राजदूतमें उनकी सेवा करनेकी क्षमता है और दक्षिण आफ्रिकाके यूरोपीय भी उसकी बात बहुत सुनते हैं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ११-८-१९२७

२९१. गुजरातकी तबाही

गुजरातमें भारी बाढ़के कारण इस बार तो ऐसी भयंकर क्षति हुई है, जैसी पहले कभी नहीं हुई थी। मुझे जो थोड़ा-सा विवरण अखबारोंमें पढ़नेको मिला है उससे और वल्लभभाई पटेलके भेजे दो तारों तथा आश्रमसे भेजे एक तारसे मुझे इस बातका एक मोटा-सा अन्दाजा ही मिला है कि बाढ़से कितनी भारी क्षति हुई है। बाढ़का पूरा हाल जाननेमें मेरे साथ एक कठिनाई यह भी है कि मैं यह टिप्पणी मैसूरमें एक ऐसे स्थानसे लिख रहा हूँ जहाँ अखबार बहुत देरसे पहुँचते हैं। पूरा सम्पर्क स्थापित हो जानेपर कुल क्षतिके बारेमें जो-कुछ मालूम होगा, वह उत्तरदायी कार्यकर्त्ताओं द्वारा लगाये गये नुकसानके अनुमानसे शायद बहुत ज्यादा होगा। बम्बई और गुजरातके दानी तथा धनाढ्य लोगोंने करुणासे प्रेरित होकर सहायता देनेमें उतनी ही तत्परता दिखाई है जितनी प्रचण्डता प्रकृतिने अपने विनाश-कार्यमें दिखाई है। श्रीयुत वल्लभभाई पटेल पहले ही एक अपील जारी कर चुके हैं। मैं आशा करता हूँ कि इसके उत्तरमें लोग मुक्तहस्त होकर दान देंगे। मुझे एक व्यक्तिगत तारसे मालूम हुआ है कि श्री पुरुषोत्तमदास ठाकुरदासने भी, जैसा कि वे स्वभाववश ऐसे अवसरोंपर किया ही करते हैं, सहायता-कार्य शुरू कर दिया है। विपत्तिके ऐसे अवसरोंपर, जब मनुष्यके हृदयकी सारी संवेदनाएँ जाग उठती हैं, सहायता-कार्य करनेके लिए बहुत सारे संगठन खड़े हो जाते हैं। उन सबका स्वागत किया जाना चाहिए। इतने विशाल क्षेत्रमें कोई एक संगठन सारे सहायता-कार्यका निर्वाह कर सकनेकी आशा नहीं कर सकता। तथापि भिन्न-भिन्न सहायता-संगठनोंके लिए यह आवश्यक होगा कि वे परस्पर एक-दूसरेके साथ मिल-जुलकर काम करें, ताकि एक ही काम करनेमें एकाधिक संगठनोंकी शक्तिका अपव्यय न हो और एक-एक रुपयेका अधिकसे-अधिक सदुपयोग हो सके तथा गेहूँका एक-एक दाना सबसे ज्यादा जरूरतमन्दके लोगोंके हाथोंमें पहुँच सके। जिन लोगोंको भगवान्ने कुछ देनेकी सामर्थ्य दी है, उन्हें इस कहावतको याद रखना चाहिए कि "जो जल्दी देता है वह दूना देता है।"

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ११-८-१९२७

२९२. इस परमार्थ-साधकका स्वागत करें

किसी व्यक्तिने सी० एफ० एण्ड्रयूजको स्नेहपूर्वक दीनबन्धुकी उपाधिसे विभूषित किया है। यह उपाधि निश्चय ही उनके योग्य है। जरूरतमन्द लोगोंके काम आना, उनका मित्र बनना उनके जीवनकी सबसे प्रबल आकांक्षा है, और वे जिस प्रकार सहायता करते हैं, उसमें यश और कीर्त्ति पानेका कोई भाव नहीं रहता। इसलिए यह उचित ही है कि भारतके प्रथम नगरने उनकी वापसीपर, अर्थात् इसी महीनेकी २० तारीखको, उन्हे मानपत्र भेंट करनेका निश्चय किया है। मुझे इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि मानपत्र अवसरके अनुकूल होगा। लेकिन श्री एन्ड्रयूजके प्रति अपने अत्यधिक स्नेहके कारण निगमके सदस्योंको यह नहीं भूलना चाहिए कि दीनबन्धु एन्ड्रयूज पैसेवाले आदमी नहीं हैं। यह बात लगभग अक्षरशः सत्य है कि वे सर्वथा अनिकेत हैं। उनके पास कोई अलमारी नहीं है, बहुमूल्य चीजोंको रखनेके लिए कोई तिजोरी नहीं है, कोई घर नहीं है। उनके पास जो थोड़ी-बहुत चीजें हैं, उनकी देखभाल करनेके लिए भी उन्हे एक व्यक्तिकी जरूरत रहती है। वे अपनी कोई चीज खुद नहीं रखते। कोई भी व्यक्ति उनका बक्सा, उसमें पड़े सारे सामान-सहित उड़ा ले जा सकता है। दक्षिण आफ्रिकामें पियर्सन और मैं हमेशा इस बातको लेकर परेशान रहते थे कि यह आदमी तो न कभी अपनी और न अपनी कही जा सकनेवाली चीजोंकी ही कोई परवाह करता है। इसलिए उन्हें कोई बहुमूल्य या किसी भी तरहकी मंजूषा भेंट करना उनके साथ अत्याचार करना होगा।

लेकिन यदि निगम सचमुच पैसा खर्च करना चाहता हो तो उचित यह होगा कि वह उन्हे एक थैली भेंट करे, जिसे वे उस कामपर खर्च कर सकें जो उनके जीवनका उद्देश्य है। वे स्नेहकी कद्र करते हैं। लेकिन जब उन्हें धन्यवाद व सम्मान मिलता है तब उन्हें बहुत अटपटा लगता है और वे सोचने लगते हैं कि यह सब धन्यवाद और सम्मान किसलिए। लेकिन वे चाहे जितना भी अटपटापन महसूस करें, उन्हे जो सम्मान दिया जाये वह कोई ऐसे-वैसे ढंगसे नहीं दिया जाना चाहिए। कारण यह है कि उन्होंने दक्षिण आफ्रिकामें जो शानदार काम किया है, उसके लिए तो वे उस सम्मानके पात्र हैं ही, लेकिन साथ ही उनको अच्छी तरह सम्मानित करके हम, दक्षिण आफ्रिकामें सद्भावनाका जो वातावरण बना है, उसका उत्तर भी दे सकेंगे और उनको उस तरहसे सम्मानित करना इस बातका द्योतक होगा कि उनके काममें उन्हें समस्त भारतीय जनमतका समर्थन प्राप्त था और वे भारतके उतने ही बड़े प्रतिनिधि थे, जितने बड़े प्रतिनिधिकी हैसियतसे श्रीयुत शास्त्री दक्षिण आफ्रिकामें काम कर रहे हैं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ११-८-१९२७

२९३. अनेकतामें एकता

कुछ महीने पहले मैंने जिन पोलैंडवासी प्रोफेसरके[1] सच्ची जिज्ञासासे प्रेरित प्रश्नो-के उत्तर देनेकी कोशिश की थी[2], उन्होंने मेरे उत्तर पढ़कर फिर निम्नलिखित प्रश्न मुझे भेजे हैं:

> १. सभी मनुष्य समान नहीं है। क्या आप यह भी मानते हैं कि राष्ट्रों-के बीच भी भारी असमानता है?
>
> २. अगर ऐसा है तो क्या आपकी समझसे पार्लियामेंटके नामसे पुकारी जानेवाली निर्वाचित प्रातिनिधिक संस्थाएँ, जिन्होंने यूरोपको विश्वयुद्धकी विभीषिकामें झोंका, भारतके लिए सचमुच उपयुक्त है?
>
> ३. क्या आप ऐसा समझते हैं कि भारत उसी अर्थमें एक राष्ट्र बन सकता है जिस अर्थमें इटली या फ्रान्स एक राष्ट्र है?
>
> ४. क्या ऐसा मानना सही है कि एशियाका भविष्य भारतके एकीकरणपर निर्भर है, क्योंकि सिर्फ यही वह देश है जो जापान और चीनकी भौतिकवादी प्रवृत्तियोंपर अंकुश रख सकता है?
>
> ५. क्या एशियाके सामने सचमुच यही विकल्प नहीं है कि या तो जापानकी तरह कृत्रिम ढंगसे इसका यूरोपीयकरण हो या फिर यह उस प्राचीन आर्य परम्पराकी शरणमें जाये जिसे सभी प्रमुख भारतीय विचारक वरेण्य समझते जान पड़ते हैं?
>
> ६. क्या मूल आर्य परम्पराके प्रति इस नये आकर्षणका यूरोपके लिए भी कोई महत्त्व है?
>
> ७. यूरोपीय सभ्यताके तमाम दोषोंके बावजूद क्या आपको उसमें ऐसी एक नई शक्ति नहीं दिखाई देती जो हिन्दू जातिकी अनुभव-सम्पत्तिसे आगे जाती है?
>
> ८. क्या भारतमें कहीं भी फ्रान्सके उन अनेक छोटे-छोटे नगरोंके समान एक भी नगर है जिनमें हर व्यक्ति अपनी-अपनी आकांक्षाओंकी पूर्तिके लिए अपनी-अपनी इच्छानुसार चलनेको स्वतन्त्र है, जिसमें सभी सुखी-सम्पन्न हैं, सभी सुशिक्षित और सामाजिकताके उच्च गुणोंसे सम्पन्न हैं तथा विभिन्न विचारधाराओं और प्रवृत्तियोंके लोग आपसमें स्नेहपूर्वक मिलते-जुलते हैं? फ्रान्समें ऐसे नगर हैं और इंग्लैंडमें भी। लेकिन पता नहीं, भारतमें भी ऐसी कोई चीज है या नहीं।

१. डब्ल्यू० ल्यूतोंस्लॉवस्की।
२. देखिए खण्ड ३३, पृष्ठ २६५-७।

"सभी मनुष्य समान नहीं है", ऐसा कहकर पत्र-लेखकने सत्यका एक ही पक्ष बताया है। इसका एक दूसरा पक्ष भी है कि सभी मनुष्य समान हैं। कारण, यद्यपि सभी एक ही उम्रके, एक ही ऊँचाईके, एक-सी चमड़ीवाले, एक-जैसी बुद्धिवाले नहीं हैं, किन्तु ये तमाम असमानताएँ अस्थायी और सतही हैं; इस मृत्तिका-आवरणके अन्दर छिपी आत्मा एक ही है, वही आत्मा हर देश, हर क्षेत्रके सभी स्त्री-पुरुषोंमें व्याप्त है। इसलिए, ऐसा कहना शायद ज्यादा सही होगा कि हम अपने चारों ओर जो अनेकता देखते हैं, उसमें एक वास्तविक और तात्त्विक एकता वर्तमान है। 'असमानता' शब्दकी ध्वनि ठीक नहीं है और इसके कारण प्राच्य संसारमें और पाश्चात्य संसारमें भी बड़े उद्धततापूर्ण और अमानवीय कृत्य किये गये हैं। जो बात व्यक्तियों पर लागू होती है, वही राष्ट्रोंपर भी, क्योंकि राष्ट्र भी तो व्यक्तियोंका समूह ही होता है। असमानताके झूठे और कठोर सिद्धान्तके कारण एशिया और आफ्रिकाके राष्ट्रोंका अहकारपूर्ण शोषण किया गया है। कौन कह सकता है कि आज पश्चिममें जो पूर्वका शोषण करनेकी क्षमता है वह पश्चिमवालोंकी श्रेष्ठता और पूर्ववालोंकी हीनताका ही परिणाम है? मैं जानता हूँ कि प्राच्य संसार बड़े दीन-भावसे, बिना सोचे-समझे तुरन्त इस घातक सिद्धान्तको स्वीकार कर लेता है और तब पाश्चात्य संसारकी नकल करनेका निष्फल प्रयास करता है। इस काव्यात्मक उक्तिमें बहुत अधिक सचाई है कि "बाहरी रूप वस्तुओंके आन्तरिक गुणका द्योतक नहीं होता।"

दूसरा प्रश्न पहलेका तर्कसंगत परिणाम नहीं है। और चूँकि मैं असमानताके सिद्धान्तको उस अर्थमें स्वीकार नहीं करता जिस अर्थमें उसका प्रयोग लेखकने किया है, इसलिए मैं यह भी स्वीकार नहीं कर सकता कि निर्वाचित प्रातिनिधिक संस्थाएँ भारतके लिए सचमुच अनुपयुक्त हैं। लेकिन अगर भारत पश्चिमका अन्धानुकरण करने लगे तो मुझे घोर दुःख होगा। इसके कारण मैंने 'हिन्द स्वराज्य' में बता दिये हैं, और यद्यपि उस पुस्तकको लिखे अब बीस वर्ष हो चुके है, फिर भी मेरे जीवनमें ऐसा एक भी अवसर नहीं आया जब मुझे उसके असली मुद्दोंमें कोई परिवर्तन करनेकी आवश्यकता महसूस हुई हो। यूरोपीयोंके भारत आनेके पूर्व यहाँ निर्वाचित प्रातिनिधिक संस्थाओंका अस्तित्व न रहा हो, ऐसी बात नहीं है। लेकिन, जहाँतक मैं समझ सकता हूँ, यहाँ 'प्रातिनिधित्व' और 'निर्वाचन' शब्दोंके अर्थ, यूरोपमें इनसे जिन अर्थोंका बोध होता है, उनसे बहुत भिन्न थे।

मेरे विचारसे तो भारत आज भी एक राष्ट्र है—ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार इटली या फ्रान्स है; और यद्यपि मैं इस दुःखद तथ्यसे भलीभाँति अवगत हूँ कि हिन्दू और मुसलमान एक-दूसरेकी जानके गाहक बने हुए हैं, ब्राह्मण और अब्राह्मण एक ऐसे ही भ्रातृ-घातक संघर्षकी राहपर चल रहे है और ब्राह्मण तथा अब्राह्मण दोनों अपने सामाजिक ढांचेमें उन वर्गोको कोई स्थान देनेको तैयार नहीं हैं जिनका शोषण करनेके लिए उन्होंने कुछ उठा नहीं रखा है, फिर भी मैं यह मानता हूँ कि भारत एक राष्ट्र है। लेकिन, ऐसे झगड़े तो परिवारों तथा दूसरे राष्ट्रोंमें भी होते रहे हैं। यह-सब देखकर मुझे अक्सर ऐसा भी लगा है कि झगड़े भी वहीं होते हैं

जहाँ लोगोंमें परस्पर पारिवारिक निकटता होती है। लेकिन मुझे पत्र-लेखककी इस बातसे सहमत होते हुए बड़ी खुशी हो रही है कि एशियाका भविष्य भारतके ठीक और साफ दिखाई देने लायक एकीकरणपर निर्भर है।

लेकिन, मैं यह नहीं समझता कि नकली यूरोपीयकरणका एकमात्र विकल्प प्राचीन आर्य परम्पराको पूरी तरह स्वीकार कर लेना है। महान् चिन्तक स्वर्गीय न्यायमूर्ति रानडेके इस विचारसे मैं सहमत हूँ कि प्राचीन परम्पराको एक बार पुनः पूरी तरह प्रतिष्ठित कर देना यदि वांछनीय भी हो तो यह सम्भव नहीं है। अव्वल तो कोई भी अधिकारपूर्वक यह नहीं कह सकता कि प्राचीन आर्य परम्परा क्या थी या क्या है। कौन-सा युग इतिहासका 'स्वर्ण-युग' था, और उसकी क्या विशेषताएँ थीं, यह बात बिलकुल ठीक-ठीक बता सकना मुश्किल है। और मुझमें इतना स्वीकार करनेकी नम्रता तो है ही कि पश्चिममें ऐसी बहुत-सी चीजें हैं जिन्हें ग्रहण करनेसे हमारा लाभ हो सकता है। बुद्धि और ज्ञान किसी एक महादेश या एक जातिकी बपौती नहीं है। मैं जो पाश्चात्य सभ्यताका विरोध करता हूँ वह असलमें उसकी अन्धाधुन्ध और विवेकशून्य नकलकी उस प्रवृत्तिका विरोध करता हूँ, जिसका आधार यह गलत धारणा है कि एशियाई लोग तो पश्चिमसे आनेवाली तमाम चीजोंकी नकल करनेके अलावा और किसी लायक हैं ही नहीं। मैं मानता हूँ कि अगर भारतमें इतना धैर्य हो कि वह कष्ट-सहनकी आँचको बरदाश्त कर सके और अपनी सभ्यतापर, जो अपनी खामियोंके बावजूद कालके थपेड़ोंको झेलकर आजतक अपना अस्तित्व बनाये है, किये गये किसी भी आक्रमणका सामना कर सके तो संसारकी शान्ति और प्रगतिमें वह स्थायी योगदान दे सकता है।

मुझे यह स्वीकार करते हुए प्रसन्नता हो रही है कि विश्वके कल्याणके लिए पश्चिममें एक नई शक्तिका धीरे-धीरे किन्तु निश्चित तौरपर उदय हो रहा है। मैं यह नहीं जानता कि वह शक्ति हिन्दू जातिकी अनुभव-सम्पत्तिसे आगे जा सकेगी या नहीं। लेकिन मानवताकी समृद्धिमें जहाँसे जो योगदान मिले, मैं सबका स्वागत करूँगा।

और अन्तमें, सुधी प्रोफेसर महोदयने फ्रान्स और इंग्लैंडके सभी दृष्टियोंसे स्वयं-सम्पूर्ण लघु नगरोंकी जो सुन्दर शब्दोंमें प्रशंसा की है, उसके सम्बन्धमें मैं कुछ नहीं कह सकता। इंग्लैंडके नगरोंके बारेमें मुझे बहुत कम जानकारी है और फ्रान्सके नगरोंके बारेमें तो और भी कम। मैं यह स्वीकार करता हूँ कि उनके सम्बन्धमें मेरे मनमें कुछ शंकाएँ हैं। किन्तु मैं एक बात अवश्य जानता हूँ। वह यह कि अगर प्रोफेसर साहब भारतीय गाँवोंके उस बाहरी रूपको, जो लगभग न देखने लायक है, देखना बरदाश्त कर सकें तो मैं उन्हें उनमें से कुछ ऐसे गाँवोंमें ले जानेको तैयार हूँ जहाँ वे एक उच्च कोटिकी संस्कृतिके दर्शन करेंगे, और जहाँ उन्हें किताबी शिक्षासे प्राप्त व्यवहारकी सुघड़ाई तो देखनेको नहीं मिलेगी, लेकिन मानव-हृदय और मानवीय संवेदनाओंकी झाँकी अवश्य मिलेगी, और जहाँ, यदि वे अपने मनको खान-पानमें अलगाव और छुआछूत बरतनेके विचित्र भारतीय तौर-तरीकोंको स्वीकार करनेपर राजी

कर सकेंगे तो वे देखेंगे कि लोग अपनेसे भिन्न विचारोंके प्रति कैसी आश्चर्यजनक सहिष्णुताका भाव रखते हैं और मन तथा आत्माके धरातलपर उनके बीच कैसा प्रेमपूर्ण आदान-प्रदान चलता है। प्रोफेसर साहबको मैं यह भी याद दिला दूँ कि इंग्लैंड और फ्रान्सकी समृद्धि तथा ऐसी समृद्धिसे उत्पन्न सुख-सुविधा जिस चीजपर निर्भर है, यदि उसे फिर न दोहराना पड़ता तो मुझे प्रसन्नता होती तथापि मुझे दोह-राना ही पड़ेगा, वह है दूसरोंका शोषण।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ११-८-१९२७

२९४. मानवोचित गुणोंका विकास करनेवाला युद्ध

मैं यहाँ 'ब्रदरहुड' के मार्च अंकमें 'युद्ध' (वार) शीर्षकसे छपे एक लेखके निम्न अंश उद्धृत कर रहा हूँ जो काफी दिलचस्प है:

> पिछली बार औरतों और बच्चोंको भूखा रखा गया था—और वह ऐसे ढंगसे जिसे बड़ी ही चतुराईके साथ 'आर्थिक दबाव'का नाम दे दिया गया था—लेकिन अगली बार विषैली गैसोंका प्रयोग करके उन्हें मृत्युके मुँहमें झोंक दिया जायेगा। हवाई जहाजोंसे तेज जहरकी वर्षा की जायेगी, जिससे गैर-सैनिक आबादी निर्मूल हो जायेगी। एडीसनका कहना है कि बड़ी आसानीसे सिर्फ तीन ही घंटेमें लन्दनकी लाखोंकी आबादीका सफाया किया जा सकेगा। प्रत्येक सभ्य देशमें रसायनविद् लोग विशेष घातक विषोंकी खोजमें लगे हुए हैं। 'ट्रूथ'का कहना है कि इंग्लैंडमें हमारी सरकार विषैली गैसोंकी विनाशकारी क्षमताको बढ़ानेके लिए प्रयोग करनेमें लगी हुई है, तथा इस प्रक्रियामें प्रतिदिन दो जानवरोंका हनन कर रही है। उसने एक वर्षमें ६८९ बिल्लियाँ, गिनीपिग, बकरियाँ, छोटे-बड़े किस्मके चूहे, बन्दर और खरगोश प्राप्त किये और इनमें से ६१८ को विषैली गैसोंसे मारा डाला—और वह उनमें अधिकाधिक सुधारके लिए किये जानेवाले अनुसन्धानके क्रममें।
>
> अगला युद्ध कितना भयंकर होगा, इसका कुछ अन्दाजा इस बातसे लगाया जा सकता है कि युद्धविरामके[1] बादसे बन्दूकोंकी मारकी दूरी दूनी हो गई है, और अब ऐसी मशीनगनें उपलब्ध हैं जिनसे एक मिनटमें १,५०० गोलियाँ चलाई जा सकती हैं। किसी स्वचालित तोपसे एक मिनटमें सवा-सवा पौण्डके १२० गोले बरसाये जा सकेंगे, और एक १६ इंचकी तोप है जो एक टनसे अधिक वजनके प्रक्षेपणास्त्रको २७ मीलकी दूरीतक फेंक सकती है। अमेरिकामें

१. १९१८ का।

रासायनिक युद्ध-विभागने एक ऐसा तरल-पदार्थ खोज निकाला है, जिसकी तीन बूंदे मनुष्यकी त्वचाके किसी भी भागमें लगानेसे उसकी मृत्यु हो जाती है। एक हवाई जहाज ऐसा दो टन तरल पदार्थ लेकर उड़े तो वह मीलोंतक फैली आबादीको नष्ट कर दे सकता है। ब्रिटिश सेनाके जनरल स्विनटन कहते हैं: भविष्यमें युद्धके सबसे जबरदस्त आयुध घातक कीटाणु होंगे। हमने युद्धके बादसे ऐसे कीटाणुओंकी खोज और विकास किया है, जिन्हें यदि शहरों और सेनाओंपर गिराया जाये तो वे एक दिनमें पूरे राष्ट्रका संहार कर सकते हैं।

यदि कभी कोई आशाके अतिरेकमें यह सोचने लगे कि यह सब सम्भव नहीं है तो उसे याद रखना चाहिए कि हमने १९२४ में शिक्षापर चार करोड़, शस्त्रास्त्रपर बारह करोड़ दस लाख और शराबपर इकत्तीस करोड़ छः लाख खर्च किया। वैज्ञानिक खोजोंका उपयोग करके लोगोंको मारनेका काम बहुत व्ययसाध्य है और मुझे बताया गया है कि जितने नाइट्रोजनके बलपर भारतको एक दुर्भिक्षसे बचाया जा सकता है, उतना फ्रान्समें हुई एक छोटी और अनिर्णायक लड़ाईमें बरबाद कर दिया गया था। संसारकी महान् शक्तियाँ अब भी अपने खजानेकी विपुल राशि शस्त्रास्त्रपर खर्च कर रही हैं, हालाँकि इतिहास हमें साफ-साफ बताता है कि शस्त्रास्त्रोंकी वृद्धिसे युद्धकी सम्भावना बढ़नेके अलावा और कुछ नहीं होता। शान्तिप्रिय अमेरिकाने अपनी उड्डयन-प्रणालीके विस्तारके लिए ८ करोड़ ५० लाख डालर चन्द मिनटमें मंजूर कर दिया, लेकिन शस्त्रीकरणकी इस होड़में अमेरिका द्वारा उठाये गये इस भारी कदमपर किसीने तनिक भी ध्यान नहीं दिया। परिस्थितिकी विडम्बना तो देखिए कि जहाँ ग्रेट ब्रिटेन शस्त्रास्त्रों और सैनिक तैयारियोंपर आज १९१३ के मुकाबले लगभग दूना खर्च कर रहा है, वहाँ विजयी मित्र-राष्ट्रोंने जर्मनीके शस्त्रीकरणपर प्रतिबन्ध लगाकर उसे इस खर्चके भारसे मुक्त कर दिया है और इस तरह उद्योग और व्यापारमें जर्मनीके साथ होड़ करनेमें उन्होंने अपने-आप एक भारी असुविधा मोल ले ली है।

और अब लीजिए 'लैंसेट' (१८ जून, १९२७)से उद्धृत यह अंश:

अंग्रेजी फौजके आनेके बादसे बहुत-से लोग इन्फ्लुएंजा और निमोनियाके शिकार हुए हैं, लेकिन सबसे अधिक चिन्ताका विषय है यौन-रोगोंका सवाल। तमाम एहतियात बरतनेके बावजूद इन रोगोंके रोगियोंकी संख्या लगातार बढ़ती जा रही है। . . . उत्तर और दक्षिणसे झुंडकी-झुंड वेश्याएँ शंघाईमें आकर इकट्ठी हो गई हैं। इनमें से अधिकांश चीनी (६० प्रतिशत), रूसी (३० प्रतिशत) और जापानी (५ प्रतिशत) हैं। ज्यादातर वेश्यालय – फ्रान्सीसियोंके लिए अनुज्ञात क्षेत्र (फ्रेन्च कॉन्सेशन)में और नगरपालिकाकी सड़कोंके दोनों ओर बसी चीनी आबादीके बीचमें हैं। यौन रोगोंकी भारी वृद्धिसे इस कमानके अधि-

कारी बहुत चिन्तित हो उठे हैं और उसकी रोक-थाम करनेके लिए उन्होंने कुछ भी उठा नहीं रखा है।

और फिर भी हमारे बीच ऐसे बुद्धिमान लोग मौजूद हैं जो युद्धके द्वारा "मानवोचित गुणोंका विकास करने" की बात करते हैं तथा ऐसे नादान लोग भी हैं जो उनकी इस बातका समर्थन करते हैं।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, ११-८-१९२७

२९५. सच्चा विज्ञान और सच्ची कला

एक मित्रने एंटन चेखवकी कहानीका एक अंश भेजा है। वह अंश उद्धृत करने लायक है। उसे नीचे दे रहा हूँ:

> सच मानिए, इस विषयमें मेरा अपना एक निश्चित मत है। मेरी समझसे तो ये तमाम पाठशालाएँ, औषधालय, पुस्तकालय चिकित्सा-सम्बन्धी सहायता देनेवाली समितियाँ वर्तमान परिस्थितियोंमें तो जनताकी बेड़ियोंको और भी मजबूत ही करती हैं। कृषक वर्ग एक जबरदस्त बेड़ीसे जकड़ा हुआ है और आप उस बेड़ीको तोड़नेके बजाय उसमें और भी कड़ियाँ जोड़नेका काम करते हैं।
>
> अन्ना प्रसव-कालमें मर गई, यह कोई बड़ी बात नहीं है। बड़ी बात तो यह है कि अन्ना, मावरा और पिलेजिया-जैसी स्त्रियाँ सुबहसे लेकर रात ढले-तक कठिन परिश्रम करती हैं, शक्तिसे बाहर काम कर-करके रुग्ण हो जाती हैं, जिन्दगी-भर अपने बीमार और क्षुधार्त बच्चोंकी चिन्तासे उनके मनमें हाहाकार-सा मचा रहता है, उनका सारा जीवन रोगोंकी चिकित्सा कराते ही बीतता है, मृत्यु तथा रोगका भय हर क्षण उन्हें खाये जाता है और वे कम उम्रमें ही बूढ़ी होकर अन्तमें गन्दगी और गरीबीके बीच दम तोड़ देती हैं।
>
> बड़े होते ही उनके बच्चोंपर भी फिर वही सब गुजरने लगता है। इस तरह यह चक्र सैकड़ों वर्षोंसे चल रहा है, करोड़ों मनुष्य पशुओंसे भी बुरी अवस्थामें जी रहे हैं—रोटीके एक टुकड़ेके लिए वे बराबर भयातुर और चिन्तित रहते हैं। उनकी स्थितिकी सारी विडम्बना यह है कि उन्हें कभी यह सोचनेका भी समय नहीं मिलता कि वे क्या हैं, उन्हें क्या होना चाहिए। सर्दी, भूख, जीवधारियोंके मनमें रहनेवाली सहज भयकी भावना और कठोर श्रमका दुर्वह भार, ये सब विशाल हिम-खण्डोंकी तरह उनकी बौद्धिक प्रवृत्तिके सभी मार्ग रोककर खड़े हैं, जब कि यही प्रवृत्ति वह चीज है जिसके कारण मनुष्य पशुसे भिन्न होनेका दावा कर सकता है और जो जिन्दगीको जीने लायक बनाती है।

आप उनके बीच अस्पताल और पाठशालाएँ खोलकर उनकी सहायता करने जाते हैं, लेकिन इस तरह आप उन्हें उनकी बेड़ियोंसे मुक्त नहीं करते। उलटे, आप उनकी बेड़ियाँ और भी कस देते हैं, क्योंकि इन चीजोंके जरिये आप उनमें नई-नई इच्छाएँ और अनिच्छाएँ पैदा करके उनकी आवश्यकताओंको बढ़ाते हैं। और उन्हें नगर-समितियोंको दवाओं और पुस्तकोंके लिए जो-कुछ देना पड़ता है और इसके लिए उन्हें जो और भी कठोर श्रम करना पड़ता है, सो इजाफा।

हाँ, मैं दवाओंके खिलाफ हूँ। इस विज्ञानकी आवश्यकता रोगोंको ठीक करनेके लिए नहीं, बल्कि प्राकृतिक तत्त्वोंका अध्ययन करनेके लिए ही है। अगर किसीको किसी चीजको ठीक ही करना हो तो वह रोगको नहीं, बल्कि रोगके कारणको ठीक करे। मुख्य कारणको, शारीरिक श्रमकी आवश्यकताको, दूर कर दीजिए, फिर तो कोई रोग रह ही नहीं जायेगा।

मैं रोगको दूर करनेवाले विज्ञानमें विश्वास नहीं रखता। सच्चे विज्ञान और सच्ची कलाका उद्देश्य अस्थायी और व्यक्तिगत हित-साधन नहीं होता। वे तो चिरन्तन और सार्वभौमिक उद्देश्यसे परिचालित होते हैं। वे सत्यको, जीवनके असली अर्थको पाना चाहते हैं, उन्हें ईश्वरकी खोज रहती है, आत्माकी तलाश रहती है, और जब उन्हें तात्कालिक आवश्यकताओंको पूरा करने और वर्तमान बुराइयोंको दूर करनेतक ही सीमित कर दिया जाता है, औषधालयों और पुस्तकालयोंमें कैद कर दिया जाता है तब वे जीवनमें सिर्फ उलझनें ही पैदा करते हैं, उसके मार्गमें बाधाएँ ही खड़ी करते हैं।

वैज्ञानिक, लेखक और कलाकार अपने-अपने काममें पूरी लगनसे जुटे हुए हैं। उनकी बदौलत जीवनकी सुविधाएँ दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही हैं। हमारी शारीरिक माँगें बढ़ती जा रही हैं, लेकिन फिर भी सत्य हमसे बहुत दूर है, और मनुष्य अब भी सबसे अधिक स्वार्थी, उत्पीड़क और कुत्सित प्राणी बना हुआ है। सारा आलम ऐसा है जो अधिकांश मानवोंको पतनके गर्तमें लिये जा रहा है और उन्हें जीनेके लिए सदाके लिए अक्षम बनाये दे रहा है।

मैंने मूल कहानी नहीं पढ़ी है, लेकिन मेरा खयाल है कि लेखकने रोगोंके मुख्य कारणके रूपमें जिस शारीरिक श्रमका उल्लेख किया है, वह खेतोंमें किया जानेवाला स्वस्थ शारीरिक श्रम या ऐसा कोई अन्य श्रम नहीं है। उनका तात्पर्य शायद मनुष्यको पीस डालनेवाले उस शारीरिक श्रमसे है जो उन किसानोंको, जिन्हें लेखकने देखा-जाना होगा, किसी प्रकार गुजारा करने लायक कमा सकनेके लिए करना पड़ता होगा। अनुवादकने जिस शब्दका अनुवाद 'फिजिकल लेबर' (शारीरिक श्रम) किया है, वह मूल रूसी शब्द क्या था, यह जानना दिलचस्प होगा।

इस उद्धरणका शायद सबसे प्रभावपूर्ण अंश वह है, जिसमें सच्चे और झूठे विज्ञान तथा कलाका भेद स्पष्ट किया गया है। इस बातसे कौन इनकार कर सकता है कि आज विज्ञान और कलाके नामपर जो-कुछ हो रहा है, उसमें से अधिकांश ऐसा है जो आत्माको ऊपर उठानेके बदले उसका हनन करता है और हममें जो अच्छे-से-अच्छे गुण हैं, उन्हें उभाड़नेके बजाय हमारी निम्नतम वासनाओंको जगाता है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ११-८-१९२७

२९६. दृढ़ताकी कसौटी

अखिल भारतीय चरखा संघके सदस्योंकी सूचीका अध्ययन करनेसे एक दुःखद तथ्य सामने आया है। प्रथम श्रेणीके १,९८० सदस्योंमें से १,२५५ सदस्योंमें अपने हिस्सेका सूत नियमित रूपसे देते रहनेके वादेका पालन करनेमें दृढ़ताका अभाव पाया गया है। कोई यह न सोचे कि अगर अपने काते सूतके बजाय कुछ थोड़ा-सा पैसा देनेकी बात होती तो परिणाम इससे विशेष भिन्न होता। चाहे जिस कारणसे हो, लोग स्वेच्छासे अंगीकार किये ऐसे कर्त्तव्योंके पालनकी परवाह नहीं करते जिनको पूरा न करनेपर उन्हें तत्काल कोई नुकसान होनेका भय नहीं रहता। किन्तु जब-तक किसी राष्ट्रमें ऐसे पुरुष और स्त्रियाँ काफी बड़ी संख्यामें नहीं होती जो स्वेच्छासे अंगीकार किये अपने ऐसे दायित्वोंको भी पूरा करे जिनको पूरा न करनेपर उन्हें किसी महसूस होने लायक सजाका डर न हो तबतक वह राष्ट्र तेजीसे प्रगति नहीं कर सकता। जिस संगठनकी सदस्यता खो देनेसे आर्थिक या कोई अन्य भौतिक हानि नहीं होती, ऐसे संगठनकी सदस्यताके छिन जानेकी लोग परवाह नहीं करते, और कुछ तो यह भी सोचते हैं कि ऐसी संस्थाके सदस्य रहकर वे उसपर कृपा करते हैं और उस संस्थाको उनकी इस कृपाको अपनी एक बहुमूल्य थाती समझना चाहिए। लेकिन, अगर कोई सदस्य अखिल भारतीय चरखा संघकी बाबत भी कुछ ऐसे खयाल रखते हों तो मैं उन्हें सचेत कर देता हूँ। संघका सदस्य होना एक बड़ा सौभाग्य समझना चाहिए, क्योंकि यहाँ तो वे बिना किसी पारिश्रमिकके और विवेकपूर्वक किये गये आधे घंटेके ऐसे श्रमकी बदौलत, जिसे कोई भी साधारण पुरुष, स्त्री या बच्चा कर सकता है, सूत-चन्देके जबरदस्त संयुक्त प्रभावके साझेदार बनते हैं। इसलिए देर और चूक करनेवाले सदस्योंसे मैं अनुरोध करूँगा कि वे अपने हिस्सेका सूत भेजनेमें समयकी उतनी ही ज्यादा पाबन्दी बरतें जितनी कि वे रेलगाड़ी पकड़ने या अपने-अपने कार्यालयमें जानेमें बरतेंगे। वे याद रखें कि कताईका अपना जो महत्त्व है वह तो है ही, साथ ही यह कोई कम महत्त्वकी बात नहीं है कि सदस्यगण चरखा चलाते हुए प्रतिदिन नियमित रूपसे करोड़ों दीन-दुखी जनोंकी दशाका स्मरण करते हैं और एकसार तथा मजबूत सूत कातनेके लिए प्रतिदिन एकाग्रचित्त होकर बैठते हैं; और फिर उस सूतमें खुद उनकी भी उतनी ही भलाई छिपी हुई है जितनी कि भारतके शेष ३० करोड़

जनोंकी। मुझे मालूम हुआ है कि हरएक सदस्यको याददेहानीका पत्र लिखा गया है। सूत भेजनेमें देर करनेवाले सदस्य यह याद रखें कि ऐसे हर पत्रपर कमसे-कम आधा आना तो खर्च होता है और याददेहानीके कार्ड लिखने और उन्हें भेजनेके लिए रखे गये लोगोंकी तनख्वाहोंपर जो खर्च होता है सो अलग। ऐसा कहा गया है कि कुछ सदस्य डाक-खर्च बचानेके लिए कई महीनोंका चन्दा इकट्ठा हो जानेतक उसे भेजना टालते रहते हैं। डाक-खर्च बचानेका खयाल रखना बहुत ठीक है। लेकिन, जो लोग डाक-खर्च बचाना चाहते हैं, उन्हें अपने-अपने चन्दे अग्रिम भेज देने चाहिए। इन पृष्ठोंके हरएक पाठकके सामने यह बात बिलकुल स्पष्ट होगी कि महीने-भरमें १२,००० गज सूत कातना कोई भारी काम नहीं है। और अगर एक बार किस्त अग्रिम भेज देनेके बाद कातनेवाले प्रतिदिन आधे घंटेतक काता करें तो उनके पास कभी भी पीछेका कुछ बकाया नहीं रहेगा और वे चाहे अन्य कार्योंमें जितने भी व्यस्त हों, यह काम उन्हें अपने सिर बोझ-जैसा कभी नहीं लगेगा। और अगर सजाका उनपर कोई असर हो सकता हो तो मैं उन्हें याद दिला दूं कि अखिल भारतीय चरखा संघके अस्तित्वके प्रथम पाँच वर्षोंके अन्तमें जब संविधानपर पुनर्विचार करने और सदस्योंको और सुविधाएँ देनेका अवसर आयेगा तो चूक करनेवालोंको चूक करनेकी सजा भी निश्चय ही दी जायेगी और बड़ी चुस्तीसे दी जायेगी।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, ११-८-१९२७

२९७. टिप्पणियाँ

सच्चा त्याग

अभी पिछले ही दिनोंकी बात है कि दो नौजवान मेरे पास आये और उन्होंने मेरे हाथमें १० रुपये रख दिये। यह राशि अखिल भारतीय चरखा संघके नियमानुसार उन्हें फेरी लगाकर खादी बेचनेके कमीशनके तौरपर मिली थी। उन्हें इस पैसेको खुद अपने पास रखनेका अधिकार था। लेकिन वे इसे अपने पास नहीं रखना चाहते थे। कारण यह था कि उन्हें इस दलीलकी सचाईकी प्रतीति हो गई थी कि करोड़ों लोग उनसे भी बुरी स्थितिमें जी रहे हैं। वे दोनों नौजवान मुझसे यह कहकर चले गये कि वे आगे भी कमीशनकी राशि इसी तरह वापस देते रहेंगे।

इन दोनों नौजवानोंके त्यागकी प्रशंसाके तौरपर मैंने इस उदाहरणका जिक्र तो कर दिया है, लेकिन खादीकी फेरी लगानेवाले किसी भी व्यक्तिको इससे यह निष्कर्ष नहीं निकालना चाहिए कि इसी तरह कमीशनकी राशि वापस कर देनेकी, दूसरे शब्दोंमें खादीकी फेरी लगानेवाले हरएक व्यक्तिसे बिना पारिश्रमिकके फेरी लगानेकी अपेक्षा की जाती है। मैं यह जानता हूँ कि हर व्यक्तिके लिए ऐसा कर सकना सम्भव नहीं है, और खादी-कार्यके लिए जितने भी ईमानदार, मेहनती और समझदार फेरी

लगानेवाले मिल सकते हों, सबकी जरूरत है। उक्त दोनों नौजवानोंने अपने लिए जिस ऊँचे मानदण्डको पसन्द किया है, उसे सबसे स्वीकार करनेकी सिफारिश करनेका मतलब खादीकी फेरी लगानेवालोंकी संख्या सीमित करना होगा, जबकि उद्देश्य यह है कि इस कामकी ओर यथासम्भव अधिकसे-अधिक नौजवानोंको आकृष्ट किया जाये।

आखिरकार खादीकी बिक्रीसे बहुत ज्यादा कमीशन तो मिल नहीं सकता, और यह कमीशन सेंतमेंत भी नहीं मिलता, क्योंकि उसे बिक्रीके लिए लोगोंके सामने रखकर ही उसकी अच्छी बिक्री कर लेना सम्भव नहीं है। मैं यह जानता हूँ कि फेरी लगानेवालों को दरवाजे-दरवाजे जाना पड़ता है और अक्सर कोई खरीदनेकी किसी प्रकारकी उत्सुकता भी नहीं दिखाता; और यह देखते हुए कि कमीशन नकद बिक्री-पर ही दिया जाता है, खादीकी फेरी लगानेका मतलब खून-पसीना एक करके अपनी रोटी कमाना है। इसलिए अब इन युवकोंके उदाहरणसे प्रेरणा लेकर उन लोगोंको, जो खादीके लिए कुछ नहीं कर रहे हैं, थोड़ा-सा प्रयत्न करना चाहिए और इस उदाहरणका परिणाम फेरी लगानेवालों की संख्यामें वृद्धिके रूपमें प्रकट होना चाहिए। उन फेरी लगानेवालों से अपनी गाढ़े पसीनेकी कमाईको वापस कर देनेकी अपेक्षा नहीं की जायेगी। इसमें सन्देह नहीं कि ऐसे बहुत-से युवक और युवतियाँ हैं, जिनके पास काफी अवकाश है और जिन्हें आर्थिक प्रतिफलकी भी आवश्यकता नहीं है। वे इन युवकोंके उदाहरणका अनुकरण करके खादीकी फेरी लगानेके लिए अपनी सेवाएँ प्रदान कर सकते हैं। लेकिन, जो लोग खादीकी फेरी लगाना चाहते हों वे यह समझ लें कि जबतक वे अपने चरित्रका प्रमाणपत्र प्रस्तुत नहीं करते, जबतक जितनी खादी उन्हें बेंचनेको दी जाये उसकी जमानत नहीं देते तबतक उन्हें फेरी लगानेके लिए खादी नहीं मिल सकती।

कताईमें थकावटकी आजमाइश

सतीश बाबू बीमारीसे अच्छे होनेके बाद पूर्व स्वास्थ्य प्राप्त करनेके लिए काफी दिनोंसे आराम कर रहे थे। अब वे पुनः सोदपुरमें प्रतिष्ठानके कामपर आ डटे हैं। वे लिखते हैं:

> यहाँ एक कर्तयेके मनमें यह बात आ गई कि वह बीचमें रुके बिना लगातार कातकर देखे। वह एक दिन सारे समय रुई धुनने और पूनियाँ बनानेमें लगा रहा। राततक उसने पूनियाँ तैयार कर लीं और तब ९ बजे रातसे लेकर दूसरे दिन ७ बजे राततक कातता रहा। बीचमें उसने तीन घंटेका विश्राम लिया, दो घंटे सोनेके लिए और एक घंटा खाने-पीनेके लिए। १९ घंटेमें उसने १८ अंकका १०,५०० गज सूत काता। इन १९ घंटोंमें उस सूतको लपेटनेमें लगा समय भी शामिल है। भविष्यमें वह और भी अच्छे परिणाम दिखा सकता है।

यह जानना दिलचस्प होगा कि लगातार २२ घंटेमें से १९ घंटेमें काते गये इतने अधिक सूतमें मजबूती कितनी आ पाई है और वह किस हदतक एकसार बन पाया है।

सूतकी जाँचका लाभ

जबसे अखिल भारतीय चरखा संघ द्वारा प्राप्त यज्ञके भावसे काते गये सूतकी जाँचकी प्रणाली आरम्भ की गई है, तबसे उसकी किस्ममें धीरे-धीरे लगातार सुधार होता रहा है। इसके जो बहुत ही विशिष्ट परिणाम सामने आये हैं, उनमें से कुछ-एक नीचे दिये जा रहे हैं:

नाम		अंक	मजबूती	समरूपता
श्रीयुत वी० के० विश्वनाथन्, केरल				
	जाँचके पूर्व	२६	३१	८३
	जाँचके बाद	३२	९५	८१
श्रीमती एस० एम० पद्मावतीबाई, शिमोगा				
	जाँचके पूर्व	१६	२०	९१
	जाँचके बाद	२५	८०	८९
डा० एम० वेंकटराव, गडग				
	जाँचके पूर्व	२१	४०	९२
	जाँचके बाद	१९	७९	८८
श्रीयुत मोतीलाल राय, चन्द्रनगर				
	जाँचके पूर्व	३९	४७	९२
	जाँचके बाद	३३	७८	९५
श्रीयुत दयालजीभाई शिवजी, गुजरात				
	जाँचके पूर्व	१४	२३	७१
	जाँचके बाद	२०	७४	९३

नीचे कुछ ऐसे नाम दिये जा रहे है, जिनके काते सूतकी जाँच करनेपर परिणाम बराबर अच्छे आये हैं, और जिनका काता सूत हर तरहसे मिलके कते मजबूतसे-मजबूत सूतकी बराबरी करता है:

नाम	अंक	मजबूती	समरूपता
श्रीमती गंगाबाई कुंटे, बम्बई	३०	९८	९३
श्रीयुत ईश्वरलाल पटेल, बम्बई	१५	९२	९३
डा० ए० पी० कोठारी, बम्बई	२२	९६	८६
श्रीयुत जोगेन्द्र चटर्जी, सोदपुर	३०	९६	९२
श्रीमती लक्ष्मीबाई गोखले, बम्बई	३३	९५	८४
श्रीयुत गोविन्दभाई बी० पटेल (किशोर)	१५	८७	९३
विट्ठल लीलाधर (किशोर)	११	८०	८८

मिल-खद्दर

एक भाई लिखते हैं:

> मुझे मालूम है कि आपने कई बार उस चीजकी चर्चा की है, जिसे 'मिल-खद्दर' का गलत नाम दिया गया है, लेकिन स्पष्ट है कि मिल-मालिक अब भी इस नामका प्रयोग करनेका लोभ नहीं छोड़ पाये हैं। इस मामलेमें सबसे बड़ा दोषी . . . है जो अपनी चीजोंका विज्ञापन भी खुले आम इसी नामसे करता है। यह बात मैंने आपकी जानकारीके लिए और इस खयालसे लिखी है कि खद्दरके साथ जुड़ी पवित्रताकी रक्षाके लिए आप जो कार्रवाई कर सकते हों, करें।

पत्र-लेखकने जो-कुछ लिखा है, वह दुर्भाग्यसे बिलकुल सच है, और मुझे इस तथ्यकी जानकारी रही है। मैंने आशा तो यही की थी कि मिल-मालिक इस अवाछनीय कार्रवाईसे बाज आयेंगे। लेकिन यह एक निराधार आशा थी। मैं जहाँ भी गया हूँ लोगोंने मिल-मालिकोंके इस आचरणके प्रति, जो देशभक्तिके बिलकुल विरुद्ध है, मेरा ध्यान आकृष्ट किया है। मिल-मालिको द्वारा इस नामका नाजायज तरीकेसे प्रयोग करनेसे मुझे जो एकमात्र सन्तोष मिला है वह यह कि यह बात जनसाधारणमें खद्दरकी लोकप्रियताकी द्योतक है और मिल-मालिक उसी जनसाधारणके अज्ञानका गलत लाभ उठा रहे हैं। कारण, मैं जानता हूँ कि खरीदारोंको जब भी इस ठगीके व्यापारका पता चला है, उन्होंने अपने-आपको और मिल-मालिकोंको कोसा है। इस ठगीको रोकनेका एक ही उपाय है कि खुद खरीदार लोग ही सावधानी बरतें और खादी-प्रेमी-जन लोगोंको असली और नकली खद्दरमें भेद करना सिखायें।

अल्मोड़ामें हाथ-कताई

एक पत्र-लेखकने अल्मोड़ा जिला बोर्ड द्वारा चलाये जानेवाले स्कूलोंमें ऊनकी हाथ-कताईमें हुई प्रगतिका एक दिलचस्प विवरण भेजा है। जो लोग नगरपालिकाके स्कूलोंमें तकली-कताईको दाखिल करनेमें विश्वास रखते हैं, उनके लिए निम्नलिखित विवरण दिलचस्प भी है और वे उससे बहुत-कुछ सीख भी सकते हैं:[1]

> अल्मोड़ा जिला बोर्डके १९२५ के चुनावोंमें स्वराज्यवादी दल विजयी रहा और बोर्डमें उसने बहुमत प्राप्त किया। तबसे स्वराज्यवादी सदस्योंने अपनी संस्था और विशेषकर उसके शैक्षणिक पक्षको, राष्ट्रीय रूप देनेकी तरह-तरहसे कोशिश की है। इस दिशामें जो सबसे महत्त्वपूर्ण कदम उठाये गये हैं, वे हैं गाँवोंके स्कूलोंमें राष्ट्र-गान आरम्भ करना, राष्ट्रीय भावनाओंको जगाना, खादीकी पोशाकको प्रश्रय देना और ऊनकी कताई शुरू करवाना।
>
> जिला बोर्डके ग्रामीण स्कूलोंके बहुतसे शिक्षकोंने अपने पैसेसे ऊन खरीदी और इस तरह स्कूलोंमें कताई शुरू कर दी गई। जब बोर्डने स्वेच्छासे किये

१. यहाँ कुछ अंशोंका ही अनुवाद दिया जा रहा है।

गये इन सहज प्रयासोंकी लोकप्रियता देखी तो उसने एक कताई और बुनाई उप-समितिका गठन कर दिया और १९२६ के आरम्भमें इस जिलेमें चलाये जानेवाले जिला बोर्डके स्कूलोंमें कताई करानेके उद्देश्यसे ऊन खरीदनेके लिए ३,००० रुपये मंजूर किये। लगभग उन्नीस मन ऊन खरीदकर जिलेके ग्रामीण स्कूलोंमें बाँट दी गई। यह लगभग आठ महीने पहलेकी बात है। लड़कोंने सर्वत्र तकलीका स्वागत किया और ग्रामीण स्कूलोंके शिक्षकोंने ऊनकी कताईको सफल बनानेके लिए अपनी पूरी शक्ति लगाकर काम किया।. . .

. . . बोर्डने आदेश दिया है कि स्कूलके समयके बाद कताईकी कक्षाएँ लगाई जायें, क्योंकि पाठ्यक्रममें कताईकी शिक्षाकी कोई व्यवस्था नहीं है। जनसाधारणका उत्साह बढ़ाने और ग्रामीण छात्रोंको प्रोत्साहन देनेके लिए इस जिलेमें मेले-उत्सवोंके अवसरोंपर जगह-जगह कई तकली दंगलोंका आयोजन किया गया है। सबसे अच्छा कातनेवालोंको पुरस्कार (जिनमें खादी, खादीकी टोपियाँ, राष्ट्रीय झंडे और राष्ट्रीय भावनासे पूर्ण पुस्तकें शामिल हैं) दिये गये हैं। इस बातको लोगोंने बहुत पसन्द किया है और कताईकी शिक्षा देने तथा प्रदर्शनात्मक महत्त्वकी दृष्टिसे ये बड़े सफल साबित हुए हैं। स्कूली लड़कोंको कातते देखकर गाँववालोंका विवेक जाग उठा है। और कई स्थानोंमें यह कला, जिसे लोगोंने बहुत दिनोंसे भुला रखा था, फिरसे शुरू हो गई है। ग्रामवासियोंने कई स्थानोंपर अपने हाथ-कते ऊनको बुननेके लिए करघे बैठा दिये हैं। इस प्रकार स्कूलोंमें कताईका असर जनसाधारणपर भी हो रहा है।. . .

ऊनको कातनेके हमारे प्रयोगोंसे हमें यह यकीन हो गया है कि ऊन कातनेके लिए तकलीसे अच्छा और कोई साधन नहीं है। यह सीधी-सादी, हलकी, कमखर्च और सुगमतासे चलाई जाने लायक होती है। इसलिए बोर्डके स्कूलोंमें भी तकलियोंका ही सबसे ज्यादा बोलबाला है। एक छोटा बालक भी बिना किसी दिक्कत या खर्चके अपनी तकली खुद बना सकता है और वह जब और जहाँ चाहे, उसपर कात सकता है।. . .

अगर यह प्रयोग जारी रखा जाता है और कताईकी ठीक देख-रेख की जाती है तो यह उपक्रम न केवल आत्म-निर्भर हो जायेगा, बल्कि लाभदायक भी साबित होगा। कारण, यदि हाथ-बुनाईका काम लड़के खुद नहीं करते तो भी काते हुए ऊनके खरीदार बड़ी आसानीसे मिल जायेंगे; या इसे बोर्ड या सम्बन्धित स्कूल भी बुन सकता है और बुनी हुई चीजका इस्तेमाल या तो खुद लड़के कर सकते हैं या उसे खुले बाजारमें बेच दिया जा सकता है।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, ११-८-१९२७

२९८. अनुकरणीय

श्रीमती अन्नपूर्णाबाई घरेने, जिन्होंने पिछले चातुर्मास्यमें अखिल भारतीय चरखा संघको एक लाख गज सूत दिया था, इस बार फिर गत वर्षकी तरह ही प्रतिज्ञा ली है, और वे उसे पूरा करनेके लिए नियमित रूपसे चरखा चला रही हैं। इस प्रतिज्ञाका मतलब है चार महीनेतक प्रतिदिन ३३३ गज सूत कातना। अगर कताईमें उनकी गति औसत है तो उन्हें अपने इस यज्ञके लिए प्रतिदिन तीन घंटे देने पड़ेंगे, तभी वे इतनी मात्रामें अच्छा सूत कात सकेंगी। क्या दूसरी बहनें भी इस उदाहरणका अनुकरण करेंगी? यह तो है ही कि इस यज्ञके लिए चरखेमें विश्वास और उन करोड़ों अपरिचित मानवोंके प्रति, प्रेमका भाव होना आवश्यक है।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, ११-८-१९२७

२९९. पत्र: एम० अब्दुल गनीको

स्थायी पता: बंगलोर
११ अगस्त, १९२७

प्रिय मित्र,

पत्रके लिए धन्यवाद। जब आपको 'रंगीला रसूल' के प्रकाशनके बारेमें मालूम हुआ होगा, शायद उससे पहले ही मैंने उसके खिलाफ 'यंग इंडिया' में बहुत कड़े शब्दोंमें अपने विचार व्यक्त किये थे। इस बातको ३ वर्ष हो चुके हैं। मौजूदा विवाद में मैंने कोई हिस्सा नहीं लिया है, क्योंकि 'रंगीला रसूल' के मामलेके फैसलेपर जो भारी आन्दोलन खड़ा हो गया है, उसे मैं ठीक नहीं समझता। न्यायाधीशपर किये गये प्रहारको मैं एक दुःखद बात मानता हूँ। सम्भव है कि उससे निर्णयकी भूल हुई हो, लेकिन उसके फैसलेसे ऐसा कुछ प्रकट नहीं होता कि उसके मनमें कोई पूर्वाग्रह था। मुझे मालूम हुआ है कि उसने पुस्तिकाकी तीव्र भर्त्सना की। लेकिन उसका खयाल था कि खुद कानून ऐसा नहीं है कि पुस्तिकाके लेखकके खिलाफ कोई कार्रवाई की जा सके। कानूनमें परिवर्तन करानेके लिए जो आन्दोलन चल रहा है, वह ठीक है, लेकिन अगर कानून कारगर नहीं पाया जाता तो चाहे आन्दोलन किया जाये या नहीं, उसमें परिवर्तन तो होना ही है।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

एम० अब्दुल गनी
कुर्नूल

अंग्रेजी (एन० एन० १२३८६-ए) की माइक्रोफिल्मसे।

३००. पत्र: ए० वकीको

स्थायी पता: बंगलोर
११ अगस्त, १९२७

प्रिय मित्र,

मुझे खुशी है कि आपने मुझे 'रंगीला रसूल' नामकी पुस्तिकाको लेकर चल रहे आन्दोलनके बारेमें लिखा। इस तरहका मुझे यह चौथा पत्र मिला है। वह पुस्तिका मैंने आजसे लगभग तीन साल पहले देखी थी, और उसे पढ़कर मुझे बहुत दुःख हुआ था। यह सब मैंने 'यंग इंडिया' के पृष्ठोंमें लिखा था। इस समय जो आन्दोलन चल रहा है, वह मुझे बिलकुल निराधार और गलत दिशामें चल रहा जान पड़ा है। इस बारेमें यदि मैंने कुछ लिखा भी तो उसमें मैं इस आन्दोलनकी निन्दा ही करूँगा, हालाँकि जहाँतक पुस्तिकाका सवाल है, मैं अपने पुराने विचारोंको अवश्य दोहराऊँगा। न्यायाधीशकी जो आलोचना की जा रही है, वह बड़े दुःखकी बात है। मैं न्यायाधीशके त्याग-पत्र देनेकी माँगमें अथवा जिन लेखकोंने न्यायाधीशका अपमान किया है उनके रिहा किये जानेकी माँगमें शरीक नहीं हो सकता। मेरे विचारसे यह आन्दोलन वहींतक सही है जहाँतक इसका सम्बन्ध इस माँगसे है कि यदि कोई कानून किसी वर्ग या जनसमुदायकी धार्मिक भावनाओंको ठेस पहुँचानेवाले लोगोंको दण्डित करनेकी दृष्टिसे अपर्याप्त है तो उसमें परिवर्तन किया जाना चाहिए। लेकिन उस आन्दोलनमें जो तमाम कटुता आ गई है, उस सबकी कतई कोई जरूरत नहीं है। यदि कानून दोषपूर्ण है तो तूफान खड़ा कर देनेवाले किसी आन्दोलनके बिना भी सरकार उसे दुरुस्त करनेको बाध्य है।

जिन पत्र-लेखकोंका मैंने जिक्र किया है, उन्होंने मुझे लिखा है कि हिन्दुओं द्वारा चलाये जानेवाले अखबारोंने 'रंगीला रसूल' में लिखी घिनौनी बातोंकी ताईद की है। मेरे पास यहाँ हिन्दुओं द्वारा सम्पादित जो अखबार आते हैं और जिन्हें मैं पढ़ता हूँ, उनमें मैंने कभी भी ऐसी कोई चीज नहीं देखी है। मैंने इन पत्र-लेखकोंसे कहा है[1] कि वे मुझे बतायें कि उनका तात्पर्य किन लेखोंसे है। लेकिन मुझे इन पत्रोंके उत्तरमें किसीने कुछ नहीं लिखा है। क्या आपने उनके द्वारा बताये गये किसी ऐसे लेखको पढ़ा है? क्या आपने ऐसे लेख देखे हैं? यदि देखे हों, तो कृपया उन्हें मुझे भेज दें। मैं निस्सन्देह, उनपर कुछ कार्रवाई करना चाहूँगा।

१. देखिए "एक पत्र" १०-७-१९२७ और "पत्र: गुलजार मुहम्मद 'अकील' को" ७-८-१९२७।

आशा है, कॉलेज ठीक तरहसे चल रहा होगा।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

श्रीयुत ए० वकी
कोटा डाकघर
जिला शाहाबाद
(अरा विहार प्रदेश)

अंग्रेजी (एस० एन० १२३८७-ए) की माइक्रोफिल्मसे।

३०१. पत्र : हेलेन हॉसडिंगको

स्थायी पता : बंगलोर
११ अगस्त, १९२७

प्यारी गौरैया,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हे जो अनुवाद भेजा गया था, उसको लेकर तुम नाहक परेशान होती हो। तुममें विनोदकी इतनी भावना तो है ही कि तुम इन सब चीजोंको हलके मनसे ग्रहण कर सको। मैंने तो यह अनुवाद तुम्हें सिर्फ इसलिए भेज दिया था कि जिससे तुम जान सको कि तुम्हारे साथी मुसाफिरने तुम्हारे बारेमें क्या लिखा है। किसीकी लिखी ऐसी बेतुकी बातोंकी ओर हम ध्यान ही क्यो दे, विशेषकर तब जब ये अजनबी लोगोंकी लिखी बातें हो? जहाँतक मेरा सवाल है, तुमने इस बातसे इन्कार करते हुए जितना कहा वह पर्याप्त है। लेकिन मैं उसे अखबारोंको भेजनेवाला नहीं हूँ। मैं नहीं समझता कि अब किसीको उस लेखकी याद होगी।

क्या तुम अब बिलकुल ठीक हो? मैं अब थोड़ा-बहुत दौरा कर रहा हूँ और काफी अच्छा महसूस करता हूँ, हालांकि उतना अच्छा नहीं जितना बीमार पड़नेसे पहले था। कृष्णदास संघके कामसे अभी बंगाल गया है, और वहाँ गया है तो अपने गुरुजी और माता-पितासे भी मिलता आयेगा। तुम्हारा पत्र उसे भेज रहा हूँ। मैं जानता हूँ कि इसको पढकर उसे बड़ा मजा आयेगा।

मैं तुम्हारी ओरसे यह आश्वासन चाहता हूँ कि इसे लेकर तुम कभी परेशान नहीं होगी। तुम्हारे बारेमें चाहे जो भी बेतुकी और गन्दी बातें कही जायें, तुम्हें उनकी चिन्ता नहीं करनी चाहिए क्योंकि जिस असली बातकी हमें चिन्ता करनी चाहिए वह यही तो है कि हमारी अन्तरात्मा हमारे बारेमें क्या कहती है।

सस्नेह,

हृदयसे तुम्हारा,
बापू

अंग्रेजी (एस० एन० १२५११) की फोटो-नक़ल से।

३०२. पत्र : टी० परमेश्वर अय्यरको

स्थायी पता : बंगलोर
११ अगस्त, १९२७

प्रिय मित्र,

आपके उस तिथिरहित पत्रका उत्तर देनेके लिए समय निकालनेकी मैं बहुत कोशिश कर रहा था, जिसके साथ आपने भद्रावती और कृष्णराज सागरसे सम्बन्धित कागजात भेजे हैं। मगर उत्तर दे नहीं पाया था कि आपका दूसरा पत्र आ पहुँचा, जिसके साथ आपने और भी कतरनें भेजी हैं। लेकिन मैं यह नहीं चाहता था। मैं तो यह चाहता था कि यदि आप समय निकाल सकें तो मुझे असन्दिग्ध तथ्य-आँकड़ोंसे युक्त ऐसी संक्षिप्त टिप्पणी लिख भेजें, जिसे मुझ जैसा व्यस्त व्यक्ति भी आसानीसे पढ़ सके और तद्नुसार जैसा ठीक लगे वैसा कर सके।[1] मगर आपने मुझे जो कागजात भेजे हैं, यदि मैं उन्हें पढनेका प्रयत्न करूँ तो फिर बीमार हो जाऊँ।

आपने अपने सबसे पहले पत्रमें मुझसे जो लेख पढ़नेको कहा था, उसे मैं पढ़ गया हूँ। इसमें कही बातें मनको जँची नहीं, और मुझे यह लेख तटस्थ भावसे विशुद्ध तर्कपूर्ण शैलीमें लिखा गया नहीं लगा।

श्री शास्त्रीके पत्रसे आपने जो उद्धरण दिया है, वह मुझे असंगत जान पड़ता है। जहाँ उन्होंने आपको इस बातके लिए बधाई दी है कि अवकाश ग्रहण करनेके बाद भी राज्यके कल्याणमें आपकी दिलचस्पी बराबर बनी हुई है, वहाँ भद्रावती-योजनाके विषयमें अपना मत बिलकुल नहीं बताया है।

मैं इस महीनेकी २१ तारीखसे पहले बंगलोर वापस नहीं आ पाऊँगा। यदि मुझे थोड़ा-सा समय मिल सके तो आपसे व्यक्तिगत रूपसे मिलकर मुझे बड़ी खुशी होगी। अनुचित न मानें तो कहूँ कि मेरे वापस आनेपर आप मुझसे मिलनेकी कोशिश करें। जिस समय आप मिलने आयें, उस समय यदि मैं व्यस्त न हुआ तो मुझे आपसे मिलकर निस्सन्देह बड़ी खुशी होगी।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत टी० परमेश्वर अय्यर
अवकाशप्राप्त न्यायाधीश
'व्हाइट हाउस'
चामराजपेट
बंगलोर सिटी

अंग्रेजी (एस० एन० १२६३१) की माइक्रोफिल्मसे।

१. देखिए "पत्र : टी० परमशिव अय्यरको", २९-७-१९२७। हालाँकि दोनों पत्रोंमें पानेवालेका नाम भिन्न प्रकारसे लिखा गया है किन्तु ये एक ही व्यक्तिको लिखे गये होंगे।

३०३. पत्र : कृष्णदासको

दावनगिरि
११ अगस्त, १९२७

प्रिय कृष्णदास,

अब मैं समझ गया हूँ कि तुमने रामविनोदके बारेमें क्या किया है। मेरा खयाल है, सारी व्यवस्था काफी सन्तोषजनक है। लेकिन मेरा अपना ख़याल तो जो है वह है ही; यह जानकर मुझे बड़ी खुशी हुई है कि तुम और राजेन्द्रबाबू दोनों रामविनोदके आचरणसे सन्तुष्ट हैं और दोनोंको उसकी ईमानदारीके बारेमें कोई सन्देह नहीं है।

तुम सुरेशबाबूसे तो मिल ही चुके होगे, शायद कोमिल्ला भी हो आये होगे, और यदि तुम्हारे मनमें सोदपुर जानेका विचार अभीतक न आया हो तो मेरी इच्छा है कि अब तुम वहाँ जाकर कारोबारको देख आओ और विशेष रूपसे सतीशबाबू तथा हेमप्रभादेवीसे मिल आओ ताकि तुम मुझे बता सको कि इन दोनोंका स्वास्थ्य अब कैसा है और वहांके कारोबारमें कितनी प्रगति हुई है। तुमने अपने पत्रमें खद्दरके बारेमें जिस रायका हवाला दिया है, उसपर भी तुम सुरेशबाबू तथा सतीशबाबूसे बातचीत कर सकते हो। इसमें कोई सन्देह नहीं कि बिचौलियेको कुछ अवश्य मिलता है। इसमें कुछ अनुचित भी नहीं है। लेकिन इसमें भी कोई सन्देह नहीं है कि बुनाई और कताईका पारिश्रमिक सीधे उन कारीगरोंकी जेबमें जाता है जिनको ध्यानमें रखकर हम यह प्रवृत्ति चलाते हैं।

आज हम दावनगिरिमें हैं और दस दिन इसी इलाकेके दौरेपर रहेंगे और २१ तारीखको बंगलोर पहुँचेंगे। मैसूर राज्यसे हम अन्तिमरूपसे २८ तारीखको प्रस्थान करेंगे।

अंग्रेजी (एस० एन० १४२१६) की फोटो-नकलसे।

३०४. पत्र : जयन्तीको

११ अगस्त, १९२७

चि० जयन्ती,

तुम्हारा पत्र मिला। बाढ़ने सारा समय-क्रम गड़बड़ कर दिया है इसलिए यह तो सम्भव नहीं रहा कि तुम्हें मेरा आशीर्वाद जन्म-तिथिके ही दिन पहुँच जाये। परन्तु तुम मान लेना कि यह आशीर्वाद तुम्हें उसी दिन मिला। तुम चिरायु होओ, शुद्ध सेवक बनो और तुम्हारी समस्त शुभ आशाएँ फलीभूत हो। तुम और अन्य सभी विद्यार्थी एक काम अवश्य करो, अपने अक्षर मोतीके समान सुन्दर बनाओ। यह काम कुछ कठिन भी नहीं है। जिस प्रकार बेसुरे गायनको हम संगीत नहीं कह सकते उसी प्रकार बेडौल अक्षर, अक्षर नहीं माने जा सकते। मैं तुम्हें यह सीख देने योग्य तो नहीं हूँ क्योंकि मैं जानता हूँ कि मेरे अक्षर सुन्दर नहीं हैं। परन्तु जिस प्रकार डूबता हुआ मनुष्य यह कह जाये कि इस स्थानपर न आना तो समझदार उसकी चेतावनीका खयाल रखते है उसी प्रकार तुम सभी विद्यार्थी समझदार बनकर मेरी चेतावनीको मानना। शब्द अलग-अलग लिखने चाहिए। पंक्तियोंमें अन्तर होना चाहिए। पंक्ति सीधी होनी चाहिए और प्रत्येक अक्षर उसी प्रकार कुशलतापूर्वक लिखा जाना चाहिए जैसे चित्रकार अपना चित्र बनाता है।

अब रामायणके बारेमें। धर्मग्रन्थके रूपमें मैं तुलसीकी रामायणको अवश्य अधिक मान दूँगा। वाल्मीकिकी रचनामें कला चाहे अधिक हो पर भक्ति-रस तो तुलसीदासकी रचनामें ही अधिक है, इस विषयमें मुझे तनिक भी शंका नहीं है। फिर वाल्मीकिकी रामायण फिलहाल तो संस्कृतमें ही पढ़ी जा सकती है। मैंने अभीतक उसका एक भी ऐसा गुजराती अनुवाद नहीं देखा जो मूलका-सा रस दे सके। दोनोंमें से कोई भी ऐतिहासिक ग्रन्थ नहीं है। वाल्मीकि रामायणमें कुछ ऐतिहासिक स्त्री-पुरुषोंका चित्रण है, किन्तु वह मात्र झाँकीके रूपमें है। उससे वास्तविक इतिहासका अनुमान नहीं किया जा सकता, ऐसा मेरा दृढ़ मत है। तुलसीदासकी रामायणमें तो इतिहासका प्रश्न ही नहीं है। अगर हम यह कहें कि उन्होंने अपने युगके अनुरूप वाल्मीकिकी रामायणका अनुवाद किया है तो ठीक ही होगा। पर यह अनुवाद करते हुए उन्होंने भक्तिके आवेगमें उसमें मनचाही छूट ली है। किन्तु उन्होंने जो भी छूट ली है उससे हिन्दू समाजका अनिष्ट नहीं, लाभ ही हुआ है। जैसे-जैसे समय बीतता जाता है वैसे-वैसे अलौकिक गुणोंसे युक्त स्त्री-पुरुष देवी और देवता बन जाते है और अन्तमें भगवान्‌के समान पूजे जाने लगते हैं। ऐसा तो हमेशा होता है और यह ठीक भी है। देहधारी मनुष्य दूसरी किसी रीतिसे भगवान्‌की पूजा नहीं कर सकते। इसलिए तुलसीदासने भगवान् रामचन्द्रके बारेमें जो-जो लिखा है वह सब उनके अपने भाव हैं। तुलसीदासने बताया है कि भगवान्‌का स्वरूप अवर्णनीय

है। इन्द्रियोंके लिए अगम्य और गुणातीत है। अतः यदि वालि का वध हमारे गले न उतरता हो तो हम उतने भागका त्याग कर दें अथवा यह मान लें कि ऐसा वर्णन करते समय तुलसीदासने अपने युगकी मान्यताओंका अनुसरण किया है, उनसे आगे वे नहीं जा सके। मनुष्य जैसे-जैसे आगे बढ़ता जाता है भगवान्‌के विषयमें उसका ज्ञान सूक्ष्म और शुद्ध होता जाता है और होना भी चाहिए। इसलिए रामायणको ऐतिहासिक ग्रन्थके बजाय धर्मग्रन्थके रूपमें पढ़ें। और उसके कथा-भागमें जो अंश हमें नीति-विरुद्ध लगे हम उसे छोड़ दें। तुलसीदासजीने स्वयं अपनी रचनाको सदोष माना है। उन्होंने उसका कारण दूसरा बताया है, फिर भी उन्होंने उसे सदोष माना है हमारे लिए इतना ही काफी है। फिर, "जड-चेतन गुन-दोपमय विस्व कीन्ह करतार" वाला प्रसिद्ध दोहा लिखकर तुलसीदासने हमें प्रत्येक वस्तुको देखनेकी कला सिखा दी है। मनुष्यकी प्रत्येक कृति गुण-दोषमय है अतः हमें हंसकी तरह गुणरूपी सार ग्रहणकर दोषरूपी विकारोंका त्याग कर देना चाहिए। सभी पुस्तकोंको पढ़नेकी यह सुनहरी कला है। जो समझमें न आये वह विनयपूर्वक शिक्षकसे पूछें और तब भी समझमें न आये तो उसे छोड़ दें। पर अपनी बुद्धिको भ्रष्ट न होने दें और मनको मलिन न होने दें। जो सत्य, अहिंसा आदिके विरुद्ध हो वह शास्त्र-वचन नहीं हो सकता, ऐसा मानकर शास्त्रके रूपमें प्रसिद्ध ग्रंथमें भी, भले वह छपा हुआ हो तब भी, हम उसका त्याग कर दें।

यह पत्र तुम्हारे लिए ही लिखा है पर ऐसा समझकर कि यह तुम सबके लिए है, इसे सबको पढ़वाना और बड़ोंको भी दिखाना। क्योंकि यद्यपि मैंने रामायणके विषयमें अपने विचार थोड़े-थोड़े करके तो कई बार समझाये हैं पर इतनी स्पष्टतापूर्वक और इतने संक्षिप्त रूपमें कभी पहले लिखे हों ऐसा मुझे याद नहीं पड़ता।

[गुजरातीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरी।
सौजन्य : नारायण देसाई

३०५. पत्र : रामदास गांधीको

११ अगस्त, १९२७

कान्तिलालके विषयमें तुम्हें चिन्ता करनेका कोई कारण नहीं है। मैंने जो कदम उठाया है उसके विषयमें तुम्हें पता लगा होगा। एक बात तो मैं तुम्हें लिख ही चुका हूँ कि जो कार्य तुम्हारा नहीं है उस कार्यके विषयमें तनिक भी चिन्ता नहीं करनी चाहिए। इस सम्बन्धमें एक अन्य सूचना हमें एक अन्य श्लोकमें मिलती है:

'तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि।'[1]

यह श्लोक तुम्हें दूसरे अध्यायमें मिलेगा। अर्थ यह है कि जिस कार्यको तुम रोक नहीं सकते उसके लिए शोक करना उचित नहीं। भगवान् कृष्णने यह कहकर

१. भगवद्गीता, २-२७।

ही अर्जुनके शोकका निवारण किया था। सामान्यतः हमारा व्यवहार इससे उलटा होता है। कोई मरता है तो हम रोते हैं, हमारा घर जल जाता है तो हमें दुःख होता है। और अभी बाढ़ आई उस समय तो हम पागल ही बन गये। किन्तु मरना, आग लगना या बाढ़का आना आदि सारी घटनाएँ अपरिहार्य हैं। यदि हम उनका शोक करते रहें तो इस तरह कितने दिन कट सकते हैं। इस वाक्यका यह अर्थ नहीं है कि हमें अपना हृदय कठोर बना लेना चाहिए। जहाँ आग बुझाई जा सकती है, बाढ़से हुई हानिकी पूर्ति की जा सकती है, मरणासन्न व्यक्तिको बचाया जा सकता है वहाँ निश्चय ही हमें अपनी शक्तिके अनुसार उपाय करने चाहिए। किन्तु इन सारी घटनाओंका हम अपने ऊपर और कोई प्रभाव न पड़ने दें।

अब तो मुझे यही समझना होगा कि इस बार तुम यहाँ नहीं आ सकते और यह ठीक ही है किन्तु जब तुम्हें सुविधा हो और तुम चाहो तब आना। मैं जहाँ भी होऊँ तुम वहीं आ जाना।

[गुजरातीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरी।
सौजन्य : नारायण देसाई

३०६. पत्र : वसुमती पण्डितको

दावनगिरि
श्रावण सुदी १३ [११ अगस्त, १९२७][1]

चि० वसुमती,

तुम्हारा पत्र कल ही मिल पाया — यानी सात दिनमें। चि० कुसुमके सम्बन्धमें तुमने जानकारी भेजी यह ठीक हुआ। इस दिशामें और अधिक जो भी मालूम कर सको मुझे बताना। मैंने कुसुमको पत्र लिखा है।[2] उसका उत्तर अभीतक नहीं आया। बाढ़के समय तुम सब लोगोंकी कड़ी परीक्षा हुई होगी। इस बार यह सुनकर प्रसन्नता हुई कि तुम्हारी तबीयत ठीक है। उसे ठीक ही रखना।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ५८६)
सौजन्य : वसुमती पण्डित

१. गांधीजी उस तारीखको दावनगिरिमें थे।
२. देखिए "पत्र: कुसुमबहन देसाईको", २९-७-१९२७।

३०७. पत्र : वी० एस० श्रीनिवास शास्त्रीको

स्थायी पता : बंगलोर
१२ अगस्त, १९२७

प्रिय भाई,

पता नहीं, आप अपने कार्यके बारेमें श्री एन्ड्र्यूजकी राय जानना चाहेंगे या नहीं। लेकिन उन्होंने मुझे निम्नलिखित तार देनेके लिए पैसा खर्च करना ठीक समझा :

> शास्त्रीकी सफलता अभूतपूर्व। गवर्नर-जनरल काफी सहायता कर रहे हैं, मन्त्री और अधिकारीगण भी।

तार आदिपर पैसा खर्च करनेके मामलेमें श्री एन्ड्र्यूजके विवेकपर भरोसा करना मुश्किल है, फिर भी मैं इस तारके लिए उन्हें कोसनेका साहस नहीं कर सकता। मैं इसका उपयोग अखबारोंके लिए नहीं करनेवाला हूँ। मुझे आपकी सफलताके बारेमें कभी कोई सन्देह रहा ही नहीं। मैं तो केवल आपके स्वास्थ्यके विषयमें आश्वस्त होना चाहता हूँ।

मैं देखता हूँ आप लोगोंसे कह रहे हैं कि आपके कार्यकी अवधि एक वर्षसे आगे नहीं जायेगी। यह वर्ष तो बड़ी तेजीसे बीतता जा रहा है, लेकिन जो भी हो मुझे तो आप यह आश्वासन दे ही चुके हैं कि यदि इस वर्षके बाद भी आपका वहाँ रहना अनिवार्य जान पड़ा तो आप वहाँसे भाग नहीं आयेंगे, कमीशनके कार्यके लिए भी नहीं।

मुझे कुमारी श्लेसिनकी ओरसे एक बहुत ही सुन्दर पत्र मिला था, जिसमें से कुछ वाक्य उद्धृत करनेकी मुझे बहुत इच्छा हुई, लेकिन मैं अपनी इस इच्छाको दबा गया और मैंने उस पत्रको नष्ट कर दिया। यदि उसने अपने वादेको पूरा किया हो तब तो इस पत्रके आपके पास पहुँचनेसे पहले ही वह आपसे मिल चुकी होगी।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

परम माननीय वी० एस० श्रीनिवास शास्त्री
एजेन्ट-जनरल
दक्षिण आफ्रिका
डर्बन

अंग्रेजी (एस० एन० १२३७०) की फोटो-नकलसे।

३०८. पत्र : बाल कालेलकरको

१२ अगस्त, १९२७

काकासाहबका संन्यास लेना तुम्हें अच्छा नही लगता इतना कहना काफी नहीं है। जब मैंने तुम्हें यह लिखा था कि पुत्रकी आयु १६ वर्षकी हो जानेपर वह अपने पिताका मित्र हो जाता है, तब मेरा यह आशय भी था कि अब तुममें स्वतन्त्रतापूर्वक विचार करनेकी बुद्धि आ गई है। और जो व्यक्ति स्वतन्त्रतापूर्वक विचार करता है उसे अपने मतके समर्थनमें स्वयं अपनेको और दूसरोंको सबल कारण दे सकना चाहिए। मुझे अमुक चीज अच्छी लगती है और अमुक अच्छी नही लगती — इसका कारण उसे देना चाहिए। बचपनसे ही ऐसी शक्तिका विकास करके कुछ लोग महापुरुषके पदतक पहुँचे हैं। उदाहरणके लिए महर्षि दयानन्द, चैतन्य, रामकृष्ण परमहंस और अन्य ऐतिहासिक व्यक्ति। अभी हम हिन्दू धर्म क्या कहता है इसका विचार न करके स्वतन्त्र रीतिसे संन्यासके प्रश्नपर विचार करें। संन्यास एक मानसिक स्थिति है और इस मानसिक स्थितिको हम मनुष्यके आचरणमे देख सकते हैं। संन्यासकी मानसिक स्थितिको प्राप्त किये बिना यदि कोई मनुष्य संन्यासीके आचरणका अनुकरण करे तो उसका यह आचरण संन्यासकी श्रेणीमें नही आ सकता। इस तरह देखें तो हम सबको और कम या अधिक परिमाणमें सारी दुनियाको संन्यासीका जीवन बिताना चाहिए। और जो लोग ऐसा जीवन नहीं बिताते वे त्रिविध ताप भोगते हैं। संन्यास यानी भोगका त्याग। सम्पूर्ण त्याग यानी सम्पूर्ण संन्यास। गृहस्थ व्यक्तिको भी कुछ-न-कुछ संयम तो सर्वदा पालना ही पड़ता है। जो ऐसे संयमका पालन नहीं करता वह दुःखमें पड़ता है, पृथ्वीके लिए भाररूप बनता है और अनेक प्रकारके रोगोंका शिकार बनता है। इस परिस्थितिसे हम यह अनुमान कर सकते है कि ज्यों-ज्यों हमारे जीवनकी उन्नति हो त्यों-त्यों उसमें संयम यानी संन्यासका अंश बढ़ना चाहिए। तथा प्रत्येक मनुष्यका यह कर्त्तव्य है कि वह यथाशक्ति अपनी जीवन-चर्यामें संयमकी वृद्धि करता रहे। यदि तुम ऊपरकी इस दलीलको स्वीकार करो कि संयम एक श्रेयस्कर वस्तु है तो तुम्हें यह मानना पड़ेगा कि जिस वस्तुसे मनुष्यका श्रेय-साधन होता हो, उसे करनेमें पतिको अपनी पत्नीकी या पत्नीको अपने पतिकी सम्मति लेनेकी आवश्यकता नहीं होनी चाहिए। दाम्पत्यको सुगन्धित रखनेका एक ही उपाय है और वह यह कि भोग-विलासमें दोनोंकी सहमति होनी चाहिए। किन्तु जो भोगके त्यागमें आगे बढ़ना चाहता है उसे आगे बढ़नेका अधिकार होना चाहिए। यदि ऐसा न हो तो जो लोग गृहस्थका जीवन बिता रहे हैं उनकी उन्नति नही हो सकेगी और यदि उनकी उन्नति नहीं हो सकेगी तो सारे समाजकी उन्नति रुक जायेगी। इस विवेचनके बाद क्या अब तुम यह स्वीकार नहीं करोगे कि काकासाहबको उक्त प्रकारका संन्यास लेनेका अधिकार है? काकासाहबके इस संन्याससे

काकीका कोई अनिष्ट नही होता; बल्कि इसमें तो उनका लाभ ही है। मैं ऐसा मानता हूँ कि अहिंसा धर्म जिस मूल मान्यतासे उत्पन्न होता है, वह यह है कि एककी उन्नतिमें सबकी उन्नति है और एककी अधोगतिमें सबकी अधोगति है। इसीलिए अहिंसा धर्म यह आदेश देता है कि हमें प्राणि-मात्रके प्रति दयाभाव रखना चाहिए। काकी और तुम अज्ञान अथवा मोहके कारण काकासाहबकी त्याग-वृत्तिको रोको तो इसमें तुम्हारा, काकासाहबका और समाजका श्रेय नही; बल्कि अश्रेय है। भोगके त्यागकी आवश्यकताका भान होने और वैसा कर सकनेकी शक्ति आनेके बाद यदि काकासाहब काकीको या तुम्हे खुश करनेके लिए संन्यास लेनेसे रुकते है तो इसमें उनके मनुष्यत्वकी हानि होती है। ऐसा भला तुम क्यों होने दोगे? मेरे इन शब्दों-पर तुम गम्भीरतापूर्वक विचार करना और फिर जो तुम्हें सूझे, मुझे लिखना।

अब तुम्हारे पत्रमें प्रस्तुत तुम्हारे एक विचारकी परीक्षा करना और रह जाता है। ऐसा लगता है कि तुम पितृ-भक्ति और मातृ-भक्तिमें भेद करते हो। किन्तु वस्तुत: ये दोनों एक ही वस्तु है और पुत्र तो इनमें भेद कर ही नही सकता। किन्तु ज्ञानी पुत्रकी भक्ति अधी नही होती। कल्पना करो कि पिता शराबी है और माता संयमी है; या पिता मद्यपानमें अपने पुत्रकी सहायता चाहता है और माँ पुत्रको ऐसी सहा-यता देनेसे रोकती है। पुत्र माँकी आज्ञा स्वीकार करता है और पिताको मदद नही देता। इस उदाहरणमें स्पष्टत: पुत्र पितृ-भक्ति और मातृ-भक्ति दोनोंके ही धर्मका पालन करता है यद्यपि इस धर्मका पालन करते हुए वह अपने पिताके मनको दु:ख पहुँचाता है। इस तरह यह उदाहरण इन दोनो भक्तियोंके भेदका उदाहरण नही बल्कि ज्ञानमय भक्तिका रहस्य समझाता है। यही बात तुम्हारे लिए भी लागू होती है। काकासाहब मानसिक संन्यास अपनायें इसमें उनका और तुम सब लोगोंका श्रेय है। अज्ञान और मोहके कारण काकीको यह बात अच्छी नही लगती। यदि तुम यह स्वीकार करो कि काकासाहबका सन्यास लेना उचित है तो माता-पिताके प्रति भक्तिका तुम्हारे लिए यही आदेश हो सकता है कि तुम्हे काकासाहबको मदद देनी चाहिए और काकीसे अनुरोध करना चाहिए कि वह काकासाहबके इस निश्चय-में अपनी सम्मति प्रदान करे और यदि वह सम्मति न दे तो भी तुम्हें तो उसमे अपनी सम्मति देनी ही चाहिए और ऐसा विश्वास रखना चाहिए कि अन्तमें काकीजी भी इस धर्मको समझ जायेंगी।

तुम्हारा मन काकीके साथ रहनेका होता है, यह मै समझ सकता हूँ किन्तु यह मोह है। विद्यार्थीके लिए तुम संन्यासकी यानी ब्रह्मचर्य आश्रमकी आवश्यकता अपने पत्रमें स्वीकार करते हो। प्राचीनकालमें विद्यार्थी अपने माँ-बापका घर छोड़कर गुरुके साथ रहता था। हम यहाँ इस आश्रममें वैसी ही स्थिति वापस लानेका प्रयत्न कर रहे है। तुम्हें इस प्रयत्नमे सहायक होना चाहिए। माँ-बापकी अनुपस्थितिमें सन्तोषपूर्वक और संयमपूर्वक रहना सीखना चाहिए। मैं मानता हूँ कि गुरुवर्गमें अभी इतना संयम, इतना ज्ञान और इतना प्रेम नही है कि विद्यार्थी अपने माता-पिताको आसानीसे भूल सके। किन्तु यह तो तुम जानते ही हो कि हम एक ऐसी

वस्तुको संजीवित करना चाह रहे हैं जो नष्ट हो चुकी है और आश्रमका गुरुवर्ग इस दिशामें प्रयत्नशील है। समझदार विद्यार्थियोंको उदार मनसे उन्हे इस प्रयत्नमें मदद करनी चाहिए और जहाँ-जहाँ वे माता-पिताके अभावको पूरा न कर पाते हों वहाँ-वहाँ तुम्हें धीरज रखकर सहनशीलताका विकास करना चाहिए। यदि तुम लोगोंमें से कुछ थोड़े विद्यार्थी ही ऐसा करेंगे तो हम आश्रमको ज्यादा शुद्ध बना सकेंगे।

तुमने जिस नि.संकोच भावसे मुझे अपना पहला पत्र लिखा है उसी निस्संकोच भावसे हमेशा लिखते रहना। बड़ोंके सामने अपना मन बिना किसी दुराव-छिपावके स्पष्टतापूर्वक खोलना ही सच्ची विनय है। हम अपनी भाषामें मर्यादाका पालन करें और उसे मीठी बनायें किन्तु मनमें आये हुए विचारोंको मर्यादित करने और छिपानेकी चेष्टामें हम गम्भीर अपराधके भागी होंगे। उसमें शिष्टता तो हो ही नहीं सकती।

[गुजरातीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरी।
सौजन्य : नारायण देसाई

३०९. भाषण : दावनगिरिकी सार्वजनिक सभामें[1]

१२ अगस्त, १९२७

गांधीजीने कहा कि खादी आधुनिक उद्योगवादसे बरबाद हुए गाँवोंका अंशतः पुनरुद्धार कर सकेगी और जहाँ रुईकी मंडियाँ हैं, ऐसे स्थानोंके खुशहाल व्यापारियोंका यह कर्त्तव्य है कि वे कताईको इस देशमें फिरसे प्रतिष्ठित करनेमें सहायता दें। खादी-आन्दोलनका उद्देश्य संसारकी तमाम अच्छी चीजोंका समान वितरण है। जहाँ खादी धार्मिक अर्थव्यवस्थाका प्रतीक है, वहाँ उद्योगवाद राक्षसी अर्थव्यवस्थाका। कारण, उद्योगवाद चन्द लोगोंके हाथोंमें धनके सिमट आनेकी प्रवृत्तिको प्रश्रय देता है।

इस राक्षसी अर्थव्यवस्थाको हमें बरबाद करनेसे रोकनेके लिए, मैं अपनी सारी शक्ति लगा दूंगा। मैं चाहता हूँ कि आप हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई, सब लोग इस काममें मुझे सहायता दें।

इसके बाद उन्होंने गो-रक्षाकी चर्चा करते हुए कहा कि दावनगिरिके लोगोंकी इस काममें गहरी रुचि है और इसके लिए यहाँ प्राणि-दया संघ नामक एक समर्थ संगठन भी है। उन्होंने कहा कि सुसंचालित दुग्धशालाएँ और मरे हुए पशुओंके चमड़ेको कमानेके लिए अच्छे चर्मशोधक कारखाने भारतमें सच्ची गो-रक्षाके लिए नितान्त आवश्यक हैं।

१. दावनगिरिकी नगरपालिका और वहाँके नागरिकों द्वारा भेंट किये गये मानपत्रोंके संयुक्त उत्तरमें।

हिन्दुओंके नाते हमें अपने गो-रक्षा-धर्मके पालनके लिए मुसलमानोंको इस काममें हमारे साथ सहयोग करनेके लिए बाध्य करनेपर निर्भर नहीं रहना चाहिए। हमें अपने पैरोंपर खड़े होकर, अपने बल-बूतेपर गोधनकी रक्षा कर सकना चाहिए। अगर हम अपनी गरीबीके कारण अथवा अज्ञानवश पशुओंको वध कर दिये जानेके लिए न बेचें तो यह इस दिशामें दी गई जितनी बड़ी सहायता होगी उतनी बड़ी सहायता किसीको भी किसी प्रकारसे इस काममें हमारे साथ सहयोग करनेको बाध्य करके हम नहीं कर सकते। मुसलमानोंका सहयोग प्रेमके बलपर प्राप्त करना चाहिए।

नगरपालिका द्वारा भेंट किये गये मानपत्रके सम्बन्धमें गांधीजीने कहा कि जबतक बूढ़े-जवान, लड़के-लड़कियां, सबको पाखानोंको साफ रखना नहीं सिखाया जाता तबतक स्वच्छता-सफाईका कोई भी कार्यक्रम सफल नहीं हो सकता।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, १५-८-१९२७

३१०. भाषण : दावनगिरिके आदि कर्नाटकोंके समक्ष[1]

१२ अगस्त, १९२७

ये सब धन्धे बड़े अच्छे हैं और मैं यह कामना करता हूँ कि आप इनमें फूलें-फलें। आप अपना मशकबीन बजाकर ऐसी स्वरलहरी उत्पन्न कर सकते हैं, जो मनुष्यको ईश्वरके निकट ले जाती है। बुनाई और जूते बनानेके धन्धे जितने जरूरी आपके जीविकोपार्जनके लिए हैं उतने ही जरूरी भारतके लिए भी हैं, और मैं, आप बुनकरों और मोचियों; दोनोंसे चन्द बातें कहना चाहता हूँ। मैं बुनकरोंसे विदेशी सूत, बल्कि मिलके कते भारतीय सूतका भी उपयोग न करनेका आग्रह करता हूँ। भारतमें जबसे मिल-उद्योगका विकास हुआ है तबसे हाथ-करघा चलानेवाले बुनकरोंकी संख्या दिन-दिन कम होती जा रही है, और आज उनकी संख्या, कुछ वर्ष पहले जितनी थी, उससे लगभग आधी रह गई है। मिल-उद्योगका उद्देश्य, सम्भव हो तो, सब तरहकी बुनाईपर एकाधिकार स्थापित करके बुनकरोंसे उनका धन्धा बिलकुल छीन लेना है। यूरोपमें उद्योगवादने ठीक ऐसा ही किया, लेकिन जहाँ यूरोपमें बेरोजगार बुनकरों और हाथ-कताई करनेवालोंको अन्य रोजगार मिल गये, वहाँ भारतके बुनकरों और हाथ-कताई करनेवालोंको कोई रोजगार नहीं मिला और इस तरह वे बिलकुल बेसहारा हो गये। इसलिए, मैं चाहता हूँ कि आप अपने धन्धेमें, विशेष रूपसे हाथ-कते सूतको बुननेमें, निपुणता प्राप्त करें, और अपने स्त्री-बच्चोंको भी कातना सिखायें जिससे कि आपकी बस्ती आत्मनिर्भर बन सके।

१. महादेव देसाईके "साप्ताहिक पत्र" से। अपने मानपत्रमें आदि कर्नाटकोंने कहा था कि उनमें से अधिकांश लोग मशकबीन बजाने, बुनने और जूते बनानेका काम करते हैं।

अब मैं मोचियोंसे दो शब्द कहूँगा। बुनकरोंके समान ही आपके लिए भी कुछ ऐसी चीजें हैं जिन्हें आपको करना है और कुछ ऐसी है, जिन्हे नही करना चाहिए। जिस तरह बुनकरोंको विदेशी अथवा मिलके सूतको हाथ नही लगाना चाहिए उसी तरह मोचियोंको भी चाहिए कि वे वध किये हुए पशुओंके चमड़ेका उपयोग न करें तथा मरे हुए पशुओंके चमड़ेका ही उपयोग करें। इस चमड़ेको खुद उन्हीको साफ करना और कमाना चाहिए। यदि इस बातसे आपको कुछ प्रोत्साहन मिल सके तो मैं आपको यह बता दूँ कि किसी समय मैंने भी मोचीका काम किया था और आज भी कर सकता हूँ। हमारे आश्रममें भी एक चर्मशोधनालय है। यह विभाग मरे हुए पशुओंके चमड़ेकी व्यवस्था करता है, उसे शोधकर मोचियोंके हाथों बेचता है। यदि आप चाहें तो मै वैसा चमड़ा आपको दे सकता हूँ। मैं चाहता हूँ कि आप केवल मोची बनकर अपनी जीविका ही उपार्जित न करें बल्कि गो-रक्षाका काम करके धर्मोपार्जन भी करें। हिन्दू होनेके नाते हम सबको गायसे प्रेम करना चाहिए और मै चाहता हूँ कि आप मेरे साथ गो-रक्षाके इस पुनीत कार्यमें शामिल हों। लेकिन मैं आपको यह बात कैसे समझाऊँ? हिन्दू होते हुए भी आप प्रतिदिन हिन्दू धर्मके विरुद्ध आचरण करते हैं।

मैं चाहता हूँ, महाविभव महाराजाने अपनी जयन्तीके अवसरपर जो सन्देश दिया था, उसके मर्मको आप हृदयंगम करें। उस सन्देशका एक अंग विशेष रूपसे आप लोगोंके लिए ही है। महाराजा साहबने जहाँ राज्यके नागरिकोंके बीच परस्पर भ्रातृत्वकी भावनाके प्रसारकी आवश्यकता बताई, वहाँ जोर देकर उन्होंने यह भी कहा:

> **ईश्वरसे मेरी यही प्रार्थना है कि आपमें ऐसी ही भावना सृष्टिके मूक प्राणियोंके प्रति भी आये और हमें वह दिन देखनेको मिले जब पशुओंके साथ, विशेषकर जिन पशुओंको हम पवित्र मानते हैं उनके साथ, लोग उनकी इस मजबूरीका खयाल करके कि वे अपनी भावनाएँ व्यक्त नहीं कर सकते, उत्तरोत्तर अधिकाधिक प्रेमपूर्ण व्यवहार करने लगें।**

इस अर्थगर्भित प्रार्थनाके मर्मको हम समझें। इसमें जो निवेदन किया गया है, अनुरोध किया गया है वह वास्तवमें मांस और गोमांस न खानेवालोंसे नहीं, बल्कि आप-जैसे लोगोंको ही ध्यानमें रखकर किया गया है, जिनके मनमें गायोंके प्रति कोई भक्ति नही है। और यह अनुरोध जितना आप लोगोंसे है उतना ही मुसलमानों और ईसाइयोंसे भी है, और अगर महाविभवके कल्याणकारी शासनके लिए उनके प्रति आपके मनमें कृतज्ञता-जैसी कोई भावना हो तो मैं चाहता हूँ कि आप गो-वध और गोमांस-भक्षणसे बाज आयें।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, २५-८-१९२७

३११. पत्र : ज० प्र० भणसालीको

शनिवार, १३ अगस्त, १९२७

भाईश्री भणसाली,

तुम्हारा पत्र मिला। मेरा तार मिल गया होगा। भाई छगनलाल जोशीने मुझे पत्र लिखा है। उससे मालूम हुआ कि मेरा पत्र पाकर तुम क्षुब्ध और विचलित हुए। तुमने मुझे पहले क्या लिखा था, उसे याद करो। मेरी आलोचना और रायको तुमने खुशी-खुशी स्वीकार किया था और मैंने अपनी टीका तुम्हारे उपवासके दिनोंमें नहीं लिख भेजी यह बात तुम्हें खटकी थी। मीराबहनको लिखे अपने पत्रमें तुमने लिखा है कि तुम्हें तो संन्यास और समाधिके द्वारा ईश्वरका साक्षात्कार करना है। "घोर परिग्रह अथवा विपत्तियोंके भयसे भी वह स्थिरता नष्ट नहीं होती" — ऐसी तुम्हारी स्थिति होनी चाहिए। तुम्हारे ऊपर कोई क्रोध करे, तुम्हें अज्ञानी, मूर्ख कह जाये तो भी तुम्हें तो उसपर दया ही आनी चाहिए। किन्तु यह तो मैं जो कहना चाहता हूँ उसकी प्रस्तावना हुई।

लिखना तो मुझे यह है कि इस प्रश्नका हल निकालनेकी जो कोशिश हो रही है, उसे शान्त चित्तसे होने देना। ऐसा समझना कि कार्यवाहक मण्डल भी धर्मकी दृष्टिसे ही उसका निर्णय करना चाहता है। यदि तुम्हारे सोचे हुए उपवाससे वे सहमत न हों तो उसका यह अर्थ कदापि नहीं कि तुम्हें आश्रम छोड़ना ही होगा। कार्यवाहक मण्डल क्या निर्णय करेगा यह तो मैं नहीं कह सकता। मुझे इस बातकी कोई इच्छा नहीं है कि मैं जो चाहता हूँ वही निर्णय वे करें। तुम्हारे पत्र मैं मण्डलको भेज रहा हूँ। तुम जल्दीमें कुछ भी निर्णय न करना।

मीरा बहनको तुमने लिखा है कि तुम्हारा पत्र 'अल्टीमेटम' नहीं था। महादेवने तो मुझे यह पत्र देते समय यही बताया था। पढ़नेपर मुझे भी वह 'अल्टीमेटम' सा ही लगा। 'अल्टीमेटम' का कुछ ज्यादा अर्थ मत करना। अल्टीमेटम यानी दृढ़ निश्चय। देखा जाये तो उसमें तुमने मेरी आज्ञा नहीं आशीर्वाद माँगा है। पर अब तुमने मुझसे मिलनेके बाद निर्णय करनेका जो निश्चय किया है उसपर दृढ़ रहना। मैं मानता हूँ कि इस समय यह पत्र-व्यवहार तो हम इस प्रश्नके धार्मिक पहलूका निर्णय करनेकी खातिर ही कर रहे हैं।[1]

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (एस० एन० १२९६२) की फोटो-नकलसे।

१. ज० प्र० भणसालीको २६ और २७ जुलाई, १९२६ तथा मीरा बहनको २७ जुलाई, १९२६ को लिखे पत्र भी देखिए।

३१२. भाषण: हरिहरमें[1]

१३ अगस्त, १९२७

कहते हैं, यदि ईश्वरने मनुष्यको अपने ही रूपमें गढ़ा तो मनुष्यने भी अपने रूपके अनुसार ईश्वरकी रचना की। इसलिए यदि हम आज अपने मन्दिरोंमें जो-कुछ देखते हैं, वह हमारी, हम आस्थाशून्य भक्तोंकी निष्प्राण प्रतिमाएँ-मात्र है तो इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं। अगर हम ईश्वरकी जीवन्त प्रतिमाएँ बनाना चाहते हैं तो हमें अपने जीवनको नया रूप देना होगा, अपने साम्प्रदायिक झगड़ोंको समाप्त करना होगा, दलितों और शोषितोंको मित्र बनाना होगा और पवित्र जीवन व्यतीत करना होगा। त्रिदेवकी हिन्दू-कल्पनामें हरि संरक्षक है और हर संहारक हैं। जब ईश्वर देखता है कि धनवान लोग निर्धन लोगोंको संरक्षण देनेके बदले उनका शोषण कर रहे हैं, तब वह अपना हरका भयंकर रूप धारण करता है और सर्वत्र संहार मचा देता है। जब धनवान और निर्धन एक-दूसरेके सुख-दुःखको अपना सुख-दुःख बना लेंगे तब हरि और हर एक हो जायेंगे, और मेरी आकांक्षा देशको चरखेकी दीक्षा देकर हरिहरेश्वरकी सच्ची और जीवन्त प्रतिमा स्थापित करनेकी है। चरखा यज्ञका प्रतीक है और देवताकी प्रतिमाको प्रतिष्ठित करनेके लिए यज्ञ आवश्यक है।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, २५-८-१९२७

३१३. स्वयंसेवकोंसे

इस समय गुजरातपर जो आपत्ति आई है वैसी आपत्तिका सदुपयोग भी किया जा सकता है और दुरुपयोग भी। ईश्वरसे डरकर चलनेवाले लोग ऐसी भयंकर बाढ़ोंसे नम्रता, सादगी, सचाई, दया आदि सीखते हैं। वे समझ लेते हैं कि इस क्षणभंगुर संसारमें मनुष्य अपना जीवन जितने त्याग और संयमसे बिताये उतना ही अच्छा है। किन्तु दुष्ट जन ऐसे समयमें चोरी करते हैं, लूट-मार करते हैं और अनेक तरहसे अपनी दुष्टताको पोषित करते हैं।

अनेक बार दानका भी दुरुपयोग होता है। बड़े क्षेत्रमें मदद पहुँचाते समय अनेक सेवकोंकी आवश्यकता होती है। वे यदि लालची होते हैं तो अपने हाथ आया पैसा स्वयं हजम कर जाते हैं। इस तरहके दुरुपयोगसे गुजरात पूरी तरह बच जायेगा ऐसा मानना मूर्खता होगी। परन्तु स्वयंसेवकोंसे ऐसी आशा अवश्य की

१. महादेव देसाईके "साप्ताहिक पत्र" से। सभाका आयोजन हरिहरेश्वर मन्दिरके सामने किया गया था।

जायेंगी कि वे हर तरहके लालचसे दूर रहेंगे और अपना कार्य केवल सेवाभावसे ही करके अपने नामको सुशोभित करेंगे।

स्वयंसेवकको बिलकुल अलग प्रकारके लालचका प्रलोभन होता है। वह चोरकी तरह चोरी नहीं करता, लेकिन स्वयंसेवक होनेके नाते कुछ अभिमान रखता है और सेवक होनेके बावजूद लोगोंसे कुछ इस तरहकी सेवाकी आशा करता है मानो वह उनका उपकारक हो। वह खुद खाकर खिलाता है, पहनकर पहनाता है और लोग यदि उसके आदेशका पालन नहीं करते तो वह उनसे रूठ जाता है। मैं आशा करता हूँ कि ऐसे लालचोंसे प्रत्येक स्वयंसेवक बचकर चलेगा।

स्वयंसेवकोंको समझना चाहिए कि जो पैसा इकट्ठा हो रहा है उसमें गरीब लोग भी असुविधा उठाकर पैसा दे रहे हैं। मेरा तो विश्वास है कि हमें पैसेकी तंगी नहीं रहेगी। लेकिन यदि इस पैसेका सदुपयोग नहीं हुआ तो हमारा किया व्यर्थ होगा।

इसके अलावा बिलकुल गरीब तो सहायताका लाभ पानेसे रह जायें और बलवान उसे पा जायें, इस भयसे भी हमें बचना है। हालाँकि मददकी जरूरतके बावजूद मदद न लेनेके सुन्दर उदाहरणोंके समाचार मेरे पास अभीसे आने लगे हैं फिर भी जरूरत हो या न हो तब भी चूँकि मदद मिल रही है इसलिए उसे लेनेवाले लोग तो पड़े ही हुए हैं, यह मैं अपने पूर्वानुभवसे जानता हूँ। जहाँ देनेकी जरूरत न हो वहाँ झूठी दया, भय अथवा लज्जावश एक कौड़ी न देनेका नियम भी उतना ही आवश्यक है जितना सुपात्रको जैसे भी हो मदद पहुँचाना है।

ऐसे भयानक प्रसंगपर मनुष्यका मन बहुत उदार हो जाता है और जो भी माँगे उसे देना चाहता है। ऐसे अमर्यादित दानसे लोगोंका भला होता है, ऐसा मैं नहीं मानता। सामान्य नियम तो यह है कि सब लोग अपने ऊपर आ पड़े दुःखको स्वयं उठा लें। सब अपना-अपना बोझ स्वयं उठा लें तो जो सचमुच असहाय हैं ऐसे लोग दुनियामें बहुत कम निकलें। परन्तु अनेक लोग अनेक प्रकारसे दूसरोंपर भाररूप हो जाते हैं। जितना उनका अधिकार होता है उससे अधिक भोग भोगते हैं इसीलिए दरिद्र और अपंग लोग ज्यादा संख्यामें दिखाई देते हैं। अतः ऐसे समयमें वास्तविक और विपुल प्रमाणमें सहायता देनेका कार्य तो थोड़े ही दिनोंतक करना होगा। और यह सहायता चंद दिनोंतक उन्हीं लोगोंको देनी है जिनके पास खाने-पहननेको न हो। बादमें तो सबको उनका मार्ग बतानेकी बात ही रह जाती है। जिनके हाथ-पाँव भले-चंगे हैं उन्हें ज्यादातर पैसेका दान नहीं देना चाहिए।

महाप्रलयके बाद तो नवीन सृष्टिकी रचना होती है। यह बाढ़-रूपी प्रलय महाप्रलय भले ही न हो परन्तु है तो उसी तरहका। इसलिए यदि स्वयंसेवक सुधारक हों, ज्ञानी और धैर्यवान हों तो उन्हें भी नवीन सृष्टिकी रचना करनी चाहिए, उन्हें लोगोंको अपनी बुरी आदतोंका त्याग करनेके लिए उत्साहित करना चाहिए। वे लोगोंको घरोंका निर्माण करनेमें नये विचार दे सकते हैं। जो गाँव उजड़ गये हैं वे जैसे-तैसे फिरसे उठ खड़े हों, इसकी बजाय कोशिश यह होनी चाहिए कि वे सुव्यवस्थित रूपसे बनाये जायें। जिन गाँवोंमें जब-तब बाढ़का प्रकोप होता रहता है, उन्हें

वहाँसे हटाकर अन्यत्र बसाया जाये। लेकिन यह काम किसी एक आदमीके करनेका नहीं है। उसमें समाजके अग्रगण्य और समझदार स्त्री-पुरुषोंकी सलाह और सक्रिय सेवाकी आवश्यकता है। उसमें सरकारका भी शुद्ध सहयोग होना चाहिए।

मेरी प्रार्थना तो वल्लभभाईके और इसी प्रकारके अन्य सेवा-दलोंसे है। इससे अधिक तो इस समय मेरी सामर्थ्यसे बाहर है।

[गुजरातीसे]
नवजीवन, १४-८-१९२७

३१४. पत्र : मीराबहनको

शिमोगा
१४ अगस्त, १९२७

चि० मीरा,

तुम्हारा पत्र मिला। आज रविवार है और यह पत्र मैं शिमोगा नामक एक ऐसे स्थानसे लिख रहा हूँ, जो रास्तेसे जरा हटकर है। अभी चार रातें यहीं बितानी पड़ेंगी, क्योंकि आसपासके इलाकोंका दौरा करना है। यह पत्र तुम्हें मिलनेतक मैं यहाँसे प्रस्थान कर चुका होऊँगा। आशा है, खोये पत्रका रहस्य अब तुम्हारी समझमें आ गया होगा। और अब मैं भी जान गया हूँ कि यदि मैं सोमवासरीय पत्र रविवार-की रातमें मौन लेनेके बाद ही लिख दूँ तब भी मुझे उसपर ऐसा लिख देना चाहिए कि यह सोमवासरीय पत्र है। मगर मैं चाहता हूँ कि तुम मेरे पत्रोंके बारेमें इस तरह चिन्ता करना छोड़ दो। मिल जायें तो ठीक, लेकिन न भी मिलें तो ठीक ही समझना चाहिए; क्योंकि मैं तुम्हें यह आश्वासन तो दे ही चुका हूँ कि अगर मेरे साथ कुछ अघटनीय घट जायेगा, तो तुम्हें निश्चय ही उसकी सूचना तारसे मिल जायेगी। और इस बातकी चिन्ता भी तुम्हें क्यों होनी चाहिए कि ऐसी गड़बड़ी हो जानेसे तुम्हें सम्बन्धित पत्रमें लिखी बातें नहीं मालूम हो पायेंगी या देरसे मालूम हो पायेंगी? उसमें अगर कोई महत्त्वकी बात हुई तो उसे तो मैं फिरसे याद करके लिख ही सकता हूँ।

स्पष्ट है कि गुजरातमें सहायताका काम बड़े व्यवस्थित ढंगसे चल रहा है। यह तो है ही कि तुम वहाँ होतीं तो उस काममें प्राणपणसे जुट गई होतीं, लेकिन जो लोग अपने-अपने कर्त्तव्य-स्थलपर, वे आपद्ग्रस्त क्षेत्रसे चाहे जितने दूर हों, डटे हुए हैं और परिस्थितिके प्रति पूरी तरह सतर्क हैं, उन्हें भी इस काममें प्राणपणसे ही जुटा हुआ मानना चाहिए।

तुमने विनोबाके बारेमें जो-कुछ लिखा है, सो उन्हींके योग्य है। लेकिन इस मामलेमें मेरी सहानुभूति तो अपने आग्रहपर डटे रूढ़िवादियोंके साथ ही है। मासिक धर्मके दौरान अस्पृश्यता बरतनेकी यह पुरानी प्रथा ऐसी नहीं है, जिसमें हानियाँ-ही-हानियाँ हों और यह कोरा वहम और अन्धविश्वास तो नहीं ही है। और ऐसे मामलोंमें

विवाहित और अविवाहित स्त्रियोंमें भेद बरतना कठिन है। इस प्रतिबन्धको मैंने पुरुषकी वासनापर एक अंकुशकी तरह देखा है। रजस्वला स्त्रीको किसी अँधेरे-गन्दे कमरेमें बन्द करके रखना, उसे पहनने आदिके लिए फटे-पुराने कपड़े देना बहुत भयंकर और अमानवीय चीज है और इसका कोई औचित्य नहीं हो सकता। लेकिन, मासिक धर्मके दौरान स्त्रियोंको बिलकुल अलग-थलग रखनेकी भावनामें आमूल परिवर्तन करनेकी कोशिश नहीं करनी चाहिए। इसलिए, मैं चाहता हूँ कि तुम इस विषयके दूसरे पहलूको भी देखो और मोघेजी-जैसे लोगोंके रवैयेको सिर्फ किसी तरह बरदाश्त करो, इतना ही नहीं बल्कि जिस तरह तुम चाहोगी कि इस सम्बन्धमें तुम्हारे विरोधी रवैयेको लोग सम्मानकी दृष्टिसे देखें, उसी तरह तुम भी उनके रवैयेको सम्मानकी दृष्टिसे देखो। इसलिए मैं आशा करता हूँ कि विनोबा इस मामलेमें पूरी सावधानी और विनयके साथ काम कर रहे हैं और उन्होंने आश्रमके रूढ़िवादी लोगोंका समर्थन केवल अपने स्नेहके बलपर ही नहीं, बल्कि उन्हें सचमुच अपने रवैयेका कायल करके प्राप्त किया होगा। यदि उन लोगोंने स्वेच्छासे विरोध करना छोड़ दिया हो, तो भी मेरी सलाह है कि तुम मासिक धर्मके दौरान अपनी मर्जीसे ही कुछ संयम बरतो। अगर चाहो तो तुम यह पत्र विनोबाको भी पढ़वा सकती हो, ताकि वे मेरी दलीलको समझ सकें। याद रखो कि मेरा निजी मत तो वही है जो तुम्हारा है। लेकिन, मेरा कहना सिर्फ यह है कि सहिष्णुता दिखाई जाये तो बुद्धिपूर्वक और विरोधीके दृष्टिकोणके प्रति सम्मानका भाव रखते हुए, और यह भी याद रखो कि जब तुम किसीके दृष्टिकोणके प्रति ऐसी सहिष्णुता बरतती हो तो अपने-आपको दबाती नहीं हो। जहाँ किसी कोरे अन्धविश्वासको बरदाश्त करना पड़ता है, वहीं अपनेको दबानेकी बात आती है और वहाँ यह आवश्यक भी हो जाता है। ऐसी अस्पृश्यताको बरदाश्त करना तुम्हारे लिए 'असह्य' नहीं होना चाहिए। इसके विपरीत, तुम्हें इस प्रतिबन्धको या तो लाचारी मानकर ओढ़ लेना चाहिए या फिर इस विचारको अपने मनसे दूर रखकर कि रूढ़िवादियोंका दृष्टिकोण हर तरहसे अनुचित है, राजी-खुशी और शोभनीय ढंगसे स्वीकार कर लेना चाहिए।

और अब तुम्हारे भावी कार्यके बारेमें : तुमने अपने-आपको अशिक्षित कहा है। तुम्हारी इस बातको मैं स्वीकार कर लेता हूँ। लेकिन मैं नहीं चाहता कि तुम हमेशा अशिक्षित बनी रहो। अशिक्षाको दूर करनेके लिए जमकर मेहनत करनेका समय तुम्हारे लिए अभी बीत नहीं गया है। अगर तुम इस स्थितिको दूर करनेके लिए अपने अन्दर रुचि जगा लो तो मैं इतनेसे सन्तुष्ट हो जाऊँगा। और इस उद्देश्यसे तुम चाहो तो एक अच्छी-सी व्याकरणकी पुस्तक लेकर उसका पूरा अभ्यास कर जाओ। ऐसा ही गणितके विषयमें भी करो। तुम्हें गणितकी किसी बहुत ही सरल पुस्तकसे शुरू करना चाहिए। अगर तुम ऐसा सोचती हो कि अपने स्वभाव और मानसिक रुझानकी दृष्टिसे तुम दोनों या इनमें से किसी एकके लिए अनुपयुक्त हो तो फिर मैं कुछ नहीं कहूँगा। और वैसे भी, मैं यह तो कभी नहीं चाहूँगा कि यह जो दो महीनेकी अवधि है और जो बड़ी तेजीसे बीतती चली जा रही है, उसमें तुम्हारे

सिरका बोझ और बढ़ाऊँ। लेकिन मैं चाहूँगा कि बादमें अगर तुम यह सब मनोरंजनके तौरपर कर सको तो अवश्य शुरू कर दो।

रसोईघरके कामसे शुरुआत करना बेशक बहुत अच्छा रहेगा। उससे और कुछ नहीं तो इतना तो होगा ही कि तुम्हें अपने मिजाजपर काबू रखनेकी आदत पड़ेगी और हर तरहके लोगोंके साथ निभाना सीख सकोगी। व्यवहारमें तो हमने देखा है कि रसोईघरके काममें आदमीके धीरजकी सबसे ज्यादा कसौटी होती है।

मैं जानता हूँ कि तुम अपने मनमें मेरे लिए ढेर सारा स्नेह लेकर यहाँ आई हो। यह न होता तो दूसरी तमाम चीजें बिलकुल बेकार होतीं, और जब यह है तो जो-कुछ भी जरूरी है, सब आसानीसे हो जायेगा। लेकिन, अभी मैं तुम्हारे आगेके कामके बारेमें कुछ सोचना नहीं चाहता। जब तुम वहाँ अपना काम पूरा कर लोगी, तब मैं जानता हूँ कि तुम्हें और मुझे दोनोंको आगेका रास्ता काफी साफ दिखाई देने लगेगा।

भणसालीने तुम्हें दिये जवाबकी नकल मुझे भेजी है। पत्र व्यवहार जारी रखो।

सस्नेह,

बापू

[पुनश्च :]

आज रविवार है। सोमवासरीय पत्र अलगसे लिखूँगा।

अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ५२६०) से।

सौजन्य : मीराबहन

३१५. पत्र : सी० एफ० एन्ड्रचूजको

१४ अगस्त, १९२७

प्रिय चार्ली,

तो आखिर तुम दक्षिण आफ्रिकामें अपना जादू दिखाकर वापस आ गये। मुझे उम्मीद है, तुम अच्छी सेहत लेकर भी लौटे होगे।

यह पत्र मैं मैसूरके एक ऐसे स्थानसे लिख रहा हूँ, जो रास्तेसे जरा हटकर है। साथमें अपना कार्यक्रम भेज रहा हूँ। तुम शायद तुरन्त ही मेरे पास आना चाहो। यदि तुम २१ को बम्बईसे रवाना होओ तो गुंटकलके रास्ते २३ की सुबह बंगलोर पहुँच सकते हो, और फिर २४, २५ और २६ को मुझे जिन-जिन स्थानोंमें रहना है, उनमें से कहीं भी आकर मुझे पकड़ सकते हो; क्योंकि ये स्थान बंगलोरसे बहुत दूर नहीं हैं।

गुजरातके बारेमें तुम्हारा तार मिला था। यह तो आत्म-शुद्धिके लिए ईश्वर-प्रदत्त एक सुन्दर अवसर प्रतीत होता है, क्योंकि मुझे जिस किसी सूत्रसे जो भी

मालूम हुआ है, सबसे यही प्रकट हुआ है कि बाढ़-ग्रस्त इलाकेके लोगोंने अवसरके अनुकूल साहस और दृढ़ताका परिचय दिया है। लेकिन उसका स्थायी प्रभाव क्या होगा, इसके बारेमें अभी कुछ नहीं कहा जा सकता।

शेष मिलनेपर।

बा, महादेव, राजगोपालाचारी, गंगाधरराव, देवदास, काका आदि हम सबकी ओरसे स्नेहपूर्वक,

मोहन

अंग्रेजी (एस० एन० १२३७१) की फोटो-नकलसे।

३१६. पत्र : ए० आई० काजीको

स्थायी पता : साबरमती आश्रम
१४ अगस्त, १९२७

प्रिय काजी,

उपयोगी सूचनाओं और जानकारीसे भरे आपके पत्र मुझे मिलते रहते हैं। यह मेरे लिए बड़ी प्रसन्नताकी बात है कि आप दक्षिण आफ्रिकामें श्री शास्त्रीकी प्रवृत्तियोंसे इतने ज्यादा खुश हैं। मैं तो यही उम्मीद रखता हूँ कि भारतीय समाज उनकी सेवाओंका अच्छेसे-अच्छा उपयोग करेगा। मैं जानता हूँ कि समाजको अपनी शिकायतोंको दूर करानेका फिर ऐसा कोई मौका नहीं मिलेगा।

सर्वोच्च न्यायालयके नेटाल प्रादेशिक विभागके निर्णयसे[1] मुझे कोई आश्चर्य नहीं हुआ है। विक्रेताके परवाने और उत्पादनकर्त्ताके परवानेमें हमेशासे भेद किया जाता रहा है। उदाहरणके लिए, किसी बढ़ईको अपने बनाये उपस्कर (फर्नीचर) आदि विक्रेता परवानेके बिना भी बेखटके बेच सकना चाहिए। यदि उसके लिए कोई परवाना लेना अपेक्षित भी हो तो वह शिल्पकारका परवाना ही होगा।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

श्री० ए० आई० काजी
दक्षिण आफ्रिकी भारतीय कांग्रेस
१७५, ग्रे स्ट्रीट, डर्बन (नेटाल)

अंग्रेजी (एस० एन० १२३७२) की फोटो-नकलसे।

१. इस निर्णयका सम्बन्ध एक पठानके मामलेसे था जो एम्पायर फर्नीचर मैन्युफैक्चरिंग कं०के नामसे अपना धन्धा करता था। उसके परवानेका नवीनीकरण करनेसे इनकार कर दिया गया था। अपील करनेपर उक्त न्यायालयने यह निर्णय दिया था कि उसे केवल फुटकर या थोकबन्द व्यापारियोंके मामलोंमें ही दस्तन्दाजीका अधिकार है और चूँकि प्रस्तुत मामला उत्पादनकर्त्ताके परवानेसे सम्बन्धित है इसलिए वह दस्तन्दाजी नहीं कर सकता।

३१७. पत्र: सोंजा श्लेसिनको

स्थायी पता: साबरमती आश्रम
१४ अगस्त, १९२७

प्रिय कुमारी श्लेसिन,

तुम्हारा २४ जूनका पत्र मिला। साथमें २१ पौंड, १० शिलिंगकी रसीद भेज रहा हूँ। अगर तुम गुजराती भूल न गई हो तो गुजराती लिखावट पढ़ ही लोगी।

जहाँतक मैं समझ सकता हूँ, मेरे बीमार होनेका कारण यह था कि मैंने अपने शरीर और दिमाग दोनोंसे शक्तिसे अधिक काम लिया; लगभग हर रोज कई-कई सभाओंमें बोलता था और मोटरगाड़ीमें बैठकर जगह-जगह भागता फिरता था। जिस दिन[1] मैं बीमार हुआ, उस दिन अत्यन्त व्यस्त था और बड़ी भाग-दौड़ मची हुई थी; तिसपर पिछली रात मैं आराम भी नहीं कर पाया था। डाक्टरोंका निदान भी यही है। लेकिन, मुझे लगता है कि अगर मैं सावधानी बरतता तो इससे बच सकता था। जिस दिन बहुत व्यस्तता और भाग-दौड़ मची हुई थी, उस दिन अगर मैं पूरा उपवास कर जाता तो बीमार होनेसे बच सकता था। लेकिन, उन दिनों मैं करता यह था कि आधे भोजनपर रहता था।

जिसे तुमने आत्मकथा कहा है, उसका पहला खण्ड तुम्हें भेज दिया जायेगा। सत्याग्रह आन्दोलनका इतिहास तीन साल पहले प्रकाशित हुआ था, लेकिन अंग्रेजी अनुवाद अभीतक उपलब्ध नहीं है। इसे श्री गणेशन् अपनी पत्रिका 'करेंट थॉट' में तिमाही किस्तोंमें छाप रहे हैं। मुझे उम्मीद है कि अन्तमें यह पुस्तकाकार भी प्रकाशित होगा। लेकिन, अगर तुम अपनी गुजरातीका ज्ञान ताजा कर सको तो तुम्हें इसकी गुजराती प्रति भेज सकता हूँ।

मेरा आहार है शहदके साथ ३० औंस बकरीका दूध, जो भी मिल जाये वह फल और आम तौरपर घरकी बनाई रोटी—यहूदियोंके 'पासओवर' त्योहारके अवसरपर प्रयुक्त होनेवाले बिना खमीरके केकके ढंगकी। गरीदार मेवा बिलकुल नहीं लेता। कुल पाँच ही चीजें लेता हूँ, मतलब यह कि दूध, अंगूर, सन्तरे और रोटी, ये तो चार हुईं और अगर उसमें अंजीर मिला दूँ तो वह पाँचवीं चीज हुई।

मुझे नहीं मालूम था कि तुमने १५० पौंड लिये थे। मैं तो समझता था कि ४० पौंड ही लिये थे। मणिलाल और उसकी पत्नीसे मिलकर तुम्हें कैसा लगा, यह लिखना; मैं उसकी राह देखूँगा।

श्री एन्ड्रयूजके लौटनेपर मैं तुम्हारी दस्तकारीका नमूना देखूँगा, बशर्ते कि उन्होंने उसे किसीको दे न दिया हो या खो न दिया हो। मेरे बारेमें यह जानकर तुम्हें धक्का लगा कि मैं एक ही कपड़ा पहनता हूँ। पता नहीं, उस धक्केसे तुम सँभल पाई हो या नहीं,

१. २६ मार्च, १९२७; देखिए खण्ड ३३, पृष्ठ २०९।

लेकिन तुम्हारी यह शंका ठीक ही है कि किसी गरीबको वैसी कीमती और खूबसूरत ट्रे रखना तो शायद शोभा नहीं देगा जैसी ट्रे का वर्णन तुमने किया है। तुमने मेरे पत्रको बहुत लापरवाहीसे पढ़ा है और इस तरह अनजाने ही उसका बिलकुल उलटा अर्थ लगा लिया है। मैंने ऐसा तो नहीं कहा कि बस इसी एक चीजके बलपर, अर्थात् सिर्फ एक वस्त्र पहनकर मैं गरीबोंके साथ अपना तादात्म्य स्थापित कर सकता हूँ, जबकि तुम्हारे अनुसार मैंने यही बात कही है। अलबत्ता, मैं यह जरूर कहता हूँ कि उस छोटी-सी चीजका भी अपना एक महत्त्व है। ऐसा कदम उठानेके पीछे जो तर्क हो सकता है, उसे समझनेकी अपेक्षा अब शायद तुमसे नहीं करनी चाहिए। लेकिन इस समय ऐसे ही कारणोंसे जब मैंने डर्बनमें अपनी पोशाकमें परिवर्तन किया था, तब तो तुम उस परिवर्तनका मर्म अच्छी तरह समझ गई थी। मैं श्री शास्त्रीसे तुम्हारी मुलाकातके वर्णनकी राह देखूंगा।

मैं तुम्हारी इस बातसे पूरी तरह सहमत हूँ कि अगर हमें सचमुच कुछ कर दिखाना हो तो हमारे समाजमें शिक्षा आदिके मामलेमें स्त्रियोंको भी पुरुषोंकी जैसी सुविधाएँ सुलभ होनी चाहिए। तुम्हें यह जानकर खुशी होगी कि यहाँ आश्रममें हर उम्रकी ४० से अधिक स्त्रियाँ हैं। छोटी-छोटी बालिकाएँ हैं सो अलग। उनके लिए प्रतिदिन एक अलग कक्षा लगाई जाती है। मेरे विचारसे तो वे बहुत अच्छी प्रगति कर रही हैं। आश्रममें उन्हें अधिकसे-अधिक स्वतन्त्रता प्राप्त है।

हृदयसे तुम्हारा,

संलग्न

अंग्रेजी (एस० एन० १२३७३) की फोटो-नकलसे।

३१८. पत्र : एस० गणेशन्‌को

स्थायी पता : बंगलोर
१४ अगस्त, १९२७

प्रिय गणेशन्,

आपके दो पत्र मिले। कृष्णदास अभी विहारमें है। मैं उसे लिख रहा हूँ कि वह आपको संशोधित पाण्डुलिपि[1] भेज दे। यह जानकर खुशी हुई कि आपने अपनी कठिनाइयोंपर पार पा लिया है।

आपकी प्रकाशन-योजनासे सम्बन्धित घोषणा मैंने देखी। पढ़नेमें तो यह बिलकुल ठीक ही जान पड़ती है।

मैं आशा करता हूँ कि आप किसी भी हालतमें किसी तरहके जोखिमके काममें हाथ नहीं डालेंगे। हर काम बहुत ही सोच-विचार कर करना चाहिए।

१. दक्षिण आफ्रिकाके सत्याग्रहका इतिहासका अंग्रेजी अनुवाद इन दिनों एस० गणेशन् द्वारा प्रकाशित। 'करेन्ट थॉट' पत्रिकामें निकल रहा था। अभिप्राय उसीके संशोधित अनुवादसे है।

मुझे मालूम हुआ है कि आप महादेवके लेखोंको पहले ही प्रकाशित कर चुके हैं, लेकिन लगता है, आपने उसकी कोई प्रति यहाँ नहीं भेजी है।

मेरा सुझाव है कि आप अपने विज्ञापनसे आश्रमको २५ प्रतिशत लाभ देनेकी बातको निकाल दें।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत एस० गणेशन्
१८, पिक्रोफ्ट्स रोड
ट्रिपलिकेन
मद्रास

अंग्रेजी (एस० एन० १९७९९) की माइक्रोफिल्मसे।

३१९. पत्र : कृष्णदासको

शिमोगा
१४ अगस्त, १९२७

प्रिय कृष्णदास,

ये रहे गणेशन्के लिखे दो पत्र। अब तुम संशोधित पाण्डुलिपि[1] भेज सकते हो। मैं समझता हूँ, जैसा उन्होंने विज्ञापित किया था, वे महादेवके लेखोंका संग्रह प्रकाशित कर चुके हैं। हालाँकि अभीतक उन्होंने उसकी प्रति यहाँ नहीं भेजी है।

हृदयसे तुम्हारा,

श्रीयुत कृष्णदास
११०, हाजरा रोड
कलकत्ता

अंग्रेजी (एस० एन० १९८००) की माइक्रोफिल्मसे।

१. देखिए पिछले शीर्षककी पादटिप्पणी।

३२०. पत्र : ए० ए० पॉलको

शिमोगा
१४ अगस्त, १९२७

प्रिय मित्र,

आपका पत्र और संलग्न कागजात मिले। मैं यह पत्र आपको शिमोगासे लिख रहा हूँ, लेकिन यदि आप उत्तर देना चाहें तो बंगलोरके पतेपर भेज सकते हैं। इस महीनेकी २९ तारीखतक मेरा सदर मुकाम बंगलोर ही रहेगा।

विभिन्न धर्मावलम्बियोंके बीच भाईचारेका भाव उत्पन्न करनेकी आपकी योजना मुझे पसन्द आई। इसे मैं इतनी अच्छी तरहसे नहीं पढ पाया हूँ कि मैं इसके सम्बन्धमें कोई उपयोगी बात कह सकूँ। लेकिन पहली बार पढ़नेपर तो मुझे यह अच्छी लगी।

जब मैं मद्रास आऊँगा तब श्रीयुत राजगोपालाचारी मुझे जितना भी अवकाश दे सकेंगे, वह सब आपके लिए सुरक्षित रहेगा और उसमें हम दोनों आपकी योजनापर विचार-विमर्श कर सकते हैं। आप भी तबतक इस दिशामें कुछ प्रगति कर चुके होंगे, क्योंकि आपकी समितिकी बैठक तो २२ तारीखको हो ही चुकेगी।

इस पत्रको पूरा ही करवाया था कि मुझे आपका इसी ११ तारीखका लिखा पत्र मिला। मुझे यह जानकर खुशी हुई कि पूनामें विभिन्न देशोंके लोगोंके बीच भाईचारेकी भावनाकी वृद्धि करनेवाली संस्थाकी स्थापनाकी दिशामें काफी काम हो चुका है। प्रोफेसर वाडियाको मैं पत्रोंके द्वारा अच्छी तरहसे जानता हूँ।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी (एस० एन० १९८०१) की फोटो-नकलसे।

३२१. पत्र : एम० एफ० खानको

स्थायी पता : बंगलोर
१४ अगस्त, १९२७

प्रिय मित्र,

अब समय पानेपर मैंने आपका संवाद "बालक क्या-कुछ कर सकते हैं" पढ लिया है। इससे मालूम होता है कि आपका हृदय कहाँ बसता है। लेकिन यद्यपि मैं अपने-आपको कलाका पारखी नहीं मानता, फिर भी एक पत्रकारके नाते मैं कह सकता हूँ कि वार्त्तालाप पढ़नेमें दिलचस्प नहीं लगता। इसमें कथा-तत्त्वका अभाव है।

आपने जो पद्यांश उद्धृत किये हैं, वे रोचक हैं और मैं उनका उपयोग कर सकता हूँ। कृपया, आप मुझे रचयिताका नाम बतायें।

हृदयसे आपका,

श्री० एम० एफ० खान
पालम रोड
फ्रेजर टाउन
बंगलोर

अंग्रेजी (एस० एन० १९८०२) की माइक्रोफिल्मसे।

३२२. पत्र: देवचन्द पारेखको

शिमोगा
१४ अगस्त, १९२७

तुम्हारे तारोंका जवाब दे दिया है। तुम्हारे पत्र भी मिल गये हैं। मैं तुम्हारा आग्रह समझ सकता हूँ। पर मुझे निश्चय है कि इस समय मुझे अपना स्थान नहीं छोड़ना चाहिए। मुझे तो ऐसा भी लगता है कि मेरे वहाँ[1] आनेसे लाभके बजाय हानि भी हो सकती है। मेरे पहुँचने पर वल्लभभाई अपनी शक्ति समेट लेंगे, यह एक हानि तो मेरी निगाहमें है ही। दूसरी हानियोंकी भी मैं कल्पना कर सकता हूँ। मैं आ जाऊँ तो भी हम उतना चन्दा नहीं एकत्र कर सकते जितना तुम सोचते हो। इस समय जोर-जबरदस्तीसे ऐसा करनेका प्रयत्न भी नहीं करना चाहिए। मारवाड़ी उसीकी मार्फत काम करें जिसपर तुम्हें पूरा विश्वास हो। मुझे यही उचित भी लगता है। विश्वासमें प्रामाणिकता और योग्यता दोनों ही बातें आ जाती हैं। जितनी कुशलता-की कल्पना वे एक व्यापारीके विषयमें कर सकते हैं उतनी मेरे अथवा तुम सब मेरे साथियोंके विषयमें नहीं कर सकते। और करें भी कैसे? भाई अमृतलाल अपना काम अलग करते हैं। अपनी होशियारी और सेवासे उन्होंने विशेष व्यक्तियोंका विश्वास प्राप्त कर लिया है। वे जबतक यहाँ कोई काम करते रहेंगे तबतक वे लोग उन्हें उसके लिए पैसा देते रहेंगे और मैं उसे ठीक मानता हूँ। 'हिन्द सेवक समाज' (सर्वेन्ट्स आफ इंडिया सोसाइटी) के विषयमें भी ऐसा ही समझो। हमारा धर्म सेवाभावपूर्वक उतना ही करनेका है जितना आसानीसे हो सके।

तुमने लिखा है कि अगर मैं तुम सबको संकट-निवारणके काममें लगा दूँ तो तुम उसमें जुट जाओगे और परिषद् को छोड़ दोगे। यह विचारधारा मुझे पसन्द नहीं है। मैं लगा दूँ तो तुम इस काममें लग जाओगे अन्यथा परिषद्के आयोजनका काम करोगे यह कैसी विचित्र बात है। ऐसे समय परिषद्का आयोजन करनेकी बात यदि तुम्हें ठीक लगती है तो तुम्हें परिषद्का आयोजन करना ही चाहिए फिर चाहे मेरा जो

१. गुजरात।

भी विचार हो और मैं तुम्हें किसी भी काममें लगाना चाहूँ। और यदि तुम्हें सेवा करनी है तो तुम मेरी आज्ञाकी राह कैसे देख सकते हो? तुम भाई अमृतलालके दलमें ही क्यों नहीं शामिल हो जाते? अथवा यदि वे पूरे काठियावाड़का दौरा न कर सकें तो बाकीका भाग तुम क्यों नहीं ले लेते? वल्लभभाईको योजना दिखाकर पैसा तो तुम उनसे ले ही सकते हो। अथवा हिन्द सेवक समाजसे ले सकते हो। वल्लभभाईका कर्त्तव्य जिस भागमें दूसरे न पहुँच सकते हों उसमें पहुँचनेका है। यदि सत्याग्रही अर्थात् फूलचन्दकी फौज मेरी राह देखती बैठी रहेगी तो मुझे बहुत दुःख होगा और मैं उन्हें सत्याग्रह करनेके अयोग्य मानूँगा। सेवा करनेके अवसरपर जो सेवा करनेमें चूक जाये वह सत्याग्रह और इसलिए सविनय भंग कैसे करेगा? जेल जानेकी योग्यताके पीछे अपने द्वारा की गई सेवाका प्रमाणपत्र और आत्मशुद्धिका आधार होना चाहिए। मेरी आज्ञा और मेरा अंकुश तो मात्र सविनय अवज्ञा-रूपी सत्याग्रह करनेके लिए ही जरूरी है। सेवा-रूपी सत्याग्रह अथवा आत्मशुद्धि करनेके लिए मेरी आज्ञा जरूरी नहीं है।

परिषद्के विषयमें मुझे कुछ नहीं कहना है।

[गुजरातीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरी।

सौजन्य : नारायण देसाई

३२३. पत्र : मणिलाल और सुशीला गांधीको

१४ अगस्त, १९२७

चि० मणिलाल और सुशीला,

अब भी तुम्हारे पत्र इधर-उधर चक्कर काटनेके बाद पहुँचते हैं।

शास्त्रीजीकी मुलाक़ातका यथातथ्य पूरा वर्णन मिलना चाहिए, वह अभीतक नहीं मिला है।

सुशीलाने समाज-सेवाके विषयमें प्रश्न पूछा है। हम लोक-कल्याणके लिए शुद्ध बुद्धिसे जो भी काम करते हैं वह समाज-सेवा है। अपनी गृहस्थी चलानेमें यदि तुम समाजका विचार न कर केवल अपनी सुख-सुविधाका ही विचार करो तो यह स्वार्थ-सेवा हुई पर यदि अपनी गृहस्थी चलाते हुए तुम समाजके हितकी दृष्टिसे सादा जीवन व्यतीत करो, गलत उदाहरण न पेश करो, किसी भी तरहके परिग्रहमें धर्म-अधर्मका विचार करो तो वह समाज-सेवा होगी। इससे भी आगे बढ़ें: तुम छापाखानेके काममें मदद करती हो; यदि ऐसा करनेमें तुम्हारा उद्देश्य पैसा बचाना हो तो यह स्वार्थ-सेवा हुई, किन्तु इस कामको सीखनेमें यदि तुम्हारा उद्देश्य यह हो कि जो भी पैसा बचेगा उसका उपयोग परोपकारके लिए करना है और कष्ट सहकर भी अपना पत्र चलाना है तो यह समाज-सेवा होगी। इससे भी एक कदम आगे जायें: तुम्हारा पड़ोसी

बीमार है; उसकी देखभाल करनेके लिए तुम अपने आरामका त्याग करती हो और बीमारकी परिचर्याका काम सीखती हो तो यह समाज-सेवा होगी। इन उदाहरणोंको समझकर तुम समाज-सेवाके अन्य अनेक उदाहरणोंकी कल्पना कर सकती हो और अपनी शक्तिके अनुसार समाज-सेवाके क्षेत्रका विस्तार कर सकती हो। यदि मणिलाल हिन्दुस्तानसे डरकर आफ्रिकामें मौज करनेके लिए रहता हो तो यह स्वार्थ हुआ। किन्तु बाप जो पत्र चलाता था वह अच्छा था, उसे चलाते रहनेसे देशको लाभ होगा —इस दृष्टिसे धन-संग्रह करनेकी इच्छा रखे बिना देशसे बाहर रहता हो और तुम्हें भी वहाँ इसी दृष्टिसे रख रहा हो तो वह भारी समाज-सेवा कर रहा है और उसमें तुम्हारा भी पूरा योग माना जायेगा।

हम आज मैसूर राज्यके एक दूरवर्ती स्थानमें आये हुए हैं। यहाँसे साठ मील दूर इनान्डाके प्रपात-जैसा ही पर उससे बड़ा एक प्रपात है। कल सब लोग उसे देखने जायेंगे। देवदास बंगलोरमें ही रह गया था; वह दूसरे साथियोंके साथ आज शामको आयेगा। हम चार दिनतक यहाँ पैसा इकट्ठा करनेके बाद बंगलोर जायेंगे। इस महीनेके अन्तमें हम मैसूर राज्यकी सीमा लाँघकर तमिल प्रदेशमें प्रवेश करेंगे।

मेरी तबीयत ठीक होती जा रही है। ऐसा नहीं लगता कि मैं दिसम्बरके अन्ततक आश्रम पहुँच सकूँगा। उसके बाद जनवरीमें तो वहाँ जाना ही है। क्योंकि मासके अन्तमें बसन्त पंचमी है और उस दिन रामदासका विवाह होना निर्धारित हुआ है। नीमू सुशीलाकी तरह समझदार है या नहीं और तुम्हें जैसा योग्य साथी मिल गया है रामदासको वैसा ही योग्य जीवन-साथी देकर उसे कैद कर पाती है या नहीं, यह तो अभी देखना बाकी है। नीमू समझदार तो है पर समझदारीकी भी सीढ़ियाँ होती हैं। तुम दोनोंमें कितना अन्तर है, कौन किससे बढ़कर है, यह तो भविष्य ही बतायेगा। मेरी तो यही इच्छा है कि तुम दोनों शिखरतक पहुँचो और तुम चारों एक-दूसरेकी धर्मनिष्ठामें वृद्धि करते रहो और सेवा-यज्ञमें सबसे आगे बढ़ो। रामदास बाढ़-निवारण कार्यमें सहायता देने गया हुआ है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ४७२५) की फोटो-नकलसे।

३२४. भाषण : शिमोगामें[1]

१४ अगस्त, १९२७

चरखेके प्रति लोगोंमें सहानुभूति है, विश्वास है और वातावरण भी अनुकूल है। अब मैं यह चाहता हूँ कि इस विश्वासको कार्य-रूप देनेके लिए कताई कलाके विशेषज्ञ लोग सामने आयें। मैं अनुभवसे जानता हूँ कि जहाँ विश्वासके साथ-साथ ज्ञान और कार्य-दक्षता नही रहती, वहाँ विश्वास जल्दी ही भाप बनकर उड़ जाता है और बहुत शानदार शुरुआतका भी कोई नतीजा नही निकलता। मैं चाहता हूँ कि आप वकील और व्यवसायी लोग अपने जिस विशेष ज्ञान और कौशलका उपयोग अपने-अपने धन्धोंके लिए करते हैं, उसका लाभ आप उस नये कामको भी दें, जिसे आपकी सहानुभूति प्राप्त है। आप कताईके आर्थिक पहलूका अध्ययन करें और इस कलापर पूरा अधिकार प्राप्त कर ले तथा वस्त्रोत्पादनसे सम्बन्धित विभिन्न कार्यों और प्रक्रियाओंके विशेषज्ञोंकी सहायतासे एक ऐसा संगठन बनायें जो उस शानदार प्रशासन-तन्त्रके समान सक्षम हो जिसकी रचना इस राज्यने की है।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, २५-८-१९२७

३२५. पत्र : मीराबहनको

सोमवार, १५ अगस्त, १९२७

चि० मीरा,

तो आखिरकार तुम्हे खोया हुआ पत्र मिल ही गया। बेचारा महादेव![2]

तुम्हें अपनी आँखें खराब नही करनी चाहिए — हिन्दी सीखनेके लिए भी नहीं। तुम्हे सबसे ज्यादा जरूरत इस बातकी है कि तुम हिन्दीमें बातचीत कर सको। ऐसा करते हुए तुम अपना एक निजी शब्दकोष बना डालो अथवा छपे हुए कोषमें व्याख्यात्मक टिप्पणियाँ लिखती जाओ। लेकिन, निश्चय ही, तुम्हारी आँखोंके बारेमें लन्दनके विशेषज्ञकी रायको मैं अन्तिम नही मानता। अक्सर ऐसा होता है कि सीधे-सादे उपचारोंकी ओर विशेषज्ञका ध्यान नहीं जा पाता और वह इस निष्कर्षपर पहुँच जाता है कि चूँकि लेन्समें फेरबदल करनेसे काम नही चलेगा, इसलिए दूसरा कोई उपाय ही नही है। लेकिन, खैर अभी तो इसे कुछ दिन और टाला ही जा

१. स्थानीय नगरपालिका और नागरिकोंकी ओरसे दिये गये मानपत्रोंके उत्तरमें।
२. महादेव देसाईने भूलसे पत्र पर वर्धाके बजाय साबरमतीका पता लिख दिया था।

सकता है। आश्रम लौट आनेपर हरिभाईसे अपनी आँखें जँचवाना। नेत्र-चिकित्साके क्षेत्रमें उसका अच्छा नाम है।

भणसालीको लिखे तुम्हारे पत्रकी भाषा बहुत ज्यादा तीखी नही थी। शैली मुझे पसन्द आई।

अगर मेरे कलके पत्रमें लिखी बातें तुम्हारी समझमें साफ-साफ नही आई हों तो मुझे लिखना।

सस्नेह,

बापू

अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ५२६१)से।
सौजन्य : मीरा बहन

३२६. पत्र : आश्रमकी बहनोंको

मौनवार [१५ अगस्त, १९२७][1]

बहनो,

तुम्हारा पत्र मिल गया है। आज हम जिस जगह हैं वह बंगलोरसे काफी दूर है। यहाँ ठण्ड कम है पर हरियाली ज्यादा है। कुछ-कुछ अंबोली जैसा लगता है।

अपना निर्धारित कामकाज तो मैं यहाँ कर रहा हूँ परन्तु मेरी आत्मा आश्रमके आसपास और गुजरातमें घूम रही है। यह कोई गुण नही बल्कि अवगुण ही है क्योंकि इसमें मोह है। आश्रममें होता तो और अधिक क्या करता? गुजरातकी और क्या मदद करता? किन्तु यह उत्पाती मन व्यर्थ बेचैन रहता है। ऐसी कुटेवसे तुम सब बचना। लेकिन ऐसी तटस्थता सीखनेकी एक शर्त है। जो अपने कर्त्तव्यके ही ध्यानमें लीन रहता है वही दूसरी बातोंके विषयमें उदासीन हो सकता है। पत्थर तटस्थ होता है पर उसे हम जड़ मानते हैं। उसके मुकाबले हम चेतन हैं। परन्तु हमारा जीवन तभी सफल माना जायेगा जब हम प्राप्त कार्यमें ही लीन रहें और दूसरी किसी बातका ध्यान तनिक भी न करें। इस प्रकारकी ध्यानावस्था एकाएक प्राप्त नही हो जाती। तुम लोगोंमें से कोई मेरे दोषोंका स्वप्नमें भी अनुकरण न करे इसीलिए अपने इस दोषका वर्णन मैंने तुम्हारे सामने यहाँ सहज भावसे कर दिया है।

आजकी भाषा थोड़ी कठिन हो गई है। जो शब्द या विचार समझमें न आये उन्हें समझना।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ३६६१) की फोटो-नकलसे।

१. गांधीजी इस तारीखको 'बंगलोरसे काफी दूर' शिमोगामें थे।

३२७. पत्र : मणिबहन पटेलको

मौनवार, १९२७[1]

चि० मणि,

तुम्हारा कार्ड मिल गया था। जो पत्र तुम लिखनेवाली थी वह नहीं मिला। मातरमें किस काममें लग गई हो और कौन-कौन है, लिखना। कोई भी सेवा करते हुए शान्ति मत खोना।

काकाको[2] मैंने लिखा था कि जब आप अपनी कुर्सीपर बैठकर तकली चलायेंगे तब मणिबहन आयेगी। उसके उत्तरमें वे लिखते है कि मणिबहन तो पागल है। मैंने लिखा है कि वह पागल है, इसीलिए पागलके साथ रहती है।

यशोदाके[3] लड़केका नाम क्या रखा है?

बापूके आशीर्वाद

चि० मणिबहन पटेल
मातर

[गुजरातीसे]
बापुना पत्रो – ४ : मणिबहेन पटेलने

३२८. पत्र : मणिबहन पटेलको

मौनवार, १९२७

चि० मणि,

तुम्हारा पत्र मिल गया। गाँवोंका अनुभव लिखकर रखना चाहिए जिससे भविष्यमें काम आये। कहीं भी अधीरता न दिखाई जाये। निराश न होना। अशान्त न होना। मुझे तो तुमसे बहुतसे प्रश्न पूछने होंगे। परन्तु वे अभी नहीं। मिलेंगे तब या काम हो जानेपर। मुझे नियमपूर्वक पत्र लिखती रहना। तबीयत हरगिज न बिगड़ने देना।

१. इसकी और अगले पत्रकी सही तिथियाँ ज्ञात नहीं हैं। लेकिन मणिबहन पटेलके "मातरमें काममें लग जाने" और यशोदाके पुत्र (जिसका जन्म २७ मई, १९२७को हुआ था) के उल्लेखसे और अगले पत्रमें विट्ठलभाई पटेलके "खूब काम करनेकी उम्मीदमें" वहाँ जानेके उल्लेखसे ऐसा लगता है कि ये पत्र उन्हीं दिनों लिखे गये होंगे जब गुजरातमें बाढ़ आई थी। इसलिए इन्हें मौनवारके अन्तर्गत "गुजरातमें बाढ़", ११-८-१९२७के बाद रखा जा रहा है।

२. विट्ठलभाई झवेरभाई पटेल; मणिबहन पटेलके चाचा और सरदार पटेलके भाई; उन दिनों वे केन्द्रीय विधान सभाके अध्यक्ष थे।

३. डाह्याभाई पटेलकी पत्नी।

काकासे मिली होगी। काका खूब काम करनेकी उम्मीदसे आये हैं।[1] वे सफल हों।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]
बापुना पत्रो – ४ : मणिबहेन पटेलने

३२९. पत्र : छगनलाल जोशीको

शिमोगा
श्रावण कृष्ण २ [१५ अगस्त, १९२७][2]

भाईश्री छगनलाल जोशी,

इसके साथ भाई भणसालीके पत्र भेज रहा हूँ। मैंने उन्हें जो तार[3] और पत्र भेजे थे, वे तुमने देखे होंगे। इन पत्रोंको तुम स्वयं और मण्डलके अन्य सदस्य ध्यानसे पढ़ लें और उनपर विचार करें। पत्रोंपर विचार करनेके बाद उन्हें भाई भणसाली-को वापस कर देना। मुझे लिखा हुआ पत्र दफ्तरकी फाइलमें रख देना या मुझे वापस भेज देना।

इस बातपर खूब तटस्थ भावसे विचार करना। मेरा ऐसा विश्वास है कि इस पत्रसे पूर्वके अपने पत्रोंमें भाई भणसालीने मेरे वहाँ लौटनेतक प्रतीक्षा करनेका जो वचन दिया था उसपर वे कायम रहेंगे। फिर भी हमें भविष्यके लिए इस बातपर विचार कर लेना चाहिए। मेरी राय है कि हम भाई भणसालीको इजाजत न दें। किन्तु इजाजत न मिलनेपर भी यदि वे उपवास करें तो हम उसे सहन कर लें। आश्रममें हम ऐसी बहुत-सी बातें सहन करते ही हैं जिनके बारेमें यदि कोई इजाजत माँगने आये तो हम नहीं देंगे। लेकिन इनके सिवा ऐसी कई बातें हो सकती हैं जिनकी हम न तो इजाजत दे सकते हैं और न जिन्हें हम सहन कर सकते हैं। यह उपवासकी बात किस श्रेणीमें रखी जाये, इसपर विचार करना है। अब तुम सब इस मुद्देपर विचार करना और जो उचित लगे सो करना। मैं यहाँसे तुम्हारा मार्गदर्शन नहीं कर सकता। क्योंकि इसके लिए मुझे पहले भाई भणसालीसे बात करनी चाहिए और वे जो कुछ कहते हैं उसका अपने मनपर असर होने देना चाहिए। तुम जो भी निर्णय करो उससे पहले भाई भणसालीके साथ अलगसे और मण्डलके सामने बातचीत तो करना ही। लीलाबहनके मनके गहरेसे-गहरे विचार जान लेना और मेरे साथ पत्र-

१. गुजरात बाढ़से तबाह हो गया था। तभी वि. झ. पटेल नडियाद आये थे, जहाँसे उन्होंने बाढ़ग्रस्त इलाकोंका दौरा किया था।

२. गांधीजी सन् १९२७ में इस तारीखको शिमोगामें थे।

३. १३ अगस्त १९२७ का।

व्यवहार करना चाहो तो करना। इस सम्बन्धमें निर्णय करनेमें जरा भी उतावली मत करना। भाई भणसाली अपने आजके पत्रके निश्चयपर दृढ़ न रह सके और क्योंकि मैंने इस प्रश्नपर मण्डलमें चर्चा करनेकी बात कही है इसलिए यदि तुम मण्डलसे बातचीत करनेके बाद मुझे अपनी राय लिखो और यदि वे मेरे आनेके पहले ही मण्डलका निर्णय माँगें तो तुम्हें यह निर्णय दे देना होगा। परन्तु यह जरूरी है कि वे मण्डलकी सुविधाका पूरा ध्यान रखें। मैं मानता हूँ कि इस प्रश्नका निर्णय मण्डलके गैरहाजिर सदस्योंसे पूछे बिना भी नहीं किया जाना चाहिए। क्योंकि एक ओर तो धर्म यह कहता है कि भणसालीका कदम चाहे हमें अनुचित लगता हो फिर भी जबतक वह अनैतिक न हो तबतक हमें उन जैसे निर्मल मुमुक्षु और जिज्ञासुको [अपने रास्ते पर] अपनी गतिसे चलने देना चाहिए, यानी उन्हें आश्रममें रहने देना चाहिए; दूसरी ओर हमारा धर्म यह कहता है कि उक्त कदम अनीतिपूर्ण न हो फिर भी यदि वह हमें अविचारपूर्ण और भयानक मालूम हो तो शायद हमारा कर्त्तव्य यही होगा कि हम उन्हें आश्रममें वैसा न करने दें। मतलब यह कि हमें आश्रममें समानधर्मी लोगोंको एकत्रित करने और उन्हें व्यक्तिगत स्वतन्त्रता देने, इन दो बातोंका मिलन-बिन्दु ढूंढ़ निकालना है। और यह ऐसा काम है जो उतावलीमें नहीं किया जा सकता। भाई भणसालीको अपनी कठिनाइयाँ समझाना और उनसे अनुरोध करना कि वे जिस 'दर्शन' के लिए इतने उत्सुक हैं उसे सुलभ बनानेके लिए ही वे हमारे इन शुभ प्रयत्नोंका आदर करें। मुझे इस विषयमें समय-समयपर खबर देते रहना और जरूरी लगे तो तार भी दे देना।

लाहौरवाले बाबा मोहनलाल वहाँ हों और चुपचाप तथा सच्चे मनसे मजदूरी करते हों तो उन्हें मजदूरी करते रहने देना और मेरे आश्रम आनेतक रहने देना। पर यह तो मेरी राय है। उनका काम देखने अथवा आश्रमकी व्यवस्थासे सम्बन्धित दूसरी बातोंका विचार करने पर तुम्हें लगे कि उन्हें नहीं रखा जा सकता तो उन्हें छुट्टी दे देना। इसके साथका पत्र उन्हें दे देना।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (एस० एन० १२९६५) की फोटो-नकलसे।

३३०. पत्र : बालकृष्णको

१५ अगस्त, १९२७

चि० बालकृष्ण,

आज तो मैं तुम्हें लिखे बिना नहीं रह सकता।

तुम्हारी विचारधारा या कार्यधाराके बीचमें पड़ना मुझे अच्छा नहीं लगता क्योंकि तुम अपने विचारोंको बहुत सूक्ष्मतापूर्वक स्थिर करते हो। किन्तु अपने विचारोंका उपस्थापन सूक्ष्मतापूर्वक करनेवाले व्यक्तिके लिए भी कभी-कभी बड़ोंका अनुभव सहायक होता है। ऐसी सहायता करनेकी इच्छासे कभी-कभी तुम्हारे साथ कुछ चर्चा कर लेता हूँ। मुझे लगता है कि अपने चरित्रका निर्माण करनेके लिए हमें समाजमें रहनेकी आवश्यकता होती है और उसकी सिद्धिके प्रयत्नमें अपने अग्रणियोंका ताप भी सहन करना पड़ता है। सिद्धान्त को जाननेवाले व्यक्तिके समक्ष नित्य नये सिद्धान्त उपस्थित नहीं होते। हाँ, नित्य नये धर्मसंकट अवश्य उपस्थित होते हैं। इन दोमें भेद है, उसपर विचार करना। जब धर्मसंकट उपस्थित होता है तभी सिपाही अपने नेताकी आज्ञाका पालन करता है और अपनी बुद्धिको एक ओर रख देता है। जो व्यक्ति हमेशा अपनी बुद्धिका प्रयोग करनेका आग्रह करता है उसकी बुद्धि आत्मदर्शनमें आवरणरूप सिद्ध होती है। जहाँ नेता जान-बूझकर अनीतिका आचरण न कर रहा हो वहाँ उसकी बुद्धिको स्वीकार कर लेनेमें अहिंसा है। अहिंसा आम्र-तरुसे भी अधिक नम्र है। कहा जाता है कि आमका वृक्ष जब फलता है तब वह झुक जाता है। अहिंसा जिस समय सम्पूर्ण रूपसे फलती है उस समय वह शून्यवत् व्यवहार करती है। ऐसा अहिंसक व्यक्ति अपनी ही बातपर अड़ने और अपनी बात मनवानेका प्रयत्न करनेके बजाय सबको अपनी-अपनी बात सही सिद्ध कर दिखानेकी सुविधा देता है। इसीलिए शास्त्रकारने[1] कहा है : अहिंसाः प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः। शून्यसे कौन वैर करेगा और कैसे करेगा?

मगनलालके कैदी बननेमें तुम कुछ खोओगे नहीं। मुमकिन है, वह भूल करे और उसके आदेश भूलभरे हों। किन्तु उनका पालन करते हुए भी तुम उन्नति करोगे और मगनलाल भी उन्नति करेगा। क्योंकि वैसा करके हम एक नैतिक सिद्धान्तका आचरण कर रहे हैं। तुम्हारा उसके अधीन हो जाना उसकी भूल सुधारनेका एक साधन सिद्ध होगा। अपने सम्बन्धमें तो मैंने यह बात कई बार देखी है। मैंने स्वयं अपने साथियोंकी अधीनता स्वीकार करके उनकी भूलें सुधारी हैं और मेरी अधीनता स्वीकार करके मेरे साथी तो प्रतिदिन अपनी न जाने कितनी भूलें सुधारते होंगे। किन्तु यदि वे रोज-रोज मुझे मेरी भूलोंका पृथक्करण करके दिखायें और इस तरह मुझे परेशान करें तो उनकी और मेरी, दोनोंकी आज क्या स्थिति हो?

१. पतञ्जलि।

इस पत्रपर उतावलीमें विचार करके मेरे पास न दौड़े आना। मैं चाहता हूँ और तुमसे यह माँगता भी हूँ कि तुम शान्त हो जाओ।

[गुजरातीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरी।
सौजन्य : नारायण देसाई

३३१. पत्र : रामदास गांधीको

१५ अगस्त, १९२७

चि० रामदास,

ये प्रलय हमें सावधान करनेके लिए आते हैं। अन्तिम महाप्रलय तो होगा ही; इसमें कोई शंका नहीं है। जगत्की माया ऐसी है कि मनुष्य अपने समस्त दुःखोंको भूल जाते हैं। इसमें कुछ लाभ तो है पर विजयी तो वही होता है जो ऐसी विपत्तियों-को दृष्टिमें रखकर अपनी ही नहीं जगत्की क्षणभंगुरताका विचार कर निर्लिप्त भावसे जीवन व्यतीत करता है। इसी जीतमें पुरुषार्थ है। अच्छी तरह सोचें तो हम सबको मृत्युका दंड तो जन्मसे मिल चुकता है। फिर भी क्या कारण है कि बूढ़े, जवान और बालक सभी लोग भोग-विलासमें डूबे रहते हैं? यह तो प्रत्यक्ष ही है फिर भी हम अपने-आपसे यह सवाल निरन्तर पूछते रहें और ऐसी बाढ़-जैसी विपत्तियोंके समय तो और भी व्याकुल होकर पूछें। इस प्रकार पूछते-पूछते शायद किसी दिन हृदयमें उसका उत्तर अंकुरित हो उठेगा। बुद्धि तो आज भी उत्तर दे रही है। हे नर, राग-मात्रका त्याग कर; परन्तु जबतक हृदयका समर्थन न मिले तबतक बुद्धि बेचारी लाचार ही है।

[गुजरातीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरी।
सौजन्य : नारायण देसाई

३३२. पत्र : देवेश्वर सिद्धान्तालंकारको

स्थायी पता : बंगलोर
१६ अगस्त, १९२७

प्रिय मित्र,

आपके विस्तृत पत्र और आपके लेखोंकी छपी हुई प्रतिलिपियोंके लिए धन्यवाद। मैं आपके लेखोंको फिरसे पढ़नेका समय निकालूँगा।

अंग्रेजीमें आपका लिखना मुझे पसन्द आयेगा। पता नहीं, मैंने अपने पिछले पत्रमें[1] आपको लिखा था या नहीं कि अंग्रेजीमें लेख, मैं अपने लिए नहीं बल्कि अपने उन मुसलमान और अन्य मित्रोंके लिए चाहता हूँ जो 'कुरान शरीफ' और इस्लामकी अच्छी जानकारी रखनेका दावा करते हैं। 'कुरान' के अपने अध्ययनको मैं किसी भी तरह गहन या पाण्डित्यपूर्ण नहीं मानता। वह तो मैंने सिर्फ अपने सन्तोषके लिए किया है।

लगता है कि आपके विचारमें वैदिक कालमें 'दस्यु' शब्दका जो अर्थ लगाया जाता था, वह ठीक वही नहीं था जो इस्लाममें 'काफिर' शब्दका लगाया जाता है। प्राचीन इतिहासको छोड़िए; मैं चाहता हूँ कि आप वर्तमान इतिहासको देखें, जो आज हमारे सामने बन रहा है। क्या मुसलमानोंको आज हजारों हिन्दू शत्रु नहीं समझते, ऐसे शत्रु, जिनका या तो धर्म-परिवर्तन किया जाये या फिर उनको नेस्तनाबूद कर दिया जाये? क्या अंग्रेज लोगोंको अनेक सुसंस्कृत भारतीय दुष्ट मानकर उनसे घृणा नहीं करते? यदि आज कोई अनुदार व्यक्ति हमारे और अंग्रेजोंके सम्बन्धोंका वर्णन करते हुए एक पाण्डित्यपूर्ण प्रबन्ध लिखे, तो क्या वह अंग्रेजोंको ऐसे दस्यु या आततायी नहीं बतायेगा जिनको देखते ही समाप्त कर देना चाहिए? और यदि वह प्रबन्ध कालके उलट-फेरका शिकार न बने और बादमें उसे धार्मिक साहित्यमें शामिल कर लिया जाये, तो क्या आगे आनेवाली पीढ़ियोंके भी वही भूल करनेकी आशंका नहीं है जो आज हम कर रहे हैं? क्या ऐसी सम्भावना नहीं है कि वे आजके इन 'दस्युओं' और 'आततायियों' को राजनीतिक शोषक नहीं, बल्कि सचमुच दुष्ट जन समझें, और उसी अर्थमें दुष्ट समझें जो अर्थ इस शब्दको आप आज दे रहे हैं? या आप आज भी मानते हैं कि समूची अंग्रेज जाति सचमुच दुष्ट है? एक और उदाहरण लीजिए। असहयोग आन्दोलनके प्रणेताके नाते मैं जानता हूँ कि अनेक तथाकथित असहयोगी लोग सरकारके साथ सहयोग करनेवालोंसे इस तरह घृणा करते हैं जैसे वे सचमुच दुष्ट राक्षस हों; और यदि उनकी चलती तो वे इन सहयोगियोंको चीरकर रख देते, उन्हें खत्म कर देते। अब मान लीजिए कि मैंने ऊपर जिस प्रकारके प्रबन्ध-लेखकका जिक्र किया है, उसी प्रकारका कोई असहयोगी विद्वान् कोई प्रबन्ध लिखता है, जाहिर है कि वह सहयोगियोंको दुष्ट प्रकृतिके व्यक्तियोंके रूपमें चित्रित करेगा। तब आप उस

१. देखिए खण्ड ३३, पृष्ठ ३८६-८८।

निर्णयको स्वीकार कर लीजिएगा या श्वेताम्बरों और दिगम्बरोंकी तरह, जो एक धर्मके दो सम्प्रदायोंके अनुयायी थे और इसलिए जिन्हें भाई-भाई कहा जा सकता था, खुली लड़ाईमें कूद पड़ियेगा? क्या वे दोनों एक-दूसरेकी दृष्टिमें दुष्ट नहीं थे? सच तो यह है कि आप जिनको दुष्ट मानते हैं उनको नेस्तनाबूद करनेका सिद्धान्त जहाँ आपने स्वीकार किया, वहीं आपके सारे तर्क चुक जाते हैं और आप उसी वर्गमें पहुँच जाते हैं जिसमें 'कुरान शरीफ' के बारेमें लिखनेवाले लेखक या उनके लेख आते हैं। मैं जो भी यहाँ लिख रहा हूँ उसकी पुष्टिके लिए इतिहासका प्रमाण देनेकी आवश्यकता नहीं समझता, लेकिन यदि जरूरत पड़े तो वे जुटाये जा सकते हैं।

मैं आपको निष्ठावान सत्यान्वेषी मानता हूँ। नानकदेव और कबीरके बारेमें आपने जो राय दी है, मेरी अपनी राय उससे बिलकुल भिन्न है। लेकिन यह तो छोटी-सी बात है; यदि मुझे आपकी पुस्तिका मिल गई, तो मैं बड़ी खुशीसे आपको वे अनुच्छेद निकालकर बताऊँगा जिनका अनुवाद मेरी दृष्टिमें समुचित नहीं हुआ है।

यह बड़ी विचित्र बात है कि जो हिन्दी पत्र मुझे खिलाफ मिला है वह प्रोफे-सर सहगलका लिखा हुआ नहीं है। उनका नाम तो मैंने पत्रसे ही जाना था। फिर भी अफसोस है कि मैंने उत्तर लिखनेके बाद वह पत्र नष्ट कर दिया। यही हो सकता है कि किसी और ने प्रो० सहगलके कागजपर उन्हींके नामसे पत्र लिख दिया हो। पर इसमें कोई खास बात नहीं। मैंने तो यों ही आपकी जानकारीके लिए यह बता दिया है।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी (एस० एन० १२३८८) की माइक्रोफिल्मसे।

३३३. बाढ़से शिक्षा

यदि सच हो तो अच्छा है

मैं 'नवजीवन' में[1] स्वामी आनन्दका लेख और बाढ़-पीड़ितोंमें किये जा रहे सहायता-कार्यका विवरण पढ़ गया हूँ। किन्तु उसमें दिये गये लोगोंकी वीरता, सहयोग और दयाके उदाहरणोंमें विश्वास करते हुए मैं हिचक रहा हूँ क्योंकि झूठी प्रशंसा, अतिशयोक्ति और आत्मवंचना आजकल इतनी ज्यादा दिखती है कि गुजरातने इतना अधिक साहस दिखाया होगा यह मानते हुए मनमें संकोच होता है। किन्तु 'नवजीवन' में प्रकाशित इस सारी हकीकतपर अविश्वास करनेका भी मेरे पास कोई कारण नहीं है। 'नवजीवन' में अतिशयोक्ति और असत्य आदिका दृढ़तापूर्वक त्याग किया जाता है, यह बात स्वामी आनन्द 'नवजीवन' के जन्मकालसे ही जानते हैं और 'नवजीवन' की इसी नीतिके कारण वे संस्थाकी सेवा कर रहे हैं और उसमें रस ले रहे हैं।

१. ७ अगस्त, १९२७ के नवजीवनमें; देखिए "टिप्पणियाँ" २५-८-१९२७के अन्तर्गत उप-शीर्षक "क्या सत्य इतना सुन्दर हो सकता है?"

इसलिए जबतक मुझे ऐसा माननेका कोई कारण नहीं मिलता कि 'नवजीवन' में प्रकाशित विवरण गलत है तबतक तो मुझे उसे सत्य मानकर ही चलना चाहिए। इसलिए मैं गुजरातको और गुजरातियोंको उनके इस साहसपर बधाई देता हूँ। बल्कि क्षणभरके लिए तो यह विचार भी आता है कि जिस बाढ़के कारण गुजरातकी जनताके सात्विक गुणोंका ऐसा सुन्दर दर्शन सुलभ हो सका उस बाढ़का आना एक दृष्टिसे शुभ ही हुआ।

ऐसी बाढ़ें आती ही रहती हैं; आपत्तियाँ आती-जाती रहेंगी; धन-सम्पत्ति आज है और कल नहीं है; घर-द्वार बाग-बगीचे मनुष्य बनाता है और वे मिट जाते हैं तो उनका नाश हो जानेपर उन्हें फिर बनाता है। इसलिए इसके कारण जो दुःख हमें भोगना पड़ा है वह तो हम भूल ही जायेंगे।

किन्तु गुजरातने इस अवसरपर अपनेमें जिन गुणोंका दर्शन किया है यदि वह उन्हें भूल गया तो? वीरता आदि गुणोंके क्षणिक दर्शनके, श्मशान-वैराग्यके उदाहरण तो मिलते ही रहते हैं। यदि गुजरातियोंके ये गुण भी श्मशान-वैराग्यकी भाँति क्षणिक सिद्ध हुए तो बाढ़की शिक्षा बेकार हो गई कही जायेगी।

मैं चाहूँगा कि गुजरातके स्त्री-पुरुष इस बातको ध्यानमें रखें और सावधान रहें। यह तो हमने देख लिया कि हमारी जनतामें कितनी वीरता, सहनशीलता, प्रेम आदि है। अब हमें उसके इन गुणोंको स्थायी करनेका प्रयत्न करना चाहिए। हिन्दू और मुसलमान भाइयोंकी तरह गले मिलें। ऊँची जातिवालोंने दलितों और अस्पृश्योंको अपने कुटुम्बियोंकी तरह अपने घरोंमें शरण दी और उनकी सहायता की। यदि यह पाठ हम ऐसा मानकर भूल जायें कि यह तो आपद्-धर्म था तो हम जहाँ थे वहीं रह जायेंगे और बाढ़के रूपमें इन दिनों हमने जो प्रसव-वेदना सही वह व्यर्थ सिद्ध होगी। ऐसी बड़ी आपत्तियाँ प्रवस-वेदनाके तुल्य ही होती हैं। जिस तरह प्रसव-वेदनाके बाद नया जन्म होता है उसी प्रकार इन आपत्तियोंसे भी होना चाहिए। और जबतक वह वास्तविक नया जन्म नहीं होता तबतक ये आपत्तियाँ आती ही रहेंगी।

गुजरातने आज जो किया है उसे मैं शुद्ध स्वराज्य कहना चाहता हूँ। गुजरातकी जनतामें आज जो गुण प्रगट हुए हैं वे यदि हमेशाके लिए बने रह जायें तो मैं कहूँगा कि गुजरातने स्वराज्य प्राप्त करनेकी योग्यता और शक्ति, दोनों ही, पा लीं।

इस बाढ़के कारण जो विनाश हुआ वह सामान्य नहीं था। उसके अत्याचारोंकी तुलनामें डायरके अत्याचार भी फीके मालूम होते हैं। डायरशाहीकी ज्वालामें तो हजार-बारह सौ आदमी ही हताहत हुए थे। इस बाढ़में कितनोंके प्राण गये और कितनी धन-सम्पत्तिका नाश हुआ इसका अभी कोई हिसाब ही नहीं दिया जा सकता। किन्तु हमने उसे गालियाँ नहीं दीं। हमने उसके खिलाफ सत्याग्रह किया, आत्मशुद्धि की, हम रचनात्मक कार्योंमें जुट गये। हमने हिन्दू-मुसलमान एकता साधी, अस्पृश्यताका बहिष्कार किया, स्वाश्रयी बने और अपने भाई-बहनोंके लिए अपना धन खुले हाथों लुटाया। हमने किसी नेताकी राह नहीं देखी। हमने शत्रुको पीठ नहीं दिखाई, हम उसके सामने छाती खोलकर डटे रहे और अविचलित मनसे रक्षा-कार्योंमें लग गये। यदि हम उससे डर

गये होते, यदि हमने उसे गालियाँ देनेमें अपना समय नष्ट किया होता, यदि हमने हिंसक वृत्ति रखकर उससे झगड़ा किया होता तो हमारा कष्ट कई गुना बढ़ जाता।

इस 'गरवी'[1] गुजरातको मेरे हजारों नमस्कार!

किन्तु मैं?

एक प्रश्न किया जा सकता है: गुजरातको इस तरह बधाई देनेका, उसकी इस तरह स्तुति करनेका किसी दूर बैठे गुजरातीको क्या अधिकार हो सकता है? मुझे इस अवसरपर गुजरातमें होना चाहिए, इस आशयके तीन तार और एक पत्र मेरे पास पहुँचे। पत्र पहले मिला था। पत्र स्वामी आनन्दका था। "क्या तुम्हारा धर्म इस समय यहाँ आकर द्रव्य और स्वयंसेवकोंको इकट्ठा करके अपनी सेवा देना नहीं है?" इस वाक्यमें मैं स्वामीकी वेदना और मेरे प्रति उनका मोह देख सका। बादमें सरोजिनीदेवीका एक हृदयद्रावक तार आया; उसमें एक वाक्य यह था: "अपनी तबीयतको जोखिममें डालकर भी तुम यहाँ आओ और दुःखियोंके आँसू पोछो, उन्हें हिम्मत बँधाओ।" बादमें ज्वलन्त भाषामें एक तार 'चन्दूलाल' का आया। ऐसी ज्वलन्त भाषामें जो तार भेज सकता है ऐसे एक ही चन्दूलालको मैं जानता हूँ इसलिए मैंने इस तारको अपने परिचित डा० चन्दूलालका तार मान लिया। किन्तु डा० चन्दूलाल कहते हैं कि वह तार उनका नहीं था। जिसका भी हो उसे ऐसे समय मुझे उलाहना देनेका और मेरे ऊपर नाराज होनेका अधिकार है। दुःखकी घड़ियोंमें बहुधा मनुष्य अपने लोगोंपर नाराज होकर उस दुःखको कुछ कम करता है। और यदि मेरे साथी मेरे ऊपर नाराज न हों तो किसके ऊपर हों? अस्तु, वह तार चाहे जिस चन्दूलालका रहा हो मैंने उसका स्वागत किया। इसके बाद दो तार भाई देवचन्द पारेखके आये जिनमें मुझसे साबरमती आश्रममें बैठकर सेवा करनेका आग्रह किया गया था।

किन्तु मैं तो निश्चिन्त रहा। गुजरातकी स्वावलम्बन-शक्तिपर मेरा पूरा विश्वास था और आर्थिक सहायताके सम्बन्धमें तो बिलकुल शंका थी ही नहीं। वल्लभभाईपर मुझे पूरा भरोसा था और उनके साथ तार-व्यवहार चल ही रहा था। मुझसे गुजरात आनेके लिए जो आग्रह किया जा रहा था उसकी जानकारी देते हुए मैंने उन्हें तार भेजा और यह सूचना दी कि यदि वे भी मेरी उपस्थिति आवश्यक मानते हों तो मुझे तार दें। उन्होंने तुरन्त तारसे जवाब दिया, जिसका मैं अनुवाद ही दिये दे रहा हूँ: "लोगोंका दुःख अवर्णनीय है किन्तु आपकी आजकी हालतमें आपका यहाँ आना उचित नहीं। आपने गुजरातको अपने पैरोंपर खड़े होनेकी जो तालीम दी है और यहाँ जिन संस्थाओंको आपने खड़ा किया है उनके द्वारा आपकी उपस्थितिसे जितना हो सकता है उसकी अपेक्षा कहीं ज्यादा काम हुआ है। कुछ लोग आपकी अनुपस्थितिका उलटा अर्थ अवश्य करेंगे किन्तु वह तो अनिवार्य है। आपको आराम करना चाहिए और यहाँ न आ सकनेके बारेमें चिन्ता नहीं करनी चाहिए।"

इसी आशयका एक तार बादमें स्वामी आनन्दका भी मिला।

१. अर्थात् गौरवशाली; गुजरातके लिए गुजराती लेखकों द्वारा प्रयुक्त प्रचलित विशेषण।

यह सारा इतिहास देकर मैं अपना बचाव नही कर रहा हूँ। सेवकको अपना बचाव करना ही नही चाहिए। इसके सिवा मेरी तबीयत इतनी नाजुक भी नही है कि मैं वहाँ आ ही न सकूँ। वैसे, वह नाजुक है जरूर। खेड़ा आन्दोलनके[1] दिनोंमें मैं अपने शरीरसे जितना काम ले सका था आज वह उसका दशांश भी नही कर सकता। मस्तिष्क तो बिलकुल निकम्मा हो गया है। जरा-सा काम करते ही थक जाता है। बिस्तरमें लेटे रहना पड़ता है। किन्तु जहाँ आग लगी हो वहाँ बीमारको भी जान जोखिममें डालकर जाना चाहिए और अगर वह पानीका घड़ा उठा सकता हो तो उसे पानी डालना चाहिए। और अगर उसकी हालत ऐसी हो कि वह बैठा-बैठा केवल दूसरोंको हुक्म ही दे सकता हो तो उसे वहाँ डोलीमें चढ़कर पहुँचना चाहिए। यानी जो भी हो दावानलको बुझानेमें मदद करनेके लिए उसे हाजिर अवश्य होना चाहिए।

किन्तु मैं इस घटनासे अपने साथियोंको एक पाठ देना चाहता हूँ और उन्हें सावधान कर देना चाहता हूँ। गुजरातमें हम लोग एक अलिखित और अकथित नियमको मानते आये हैं। वह नियम यह है कि जिसे जो काम सौंपा जाये उसके उस काममें दूसरोंको उसकी इच्छा अथवा अनुमतिके बिना बीचमें नही पड़ना चाहिए। और उस कार्यकर्तापर पूरा विश्वास रखना चाहिए। अलबत्ता, जब उसपर हमारा विश्वास न रहे तब उसे निःसंकोच उसके स्थानसे हटा देना चाहिए। गुजरातके हमारे नेता वल्लभभाई हैं। मेरी स्थिति एक आदरणीय बुजुर्गकी जरूर है किन्तु जहाँतक गुजरातके कामका सवाल है मुझे वल्लभभाईकी आज्ञामें चलना चाहिए। हम लोग गुजरातमें आजतक जो कुछ कर सके हैं वह इसी तरह कर सके हैं। ऐसा करके हमने अनुशासन सीखा है, अपनी शक्तिमें वृद्धि की है और जो काम किया जाना है उसका हम समुचित विभाजन भी कर सके हैं।

किन्तु वल्लभभाईने जो-कुछ लिखा उसके अलावा भी मेरा यह खयाल था कि इस बार गुजरातमें मेरी हाजिरीकी आवश्यकता नही है। वल्लभभाईकी सेवा-शक्तिपर मेरा अचल विश्वास है। खेड़ा युद्धके बादसे उन्होंने बराबर मेरा साथ दिया है। उनके त्यागसे किसीका त्याग बड़ा नही है। अपनी बुद्धि-शक्तिका लाभ उन्होंने गुजरातको अनेक बार दिया है। संकट-निवारणका कार्य वे इसके पहले भी कर चुके हैं। ऐसी स्थितिमें मैं वहाँ आकर और क्या कर लेता?

इसके सिवा यदि मैं वहाँ इसी कामके लिए आता तो वल्लभभाई अपने स्वभावके अनुसार मुझसे मार्गदर्शनकी आशा रखते तथा स्वतन्त्र रूपसे अपनी कार्यशक्तिका उपयोग न करते। ऐसे अवसरपर इस बातको मैं बहुत बड़ी हानि समझता हूँ। मैं वहाँ नया-नया आऊँ और हर काममें गड़बड़ करने लग जाऊँ तो उससे केवल मेरा अज्ञान और अभिमान ही प्रकट होगा।

इसके सिवा मैं यहाँ बेकार भी नहीं बैठा हूँ। अपनी अल्प बुद्धिके अनुसार मैं यहाँ इन पाँच दिनोंकी वर्षा और बाढ़से भी ज्यादा भयंकर जो व्याधि केवल गुजरातको ही नही बल्कि सारे देशको लगी हुई है उसे दूर करनेमें लगा हुआ हूँ। इस

१. देखिए खण्ड १४।

महत्त्वपूर्ण कामको छोड़कर किसी दूसरे लुभावने कामके पीछे अकारण दौड़ पड़ना धर्म नहीं बल्कि अधर्म ही कहा जायेगा। हमारे आलोचक हमारे सम्बन्धमें यह कहते हैं कि हम बहुधा संकटकी घड़ियोंमें उतावलीके कारण और मोहवश अपनी प्रत्युत्पन्न मति और विवेक खो बैठते हैं। इस आरोपमें जितना सत्य हो उस सीमातक हमें उससे मुक्त हो ही जाना चाहिए।

किसी भी मनुष्य या स्त्रीको और खासकर किसी भी नेताको बाहरी दबावके अधीन होकर अपने हृदयकी आवाजका अनादर करके कोई काम नहीं करना चाहिए। जो नेता ऐसा करता है वह लोगोंका मार्गदर्शन करनेका अधिकार खो बैठता है। इस अवसरपर यह कहावत ठीक लागू पड़ती है कि 'जाननेवालेको जो चीज ढक्कन में भी दिख जाती है पड़ोसीको वह आइनेमें भी नजर नहीं आती।' मुझे ऐसा लगा ही नहीं कि इस अवसरपर मेरा कर्त्तव्य गुजरात दौड़े आनेका है।

ऊपर मैंने जिन तारोंकी चर्चा की है वे मेरे प्रति लोगोंके मोहके सूचक हैं। यह मोह जाना चाहिए। मुझमें कोई शक्ति नहीं है; मैं तो निमित्त-मात्र हूँ। सच्ची शक्ति तो सत्यकी, प्रेमकी अर्थात् अहिंसाकी ही है। यह शक्ति जहाँ होती है वहाँ अन्तमें सब सरल और अनुकूल हो जाता है, यह निर्विवाद सिद्धान्त है। गुजरात और भारतवर्ष मेरा मुँह ताकते हुए बैठे रहें, इसमें हमारी हानि है। उन्हे तो सत्य और अहिंसाकी जोड़ीकी पूजा करनी चाहिए। वे सत्य और अहिंसाकी ओर ही देखें और मेरे-जैसा सेवक जबतक सीधी राह चलता रहे तबतक उससे काम लें और जिस दिन वह टेढा चलने लगे उस दिन उसे दण्ड दें।

यदि मैं वहाँ आ जाता तो गुजरातने जो जौहर दिखाया और अब भी दिखा रहा है उसे उस स्थितिमें शायद वह न दिखा पाता। जो नेता या सेवक अशक्त हो गये हैं उन्हें सक्रिय नेतृत्व या सक्रिय सेवाका लोभ छोड़ देना चाहिए। इस आपत्तिके कालमें बीमार आदमीके लिए कोई स्थान नहीं हो सकता। उसमें तो उन्ही लोगोंका काम है जो स्वस्थ हैं, दौड़-धूप कर सकते हैं, और भूख-प्यास, गरमी-सरदीका कष्ट सह सकते हैं। जो ऐसा नहीं कर सकते वे वेगके साथ आगे बढ़ रही सेनाके लिए बाधक ही सिद्ध होंगे।

अन्तमें, सेवकको इस बातसे न तो डरना चाहिए और न नाराज होना चाहिए कि उसके व्यवहारका कोई गलत अर्थ लगाया जा सकता है। जो सेवा करता है या नेतृत्व करता है उसके कामके विषयमें गलतफहमी सदासे होती रही है और होती रहेगी, उसे सहन करना और अपने निश्चयपर अडिग बने रहना भी सेवकका और नेताका एक लक्षण है। मेरा तो हमेशासे यही अनुभव रहा है। इसलिए ऐसी गलत-फहमीका मेरे मनपर कोई असर नहीं होता।

संक्षेपमें मुझे इतना ही कहना है कि गुजरातने इस समय स्वाश्रयका परिचय देकर अपने-आपको जिस प्रकार शोभान्वित किया है वैसा ही वह हमेशा करता रहे। मेरे-जैसे आदमी तो जाने कितने आयेंगे और जायेंगे।

साथियोंसे

मुझे आशा है कि मैंने ऊपर जो-कुछ कहा है मेरे साथी उसे समझ गये होंगे। किन्तु अभी उनसे थोड़ा-सा और कहना है।

१. मैं मान लेता हूँ कि इस मौकेपर कोई भी कार्यकर्त्ता अपने मनमें किसी प्रकारका अभिमान नहीं आने देगा; वह निःसंकोच भावसे दूसरोंकी मदद करेगा और उनकी मदद लेगा।

२. जो भी व्यक्ति ऐसे समय नाम कमानेकी दृष्टिसे काम करेगा वह पापका भागी होगा।

३. विभिन्न संस्थाओंके बीच इस समय पूरा सहयोग होना चाहिए।

४. सरकार जहाँ हमारी शर्तों पर मदद करना चाहे वहाँ उसकी मदद लेनेमें बिलकुल संकोच नहीं करना चाहिए। तात्त्विक दृष्टिसे ऐसा करनेमें असहयोगके सिद्धान्तका भंग भी नहीं होता। जहाँ भक्ति प्रधान हो वहाँ तात्त्विक बारीकियाँ निकालना नीरस मालूम होना चाहिए। यदि सरकार अपना पैसा सदुपयोग करनेके लिए हमें देती हो तो वह हमें निस्संकोच स्वीकार कर लेना चाहिए और माँगना भी चाहिए।

५. संस्थाका अस्तित्व लोगोंकी सेवाके लिए है, लोग संस्थाकी सेवाके लिए नहीं हैं — यह बात कदापि नहीं भूलनी चाहिए।

६. मैं देखता हूँ कि इसमें तीन संस्थाएँ अलग-अलग काम कर रही हैं – वल्लभ-भाईके नेतृत्वमें, अमृतलाल सेठके नेतृत्वमें और श्री देवधरके नेतृत्वमें। मैं चाहूँगा कि उनमें से किसीका भी कार्यक्षेत्र दूसरेके क्षेत्रमें न जा पहुँचे। वे आपसमें एक-दूसरेकी मदद करें और एक-दूसरेके निकट सम्बन्धमें रहें। जिन लोगोंने अभीतक कोई काम हाथमें न लिया हो वे जो कार्यक्षेत्र उनके निकट हो या जहाँ जाकर काम करनेकी उनकी इच्छा होती हो वहाँ जायें और सम्बन्धित संस्थासे अपने लिए काम माँग लें। उसे इस प्रसंगकी भयंकरताका भान नहीं हुआ है इस कारण या अपने स्वभावकी विषमताके कारण या झूठे अभिमानके कारण यदि कोई व्यक्ति इस सेवा-कार्यसे अलग रहेगा और जनताको अपनी सेवासे वंचित रखेगा तो वह अपनी प्रतिष्ठाका अपने हाथों हनन करेगा और उसे अपने हाथों खोयेगा।

७. वर्तमान संस्थाओंका अनादर करके नई संस्था खड़ी करनेकी कोशिश भयंकर मानी जायेगी। इस समय तो हर एकको जहाँ उसका ठीक उपयोग हो सकता है वहाँ जुट जाना चाहिए।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २१-८-१९२७

३३४. पिछड़े वर्ग

हमारी मुसीबतें अनेक हैं। हमारे यहाँ दलित वर्ग हैं, पिछड़े वर्ग हैं। इन दोनोंमें अन्तर यह है कि दलित वर्गोमें प्रायः तथाकथित अस्पृश्य लोग ही सम्मिलित हैं, जबकि पिछड़े वर्गोंसे उन वर्गोका सकेत मिलता है जो मानसिक और नैतिक दृष्टिसे अन्य वर्गोंसे पिछड़े हुए हैं। इनमें से एक ऐसे वर्गका परिचय मुझे मैसूरमें मिला है। इस वर्गके लोग लम्बानी कहे जाते हैं। बेलगाँव कांग्रेसके[1] बादसे इन लोगोंमें से एक व्यक्ति, जिसने किसी हदतक अच्छी शिक्षा पाई है, इन लोगोंके उत्थानका प्रयत्न कर रहा है। पिछले साल इनका एक सम्मेलन भी हुआ था और उसके खर्चके लिए कुछ थोड़ा-सा पैसा राज्यने भी दिया था। ऐसा लगता है कि ये लोग मूलतः गुजरातके हैं। इन्हें लोग बजारेके नामसे भी जानते हैं। इनकी बोली गुजरातीसे मिलती-जुलती है। हासन जाते हुए जब मैं आरसीकेरेसे गुजर रहा था, तब उन्होंने मुझे देवनागरीमें लिखा एक मानपत्र[2] दिया था। इसमें अधिकाश शब्द गुजरातीके थे। इस मानपत्रकी थोड़ीसी बानगी 'नवजीवन' में दी गई थी। उसका अध्ययन करनेकी इच्छा रखनेवाले जिज्ञासु लोग उसे वहाँ देख सकते हैं। वे देखेंगे कि मानपत्रकी भाषाका व्याकरण गुजराती है। सम्मेलनके अध्यक्षके अभिभाषणमें इन लोगोंके रीति-रिवाजका वर्णन निम्न प्रकार किया गया है :

> मुझे बताया गया है कि लम्बानी लोग बंजारियोंके नामसे भी प्रसिद्ध हैं और जब भारतमें अच्छी सड़कें और रेलमार्ग नहीं थे तब ये लोग इधरसे उधर अन्न ले जानेका काम करते थे। ये लोग आजतक अपनी रानी दुर्गाकी पूजा करते हैं। रानी दुर्गा एक धनी लम्बानी महिला थी, जो तेरहवीं शताब्दीमें हुई थी। उन दिनों भारतमें १२ सालतक लगातार अकाल पड़ा था। रानी दुर्गाने इस अकालमें नेपाल, चीन और बर्मासे अन्न लाकर बहुत-से लोगोंकी प्राण-रक्षा की थी। लम्बानी लोगोंका मुख्य देवता बालाजी और देवी तुलजा भवानी है। उनका मुख्य त्योहार गोकुलाष्टमी है, जिस दिन श्रीकृष्णका जन्म हुआ था। ये लोग दीर्घकाल तक गो और ब्राह्मणोंका आदर करते रहे और आजकल भी अपने श्राद्धमें मांस और शराबका प्रयोग नहीं करते। वे विवाहितों-को उनके मर जानेपर जलाते हैं और अविवाहितोंको गाड़ते हैं। वे प्रायः हट्टे-कट्टे और कद-काठीसे बहुत अच्छे और स्वभावसे शान्तिप्रिय तथा शिष्ट हुआ करते थे।
>
> किन्तु खेद है कि जबसे सड़कें और रेलमार्ग बने हैं तबसे उनका व्यापार प्रायः बन्द हो गया है। इनमें से कुछ लोग पशुओंका व्यापार करते हैं, कुछ

१. १९२४ की कांग्रेस।

२. देखिए "भाषण : आरसीकेरे जंक्शनपर लम्बानियोंके समक्ष", २-८-१९२७।

किसानोंके रूपमें बस गये हैं, कुछ गाड़ियाँ हाँकते हैं, कुछ सुतली कातते हैं और घास और ईंधन बेचते एवं मजदूरी करते हैं। इनमें से कुछ लोगोंपर पुलिसकी निगरानी रहती है और कुछ डाके डालने, पशुओंकी चोरी करने, स्त्रियों और बच्चोंको चुराने, जाली सिक्के बनाने और गैर-कानूनी शराब तैयार करनेके लिए कुख्यात हैं। किन्तु इन अपराधी लोगोंको सुधारा जा सकता है और इन्हें सुधारना चाहिए।

मुझे मालूम हुआ है कि जो कार्यकर्त्ता इन लोगोंके बीच काम करते हैं, वे इनके बुरे रिवाजोंको छुड़वानेके लिए प्रचार कर रहे हैं। अन्य पिछड़े वर्गोंकी स्त्रियोंकी तरह लम्बानी जातिकी स्त्रियाँ भी बिल्कुल सस्ते और कलाहीन भोंडे गहनोंसे लदी रहती हैं। रानीपरज लोगोंकी तरह इन लोगोंमें सुधारका काम चरखेके प्रचारके साथ-साथ चल रहा है। इन लोगोंने मुझे अपने हाथका कता जो सूत भेंट किया था, वह काफी अच्छा और बारीक था। अकेले मैसूर राज्यमें लगभग ४५,७४० लम्बानी रहते हैं और कर्नाटकके अंग्रेजी राज्यवाले इलाकेमें भी इस जातिके बहुत-से लोग बसे हुए हैं। इन लोगोंके बीच बहुत-से सुधारकोंके लिए काम करनेकी गुंजाइश है।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, १८-८-१९२७

३३५. पत्र: एन० आर० मलकानीको

भद्रावती
१८ अगस्त, १९२७

प्रिय मलकानी,

मैं समझता हूँ, मेरे पत्र[1] तुम्हें मिल गये होंगे। मैं तुम्हारा जवाब पाना चाहूँगा।

हृदयसे तुम्हारा,
बापू

जवाबके लिए पता:
मार्फत श्रीयुत एस० श्रीनिवास अय्यंगार
अमजद बाग
लज, मइलापुर
मद्रास

अंग्रेजी (जी० एन० ८७९) की फोटो-नकलसे।

१. ९ और २४ जुलाईके।

३३६. भाषण : भद्रावतीमें[1]

१८ अगस्त, १९२७

आपका कृपापूर्ण निमन्त्रण, आपकी भेंट की हुई थैली और लोहेकी मंजूषा देखकर मुझे अपनी जमशेदपुर यात्राकी बड़ी याद आ रही है। परन्तु यहां मुझे एक चीज जो सबसे अच्छी लगी वह यह है कि यह सारी योजना आत्म-निर्भर है। इसमें कहींसे कोई बाहरी सहायता नही ली गई है। इसकी शुरुआत करनेवाले सज्जन मैसूरवासी हैं, इसमें काम करनेवाले अधिकांश कर्मचारी और मजदूर भी मैसूरके हैं, और यदि सब मैसूरके नही तो दक्षिण भारतके तो हैं ही। यह एक ऐसी चीज है जिसपर आप और समूचा भारत उचित गर्व कर सकता है। कुछ क्षेत्रोंमें कहा जाता है कि भारतके पास बुद्धि तो है पर व्यावहारिकताकी प्रतिभा नही है। आपने ऐसी धारणाको गलत सिद्ध कर दिया है। मुझे आशा है और ईश्वरसे मेरी यही प्रार्थना है कि लोहे का यह कारखाना दिन-दूनी तरक्की करे और इससे राज्यकी समृद्धि हो। खनिज संसाधनोंसे सम्पन्न इस देशमें ऐसे उपक्रमोंका अपना एक स्थान है और हमारा कर्त्तव्य है कि हम इन संसाधनोंको जनताके कल्याणके लिए प्रयुक्त करें। अफसोस कि सर एम० विश्वेश्वरैया यहाँ मौजूद नही हैं, परन्तु हार्दिक स्वागतके उनके तारसे सिद्ध है कि उनकी भावना यहाँ विद्यमान है।

अब मैं इस कारखानेमें काम करनेवाले आप लोगोंसे दो शब्द कहूँगा। जमशेदपुरमें भी मैंने उनसे इसी तरह बात की थी। मैं कह चुका हूँ कि देशको आपके इस उपक्रमकी जरूरत है। परन्तु देशको उस कामकी और भी ज्यादा जरूरत है, जिसके लिए आपने मुझे थैली भेंट की है। इस तरहके उपक्रम मध्यमवर्ग और धनिकोंके लिए जरूरी हैं। परन्तु आप देशके असहाय गरीबोंकी उपेक्षा तो नही कर सकते। आप दो तरहसे उनकी सहायता कर सकते हैं—खादीके लिए चन्दा देकर और स्वयं खादी पहनकर। यदि आपके तैयार किये लोहेको खरीदनेवाले न हों तो आपका कारखाना बन्द हो जायेगा; ठीक इसी प्रकार यदि आप गरीबोंकी तैयार की हुई खादी पहनेंगे ही नही तो खादीका आन्दोलन भी कोई तरक्की नही कर सकेगा। पूंजीपतियोंसे भी मेरा अनुरोध है कि अपने उपक्रमको चलाते हुए गरीबोंकी उपेक्षा न करें। अन्तमें, मैं आशा करता हूँ कि अधिकारियों और कर्मचारियोंके बीच मैत्रीपूर्ण स्नेह-सम्बन्ध है और शराबखानों तथा जुएके अड्डोंको आपके पास भी नही फटकने दिया जाता।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १-९-१९२७

१. महादेव देसाईके "साप्ताहिक पत्र" से।

२३७. अपील: तमिलनाडसे

१९ अगस्त, १९२७[1]

ईश्वरने चाहा तो मैं इतने दिनोंसे लगातार टलती जा रही अपनी तमिलनाडकी यात्रा सितम्बरके आरम्भमें शुरू कर देनेकी आशा करता हूँ। यदि कार्यक्रम पहलेसे निश्चित न रहता तो मै कुछ दिन और आराम करता और कोई भी दौरा शुरू न करता। परन्तु डॉ० सुब्बारावकी सलाहके मुताबिक मैंने मैसूरमें छोटा-मोटा दौरा करनेका साहस किया; और यह तो ठीक है कि मैं अपने अन्दर उतनी शक्ति महसूस नही करता जितनी पाँच महीने पहले करता था, पर मैसूरके दौरेका परिणाम देखकर मुझमें तमिलनाडका दौरा शुरू करनेका साहस आ गया है।

परन्तु शुरूमे जो कार्यक्रम निश्चित किये गये थे, उनमें विस्तार और घनत्व दोनों बातें थीं। उस मूल रूपमें कार्यक्रमोंको पूरा कर पाना तो मुमकिन नही। अब यह जरूरी हो गया है कि हर स्थानके कार्यक्रममें काट-छाँट की जाये और उसे कमसे-कम रखा जाये, साथ ही दौरेके स्थानोंकी संख्या भी घटाई जाये। इसलिए मैंने श्री राज-गोपालाचारीसे कहा है कि दौरा मुख्य-मुख्य केन्द्रोंतक ही सीमित रखा जाये। अलबत्ता, मुझे आशा है कि आसपासके स्थानोंके लोग अपनी-अपनी थैलियाँ दौरेके केन्द्रोंमें भेज देंगे और गाँवोंके लोग ज्यादासे-ज्यादा संख्यामें वही पहुँच जायेंगे। मुझे स्वयं इस बातका बड़ा दु:ख है कि मैं पूर्व-निर्धारित सभी स्थानोंमें स्वयं जाकर चरखेका सन्देश नहीं सुना पाऊँगा। परन्तु मैं उतना ही तो कर सकता हूँ जितना मेरे लिए सम्भव है। सचमुच, यदि मुमकिन होता तो मैं अवश्य ही मातृभूमिके सात लाख गाँवोंमें स्वयं घूम-घूमकर यह सन्देश सुनाता। परन्तु मैं विनम्रतापूर्वक अपनी मर्यादाको स्वीकार करता हूँ और ईश्वर जितना करनेकी सामर्थ्य देता है, उसीमें सन्तोष मानता हूँ।

पर मैं चाहता हूँ कि खादीका जीवन्त सन्देश भारतके दूरसे-दूर बसे हर गाँवमें पहुँचे और इसके लिए मैं सभी खादी-प्रेमियोसे सहयोग माँगता हूँ। मैं आशा करता हूँ कि जो लोग दे सकते हैं वे दरिद्रनारायणके नामपर और दरिद्रनारायणके लिए यथाशक्ति अधिकसे-अधिक देंगे, जिससे कि गाँवोंमें धीरे-धीरे ही सही लेकिन स्वस्थ गतिसे जो संगठन और जागरण आ रहा है और जिसका श्रेय चरखेके पुनरुद्धारको है, वह धीरे-धीरे समाप्त न हो जाये।

दौरेके लिए चुने गये स्थानोंकी स्वागत समितियोसे मेरा अनुरोध है कि वे कार्य-क्रमके सभी अनावश्यक भाग, विशेषकर केवल प्रदर्शनवाले भाग और उनपर होनेवाले खर्चमें अधिकसे-अधिक कटौती कर दें। दिखावे और प्रदर्शन आदिपर खर्च होनेवाली

१. इस तारीखको चिकमगलूरसे जारी किया गया था।

राशिकी पाई-पाई बचाई जानी चाहिए। समितिको चाहिए कि उक्त राशिको देशकी मूक गरीब जनताकी भलाईके लिए खर्च करे।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, १९-८-१९२७

३३८. पत्र : एस० डी० नाडकर्णीको

स्थायी पता . बंगलोर
१९ अगस्त, १९२७

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला, साथमें अस्पृश्यतापर बहुत सावधानीसे लिखे लेख भी। मैंने तो आशा की थी कि ये लेख, आम तौरपर आपके लेख जिस स्तरके होते हैं, उसी स्तरके होंगे। मैंने उन्हें तत्काल टाइप करनेके लिए दे दिया, ताकि मैं टाइप की हुई प्रतियाँ, आप कोई संशोधन करना चाहें तो, उसके लिए आपको भेज सकूँ। लेकिन, आपको भेजनेसे पहले मैंने उन्हें एक बार पढ़ लेनेकी बात सोची रखी थी। अब उन्हें पढ़ भी चुका हूँ। जैसा कि मैंने कहा, वे बहुत सावधानीसे लिखे गये हैं, लेकिन उनमें न कोई मौलिकता है और न तर्ककी वैसी संश्लिष्ट शृंखला ही जैसी कि मुझे आपके लेखोंमें आम तौरपर देखनेको मिली है। इनकी विस्तृत समालोचना करनेके लिए मेरे पास समय नहीं है; लेकिन यहाँ मैं अस्पृश्यताकी आपकी परिभाषाका दोष बता देना चाहता हूँ। कमसे-कम मुझे तो वह बहुत बोझिल लगती है।

अस्पृश्यता अमुक व्यक्तियोंसे बचकर रहना नहीं है; उसका मतलब तो जन्मसे जुड़ी कुछ बातोंके कारण उनका अस्पृश्य होना है। प्रारम्भिक अनुच्छेदोंमें कही गई बातें उपशीर्षकसे सर्वथा संगत थी, लेकिन आगेके अनुच्छेदोंमें इसका निर्वाह नहीं हो पाया है।

दूसरे लेखमें जो उद्धरण दिये गये हैं, वे अस्पृश्यताका खण्डन करते नहीं जान पड़ते, बल्कि उसके अतिशय पालनपर प्रहार करते लगते हैं। अगर आपको यहाँ शास्त्रीय बातोंकी चर्चा करनी ही हो तो जरा अधिक गहरा विवेचन करना सचमुच आवश्यक है। अस्पृश्यताकी भावनाका उदय कब हुआ और उसकी व्याप्ति क्या है? पता नहीं, इस विषयपर लिखा पंडित सातवलेकरका प्रबन्ध आपने पढ़ा है या नहीं। एक तरहसे जानने लायक सभी बातें उसमें काफी हदतक आ गई हैं।

अगर आप इस विषयपर 'यंग इंडिया' में पाण्डित्यपूर्ण शैलीमें कुछ लिखना चाहें तो मैं चाहूँगा कि आप कुछ समय निकालकर इसे और भी ध्यानसे पढ़िए और कुछ मौलिक चीज दीजिए या कोई ऐसी लोकप्रिय तथा मौलिक चीज लिखिए जिसमें आज यह प्रथा जिस रूपमें प्रचलित है, उसकी उग्रतापर प्रहार किया गया हो — मतलब यह कि अगर यह मान भी लिया जाये कि विशुद्ध हिन्दू धर्ममें अस्पृश्यताके

लिए औचित्य और आधार है तो भी जिस विवेकशून्य तरीकेसे और जिस सीमातक उसपर अमल किया जा रहा है, उसपर चोट की गई हो। आपके लेख वापस भेज रहा हूँ।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी (एस० एन० १२६३२) की माइक्रोफिल्मसे।

३३९. पत्र : के० पी० पद्मनाभ अय्यरको

स्थायी पता : बंगलोर
१९ अगस्त, १९२७

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। आपने कोई नई बात तो कही नही। मेरा सवाल बिलकुल सीधा था — आपने स्वयं कोई प्रयोग किये है या नही और यदि किये है तो उनका परिणाम क्या निकला?[1] आपने इस सवालका जवाब तो दिया नही, उलटे एक सैद्धान्तिक निबन्ध लिख मारा, जिसकी मेरे लिए कोई उपयोगिता नही है। लोग मुझे पत्र लिख-लिखकर ऐसी तमाम बातोंके सम्बन्धमें सलाह देते रहते है, जिनका उन्हें कोई निजी अनुभव नहीं होता। मैंने सोचा था कि आपने इस विषयकी तालीम ली है, इसलिए आपको तो शायद कुछ अनुभव होगा।

आहार-सम्बन्धी सुधारोंके विषयमें पश्चिममें प्रकाशित लगभग सभी पुस्तकें मैं देख चुका हूँ। वे एक सीमातक ही उपयोगी हैं। उनमें दिये गये अनेक निष्कर्ष तो ऐसे होते हैं जिनके बारेमें बहुत ही अधिक सावधानी रखनी चाहिए। यह इसलिए कि हमारी अपनी खान-पानकी आदतें उनसे बिलकुल भिन्न हैं। पाश्चात्य देशोंकी परिस्थितियोंमें किये गये प्रयोगोंके परिणाम ठीक वही नही हो सकते जो हमारे यहाँ वैसे ही प्रयोग करनेके होंगे। और फिर मैंने यह भी देखा है कि प्रयोगोंका विवरण भी हर पुस्तकमें पूरी तरह यथातथ्य पेश नहीं किया जाता। बहुत-सी जानकारी छोड़ दी जाती है। हम चाहे चिकित्सा-कार्यसे सम्बद्ध हों या किसी अन्य कार्यसे, पर सच तो यह है कि हममें से अधिकांश अपने धन्धेमें वैज्ञानिक दिलचस्पी नहीं लेते। हमारा मुख्य लक्ष्य पैसे कमाना या किसी भी तरह जीवनमें आगे बढ़ना ही रहता है। इसलिए मौलिक रूपसे किये गये गवेषणात्मक कामका बहुत अभाव है।

अब चूँकि मैं स्वयं प्रयोग नहीं कर सकता, इसलिए मैं दूसरोंके अनुभवोंसे सहर्ष सहायता लेनेको तैयार हूँ। परन्तु अनुभव वास्तविक होने चाहिए, वे पुस्तकीय ज्ञानके आधारपर कही गई बातें न हों।

१. देखिए "पत्र : के० पी० पद्मनाभ अय्यरको", २१-७-१९२७।

मैं समझता हूँ कि इस टाइपशुदा प्रतिके अतिरिक्त अन्य कोई प्रति आपके पास नहीं है, इसलिए मैं इसे लौटा रहा हूँ।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी (एस० एन० १२६३३) की माइक्रोफिल्मसे।

३४०. पत्र : टी० डब्ल्यू० कलानीको

स्थायी पता : बंगलौर
१९ अगस्त, १९२७

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। आपको उपन्यास पढ़ना तो बिलकुल बन्द कर देना चाहिए और रामनामका जाप करना चाहिए। 'भगवद्गीता' पढ़िए और बने तो मूल रूपमें पढ़िए। प्रतिदिन ठण्डे पानीसे स्नान कीजिए। खुली हवामें सोइए। आपको रातमें जल्दी बिस्तरपर जाना चाहिए और ४ बजे सुबह ही उठ जाना चाहिए, तथा ईश्वरसे यह प्रार्थना करनी चाहिए कि वह आपको सभी बुरे विचारोंको अपने मनसे दूर रखनेकी शक्ति दे। जब स्खलन हो तो उसकी चिन्ता न कीजिए। जब भी स्खलन हो, आप उसका कारण जाननेकी कोशिश कीजिए और दोबारा उस कारणको उपस्थित न होने दीजिए। आप अपने पिताको अपने इस रोगके बारेमें बता दीजिए और उनसे कह दीजिए कि जबतक इस तरह स्खलन होना बन्द नहीं हो जाता और आप अपने विचारोंपर काबू नहीं पा लेते तबतक आपका लन्दन जाना बिलकुल बेकार होगा।

मेरी सलाह है कि अपनी अंग्रेजी दुरुस्त करनेकी बात सोचनेसे पहले आप हिन्दी और संस्कृतका अध्ययन शुरू कीजिए और जब इन दोनोंपर अधिकार प्राप्त कर लें तब भले ही आप आगे अंग्रेजीका अध्ययन करें।

हृदयसे आपका,

टी० डब्ल्यू० कलानी
ओल्ड सक्खर
(सिन्ध)

अंग्रेजी (एस० एन० १९७७५) की माइक्रोफिल्मसे।

३४१. पत्र : एन० सेतुरमणको

स्थायी पता : साबरमती आश्रम
१९ अगस्त, १९२७

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मैं नहीं मानता कि पतिको अपनी पत्नीपर और माता-पिताको अपनी वयस्क सन्तानपर अपने विचार थोपनेका अधिकार है। लेकिन, जिन चीजोंमें खुद उसका विश्वास नही, उन चीजोकी व्यवस्था पत्नी या सन्तानके लिए करना उसका कर्त्तव्य नहीं है। लेकिन अगर उसकी पत्नीके पास अपने साधन हो—और पति अथवा माता-पितासे मिले उपहारों और मायकेसे लाये पैसोंके रूपमें साधन तो उसके पास हो ही सकते हैं—तो उसे उस पैसेका जैसा चाहे वैसा उपयोग करनेका पूरा अधिकार है। जहाँतक छोटी उम्रके बच्चोंका सम्बन्ध है, मैं इस विषयमें कोई सामान्य नियम बतानेमें असमर्थ हूँ कि पति-पत्नीमें मतभेद होनेपर उन बच्चोके जीवनका नियमन किसको करना चाहिए। शायद यह मामला दोनोकी सुविधा-सहूलियत देखते हुए आपसमें ही तय करनेका है। पारिवारिक सम्बन्धोंका संचालन अन्ततः प्रेमके नियमके अनुसार ही होना चाहिए और पारस्परिक व्यवहारके सम्बन्धमें कोई स्पष्ट और कड़े नियम नही बनाये जा सकते। जो बात एक मामलेमें बिलकुल उचित हो सकती है, वही ऊपरसे देखनेमे अन्य सभी मामलोंके सम्बन्धमें पूरी तरह उचित नही भी हो सकती

हृदयसे आपका,

श्रीयुत एन० सेतुरमण
तिरुक्कन्ननगुडि
किवलूर, एस० ई० रेलवे

अंग्रेजी (एस० एन० १९८०३) की फोटो-नकलसे।

३४२. एक पत्र

स्थायी पता : साबरमती आश्रम
१९ अगस्त, १९२७

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मेरी पूरी सहानुभूति आपके साथ है। आज आपकी जो हालत है, उसका एकमात्र कारण बहुत ज्यादा हस्तमैथुन है। स्पष्ट ही अब नौबत यहाँतक आ गई है कि बिना किसी उत्तेजनाके ही वीर्यपात हो जाता है। मैं आपको यही सलाह दूँगा कि आप कम-से-कम एक वर्ष और जबतक अपने ऊपर आपका नियन्त्रण न हो जाये, चाहे वह एक सालके अन्दर हो या उसके बाद, तबतक पत्नीके पास न जायें। पत्नीसे दूर रहनेका कारण अपने माता-पिताको बतलानेमें संकोच मत कीजिए। जब वे यह समझ जायेंगे कि आपने अपने-आपको कितना अशक्त बना लिया है और किस तरह रुग्ण हो गये हैं, तब वे यदि तनिक भी समझदार हुए तो आपकी गयी शक्ति लौटानेके प्रयत्नमें कोई बाधा नहीं डालेंगे। आपको स्वयं ही रसोई तैयार करना सीख लेना चाहिए जिससे कि आप नियमित रूपसे पथ्य ले सकें। साइ-किल चलाना छोड़ दीजिए। कालेजतक पैदल जाइए और अच्छे लड़कोंकी ही संगति कीजिए। परीक्षा पास करनेकी उतावली मत कीजिए। जितने समयमें बन सके, उतनेमें कीजिए। जल्दी सोइए और सोते समय मनमें अच्छे विचार लाइए और इस अटल विश्वासके साथ ईश्वरसे सहायताके लिए प्रार्थना कीजिए कि हमारे ऊपर एक शक्ति है जो हमारे भाग्यका नियमन करती है और वह उन्नतिकी हमारी हर अन्तरंग अभि-लाषाको पूरा करती है। बिस्तरपर जानेसे पहले धीरे-धीरे टहलिए, पर अपने-आपको ज्यादा थकाइए मत। आँख खुलते ही बिस्तर छोड़ दीजिए, और फिर अगली रात सोनेका समय आनेसे पहले सोनेकी कोशिश मत कीजिए। हाँ, अगर भारीपन महसूस हो तो बात दूसरी है। तब तो नींद पूरी कर ही लेनी चाहिए। यह अभ्यास हर रात तबतक जारी रखिए जबतक आपको ९ से ४ तक लम्बी मीठी और गहरी नींद न आने लगे। चार बजे उठकर मुँह धोइए और अगर उस समय आपका पेट साफ हो सके तथा आप इतने कमजोर न हों कि उतनी जल्दी स्नान कर सकें तो उसी समय पूरा स्नान भी कर लीजिए। इसके बाद आधे घंटेतक या उतनी देर अपने मनको एकाग्र न रख सकें तो कमसे-कम पाँच मिनटतक 'भगवद्गीता' या किसी अन्य धार्मिक पुस्तकका पारायण कीजिए या सिर्फ रामनाम ही जपिए, लेकिन पाँच मिनट तक तो एकाग्रता प्राप्त करनेका प्रयत्न करते हुए वैसा अवश्य कीजिए, फिर चाहे उस प्रयत्नमें आपको सफलता मिल रही हो या नहीं। इस धार्मिक अभ्यासके बाद, आप कमसे-कम आधे घंटेतक खुली हवामें टहलिए। फिर बिना चीनीके एक प्याला तुरन्त उबला ताजा दूध लीजिए। ताजा फल मिल सकें तो ले सकते हैं, नहीं

तो बीस मुनक्के ले लीजिए। मुनक्के धोकर अच्छी तरह चबाइए। फिर दस बजे या बारह बजे दोपहर या जिस समय भी आप भोजन करते हों उस समय थोड़ी-सी चपाती और अच्छी तरह साफ की हुई उबली सब्जी बिना नमकके लीजिए। इससे अधिक कुछ नहीं। और शामको रात होनेसे पहले सुबहके बराबर ही दूध और सब्जीके साथ या उसके बिना चपाती खाइए। अगर आप सब्जी नही लेते तो मुनक्के या ताजा फल ले सकते हैं। यदि आप चपाती बनाना नहीं जानते, तो सीख लीजिए। कोई भी हरी सब्जी ले सकते हैं। सब्जी श्वेत सारवाली नहीं होनी चाहिए। यदि हरी सब्जी नहीं मिल सकती तो आप आलू या कोई और श्वेत सारवाली सब्जी भी ले सकते हैं, लेकिन उसमें ताजे नींबूका रस मिला दीजिए। चीनी और मसालोंसे दूर रहिए। पेट साफ रखिए। रातको सोते समय मिट्टीकी पट्टी बाँधिए।

मेरी पुस्तकें 'गाइड टु हेल्थ' और 'सेल्फ-रिस्ट्रेन्ट वर्सस सेल्फ इनडलजेन्स' पढ़नेसे शायद आपको लाभ होगा।

रात या दिनके समय जब भी स्खलन हो, आपको तुरन्त ठंडे पानीसे कटि-स्नान करना चाहिए। कुछ भी हो जाये, आपको हस्तमैथुन नहीं करना चाहिए। थोड़ी-सी भी उत्तेजना महसूस होनेपर आपको तुरन्त बिस्तर छोड़कर तेजीसे टहलने लगना चाहिए। उस समय अपनी मुट्ठियाँ इतनी जोरसे भींचकर रखिए जैसे किसीको घूँसा मारने जा रहे हों। कमसे-कम आधा घंटा चरखेको दीजिए और उस समय अपना सारा ध्यान इस पुण्य कार्यपर केन्द्रित करनेका प्रयत्न कीजिए, और विनम्रता-पूर्ण त्यागकी भावनासे कताई कीजिए। इससे आपमें दृढ़ता आयेगी। अपना स्वास्थ्य बनाने और पिछले जीवनसे नाता तोड़नेका मनमें दृढ संकल्प कीजिए। पिछली बातोंको बारबार मत सोचिए, उनको भूल जाइए और यदि स्खलन हो तो निराशाको मनमें स्थान मत दीजिए बल्कि अपने मनको उसमें कोई भी योग देनेसे पूरी दृढताके साथ रोकिए। अपना मन निरन्तर उच्चादर्शपूर्ण विचारोंमें लगाये रखिए, अपने बारेमें उसे सोचने ही मत दीजिए।

हृदयसे आपका,

आर० बी० टी०
बनारस

अंग्रेजी (एस० एन० १९८०४) की फोटो-नकलसे।

३४३. पत्र : वी० गोपालाचारको

चिकमगलूर
१९ अगस्त, १९२७

आपके प्रश्नोंके उत्तर दे रहा हूँ :

१. मेरे विचारसे, नीचे मैं जो शर्तें बता रहा हूँ, वे जहाँ पूरी नहीं होती वहाँ न राज्य से कोई सहायता माँगनी चाहिए और न राज्यको ही चाहिए कि वह किसी प्रकारकी सहायता दे :

ऐसे हर स्कूलमें, जहाँ प्रधानाध्यापक या अध्यापकगण धुनाई और कताई सीखने और धुनाई-कताईकी परीक्षामें बैठनेको तैयार हों, प्रधानाध्यापक या सम्बन्धित अध्यापकके वेतनमें पाँच रुपये प्रति मासकी वृद्धि की जानी चाहिए, बशर्ते कि वह इस बातकी गारंटी दे कि हर महीने प्रति बालक या प्रति बालिका द्वारा कमसे-कम छः नम्बरका पाँच तोला सूत तैयार किया जायेगा, और वृद्धिकी यह रकम उसे तभी मिले जब निरीक्षक इस बातका प्रमाणपत्र दे दे कि जितना अपेक्षित था, उतना सूत काता गया और कताईके साज-सामानके लिए प्रति बालक या प्रति बालिका चार आनेकी दरसे पूँजीगत खर्च बैठा।

टिप्पणी : मेरा अनुभव बताता है कि जबतक कोई ऐसी व्यवस्था नहीं की जाती तबतक स्कूलोंमें हाथ-कताईपर किया जानेवाला सारा खर्च बेकार जायेगा। और जबतक स्कूलोंके अध्यापकोंको और जरूरत हो तो प्रारम्भिक अवस्थामें बालकों और बालिकाओंको भी घूम-घूमकर कताई सिखानेवाले शिक्षकों और तालीमयाफ्ता निरीक्षकोंका एक दल तैयार नहीं हो जाता तबतक स्कूलोंमें कताई शुरू करवाना गलत होगा।

२. कताईको केवल उन्हीं प्राथमिक और माध्यमिक स्कूलोंमें अनिवार्य बनाया जाना चाहिए जहाँकी नगरपालिका या स्थानिक निकायके मतदाताओंका बहुमत इसके पक्षमें हो। यदि लोकमत हाथकताईके पक्षमें न हो, तो जबरन व्यवस्था करना व्यर्थ होगा।

३. अबतक का दुर्भाग्यपूर्ण अनुभव यही रहा है कि बालिकाओंकी अपेक्षा बालक कताई जल्दी सीख लेते हैं। इसीलिए मैं दोनोंमें कोई भेद नहीं कर रहा हूँ और फिर बालक-बालिकाओंके मनमें ऐसी धारणा पैदा करना गलत होगा कि कताईका काम वास्तवमें बालिकाओंका ही है, बालकोंका नहीं। कताईको एक राष्ट्रीय कर्त्तव्य समझा जाना चाहिए और बालक-बालिकाओंके सन्दर्भमें इनका महत्त्व इनके सांस्कृतिक लाभकी दृष्टिसे समझना चाहिए।

४. पाठशालाओंमें कताई चालू करानेके सम्बन्धमें कपास पैदा करनेवाले इलाकोंका ख्याल करनेका सवाल ही नहीं उठता। और फिर, कपासकी एक जाति, देवकपास तो कहीं भी उगाया जा सकता है।

५. चूँकि मुझे मालूम नहीं कि मैसूरमें शिक्षा-शुल्क कितना और किन लोगोंपर लगता है, इसलिए मैं इस प्रश्नका उत्तर नहीं दे सकता।

६. जनताकी सहानुभूति और उसका समर्थन तो केवल उद्योग विभागकी ओरसे प्रचार करके ही प्राप्त किया जा सकता है, ठीक उसी तरह जैसा कि सहकारिताके बारेमें किया गया और किया जा रहा है। हाथ-कताई वास्तवमें सहकारिताके लिए सबसे अधिक सहायक है।

७. चूँकि सरकार द्वारा चलाई जानेवाली आदि कर्नाटकोंकी सभी कताई-शालाओंमें बुनाई-घर मौजूद हैं, इसलिए पाठशालाओंमें तैयार होनेवाला सारा सूत बुनाईके लिए वहीं भेजा जाना चाहिए और उन बुनाई-घरों द्वारा सूत तैयार करनेवाली पाठशालाओं-को इस सूतकी एक निश्चित कीमत अदा की जानी चाहिए।

यदि आप इस मामलेमें सचमुच इतना उत्साह रखते हैं और इस बातमें आपका दृढ़ विश्वास है कि कताईको सार्वजनीन बनानेकी परम आवश्यकता है तो आपको हाथ-कताईकी प्रविधिके अध्ययनपर भी थोड़ा ध्यान देना चाहिए। यदि आप पूरा समय लगायें तो महीने भरमें और यदि रोजाना कमसे-कम एक घण्टा लगायें तो तीन महीनेमें इसे आसानीसे सीख सकते हैं। यह प्रश्न उठानेसे पहले इतना कर लेना जरूरी है। विधान सभामें प्रश्न उठाने और सरकारपर दोष मढ़ने या उसपर पूरी जिम्मेदारी डाल देने-भरसे कुछ हासिल नहीं होगा। उससे उद्देश्यको हानि ही पहुँच सकती है। कारण यह कि सरकार तो आसपासके वातावरणके मुताबिक ही कुछ कर सकती है। और आखिर सरकारको जो भी रूप जनता देती है, वही तो है। जनतासे अलग कोई शक्ति या क्षमता तो उसके पास होती नहीं।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत वी० गोपालाचार
आर० ए० सदस्य,
तीर्थहल्ली
जिला शिमोगा

अंग्रेजी (एस० एन० १९८०५) की माइक्रोफिल्मसे।

३४४. पत्र : वसुमती पंडितको

श्रावण वदी ८ [२० अगस्त, १९२७][1]

चि० वसुमती,

तुम्हारा पत्र मिल गया है। हरिभाईकी विधवा बहनकी उम्र क्या है और उसका स्वास्थ्य कैसा है? वह कितनी पढ़ी हुई है आदि सारी जानकारी लिखना। भड़ौंचसे कुसुमका पत्र आया था। लगता है कि उसका हाल ठीक है। भाई मृत्युजयने पढ़ना क्यों बन्द करना पड़ा?

क्या तुमने गुजराती सीखना कुछ दिन पहले शुरू नहीं किया था? उत्तमचन्दकी पत्नीको गुजरातीका कितना ज्ञान है? अपनी सामर्थ्यसे ज्यादा कुछ भी काम अपने हाथमें नहीं लेना चाहिए।

तुम्हारी बाकी रह गई दैनन्दिनी मुझे चाहिए। उससे जो-कुछ मुझे मिलता है वह पत्रोंमें नहीं मिलता।

मेरी तबीयत ठीक है। २९ तारीखको मैसूरकी यात्रा समाप्त हो जायेगी।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ५९२)से।
सौजन्य : वसुमती पंडित

३४५. टिप्पणी : बेलूर मन्दिरकी दर्शक-पुस्तिकामें

२० अगस्त, १९२७

भारतीय स्थापत्यकला (तक्षणकला?)के इस वैभवके दर्शन करके मैं कृतार्थ हुआ। कितना अच्छा होता, यदि इस मन्दिरके दरवाजे तथाकथित अस्पृश्योंके लिए भी उसी प्रकार खुले रहते जिस प्रकार दूसरे हिन्दुओंके लिए खुले रहते हैं।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, २२-८-१९२७

१. मैसूरके दौरेकी समाप्तिके आधारपर वर्ष निर्धारित किया गया है।

३४६. भाषण: वेलूर मन्दिरमें[1]

२० अगस्त, १९२७

भारतीय कलाके इस अनुपम मन्दिरको देखकर कौन नहीं मुग्ध हो जायेगा? लेकिन, दरिद्रनारायणके मुझ जैसे प्रतिनिधिको ऐसे दृष्टि-सुखसे दूर ही रहना चाहिए। मेरा सारा समय, सारी शक्ति केवल उनकी सेवाके लिए है, और मैं यह स्वीकार करूँगा कि यदि केशवदासने ५०० रुपयेकी थैलीका प्रलोभन न दिया होता तो मैं यहाँ न आता।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १-९-१९२७

३४७. भाषण: आरसीकेरेकी सार्वजनिक सभामें[2]

२० अगस्त, १९२७

हम नहीं जानते कि श्रीकृष्णके जीवनका हमारे लिए क्या सन्देश है, हम 'गीता' नहीं पढ़ते, हम अपने बच्चोंको 'गीता' पढ़ानेका कोई प्रयास नहीं करते। 'गीता' एक ऐसा दिव्य ग्रंथ है जिसे हर धार्मिक विश्वास, हर आयु और हर देशके व्यक्ति आदरपूर्वक पढ़ सकते हैं और अपने-अपने धर्मके सिद्धान्त उसमें पा सकते हैं। यदि हम हर जन्माष्टमीके दिन कृष्णका ध्यान करें और 'गीता' पाठ करें और उनकी सीखोंपर चलनेका संकल्प करें तो हमारी दशा ऐसी दयनीय नहीं रहेगी जैसी आज है। श्रीकृष्णने जीवन-भर जनताकी सेवा की। वे जनताके सच्चे सेवक थे। वे कुरुक्षेत्रमें सेनाओंका संचालन भी कर सकते थे, पर उन्होंने अर्जुनका सारथी बनना ही पसन्द किया। उनका समूचा जीवन कर्मकी एक अविच्छिन्न 'गीता' ही था। उन्होंने घमण्डी दुर्योधन द्वारा भेंट किये गये मिष्टान्नको ठुकराकर विदुर द्वारा विनम्रतापूर्वक भेंट किया गया साग स्वीकार किया। कृष्ण बाल्यावस्थामें गायें चराते थे और हम अब भी उनको गोपालके नामसे याद करते हैं। परन्तु उनके उपासकोंने, हम लोगोंने आज गौ की बिलकुल उपेक्षा कर दी है। आदि कर्नाटक लोग तो गायका वध करते हैं और गोमांस खाते हैं। इसीसे हमारे यहाँ बच्चों तथा बीमारोंको भी गायका दूध नहीं मिल पाता। कृष्णके जीवनमें निद्रा या निठल्लेपनका कोई स्थान नहीं था। उनकी सतत जागरूक दृष्टि विश्वपर रहती थी। परन्तु हम उनके वंशज अब काहिल बन

१. महादेव देसाईके "साप्ताहिक पत्र" से।

२. महादेव देसाईके "साप्ताहिक-पत्र" से। सभाका आयोजन ट्रैवलर्स बंगलेमें किया गया था।

गये हैं और अपने हाथोंसे काम करना बिलकुल ही भूल गये हैं। भगवान् कृष्णने 'भगवद्गीता' में हमको भक्तिका मार्ग दिखाया है — जो कर्म-मार्ग ही है। लोकमान्य तिलकने हमें बतलाया है कि हम चाहे भक्त बननेके इच्छुक हों या ज्ञानी बननेके, उसे प्राप्त करनेका एक ही मार्ग है – कर्म, परन्तु यह स्वार्थके लिए नहीं परमार्थके लिए होना चाहिए। स्वार्थकी दृष्टिसे किया गया कर्म व्यक्तिके लिए बन्धनकारी होता है, जब कि परमार्थके लिए किया गया कर्म उसे बन्धनसे मुक्त करता है। ऐसा कौन-सा निःस्वार्थ कर्म हो सकता है, जिसको हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पुरुष, स्त्री और बालक सभी समान रूपसे कर सकें? मैंने सिद्ध करनेकी कोशिश की है कि ऐसा यज्ञ-रूप कार्य कताई ही हो सकता है, क्योंकि यही वह कार्य है जो हम ईश्वरके नाम-पर गरीब जनताके लिए कर सकते हैं और जो जनताके शिथिल अंगोंको सक्रिय बना सकता है। भगवान् कृष्णने हमें यह भी सिखाया है कि यदि हमें सच्चा भक्त बनना है, तो हमें ब्राह्मण और भंगीमें भेद नहीं करना चाहिए। यदि यह सच है, तो फिर हिन्दू धर्ममें अस्पृश्यताका कोई स्थान होना ही नहीं चाहिए। यदि आप आज भी इस अंधविश्वाससे चिपटे हुए हो तो आपको आज जन्माष्टमीके इस पवित्र दिवसपर ही इसका त्याग करके आत्म-शुद्धि करनी चाहिए। 'गीता' में सच्ची निष्ठा रखनेवाला कोई व्यक्ति हिन्दू और मुसलमानके बीच भेद नहीं करेगा, क्योंकि भगवान् कृष्णने कहा है कि कोई चाहे जिस नामसे ईश्वरकी उपासना करे, यदि उसकी उपासना सच्ची है तो वह उन्हींकी उपासना है। 'गीता' में प्रतिपादित भक्ति, कर्म या प्रेमके मार्गमें मनुष्यसे घृणा करनेकी कोई गुंजाइश नहीं है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १-९-१९२७

३४८. पत्र : मीराबहनको

२१ अगस्त, १९२७

चि० मीरा,

तुम्हारे पत्र मिल गये। मैसूरका सबसे लम्बा दौरा पूरा कर लिया। अब अगले सप्ताह तमिलनाडका दौरा शुरू करूँगा। अब मद्रासके पतेपर पत्र लिखना। महादेव पता[1] दे देगा। मैं ३० की सुबह मद्रासके लिए रवाना हो जाऊँगा। यहाँ २९ तारीख-तक डाक ली जायेगी।

आसुरी वृत्तियोंसे तुम्हारे संघर्षकी बात पढ़कर मुझे कोई आश्चर्य नहीं हुआ। हम दुर्बल मानवोंके लिए तो यह अनवरत संघर्ष ही हमारी एकमात्र कसौटी और

१. मार्फत एस० श्रीनिवास अय्यंगार, अमजद बाग, मयलापुर, मद्रास।

कर्मकी प्रेरणा है। ये वृत्तियाँ जबतक हमारे ऊपर हावी नहीं हो पातीं तबतक तो सब ठीक ही है। और स्वाभाविक ही है कि तुम जो-कुछ हो, उसी रूपमें मैं तुमको जानना-समझना चाहता हूँ, तभी तो तुम वह बन पाओगी जो तुमको बनना चाहिए।

हाँ, तुम वहाँ निश्चित अवधिसे एक दिन भी अधिक नहीं रहोगी, तबतक जितनी हिन्दी सीख चुकोगी उतनी ही ठीक है, बाकीकी फिक्र करनेकी जरूरत नहीं है। परन्तु मैं नहीं चाहता कि इस शेष अवधिमें भी तुम अपने-आपको उसमें बुरी तरह खटाती रहो। यदि तुम हिन्दीकी पोथियोंको ताकमें रख दो और निरायास जितनी हिन्दी सीख सकती हो, सीख लो, तो भी मैं ठीक ही समझूँगा। हिन्दी सीखनेमें मनको परेशान नहीं करना है। हाँ, मैं चाहूँगा कि तुम उर्दू लिखना न भुला दो। परन्तु इन सब चीजोंके लिए अपने साथ जबरदस्ती मत करना।

हाँ, विनोबा सचमुच असाधारण व्यक्ति हैं। उनका आँसुओंमें फूट पड़ना ईश्वरके साथ साक्षात्कारकी उनकी उत्कट लालसाका ही रूप है। जहाँतक तुमसे बने, उनसे मिलती-जुलती रहो और ऐसा प्रयत्न करती रहो जिससे वे अपने मनकी बात तुमसे कहें। तुमको बादमें कभी उनके निकट सम्पर्कमें आनेका अवसर शायद न मिले। जो भी प्रश्न चाहो, उनसे पूछो।

गंगूके बारेमें चिन्ता मत करो। यही बहुत है कि वह अभीतक तुमसे मार्ग-दर्शन लेनेको तैयार है। मुझे तो लगता है कि उसे बालुंजकरसे बिलकुल अलग रहकर अपने पैरों खड़े हो जाना चाहिए।

सस्नेह,

बापू

अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ५२६३) से।
सौजन्य : मीराबहन

३४९. पत्र : जमनादासको

बंगलोर

मौनवार, [२२ अगस्त १९२७][1]

चि० जमनादास,

तुम्हारा पत्र मिल गया। अच्छा हुआ तुमने पत्र लिखा। मैं तो चाहता हूँ तुम पत्र लिखो। उनका उत्तर देकर मैं शायद तुम्हें कुछ शान्ति दे सकूँ।

तुम्हारा विश्लेषण मैं समझ सकता हूँ। इस समय तो तुम्हें एक ही इलाज बता सकता हूँ। तमाम अड़चनें व त्रुटियाँ मेरे सामने रखनेके बाद तुम श्रद्धा रखो और प्रफुल्लित चित्तसे मेरी आज्ञा मानो। मेरी आज्ञामें तुम्हें यदि कोई भूल या खामी दिखाई दे तो उसका पाप या दायित्व तुम मुझपर छोड़ दो। जो सिपाही अपना कर्त्तव्य जानता है वह अपने सरदारकी भूल देखते हुए भी उसके हुक्मका सावधानीसे पालन करता है। जिसे अपने सरदारमें विश्वास है वह उसमें कोई भूल नहीं देखता, चाहे जगत्को उसमें भूलें दिखाई दें। पहली अवस्था तो अभयाससे प्राप्त की जा सकती है पर दूसरी तो इस जन्म या पूर्व जन्मकी किसी तपश्चर्याका प्रसाद है। पहली अवस्थामें बुद्धि काम करती है, दूसरीमें केवल हृदय।

तुम्हारे बारेमें मैंने पिछले सप्ताह नानाभाईको पत्र लिखा था। पैसेकी अड़चन दूर हो जायेगी। देर हो तो अपरिहार्य समझकर सहन कर लेना। नानाभाईके साथ निस्संकोच बात कर लेना और जैसा वे कहें वैसा करना। अभी तो मेरी यही आज्ञा है।

यहाँ जब भी आनेकी इच्छा हो, आ जाना। पैसा आश्रमसे मँगा लेना। तबीयतका ध्यान रखना।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

इस मासके आखिरतक बंगलोरमें रहूँगा।

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ८५९५)से।
सौजन्य : राधाबहन चौधरी

१. मैसूरके दौरेकी समाप्तिके उल्लेखसे; देखिए अगला शीर्षक भी।

३५०. पत्र : आश्रमकी बहनोंको

मौनवार [२२ अगस्त, १९२७][1]

बहनो,

मैसूरका सबसे लम्बा दौरा पूरा करके कल यहाँ लौटे हैं। इस सप्ताहके अन्तमें यानी मंगलवार ३० तारीखको मैसूर बिलकुल छोड़ देना है, इसलिए सोमवारके बाद पहुँचनेवाले पत्र मद्रास भेजने होंगे। पता मैं ठीक-ठीक नही जानता।

बहने सीने वगैराका काम करके संकट-निवारण कोषमें चन्दा देंगी, यह बहुत अच्छी बात है। जो मजदूरिनें आश्रममें काम करती हैं, उन्हें भी इस काममें शामिल करना। वे सियें यह मैं नही कहता, लेकिन वे चाहें तो एक दिनकी मजदूरी उसमें दें। अभी तो इतना ही काफी होगा कि इस निमित्तसे तुम उनके सम्पर्कमें आओ। यदि उनकी जरा भी अनिच्छा हो तो न दें। हमने आश्रममें काम करनेवाले मजदूरोके जीवनमें प्रवेश नहीं किया, यह बात इस बार समझ लेंगे तो भविष्यमें यह सम्बन्ध अधिक बढ़ेगा। हमें अपनेमें 'गीता' की समदर्शिता पैदा करनी है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ३६६३) की फोटो-नकलसे।

३५१. पत्र : छगनलाल जोशीको

२२ अगस्त, १९२७

तुम्हारे दोनों पत्र मिल गये। काका आज सोनेकी खानें देखने गये हैं इसलिए तुम्हारे पत्र उन्हें नहीं दिखा सका। वे आकर तुम्हें पत्र लिखेंगे। तुम्हारे पत्र बादमें भेज दूँगा या वे भेज देंगे। इसके बाद कुछ लिखना होगा तो महादेव लिख देगा।

तुमने मुझे पत्र लिखकर ठीक ही किया है। यदि तुम न लिखते तो मुझे बुरा लगता। तुम्हारा पत्र सँभालकर रखने लायक नहीं लगा इसलिए उसे फाड़ दिया है। मुझे लगा कि जितने कम लोग इसे पढ़ें उतना ही अच्छा है इसीलिए फाड़ दिया।

तुमने जो लिखा है उसका पहला हिस्सा तो मुझे मालूम था। यानी, मगनलालके उपवास[1] तककी बात मुझे मालूम थी। किन्तु उपवासके बाद भी दोनोंने अपनी प्रतिज्ञाका भंग किया यह नई खबर है और रामदासके अनुभवकी बात भी नई है। यह सही है कि उससे मेरे मनमें सन्देह उत्पन्न हुआ है। किन्तु मैं जो राय दे रहा हूँ उसका

१. देखिए "पत्र: बलवन्तराय मेहताको", २-९-१९२७ के पश्चात्।

कारण वह नहीं है। उसका कारण तो सत्यका बार-बार भंग होना है। जो व्यक्ति सत्यका भंग करता है वह चाहे और बातोंमें अच्छा हो फिर भी उसे सत्याग्रहका आदर्श रखनेवाले आश्रममें नही रखा जा सकता। फिर आश्रम काफी हदतक सबका पोषण करता है। इसलिए जो व्यक्ति आश्रमकी सेवा नहीं कर सकता उसका पोषण करना हमारा धर्म नहीं है। ऐसा करनेका हमें अधिकार नहीं है। इसलिए इस निर्णयका एकमात्र कारण चि० काशीकी झूठ बोलनेकी वे गलतियाँ हैं जो सिद्ध हो चुकी हैं। पर तुम सब शातिपूर्वक यही निर्णय कर सको तभी मेरी सलाहपर अमल करना। मुझे उतावली है भी और नहीं भी। उतावली नहीं है इसका कारण है कि ऐसे मामलोंमें पूरी तरह विवेक-बुद्धिसे काम लेना चाहिए। और इस हदतक उतावली है भी कि कोई निर्णय कर लेनेके बाद उसके अमलमें ढील करना अधर्म है।

इस पत्रको कार्यवाहक मंडल जरूर पढे और समझे। अभी मुझसे पूछना हो तो पूछ लें। कोई निर्णय करनेके लिए मुझसे जो कुछ भी जाननेकी जरूरत हो उसे अवश्य पूछ लेना।

[गुजरातीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरी।
सौजन्य : नारायण देसाई

३५२. पत्र : छगनलाल जोशीको

२२ अगस्त, १९२७

यह पत्र तुम्हारी सुविधाके लिए अलगसे लिख रहा हूँ।

तुम्हारा और मगनलालका अभीतक मेल नहीं हुआ यह बात दुःखपूर्ण है पर अनिवार्य है यह मैं समझ सकता हूँ। तुम दो बार स्पष्ट प्रतिज्ञा ले चुके हो इसलिए अब दोनोंमें से एक भी न वहाँसे जा सकता है और न अलग हो सकता है। अब तो तुम्हारे बीच विवाह-गाँठ अथवा आध्यात्मिक सम्बन्ध बन चुका है; उसे न तुम तोड़ सकते हो और न कोई और व्यक्ति ही उसे तोड़ सकता है। यह नैतिक बात है। यह अलग बात है कि मनुष्य नीति छोड़ दे और सभी बन्धनोंसे मुक्त हो जाये। इसलिए विचार इसी बातका करना है कि तुम्हारे सम्बन्ध किस प्रकार मधुर बनाये जा सकते हैं। हम सभी विवाहित हैं। हमें इसका विचार करना चाहिए कि विवाहित स्त्री-पुरुष आपसमें किस प्रकार व्यवहार करते हैं। और इस मामलेमें वैसा ही व्यवहार करना चाहिए। मगनलाल लाल आँखें दिखाये तो तुम प्रेमपूर्वक बर्फके समान शान्त रहो। और जब तुम लाल आँखें दिखाओ तब मगनलाल भी वैसे ही शान्त रहें। परस्पर इस प्रकारका व्यवहार न कर सको तो जैसा बा ने किया था वैसा ही करो।[1]

१. देखिए आत्मकथा, भाग ४, अध्याय १०।

मैंने बा को बाहर निकालनेके लिए दरवाजा खोला तो उसने 'शर्म करो' कहकर मुझे शर्मिन्दा कर दिया और बाहर जानेके लिए तैयार होनेपर भी वह पीछे हट आई। गोवर्धनभाईकी[1] कुमुदके[2] समान तुम यही रटो कि "हम एक-दूसरेसे अलग नहीं हो सकते"। बादमें तुम दोनोंमें जो प्रमादधन[3] होगा उसे ईश्वर मारेगा या किस प्रकार छुटकारा दिलायेगा यह तो वही जाने। वह तो नित्य नई कथा रचनेवाला है। इसलिए उसे गोवर्धनभाईका आश्रय लेनेकी जरूरत नहीं है। उसके ऊपर विश्वास रखो।

[गुजरातीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरी।
सौजन्य: नारायण देसाई

३५३. पत्र: गंगाबहनको

२२ अगस्त, १९२७

तुम्हारा पत्र मिला। काका साहबने भी तुम्हारा उनके नाम लिखा पत्र मुझे पढ़नेको दिया। मेरे साथ यात्रा करने और उसके साथ-साथ काका साहबकी सेवा करनेकी तुम्हारी इच्छाको मैं समझता हूँ पर उसे प्रोत्साहन नहीं दे सकता।

१. काका साहबको इतनी सेवाकी जरूरत नहीं होनी चाहिए और तुम्हारे न होनेसे जो कमी रह जाती है वह चन्द्रशंकरको पूरी करनी चाहिए। ऐसा न हो सके तो काका साहब अपंग बन जायेंगे।

२. बा को भी अगर सेवाकी जरूरत हो तो उसे आश्रममें जाना चाहिए। मेरी सेवा करनेवालेको सेवा करानेकी जरूरत हो तो उसकी सेवा, सेवा नहीं कही जा सकती और मुझे ऐसी सेवाका त्याग करना चाहिए।

३. तुम्हें यात्रासे लाभके बदले हानि ही होगी। मेरे साथ तो भटकना पड़ेगा इसलिए तुम्हारा पढ़ना-लिखना नहीं हो सकेगा। यह बात सही है कि मेरे साथ किसी बहनके रहनेसे अच्छा रहेगा पर उसका अध्ययन पूरा हो चुका होना चाहिए। मैं देख रहा हूँ कि मणिबहन भी ज्यादा समय रहेगी तो उसका समय नष्ट होगा। उसकी पढ़ाई-लिखाईकी काफी हानि हुई है। मन-ही-मन उसकी इच्छा भी यहाँ रहनेकी थी। वह अभी छोटी है। कामके सिलसिलेमें आई थी इसलिए रहने दिया।

तुम तो अपनी पढ़ाईमें तन्मय रहो। काका साहब कहीं रहने लगें तो अवश्य उनके साथ रहना, उनकी सेवा करना और उनसे सीखना। इस समय तुम संकोच छोड़कर जो पासमें हैं और जिन्हें आता हो उनसे अक्षर-ज्ञान प्राप्त करो। आत्मिक

१. गोवर्धनराम माधवराम त्रिपाठी, सरस्वतीचन्द्र नामक गुजराती उपन्यासके लेखक।
२. सरस्वतीचन्द्र उपन्यासकी नायिका।
३. सरस्वतीचन्द्रकी कथाका एक पात्र जिसके साथ कुमुदका विवाह हुआ था।

ज्ञान तो किसी संतसे ही मिलेगा। अक्षर-ज्ञान तो जहाँसे भी मिले वहींसे ले लेना चाहिए। इसलिए अमुक व्यक्ति सिखाये तो ही सीखूँगी, यह विचार छोड़ देना। जिस युवतीके मनमें विकार होंगे वह ऐसा जरूर सोच सकती है। तुम्हारा ऐसा सोचना ठीक नहीं है। हाँ, यह मैं समझ सकता हूँ कि अपना अज्ञान प्रकट करनेमें तुम्हें शर्म महसूस हो सकती है। यह शर्म तो तुम्हें छोड़ ही देनी चाहिए।

यदि रसिकको संस्कृत अच्छी तरह आती हो तो उससे मैं क्यों न सीखूँ? और हमारे लिए तो सब लड़के रसिककी तरह ही हैं।

[गुजरातीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरी।
सौजन्य : नारायण देसाई

३५४. पत्र : आनन्दीबाईको

२२ अगस्त, १९२७

चि० आनन्दीबाई,

स्त्रियोंको सामान्य शिक्षाके रूपमें अपनी मातृभाषा, मातृभाषा हिन्दी न हो तो हिन्दी, 'भगवद्गीता'का अर्थ समझने लायक संस्कृत, सामान्य अंकगणित, सामान्य लेखनकला, सामान्य संगीत और बच्चोंकी देखभाल करना, इतना ज्ञान तो होना ही चाहिए। इसके सिवा रुई [धुनने आदि]से लेकर बुननेतक की कलाका सम्पूर्ण ज्ञान भी मैं आवश्यक मानता हूँ। यह शिक्षा प्राप्त करते समय उसे ऐसा वातावरण मिलना चाहिए कि जिससे उसके चरित्रका निर्माण हो और वह समाजके दोषोंको पूरी तरह देख सके और उन्हें दूर कर सके। धार्मिक शिक्षाका उल्लेख मैंने अलगसे नहीं किया है क्योंकि वह तो अभ्याससे प्राप्त होती है और पढ़ाईमें ही शामिल है। सच तो यह है कि ऐसी शिक्षा शिक्षक अथवा शिक्षिकाके सत्संगसे ही प्राप्त की जा सकती है। यह शिक्षाक्रम बालिकाओंके लिए है। विधवा अथवा सधवाका शिक्षण एक अलग विषय है।

[गुजरातीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरी।
सौजन्य : नारायण देसाई

३५५. पत्र: शारदाको[1]

श्रावण वदी १०, २२ अगस्त, १९२७

चि० शारदा,

तुम्हारा पत्र मिला। जिन्दगी कठिनाइयोंसे भरी हुई है। जिस प्रकार बुनकर सूतकी गुत्थियाँ सुलझाता है उसी प्रकार यदि हम इन कठिनाइयोंको सुलझा सकें तो ही हम जीवनको ठीकसे बुन सकते हैं।

तुम्हें समझना चाहिए कि मगनलाल या कार्यवाहक मण्डल तुम्हारे भाईको आश्रममें रखनेसे इनकार करते हैं तो वे ऐसा सोच-विचारकर ही कर रहे हैं और ऐसा मानकर तुम्हें शान्त रहना चाहिए। इसके लिए उनमें से किसीपर भी क्रोध नहीं करना चाहिए। आश्रम बिगड़े हुओंको सुधारनेके लिए नहीं, बल्कि अच्छे लोगोंको सेवाकी शिक्षा देने और सेवाका क्षेत्र तैयार करनेके लिए रची गई संस्था है। इस वाक्यमें मैंने 'अच्छे' शब्दका प्रयोग किया है किन्तु यदि आश्रमवासी अपनेको सम्पूर्ण-रूपसे अच्छा मानें तो वे पापके भागी होंगे। यहाँ 'अच्छे' का अर्थ है "जो अपने जैसे मालूम हों।" इस कसौटीपर जो खरा न उतरे उसे वे नहीं ले सकते। यदि हम आश्रमको अपंगालय बनाना चाहते हों तो उसकी रचना बिलकुल दूसरी तरहसे करनी चाहिए। तब वह कैसा होगा इसकी कल्पना तुम स्वयं कर सकती हो। और एक बार उसे अपंगालय बना डालनेपर हम उसमें किसी भी अपंगको लेनेसे इनकार कैसे कर सकेंगे? तुम विचारकर देखो कि ऐसा करनेके बाद हम दुग्धालय, चर्मालय वगैरा नहीं खोल सकेंगे, नहीं चला सकेंगे। हमें उसका पूरा रूप ही बदलना होगा। एक बात याद रखो। जो कौटुम्बिक सम्बन्ध तुम्हारे दूसरे विस्तृत सम्बन्धोंके विरोधी हैं उनका तुम त्याग कर चुकी हो। पिता और भाई उसी प्रमाणमें तुम्हारे पिता और भाई हैं जिस प्रमाणमें आश्रममें या उससे बाहर उनकी आयुके दूसरे लोग। अपने पिता और भाईसे तुम्हारा अब वही सम्बन्ध है जो उनके जैसे अन्य लोगोंसे है। यह समझकर तुम्हें यदि तुम्हारा भाई आश्रममें नहीं आ सकता तो उसके लिए दुःख नहीं करना चाहिए। क्या तुम्हारा भाई किसी अनाथाश्रममें जानेके लिए तैयार है? क्या वह बारडोली आश्रम जानेके लिए तैयार है? वहाँ उसे लेंगे या नहीं यह मैं नहीं जानता। परन्तु वहाँ भाई जुगतराम अनेक प्रयोग कर रहे हैं। उनमें शायद तुम्हारे भाईको शामिल किया जा सकेगा। पर यदि भाई जुगतराम उसे ले भी लें तो उसके खर्चका प्रश्न उठता है। तुम्हारे पिता यह खर्च दे सकेंगे? इन सभी प्रश्नोंपर धीरजके साथ तटस्थ भावसे विचार करना और मुझे निस्संकोच लिखना।

[गुजरातीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरी'।
सौजन्य: नारायण देसाई

[1] १. आश्रमके कार्यवाहक मण्डलने शारदाके भाईको जिसे पिताने घरसे निकाल दिया था आश्रममें लेनेसे इनकार कर दिया था। शारदाने गांधीजीसे इस बातकी शिकायत की थी।

३५६. विदाई-सन्देश : विद्यार्थियोंको

[२२ अगस्त, १९२७ के पश्चात्][1]

विद्यार्थी शादी आदिके लिए चाहे जितना दान दें, उसमें मुझे संतोष नहीं होगा। मैं तो देशके लिए उनका सर्वस्व चाहता हूँ। देशसे वे जो-कुछ पा रहे हैं, उसका यही प्रतिदान हो सकता है; मगर यह भी पूरा नहीं, कुछ थोड़ा-सा ही प्रतिदान होगा।

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरी।
सौजन्य : नारायण देसाई

३५७. पत्र : कुवलयानन्दको

कुमार पार्क, बंगलोर
२३ अगस्त, १९२७

प्रिय मित्र,

मैसूरमें मेरा कार्यक्रम २९ तारीखको पूरा हो जायेगा। ३० तारीखको मैं तमिलनाडके लिए चल दूंगा और कुछ दिनके लिए मेरा सदर मुकाम मद्रास (श्रीयुत एस० श्रीनिवास अय्यंगार, अमजद बाग, लुज, मइलापुर, मद्रास) रहेगा।

पर यह पत्र आश्रमके एक कार्यकर्त्ता पूंजाभाईको आपकी देखरेखमें रखनेके बारेमें लिख रहा हूँ। पूंजाभाई कुछ दिनोंसे पेटके ऐसे दर्दसे पीड़ित हैं, जिसका ठीक-ठीक निदान नहीं हो पाया है। वे आपको अपनी बीमारीका पूरा हाल खुद बतलायेंगे। पूंजाभाई बड़े ही संयमी व्यक्ति हैं और कठोरतम उपचारको निभा लेंगे। मैं उनके रोगको योग-क्रियाओं द्वारा उपचारके लिए विशेष उपयुक्त समझता हूँ। इसीलिए मैं उनको आपकी देखरेखमें रख रहा हूँ।

पूंजाभाई वहाँ किसीको भी नहीं जानते। सबसे अच्छा तो यही रहेगा कि उनको आपके आश्रममें स्थान मिल जाये; पर यदि न मिल सके तो आप उनको ठहरनेके लिए शायद कोई दूसरा स्थान बतला देंगे। वे अपनी चिकित्साका खर्च आप उठायेंगे, क्योंकि उनके पास आमदनीके अपने जरिये हैं और वे किसीपर भी भार बनकर नहीं रहना चाहते। आश्रममें भी वे अपना खर्च आप उठाते हैं। इसलिए आप उनसे इलाजका खर्च लेनेमें कोई संकोच न कीजिएगा।

१. साधन-सूत्रमें यह २२ अगस्तकी सामग्रीके बाद आता है।

में अपने शरीरकी शक्ति बनाये हुए हूँ और किसी तरहकी थकान महसूस किये विना दौरा कर रहा हूँ।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजी (जी० एन० ५०५२) की फोटो-नकलसे।

३५८. पत्र : टी० आर० कृष्णस्वामी अय्यरको

कुमार पार्क, बंगलोर
२३ अगस्त, १९२७

प्रिय कृष्णस्वामी,

आपका पत्र मिला। मुझे अफसोसके साथ आपको बतलाना पड़ रहा है कि मैं अबतक उन तेलोंका प्रयोग नही कर पाया हूँ। इसका बस एक ही कारण है कि मैं दौरेपर रहा। यात्रामें अपने हाथमें बोतलें लिये फिरना और तरह-तरहके प्रयोग करना मुझे पसन्द नही।

कपासकी खेतीका विचार अच्छा है। परन्तु इसकी पूरी योजना कतैयोंकी सुविधाकी दृष्टिसे बनाई जानी चाहिए, विदेशोंके लिए या देशी मिलोके लिए भी रुई खरीदनेवालों के हितकी दृष्टिसे नही। इसलिए इसकी थोड़ी-थोड़ी खेती सब जगह होनी चाहिए। इसलिए इस खेतीको राज्यकी आयका जरिया नही माना जा सकता। इस प्रकार कपासकी खेती हर जोतके एक निश्चित हिस्सेमें करनी है, जैसे चम्पारनमें हर जोतके ३/२०वें भागमें नीलकी खेती कराई जाती थी। बड़ी शानदार चीज थी वह। खराबी यही थी कि वह निलहे साहबोंके फायदेके लिए ही कराई जाती थी। फिर आपको यह भी पता लगाना पड़ेगा कि कपासकी कौन-सी किस्में कहाँ लगाई जायें, और देव कपास चल पायेगी या नही, इत्यादि। इसलिए यदि आप इस कामका बीड़ा उठायें तो आपको कपासकी खेतीकी समस्याके सभी पहलुओंका अध्ययन करना पड़ेगा। आश्रममें ऐसे प्रयोग किये गये हैं और आप निदेशक, तकनीकी विभाग, अखिल भारतीय चरखा संघ, साबरमतीसे पत्र-व्यवहार करके इस विषयमें और अधिक जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

श्रीयुत टी० आर० कृष्णस्वामी
शबरी आश्रम
ओलवाकोट

अंग्रेजी (जी० एन० ६८३२) की फोटो-नकलसे।

३५९. पत्र : कमला दासगुप्तको

कुमार पार्क, बंगलोर
२३ अगस्त, १९२७

प्रिय बहन,

आपका पत्र मिला। मैं जानता हूँ अब बहुत-सी लड़कियोंका झुकाव सादगीकी ओर हो रहा है। परन्तु मुझे ऐसा लगा कि आश्रमका जीवन शायद कुछ अधिक सादगीका समझा जा सकता है। मैं अपना आशय स्पष्ट कर दूँ। मैं बेसलीका या फूहड़ रहन-सहनको सादगीसे रहना कतई नहीं समझता; और यह बिलकुल जरूरी नहीं कि सादगीसे रहनेवाले व्यक्तिमें सुरुचि न हो। मैंने तो यह पाया है कि सबसे सादी चीजें ही ज्यादासे-ज्यादा स्वच्छ होती हैं और सादगीसे पैदा होनेवाली यह स्वच्छता सारी मानवताको सुलभ हो सकती है, जबकि कृत्रिम ढंगसे पैदा की गई सुरुचि तो चन्द पैसेवाले लोगोंकी ही चीज हो सकती है।

यदि आश्रममें जानेकी आपकी इच्छा सचमुच गहरी है और उसके लिए सच्चे मनसे प्रयत्नशील रहते हुए भी आपके अन्दर विनम्रता है तो आप अवश्य ही अपने माता-पिताके विरोधपर विजय पा लेंगी। और जबतक आप अपने माता-पिताको अनुमति देनेपर राजी नहीं कर पाती तबतक आप मानसिक रूपसे आश्रमके जीवनमें रमी रह सकती हैं।

आप ऐसा क्यों कहती हैं कि भारतीय लड़कियाँ अपना जीवन सादा और पवित्र बना ही नहीं सकती? आप लाखों निर्धन लड़कियोंकी ओर तो देखें, वे उपयुक्त वर पानेके लिए भी सुन्दर वेष-भूषा धारण नहीं कर पाती; और यह बात भी सही नहीं है कि भारतमें सभी लड़कियोंके लिए विवाह करना अनिवार्य है। हाँ, यह सच है कि उनकी विशाल संख्या विवाहकी इच्छुक रहती है, और हम जिस वर्गके हैं उस मध्यवित्तीय समाजमें तो यही समझनेका चलन है कि लड़कियाँ तो जन्म ही विवाहके लिए लेती हैं। पर मैं अब कई ऐसी लड़कियोंको भी जानता हूँ जो अविवाहित रहनेका प्रयत्न कर रही हैं। उनके माता-पिता भी इसमें उनको सहयोग दे रहे हैं। लेकिन संघर्ष कठिन तो है ही।

आपने यह निष्कर्ष कैसे निकाल लिया कि मैं आत्म-कथा लिखना बन्द करने जा रहा हूँ? लिखना जारी है।

मैं २९ तारीखतक बंगलोरमें हूँ। उसके बाद मेरा पता रहेगा: मार्फत श्रीयुत श्रीनिवास अय्यंगार, अमजद बाग, लूज, मइलापुर, मद्रास।

मैं चाहता हूँ कि आप सोदपुर खादी-प्रतिष्ठानके श्रीयुत सतीशचन्द्र दासगुप्त और उनकी पत्नी श्रीमती हेमप्रभादेवीसे मिल लें। वे दोनों आश्रमके बारेमें जानते हैं। वे आश्रममें कुछ दिन रहे भी हैं। वे आपको आश्रमके बारेमें सब-कुछ बतला देंगे।

आपके माता-पिता आश्रम जानेकी अनुमति दे दें तो भी आपको इसमें जल्दवाजी नहीं करनी चाहिए।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी (एस० एन० १२६३४-ए०) की माइक्रोफिल्मसे।

३६०. पत्र: टी० आर० महादेव अय्यरको

कुमार पार्क, बंगलोर
२३ अगस्त, १९२७

प्रिय मित्र,

मुझे एक पत्र मिला है, जिसकी एक प्रति साथमें भेज रहा हूँ। मेरा यह खयाल है कि अब आपको सम्पत्तिका कब्जा चुपचाप छोड़ देना चाहिए।

कृपया मुझे अपना निश्चय बताइए, जिससे मैं उन्हें लिख सकूँ।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी (एस० एन० १२९३८) की माइक्रोफिल्मसे।

३६१. पत्र: कृष्णदासको

कुमार पार्क, बंगलोर
२३ अगस्त, १९२७

प्रिय कृष्णदास,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम दुविधामें न रहो इस खयालसे मैंने तुम्हें एक तार भेजा है। गणेशन्को अंग्रेजी पाण्डुलिपि[1] देनेका हमपर एक नैतिक दायित्व है। इसलिए पाण्डुलिपि उन्हें मिलनी ही चाहिए। लेकिन, शर्तें बिलकुल उचित हैं। उनपर मैं गणेशन्के साथ बातचीत करूँगा और सब-कुछ तय हो जानेपर पाण्डुलिपि उन्हें दे दूँगा। सौदा पट सके, इसके लिए आवश्यकता हुई तो मैं उनमें फेर-बदल भी कर दूँगा।

बँगला पाण्डुलिपि तो तुम्हारे पास है ही। इसलिए वहाँ तुम्हें कुछ व्यवस्था करनी पड़ेगी।

हम ३०की सुबह यहाँसे वेल्लूरके लिए रवाना हो जायेंगे।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजी (एस० एन० १९७७१) की माइक्रोफिल्मसे।

१. सेवन मंथ्स विद महात्मा गांधीकी पाण्डुलिपि।

३६२. पत्र : डॉ० सत्यपालको

कुमार पार्क, बंगलोर
२३ अगस्त, १९२७

प्रिय डॉ० सत्यपाल,

आपका पत्र मिला। आपकी बात मैं समझता हूँ, पर लालाजीके प्रति आपके रुखको मैं ठीक नहीं मानता। मैं भी कई बातोंमें उनसे सहमत नहीं, लेकिन उनकी ईमानदारी और देश-प्रेमसे तो इनकार नहीं किया जा सकता। अपने आत्म-त्याग और अनवरत देश-सेवाके कामके कारण वे हमारे सम्मान और प्रेमके पात्र हैं और पंजाबमें कोई भी सार्वजनिक कार्य उनको अलग रखकर नहीं किया जा सकता। आप शायद जानते हैं कि असहयोग जब चरम बिन्दुपर था तब भी मैं यही कहा करता था और अपने सहकर्मियोंसे भी बराबर यही कहता रहता था कि मैं पंजाबमें लालाजीके बिना कुछ भी नहीं कर सकता और न करूँगा ही और मेरा उद्देश्य लालाजीके विचारोंमें परिवर्तन लाना है; और यह भी कि पंजाबियोंको पूरा अधिकार है कि वे मुझ जैसे एक लगभग अजनबीकी बात न मानकर लालाजीकी बातपर कान दें। इसलिए यदि आपकी जगह मैं होता तो मैं बार-बार लालाजीके पास जाता और उन्हें अपने विचारोंका कायल करनेका प्रयत्न करता, लेकिन उनके खिलाफ कोई काम न करता।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी (एस० एन० १९७७४) की फोटो-नकलसे।

३६३. पत्र : मणिबहन पटेलको

[२२ अगस्त, १९२७ के पश्चात्][1]

चि० मणि,

तुम्हारा पत्र मिला। मेरे मुँहसे कोई बात निकली, इसपर महादेवने तुम्हारी इजाजतकी प्रतीक्षा किये बिना ही मुझे तुम्हारा पत्र दिखा दिया।[2] महादेवसे कोई भी यह आशा न रखे कि वह मुझसे कुछ छिपा सकेगा। यह बात उनकी शक्तिसे बाहर है। हम जब कोई आदत डाल लेते हैं तब उससे उलटा काम करना हमारी शक्तिसे बाहर हो जाता है। अच्छी टेव डालनेके लिए यह चीज सीखने योग्य है। जो व्यक्ति विशुद्ध अहिंसाका ही विचार करता रहता है वह बादमें हिंसा करनेमें असक्त हो

१. साधन-सूत्रमें यह २३-८-१९२७ के पत्रोंके बाद दिया गया है।

२. महादेव देसाईने गांधीजीको एक विस्तृत पत्र पढ़कर सुनाया जिसमें मणिबहनने लिखा था कि उन्हें आश्रममें रहनेमें संकोच होता है।

जाता है — शरीरसे नहीं, मनसे। विचार ही कार्यका मूल है। विचार छोड़ दें तो कार्य भी छूट जाता है।

हमारे वियोगसे तुम्हें जितना दुःख हुआ है उतना ही मुझे हुआ हो और अभी तक होता हो तो? तुमने श्रेयको चुना है। मैंने भी उसीको पसन्द किया। उसीमें तुम्हारा, मेरा और सभीका कल्याण है। जो श्रेय है वह हमारे लिए प्रेय भी हो जाये, शिक्षाका यही परिणाम होना चाहिए। इसलिए यदि तुम्हें ऐसा लगता हो कि आश्रममें रहना श्रेयस्कर है तो फिर ऐसी कोशिश करो कि वह तुम्हें प्रिय भी लगने लगे। इसमें न अपने मनको धोखा देना और न मुझे। इतना जान लो कि तुम्हें जब आश्रममें ही रहना अच्छा लगने लगेगा तब मैं तुम्हें दूसरे स्थानपर भेजनेके लिए तैयार रहूँगा ही। मुझे निःसंकोच लिखती रहना। भले ही मैं उसे समझ न पाऊँ और उत्तरमें भाषण लिख भेजूँ। बड़ोंके भाषण सहन करना भी सीखना चाहिए।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरी।
सौजन्य: नारायण देसाई

३६४. पत्र: एक गुजराती विद्यार्थीको

[२३ अगस्त, १९२७ के पश्चात्][1]

यह सच है कि हमारे यहाँ उपवासकी महिमाका बखान किया गया है। पर कौनसे उपवासकी? एक शास्त्रवचन यह है कि जो मनुष्य शरीरका दमन करता है परन्तु मनको मुक्त छोड़ देता है वह मिथ्याचारी है। उपवास करनेमें भी उद्देश्य तो मनका संयम करना ही है। जिसने मनको जीत लिया है वह उपवास करे या न करे, एक ही बात है। पर मनको जीतना ही तो कठिन है। शरीरका दमन करते-करते ही मनका दमन किया जा सकता है। उपवासके इस मर्मको समझकर जो आत्म-शुद्धिके लिए उपवास करते हैं वे वन्दनीय हैं।

[गुजरातीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरी।
सौजन्य: नारायण देसाई

१. साधन-सूत्रमें यह २३-८-१९२७ के पत्रोंके बाद दिया गया है।

३६५. तार: मोतीलाल नेहरूको[1]

[२४ अगस्त, १९२७]

पण्डित मोतीलाल नेहरू
इलाहाबाद

आपका तार मिला। अन्सारी का वक्तव्य दुर्भाग्यपूर्ण। मैसूरके देहातमें होनेसे समाचारपत्र नही देख पाया। अन्सारीके अपने आप अलग हो जानेसे स्थिति आसान अवश्य होगी। तय नहीं कर पा रहा हूँ कि मैं वक्तव्य[2] जारी करूँ या नही। कल सुबह बंगलोर लौटूँगा।

गांधी

अंग्रेजी (एस० एन० १२८७३) की फोटो-नकलसे।

३६६. भाषण: कृष्णगिरिमें[3]

२४ अगस्त, १९२७

सभापति महोदय और मित्रो,

आपने मुझे मानपत्र और दो थैलियाँ भेंट की है। इनके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। आपने मुझसे स्वर्गीय देशबन्धु चित्तरंजन दासके चित्रका अनावरण करनेको कहकर मेरा सम्मान किया है। इसके लिए आपको धन्यवाद देते हुए मैं बड़ी प्रसन्नताके साथ चित्रको अनावृत करता हूँ। आशा है, देशबन्धुका जीवन और कार्य हम सबको प्रेरणा देता रहेगा। उनके बारेमें कहा जा सकता है कि उन्होंने अपने देशके लिए अपना जीवन उत्सर्ग किया और वे देशके लिए ही जिये और मरे। यह सभा ऐसी नही है जिसमें मैं विस्तारसे अपनी बातें कहूँ। यहाँ काफी हल्ला-गुल्ला है और ऐसे में आपको भाषण सुननेको मजबूर करना आपपर ज्यादती करना होगा। यहाँ मुझे अपने चारों ओर बहुत सारे मुस्कुराते चेहरे दिखाई पड़ रहे हैं, इससे मेरी सेहतको बड़ा लाभ होता है और मनमें बड़ी खुशी होती है। लेकिन जब मैं उन चेहरोंके बारेमें सोचता हूँ जिन्हें मैं और आप शायद कभी देख भी नही पायेंगे, उन चेहरोंके बारेमें जिनमें मुस्कुरानेकी भी क्षमता नहीं है, तब मेरा दिल अन्दर-ही-अन्दर बैठने लगता है; और जब हम सोचते हैं कि मुस्कराहटसे

१. उनके २३ अगस्तके तारके उत्तरमें; देखिए परिशिष्ट २।
२. देखिए "पत्र: डॉ० मु० अ० अन्सारीको", २६-८-१९२७।
३. यूनियन बोर्ड, नागरिकों और सहकारी समिति द्वारा भेंट किये गये मानपत्रोंके उत्तरमें।

शून्य उन चेहरोंवाले लोगोंमें भी ईश्वर वास करता है, तो उनमें हमें दरिद्रनारायणके दर्शन होते हैं। आपने ये थैलियाँ दरिद्रनारायणके लिए ही दी हैं। और मैंने जितना भी कुछ देखा-समझा है उसके आधारपर मेरे मनमे यही विश्वास जड़ पकड़ता जा रहा है कि दरिद्रनारायणकी सेवा चरखेके जरिये ही की जा सकती है। हमारा देश जिस भयंकर रोगसे पीड़ित है वह है धन्धेका अभाव; और देशके सात लाख गाँवोंमें बसनेवाले करोड़ों लोगोके लिए एक ही धन्धा ऐसा है जो जुटाया जा सकता है। वह चरखा ही है। परन्तु चरखा भी तबतक शक्तिहीन और अनुपयोगी ही रहेगा, जबतक हम लोग सभी विदेशी वस्त्रोंका बहिष्कार करनेका संकल्प नही कर लेंगे। आपने मानपत्रमें अपनी बात अत्यन्त ही संक्षेपमें रखकर बड़ा अच्छा किया है। राष्ट्रीय रचनात्मक कार्यक्रमके अन्य मुद्दोंमें भी मेरी आस्था उतनी ही सूक्ष्म और दृढ है जितनी कि खादीके काममें। मै जानता हूँ कि सामने गहरा अन्धकार दीख रहा है। परन्तु अँधेरेके बावजूद आशाकी किरण भी है। हिन्दू-मुसलमान एकताकी सम्भावना और इसकी आवश्यकतामें मै फिर एक बार अपना विश्वास दोहराता हूँ। मैं यह भी एक बार फिर कहता हूँ कि यदि हम हिन्दू लोग हिन्दू धर्मको अस्पृश्यताके कलंकसे मुक्त नही करेंगे तो हमारा धर्म नष्ट हो जायेगा।

पूर्ण मद्य-निषेध करना मैं राज्यका एक पुनीत कर्त्तव्य समझता हूँ। मेरी रायम यह काफी पहले कर देना चाहिए था। संसारमें यदि कोई भी देश ऐसा है जहाँ तत्काल पूर्ण मद्य-निषेधके लिए परिस्थिति बिलकुल परिपक्व है, तो निस्सन्देह वह भारत ही है, और यदि आप सभी लोग सम्मिलित रूपसे इसकी माँग करें तो विना किसी कठिनाईके पूर्ण मद्य-निषेध किया जा सकता है।

सहकारी समितिकी ओरसे यह मानपत्र पाकर मुझे बड़ी खुशी हुई। सहकारी समितिको मेरा विनम्र सुझाव है कि उसे अपने कार्यक्रममें चरखा और खादी भी शामिल करनी चाहिए, क्योंकि इसके बिना उसका काम अच्छा होते हुए भी अपने-आपमें बिलकुल अधूरा और देशकी जनताकी आवश्यकताओंको देखते हुए असगत बना रहेगा। मुझे इस बातकी भी खुशी है कि विद्यार्थियोंने अपनी ओरसे एक थैली अलगसे जुटाई है। मैं जहाँ-जहाँ गया हूँ, लगभग सभी जगह विद्यार्थियोने ऐसा ही किया है। इससे मेरे मनमें आशा बँधती है, क्योंकि उनका थैली जमा करना मै उनके इस सच्चे संकल्पका प्रतीक मानता हूँ कि वे देशकी गरीब-से-गरीब जनताकी सेवाके लिए तत्पर हैं। और मै उनको अपने अनुभवकी एक बात बतला दूँ कि पवित्र और संयमपूर्ण जीवनके बिना देशसेवाका कार्य असम्भव है।

इस सभामें बहनोंकी संख्या काफी है। यह बड़ी प्रसन्नताकी बात है। मै यहाँ उपस्थित पुरुषोंको याद दिलाना चाहता हूँ कि अपनी बहनोके प्रति उनका क्या कर्त्तव्य है। यदि नरम-से-नरम भाषाका भी प्रयोग किया जाये तब भी इतना तो कहना ही पड़ेगा कि हम अबतक अपनी बहनोंकी घोर उपेक्षा करते रहे हैं। यदि हम सचमुच ही अपने राष्ट्रका काया-कल्प करना चाहते है तो हमें समाजमें महिलाओंके स्थानके बारेमें अपनी अनेक धारणाओंको बदलना होगा। बाल-विवाह और बाल-वैधव्यकी

प्रथाएँ जहाँ भी और जिस किसी रूपमें हैं, वे हमारे समाजकी सबसे बड़ी बुराइयाँ हैं। निश्चय ही ये बुराइयाँ ऐसी नहीं हैं जिन्हें दूर करना हमारी शक्तिसे बाहर हो, और यदि हम समयपर सचेत होकर अपने जीवनमें समुचित सुधार नहीं करते तो हमें ईश्वर और दुनियाके सामने अपराधी बनकर खड़ा होना पड़ेगा। मैं जानता हूँ कि उस विशाल सभामें उपस्थित सभी सज्जनोंने चन्दा नहीं दिया है। मैं चाहता हूँ कि उस कामके लिए हर व्यक्ति इसके महत्त्वको समझते हुए जितना भी खुशी-खुशी दे सकता है, अवश्य दे। मैं चाहता हूँ कि उस कामके लिए गरीबसे-गरीब स्त्री-पुरुष, लड़के-लड़कियाँ भी जितना दे सकते हों, अवश्य दें। मैं शुरूमें कह चुका हूँ कि हमें यह याद रखना चाहिए कि देशमें हमसे भी ज्यादा गरीब लोग मौजूद हैं। स्वयंसेवक लोग जब चन्दा इकट्ठा करने आपके पास आयें, तो आपको सभामें पूरी तरह शान्ति बनाये रखनी चाहिए। मैं चाहता हूँ कि सिर्फ वही लोग चन्दा दें, जिनको चरखेके सन्देशमें विश्वास हो। और जो लोग चन्दा नहीं देना चाहते, वे चन्दा-उगाहीके दौरान अपने-अपने स्थानपर ही बैठे रहें। ईश्वर यहाँ उपस्थित लोगोंका और जिनके लिए हम काम करना चाहते हैं उन सबका कल्याण करे।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, २७-८-१९२७

३६७. विद्यार्थी और 'गीता'

अभी उस दिन बातचीतके दौरान मेरे एक मिशनरी मित्रने मुझसे पूछ लिया कि यदि भारत वास्तवमें आध्यात्मिक रूपसे काफी आगे बढ़ा हुआ देश है, तो फिर ऐसा क्यों है कि यहाँ बहुत थोड़ेसे विद्यार्थियोंको अपने धर्मकी, यहाँ तक कि 'भगवद्गीता' की भी मामूली-सी ही जानकारी है। वे खुद ही एक शिक्षाविद् हैं, सो अपने इस कथनके समर्थनमें उन्होंने कहा कि वे जब भी विद्यार्थियोंसे मिलते हैं, उनसे यह पूछना नहीं भूलते कि उनको अपने धर्म या 'भगवद्गीता' की कोई जानकारी है या नहीं, और विद्यार्थियोंकी एक बहुत बड़ी संख्या ऐसी ही मिलती है, जिसे कोई जानकारी नहीं होती।

मैं अभी इस तर्ककी संगति या असंगतिपर विचार नहीं करना चाहता कि कुछ विद्यार्थियोंको यदि अपने धर्मकी जानकारी न हो तो भारतको आध्यात्मिक रूपसे उन्नत देश नहीं माना जा सकता। यहाँ मैं इतना ही कहूँगा कि विद्यार्थियोंका धार्मिक ग्रन्थोंसे अपरिचित रहनेका मतलब अनिवार्यतः यही नहीं लगाया जा सकता कि भारतीय समाजमें, जिसके कि वे विद्यार्थी अंग हैं, धार्मिक जीवनका नितान्त अभाव है, या आध्यात्मिकताकी कमी है। परन्तु इसमें कोई शक नहीं कि सरकारी शिक्षण-संस्थाओं-से निकलनेवाले विद्यार्थियोंकी विशाल संख्या धार्मिक शिक्षासे सर्वथा वंचित रहती है। मेरे मिशनरी मित्र मैसूरके विद्यार्थियोंके बारेमें बात कर रहे थे। मेरा मन इस

बातसे कुछ दु:खी भी हुआ कि मैसूरकी राजकीय पाठशालाओंमें भी विद्यार्थियोंको धार्मिक शिक्षा नहीं दी जाती। मैं जानता हूँ कि कुछ लोग इस विचारके हैं कि सार्वजनिक पाठशालाओंमें केवल दुनियावी शिक्षा ही दी जानी चाहिए। मैं यह भी जानता हूँ कि भारत-जैसे देशमें धार्मिक शिक्षाका प्रबन्ध करनेमें बड़ी कठिनाइयाँ हैं; क्योंकि इस देशमें संसारके अधिकांश धर्मोंके लोग मौजूद हैं और एक धर्ममें ही अनेक सम्प्रदाय मौजूद हैं। परन्तु यदि भारत अपने-आपको आध्यात्मिक रूपसे दिवालिया घोषित नहीं करना चाहता तो उसे अपने यहाँके नवयुवकोंके लिए धार्मिक शिक्षाका प्रबन्ध करना कमसे-कम उतना आवश्यक तो समझना ही चाहिए जितना आवश्यक वह दुनियावी शिक्षाके लिए प्रबन्ध करना समझता है। यह बात बिलकुल सच है कि धर्म-ग्रन्थोंकी जानकारी रखना और धार्मिक आचरण, दोनों एक ही चीज नहीं हैं। परन्तु यदि हम अपने जीवनको धार्मिक नहीं बना सकते तो हमें कमसे-कम इतना तो चाहिए ही कि हम अपने बालक-बालिकाओंके लिए धार्मिक शिक्षाका प्रबन्ध करें। धार्मिक जीवनके अभावमें, ऐसा प्रबन्ध ही एक चीज है जिसपर हम सन्तोष कर सकते हैं। पाठशालाओंमें ऐसी शिक्षाका प्रबन्ध हो या न हो, पर हमारे देशके वयस्क विद्यार्थियोंको अन्य मामलोंकी भाँति धर्मके मामलेमें भी अपने-आप सीखने और करनेकी योग्यता विकसित करनी चाहिए। वे अपने वाद-विवाद क्लबों या आजकल कताई-क्लबोंकी तरह ही, धार्मिक शिक्षाके लिए भी अपनी कक्षाएँ शुरू कर सकते हैं।

मैंने शिमोगामें कॉलेजिएट हाईस्कूलके विद्यार्थियोंकी सभामें अपने भाषणके दौरान वहाँ उपस्थित विद्यार्थियोंसे पूछा तो पता चला कि सौ से कुछ अधिक हिन्दू विद्यार्थियोंमें मुश्किलसे आठ ही ऐसे थे, जिन्होंने 'भगवद्गीता' पढ़ी थी। जब उन आठ विद्यार्थियोंसे भी मैंने यह पूछा कि वे 'गीता' को समझते हैं या नहीं, तो किसीने भी हाथ नहीं उठाया। वहाँ पाँच या छः मुसलमान बालक भी थे। 'कुरान' पढ़नेके बारेमें उनसे पूछनेपर सभीने अपने हाथ उठा दिये, पर उनमें से सिर्फ एकने ही उसका अर्थ समझनेका दावा किया था। मेरी रायमें तो 'गीता' को समझना काफी आसान है। हाँ, उसमें कुछ ऐसी मूलभूत समस्याएँ पेश की गई हैं, जिनका समाधान निस्सन्देह बड़ा कठिन है। परन्तु मैं समझता हूँ कि 'गीता' का सामान्य अर्थ बड़ा ही स्पष्ट है। सभी हिन्दू सम्प्रदाय उसको प्रामाणिक ग्रन्थ मानते हैं। उसमें किसी भी प्रकारकी कट्टरता नहीं है। उसमें बड़े ही पुष्ट तर्कोंपर आधारित नीति-नियमोंकी एक पूरी संहिता संक्षिप्त रूपमें प्रस्तुत की गई है। 'गीता' हमारे हृदय और हमारी बुद्धि, दोनोंको तुष्ट करती है। इस तरह, उसमें दर्शन भी है और आस्था एवं भक्ति भी। उसका सन्देश सबके लिए है। भाषा अत्यन्त ही सरल है। लेकिन मेरा खयाल है कि भारतकी हर प्रादेशिक भाषामें उसका एक प्रामाणिक अनुवाद होना चाहिए और अनुवाद इस ढंगसे किये जाने चाहिए कि वे पारिभाषिक शब्दोंकी उलझनमें न फँसते हुए, 'गीता' के उपदेशोंको ऐसे ढंगसे प्रस्तुत कर दें कि साधारण पाठक उनको हृदयंगम कर सके। मेरे कहनेका यह मतलब कदापि नहीं कि मूल ग्रन्थको कुछ प्रक्षिप्त किया जाये। क्योंकि, मैं तो फिर यही कहता हूँ कि मेरे विचारसे प्रत्येक हिन्दू बालक-

बालिकाको संस्कृतका ज्ञान होना ही चाहिए। परन्तु अभी एक लम्बे अर्सेतक लाखों व्यक्ति ऐसे रहेंगे जिनको संस्कृतका कोई ज्ञान नहीं होगा। संस्कृत न जाननेके कारण ही उनको 'गीता'के उपदेशोंसे वंचित रखना आत्मघातके समान होगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २५-८-१९२७

३६८. टिप्पणियाँ

ये धृष्ट स्मारक

मद्रासमें दो नवयुवकोंपर मुकदमा चलाया गया है। एक तीस-वर्षीय हिन्दू और दूसरा पच्चीस-वर्षीय मुसलमान है। दोनोंपर मद्रासकी माउण्ट रोडपर स्थित गदरके दौरान प्रसिद्धि पाये जनरल नीलकी मूर्तिको तोड़नेकी कोशिश करनेका अभियोग लगाया गया है। यह मुकदमा हमारे लिए गहरा महत्त्व रखता है। इन नवयुवकोंकी यह कोशिश हमें असहयोग आन्दोलनके दौरान लाहोरमें हुए उस विफल प्रयासकी याद दिलाती है जिसमें लॉरेन्सकी मूर्तिको, या कमसे-कम उसपर अंकित अत्यन्त ही आपत्तिजनक "कलम या तलवार" वाले वाक्यको हटवानेकी कोशिश की गई थी। लाहोरमें वह कोशिश आम जनताकी ओरसे की गई थी। मद्रासमें यह प्रयास केवल दो नवयुवकोंने किया था, जो एक दृढ़ सकल्पके साथ चुपचाप अपना लक्ष्य पूरा करने गये थे। अभियुक्तोंका निम्नलिखित बयान, जो 'हिन्दू' मे प्रकाशित रिपोर्टसे लिया गया है, लोग दिलचस्पीसे पढ़ेंगे :

> पहले अभियुक्तने कहा कि मेरा जन्म तो तिन्नेवेल्लीमें हुआ था पर मैं रहता हूँ मदुरामें। यह काम करनेसे पहले मैं जानता था कि मुझे किस प्रकारका दण्ड मिलेगा। इस कामके लिए हम कोई भी दण्ड भोगनेको तैयार थे। इतिहासकी अपनी जानकारीके आधारपर मुझे मालूम था कि नीलने इस देशको बड़ा नुकसान पहुँचाया था और मैंने सोचा कि नीलकी मूर्ति वहाँ नहीं रहनी चाहिए और इसीलिए मैंने मूर्तिको नष्ट करनेका संकल्प किया। अपने स्थानसे चलते समय हम हथौड़ी और कुल्हाड़ी अपने साथ लाये थे। पर हथौड़ी और कुल्हाड़ी इसी कामके लिए नहीं लाये थे। मद्रास पहुँचनेपर, हम दर्शनीय स्थलोंको देखने गये, और उसी दौरान हमने मूर्ति भी देखी। मूर्तिको देखकर उसका इतिहास याद आ गया और हमने उसे आज सुबह नष्ट करनेकी कोशिश की। हमने सोचा था कि मूर्ति या तो कांसेकी होगी या संगमर्मरकी, पर वह असलमें तांबेकी निकली। इसलिए उसके कुछ ही हिस्से टूट पाये थे कि सार्जेन्ट हमें थाने ले गया। इस अपराधके लिए माननीय न्यायाधीश हमें जो भी दण्ड देंगे, उसे सहर्ष स्वीकार करेंगे।

जब उनसे पूछा गया कि क्या आप लोग अपना अपराध स्वीकार करते हैं तो उन्होंने कहा कि "सरकारके कानूनकी रू से" तो हम अपराधी हैं, लेकिन खुद अपनी रायमें हम "अपराधी नही हैं।"

यह असम्भव है कि इन वीर नवयुवकोंके प्रति हृदयमें सहानुभूति महसूस न की जाये — इस कामके पीछे उनका जो मंशा था उसकी दृष्टिसे भी और उन्होंने मुकदमेके दौरान जिस आत्म-गरिमाका परिचय दिया है, उसका भी खयाल करके। मेरे सामने जो विवरण है, उसमें आगे कहा गया है कि अभियुक्तोंकी ओरसे कोई वकील नही था और उन्होंने खुद इस्तगासेके गवाहोंसे जिरहतक नही की। इसमे तो कोई सन्देह ही नही दिखता कि जैसे-जैसे राष्ट्रीय चेतना बढ़ेगी ब्रिटेनके शौर्यके दुरुपयोग और बर्बरताके धृष्ट स्मारक-रूप इन मूर्तियोंके प्रति क्षोभकी भावना बढ़ती ही जायेगी। इसलिए, कोई सरकार चाहे जितनी शक्तिशाली हो, यदि उसमें समझदारी होगी तो वह लोगोंके मनमें सालनेवाले ऐसे स्मारकोंको कभी भी कायम नही रखेगी, क्योंकि उन्हें कायम रखनेका मतलब होगा लोक-मतको ऐसी कार्रवाइयाँ करनेके लिए भड़काना जो लाख खेदजनक और निन्दनीय होते हुए भी सर्वथा औचित्यपूर्ण राष्ट्रीय भावनाकी घोर उपेक्षाके एक समुचित प्रत्युत्तरके रूपमें सही ही मानी जायेंगी। और निरन्तर चुभते रहनेवाले इन शूलोंको निकाल फेंकनेके प्रयत्न जब-जब विफल होंगे, कटुता कुछ और बढ़ेगी और हमारे तथा इंग्लैंडके बीचकी खाई और भी चौड़ी होती जायेगी। ये मूर्तियाँ मद्रास नगरपालिकाके अधिकारमें हैं। इन्हें हटवाना उसका फर्ज है।

क्या सत्य इतना सुन्दर हो सकता है?

स्वामी आनन्दने ७ अगस्त, १९२७ के 'नवजीवन' में गुजरात-भरके लोगोंके वीरोचित कार्योंके बारेमें जानकारी जुटाई है। उसमें पेश किये गये शब्द-चित्रोंमें हम देखते हैं कि हिन्दू और मुसलमान एक-दूसरेकी सहायता कर रहे है, मानो उनमें कभी कोई झगड़ा हुआ ही नहीं; दलित और दमनकर्त्ता दोनोंने एक ही घरमें शरण ले रखी हैं और एक ही तरहका खाना खाते हैं, लोग अपनेको बड़ी-बड़ी जोखिमोंमें डालकर एक-दूसरेकी रक्षा करनेका प्रयत्न कर रहे हैं। इन शब्द-चित्रोको पढते हुए मैं बार-बार यही सोचता था कि क्या यह सब सच हो सकता है। फिर मुझे ध्यान आया कि मैं तो 'नवजीवन' पढ़ रहा हूँ और उसके स्तम्भोंमें अप्रामाणिक कहानियोंको स्थान नहीं दिया जाता, और फिर वहाँ स्वामी हैं जो यदि सम्भव हो तो इस विषयमें मुझसे कही अधिक सतर्क रहते है कि कोई संदिग्ध चीज शामिल न हो पाये। इन शब्द-चित्रोंमे हम देखते हैं कि भावनगरसे लेकर भड़ौचतक के विशाल विपद्ग्रस्त क्षेत्रके लोग किस अभूतपूर्व ढंगसे अपनी सहायता आप कर रहे हैं, अपने ऊपर विश्वास रखकर अपनी मुसीबतोंपर पार पानेमें लगे हुए है और आपसमें एक-दूसरेकी सहायता कर रहे है। स्वामीने बिलकुल ठीक ही लिखा है कि "जनताने उन सभी गुणोंका परिचय दिया है जो राष्ट्रको महान् और स्वशासित बनाते हैं।" उनमे कही भी भय या घबराहटका नाम तक नही था, अगर कुछ था तो बस मृत्युसे जूझनेका एक गम्भीर संकल्प ही था। यदि यह विवरण सही है — मै अब भी

सावधानीसे काम ले रहा हूँ — तो सभी सम्बन्धित लोग उच्चतम सम्मानके पात्र हैं। वे सब एकसाथ नेता भी थे और अनुगामी भी। विपत्ति पड़नेपर उनका यह संघटन अपने-आप बन गया था।

नेताओंके सोचनेकी बात अब यह है कि बाढ़की विपत्ति आनेपर जनताके उस पराक्रमसे हमें जो सीख मिली है, क्या उसको स्थायी रूप दिया जा सकता है। क्या तात्कालिक आवश्यकता पूरी हो चुकनेके बाद भी हिन्दुओं और मुसलमानोंकी मैत्री कायम रहेगी? क्या दलित वर्गोंकी गर्दनपर से हमेशाके लिए जुआ हट जायेगा? क्या लोग भविष्यमें भी अपने नित्य प्रतिके कार्यों और व्यवहारमें स्वार्थको त्यागकर सभीके हित-साधनका खयाल करेंगे? क्या गुजरातकी ओर बहनेवाला दान और उदारताका यह स्रोत बाढ़के पहलेकी लोलुपताको सदा अंकुशमें रख सकेगा? क्या सहायता-कोषका काम सँभालनेवाले लोग कोषसे अपने लिए कुछ खर्च करने या उसके गबनका लोभ संवरण कर सकेंगे? क्या भविष्यमें भी ऐसा होगा कि लोग विपत्तिका झूठा शोर न मचायेंगे और राहतकी आवश्यकता न होनेपर भी उसकी माँग न करेंगे?

इन और ऐसे ही अन्य अनेक प्रश्नोंके उत्तर तभी संतोषप्रद ढंगसे दिये जा सकेंगे जब आज काम करनेवाले अनेक नेता अपनेको स्वर्णकी भाँति खरा सिद्ध कर देंगे। ऐसा करनेका अर्थ होगा वास्तविक हृदय-परिवर्तन, सच्चे अर्थोंमें प्रायश्चित्त और आत्मशुद्धि। कहा जाता है कि प्रत्येक प्रलयके बाद, उससे बचे लोगोंके जीवनमें सदा ही एक सुधार आता है। हो सकता कि यह विपत्ति इतनी बड़ी होनेपर भी शायद वास्तविक प्रलयकी कोटिकी न समझी जाये, और इसीलिए इससे उतने व्यापक सुधारकी अपेक्षा न की जाये। मनुष्यकी संवेदनशीलता इतनी नष्ट हो चुकी है कि वह समय-समयपर ईश्वरके भेजे संकेतोंको समझ ही नही पाता। हमें तो हर बात ढोल पीटकर बतलानेकी जरूरत पड़ती है; तभी हमारी तन्द्रा टूटती है और हम इस चेतावनीको सुनते और समझते हैं कि आत्म-साक्षात्कारका एकमात्र मार्ग यही है कि हम अपने-आपको समाजमें इतना गर्क कर दें कि अपना खुदका कुछ भी न रहे। क्या गुजरात अपने-आपको इतना प्रबुद्ध सिद्ध करेगा कि वह हालकी बाढ़को एक पर्याप्त चेतावनीके रूपमें समझ ले और इस विपद्ग्रस्त प्रदेशके इतिहासमें एक नया शानदार अध्याय जोड़ दे? यदि गुजरातकी जनतामें कोई स्थायी और स्पष्ट दिख सकनेवाला सुधार न हो पाया तो भावी पीढ़ियाँ पराक्रम, आत्म-निर्भरता और पारस्परिक सहायताके आजके इन विवरणोंपर विश्वास न करेंगी और वह उचित ही होगा।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, २५-८-१९२७

३६९. संयमका नियम

एक भाईने डा० कोवेनकी किताव 'साइन्स ऑफ ए न्यू लाइफ'में से कुछ प्रासंगिक उद्धरण भेजे हैं। मैंने किताव नहीं पढ़ी है, मगर उद्धरणोंमें[1] दी गई सलाह वेशक विलकुल ठीक है। मैंने उनमें से भोजनके वारेमें कुछ अनुच्छेद निकाल दिये हैं, क्योंकि हिन्दुस्तानी पाठकोंके लिए वे बहुत कामके नहीं है। शुद्ध और संयमपूर्ण जीवन वितानेकी इच्छा रखनेवाले यह न सोचें कि चूँकि इसका इष्ट फल तुरन्त नहीं मिलता, इसलिए इसके आचरणका प्रयत्न करना ही फिजूल है। कोई यह अपेक्षा भी न रखे कि दीर्घ कालतक सफलतापूर्वक संयमका जीवन वितानेसे उसका शरीर सभी तरहसे निर्दोष और पूर्ण हो जायेगा। संयम और इन्द्रियनिग्रहका पालन करनेके लिए निर्धारित नियमोंके अनुसार चलनेका प्रयत्न करनेवाले हममें से अधिकांश लोगोंके मार्गमें तीन बाधाएँ हैं। अपने माता-पिताओंसे हमें निर्वल मन और तनकी विरासत मिली है, और गलत ढंगके रहन-सहनसे हमने अपने शरीर और मनको और भी निर्वल वना लिया है। जव शुद्ध जीवनके पक्षमें लिखा कोई लेख हमारे मनको आकृष्ट करता है तो हम सुधार शुरू करते हैं। जहाँतक ऐसे सुधारका सम्वन्ध है, यह तो किसी भी उम्रमें नहीं सोचना चाहिए कि अव इसे शुरू करनेका समय बीत गया। परन्तु हमें इन लेखोंमें वर्णित लाभोंकी उम्मीद नही रखनी चाहिए, क्योंकि ये लाभ तो उसीको होंगे, जिसने अपनी जवानीके शुरूसे ही अत्यन्त संयमका जीवन विताया हो। तीसरी बाधा यह है कि सभी प्रकारके कृत्रिम और वाहरी संयमके पालनके वावजूद हम विचार-संयमका पालन करनेमें, अपने विचारोंका ठीक नियमन करनेमें अपने-आपको असमर्थ पाते हैं। शुद्ध जीवन व्यतीत करनेकी आकांक्षा रखनेवाले लोग यह जान लें कि अक्सर बुरे विचार भी शरीरके लिए उतने ही हानिकर होते हैं जितने कि बुरे काम। विचार-संयम दीर्घ-कालतक कठिन प्रयत्नोंसे ही साध्य होता है। मगर मेरा पक्का विश्वास है कि उस महान् फलकी प्राप्तिके लिए जितना समय और जितना श्रम लगाया जाये, जितना कष्ट सहा जाये, उसे अधिक नही कहा जा सकता। विचारोंकी पवित्रता तो तभी आ सकती है, जव ईश्वरमें इतनी अधिक आस्था हो, मानो उसका साक्षात्कार-सा कर लिया हो।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २५-८-१९२७

१. उक्त अंश यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

३७०. अन्धे कतैये

अभी हालमें बंगलोरमें जो खादी-प्रदर्शनी हुई थी, उसमें एक अन्धा कतैया आया था। उसके सम्बन्धमें प्रकाशित विवरण पढ़कर एक भाईने मुझे पत्र लिखा है, जिसमें हेलेन हंट जैक्सनकी कुछ सुन्दर काव्य-पंक्तियाँ भी उद्धृत की हैं। वे निम्न प्रकार हैं:

मैं अन्धे कतैयेकी तरह अपना दिन बिताता हूँ — कर्म-रत;
मैं जानता हूँ कि सभी तार
ठीक निकलते चले जायेंगे, ठीक बँटते चले जायेंगे;
मैं जानता हूँ, हर दिन
मेरे लिए कोई काम लेकर आयेगा;
अधिक जाननेकी मुझे कोई चाह नहीं, कोई इच्छा नहीं,
क्योंकि मैं अन्धा हूँ।

मैं क्या करता हूँ, क्या कातता हूँ,
उसका नाम, उसका उपयोग मैं नहीं जानता;
मैं केवल यही जानता हूँ कि —
किसीने आकर मेरे
हाथमें तार पकड़ाया और कहा: "महोदय, आप
अन्धे हैं, किन्तु यह काम कर सकते हैं।"

कभी-कभी ये तार ऐसे बेढंगे, इतनी तेजीसे और
इतने उलझे रूपमें निकलते हैं कि —
लगता है, मानो सिरपर से तूफान बहा चला जा रहा है।
और तब मुझे डर लगता है —
उसके थपेड़ोंसे भूशायी हो जानेका,
फिर भी मैं सुरक्षाके लिए कहीं भागनेकी हिम्मत नहीं करता,
क्योंकि मैं अन्धा हूँ।

मैं इस विश्वाससे भरा रहता हूँ —
पता नहीं क्यों — कि उन तारोंको
कहीं किसी ऐसे परिधानमें स्थान मिलेगा,
जो कालातीत होगा, जो किसी जातिके साथ नहीं मिटेगा।
इसलिए मैं अपनेको अभिशप्त नहीं मानता,
यद्यपि मैं अन्धा हूँ।

यदि हमारे देशके सब लोग जो कात सकते हैं — और कौन नहीं कात सकता — मनमें इस अन्वे कर्तव्यकी-सी आस्था संजोकर कातें, तो हमारे देशका कैसा कायाकल्प हो जाये! क्या हमारे मनमें यह विश्वास, यह आस्था नहीं जग सकती कि हमारे काते एक-एक तारको "किसी ऐसे परिधानमें स्थान मिलेगा, जो कालातीत होगा"?

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २५-८-१९२७

३७१. पत्र : मीराबहनको

कुमार पार्क, बंगलोर
२६ अगस्त, १९२७

चि० मीरा,

तुम्हारे पत्र मिल गये। तुमको पत्र लिखनेका श्रम कहीं मेरे लिए बहुत ज्यादा न हो जाये ऐसी चिन्ता मत करो। मैं तभी लिखता हूँ जब लिखना बिलकुल जरूरी हो जाता है, और जो काम मेरे लिए जरूरी हो जाये उसे करनेमें मुझे हमेशा आनन्द मिलता है। यदि मैं कोई ऐसा शुद्ध और संवेदनशील उपकरण बन जाऊँ जो आसपासकी हर परिस्थितिकी संवेदना ग्रहण करने और उसके मुताबिक काम करने लगे, तो मैं लिखना और बोलना बन्द कर दूँगा और फिर भी मेरे विचार उन लोगोंके हृदयोंतक पहुँच सकेंगे जिनको मेरे मार्ग-दर्शन या मेरी सहायताकी जरूरत है। परन्तु उस अवस्थातक पहुँचनेसे पहलेतक तो मुझे कलम और वाणी-जैसे अपेक्षाकृत कम विश्वसनीय और अपूर्ण साधनोंका ही सहारा लेना पड़ेगा।

मेरा अब भी यही खयाल है कि मासिक धर्मके दिनोंकी छूतके सवालको तुम बेकार ही इतना तूल दे रही हो। तुम इसको बिलकुल अनिवार्य क्यों कहती हो? यदि तुम इस नियमका पालन करती हो तो वह विशुद्धतम प्रेमके कारण ही किया गया एक काम होगा। पॉल द्वारा रोमवासियोंके नाम लिखा गया चौदहवाँ पत्र[1] तो तुमने पढ़ा ही होगा। पॉल स्वयं शाकाहारी नहीं थे। उन्होंने अपने भक्तोंको लिखा था: "यदि तुम्हारे भाईको मांसाहारसे परहेज हो तो मांससे दूर रहो।" मेरे सामने ग्रन्थ नहीं है, इसलिए हो सकता है कि शब्दोंमें कुछ अन्तर हो, लेकिन सार यही है कि यदि तुम अपनेको पृथक रखोगी तो इसलिए नहीं कि तुम स्वयंको किसी भी तरहसे अशुद्ध महसूस करती हो, बल्कि इसलिए कि तुम अपने आसपासके लोगों और एक अच्छे उद्देश्यसे प्रेरित होकर इस चीजमें विश्वास रखनेवाली महिलाओंकी भावनाका ख्याल करती हो। पता नहीं, मैं अपना अर्थ पूरी तरह स्पष्ट कर पाया हूँ या नहीं। सारी बातका सार यह है कि कुछ काम अपने-आपमें अनैतिक नहीं

१. ईसाके बलिदानके पश्चात् उनके शिष्य पीटर और पॉलने विभिन्न स्थानोंकी जनताके नाम कुछ पत्र लिखे थे। ये पत्र न्यू टेस्टामेंटमें शामिल हैं।

होते और हम उनको दूसरोंकी खातिर करते हैं और कुछ काम अपने-आपमें अनैतिक होते हैं और इसलिए हम उनको किसी की खातिर नहीं करते और न हमें करने ही चाहिए। यदि स्वेच्छासे स्वीकार किया गया अलगावका यह नियम तुमको अनैतिक लगता है तो मुझे खुश करनेके लिए भी यह तुमको नहीं करना चाहिए और यदि वह अनैतिक न लगता हो तो तुम उसे अपने आसपासके लोगोंके खयालसे करते हुए उनको उस हदतक अज्ञानी मानो तो उचित ही होगा। जहाँतक इसके सैद्धान्तिक पक्षकी बात है, मैं तुमसे सोलहों आने सहमत हूँ। कुमारीके लिए तो ऐसे नियमका कोई प्रश्न ही नहीं उठता। उसके लिए मासिक धर्म कोई बीमारी तो होती नहीं। उसे जब मासिक धर्म होता है, वह उसका अर्थ समझ लेती है। उसके काम बदल जाते हैं पर उसकी मनोवृत्ति तो नहीं बदल जाती। विवाहित स्त्रियाँ भी जब इस अवधिमें सावधानी रखनेकी जरूरत एक बार समझ ले तब उनके लिए नियमके तौरपर अलगाव बरतनेका कोई मतलब नहीं रह जाना चाहिए। मेरा खयाल है कि मैं तुमको बतला चुका हूँ कि खुद मैंने तो इस नियमको बा के मामलेमें भी नहीं माना। और जब मैंने सब चीजोंको स्पष्ट रूपसे समझ लिया तब मुझे इस नियमके पालनकी आवश्यकता कभी महसूस ही नहीं हुई। रावा और रुखी तो इस नियमका पालन नहीं ही करती और जहाँतक मेरी जानकारी है, दूसरी लड़कियाँ भी इसका पालन नहीं करती। अमीना भी नहीं मानती। गोमती बहन मानती है और सब लोग उनकी इच्छाका यहाँतक सम्मान करते हैं कि इसका पालन न करनेवाली स्त्रियाँ भी अपने मासिक धर्मके दिनोंमें गोमतीबहनके पास नहीं जाती। इसलिए यदि इसका पालन करना तुमको कोई कठिन काम लगे तो तुमको इसका पालन करनेकी कोई जरूरत नहीं। परन्तु यदि तुम कठिनाई महसूस न करती होओ तो दूसरे लोगोंकी भावनाओंके खयालसे एक आनन्ददायक कर्त्तव्यके रूपमें इसका पालन करो। लेकिन तुम्हारे लिए तो अब इसका कोई व्यावहारिक महत्त्व नहीं रह गया है क्योंकि अगले माहवारीके दिनोंमें तुम शायद वर्धामें होगी ही नहीं। और अगर मासिक धर्म होगा भी तो वहाँ रहते एक ही बार होगा। साबरमतीमें कोई नहीं चाहेगा कि तुम इसका पालन करो। अमीना किसीके भी खयालसे इसका पालन नहीं करती, गोमती-बहनका खयाल भी नहीं करती, और न कोई उससे ऐसी अपेक्षा ही करता है। तुमसे तो और भी नहीं की जायेगी। यहाँतक कि जब गोमतीबहन वहाँ रहेंगी तो वे भी तुमसे इसकी अपेक्षा नहीं करेंगी। जहाँतक मुझे जानकारी है, उन्होंने उनके अपने खयालसे या अपनी उपस्थितिका ख्याल करके खुद कभी किसीसे इस नियमका पालन करनेको नहीं कहा। यदि अब भी बात पूरी तरह समझमें न आई हो तो तुम इसकी चर्चा करती रहना और तबतक तुमको जैसा भी उचित लगे करती रहना।

अब व्याकरण और गणितके बारेमें। तुमने जो लिखा है उसे मैं समझता हूँ। परन्तु तुम्हें मैंने जो काम सौंपा है उसके लिए यह बिलकुल जरूरी है कि तुम्हें गणितका भी ज्ञान होना चाहिए और एक शास्त्रके रूपमें तथा भाषाओंका ज्ञान प्राप्त करनेके

एक सहायक साधनके रूपमें व्याकरणका भी ज्ञान होना चाहिए। इसलिए परेशानी अनुभव किये बिना तुम इन दोनों विषयोंका जितना अध्ययन कर सकती हो, करना। परन्तु यदि सरल गणित और तुलनात्मक व्याकरणके अध्ययनको सहज रूपसे जारी न रख सको तो फिर इनके बिना ही काम चलाओ।

एन्ड्रयूज यहाँ कल आ रहे हैं। तुमको मालूम ही होगा कि वे पिछले सप्ताह भारत आ गये हैं। यदि तुमने अबतक उन्हें पत्र न लिखा हो तो लिख दो। आगेका कार्यक्रम साथमें भेज रहा हूँ। परन्तु जबतक किसी और पतेपर लिखनेको न कहूँ तबतक तुम अपने पत्र मार्फत — श्रीयुत एस० श्रीनिवास अय्यंगार, अमजद बाग, लुज, मइलापुर, मद्रासके पतेपर भेजती रहना।

मंगलवारको मेरा वजन लिया गया था। एक सौ साढ़े तेरह पौण्ड निकला। सचमुच अच्छी प्रगति है। अभीतक तो मैं बिलकुल ठीक चलता रहा हूँ। अब देखना है कि मद्रासकी आबोहवा मेरे लिए कैसी रहती है। वहाँकी आबोहवा भी बहुत-कुछ बम्बई जैसी ही है — उतनी ही नम, किन्तु कुछ अधिक गरम।

सस्नेह —

बापू

[संलग्न]

तमिलनाडके दौरेका कार्यक्रम

अगस्त

२९ तारीखतक बंगलोरमें रुकना
३० तारीखकी सुबह वेल्लूरके लिए प्रस्थान

सितम्बर

१ गुडियाथम
२ अर्नी
३ से ९ तक मद्रास (श्रीयुत एस० श्रीनिवास अय्यंगार, लुज, मइलापुर)
१० से १२ तक कुड्डलूर
१३ चिदम्बरम
१४ मायावरम
१५ मन्नारगुडि
१६ तंजोर
१७ से २० तक त्रिचनापल्ली
२१ पुडुक्कोट्टा
२२ से २७ तक काराइकुडि और चेट्टिनाड
२८ से ३० तक मदुरै और ३० को तिरुमंगलम भी

अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ५२६४)।
सौजन्य : मीराबहन

३७२. पत्र : डॉ० मु० अ० अन्सारीको

कुमार पार्क, बंगलोर
२६ अगस्त, १९२७

प्रिय डॉ० अन्सारी,

आपका तार मिल गया था। उम्मीद है, आपको मेरा जवाब भी मिल गया होगा। आपने जो बयान[1] प्रकाशित करवाया है वह बेशक शुरूके मसविदेसे बेहतर है। लेकिन मुझे यह तो लग ही रहा है कि अगर आप उसे रोक लेते तो कहीं ज्यादा अच्छा रहता। लेकिन मैं इस बातको पूरी तरह समझता हूँ कि जब आपके अन्दरकी आवाज कुछ और कह रही थी तब आप वैसा नहीं कर सकते थे।

मैं इतने दिनोंतक अपने-आपको रोके रहा, पर लगा कि अब मुझे 'यंग इंडिया' में इसके बारेमें थोड़ा-कुछ लिखना ही चाहिए। अपने बयानकी एक नकल मैं आपको भेज रहा हूँ। अगर आप समझें कि प्रकाशित नहीं कराना चाहिए, तो एक तार भेजनेकी मेहरबानी कीजिए। यह खत आपको हदसे-हद सोमवारतक मिल जायेगा। अगर आप इस बयानकी ताईद न करनेका तार भेज देंगे तो मैं इसे रद कर दूंगा। अगर आपको मेरा खत मंगलवारसे पहले न मिल पाये, तो मेहरबानी करके अहमदाबादमें 'यंग इंडिया'के दफ्तरके मैनेजरके नाम सीधे तार भेज दीजिए कि टिप्पणी प्रकाशित न की जाये। मैं मैनेजरको हिदायत दे रहा हूँ कि टिप्पणीका छपना रोकनेके लिए आपका तार आने पर उसे रोक ले। मेरी अपनी राय[2] प्रकाशित करनेके बारेमें मुझे बस इतना ही कहना है।

यह टिप्पणी प्रकाशित हो या न हो, मेरा तो ख्याल यही है कि इसमें जो रास्ता सुझाया गया है, आपके लिए सिर्फ वही एक मुनासिब रास्ता है। हाँ, अगर आप बहुत गहराईसे महसूस करते हों कि कौंसिलोंमें जानेवालों को वहाँ ओहदे सँभालने ही चाहिए और दूसरी बातोंमें भी उनको उसी नीतिपर चलना चाहिए जो आपने अपने बयानमें बतलाई है और अगर आपको लगता हो कि अध्यक्ष-पद स्वीकार करनेपर आपको अपनी उसी नीतिपर मुस्तैदीसे अमल करना चाहिए, तो फिर बात ही दूसरी है। मैं महसूस करता हूँ कि अगर आपको अपनी नीतिका खुलकर प्रचार करना है तो आप एक गैरजानिबदाराना रुख अख्तियार नहीं कर सकते।

तीन-चार दिन पहले मोतीलालजीका एक लम्बा तार[3] मिला था। तब मैंने आपके बयानको देखते हुए सोचा था कि इस मुश्किलका सबसे अच्छा हल शायद यही

१. डॉ० अन्सारीके २२ अगस्तके पत्रके अनुसार उन्होंने कौंसिलोंके सदस्योंको एक होकर काम करने और इस बातको साफ-साफ स्वीकार करके चलनेकी सलाह दी थी कि वे कौंसिलोंमें असहयोग नहीं, बल्कि सहयोग कर रहे हैं। (एस० एन० १२८७२)

२. यह प्रकाशित नहीं की गई।

३. देखिए "तार : मोतीलाल नेहरूको", २४-८-१९२७।

रहेगा कि आप खुद अपनी तरफसे अध्यक्ष-पदसे छुट्टी ले लें। लेकिन अब मुझे लगता है कि हिन्दू-मुसलमान एकताकी जरूरतके बारेमें आपके खयालातसे यह बात मेल नहीं खाती; और आप ओहदेसे अलग न हों। लेकिन मेरी इतनी ही पक्की राय यह भी है कि अगर आप एकता पैदा करनेके लिए जी-जानसे कोशिश करना चाहते हैं तो आपको कौंसिलोंकी इस राजनीतिको बिलकुल भूल जाना चाहिए, बिलकुल तटस्थताका रुख अख्तियार कर लेना चाहिए और एक तटस्थ सभापतिकी तरह कांग्रेस, अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी और कार्यकारिणीकी कार्यवाही चलानी चाहिए, और राजनीतिक कार्यक्रम बनाने या उसे कोई शक्ल देनेकी कोई कोशिश नहीं करनी चाहिए। अगर आप मेरा सुझाव मंजूर करें तो मेरे खयालसे आपको एक छोटा-सा बयान जारी करना पड़ेगा, जिसमें आप यह साफ बता देंगे कि यद्यपि आप अपने बयानमें रखी गई नीतिपर अब भी दृढ़ है, लेकिन आप अपनी उस रायको कांग्रेसपर थोपनेकी कोई कोशिश नहीं करेंगे और अपने कामका दायरा हिन्दू-मुसलमान एकता बढ़ानेतक ही महदूद रखेंगे।

हृदयसे आपका,

डॉ० मु० अ० अन्सारी,
१, दरियागंज, दिल्ली

अंग्रेजी (एस० एन० १२८७४) की फोटो-नकलसे।

३७३. पत्र : मोतीलाल नेहरूको

कुमार पार्क, बंगलोर
२६ अगस्त, १९२७

प्रिय मोतीलालजी,

आपका पत्र मिल गया था और तार भी। पत्रका उत्तर[1] मैंने कृष्णगिरिसे भेज दिया था। आशा है, वह यथासमय मिल गया होगा। मैसूरके भीतरी इलाकोंमें रहने और लगातार दौरोंके कारण पत्रोंके उत्तर देनेमें मैं काफी पिछड़ गया हूँ।

अब मैंने तय कर ही लिया है कि डॉ० अन्सारीके बयानके बारेमें एक छोटी-सी टिप्पणी प्रकाशित करा दूँ। मैंने उनके चुनावकी जोरदार वकालत की थी, इसलिए मैंने सोचा कि इस मौकेपर मुझे बिलकुल चुप्पी नहीं साधनी चाहिए। मैं हवाका रुख देखता रहूँगा और जब-कभी मुझे लगेगा कि मेरे कुछ करने या लिखनेसे कुछ बननेवाला है, मैं करने या लिखनेमें हिचकिचाऊँगा नहीं।

मैं अभीतक जवाहरलालके निर्वाचनके पक्षमें नहीं हूँ; मेरा मतलब डॉ० अन्सारीके पद छोड़ देनेके बादके निर्वाचनसे है। बहुत सम्भव है कि वे आपके और मेरे सुझावे

१. देखिए "तार : मोतीलाल नेहरूको", २४-८-१९२७।

हुए दृष्टिकोणको मान लें और मात्र एक निष्पक्ष सभापति रहना स्वीकार कर लें। तब फिर करनेको अधिक-कुछ रह ही नहीं जायेगा। लेकिन यदि नया चुनाव करानेकी जरूरत पड़ी ही, तो फिर मैं देखूँगा कि घटना-क्रम कैसा चलता है और आपको 'रायटर' के तार द्वारा परिणामकी सूचना मिल जायेगी। फिर भी, आप मुझे अपना लन्दनका पता लिख भेजिए जिससे कि मैं जरूरत पड़नेपर पत्र या तार भेज सकूँ। लेकिन मैं चाहता हूँ कि आप बिलकुल बेफिक्रीसे विदेश-यात्रा पर जायें। वैसे मैं जानता हूँ कि मुझे याद दिलानेकी कतई जरूरत नहीं, आप खुद भी बेफिक्र मनसे ही यात्रा करेंगे। इतना स्पष्ट है कि स्थिति अभी इतनी जड़ नहीं हुई है कि कोई परिवर्तन न किया जा सके।

वर्षका लगभग सारा-का-सारा शेष समय मुझे दक्षिण भारतमें ही बिताना पड़ेगा। सितम्बर तकके अपने कार्यक्रमकी एक प्रति मैं आपको साथमें भेज रहा हूँ। परन्तु साबरमतीके पतेपर पत्र-व्यवहार करना शायद ज्यादा ठीक रहेगा, क्योंकि वहाँसे तार और पत्र भी शीघ्रतासे मेरे पतेपर भेज दिये जाते हैं।

आशा है, यूरोपमें आपका समय अच्छा गुजरेगा और आप जवाहरलालके साथ कांग्रेस-सप्ताहके पहले, ठीक समयसे स्वदेश लौट आयेंगे। कृपया इन्दुसे पूछिये कि उसे भारतके अपने बूढ़े मित्रोंकी याद कभी आती है या नही? और उसे अपने उस बूढ़े मित्रकी याद है या नही जो अक्सर आनन्द भवन आया करता था और बकरीके दूधके अलावा कुछ नही पीता था और बच्चोंके लिए भी कुछ छोड़नेकी परवाह न करके सारेके-सारे बढ़िया-बढ़िया फल खुद चट कर जाता था।

हृदयसे आपका,

पण्डित मोतीलाल नेहरू
इलाहाबाद

[पुनश्च :]

'यंग इंडिया' के लिए लिखी अपनी टिप्पणीकी एक प्रति संलग्न कर रहा हूँ। इसकी एक प्रति मैंने अनुमोदनके लिए डॉ॰ अन्सारीके पास भी भेजी है।

मो॰ क॰ गां॰

अंग्रेजी (एस॰ एन॰ १२८७५) की फोटो-नकलसे।

२७४. वर्णसंकर सन्तानकी समस्या

फ्रेंच आफ्रिकाके मबुकी शहरसे एक भाईका दुःखद पत्र मिला है। उसका सार यह है:

> इस मुल्कमें वर्णसंकर बच्चे बहुत हैं। इन बच्चोंकी उत्पत्तिमें हिन्दू-मुसलमान सबका हाथ है। वे व्यापारके लिए यहाँ आते हैं और इच्छानुसार किसी भी हबशी औरतको लेकर रहने लगते हैं। उससे जो सन्तान होती है, उसके पालनकी वे कोई परवाह नहीं करते। वे तो जैसे-तैसे बड़े होते हैं। ऐसे सम्बन्ध स्थापित करनेवाले ये व्यापारी जब स्वदेश लौटते हैं तो वे इन गरीब औरतों और उनके बच्चोंको भूल जाते हैं। यहाँतक कि उनके भरण-पोषणके लिए भी वे कुछ नहीं छोड़ जाते। और जब उनके भरण-पोषणके लिए मेरे जैसा कोई आदमी कुछ करता है, ऐसी कोई संस्था खड़ी करनेकी इच्छा करता है तो उसकी कोई मदद नहीं करता। क्या आप बतायेंगे कि ऐसी वर्णसंकर सन्तानके प्रति मेरा और दूसरे हिन्दुस्तानियोंका क्या कर्त्तव्य है? क्या आप ऐसा मानते हैं कि पापसे उत्पन्न सन्तानका पालन-पोषण करनेसे पापका ही पोषण होता है और इसलिए उनके प्रति हमारा कोई कर्त्तव्य नहीं है? यदि आप ऐसा मानते हैं तो इसके साथ-साथ इस बातपर भी जरूर विचार करें कि ऐसी सन्तानका कोई-न-कोई तो बेली बनेगा ही। ईश्वर उनका एकदम नाश तो नहीं होने देगा और यदि ऐसा होगा तो कालान्तरमें क्या यही लोग हमारे दुश्मन नहीं बन जायेंगे? और यदि वे आगे चलकर हमारे दुश्मन बन जाते हैं तो क्या उन्हें कोई दोष दिया जा सकेगा? अथवा क्या यह नहीं कहा जा सकता कि ऐसी सन्तान पैदा करनेवाले और उन्हें रास्तेमें भूखों भटकनेको छोड़नेवाले, अपने और अपनी जातिके नाशके हथियार गढ़ रहे हैं?

प्रस्तुत पत्र-लेखकने जिस स्थितिका वर्णन किया है वह हालत मैंने खुद डेलागोआ बे आदि शहरोंमें देखी है। जितनी देखी है उससे अधिक मित्रों और मुवक्किलोंसे सुनी है। निःसन्देह यह स्थिति दुःखदायक है। मुसलमान भाई ऐसी स्थितिमें दया-धर्मका पालन करते हैं। जबकि धर्मके नामपर या धर्मके बहाने हिन्दू बहुत कठोर बन जाते हैं। परजातकी स्त्रीके साथ सम्बन्ध जोड़नेमें मुसलमान अधर्म मानते नहीं जान पड़ते। हिन्दू ऐसे सम्बन्ध अधर्म मानते हुए जोड़ते हैं और यद्यपि इन स्त्रियोंसे वे विषय-भोग करते हुए नहीं डरते, मगर उसके परिणामकी जवाबदारी उठानेसे डरते हैं, अपने ही बच्चोंके स्पर्शमें दोष मानते हैं। अतः अन्तमें कोई तो उन्हें मुसलमानोंको दे देता है और कोई ईसाइयोंको सौंप देता है और भला हुआ तो किसीको न सौंपकर, एक पैसा भी दिये बिना, यों ही भाग आता है। आफ्रिकाकी हबशी जाति भोली और ज्ञानहीन है, इसलिए उसे अपने हकका कोई खयाल नहीं होता।

ऐसी स्थिति हमेशा तो रहेगी नहीं। उन्हींमें से कोई पढ़ा-लिखा जरूर निकलेगा और वह वैरभावसे लड़ेगा, गरीब औरतोंको उनके हकका भान करायेगा, उनकी सन्तान द्वारा न्यायपूर्ण या अन्यायपूर्ण झगड़ा करायेगा और उस झगड़ेमें मैसको नवामेन वाली दुनियाकी रीतिके अनुसार नीति-अनीतिका भेद न करते हुए भी संसार-भरकी सहानुभूति पा लेगा।

इस स्थितिसे निकलनेके सीधे उपाय तो बहुत-से हैं। अच्छा तो यह होगा कि जो व्यापारी संयमका पालन न कर सके वह अपनी स्त्रीको साथ लेकर जाये। यदि अकेला जाये, और किसी हबशी स्त्रीके साथ सम्बन्ध स्थापित करे तो विवेकका पालन करे, उस स्त्रीके साथ प्रेमपूर्ण बरताव करे, और उससे जो सन्तान उत्पन्न हो उसकी रक्षा करनेके कर्त्तव्यको स्वीकार करे। उसे यह समझना चाहिए कि कानूनके अनुसार तो वह उस गरीब औरत और उसके बच्चोंका पालन-पोषण करनेको बँधा हुआ है। पर विषयी और निर्लज्ज आदमीको धर्माधर्म या भले-बुरेका विचार नहीं रहता। विषय-भोगके नशेमें वह पागल-सा हो जाता है, इसलिए ऐसे लेख वह क्यों पढ़ेगा? और यदि पढ़ेगा तो उनपर ध्यान ही नहीं देगा। इसलिए प्रस्तुत पत्र-लेखक जैसे समाज-सुधारकको ही धर्मका विचार करना पड़ेगा। मुझे भय है कि जबतक समाजमें पापी आदमी बने रहेंगे तबतक समाजको उनके पापका बोझ उसी प्रकार उठाना पड़ेगा, जैसे कि पुण्यशाली लोगोंके पुण्यका लाभ वह सुखसे उठाया करता है। कोई ऐसा आदमी तो है ही नहीं जो सर्वथा पापरहित हो। हम सब कुल मिलाकर एक पापियोंका दल हैं। पर जो आचारकी एक विशेष मर्यादाके भीतर चलते हैं, उनके पापको समाज अनदेखा करके उन्हें पुण्यात्मा गिनता है और जो उस मर्यादाका उल्लंघन करते हैं, उन्हें पापी गिना जाता है। इस तरह पापी और पुण्यात्माकी सामाजिक व्याख्या व्यवहारके अनुसार चलती है। ईश्वरके दरबारमें तो हम सभी पापी गिने जानेवाले हैं और पापके परिमाणके अनुसार हमें सजा मिलेगी।

समाजकी ऐसी दयनीय स्थिति होनेके कारण वर्णसंकर सन्तानका बोझ तो उसे उठाना ही पड़ेगा। अतः आफ्रिकामें रहनेवाले समाज-सुधारकोंके सामने दो रास्ते हैं: एक तो अदालतके जरिये और दूसरा अदालतके बाहरका। उन्हें दोनों रास्ते अपनानेका अधिकार है। बाहरका मार्ग यह है कि वे अन्य सुधारकोंको इकट्ठा कर, धर्मका झगड़ा उठाये बिना, ऐसे बच्चोंके पालन-पोषणके लिए एक संस्था खड़ी करें। बच्चेका बाप अगर उसे अपने पास रखकर अपने धर्मानुसार पालना चाहे तो बच्चेपर किया गया खर्च उससे वसूल कर बच्चा उसे सौंप देना चाहिए। जिस-जिसके माँ-बापका पता चल जाये, उनसे उनके बच्चेके पालन-पोषणके लिए धन देनेका अनुरोध करना चाहिए और पैसे देनेकी शक्ति होते हुए भी अगर वे कुछ न दें तो उनपर कानूनके मुताबिक मुकदमा चलाना चाहिए। साथ-साथ नैतिक सुधारके लिए भी प्रयत्न करना चाहिए। यदि हबशी औरतके साथ रहनेवाले व्यक्तिका अपने देशमें विवाह हो चुका हो तो उनसे अपनी स्त्रीको बुला लेनेकी विनती करनी चाहिए। पर ये भाई लिखते हैं:

> हमारे भाई ऐसी संस्था बनाना ही नहीं चाहते। मेरी समझमें तो इस मुल्कका तीन-चौथाई धन अनीतिकी ही कमाई है, और इसलिए वह पुण्यके काममें नहीं लगाया जाता। यह धन या तो शराबमें, या डॉक्टरके बिलमें, या सरकारी टैक्सोंमें या इन तीनोंमें निकल जाता है।

अगर हूबहू यही सूरत हो तो भी मैं इस भाईको धीरज और शान्तिपूर्वक काम करनेकी सलाह देता हूँ।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २८-८-१९२७

३७५. दीक्षा कौन ले?

जावरा रियासतमें गुलाबबाई नामक ओसवाल जातिकी एक विवाहित महिलाने हिन्दीमें एक पत्रिका छपवाकर बँटवायी है। उससे मालूम पड़ता है कि उसके पतिने, जो छोटी उम्रका है, दीक्षा लेनेके इरादेसे घर छोड़ा है और अपनी सोलह बरसकी स्त्रीको इस तरहका पत्र लिखा है:

> करीब दो सालसे मेरा दीक्षा लेनेका विचार है। मैं कुटुम्बकी आज्ञा बराबर माँग रहा हूँ। यहाँ आनेके बाद भी पांच-छह पत्र लिखे हैं, मगर इजाजत नहीं मिली। अब मैंने खुद ही दीक्षा लेनेका विचार किया है।

इस व्यक्तिकी साठ वर्षकी बूढ़ी माँ है। जिन सज्जनने इस बारेमें मेरे पास पत्रिका भेजी थी, उनसे और विवरण माँगनेपर नीचे लिखी बातें मालूम हुईं। वे लिखते हैं:

> गुलाब मामूली पढ़ी-लिखी है, हिन्दी लिखना-पढ़ना जानती है। उसने अपने जो भाव बताये उनके अनुसार उसके एक मित्रने पत्रिका लिख दी और उसने छपवा ली। वह अपने भाईके साथ जाकर खुद ही छपवा लाई। पति साधारण हिन्दी लिखना-पढ़ना जानता है। कुटुम्बकी हालत नाजुक है। अभीतक उसे किसीने दीक्षा नहीं दी है।

मुझे उम्मीद है कि इस नौजवानको कोई दीक्षा नहीं देगा। इतना ही नहीं, वह खुद अपना धर्म समझ जायेगा छोटी उम्रमें बुद्ध या शंकराचार्य जैसे ज्ञानी दीक्षा ले लें यह शोभाकी बात हो सकती है पर हरएक नौजवान ऐसे महापुरुषोंकी नकल करने लग जाये तो यह धर्मके लिए और अपने लिए शोभाके बजाय शर्मकी बात होगी। आजकल ली जानेवाली दीक्षामें कायरताके सिवाय और कोई बात देखनेमें नहीं आती और इसी कारण साधु भी तेजस्वी होनेके बजाय ज्यादातर हम-जैसे ही दीन और अज्ञानी होते हैं। दीक्षा लेना बहादुरीका काम है और उसके पीछे पिछले जन्मके बलवान संस्कार या वर्तमान जीवनमें मिला हुआ अनुभव-ज्ञान होना चाहिए। बूढ़ी

माँ और जवान स्त्रीका कुछ भी विचार किये बिना दीक्षा लेनेवालेमें उतना अधिक वैराग्य होना चाहिए कि आसपासका समाज उसे समझे बिना न रहे। ऐसी कोई भी शक्ति इस दीक्षा लेनेवाले नौजवानमें नहीं दीखती।

लेकिन दीक्षा लेनेके लिए उत्सुक नौजवान दीक्षाका अधिक विस्तृत अर्थ क्यों नहीं करते? अभी तो गृहस्थधर्म पालनेवाले भी बहुत थोड़े देखे जाते हैं। घर बैठे दीक्षा-जैसी जिन्दगी बितानेमें कुछ कम साहस नहीं चाहिए, और सच्ची कसौटी तो उसीमें होती है। बहुतसे दीक्षित लोगोंको मैं जानता हूँ, और वे बेचारे सरलतासे मंजूर करते हैं कि न उन्होंने प्रमादको जीता है और न पाँच इन्द्रियोंको। दीक्षा लेकर उन्होंने सिर्फ अपने खाने-पहननेकी सहूलियत बढ़ाई है। सन्तोषके साथ, पवित्र रहकर, सचाईकी रक्षा करते हुए गरीबीमें घरका काम चलाना पराई स्त्रीको माँ-बहन समझना, अपनी स्त्रीके साथ भी मर्यादामें भोग भोगना, शास्त्रों आदिका अध्ययन करना और भरसक देशकी सेवा करना कोई छोटी-मोटी दीक्षा नहीं है। दीक्षाका अर्थ है आत्मसमर्पण। आत्मसमर्पण बाहरी ढोंगसे नहीं होता। यह मनकी चीज है और इस सिलसिलेमें कुछ बाहरी आचार भी जरूरी हो जाता है, लेकिन वह शोभा तभी पाता है जब वह भीतरी शुद्धि और भीतरी त्यागकी सच्ची निशानी हो। उसके बिना वह सिर्फ बेजान चीज है।

[गुजरातीसे]
नवजीवन, २८-८-१९२७

३७६. पत्र : मणिलाल और सुशीला गांधीको

बंगलोर
२८ अगस्त, १९२७

चि० मणिलाल और सुशीला,

आज स्वयं लिखनेके लिए मेरे पास समय नहीं है। भोजन करते समय ही मैं यह पत्र लिखवा रहा हूँ। तुम्हें तार भेजनेके पश्चात् मैंने एक भी डाक नहीं छोड़ी। श्री एन्ड्रयूज यहीं हैं। अगली डाकसे अधिक लिखूँगा।

सुशीलाका स्वास्थ्य अवश्य सुधरना चाहिए।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ४७३८) की फोटो-नकलसे।

३७७. भाषण : बंगलोरमें स्वयंसेवकोंके समक्ष[1]

२८ अगस्त, १९२७

प्रार्थनाके बाद प्रत्येक स्वयंसेवकने बारी-बारीसे आकर गांधीजीके हाथोंसे 'भगवद्-गीता'की उनके द्वारा हस्ताक्षरित प्रतियाँ लीं। . . . गांधीजीकी मंगलवाणीका कन्नड़में वाक्यशः अनुवाद प्रस्तुत करते हुए गंगाधररावकी वाणी भावातिरेकसे काँप-काँप जाती थी।

संसारका सारा काम संयोगसे नहीं चलता। हम लोग ठीक इसी समय [चार बजे सुबह] और आज ही के दिन यहाँ क्यों मिले; और फिर संसारमें इतने सारे ग्रंथ हैं पर एक 'गीता' ही क्यों आपको भेंट देनेके लिए चुनी गई? और फिर इस मौकेपर हमने 'गीता' के तीसरे अध्यायका ही पाठ क्यों किया? तीसरा अध्याय हमने आपके खयालसे नहीं चुना। आजके दिन हम तीसरे अध्यायका पाठ करते ही हैं। परन्तु किसी सूत्रधारने इन सब चीजोंको एक ही सूत्रमें पिरो दिया है, और हम देखेंगे कि ये सब चीजें एक-दूसरेके बिलकुल अनुकूल ही रही हैं। सच्चा सेवक सूर्योदयसे पहले उठता है और नित्य-कर्मसे निबटकर, ईश-प्रार्थनासे अपना दिन शुरू करता है। आप ऐसा मानकर चलिए कि आपका सेवाका जीवन इसी शुभ घड़ीसे आरम्भ हुआ है। आपके द्वारा मेरे प्रति दिखाई अनन्य श्रद्धा तो, आज आप सेवाका जो उन्नततर जीवन आरम्भ कर रहे हैं, उसका निमित्त-मात्र थी। और 'भगवद्गीता' आपके लिए आचरणके नियम प्रस्तुत करती है। जब भी आप किसी कठिनाई, संशय या निराशामें पड़ें या संतप्त हो उठें तब आप इस धर्म-संहिता और सार-ग्रंथका सहारा ले सकते हैं। और आपके लिए इस तीसरे अध्यायसे अधिक प्रेरणास्पद और हो भी क्या सकता है, जिसका पाठ हम लोगोंने आज सुबह किया है? इसमें कहा गया है कि ईश्वरने मनुष्यकी रचना की और साथ ही उसे यज्ञका कर्त्तव्य भी सौंप दिया। यह शब्द जिस धातुसे बना है उसका अर्थ होता है शुद्ध करनेवाला। भगवान्ने यह भी कहा है कि यज्ञसे ही तुम समृद्धिको प्राप्त होगे।[2] इस प्रकार यज्ञका अर्थ है सेवा, और 'गीता' में कहा गया है कि जो सिर्फ अपने लिए कर्म करता है, वह चोरी करता है। 'गीता' में कहा है कि 'यज्ञके द्वारा तुम देवताओंको प्रसन्न करो और वे प्रसन्न होनेपर तुम्हें तुम्हारे कर्मका समुचित फल देंगे'।[3] थोड़ा और गहरेमें उतरिए तो यज्ञका अर्थ है — दूसरोंका जीवन सुरक्षित बनानेके लिए अपनी बलि देना। दूसरे लोग सुखसे रह सकें, इसके लिए हमें कष्ट भोगनेको तैयार रहना चाहिए।

१. महादेव देसाईके लेख "विदाई" से।

२. अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक्। ३-१०

३. देवान् भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः। ३-११

सेवा और प्रेमकी उच्चतम अवस्था वही है जिसमें मनुष्य अपने महानतमोंकी खातिर अपने जीवनकी बलि चढ़ा देता है। इस प्रकार प्रेमकी यह उच्चतम अवस्था अहिंसा ही है, और यही सेवाका उच्चतम रूप है। जीवन और मृत्युके बीच सतत संघर्ष चलता रहता है, परन्तु जीवन और मृत्युका सार अस्तित्वहीनताकी अवस्था नहीं, बल्कि जीवन ही है। इसलिए कि जीवन तो मृत्युके बावजूद कायम रहता है। अहिंसाके सर्वशक्तिमान् होनेका यह एक प्रत्यक्ष प्रमाण है। और अहिंसाकी यह विजय यज्ञके द्वारा ही सम्भव है। इस प्रकार यज्ञ और सेवाके नियमसे बड़ा और कोई नियम नहीं है। यही नियम स्वयंसेवकके लिए है। आप जिनसे सबसे अधिक प्रेम करते हैं, उसके लिए, यहाँतक कि मेरी खातिर भी आपको किसी दूसरेसे घृणा करनेकी जरूरत नहीं और यदि आप उसकी खातिर किसीसे घृणा करते हैं तो फिर आपका प्रेम, प्रेम नहीं रह जायेगा; आपकी सेवा, सेवा नहीं रह जायेगी। वह तो एक मोह-मात्र होगा। यदि आपने मोहके कारण मेरी सेवा की है तो वह सेवा निष्फल होगी। पर मैं जानता हूँ कि आपने मोहके कारण मेरी सेवा नहीं की है। आप मुझे उसी रूपमें जानते हैं, जो आपने सुन रखा है। आपने मुझे पहले कहीं देखा-तक नहीं था, और पिछले चार महीनोंमें आपने कभी मेरे पास आकर मुझसे धन्यवादके दो शब्द भी नहीं सुने। आपने जो सेवा की, वह स्वार्थ-रहित और सच्चे मनसे की गई सेवा है। मैं चाहता हूँ कि आपकी यह सेवा आपको उनकी सेवा करनेकी प्रेरणा दे जिनकी सेवामें मैं स्वयं लगा हूँ, अर्थात् यह आपको दरिद्रनारायण-की सेवाकी प्रेरणा दे। और आज हमने जिस अध्यायका पाठ किया है, उसमें चूंकि मुझे स्पष्ट संकेत मिला है कि भारतमें एक चरखा ही है जो सार्वजनीन सेवाका सर्वोत्तम माध्यम बन सकता है, इसलिए मैंने देशके सामने चरखा प्रस्तुत किया है। जब आपको चरखेपर अपना विश्वास शिथिल पड़ता दिखाई दे, आप 'गीता'का पाठ करके उसमें फिरसे दृढ़ता ला सकते हैं। मैं आपमें से किसीको भी व्यक्तिगत तौरपर नहीं जानता, पर आपने जो सेवा की है, उसे मैं भली-भाँति जानता हूँ। उसका फल आपको देना मेरा काम नहीं, वह तो मेरी शक्तिसे बाहरकी बात है और यही ठीक भी है। फल तो ईश्वर ही दे सकता है और ईश्वरका विधान है कि निःस्वार्थ भावसे की गई सच्ची सेवा सदा फलवती होती है।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, ८-९-१९२७

३७८. भाषण : बंगलोरमें व्यायामशालाके उद्घाटनके अवसरपर

२८ अगस्त, १९२७

मित्रो,

आपने अपने यहाँकी व्यायामशालाका[1] उद्घाटन करनेका अवसर मुझको दिया। मैं इसके लिए आपका आभारी हूँ। मैं उन सज्जनका भी आभार मानता हूँ जिन्होंने आपको यह व्यायामशाला दान की है। उन्होंने अपने पुत्रकी स्मृति ताजा बनाये रखनेकी अपनी इच्छा व्यक्त करनेका यह बहुत ही ठीक साधन चुना है। यह प्रकट करता है कि वे चाहते हैं कि देशके युवक बलशाली और स्वस्थ बनें। मैं जानता हूँ कि इस प्रदेशमें, जहाँ सर एम० विश्वेश्वरैया-जैसे इंजीनियर मातृभूमिकी सेवाके लिए आगे आये हैं वहाँ इस व्यायामशालाके निर्माणके लिए श्री वेंकट सुब्बाराव-जैसे इंजीनियर भी अवश्य मिल सकेंगे। आप भली-भाँति जानते हैं कि जिस प्रकार बुद्धिको अभ्यास और विकासकी अपेक्षा रहती है, उसी प्रकार शरीरको भी व्यायामकी अपेक्षा रहती है। परन्तु इस तथ्यको सचमुच चन्द लोगोंने ही समझा है। अपने देशमें अनेक उद्भट बुद्धिजीवी जीर्ण-शीर्ण शरीर लिये घूमते दिखाई पड़ते हैं। मैं नहीं समझता कि शिक्षाकी यह वर्तमान पद्धति ठीक है। शरीरकी उपेक्षा करना उचित नहीं है। मुझे यह देखकर बड़ा हर्ष हुआ कि अपने यहाँके युवकोंको शारीरिक व्यायामकी सुविधा देनेकी आवश्यकताको आप समझते हैं। मैंने खादीका काम करनेवाले आपके यहाँके युवकोंको देखा है और मुझे खुशी है कि वे शारीरिक व्यायामका महत्त्व समझते हैं। मुझे इस बातकी भी खुशी है कि आप जिस प्रकार पाठशालाओंके बाहर अपनी बुद्धिका उपयोग करते रहते हैं, उसी प्रकार आप व्यायामशालाके बाहरके कामोंमें भी अपने शरीरको पर्याप्त व्यायामसे पुष्ट बनाते रहेंगे। आशा है कि आपमें से प्रत्येक शिक्षक अपने घरमें भी इसकी ओर विशेष ध्यान देंगे। आशा है कि आप बालिकाओंके लिए शारीरिक व्यायामकी सुविधाएँ जुटानेकी ओर भी विशेष ध्यान देते रहेंगे। अन्तमें, मैं आपको याद दिलाना चाहता हूँ कि रोज बड़े सुबह टहलना भी एक अच्छा व्यायाम है जिसे आप अपना सकते हैं।

मैं इस व्यायामशालाके उद्घाटनके समय आपको एक बात और याद दिलाना चाहता हूँ। शरीरको विकसित करनेके साथ-ही-साथ आत्मिक विकास भी उतना ही आवश्यक है। आप जानते हैं कि इस व्यायामशालामें आपने संरक्षक देवताके आसन: पर श्री हनुमानको प्रस्थापित किया है और उनके मार्ग-दर्शनमें आप अपना शारीरिक विकास करेंगे। परन्तु श्री हनुमानका शारीरिक बल उतना महत्त्व नहीं रखता जितना

१. नेशनल हाईस्कूलकी श्री कृष्णस्वामी व्यायामशाला।

कि उनका आत्मिक बल, जो उन्होंने अपने ब्रह्मचर्यके बलपर प्राप्त किया। आशा है कि आप ब्रह्मचर्यसे पैदा होनेवाले इस अपार आत्मिक बलको भूलेंगे नहीं। आप भी यह व्रत लीजिए। ईश्वर आपकी मातृभूमिकी आत्मा और शरीर दोनोंसे पुष्ट एवं समृद्ध सतान बननेकी शक्ति दे।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, २९-८-१९२७

३७९. भाषण : बंगलोरके कपड़ा मिल-मजदूर संघके[1] समक्ष

२८ अगस्त, १९२७

मित्रो,

आपने मुझे मानपत्र दिये हैं और एक थैली भी भेंट की है। इनके लिए मैं आपका आभारी हूँ। मुझे आपकी कठिनाइयों, खासकर आज इस सभामें एकत्र होनेके सिलसिलेमें आई कठिनाइयोंकी जानकारी है। मुझे दुःख है कि आपके संघके कई सदस्य सभामें नहीं आ सके हैं। परन्तु मैं यह भी जानता हूँ कि यद्यपि आपके अनेक सदस्य सभामें नहीं आ सके पर आपने उन सभीको मेरे कामके और मेरे यहाँ आपके बीच आनेके उद्देश्यके बारेमें बतला ही दिया होगा। अपने मानपत्रमें आपने कहा है कि आप लोगोंने शराबखोरीकी लत छोड़ दी है। इसका मतलब है कि आपने अपनी जिन्दगीकी अहमियतको, अपने परिवार अपने देश और अपने कर्त्तव्य-से आपका जो सम्बन्ध है, उसके महत्त्वको समझ लिया है। इस सबसे मुझे बड़ा सन्तोष हुआ। पर मैं साथ ही आपसे यह भी कहना चाहता हूँ कि आप जुए-जैसी दूसरी बुरी आदतोंको भी छोड़ दीजिए। यह आप तभी कर सकते हैं जब आप अपने समयका सदुपयोग अपनी स्थितिमें सुधार लाने और अपने-आपको शिक्षित बनाने-के लिए करें। कारण यह कि आपको मिल-मजदूरोंके रूपमें अपने अधिकारों और अपने कर्त्तव्योंको समझना चाहिए और यह तभी हो सकता है जब आप अपनेको शिक्षित बनायें। जिस प्रकार मजदूरोंकी हैसियतसे आपको बराबर अपने भविष्य और अपनी महत्त्वाकांक्षाओंका खयाल बना रहता है, उसी प्रकार आप मेरी इन बातको भी सदा याद रखिए। इसके लिए आपको अच्छी आदतें डालनी चाहिए। आपको तड़के उठकर ईश्वरसे प्रार्थना करनी चाहिए कि वह आपको सामर्थ्य दे। ईश्वरका यह वरदान पाना बहुत जरूरी है और बुरी आदतोंवाले लोगोंको ऐसा वरदान नहीं मिल सकता। आपने मुझे एक थैली भेंट की है। मैं इसका अर्थ यह लगाता हूँ कि आप महसूस करते हैं कि देशमें आपसे भी कहीं गरीब अनेकानेक लोग मौजूद हैं। यदि यह सच है तो मेरा आपसे इतना ही अनुरोध है कि अपने इन अधिक गरीब भाइयों

१. बिन्नी मिल्सके मजदूरोंका।

और बहनों द्वारा काते और बुने वस्त्र खरीदकर उनकी सहायता कीजिए। आप खादी पहनकर उनकी वास्तविक सहायता कर सकते हैं। और अगर आप खुद ही कताई करें और अपने सगे-सम्बन्धियोंसे और अधिक कतवायें तो उनको और भी ज्यादा सहायता मिल सकती है। मैं आपको बता दूँ कि हमारे अहमदाबादके मजदूर ऐसा कर रहे हैं और इस महान् कार्यमें हाथ बँटा रहे हैं। आप यह भी बखूबी समझ सकते हैं कि आप हड़तालके दिनोंमें कताईके जरिए अपनी जीविका कमानेसे अच्छा अन्य कोई काम नहीं पा सकते। यह एक बड़ी महत्त्वपूर्ण बात है और मेरा आग्रह है कि आप इसे सदा ध्यानमें रखें। यहाँसे जानेसे पहले, मैं आप मजदूरोंसे एक बात और कहूँगा। लोग अकसर कहा करते हैं कि मजदूरोंमें नैतिक भावना अधिक या प्रबल नहीं होती। मैं चाहता हूँ कि आपमें से प्रत्येक मजदूर अपनी पत्नीके अतिरिक्त अन्य सभी स्त्रियोंको अपनी माँ-बहनके समान ही माने। आपको नैतिक रूपसे दृढ़ बनना चाहिए, क्योंकि आपके भाग्यका दारोमदार इसी बातपर है। आशा है, आप इसे भूलेंगे नहीं। ईश्वर आपको विवेक और शक्ति दे।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, २९-८-१९२७

३८०. भाषण: आदि कर्नाटकोंके समक्ष

२८ अगस्त, १९२७

मजदूर संघके समारोहके समाप्त होते ही महात्माजी और उनके साथी मोटरमें बैठकर न्यू मैसूर रोडके रास्ते आदि कर्नाटकोंकी बस्तीमें पहुँचे। आदि कर्नाटक सैकड़ोंकी संख्यामें महात्माजीका स्वागत करनेके लिए इकट्ठे हुए थे। उनमें बहुत-सी महिलाएँ भी थीं। उन्होंने कुछ सीधे-सादे गीत गाकर अपने विशिष्ट अतिथियोंका मनोरंजन किया। इसके बाद महात्माजीने कहा:

आदि कर्नाटक भाइयो,

आज आप लोगोंसे मिलकर मैं बहुत खुश हूँ। और मैं आपसे दो बातें कहना चाहता हूँ। आपको मांस नहीं खाना चाहिए और न गोवध ही करना चाहिए। यह आपके धर्म, हिन्दू-धर्मके विरुद्ध है और आप सब लोग हिन्दू हैं। यदि आप मुझसे यह कहें कि चमड़ेका व्यापार हमें करना ही है तो मैं आपसे केवल मृत पशुओंके चमड़ेका इस्तेमाल करनेके लिए कहता हूँ। आप शराब न पियें, पाप न करें। खद्दर पहनिए और अपनी गरीब बहनों तथा भाइयोंकी रक्षा कीजिए। इस बातको सदा याद रखिए।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, २९-८-१९२७

३८१. भाषण: बंगलोरके नागरिकोंकी सभामें[1]

२८ अगस्त, १९२७

मित्रो,

मैं ज्यादा जोरसे नहीं बोल सकता। इसलिए मेरी विनती है कि आप खामोश रहें। मैं यहाँ पिछले पाँच महीनोंसे अपनी सेहत ठीक करनेके लिए रह रहा हूँ, पर मैं अभीतक इस लायक नहीं हुआ कि काफी जोरसे बोल सकूँ। मित्रो, आपने आज शाम मुझे अनेक मानपत्र दिये हैं और आप सब लोगोंने मेरी सहायता की है, इस सबके लिए मैं आपका आभारी हूँ। आपने तरह-तरहसे मेरे ऊपर कृपा की है। इसे मैं कभी नहीं भूल सकता। ईश्वरसे मेरी यही प्रार्थना है कि वह आप सबपर दया रखे। मित्रो, आप जानते ही हैं कि मैं आखिरकार एक सेवक हूँ; और मुझे ज्यादा कुछ नहीं कहना है। मुझे आप लोगोंसे जितना-कुछ कहना था, उसे मैंने आपके लिए लिख डाला है। मैंने यह भाषण लिखा तो अंग्रेजीमें ही है, पर मैं आपसे कहना चाहता हूँ कि एक-दूसरेसे अपनी बात कहनेके लिए इस भाषाका प्रयोग करना हमारे लिए कोई गौरवकी बात नहीं है। मैं तो चाहता था कि आप सब हिन्दी जानते होते; तब मैं यह भाषण हिन्दीमें ही लिखता। लेकिन भगवान् जाने ऐसा समय कब आयेगा।

मैसूरके श्रीमान् महाराजा और उनके अधिकारियोंसे लगाकर आम जनतातक ने मुझ नाचीजको अपने प्रेमसे इतना शराबोर कर दिया है और मुझे अपने प्रेम-बन्धनमें इतना कसकर जकड़ लिया है कि मुझे लगता है, यदि आज आपके भेंट किये हुए मानपत्रों और आपकी थैलियोंके लिए आपको धन्यवाद दूँ तो वह एक भावनाशून्य, लगभग अपमानजनक औपचारिकता-मात्र होगी। हालाँकि मैंने आपके बीच चार महीने रहकर काफी स्वास्थ्य-लाभ कर लिया है, लेकिन अब आपके प्रेम-बन्धनमें मैं इतना जकड़ गया हूँ कि यह सोचकर ही मेरा दिल बैठने लगता है कि अब आपसे विदा भी लेनी पड़ेगी। महाराजा साहब और उनकी प्रजा — आप लोगोंने — मेरी इतनी खातिर की है और मेरे ऊपर ऐसे समयमें दया दिखाई है जब मुझे इसकी बहुत ज्यादा जरूरत थी। इस ऋणको चुकानेका मेरे पास बस एक यही उपाय है कि मैं इस सुन्दर राज्यके कल्याणके सम्बन्धमें अपने अन्तरतमके उद्‌गार आपके सामने प्रकट कर दूँ।

आपने अनेक दिशाओंमें अद्‌भुत प्रगति दिखाई है। यह देखकर मेरी आत्माको बड़ा बल मिला है। मैंने बंगलोरमें और उन अनेक नगरोंमें भी, जहाँ जानेका सौभाग्य मुझे मिला है, आपकी शैक्षणिक संस्थाओंको देखा है। मैंने आदि कर्नाटकोंके लिए खास तौरपर बनाये गये संस्थानोंको भी देखा है। मैंने आपके नगरपालिका-

१. लाल बागमें।

प्रशासनके काम करनेका ढंग भी बहुत-कुछ देखा-समझा है। मैंने सर एम० विश्वेश्वरैयाके कौशल और उत्साहके दो महान् प्रतीक — कृष्णराज सागर और भद्रावती लोहा कारखाना — देखे तो मैं दंग रह गया। (हर्ष-ध्वनि) समयकी तंगीके कारण मैंने अपने प्रतिनिधिके जरिये आपके शिवसमुद्रम्के बारेमें भी जानकारी प्राप्त की। आर्थिक प्रगतिकी ओर आपके प्रयाणमें इन दो विशाल उपक्रमोंका निस्सन्देह बड़ा महत्त्व है। मैं जहाँ भी गया, मैंने अधिकारियों और जनताके बीच सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध पाये। आपके यहाँ हिन्दू-मुस्लिम झगड़े नहीं हैं। उत्तर भारतमें होनेवाली शरारतोंका आप-पर कोई असर नहीं हुआ है। मैंने आपके यहाँ और भी कई अच्छी बातें पाई हैं। इन सभी अच्छाइयोंके लिए मैं महाराजा साहब और आपको हार्दिक बधाई देता हूँ। मैं इसे अपना सौभाग्य मानता हूँ कि महाराजाके कल्याणकारी शासनकी रजत जयंती-समारोहके अवसरपर मैं यहाँ उपस्थित रह सका और आपकी खुशियोंमें शामिल हो सका तथा अपनी आँखोंसे देख सका कि आप अपने महाराजा साहबका कितना हार्दिक सम्मान करते हैं।

आपने जो प्रगति की है, वह अपने-आपमें काफी बड़ी तो है, पर इससे सन्तुष्ट हो बैठना गलत होगा। मुझे तो लगता है कि यह प्रगति मध्यवर्गके लोगोंतक ही सीमित है, इसमें किसानोंकी ओर समुचित ध्यान नहीं दिया गया है। शेष भारतकी तरह मैसूरकी रीढ़ भी किसान ही है। मैसूर में मुझे लोगोंने हर जगह खादीके कामके लिए थैलियाँ भेंट की हैं। यह बतलाता है कि मैसूरके नागरिक चरखे और खादीके सन्देशमें आस्था रखते हैं। मैसूरके विभिन्न स्थानोंका दौरा करनेसे मुझे पूरा यकीन हो गया है कि यदि सरकार और जनता दोनों मिलकर बाकायदा चरखेका काम करें तो मैसूरका भविष्य बड़ा उज्ज्वल है। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि भद्रावती लोहा कारखाने-जैसे विशाल उपक्रमोंको खड़ा करने और उनको चलानेमें जितने विशद संगठन और कुशल ज्ञानकी जरूरत है, चरखे और खादीके कामके लिए उससे कुछ कम विशद संगठन और कुशल ज्ञानकी आवश्यकता नहीं है। अन्तर है तो केवल मात्राका। और जिस प्रकार इन विशाल उपक्रमोंको चालू रखनेके लिए सतत सतर्कता और कौशलकी जरूरत होती है, उसी प्रकार यदि चरखा-आन्दोलनको भी सतत प्रयत्न और कुशल ज्ञान द्वारा निरन्तर पुष्ट नहीं किया जायेगा तो यह भी अस्त-व्यस्त हो जायेगा। इस विशाल आन्दोलनको कौशल और सतर्कताके अभावमें दम मत तोड़ने दीजिए। हाथ-कताईसे किसानोंकी आमदनीमें कमसे-कम बीस प्रतिशत वृद्धि हो जाती है और यह भी नाम-मात्रकी इतनी पूँजीसे जो मैसूरके कुछ विशाल उपक्रमोंपर होनेवाले खर्चकी तुलनामें कुछ है ही नहीं। यदि आप चरखेका चलन आम बना दें, तो उसका लाभ गरीब-से-गरीब किसानोंतक पहुँचेगा। इससे आपके और किसानोंके बीच एक अटूट सम्बन्ध कायम हो जायेगा। साथ ही सालमें निठल्ले-पनके कमसे-कम चार महीनोंके लिए किसानोंको एक इज्जतका धन्धा मिल जायेगा। मुझे यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि उद्योग और सहकारिता विभाग इस दिशामें प्रयत्नशील है। इसलिए कि चरखेसे बड़ा कोई उद्योग नहीं और जबतक चरखे और इससे

सम्बद्ध सभी कामोंका संगठन नहीं किया जाता तबतक सहकारिताके क्षेत्रमें किये गये सभी प्रयास अधूरे रहेंगे। और यदि आप अपने पहननेके लिए खादीका इस्तेमाल करेंगे तो उसका मतलब गांवमें बसनेवाले अपने भाइयोंके साथ सहकार करना ही होगा।

यह तो ठीक है कि हमारे देहातोंकी समृद्धिका केन्द्र चरखा ही है, पर उनके लिए और भी चीजें जरूरी हैं। यदि मवेशी हमारे लिए आर्थिक रूपमें बोझ बन जायें तो हमारा जीवन दूभर हो जायेगा। आपके महाराजा साहबने जयन्तीके अवसरपर भेंट किये आपके मानपत्रके उत्तरमें भाषण करते हुए इन मूक प्राणियोंकी खातिर आपसे बड़ा मार्मिक अनुरोध किया था। पता नहीं आप सभीका ध्यान उसपर गया या नहीं। मैं उनके सुन्दर शब्दोंको उद्धृत कर रहा हूँ:

> ईश्वरसे मेरी यही प्रार्थना है कि आपमें ऐसी ही भावना सृष्टिके मूक प्राणियोंके प्रति भी आये और हमें वह दिन देखनेको मिले जब पशुओंके साथ, विशेषकर जिन पशुओंको हम पवित्र मानते हैं उनके साथ लोग उनकी इस मजबूरीका खयाल करके कि वे अपनी भावनाएँ व्यक्त नहीं कर सकते, उत्तरोत्तर अधिकाधिक प्रेमपूर्ण व्यवहार करने लगें।

इस अनुच्छेदको पढ़कर मुझे लगता है कि यहाँ महाराजा साहबने सूक्ष्म रूपसे अपनी यह अभिलाषा भी व्यक्त की है कि उनकी मुसलमान, ईसाई और आदि-कर्नाटक प्रजा भी अपनी ही इच्छासे गाय और उसकी सन्ततिको नष्ट होनेसे बचाये। परन्तु मेरा विनम्र मत यह है कि गो-रक्षाकी इस समस्याके समाधानके लिए बहुत सोच-समझकर कठिन श्रम करनेकी जरूरत है। मुझे पूरा भरोसा है कि ऐसी परिस्थिति पैदा की जा सकती है कि गो-वध आर्थिक रूपमें घाटेका सौदा बन जाये। यह सम्भव है। आज तो गोवध निस्सन्देह एक मुनाफेका धन्धा है। यह एक ऐसी त्रुटि है, जिसका कोई भी गैर-सरकारी संस्था पूरी तरह परिमार्जन करनेमें सफल नहीं हो सकती। यह काम तो मुख्यतः सरकारको ही करना पड़ेगा। इसके लिए लोगोंको पशु-पालन, डेरी-फार्मिंग और सांडोंकी अच्छी नस्लें तैयार करना सिखाना पड़ेगा। मेरा विनम्र मत यह है कि देशके पशु-धनके संरक्षणकी पूरी समस्याके प्रति एक दृढ़ और सुविचारित नीति अपनाना राज्यका कर्त्तव्य है। अपने यहांके बच्चों और अपनी समस्त प्रजाको पौष्टिक और सस्ता दूध सुलभ कराना, मैं राज्यका एक प्राथमिक कर्तव्य मानता हूँ। ब्लैचफोर्डके इस कथनसे मैं बिलकुल सहमत हूँ कि दूधकी कीमत और किस्मका स्तर बिलकुल उसी तरह सुनिश्चित किया जाना चाहिए, जैसे कि डाक-टिकटोंका है। मैं समझता हूँ कि आपमें से अधिकांश लोग नहीं जानते कि मैसूरमें मरे हुए पशुओंकी खालका क्या होता है। यदि मेरी तरह आप भी उस समस्याका अध्ययन करें तो आपको ऐसी बहुत-सी चीजोंका पता चलेगा, जिनसे हृदयको दुःख पहुँचता है। क्या हमारे लिए यह शर्मकी बात नहीं कि हमारे जूते बनानेके लिए तो मवेशियोंको काटा जाये और, जैसा कि मुझे मालूम हुआ है, लगभग नौ करोड़ रुपयेकी मरे हुए मवेशियोंकी खाल देशसे बाहर भेजी जाये? यदि हम चाहें तो पैसा कमानेके धन्धेमें देशके हजारों रासायनिक विशेषज्ञोंको लगाया जा सकता है। उनसे

इस धन्धेको प्रतिष्ठित भी बनाया जा सकता है, और इससे देश तथा उन लोगोंको लाभ भी हो सकता है। मवेशियोंसे सम्बन्धित इस महत्त्वपूर्ण समस्याको भी राज्य ही हल कर सकता है।

परन्तु मैं आपका ध्यान एक और बातकी ओर भी आकर्षित करना चाहता हूँ। यहाँ भी मुझे महाराजा साहबके शब्दोंको ही उद्धृत करना पड़ेगा। उनके शब्द ये हैं:

> मेरी प्रार्थना है कि आगामी वर्षोंमें ईश्वर हम सबको इसी सदुद्देश्यकी प्राप्तिके लिए भाईचारेकी भावनासे मिल-जुलकर प्रयत्न करनेमें सहायता दे, जिससे कि हम कार्यक्षम प्रशासनके द्वारा और कृषि, उद्योग तथा वाणिज्यके लिए अधिक सुविधाएँ तथा सभी नागरिकोंके लिए समान अवसर सुलभ कराकर अपनी सम्मिलित शक्तिके बलपर मैसूरको संसारके सबसे उन्नत देशोंकी पंक्तिमें बैठा सकें। मेरी हार्दिक इच्छा है कि हम इस बातको सदा ध्यानमें रखें कि मेरे राज्यमें सभी जातियोंका दरजा बराबरका है और वे हमारे देशकी सन्तान हैं, और हम भाईचारेकी इसी भावनाके साथ अपने उन भाइयोंकी दशा सुधारनेके लिए सतत प्रयत्नशील रहें जो हमारे जितने भाग्यशाली नहीं हैं।

यदि जनता भाईचारेकी भावनामें विश्वास न करती हो तो सरकार इसे उनपर थोप नहीं सकती। आदरणीय पंडित मदनमोहन मालवीयजीकी तरह, मुझे भी यह जानकर बड़ा दुःख हुआ कि इस राज्यमें संस्कृतके ऐसे प्रकाण्ड पण्डित भी हैं जो आदि कर्नाटकोंको वेद पढ़ानेसे इनकार करते हैं और जो जन्मजात अस्पृश्यताके सिद्धान्तके समर्थक हैं। यदि कोई मुझे इस बातका विश्वास दिला सके कि आजकल अस्पृश्यताका जो रूप है, वह हिन्दू धर्मका अविभाज्य अंग है तो मैं हिन्दू धर्मको त्यागनेमें एक पलके लिए भी आगा-पीछा नहीं करूँगा। लेकिन मैं पूरे विश्वासके साथ अपने हिन्दू भाइयोंसे कह सकता हूँ कि मैंने हिन्दू धर्मको समझने और उसकी भावना तथा उसके सिद्धान्तोंको अपने जीवनमें उतारनेकी भरसक कोशिश की है, पर उसमें मुझे कहीं भी अस्पृश्यताके इस अभिशापका कोई समर्थन नहीं मिला। यदि हम किसी कुल या जाति-विशेषमें जन्म लेनेके आधारपर किसी भी मनुष्यको अस्पृश्य मानते हैं तो हम ईश्वर और मानव-जातिके प्रति अपराध करते हैं।

एक और भी प्रश्न है कि जिसका अस्पृश्यताके साथ बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। वह है शराबखोरीका प्रश्न। यदि ऊँचे कहलानेवाले वर्गोंके लोग तथाकथित निचले वर्गोंके लोगोंके साथ भाईचारेका बरताव करने लगें तो हमारे इस सुन्दर देशको शराबखोरीके कलंकसे मुक्त किया जा सकता है। मैंने शराबबन्दीके लिए वर्षोंतक काम किया है, परन्तु इस क्षेत्रमें भी मेरा अपना कटु अनुभव यही बतलाता है कि सरकारकी सहायताके बिना अधिक कुछ नहीं किया जा सकता। मिलनेपर अज्ञानी लोग तो शराब पी ही लेंगे। संसारमें यदि किसी देशमें पूरी तरह शराबबन्दी की जा सकती है, तो वह भारत ही है। इसका सीधा-सा कारण यही है कि सौभाग्यवश हमारे यहाँ अभीतक शराबखोरीकी लत बुरी ही मानी जाती है; उसे अब भी

पतनकारी समझा जाता है। अपने दौरोंमें मैं हजारों आदि कर्नाटकोंसे मिला हूँ। लम्बानी लोगोंके एक जत्थेसे भी मेरी भेंट हुई थी। मैंने उनसे बिल्कुल सीधे-सादे कुछ प्रश्न किये थे। उनमें से किसीने भी नशाखोरीके समर्थनमें हाथ नहीं उठाया। और उनमें से एक बड़े हिस्सेने गोमांस और शराब दोनोंसे ही दूर रहनेकी प्रतिज्ञा की है। ईश्वर उनको इस प्रतिज्ञापर अटल रहनेकी शक्ति दे। पर मैं आपसे और सरकारसे इस काममें उनकी मदद करनेका अनुरोध करता हूँ। इस मार्गमें कठिनाइयाँ और बाधाएँ तो अनेक हैं, पर मनुष्य उनका सामना करने और उनपर पार पानेके लिए ही तो बना है।

अन्तमें, मैं आपका ध्यान बाल-विधवाओं और बाल-वधुओंकी दशाकी ओर आकर्षित करना चाहता हूँ। हमारे लिए दुःख और शर्मकी बात है कि उनको भी मूक प्राणियोंकी कोटिमें डाल दिया गया है। जहाँ कहीं भी यह कलंक हो, उसे यदि मिटाया नहीं जाता तो हमारी सारी जागृति, हमारी सारी शिक्षा-दीक्षा मिट्टीके बराबर है। आपके यहाँका नागरिक और सामाजिक प्रगति संघ (सिविक ऐंड सोशल प्रोग्रेस एसोसिएशन) इस कामको हाथमें ले सकता है।

मैं चाहता हूँ कि मैसूर वास्तवमें एक ऐसा आदर्श राज्य बन जाये, जिसे हम रामराज्य कह सकें। इसी दृष्टिसे मैंने आपके सामने कुछ सुझाव रखे हैं जो, मेरे विचारसे इसे आदर्श राज्य बनानेके लिए अमलमें लाये जाने चाहिए। आशा है कि इन सुझावोंको पेश करनेके कारण आप मुझे कृतघ्न नहीं समझने लगेंगे। इसका यह अर्थ भी नहीं कि मैंने यहाँकी जो खामियाँ बतलाई हैं, वे भारतके अन्य हिस्सोंमें नहीं पाई जातीं। खेदके साथ कहना पड़ता है कि अन्य हिस्सोंमें भी ये खामियाँ जरूर हैं; इतना ही नहीं, कहीं-कहीं तो ये और भी भयंकर रूपमें मौजूद हैं। परन्तु मेरा सौभाग्य है कि मैंने यहाँ मैसूरमें कई क्षेत्रोंमें अन्य राज्योंकी अपेक्षा अधिक प्रगति देखी है और इसी कारण मुझमें यह इच्छा पैदा हो गई है कि यह और अधिक प्रगति करे।

जो ज्यादा देते हैं, उनसे और ज्यादा देनेकी अपेक्षा की जाती है। इस राज्यमें मैंने इतनी अधिक मात्रामें अच्छाई देखी है कि मैं तो यहाँतक सोचने लगा हूँ कि यदि आप लोग और महाराजा साहब मिलकर चाहें तो मैसूरको रामराज्य बना सकते हैं।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू २९-८-१९२७

३८२. विदाई-भाषण : बंगलोरकी प्रार्थना-सभामें[1]

२८ अगस्त, १९२७

सभाके पश्चात् प्रार्थना हुई।[2] वैसे कुमार पार्कमें हमारे निवासके दिनोंमें प्रार्थना-सभा एक परिपाटी बन गई थी। पर अन्तिम दिनकी सभा तो एक अविस्मरणीय अनुभव बन गई क्योंकि उसमें श्री एन्ड्रयूज और बियरम दम्पती भी उपस्थित थे। बियरम दम्पतीने "व्हेन आई सर्वे द वन्ड्रस क्रास" (जब मैं अद्भुत सलीबको देखता हूँ) वाला भजन सुनाया, जिसे सुनकर गांधीजीने कहा कि उनको ऐसा लगा, जैसे वे प्रिटोरियामें हों, जहाँ उन्होंने यह भजन पहली बार सुना था। और गांधीजीका विदाई-भाषण भी अविस्मरणीय था। गांधीजीने शुरूमें श्रोताओंसे पूछा: "आपमें से कितने लोग यहाँ नियमित रूपसे आते रहे हैं?" इसपर अधिकांश लोगोंने अपने हाथ उठा दिये।

मुझे बड़ी खुशी हुई कि आप आते रहे हैं। प्रार्थना मेरे लिए हर्षके साथ-साथ मेरे सौभाग्यकी भी बात रही है क्योंकि मैंने इसका उन्नतिकारी प्रभाव महसूस किया है। मेरा अनुरोध है कि आप इस परिपाटीको जारी रखें। आप पद न जानते हो, संस्कृत और श्लोक आदि भी न जानते हों तो कोई बात नहीं। रामनाम तो सभी जानते हैं; वह तो प्राचीन कालसे हमें विरासतमें मिला है। मैं आपको बतलाता हूँ कि आपको सामूहिक प्रार्थनाकी यह परिपाटी जारी क्यों रखनी चाहिए। इसलिए कि मनुष्य एक व्यक्ति होनेके साथ-साथ सामाजिक प्राणी भी है, समाजका सदस्य है। व्यक्तिके रूपमें चाहे तो वह निद्राके समयको छोड़कर शेष सारा समय प्रार्थना-रत रह सकता है, परन्तु समाजके सदस्यके रूपमें उसे सामूहिक प्रार्थना में भी शामिल होना चाहिए। मैं आपको बतलाता हूँ कि कमसे-कम मैं तो जब भी एकान्त पाता हूँ, प्रार्थना कर लेता हूँ, परन्तु यदि सामूहिक प्रार्थना न हो तो मुझे बड़ा अकेलापन लगता है। मैं आपमें से चन्द लोगोंको ही पहले व्यक्तिगत रूपसे जानता था और अब भी कुछ को ही जानता हूँ। परन्तु मेरे लिए इतना जानना ही काफी है कि मैं आपके साथ शामकी प्रार्थनामें सम्मिलित होता रहा हूँ। बंगलोर छोड़नेके बाद, मेरे मनमें जिन बातोंकी स्मृति बनी रहेगी उनमें प्रार्थना-सभाका एक प्रमुख स्थान होगा। बंगलोर छोड़नेकी जो कसक मेरे मनमें होगी वह दूसरे स्थानपर पहुँचकर वहाँ प्रार्थना-सभा शुरू कर देने पर दूर हो जायेगी। जो मानव-मात्रको भाई और ईश्वरको अपना पिता समझता है, उसे तो वह जहाँ जाये वहीं सामूहिक प्रार्थनाका अवसर मिल जाना चाहिए, और उसके मनमें बिछुड़ने या अलग होनेकी पीड़ा नहीं होनी चाहिए।

१. महादेव देसाईके लेख "विदाई" से।

२. देखिए पिछला शीर्षक।

इसलिए कृपया प्रार्थना सभाको जारी रखना मत भूलिएगा। आप अपने-अपने क्षेत्रोंमें अपनी-अपनी प्रार्थना-सभाएँ शुरू कर सकते हैं, और कुछ न हो पाये तो अपने-अपने परिवारके सभी लोग तो सामूहिक प्रार्थना कर ही सकते हैं। शामको रोज उसी वक्त एकत्रित होकर कुछ भजन कीजिए, 'गीता'-पाठ कीजिए, और आत्म-शुद्धिके लिए यथाशक्ति अधिकसे-अधिक प्रयास कीजिए।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, ८-९-१९२७

३८३. तार : अब्राह्मणोंकी परिषद्को[1]

बंगलोर
२९ अगस्त, १९२७ या उसके पूर्व

अभी-अभी पत्र पढ़ा। अब्राह्मणोंको मनमें सेवाभाव और सद्भावना लेकर निश्चय ही कांग्रेसमें प्रवेश करना चाहिए।

[अंग्रेजीसे]
बॉम्बे क्रॉनिकल, ३०-८-१९२७

३८४. पत्र : मीराबहनको

२९ अगस्त, १९२७

चि० मीरा,

तुम्हारे पत्र मिले।

एन्ड्रचूजको भेजा तुम्हारा सन्देश पढ़ा, वे 'सन्देश' शब्दको नहीं समझ सके, इससे हम लोग खूब हँसे। उन्होंने तो इसका मतलब इस नामकी बंगाली मिठाई समझ लिया।

बेशक, साबरमती लौटनेपर तुम्हें तीन दिन कोई काम नहीं दिया जायेगा और उस समयका तुम जैसा चाहो वैसा उपयोग करनेके लिए स्वतन्त्र रहोगी। चाहोगी तो और भी समय दिया जायेगा। मगनलालसे बातचीत करके जैसी सर्वाधिक ठीक लगे, अपनी दिनचर्या वैसी बना लेना। लेकिन काम तुम्हें धीरे-धीरे बढ़ाना है और एक काम खत्म करनेके बाद दूसरेको शुरू करनेसे पहले तुम्हें कुछ विश्राम मिलना चाहिए, विशेषकर शुरू-शुरूमें।

१. यह तार एसोसिएटेड प्रेस ऑफ इंडियाने जारी किया था और उसपर "बम्बई, २९ अगस्त" अंकित था। अब्राह्मणोंकी विशेष प्रान्तीय परिषद्के मन्त्रीने २९ तारीखको निम्नलिखित उत्तर भेजा था: "आपकी सलाहके लिए हम आभारी हैं। कांग्रेसमें अब्राह्मण तत्त्वोंको प्रवेश कराकर उसे लोकतान्त्रिक रूप देनेके लिए हम कांग्रेसमें शामिल हो रहे हैं।"

बोलकर लिखाया गया मेरा वह पत्र[1] तो तुम्हें मिल ही गया होगा जिसमें मैंने मासिक धर्मके दौरान स्त्रियोंके अलगावके सवालकी चर्चा की है। मुझे यों ही बख्श मत दो, बल्कि जबतक मेरा मतलब पूरी तरह समझ न जाओ तबतक मुझे कोंचती रहो। और समझ जानेपर भी जैसा मुझे रुचता है वैसा नहीं बल्कि जैसा तुम्हारा जी करे वैसा ही करना।

तुम कृष्णदाससे हिन्दीमें बातचीत तो कर रही हो? मैंने तुम्हें यह नहीं बताया कि इधर तुम्हारी हिन्दीमें पहलेकी अपेक्षा कम गलतियाँ होती हैं। जो थोड़ी-बहुत गलतियाँ मिलती हैं, उन्हें शुद्ध करनेका मुझे समय ही नहीं मिलता।

एन्ड्रयूज कल मेरे ही साथ यहाँसे चलेंगे, लेकिन मैं वेल्लूरमें उतर जाऊँगा और वे आगे मद्रास चले जायेंगे। पता नहीं, तुम्हें अपना वह सुन्दर नकशा वापस मिला या नहीं।

सस्नेह,

बापू

अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ५२६५) से।
सौजन्य : मीराबहन

३८५. पत्र : आश्रमकी बहनोंको

मौनवार, भाद्रपद सुदी २ [२९ अगस्त, १९२७][2]

बहनो,

तुम्हारी ओरसे रमणीकलालभाईका तैयार किया हुआ पत्र मिला।

मेरा मुद्दा ही तुम्हारी समझमें नहीं आया उसमें कुछ तो अध्याहार ही था। पत्रोंमें तो ऐसा ही होता है। अध्याहार पूरा कर लें, तो उससे यह अर्थ निकलेगा।

जब हम किसी सेवाकार्यमें लगे हों, तब दूसरेका विचार, जबतक कि वह आवश्यक न हो, हम न करें। यदि करेंगे तो मोह माना जायेगा। मैं यहाँ, बीमार आदमीसे जितनी हो सकती है उतनी, आवश्यक सेवा कर रहा हूँ। ऐसे समय गुजरातके संकटके बारेमें काम करने या आश्रमके प्रश्नोंको, मैं उन्हें वहाँ रहते हुए जिस तरह हल करता उस तरह, हल करनेका विचार करना मोह है। तुम भी उस स्थितिमें होओ, तो तुम्हारे लिए भी ऐसा करना मोह होगा। इसमें बड़े और छोटेका सवाल नहीं है। तुम वहाँ अपने सेवाकार्यमें लगी हुई हो। मान लो कि मैं बीमार— सख्त बीमार—हो जाऊँ या वहाँकी तरह यहाँ भारी बाढ़ आ जाये, तो तुम्हारे लिए, भले ही तुम मेरे जितनी ऊँची न मानी जाती होओ, (यहाँ दौड़ आनेका) अनावश्यक विचार करना मोह ही होगा। इसका अर्थ यह नहीं होगा कि तुम्हें मुझसे या मद्रासकी बाढ़से हमदर्दी नहीं है। हमदर्दी होनी चाहिए, जिससे तुम्हारा दयाभाव

१. देखिए "पत्र : मीराबहनको" २६-८-१९२७।
२. गुजरातमें बाढ़-संकटके उल्लेखके आधारपर वर्षका निश्चय किया गया है।

प्रकट हो, और वह प्रकट होना ही चाहिए। मगर तुम्हारा बेचैन होना मोह है। वह त्याज्य है। एक सेवाकार्यको अधूरा छोड़कर दूसरा करनेके लिए कब जाना चाहिए और कब जाना धर्म होगा, यह तो अलग प्रश्न है। संकटके समय हमने आश्रमको खाली कर दिया वह हमारा धर्म था। मगर जो लोग उसमें न जा सके, उन्हें बेचैन होने की जरूरत नहीं। अब भी समझमें न आया हो तो पूछ लेना।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ३६६६) की फोटो-नकलसे।

३८६. भेंट : एसोसिएटेड प्रेस ऑफ इंडियाके प्रतिनिधिको

बंगलोर

[२९ अगस्त, १९२७][1]

वाइसराय द्वारा एक सम्मेलन बुलानेके सुझावके बारेमें महात्मा गांधीके विचार जाननेके लिए एसोसिएटेड प्रेस ऑफ इंडियाके प्रतिनिधिने उनसे भेंट की। महात्माजीने कहा कि वैसे तो हिन्दू-मुस्लिम समस्याको हल करनेके लिए सरकारी तौरपर उठाये गये कदमके प्रति मेरे मनमें बहुत उत्साह नहीं है, फिर भी इस मामलेमें जहांसे भी सहयोग मिले, मैं उसका स्वागत करता हूँ।

[अंग्रेजीसे]

ट्रिब्यून, ३१-८-१९२७

३८७. भाषण : वेल्लूरके वूरीज कालेजमें[2]

[३० अगस्त, १९२७][3]

प्रिंसिपल साहब, विद्यार्थियो और मित्रो[4],

सबसे पहले तो मैं, आपके प्रिंसिपल साहब जिस पारिवारिक शोकसे सन्तप्त हैं[5], उसके लिए अपना हार्दिक दुःख प्रकट करना चाहूँगा। यहां आते ही मुझे यह दुःखद बात सुननेको मिली। प्रिंसिपल साहब, आपने न केवल इस समारोहका आयोजन आज अपने घरमें होने दिया, बल्कि इतने शोक-सन्तप्त होनेपर भी आप स्वयं इस समारोहमें पधारे और इसकी अध्यक्षता भी कर रहे हैं, आपके इस अत्यन्त शालीन और

१. यह विवरण इसी तारीखको जारी किया गया था।

२. यह "विद्यार्थी क्या कर सकते हैं?" (व्हाट स्टुडेंट्स कैन डू) शीर्षकके अन्तर्गत इस प्रारम्भिक टिप्पणीके साथ प्रकाशित हुआ था: "नीचे वेल्लूरके विद्यार्थियोंके समक्ष दिये गांधीजीके भाषणका शब्दशः विवरण छापा जा रहा है"।

३. और ४. हिन्दू, २-९-१९२७ से।

५. वूरीज कालेजके प्रिंसिपल श्री टी० बोमरके बच्चेकी मृत्यु हो गई थी।

कृपापूर्ण व्यवहारकी मैं सराहना करता हूँ; मैं आपसे अनुरोध करूँगा कि अपने इस दुःखमें आप मुझे भी अपना भागीदार मानें।

आज तीसरे पहर मुझे जो मानपत्र भेंट किया गया है और खादीकोषके निमित्त जो थैली दी गई है, उसके लिए मैं आप सभी विद्यार्थियों और अन्य भाइयोंको धन्यवाद देता हूँ। मगर आपने मेरे प्रति जो व्यक्तिगत स्नेह प्रकट किया है और देशके गरीबोंके प्रति अपनत्वकी भावनाका जो परिचय दिया है, उससे अब मुझे कोई आश्चर्य नहीं होता, क्योंकि मैं इस सुन्दर देशके जिस किसी कोनेमें जाता हूँ, सर्वत्र मुझे यही चीज देखनेको मिलती है। मेरे लिए यह बड़े हर्षका विषय रहा है कि सारे भारतके विद्यार्थियोंके मनमें मेरे प्रति प्रेम है। अनेक कठिनाइयोंके बीच यह चीज मेरे लिए सान्त्वनाका एक कारण रही है। विद्यार्थियोंने मेरे सिरका बोझ बहुत हलका कर दिया है। लेकिन, यद्यपि यह ठीक है कि उन्होंने मेरे प्रति सर्वत्र प्रेम दरसाया है और गरीबोंके साथ अपनत्वकी भावनाका भी परिचय दिया है, फिर भी मैं अपने मनकी इस भावनाको नहीं दबा सकता कि उन्हें अभी बहुत-कुछ करना शेष है। क्योंकि देशके भविष्यकी सारी आशाएँ तो आपपर ही टिकी हुई हैं। जब आप स्कूल-कालेजोंसे छूटेंगे तो इस देशके गरीब लोगोंकी रहनुमाई करनेके लिए आपको सार्वजनिक जीवनमें प्रवेश करना पड़ेगा। इसलिए मैं चाहूँगा कि आपमें अपने दायित्वका बोध हो और इस दायित्व-बोधका परिचय आप और भी अधिक स्पष्ट और व्यावहारिक रूपमें दें। यह ध्यान देने और साथ ही दुःखकी भी बात है कि अधिकांश विद्यार्थियोंके मनमें जहाँ विद्यार्थी-जीवनमें बड़ी-बड़ी उमंगें होती हैं, पढ़ाई खत्म करनेके बाद ही उनकी सारी उमंगें समाप्त हो जाती हैं। उनमें से अधिकांश धन-सम्पत्तिकी चिन्तामें लग जाते हैं। निश्चय ही, व्यवस्थामें कहीं कोई दोष है। एक कारण तो स्पष्ट है। प्रत्येक शिक्षा-शास्त्रीने, विद्यार्थियोंसे सम्बन्ध रखनेवाले हर व्यक्तिने यह महसूस किया है कि हमारी शिक्षा-पद्धति दोषपूर्ण है। यह हमारे देशकी जरूरतोंको पूरा नहीं करती, देशके गरीब लोगोंकी जरूरतोंको तो निश्चय ही नहीं। जो शिक्षा दी जाती है उसके और घरेलू तथा ग्राम्य जीवनके बीच कोई संगति नहीं है। लेकिन, यह कोई ऐसा छोटा-मोटा सवाल तो है नहीं कि आप और हम इस तरहकी किसी सभामें उसका हल निकाल सकें।

तो हमें वस्तुस्थितिको स्वीकार करते हुए सोचना इस विषयपर है कि देशकी सेवा करनेके लिए विद्यार्थियोंको क्या करना चाहिए तथा हम क्या-कुछ कर सकते हैं। इसका जो उत्तर मुझे सूझता है और जो उन लोगोंको सूझता है जिन्हें इस बातकी चिन्ता है कि विद्यार्थी अपनी योग्यताका ठीक परिचय दें, वह यह है कि विद्यार्थियोंको आत्मनिरीक्षण करना चाहिए और अपने व्यक्तिगत चरित्रको सुदृढ़ बनानेकी ओर ध्यान देना चाहिए। व्यक्तिगत जीवनकी पवित्रता सच्ची शिक्षाकी अनिवार्य शर्त है। मैं हजारों विद्यार्थियोंसे मिलता हूँ। उनके साथ बराबर मेरा पत्र-व्यवहार भी चलता रहता है। अपने पत्रोंमें वे मुझपर विश्वास करके अपने हृदयकी गुह्यतम भावनाओंको भी व्यक्त कर देते हैं। उनसे मिलने-जुलने और उनके पत्रोंसे मुझे

ऐसा लगता है कि उनमें अभी बहुत-सी कमियाँ हैं। मैं मानता हूँ कि आप मेरे कहने-का अभिप्राय साफ-साफ समझ रहे होंगे। हमारी भाषाओंमें विद्यार्थी शब्दका एक बहुत सुन्दर पर्याय है — ब्रह्मचारी। विद्यार्थी तो एक गढा हुआ शब्द है; और ब्रह्मचारीमें जितना अर्थ समाया हुआ है, उसे यह व्यक्त नहीं करता। मुझे उम्मीद है कि ब्रह्मचारी शब्दका अर्थ तो आप जानते ही होंगे। इसका अर्थ है, ब्रह्मका अन्वेषक; अर्थात् ऐसा आचरण करनेवाला व्यक्ति जो उसे कमसे-कम समयमें ईश्वरके अधिकसे-अधिक निकट ले जा सके। और विश्वके तमाम महान् धर्म, चाहे और बातोंमें उनमें जितना अन्तर हो, इस तात्त्विक विषयके सम्बन्धमें सर्वथा एक हैं कि कोई भी स्त्री या पुरुष, जिसका हृदय शुद्ध नहीं है, परमात्माको नहीं पा सकता। हम वेदोंका चाहे जितना अध्ययन करें, चाहे जितना पाठ करें, संस्कृत, लैटिन, ग्रीक आदि तमाम भाषाओं और विषयोंका हमें चाहे जितना ज्ञान हो, यदि वे हमारे हृदयको सर्वथा शुद्ध और पवित्र बनानेमें सहायक नहीं होते तो सब बेकार है। समस्त ज्ञानका उद्देश्य चरित्र-निर्माण होना चाहिए।

शिमोगामें एक अंग्रेज भाई मुझसे मिले। उन्हें मैं पहलेसे नहीं जानता था। उन्होंने मुझसे पूछा कि यदि भारत वास्तवमें आध्यात्मिक दृष्टिसे समुन्नत देश है तो फिर ऐसा क्यों है कि मुझे विद्यार्थियोंमें ईश्वरका ज्ञान प्राप्त करनेकी सच्ची ललक नहीं दिखाई देती, बहुत-से विद्यार्थी इतना भी नहीं जानते कि 'भगवद्गीता' क्या है।[1] उन्होंने जो-कुछ देखा था, उसका जो कारण और सफाई मुझे सही लगी, वह कारण और सफाई मैंने उनके सामने पेश कर दी। लेकिन, मैं आपको वैसा कोई कारण नहीं बताना चाहता और न इस भारी और गम्भीर दोषको कोई सफाई देकर छिपाना ही चाहता हूँ। यहाँ मेरे सामने उपस्थित विद्यार्थियोंसे मैं सबसे पहले आग्रहपूर्वक यह अनुरोध करूँगा कि आपमें से हरएक अपने हृदयको टटोलकर देखे और जहाँ-कहीं आपको ऐसा लगे कि मेरा कहना ठीक है, वहाँ अपनेको सुधारकर अपने जीवनको नये सिरेसे गढ़ना शुरू कर दे। आपमें से जो लोग हिन्दू हैं — और बहुत बड़ी तादाद तो हिन्दुओं-की ही है — उनसे मेरी विनती यह है कि आप 'गीता' के सन्देशको, जो अत्यन्त सरल, सुन्दर और मेरे लिए तो सीधे हृदयको छूनेवाला है, समझनेकी कोशिश करें। जिन लोगोंने अपने हृदयको शुद्ध बनानेके लिए वास्तवमें सत्यका अन्वेषण करनेका प्रयत्न किया है, उनका अनुभव — और मेरा खयाल है, मैं कह सकता हूँ कि उन सबका निरपवाद अनुभव — यही रहा है कि जबतक इस प्रयत्नके साथ-साथ हम सर्वशक्तिमान्से सम्पूर्ण हृदयसे प्रार्थना नहीं करते तबतक यह प्रयत्न निरर्थक है। इस-लिए हम और चाहे जो करें, ईश्वरमें अपनी आस्था न डिगने दें। इसे मैं आपको तर्क द्वारा नहीं समझा सकता, क्योंकि वास्तवमें यह एक ऐसी चीज है जो तर्क-बुद्धिसे परे है। लेकिन, मैं चाहता हूँ कि आप अपने अन्दर सच्ची विनयकी भावना उत्पन्न कीजिए और संसारके इतने-सारे धर्मोपदेशकों, ऋषि-मुनियों और अन्य लोगोंको

1. देखिए "विद्यार्थी और गीता", २५-८-१९२७।

अन्धविश्वासी मानकर उनके अनुभवोंको बिना सोचे-विचारे अस्वीकार न कर दीजिए। और अगर आप इतना करेंगे तो मैं और जो-कुछ कहना चाहता हूँ वह-सब बिलकुल साफ-साफ समझमें आ जायेगा। इसे मैं इस बातकी कसौटी मानूँगा कि आप जो-कुछ कहते हैं, हृदयसे कहते हैं। यदि ईश्वरमें आपकी सच्ची आस्था है तो आप सृष्टिके तुच्छसे-तुच्छ प्राणीतक के लिए सहानुभूति अनुभव किये बिना नहीं रह सकते। और आप देखेंगे कि चाहे चरखा और खादी-सम्बन्धी प्रवृत्ति हो या अस्पृश्यता और पूर्ण मद्य-निषेध-सम्बन्धी काम हो अथवा बाल-विधवाओं और बाल-वधुओंकी समस्याओं-जैसी सामाजिक बुराइयोंको दूर करनेसे सम्बन्धित कार्य हों, सबका स्रोत एक ही है। इसलिए मुझे यह देखकर बहुत खुशी हुई कि आप कताई-आन्दोलन, अस्पृश्यताके खिलाफ संघर्ष और जिन अन्य कार्योंको मैंने अपनाया है, उनके प्रति आपकी सहानुभूति है। मैं आपके इस आश्वासनको स्वीकार करता हूँ कि आजसे आप खादीके हकमें और अधिक प्रयत्न करेंगे।

सच पूछिए तो आपके लिए एक ही बार सदाके लिए ऐसा निर्णय कर लेना बहुत ही आसान है; आप अपने मनमें कहिए कि आजसे मैं खादीके अलावा और किसी कपड़ेका इस्तेमाल नहीं करूँगा, क्योंकि इससे उन लोगोंकी जेबमें तांबेके चन्द सिक्के जाते हैं जिन्हें उनकी बहुत ज्यादा जरूरत है। मुझे मालूम हुआ है, सिर्फ इस एक संस्थामें ही आप १,४०० से अधिक विद्यार्थी हैं। आप जरा सोचकर देखिए कि यदि आप १,४०० विद्यार्थी रोज सिर्फ आधा घंटा कातें तो देशकी सम्पत्तिमें कितनी वृद्धि होगी। और यह भी सोचकर देखिए कि १,४०० लोग अस्पृश्योंके लिए कितना-कुछ कर सकते हैं, और यदि आप १,४०० नौजवान यह गम्भीर संकल्प कर लें, और आप ऐसा कर सकते हैं, कि हम छोटी उम्रकी लड़कियोंसे विवाह नहीं करेंगे तो सोचिए कि आप अपने आसपासके समाजमें कितना बड़ा सुधार ला सकते हैं। यदि आप १,४०० विद्यार्थियोंमें से सबके-सब, या सबके-सब नहीं तो एक खासी तादादमें भी अपने अवकाशके घंटों या रविवारके कुछ हिस्सेका उपयोग शराबखोरोंसे मिलकर उन्हें अधिकसे-अधिक प्रेम और दयापूर्वक समझाने-बुझाने और इस तरह अपनी बात उनके हृदयमें उतारनेमें करें तो सोचिए कि आप उनकी और देशकी कितनी बड़ी सेवा करेंगे। और यह-सब आप आजकी दूषित शिक्षा-प्रणालीके बावजूद कर सकते हैं। आपको इसके लिए करना भी क्या है? सिर्फ अपने हृदयको बदलना है, और अगर राजनीतिक क्षेत्रमें प्रचलित मुहावरेका प्रयोग करूँ तो अपना 'दृष्टिकोण' बदलना है।

मैं चाहता हूँ कि आप इस अवसरसे लाभ उठाइए, और यदि आप, आज शाम हम जिस गम्भीर परिस्थितिमें यहाँ एकत्र हुए हैं तथा जिसके उल्लेखसे मैंने अपना भाषण आरम्भ किया, उसे समझें तो आप इस अवसरसे लाभ उठा सकते हैं। यदि कोई सांसारिक व्यक्ति अपने परिवारमें शोक-प्रसंग आ जानेके कारण ऐसे समारोहमें उपस्थित न हो तो उसके लिए वह उचित ही होगा और दुनिया भी उसके इस व्यवहारको उचित ही मानगी। कोई व्यक्ति ऐसा दुःख पड़नेपर उदास होकर उस-

पर सोचते रहनेके बजाय उसको दूसरा रूप दे दे, उससे ईश्वर और मानवताकी सेवा करनेको प्रेरित हो, इसमें निश्चय ही एक महानता है, एक भव्यता है। ऐसा हर काम हमें मानव-मात्रकी तात्त्विक एकताका बोध कराता है। ईश्वर आपको मेरी बातें समझनेकी शक्ति दे। एक बार फिर मैं आपके द्वारा भेंट किये गये मानपत्र और थैली तथा आपने जो-कुछ कहा है, उसके लिए आप लोगोंको धन्यवाद देता हूँ।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, ८-९-१९२७

३८८. पत्र : टी० आर० महादेव अय्यरको

कैम्प वेल्लूर
३१ अगस्त, १९२७

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मैं तो फिर वही कहूँगा जो पहले कह चुका हूँ, अर्थात् यह कि आप कब्जा छोड़ दें, यही अच्छा है। जिन लोगोंके बारेमें आपको लगता है कि वे आपके दृष्टिकोणसे सहमत हैं, उनको यदि आप समय रहते अपना कब्जा छोड़नेका इरादा बता दें तो फिर कब्जा छोड़ना आपके लिए नैतिक दृष्टिसे बिलकुल ठीक होगा। इसकी सूचना न देने और सम्पत्तिको अपने कब्जेमें रखनेका औचित्य तो मेरे विचारसे किसी भी तरह नहीं ठहराया जा सकता। जहाँतक मैं कमेटीके इरादोंको समझ सका हूँ, वह एक ऐसे मामलेको पंच-फैसलेके लिए नहीं सौंपना चाहती जिसके बारेमें वह न कोई नैतिक हिचक महसूस करती है और न जिसके बारेमें उसके सामने कोई कानूनी कठिनाई ही है।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी (एस० एन० १२९४१) की माइक्रोफिल्मसे।

३८९. भाषण : वेल्लूरकी सार्वजनिक सभामें[1]

[३१ अगस्त, १९२७][2]

सभापति महोदय और मित्रो,

मानपत्रों और दो हजार एकसे कुछ अधिक रुपयोंकी इस थैलीके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। तमिलनाडुका मेरा खादी-दौरा वास्तवमें वेल्लूरसे ही शुरू हो रहा है। पिछले सप्ताह मैं कृष्णगिरि[2] और होसर गया था, जो तमिल प्रदेशमें ही है। लेकिन उन नगरोंके दौरेको मैसूरके कार्यक्रमका हिस्सा माना जा सकता है। वेल्लूर पहुँचनेपर मुझे इस स्थानकी अपनी पहली यात्रा याद हो आई जब मैं मौलाना शौकतअलीके साथ यहाँ आया था। जोश-जनूनके उन दिनोंकी याद करते हुए जब मैं आजकी इस सभाको देखता हूँ तो मेरा मन बरबस खिन्न हो जाता है — इसलिए नहीं कि आपका व्यवहार कुछ अनुचित रहा है, बल्कि यह सोचकर कि उत्तर भारतमें आजकल क्या चल रहा है। सच तो यह है कि जब मैं देखता हूँ कि जीवनकी सहज गतिमें व्यवधान पैदा कर देनेवाले वैसे झगड़े आपके यहाँ नहीं हैं तो मेरा सन्ताप बहुत-कुछ कम हो जाता है। आपके बीच आकर जब मैं देखता हूँ कि उत्तर भारतमें हमारे देशभाई जो हरकतें कर रहे हैं, उनका आपपर कोई असर नहीं पड़ा है और आप विचलित नहीं हुए हैं, तो मेरी आशावादिता और दृढ़ हो जाती है। जबतक ईश्वरपर मेरी आस्था है, मेरी यह आशावादिता बनी रहेगी, फिर चाहे देश-भरमें हिन्दू और मुसलमान एक-दूसरेकी जानके गाहक ही क्यों न बन बैठें। भगवान् न करे ऐसा हो, लेकिन अगर हो तो भी मैं समझता हूँ मेरे अन्दर इतनी ही शक्ति रहेगी जितनी आज है मैं अपनी ओरसे सरेआम कह सकूँगा कि एक दिन जरूर ऐसा आयेगा जब हिन्दू और मुसलमान एक-दूसरेके साथ कंधेसे-कंधा मिलाकर अपने देशकी आजादीके लिए संघर्ष करेंगे और सदा भाइयोंकी तरह एक होकर रहेंगे। मैं चाहता हूँ कि आप वेल्लूरवासी भाई और बहनें सभी अपने मनमें ऐसा ही विश्वास सँजोयें। मुझे इस बातमें तिल-भर भी सन्देह नहीं कि आगे आनेवाली पीढ़ियाँ हमारी इस बर्बरतापर हँसेंगी और अपने मनमें सोचेंगी कि हम लोग कितने मूर्ख और कितने पागल थे कि ईश्वरकी दुहाई देकर एक-दूसरेको कत्ल करने लगते थे। पर आप जानते ही हैं कि मैं खद्दर और चरखेके सवालको उतना ही महत्त्व देता हूँ जितना कि हिन्दू-मुसलमान एकताको। दरिद्रनारायणकी खातिर कातना और इसी कारण खादीके अतिरिक्त कोई और वस्त्र इस्तेमाल न करना भी ईश्वरका ही काम है। इससे ईश्वर उतना ही प्रसन्न होगा जितना कि हिन्दुओं और मुसलमानोंके एक रहनेसे। जिस प्रकार हिन्दू-मुसलमान एकता दोनोंको एक सूत्रमें बाँधती है, उसी

१. सभा गांधी मैदानमें आयोजित की गई थी और गांधीजीके भाषणका तमिल अनुवाद च० राजगोपालाचारीने प्रस्तुत किया था।

२. देखिए "भाषण : कृष्णगिरिमें", २४-८-१९२७

तरह चरखेपर काता हुआ सूत भी भारतके करोड़ो गरीबोको हमारे मध्य वर्गके लोगोके साथ बांधता है। वर्तमान स्थिति यह है कि हम ग्रामवासियोका गला तो नही काटते पर यह भी बिलकुल सही है कि हम एक तरहसे उनका रक्त चूसते है। उनका रक्त चूसनेका, प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनो ही किस्मका, दायित्व हमारे ऊपर है। हम मध्य वर्गके लोग ही है, जिन्होंने ग्रामवासियोको आज सतत भुखमरीकी हालत-तक पहुँचा दिया है। उनकी इस दशाके लिए व्यापारियोकी हैसियतसे सीधी जिम्मे-दारी हम लोगोंपर है; इसलिए कि हम लोगोने उनके पवित्र हाथोसे तैयार किये गये वस्त्रकी खरीद और बिक्री न करके स्वयं एक ऐसे देवताकी पूजा की जो उन लोगोकी बलिसे ही प्रसन्न होता है। इस तरह हमने अपने हाथ विदेशी वस्त्रोसे दूषित कर लिये और हमने विदेशी वस्त्रोकी बिक्री शुरू कर दी। मै इसे भुखमरीसे पीडित उन करोडो बेजुबान लोगोके साथ विश्वासघात मानता हूँ। व्यापारियोके अतिरिक्त मध्य वर्गके अन्य लोग भी ग्रामवासियोकी भुखमरीके लिए परोक्ष रूपसे जिम्मेदार है, क्योकि वे अपने ही लोगो द्वारा तैयार किये गये पवित्र वस्त्रोकी जगह इन व्यापारियो द्वारा बेचे जानेवाले बढिया विदेशी वस्त्रोको खरीदनेका लोभ संवरण नही कर पाये। और आपने जो थैली दी है, उसको मै एक प्रतीक-मात्र मानता हूँ — हमने जो पाप किये है उनका प्रायश्चित्त करनेकी इच्छाका प्रतीक-भर मानता हूँ। लेकिन मै आपसे सच कहता हूँ कि यह प्रायश्चित्त तबतक सार्थक नही होगा जबतक कि सभी व्यापारी अपने कदम पीछे नही हटाते, विदेशी वस्त्रोकी बिक्री बन्द नही कर देते और जबतक वे और अन्य सभी लोग खद्दरको नही अपना लेते, चाहे खद्दर कितना ही मोटा-झोटा या महँगा क्यों न हो। वास्तविक प्रायश्चित्तके लिए कोई भी बलिदान बहुत बड़ा नही होता। और मेरी हार्दिक इच्छा है कि तमिलनाडके दौरेके इस पहले नगर-से जाते समय मेरा मन इस विषयमें आश्वस्त हो जाये कि आप लोगोके मनमें भी अपने देशके भूखे-नगे लोगोके प्रति उतनी ही वेदना और सहानुभूति है जितनी कि मेरे हृदयमें है और आप लोग भी हम सब लोगोके पापोके प्रति उतने ही जागरूक है, जितना कि मै। मेरा यह अनुरोध दायें बाजू बैठी बहनोसे भी उतना ही है, जितना कि बायें बाजू और सामने बैठे भाइयोसे। वेल्लूरकी नारियोंको सीताके पवित्र चरणोसे पुनीत बनी इस भारत भूमिकी पुत्रियाँ कहलाने योग्य बनना चाहिए। भारतमें हम स्त्री-पुरुष बड़े सुबह उठकर सीताका पवित्र नाम सात महान् सतियोके साथ स्मरण करते है। यदि हम सीताकी सादगी और पवित्रताका अनुकरण न करे, तो हमें उनका नाम जपनेका क्या अधिकार है? अपने देशके गाँवोमें बना खद्दर पहनना हमारे लिए उतना ही स्वाभाविक होना चाहिए जितना कि होटलोमें बने, बढियासे-बढिया व्यंजन मुफ्त भी मिलें तो उनको छोड़कर अपने हाथसे अपना भोजन तैयार करना और खाना होता है।

अस्पृश्यताकी समस्याको भी मै उतना ही महत्त्व देता हूँ। हम हिन्दू लोग जबतक एक भी व्यक्तिको जन्मके आधारपर अस्पृश्य मानते रहेंगे, तबतक हमारे धर्म और हमारी प्रतिष्ठाको खतरा बना रहेगा। मनुष्य होनेके नाते उनको भी हमारे मन्दिरोमें प्रवेश करनेका, हमारे स्कूलोंमें अपने बच्चोंको भेजनेका और एक ही कुएँ या

तालावसे पानी लेनेका हमारे बराबर ही अधिकार है। यहाँ उपस्थित श्रोताओंमें यदि कोई अस्पृश्यतामें विश्वास करता है, तो मुझे पूरी आशा है कि वह भी अपने विश्वासके औचित्यपर फिरसे विचार करेगा और इस बातको भली-भाँति समझ लेगा कि हिन्दू धर्मको ऐसा अभिशाप अपने सिर मोल लेनेकी कतई जरूरत नहीं।

शराबखोरीका सवाल भी इतना ही, या कहिए, लगभग इतना ही महत्त्व रखता है। मैंने जो 'लगभग' शब्दका प्रयोग किया है वह ऐसा मानकर नहीं कि जिस व्यक्तिको शराबखोरी छोड़नी है, उसके लिए इसकी कोई कम अहमियत है। इस शब्दका प्रयोग मैंने इसलिए किया है कि अस्पृश्यताकी तुलनामें शराबखोरीकी लतवाले व्यक्तियोंकी संख्या कहीं कम है। जिन लोगोंको शराबखोरी की आदत नहीं, उनको भी तबतक चैनकी साँस नहीं लेनी चाहिए जबतक कि उनका एक भी पड़ोसी इसका शिकार बना रहे। इसके चक्करमें फँसे अपने भाइयोंको इस आदत-से छुटकारा दिलानेके लिए आपको, आप जितने भी प्रेमपूर्ण और विनम्र उपायोंसे काम ले सकते हैं, लेना चाहिए। यदि आपकी जगह मैं होऊँ, तो मुझे तबतक सन्तोष नहीं हो जबतक कि देशमें पूर्ण मद्यनिषेध न हो जाये। यदि आपकी जगह मैं होऊँ तो मैं मन्त्रीको तबतक चैन न लेने दूँ जबतक कि वे इस समस्याको गम्भीरतापूर्वक और ईमानदारीके साथ हाथमें न ले लें।

अब मैं आपका ज्यादा समय नहीं लूँगा। हमें अभी कुछ काम निबटाना है। आपने मुझे यह सुन्दर मंजूषा दी है। जिला बोर्ड और नगरपालिकाके मानपत्रोंसे अंकित चाँदीकी ये पत्रिकाएँ भी मुझे भेंट की गई हैं। अब तो भारत-भरके लोग भली-भाँति जानते हैं कि इन वस्तुओंको रखने लायक कोई स्थान मेरे पास नहीं है और मैं अपनी प्रतिज्ञा-के कारण कोई भी पार्थिव सम्पत्ति अपने पास नहीं रख सकता। मैं यह मानता हूँ कि आपने ये वस्तुएँ मुझे इसीलिए दी हैं कि मैं इनको आपके ही सामने नीलाम करके दरिद्रनारायणके लिए कुछ और पैसा जमा कर सकूँ। इसलिए इनको नीलाम किया जायेगा, और आशा है कि आप सभी लोग यथाशक्ति ऊँचीसे-ऊँची बोली बोलेंगे। हो सकता है कि सभी लोग इसके लिए तैयार होकर, इतना पैसा जेबमें डालकर न आये हों। उनके लिए एक और रास्ता भी है। मैं जानता हूँ कि यहाँ उपस्थित सभी स्त्री-पुरुषोंने इस थैलीके लिए पैसा नहीं दिया है। और जिन्होंने दिया है, उनमें भी कई ऐसे हो सकते हैं जिन्होंने अपनी शक्ति-भर न दिया हो। इसलिए आप इस सभामें जितना भी दे सकते हैं उतना देनेकी सुविधा प्रदान करनेके लिए अभी तुरन्त स्वयंसेवक आपके पास जायेंगे और चन्दा जमा करेंगे। आशा है कि जो लोग समर्थ हैं और कताई तथा खद्दरमें विश्वास रखते हैं, वे चन्दा देनेसे हाथ नहीं खींचेंगे। भारत-भरमें बहनोंने आगे बढ़कर अपने जेवर दिये हैं। मैं चाहता हूँ जो भी दे सकते हों वे सभी दरिद्रनारायणकी खातिर अवश्य दें। स्वेच्छासे दी हुई एक पाई भी सोनेकी मोहर जितना महत्त्व रखती है। आपकी भेंटों और मानपत्रोंके लिए मैं आपको एक बार फिर धन्यवाद देता हूँ।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, २-९-१९२७

३९०. इसे भी विवाह कहेंगे ?

हालकी बीमारीके प्रारम्भिक दिनोमें मैं पत्रोंके जवाब नही दे पाता था। उन दिनों मुझे जो पत्र मिले थे, उनमें से एकका कुछ अंश मैं नीचे दे रहा हूँ। पत्र-लेखकने तो पूरा ब्यौरा दिया है, लेकिन मैंने छापते समय नाम निकाल दिये है।

> इस बारकी सहालगमें कारवारके सदाशिवगाड नामक स्थानमें एक हृदय-विदारक विवाह सम्पन्न हुआ है। वधूकी अवस्था बारह वर्ष है और वह गोआके एक अत्यन्त निर्धन परिवारकी है। वरकी अवस्था साठ वर्ष है। उसकी पहली पत्नीकी मृत्यु लगभग तीन वर्ष पहले हुई थी, जिससे हुए आठ या नौ बच्चों-में से दो जीवित हैं। वरने एक अंग्रेजी पाठशालाकी संस्थापना की है। गत वर्ष भी उसने एक कच्ची उम्रकी वधू लानेकी कोशिश की थी, परन्तु उसके समाजमें विरोध खड़ा हो जानेसे वह सौदा नहीं हो पाया। इस वर्ष उसने वधूके माता-पिताको दो सौ रुपये देनेका वादा करके अपनी इच्छा पूरी कर ली। इस मामलेमें क्या किया जाना चाहिए? यहांके...[1] जैसे समाज-सुधारक भी इस अमानवीय कृत्यके विरुद्ध हल्का-सा भी प्रतिरोध नहीं करते।

मैंने पत्रका जो अंश दिया है, उसे संक्षिप्त करके दिया है। इसमें कही गई बातोकी सचाईपर सन्देह करनेका कोई कारण नही दिखाई पड़ता। काश, ऐसा कह सकता कि यह कोई विरल उदाहरण ही है। लेकिन इस प्रकारके इतने उदाहरण सामने आते रहते है कि इनका कोई कड़ा इलाज करना जरूरी हो गया है। एक इलाज तो निस्सन्देह यह है कि ऐसे हर मामलेको प्रकाशित करके उसका पर्दाफाश किया जाये और नारीत्वके प्रति ऐसे अपराधोंकी पुनरावृत्तिके विरुद्ध एक स्वस्थ और प्रबल लोकमत तैयार किया जाये। लेकिन, सबसे कारगर उपाय तो नि सन्देह यही होगा कि जहाँ भी ऐसे अनैतिक विवाहकी आशंका हो, वहाँ उसके खिलाफ आन्दोलन किया जाये। पत्र-लेखकके कथनानुसार आठ बच्चोंके इस बूढे बापकी पहली कोशिश ठीक ऐन वक्तपर आन्दोलन करके नाकाम कर दी गई। आश्चर्यकी बात है कि इस बार भी वैसा आन्दोलन क्यों नही हुआ। वहाँके बहुत-से लोगोको निश्चय ही इस बातका पता होगा कि एक बूढ़ा विधुर एक कच्ची उम्रकी लडकीसे शादी करनेकी फिक्रमें है। तब फिर उस बालिकाको दु:ख और यन्त्रणाके जीवनसे बचानेके लिए तुरन्त कोई आन्दोलन क्यों नही किया गया? परन्तु मेरी रायमें तो अब भी समय है। स्थानीय लोकमतको सक्रिय बनाकर अब भी उस बाल-वधूकी सहायता की जा सकती है। पत्र-लेखकके पत्रसे लगता है कि यह विधुर किसी समय समाज-सेवाके कार्योंमें दिलचस्पी लेता था। क्या उसको इस बातके लिए राजी नही किया जा सकता कि वह बालिकाको अपने पास न रखकर सेवा-सदन या ऐसी ही किसी दूसरी

१. साधन सूत्रके अनुसार।

संस्थामें रख दे, जहाँ वह शिक्षा प्राप्त कर सके और परिपक्व अवस्था प्राप्त करनेपर उसे स्वयं यह निर्णय करनेका अधिकार दे दे कि चाहे तो वह पतिके साथ रहे या कि विवाह-सम्बन्धको बिलकुल रद माने? हमारा समाज आज जिस अधोगतिमें पड़ा हुआ है, उसके कारण ऐसा कदम उठाना सम्भव हो या न हो, पर समाजमें खरे चरित्रवाले कुछ नवयुवक तो निश्चय ही अपनी एक परोपकारी टोली बना सकते हैं और बाल-विवाहोंको रोकने तथा जहाँ भी सम्भव हो बाल-विधवाओंके पुनर्विवाह करानेके लिए सभी उचित एवं वैध उपायोंसे काम लेनेकी प्रतिज्ञा कर सकते हैं। मेरे खयालसे दोनों चीजें साथ-साथ ही चल सकती हैं। ऐसी टोलीका काम तभी ज्यादासे-ज्यादा कारगर होगा जब वह अपना कार्यक्षेत्र अपने नगर या गाँवतक ही सीमित रखे। तब वे देखेंगे कि कुछ ही वर्षोंमें उनकी शक्ति अपराजेय बन गई है। हमारे देशके अधिकांश कस्बोंकी जनसंख्या थोड़ी ही है, इसलिए अपने-अपने कस्बोंमें पत्र-लेखक द्वारा वर्णित ढंगकी अनैतिक सौदेबाजीकी या बाल-विधवाओंकी संख्याकी जानकारी हासिल करना कोई कठिन काम नहीं है। पर इसमें भी सन्देह नहीं कि ऐसी टोलियोंके लोगोंको नीति-चातुर्य और आदर्श आत्म-संयमसे काम लेना पड़ेगा। यदि वे हड़बड़ी या हिंसाकी ओर तनिक भी झुके तो जनता उनसे रुष्ट हो जायेगी और उनका अपना उद्देश्य ही विफल हो जायेगा।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, १-९-१९२७

३९१. कहीं हम भूल न जायें

गुजरातकी बाढ़की ओर सबका ध्यान खिंच गया है, इससे कुछ ऐसी आशंका उत्पन्न हो गई है कि उड़ीसा और सिन्धकी विपदाको हम कहीं भूल न जायें। सिन्ध गुजरातसे शायद ज्यादा कष्टमें है और उड़ीसा तो सबसे ज्यादा संकटमें है, क्योंकि यह सबसे कम संगठित और सबसे गरीब प्रान्त है। गुजरातने कार्यकर्त्ताओंका इतना बड़ा दल तैयार कर लिया है कि उससे श्रीयुत वल्लभभाई परेशानीमें पड़ गये हैं। आखिरकार, सर्वत्र व्यापारीवर्ग ही तो ऐसा है जो अधिकसे-अधिक मुक्तहस्त होकर दान देता है और संकटके समय राहतका प्रबन्ध करनेमें सबसे अधिक सक्षम है। इसलिए जिन गुजरातियोंकी गुजरातमें सहायता-कार्यके लिए जरूरत न हो या जिन्हें वहाँके कामसे फुरसत दी जा सकती हो वे उन स्थानोंकी ओर ध्यान दें जहाँ सहायताकी सबसे अधिक आवश्यकता है। गुजरातके संकटके कारण गुजरातियोंको दूसरे प्रान्तोंकी जरूरतकी ओरसे अपनी आँखें बन्द नहीं कर लेनी चाहिए। वर्तमान संकटका लाभ उठाकर हमें कम प्रान्तवादी और अधिक राष्ट्रवादी बनना चाहिए। हमें इस देशमें रहनेवाले ईश्वरकी सृष्टिके तीस करोड़ मानवोंमें से गरीब-से-गरीब और हमसे दूरसे-दूर रहनेवालों को भी अपना समझना चाहिए।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, १-९-१९२७

३९२. सच्चा श्राद्ध

एक भाईने रंगूनसे चरखेके प्रचारके लिए पच्चीस रुपये भेजते हुए लिखा है:[1]

पत्रमे व्यक्तिगत ढंगकी बहुत-सी बातें कही गई थी, जिन्हे मैंने छोड दिया है। यद्यपि युवावस्थामें मैंने खुद भी श्राद्ध-संस्कार किये है, लेकिन मै उनके धार्मिक महत्त्वको नही समझ पाया हूँ। इस तरहका यह पहला ही पत्र मुझे मिला हो, सो बात नही है। लेकिन, हिन्दू धर्ममें लगभग सर्वत्र प्रचलित रीति-रिवाजोके पीछे छिपे अर्थको — यदि सचमुच कोई अर्थ छिपा हो तो — मै समझ नही पाया हूँ, इसलिए अबतक मैंने इन पृष्ठोमें उनके बारेमें कुछ नही कहा है। लेकिन, जो नियम पत्र-लेखकने अपनाया है, वह मुझे ठीक लगा है। हम अक्सर रूढ़िगत संस्कारोको चुपचाप स्वीकार कर लेते है — भले ही उनमें हमारा कोई विश्वास न हो, वे हमारे लिए कोई अर्थ न रखते हों। जिन छोटी-छोटी बातोंमें स्वयंको या दूसरोको धोखा देनेकी कोई आशका न हो, उनमें रूढ़िका पालन करना प्राय: वाछनीय बल्कि आवश्यक भी होता है। लेकिन, धर्मसे सम्बन्धित विषयोमें और खासकर वहाँ, जहाँ हमारा अन्तर्मन निश्चित रूपसे रूढ़ि-पालनके खिलाफ हो और जहाँ स्वय अपनेको और अपने पड़ोसि-योंको भी धोखा देनेकी आशका हो, रूढ़िका पालन करना पतनकारी है। आज हमारे बीच ऐसे अनेक धार्मिक विधि-विधान प्रचलित है, जिनका सुदूर अतीतमें चाहे जो अर्थ और महत्त्व रहा हो, किन्तु आजकी पीढ़ीके लिए तो उनका कोई अर्थ, कोई महत्त्व नही है। इसमें सन्देहकी कोई गुजाइश नही है कि इस पीढीके लिए पुराने विधि-विधानोंको नया रूप, बल्कि नया अर्थ भी देकर नया रास्ता बनाना आवश्यक है। अपने माता-पिताकी स्मृतिको ताजा रखने और उसका सम्मान करनेका विचार छोड़ना तो नही ही है। लेकिन, उसके लिए उन पुराने रीति-रिवाजोको कायम रखना भी जरूरी नही है, जिनमें अब कोई तत्त्व नही रह गया है और इसलिए जिनका हमपर कोई असर भी नही होता। इसलिए जो लोग चाहते है कि वे सिर्फ सही काम ही करे और आत्म-प्रवंचनासे मुक्त हो जायें उनके सामने मै पत्र-लेखकका यह उदाहरण रख रहा हूँ।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १-९-१९२७

१. पत्रका अनुवाद यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखकने लिखा था कि १८ अप्रैल, १९२७को उसके पिताका देहान्त हो गया था, लेकिन उसने लोगोंके आग्रहके बावजूद श्राद्ध-कर्म करनेसे इनकार कर दिया, क्योंकि उसे प्रचलित श्राद्ध-पद्धतिमें विश्वास नहीं था। उसका कहना था कि इस संस्कारका मूल उद्देश्य परमार्थ ही हो सकता है। किन्तु, साथ ही वह गांधीजीके इस कथनमें विश्वास रखता था कि दानके अधिकारी तो सिर्फ अंधे-अपंग और ऐसे निर्धन ब्राह्मण हैं जो सद्‌विद्याका प्रचार करते हैं। (देखिए खण्ड ३३) उसे चरखा-कार्य सबसे बड़ा परमार्थ-कार्य लगा और इसलिए उसने गांधीजीके पास उक्त रकम भेज दी।

३९३. स्वास्थ्य-रक्षा कैसे करें

पोलैंडवासी प्रोफेसर महोदय, जिनसे पाठक अब परिचित हो चुके होंगे, मेरी बीमारीकी चर्चा करते हुए लिखते हैं:

> 'यंग इंडिया' में मैं आपकी बीमारी और जेलरोंसे[1] आपकी बातचीतके बारेमें पढ़ता रहा हूँ। अब मैं आपको अपना अनुभव सुनाता हूँ कि इस तरह स्वास्थ्यमें एकाएक भारी गिरावट आ जानेसे कैसे बचा जा सकता है। सितम्बरसे मईतक पिछले नौ महीनोंमें मैंने पोलैंड-भरमें ४० नगरोंमें जाकर १०० दिन व्याख्यान दिये हैं। प्रतिदिन तीनसे लेकर सात घंटेतक बोला हूँ। जब मैं श्रोताओंके सामने खड़ा होता हूँ तो ६४ वर्षका होते हुए भी मैं ऐसा महसूस करता हूँ, जैसे २४ वर्षका होऊँ। मेरे नियम ये हैं:
>
> १. किसी प्रकारकी चिन्ता न करना। सर्वशक्तिमान् ईश्वर सबकी चिन्ता करता है और उसकी इजाजतके बिना पत्ता भी नहीं हिलता। मैं उसका प्रधान सेवक नहीं हूँ, सिर्फ एक अदना-सा चाकर-भर हूँ, जिसका अपना एक निश्चित काम है, जिसे उस कामकी, संसारके विशाल कार्य-व्यापारके उस छोटे-से हिस्सेकी फिक्र करनी है। यदि पृथ्वीपर कहीं कोई भूकम्प आता है या बाढ़ आती है, अथवा अकाल पड़ता है तो अमर आत्माको कोई वास्तविक क्षति नहीं पहुँच सकती; ऐसा नहीं हो सकता कि कोई कष्टमें पड़े और उसे ईश्वर द्वारा पहलेसे निर्धारित कुछ-न-कुछ लाभ न हो; और फिर सर्वत्र ईश्वरके सेवक मौजूद हैं जो कष्टमें पड़े लोगोंकी उतनी सहायता करते हैं जितनी सहायता ईश्वर उनसे करवाना चाहता है। इसलिए, चिन्ता आस्थाकी कमजोरी है और मेरी आस्था चूँकि अनन्त है, इसलिए मुझे कोई चिन्ता हो ही नहीं सकती।
>
> २. खूब सोना: जब कभी मैं कामपर नहीं होता, हर क्षण सोता रहता हूँ, यहाँतक कि दिनमें कई-कई बार कुछ-कुछ मिनट भी सो लेता हूँ। सोनेसे पहले मैं बराबर प्रार्थना करता हूँ कि प्रभु ईसा, मुझे ज्ञानका प्रकाश दो, बल दो और आनन्द दो। इस प्रार्थनाके साथ मुझमें आनन्द, प्रकाश और शक्तिका एक स्पष्ट प्रतिरूप उभरता है और ऐसी निद्रा प्रार्थनाके समान, परमेश्वरसे साक्षात्कार करानेवाली और ताजगी देनेवाली होती है। जब मैं ऐसी निद्रासे जागता हूँ तो मुझे ठीक-ठीक मालूम रहता है कि मुझे क्या करना है और फिर जो करना है, उसे प्रसन्नतापूर्वक करता हूँ।

१. तात्पर्य गांधीजीकी बीमारीके दिनोंमें उनकी देखरेख करनेवाले उन मित्रोंसे है जो उनके स्वास्थ्यके ख्यालसे उनपर कुछ पाबन्दियाँ लगाये रखते थे।

प्रोफेसर साहबने एक तीसरा नियम भी बताया है, जिसका सम्बन्ध उपवास और आहारसे है। लेकिन, इसके बारेमें उन्होंने पूरी जानकारी नहीं दी है, इसलिए मैंने उनसे बाकी जानकारी भेजनेको कहा है। मिलनेपर ही इस नियमको पाठकोंके सामने रख सकूँगा। लेकिन इसमें कोई सन्देह नहीं कि चिन्ता न करने और सोनेकी आवश्यकतासे सम्बन्धित उपर्युक्त दो नियम सुनहले नियम हैं। शरीरको जितना चिन्ता खाती है उतना और कुछ नहीं, और जिसका ईश्वरमें विश्वास है उसे तो किसी बातकी चिन्ता करनेमें लज्जाका अनुभव होना चाहिए। इसमें सन्देह नहीं कि यह एक कठिन नियम है। इसका सीधा-सादा कारण यह है कि ईश्वरपर अधिकांश लोगोंका विश्वास या तो एक बौद्धिक विश्वास है या अंधविश्वास, अर्थात् किसी परिभाषातीत शक्तिका एक अंधविश्वासपूर्ण भय। लेकिन, चिन्तासे सर्वथा मुक्त होनेके लिए ईश्वरमें जीवन्त और सम्पूर्ण विश्वास जरूरी है। ऐसा विश्वास सहज ही नहीं आता। यह किसी पौधेकी तरह धीरे-धीरे विकसित होता है, इस ढंगसे कि उस विकासको देख पाना लगभग असम्भव होता है। उस पौधेको बराबर सच्ची प्रार्थनाके साथ-साथ बहनेवाले आँसुओंसे सींचते रहना पड़ता है। वे आँसू एक प्रेमीके आँसू होते हैं, जो अपने प्रेमपात्रसे एक क्षणका भी वियोग नहीं सह सकता या वे उस पश्चात्तापी व्यक्तिके आँसू होते हैं जो जानता है कि निश्चय ही उसमें कोई कलुष शेष है जो उसे अपने प्रेमपात्रसे वियुक्त रख रहा है।

चाहे जिस समय सो जानेकी क्षमता वृद्धावस्थाकी आवश्यकता-सी जान पड़ती है। जहाँ पहला नियम युवा-वृद्ध सभीपर लागू होता है, सोनेसे सम्बन्धित नियमका पालन नौजवानोंको नहीं करना चाहिए। इसका अधिकार तो सिर्फ शिशुओं और वृद्धोंको ही है। और ऐसी मीठी और निर्दोष नींदके लिए यह तो आवश्यक है ही कि हमारे जीवनका स्वर उस अनन्तके स्वरका अनुवर्ती रहे। इसे कोई आलसी या अफीमचीकी नींद समझनेकी भूल न करे। यह तो खोई हुई शक्ति प्राप्त करनेके लिए प्रकृति द्वारा दी गई एक ओषधि है, वृद्धावस्थामें जल्दी ही थक जानेवाले मस्तिष्कके लिए एक प्रकारका पोषण है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १-९-१९२७

३९४. पत्र : सतीशचन्द्र दासगुप्तको

गुडियायन
१ सितम्बर, १९२७

प्रिय सतीश बाबू,

साथमें जामिनी बाबूका पत्र भेज रहा हूँ। इसे पढ़कर फाड़ दीजिएगा। जामिनी बाबूकी जो ये तमाम अच्छाइयाँ प्रकट हो रही हैं, उससे मुझे बड़ी खुशी हुई। मैं जानता हूँ कि आप उनके साथ अधिकसे-अधिक नम्रतासे पेश आयेंगे।

सस्नेह,

आपका,
बापू

अंग्रेजी (जी० एन० १५७५) की फोटो-नकलसे।

३९५. पत्र : डॉ० कैलाशनाथ काटजूको

गुडियायम (दक्षिण भारत)
१ सितम्बर, १९२७

प्रिय मित्र,

शरीरमें कमजोरी है। इस पत्रको बोलकर लिखानेकी यही सफाई दे सकता हूँ। कमजोरी न होती तो मैं बड़ी खुशीसे इसे स्वयं लिखता। आपके पत्र और खादी-चन्देकी पहली किस्तके लिए धन्यवाद। आपका पत्र बहुत सुन्दर है और दूसरोंको प्रभावित कर सकता है। यदि आपको कोई आपत्ति न हो तो खादीसे सम्बन्धित उसका अंश मैं प्रकाशित करना चाहूँगा। पर यदि आप किसी भी कारणसे अपने नामके साथ या बिना नाम दिये उस पत्रका प्रकाशन पसन्द न करते हों तो अनुमति देनेसे मना करनेमें तनिक भी संकोच मत कीजिए।

काले अलपाकेकी चपकनकी बात यह है कि आप अगर बनवानेका 'आर्डर' दें तो मैं आपके लिए बहुत ही बढ़िया काली खादीकी एक चपकन बनवा सकता हूँ। वह अलपाकेकी चपकन-जैसी ही लगेगी। आप शायद नहीं जानते होंगे कि मद्रासमें बहुत-से एडवोकेट और वकील भी जिनके बाकी कपड़े खादीके नहीं होते, खादीकी चपकनें पहनते हैं। और चूँकि अब खादीकी चपकनें चल पड़ी हैं, इसलिए जिनकी वकालत अच्छी नहीं चलती, उनके लिए तो खादीकी चकपनें सस्ती होनेके कारण

खास तौरसे अनुकूल रहती हैं। पर आपके लिए तो सस्ती खरीदनेकी बात सोचूंगा ही नही। आप 'आर्डर' देंगे तो मैं आपके लिए सबसे सस्ती नहीं, बल्कि सबसे महँगी और नफीस चीज ही बनवाऊँगा।

अब खुद कातनेकी बात लीजिए। मैं आपकी इस बातसे बिलकुल सहमत हूँ कि खद्दरसे प्रेम रखनेके लिए यह जरूरी नहीं कि आदमी खुद कताई करे ही। लेकिन करोड़ों क्षुधार्त लोगोंसे प्रेम रखनेके लिए तो जरूरी है। इसके दो कारण हैं: पहला यह कि खुद कताई करनेसे गरीब जनताके साथ हमारा नित्यप्रति का सम्बन्ध कायम होता है; दूसरा यह कि समाजका हर जाना-माना सदस्य जब अपने हाथसे कताई करता है तो उससे कताईका एक वातावरण बनता है, जिससे कताईमें विश्वास न रखनेके कारण कातनेके अनिच्छुक ग्रामीण लोगोंको कातनेके लिए तैयार करनेमें कार्य-कर्त्ताओंको आसानी होती है। मैं एक तीसरा कारण और बताता हूँ, जो आप नापसन्द नही करेंगे। अच्छी तरह कते हुए सूतके हर गजके साथ देशकी सम्पदामें वृद्धि अवश्य होती है, चाहे वह वृद्धि बहुत ही सूक्ष्म क्यों न हो। आप जानते ही हैं कि कच-हरियोंमें अपनी बारीका इन्तजार करते हुए वकील क्या करते हैं। वे अपनी पेंसिलों या कागज बाँधनेके फीतोंसे खेल करते रहते हैं और नही तो समय काटनेका इससे भी बुरा तरीका यह अपनाते हैं कि अपने कलम या चाकू खोलकर उनसे सामनकी डेस्कपर खोदते रहते हैं। पता नही, आप राजी होंगे या नही, लेकिन मेरा तो जी चाहता है कि ऐसे समयके लिए आपको भी नन्ही-सी तकलीको अपनानेके लिए राजी कर सकूँ तो अच्छा हो। तकली चाँदी या सोने अथवा आप चाहें तो हाथी दाँतकी भी बनवाई जा सकती है और उसे एक सुन्दर और हलकी-सी खोलीमें रखा जा सकता है। तकली चलाना आसानीसे आ भी जाता है। क्या आप इसे अपनायेंगे? मैं जानता हूँ कि शुरूमें लोग इसपर हँसेंगे। फिर एक अवस्था ऐसी आयेगी जब लोग इसे न उपहाससे देखेंगे और न प्रशंसाकी दृष्टिसे। और अगर आप इन दोनों अवस्थाओंको पार कर जायेंगे तथा तकलीको अपनायेंगे तो अन्तमें दूसरे लोग भी आपका अनुकरण करने लगेंगे। आशा है, आप मेरे यह-सब कहनेका बुरा नही मानेंगे। आपने मुझे हार्दिक सद्भावनाके साथ थोड़ा-कुछ दिया है और यदि अब मैं और ज्यादाकी माँग करने लगूँ तो आपको ताज्जुब नही करना चाहिए।

सचमुच मैंने वकीलोंसे बड़े-बड़े त्यागकी माँग की थी। लेकिन १९२० और १९२१ के दिनोंकी याद करके मुझे लगता है कि मेरी माँग कोई बहुत असाधारण नही थी और मैं महसूस करता हूँ कि किसी समय मैं जिन लोगोंका हमपेशा था, उनसे सबसे अधिक त्यागकी माँग करनेका मुझे पूरा अधिकार था।

छोटे-छोटे बच्चे अब बड़े होकर मेरी गोदमें बैठनेमें शरमाने लगे हैं। खैर, उनसे इतना करानेकी कृपा कीजिए कि मैं जब भी उनसे मिलूँगा उनको मुझे अब भी याद करनेकी कीमत चुकानी ही पड़ेगी।

सौ रुपयेका आपका चेक मैं अखिल भारतीय चरखा संघके कोषाध्यक्षके पास भेज रहा हूँ।

हृदयसे आपका,

डॉ० कैलाशनाथ काटजू
९, एडमंटन रोड
इलाहाबाद

अंग्रेजी (एस० एन० १३२७५) की फोटो-नकलसे।

३९६. पत्र : गुलजार मुहम्मद 'अकील' को

वेल्लूर
१ सितम्बर, १९२७

प्यारे दोस्त,

पिछले महीनेकी १९ तारीखका आपका खत मिला। मैं 'यंग इंडिया' में प्रकाशित लेखकी प्रति इसके साथ भेज रहा हूँ। आपने मेरे पास जो उद्धरण भेजे हैं वे किसी भी तरह या किसी भी ढंगसे आपके दावेको साबित नहीं करते। मतलब यह कि उनसे यह साबित नहीं होता कि न्यायमूर्ति दिलीपसिंहके मनमें मुसलमानोंके प्रति किसी भी किस्मका कोई पूर्वाग्रह था, या यह कि पूर्वाग्रह न होते हुए भी उन्होंने एक ऐसा फैसला दे दिया जिसकी सोलह आने सचाईपर उनको खुद विश्वास नहीं था। कानूनका अर्थ लगानेके बारेमें दूसरे न्यायाधीशोंकी राय उनसे नहीं मिली, यह तो कोई नई बात नहीं। भारतमें ऐसा अक्सर होता रहा है, और भारतमें ही क्यों, सारी दुनियामें। दुनिया जबतक कायम रहेगी तबतक लोग पूरी ईमानदारी बरतते हुए भी एक ही कानूनके अलग-अलग अर्थ निकालते ही रहेंगे। और आपके भेजे उद्धरणोंमें से एक तो सीधे-सीधे मेरी इस रायपर ही मुहर लगाता है कि न्यायमूर्ति दिलीपसिंहके मनमें कोई भी पूर्वाग्रह नहीं था। मैं अब भी इस रायपर कायम हूँ कि 'रँगीला रसूल' को लेकर जो इतना सारा हल्ला-गुल्ला मचाया गया है, उतनेकी जरूरत ही नहीं थी, उससे बचा जा सकता था और यह सब बुरा हुआ। पर मैं आपको पहले भी लिख चुका हूँ[1] कि जबतक मुझे बिलकुल जरूरी नहीं लगने लग जायेगा तबतक मैं इस विवादमें नहीं पड़ना चाहता।

अंग्रेजी (एस० एन० १२३९०) की माइक्रोफिल्मसे।

१. ७ अगस्तके पत्रमें।

३९७. पत्र : एस० जी० वझेको

वेल्लूर
१ सितम्बर, १९२७

प्रिय वझे,

विचित्र वात है कि 'सर्वेंट्स ऑफ इंडिया' की प्रतिके साथ आपका पत्र मुझे ठीक उसी दिन मिला जिस दिन मैंने आपका वह हस्ताक्षरित लेख पढा जिसमें आप मेरी भी चर्चा ले आये हैं। उसकी कतरन मुझे एन्ड्रयूजने दी थी। उस कतरनको पढकर मैंने आपको यह लिखनेकी वात सोची थी कि आप जव भी किसी समस्याके वारेमें मुझसे लिखाना चाहें तो आपको मुझे वैसा लिख देना चाहिए। मैं चाहता तो वहुत हूँ, पर मुझे सचमुच रोज कुछ मिनटोंके लिए किसी स्थानीय समाचारपत्रको देखनेके अलावा अन्य किसी पत्र या पुस्तकको पढ़नेका विलकुल समय नही मिल पाता। हालकी घटनाओंकी मुझे जो थोड़ी जानकारी रहती है वह इसलिए कि मित्र लोग उनके वारेमें मेरे साथ पत्र-व्यवहार करते रहते हैं। अव मैं आपके पत्रका विषय लेता हूँ।

आपका पत्र आनेसे पहले मैंने एन्ड्रयूजके साथ पूर्व आफ्रिकी और कुछ अन्य समस्याओंके वारेमें वात की थी। उसमें वडी सावधानीकी जरूरत है। पूर्व आफ्रिकाके वारेमें मैं उतने ही अधिकारपूर्वक राय देने योग्य अपनेको नही समझता जितने अधिकारके साथ मैं दक्षिण आफ्रिकाके वारेमें कह सकता हूँ। मेरा खयाल है कि पूर्व आफ्रिकी समस्याके वारेमें भी अपने विचार लिखनेका जो काम मुझे सौंपा गया था वह इसलिए नही कि मुझे वहाँकी स्थानीय परिस्थिति और सभी समस्याओंकी वहुत अच्छी जानकारी थी, वल्कि इसलिए कि एक लम्वे अर्सेतक दक्षिण आफ्रिकी समस्याका काफी गम्भीरतासे अध्ययन करनेके कारण मेरे अन्दर, जैसा कि मुझे लगता है, सही निर्णयपर पहुँचनेकी क्षमता आ गई है। मेरी अपनी राय यह है कि हमारा पूर्व आफ्रिकाके विधानमण्डलमें अपना कोई प्रतिनिधि न भेजना ही ज्यादा अच्छा रहेगा। हम उसमें अपने जो भी प्रतिनिधि भेजेंगे उनपर यूरोपीय प्रतिनिधि हावी रहेंगे और वे उसी देशमें जन्मे लोगोंके उचित अधिकारोंका हनन करनेके लिए उनका इस्तेमाल करेंगे। इसीलिए मैं जातिके आधारपर प्रतिनिधित्व स्वीकार करनेके पक्षमें नही हूँ। यदि मेरा वस चले तो मैं वहाँ वसे भारतीयोंका मताधिकार उन्ही शर्तोंपर कायम रखूँ जो यूरोपीयोंको मिले हुए हैं। परन्तु यह तभी हो सकता है जव यूरोपीय लोग शैक्षणिक योग्यताकी वात मान लें, जो वे नही मानेंगे, क्योंकि वे उपनिवेशोंमें हमेशा "एक व्यक्ति पीछे एक मत" का सिद्धान्त ही लागू करना चाहते हैं। मैं जिस वातके लिए प्रयत्नशील हूँ और जिसके लिए मैं मृत्युपर्यन्त संघर्ष करता रहूँगा वह है वहाँ जाकर वसनेका हमारा अधिकार और दक्षिण आफ्रिका तथा रोडेशियासे भिन्न भू-सम्पत्तिके स्वामी वननेके हमारे अप्रतिवन्धित अधिकार। दक्षिण

आफ्रिकामें हमने सबसे पहले जाकर उसे रहने लायक बनाया। जहाँतक मुझे मालूम है, भारतीय किसानोंने आफ्रिकीयोंको कोई नुकसान नहीं पहुँचाया है। इसलिए हम अधिकांशतया आफ्रिकियोंकी सद्भावनापर ही पूरी तरहसे निर्भर रहे। इसलिए सर्वथा उचित तो यही है कि गोरे हमें फिर इस बातका इत्मीनान दिलायें कि यह तो ठीक है कि उनके पास शक्ति है इसलिए वे हमारे अधिकारोंका कितना भी हनन कर सकते हैं. . .[1] परन्तु तब मुझे इन दो बुनियादी प्रश्नोंपर किंचित् भी कोई समझौता नहीं करना चाहिए। अभी इस समय जबकि मेरी राय, जहाँतक प्रश्नके राजनीतिक पहलूका सम्बन्ध है, . . .[2] अवस्थामें है, मैं सार्वजनिक रूपसे कुछ भी लिखना या कहना नही चाहता। बादमें ऐसा करना बिलकुल ही जरूरी हो जाये तो बात दूसरी है। मैं जानता हूँ और यह जानकर मन दुःखी होता है कि पूर्व आफ्रिकामें हमारे भाई सही ढंगसे काम नहीं कर रहे हैं और उनके नेतागण स्वार्थरहित नहीं हैं।

हृदयसे आपका,

श्री एस० जी० वझे
सर्वेंट्स ऑफ इंडिया सोसायटी
पूना सिटी

अंग्रेजी (एस० एन० १३२७६) की फोटो-नकलसे।

३९८. पत्र : बाल कालेलकरको

आरनी
२ सितम्बर, १९२७

चि० बाल,

तुम्हारा पत्र मिला। मुझे बहुत अच्छा लगा। समयके अभावमें जल्दी जवाब नहीं दे सका। तुम्हारे दो प्रश्नोंका उत्तर देता हूँ। ब्रह्मचारी भोगका त्याग केवल श्रद्धाके कारण, माता-पिताकी आज्ञासे अथवा ऐसा कहो कि प्रचलित रीतिकी प्रेरणाके अधीन करता है। उसके त्यागमें आज्ञाका पालन है, ज्ञान नही। और यदि वह इस त्यागका पालन सदा न कर सकता हो तो विद्याभ्यास पूरा होनेके बाद उसे एक मर्यादाके भीतर भोग भोगनेकी छूट होती है। किन्तु संन्यासी भोगका त्याग ज्ञानपूर्वक और स्वेच्छासे करता है। इसके सिवा त्यागका व्रत लेनेके बाद वह अपने लिए भोगके जीवनमें वापस आनेकी छूट नहीं रखता, रख भी नहीं सकता। ये दोनों ही त्याग व्यक्ति और समाजके लिए अत्यन्त आवश्यक हैं।

१. मूलमें यह वाक्य अधूरा रह गया लगता है।
२. मूलमें यहाँ स्थान रिक्त है।

अब दूसरा प्रश्न। अहिंसाका अर्थ है — किसीको भी मन, वचन या शरीरसे, उसके अनिष्टकी इच्छा करके अथवा स्वार्थ-सिद्धिके लिए दुःख न देना। यदि हम अपने माता-पिताके हितमें किसी तीसरे व्यक्तिके अनिष्टकी इच्छा करें तो यह हिंसा ही है और इस तरह किसीके अनिष्टकी इच्छा करनेसे दुनियाका या स्वयं माता-पिताका कल्याण नहीं होता, यह हम अपने ज्ञानका उपयोग करके देख सकते हैं और सिद्ध भी कर सकते हैं। इसीलिए मैंने यह लिखा था कि जितनी इच्छा हम अपने कल्याणकी करते हैं उतनी ही इच्छा हम दुनियाके कल्याणकी करें, इस विचारमें अहिंसाकी जड़ है। और मेरा विश्वास है कि अहिंसाकी खोज इसी अनुभवके आधार-पर हुई होगी। इस तरह तुम देखोगे कि हम इस बातको स्वतन्त्र रीतिसे भी सिद्ध कर सकते हैं कि दुनियाके कल्याणकी इच्छा करना वांछनीय है, इतना ही नहीं बल्कि यदि हम अहिंसाके धर्मका पालन करते हैं तो उस धर्मका पालन करनेके लिए भी हमारा यह कर्त्तव्य है कि हम जगत्के कल्याणकी उतनी ही इच्छा करें जितनी अपने कल्याणकी करते हैं। अगर यह बात हम बचपनसे ही समझ जायें तो हमारी बुद्धि उसे स्वीकार कर लेती है, और वह हमारे हृदयको भी जँच जाती है। मतलब यह कि ब्रह्मचर्य आश्रममें हम जिस त्यागका पालन केवल श्रद्धापूर्वक करते हैं उस त्यागका पालन यदि हमेशा करनेकी प्रतिज्ञा कर ले तो हम संन्यासी हो जायें। भूतकालमें शंकराचार्यने ऐसा ही किया था। हमारे अपने युगमें दयानन्दने यही किया। हम सब ऐसा नहीं कर सकते, यह हमारी एक कमी है और जगत्का कल्याण करनेके हमारे प्रयत्नमें यह एक बड़ी बाधा है। लेकिन यह सब हम केवल बुद्धिका प्रयोग करके नहीं कर सकते। किन्तु बुद्धिका उपयोग करके प्रतिदिन यदि हम इस सत्यको अपने हृदयमें अंकित करते रहें और वह अंकित हो जाये तो इसका फल यह होगा कि अपने सर्वस्वका त्याग करनेमें हमें सारी दुनिया भी क्यों न रोके हम किसीके रोके नहीं रुकेंगे। तुम्हारे मनमें कोई और विशेष प्रश्न उठता हो तो पूछना। यदि यह पत्र दूसरे सब विद्यार्थियोंको पढ़वा सको तो पढ़वा देना।

[गुजरातीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरी।

सौजन्य : नारायण देसाई

३९९. भाषण: आरनीमें[1]

२ सितम्बर, १९२७

आप मन्दिरोंसे कपड़ेका एक टुकड़ा, या नारियल या प्रसादके तौरपर कुछ भी पाकर प्रसन्न होते हैं। लेकिन अफसोस, मन्दिरोंसे सारी पवित्रता चली गई है। मैं तो आपसे यही कहूँगा कि आप प्रसादके बजाय खादीके लिए श्रद्धा और भक्तिकी भावना जगाइए। यह दरिद्रनारायणके जीवन्त मन्दिरमें काती और बुनी जाती है। हमारे धर्म और समाजमें मन्दिरोंके लिए उचित स्थान वहींतक है जहाँ-तक वे हमें भारतके करोड़ों भूखे-नंगे लोगोंकी ओर मैत्री और भ्रातृत्वका हाथ बढ़ानेकी प्रेरणा देते हैं। लेकिन, यदि ये मन्दिर हमारे और सर्वसाधारणके बीच दीवारें बनकर खड़े होते हैं तो ये हमें बाँधनेवाली बेड़ीकी कड़ियाँ ढालनेके साधन-मात्र हैं। यदि आप सच्ची भावनासे खादी पहनेंगे तो आप स्वयंको और इन मन्दिरोंको भी पवित्र बनायेंगे। आपको यह समझानेकी जरूरत नहीं है कि इससे किस प्रकार अनिवार्यतः अस्पृश्यता-निवारणमें सहायता मिलेगी।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, ८-९-१९२७

४००. भाषण: अर्काटमें

२ सितम्बर, १९२७

आपके हार्दिक स्वागत और थैलीकी भेंटके लिए मैं आपका बड़ा आभारी हूँ। परन्तु मैं इतनी रकमसे सन्तुष्ट होनेवाला नहीं हूँ। मैं जानता हूँ कि इस सभामें अनेक लोग हैं, जिन्होंने हमारे गरीब भाइयोंके लिए जमा किये गये इस कोषमें कुछ भी नहीं दिया है। आपको खद्दर पहनकर कताईको प्रोत्साहन देना चाहिए। मुझे यह देखकर बड़ी खुशी हुई कि यहाँ हिन्दू और मुसलमान दोनों परस्पर सहयोगकी भावनासे एक साथ बैठते हैं। वे साम्प्रदायिक विद्वेषके शिकार उत्तर भारतके हिन्दुओं और मुसलमानोंके समान आचरण नहीं करते।

कल जब मैं एक हिन्दू मन्दिर जा रहा था, रास्तेमें मुझे 'गुरुक्कल' पुजारीने प्रसाद दिया। मैंने उससे कहा कि मैं तो परिया हूँ और क्या आप किसी परियाको मन्दिरमें प्रवेश करने देंगे। वह हँसने लगा और उसने कहा कि वह धीरे-धीरे वैसा करने लगेगा। मैं यहाँ उपस्थित सभी स्त्री-पुरुषोंसे अनुरोध करता हूँ कि परिया लोगोंको बराबरीका दर्जा दीजिए और उनके साथ बेहिचक मिलिए-जुलिए।

१. महादेव देसाईके "साप्ताहिक पत्र" से।

चूंकि मेरे पास चाँदीकी इस तश्तरीको रखनेकी कोई जगह नही है, इसलिए में इसको नीलाम करूँगा। स्वयंसेवक लोग आपके बीच चन्दा लेने जायेंगे। आपसे जितना बन पड़े, उनको दीजिए। मुझे अभी एक दूसरी जगह भी जाना है, इसलिए में अपना भाषण समाप्त कर रहा हूँ। मै आपको थैली और मानपत्रोंके लिए एक बार फिर धन्यवाद देता हूँ।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, ५-९-१९२७

४०१. पत्र : बलवन्तराय मेहताको

[२ सितम्बर १९२७ के पश्चात्][1]

तुम्हारा पत्र मिला। तुम विश्वास रखना कि मै जल्दीमें कोई निर्णय नही करूँगा। अभी तो मेरे मनमें जो शंकाएँ उत्पन्न हुई है उन्हें मै उन लोगोको बता रहा हूँ जिन्हें उन्हें जानना चाहिए और इस तरह निर्णयपर पहुँचनेके लिए आवश्यक सहायता प्राप्त कर रहा हूँ। का० और देवदासके बीच मेरे मनमें कोई भेद नही है। का०के विषयमें शंका करना मुझे अच्छा नही लगता। का० और का० तो कौटुम्बिक सम्बन्धकी दृष्टिसे मेरे बच्चों-जैसे हैं। इसलिए यह तो हो ही नही सकता कि मैं जल्दीमें किसी निश्चयपर पहुँच जाऊँ।

तुम्हारी दलीलमें मै कोई वजन नही देखता। विषय-वासना युवा और वृद्धका भेद नहीं करती इसका प्रत्यक्ष प्रमाण में स्वयं हूँ। आज भी मुझे अपनी रक्षाके लिए अपने आसपास अनेक तरहकी दीवारें खड़ी करनी पड़ती हैं। और इसके बावजूद अभी कुछ वर्ष हुए मैं ऐसी स्थितिमें जा पहुँचा था जिसमें गिरनेका भय था। इसके सिवा, विषय-वासना समयको भी नही देखती। यह मान ले कि भाई का०के ब्रह्मचर्य सम्बन्धी विचार शुद्ध थे तब भी वे वासनाके शिकार हो गये हों तो आश्चर्य नही होना चाहिए। अपनी भूल स्वीकार करते हुए एक नवयुवकने अभी बंगलोरमें मुझे ऐसी ही एक घटना सुनाई थी। वह ब्रह्मचारी माना जाता है। अपने परिवारमें उसका आदर है। उसके विषयमें कोई एकाएक शका नही कर सकता। इंटरमीडिएटमें पढ़ता है। वह अपने ही कुटुम्बकी एक विधवा स्त्रीसे नही बच सका। 'इस तापसे मेरा उद्धार कीजिए' ऐसा कहते हुए वह मेरे पास आया। अपने एक मित्रके पास प्रतिज्ञा लेनेके बाद भी वह फिर गिरा। इसलिए वह मेरी शरणमें आया। मैं उसे क्या शरण देता? लेकिन यह तो विषयान्तर हो गया।

मैं जो समझा हूँ वह यह है : का०का का०के और उसके कुटुम्बके साथ जितना सामान्यत. होना चाहिए उससे कुछ अधिक हेलमेल हो गया। दोनोंको रोका गया और वे समझ भी गये तथा उन्होंने ज्यादा मिलना-जुलना बन्द करनेकी बात मान

1. साधन-सूत्रमें यह पत्र २ सितम्बरकी सामग्रीके बाद दिया गया है।

ली। किन्तु इसके बावजूद वे एकान्तमें मिलते हुए देखे गये। इसलिए मगनलालने उपवास किया। लेकिन तब भी वे छिपकर मिले। अब अगर ये सब बातें सही हैं तो मैं अपनी शंका दूर नहीं कर सकता। और यदि का०से भूल हो ही गई हो तो ऐसे आदमीको पैसेके लालचका शिकार होनेमें क्या देर लगती है? किन्तु ये सब एक ही बातके आधारपर बाँधे गये अनुमान-मात्र है। जो मनुष्य समझ-बूझकर असत्यका आचरण करता है उसके सम्बन्धमें मेरे मनमें अनेक प्रकारकी शंकाएँ आये बिना नही रहती। मै अभी जाँच-पड़ताल कर रहा हूँ। तुमने मगनलालकी राय उद्धृत की है; मैं उससे अवगत हूँ। तुम यह तो जानते ही होगे कि उनकी विवेक-शक्तिपर मेरा बहुत विश्वास है। उनके साथ भी मैं पत्र-व्यवहार कर रहा हूँ।

का०ने कोई रकम उड़ा ली हो तो तुम या उसके पिता उस रकमकी भरपाई कर देंगे, यह प्रश्न तो यहाँ उठता ही नहीं। मैं तो इस प्रश्नपर केवल नैतिक दृष्टिसे विचार कर रहा हूँ।

'नवजीवन'में यदि मैं अपनी कलमसे अभी कुछ लिखना चाहूँ तो उसमें कहीं-न-कहीं मेरी शंकाकी छाया आये बिना न रहेगी। इसलिए यदि तुम कोई मसविदा तैयार करके भेजो तो मैं उसपर विचार करूँगा और सम्भव हुआ तो छापूँगा।

आत्महत्याको मैंने सस्ता नहीं बना दिया है। मेरी रायमें दो ही स्थितियाँ ऐसी है जब आत्महत्या धर्म हो सकती है। इस रायके लिए अनेक प्रमाण है। जब किसीपर विषय-वासना हावी हो गई हो और उसमें अपनेको रोक सकने जितना संयम तो न हो किन्तु आत्मघात कर सकने जितना भान बाकी हो तो उसे आत्मघात करना चाहिए। ऐसी स्थितिमें आत्मघात करना उसका कर्त्तव्य होगा। इसी तरह जब कोई नरपशु किसी स्त्रीपर बलात्कार करना चाहता हो [और स्त्री असहाय हो] तब स्त्रीका यह धर्म है कि वह आत्मघात करके अपनी रक्षा करे। इन दो उदाहरणोंकी चर्चा मैंने आश्रममें कई बार की है और मुझे लगता है कि मेरा यह विचार ठीक है। का०ने ऊपर उल्लिखित तीनों भूलें की हों तो भी आश्रमकी शिक्षाके अनुसार इसमें न तो आत्मघात करना धर्म सिद्ध होता है और न वहाँसे भाग जाना ही। उक्त स्थितिमें तो प्रायश्चित्त ही धर्म है। किन्तु का०के जो अनेक पत्र मेरे पास है उनसे तो यही जान पड़ता है कि आश्रममें स्वीकृत अनेक सिद्धान्तोंसे उसका विरोध था।

मोहनदासके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरी।
सौजन्य : नारायण देसाई

४०२. तार: मीराबहनको

मद्रास
३ सितम्बर, १९२७

मीराबहन
सत्याग्रहाश्रम, वर्धा

अपेंडिक्स और आँखोंकी परीक्षाके लिए बम्बई जा सकती हो। तार द्वारा अपना हाल बताओ।

बापू

अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ५२६६) से।
सौजन्य: मीराबहन

४०३. तार: मीराबहनको

मद्रास
३ सितम्बर, १९२७

मीराबहन
सत्याग्रहाश्रम, वर्धा

तार मिला। बहुत चिन्तित। ईश्वर तुम्हारी रक्षा करे। हर दिन अपना समाचार भेजती रहो। स्नेह। एन्ड्रयूज आ रहे हैं।

बापू

अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ५२६७)से।
सौजन्य: मीराबहन

४०४. भाषण : पेरावेल्लूरमें मजदूरोंके समक्ष

३ सितम्बर, १९२७

मित्रो,

मानपत्र और दो थैलियोंके लिए धन्यवाद। खादीका काम आगे बढ़ानेके लिए आपने एक क्लब[1] खोला है। उसके लिए आपको मेरी बधाई। आप जिस विलक्षण ढंगसे उसका प्रचार कर रहे हैं, वह हम सबके लिए अनुकरणीय है। गरीब आदमीके लिए तो बिना सूदके कर्ज पानेका यह सबसे आसान तरीका है। पर जैसा कि अधिकांश कामोंमें होता है इस काममें भी सभी सदस्योंकी ईमानदारी एक अनिवार्य शर्त है। आप जानते ही हैं कि मैंने आपने-आपको भी मजदूर बना लिया है और पिछले पैंतीस वर्षोंसे मैं उनके बीच रहकर उनके साथ और उनके लिए काम करता आ रहा हूँ। इसलिए मुझे मजदूरोंसे ताल्लुक रखनेवाली हर चीजमें गहरी दिलचस्पी है। अभी मैं इस सवालकी चर्चा नहीं करना चाहता कि इस देशके और विशेषकर यहाँके मजदूर किन कठिनाइयों और असुविधाओंको झेलते हुए काम कर रहे हैं। सच तो यह है कि आपके विशेष कष्टों और विशिष्ट परिस्थितियोंके बारेमें मुझे कोई जानकारी नहीं। इस अवसरपर तो मैं सबसे ज्यादा जोर इसी बातपर देना चाहता हूँ कि मजदूर अपने लिए खुद क्या कर सकते हैं।

मजदूरोंके लिए एक बड़ा अभिशाप यह है कि उनका समाज शराबखोरीकी लतसे बुरी तरह जकड़ा हुआ है। यदि आप लोग समय रहते इससे अपना पीछा नहीं छुड़ा लेंगे तो अपनी कब्रें आप ही खोदेंगे। शराबखोरीकी लत जब किसीपर हावी हो जाती है तो उसे पशु बना देती है। फिर उसे अपनी बहन और अपनी पत्नीमें कोई भेद नहीं दिखाई पड़ता। इसलिए मेरी आप सबको यही सलाह है कि आप शराब पीना छोड़ दें। मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि एक बार इसके चक्करमें फँस जानेवालेको इसका कितना बड़ा लालच हो जाता है; लेकिन ईश्वरने मानवको ऐसे लालच और ऐसी खामियोंपर काबू पानेकी क्षमता भी दी है। जरूरत सिर्फ इस बातकी है कि वह इस क्षमताका उपयोग करे। मैंने मजदूरोंमें दूसरी खराबी यह देखी है कि वे संगठनकी शक्ति नहीं पहचानते। मजदूरोंको अपने अन्दर यह समझ पैदा करनी चाहिए कि सबके कल्याणमें ही व्यक्तिका कल्याण है। इसलिए आप लोगोंको आपसमें भाईचारेकी वास्तविक भावना पैदा करनी चाहिए। मुझे मालूम है कि भारतके कई भागोंमें मजदूर अपना पैसा जुएमें बरबाद करते हैं। यह बड़ी बुरी आदत है। आपको इसे छोड़ देना चाहिए। भारतके कुछ हिस्सोंमें मजदूरोंमें नैतिकताकी भी वैसी भावना नहीं है, जैसी होनी चाहिए। यदि हम मजदूरोंकी हैसियतसे भारतीय समाजमें और राजनीतिक

१. गांधी क्लब।

क्षेत्रमें अपनेको एक शक्तिके रूपमें प्रतिष्ठित करना चाहते है तो हमारे लिए यह बिलकुल जरूरी है कि हम विवाह-सूत्रकी अनिवार्य बाध्यताको स्वीकार करें और उसके कारण हमारे ऊपर जो दायित्व अनिवार्य रूपसे आ जाते हैं उन सभीको स्वीकार करे। खादीका काम आगे बढ़ानेके हेतु यह क्लब कायम करनेके लिए मैंने आपको बधाई दी है। पर इस क्लबके सदस्य केवल सौ नही रहने चाहिए, बल्कि आपमें से प्रत्येकको उसका सदस्य बन जाना चाहिए। याद रखिए कि खादी हमारा सम्बन्ध उन लोगोंके साथ जोड़ती है जो आपसे भी कही अधिक गरीब है। विदेशी वस्त्रों या मिलमें बने वस्त्रोको भी उतार फेंकनेके लिए आपको कुछ खास नही करना पड़ेगा। आपको बस इतना ही करना पड़ेगा कि आप गाँवोमें रहनेवाले, भूखसे पीड़ित अपने करोड़ों भाइयोंका खयाल करें। मैंने अभी-अभी इस स्थान पर वहाँ आधारशिला[1] रखी थी, उससे मुझे बड़ी खुशी हासिल हुई है। ईश्वर आपको मेरे सुझाये हुए काम करनेकी शक्ति प्रदान करे। आप यदि इन कामोंको करे तो आप देखेंगे कि आपकी ज्यादातर कठिनाइयाँ अधिक प्रयासके बिना ही दूर हो जायेंगी।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, ५-९-१९२७

४०५. भाषण : मद्रासमें विद्यार्थियोंके समक्ष

३ सितम्बर, १९२७

आपका कहना है कि आपने एक छोटी-सी थैली भेंट की है, आप जितनी चाहते थे, उससे कही छोटी थैली दे पाये हैं। मैं भी आपकी इस भावनाकी ताईद करता हूँ कि मुझे भेंट की गई यह थैली[2] मद्रासके विद्यार्थियोके लिहाजसे सचमुच बहुत ही छोटी है। और फिर यह थैली दी भी गई है किस कामके लिए? जिन्हें जरूरत है ऐसे कुछ आधुनिक विद्यार्थियोमें बाँटनेके लिए थोड़े-से कॉलर या टाइयाँ खरीदनेके लिए नही, किसी छोटे-मोटे कामके लिए नही। यह तो भारतके सात लाख गाँवोमें भूखो मरते करोड़ों लोगोके लिए दी गई है। और मुझे पूरा भरोसा है कि अगर आप विद्यार्थियोने इन करोड़ो लोगोकी भुखमरीका ठीक-ठीक अर्थ ग्रहण कर लिया होता तो आप इससे कही बड़ी रकम जमा कर लेते। यदि इन करोड़ो भूखे-नंगे इंसानोंकी हालतसे आप मेरी ही तरह वाकिफ होते, और मेरी तो आपसे यही अपेक्षा है कि आपको होना चाहिए, तो आप कही ज्यादा रुपये इकट्ठे करते। लेकिन आपको यह जानकर थोड़ी राहत मिलेगी कि अन्य नगरोके विद्यार्थियोंकी तुलनामें आपने कुछ कम जमा नहीं किया। इतना ही नही कि अन्य स्थानोके विद्यार्थियोंकी तुलनामें आपकी थैली छोटी नही है, बल्कि आपकी थैलीके साथ आपके सभापतिने मुझे यह आश्वासन भी दिया है कि आपकी भेंट की हुई थैली, मैं जो खादीका काम कर रहा हूँ, उसमें आपके

१. पेराम्बूरके रेलवे मजदूर संघके भवनकी आधारशिला।

२. केवल १,६०७ रुपये।

सहयोगका प्रतीक है और इस आश्वासनके साथ मैं आपकी थैलीको सचमुच बड़ी मूल्यवान मानता हूँ और मुझे यह जानकर और भी ज्यादा खुशी हुई है कि अकेले ही सबसे अधिक चन्दा जमा करनेका श्रेय एक छात्राको[1] है। सचमुच मेरी यही इच्छा है कि देशसेवाके काममें भारतकी सभी तरुणियाँ यहाँके सभी तरुणोंसे आगे निकलकर दिखा दें। सेवाके क्षेत्रमें महिलाएँ आगे क्यों न रहें? आपकी थैली मुझे कुछ सिखाती है और आपको भी इससे एक सीख लेनी चाहिए। वह मुझे तो यह सिखाती है कि विद्यार्थियोंसे इतनी सारी राशियाँ लेनेके बाद मुझे आप लोगोंके प्रति ही नहीं, भूखों मरती असंख्य जनताके प्रति भी अपना दायित्व और ज्यादा अच्छी तरह समझना चाहिए। आप इससे यह सीख ले कि इस थैलीके लिए अपनी-अपनी शक्ति-भर देनेके बाद आपको इन करोड़ों ग्रामवासियोंकी दशाका अध्ययन करना चाहिए, जिससे कि आप अपनेको उनकी सेवाके अधिक उपयुक्त बना सकें। और यदि आप यह करेंगे तो आपको इस पीड़ाजनक तथ्यका पता चलेगा कि आपकी शिक्षाका खर्च इन करोड़ों ग्रामवासियोंकी खून-पसीनेकी कमाईसे ही चलता है। आशा है, यहाँ भी हर विद्यार्थीको मालूम है कि वह अपनी शिक्षाके लिए जो फीस देता है, इससे उसकी शिक्षापर होनेवाले पूरे व्ययका भुगतान किसी भी तरह नहीं किया जा सकता। आशा है, विद्यार्थी यह भी जानते-समझते है कि शिक्षाका व्यय शराब और नशीली चीजोंसे प्राप्त होनेवाले राजस्वसे पूरा किया जाता है।

अब आप खुद सोचिए कि आपकी शिक्षाके लिए पैसा जुटानेवाले इन लोगोंके आप कितने ऋणी हैं। इसलिए मेरा सुझाव है कि आपको इन करोड़ों क्षुधार्त देश-भाइयोंकी अनथक सेवा करनी चाहिए और आपको तबतक चैनकी साँस नहीं लेनी चाहिए जबतक कि यह जानलेवा गरीबी देशसे दूर नहीं हो जाती। और मैं आपको बतला चुका हूँ कि इसे दूर करनेका सबसे आसान और एकमात्र साधन खद्दर ही है। यन्त्रोंके वर्चस्वके इस युगमें चरखा और खादीके विरुद्ध ऊपरसे सही और सुन्दर दिखनेवाले तरह-तरहके तर्क प्रस्तुत किये जायेंगे। आपको उनसे भ्रमित नहीं होना चाहिए। चरखा और खादीके पक्षमें दिये जा सकनेवाले सभी तर्कोंपर मैं यहाँ विचार नहीं करना चाहता, लेकिन मैं चाहूँगा कि आप सब इस विषयपर एक छोटी-सी पुस्तिका देखें। वह पुस्तिका अखिल भारतीय चरखा संघकी ओरसे प्रकाशित हुई है और उसके लेखक दो अध्येता, प्रो० पुणताम्बेकर और श्री एन० एस० वरदाचारी हैं। आपको उस पुस्तिकामें अधिकांश तर्क बड़े सुविचारित ढंगसे एक क्रममें सँजोये हुए मिल जायेंगे। तर्कोंके आधारपर सिद्ध किया गया है कि देशमें मौजूद भुखमरीके व्यापक दुःखको कम करनेका एकमात्र साधन खादी और केवल खादी ही बन सकती है। यहाँ मैंने अपने आशयको सुनिश्चित बनानेके लिए जिन दो शब्दों अर्थात् 'व्यापक' और 'कम करना' का प्रयोग किया है, उन्हें आप ध्यानमें रखें। ऐसा न करें कि इनका ध्यान रखे बिना आप खादीके पक्षमें कोई ऐसा तर्क प्रस्तुत कर दें जैसा तर्क कभी किसी खादी-समर्थकने दिया ही नहीं है और फिर

१. लॉ कालेजकी कु० आनन्दाबाईने डेढ़ सौ रुपये अकेले ही जमा किये थे।

आप उसका खण्डन करने लगें। और यदि आपने खादीके इस सन्देशको समझ लिया हो तो आप तबतक चैनकी साँस नहीं लेंगे जबतक कि आप एक-एक इंच विदेशी कपड़ेको त्यागकर उसके बदले हाथकते सूतकी हाथबुनी खादी न अपना लें।

परन्तु मैं बता चुका हूँ कि खादी तो वास्तवमें आपके कामका एक बहुत-ही छोटा-सा अंग है। यह तो सेवाकी शुरुआत है और एक केन्द्रबिन्दु है जिसके चारों ओर दूसरी सभी प्रवृत्तियोंका आरम्भ और विकास किया जा सकता है। भारतके गाँवोंसे भयंकर गरीबीको दूर करनेके इस सवालको हल करनेके लिए आपको अपना चरित्र ऐसा बनाना पड़ेगा जिसपर कोई भी अँगुली न उठा सके। इस चरित्र-रूपी सयोजक तत्त्वके बिना आप समाजके बिखरे अवयवोंको जोड़ नहीं पायेंगे। मुझे भरोसा है कि मुझसे यह सुनकर आपकी आत्माको बड़ा बल मिलेगा कि आजकल गुजरातके विद्यार्थी बाढ़ग्रस्त क्षेत्रोंमें आश्चर्यजनक काम कर रहे हैं। यदि उनके हृदयमें विपत्तिग्रस्त लोगोंके लिए अपार प्रेम न उमड़ रहा होता और इस सेवाके पीछे उनकी सच्चरित्रता न होती तो वे यह-सब नहीं कर सकते थे। इनमें से कुछ अपनी पढ़ाई छोड़कर, कंधोंपर कुदालियाँ, फावड़े और टोकरियाँ लेकर गाँवोंमें चले गये हैं और उन्होंने मृत पशुओं तथा सड़े अनाजकी दुर्गन्धसे भरे उन गाँवोंको फिरसे आदमियोंके रहने योग्य बना दिया है। उन्होंने इसका इन्तजार नहीं किया कि मरे हुए पशुओंको पंचमवर्णके भाई ही आकर उठायें, बल्कि खुद ही लाशोंको हटा दिया। और मैं जानता हूँ कि चन्द गुजराती विद्यार्थी जो कर सके हैं, अवसर मिलनेपर आपमें से हर युवक या युवतीके लिए भी वैसा करना सम्भव है। अब मुझे आपका ज्यादा वक्त नहीं लेना चाहिए और न स्वयं इतना बोलना चाहिए कि मद्रास आनेके पहले ही दिन अपने-आपको बिलकुल थका लूँ। वैसे और भी बहुत-सी बातें हैं जिनके बारेमें मैं आपसे बात करना चाहता था। मैं तो चाहता था कि उनके विषयमें भी बात करनेका समय मेरे पास होता। पर मैं आपसे एक छोटा-सा अनुरोध अवश्य करूँगा। वेल्लूरके विद्यार्थियोंके समक्ष मैंने एक काफी सुविचारित भाषण[1] दिया था और मुझे बताया गया है कि समाचारपत्रोंने उसे पूरा-का-पूरा, लगभग शब्दशः प्रकाशित किया है। आपमें से कुछने वह शायद पढ भी लिया होगा। पर जिन लोगोंने पढ़ लिया है उनको भी एक बार फिर सावधानीसे उसे पढना चाहिए और जिन्होंने नहीं पढा है, उनसे मेरा अनुरोध है कि किसीसे लेकर या खरीदकर उसे पढ़ अवश्य लें। भविष्यको आपसे बड़ी आशा है और मेरी बड़ी अभिलाषा है कि भारत-भरके विद्यार्थी यह महसूस करें कि इस देशमें जन्म लेनेके कारण ही नहीं, बल्कि दबे-पिसे गरीब ग्रामवासियोंके खून-पसीनेके पैसोंके बलपर शिक्षित बन पानेके कारण भी इस देशके प्रति उनका क्या कर्त्तव्य हो जाता है। जब भी स्वार्थ आपके ऊपर हावी होने लगे और आप देशको भुलाकर सिर्फ अपने स्वार्थकी बात सोचने लगें, उस समय आप मेरी इन बातोंको जरूर याद कर लीजिए — उन बातोंको जो मैंने आज शाम आपसे कही हैं। आप हमेशा याद रखिए कि शिक्षा प्राप्त करनेके दौरान आपके

१. देखिए "भाषण: वेल्लूरके वूरीज कालेजमें", ३०-८-१९२७।

सिरपर देशका यह ऋण दिन-दिन कितना बढ़ता जा रहा है। इस ऋणको याद करके आप हर प्रलोभनसे ऊपर उठें, यही मेरी कामना है।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, ५-९-१९२७

४०६. बाढ़के बाद

बाढ़ संकट-निवारणके सम्बन्धमें मेरे पास जो पत्र आते हैं और 'नवजीवन' में जो खबरें आती हैं उनसे मैं देखता हूँ कि स्वयंसेवक धीरजके साथ काम कर रहे हैं और अभी थके नहीं हैं। लेकिन मुझे ऐसा लगता है कि हम सबको अभी मजूरीकी आदत नहीं पड़ी है। कुछ काम हमें अच्छे नहीं लगते और कुछ हमें सूझते नहीं हैं इसलिए वे रह जाते हैं अथवा उनके होनेमें विलम्ब या निरर्थक खर्च होता है। उदाहरणके लिए, अनेक स्वयंसेवकोंकी रिपोर्टें मेरे पास पड़ी हैं जिनमें मुझे निम्न वाक्य पढ़नेको मिले हैं।

> यहाँके कुएँका पानी बास देने लगा है।
>
> यहाँके कुएँकी जगत गिरने-गिरनेको हो रही है।
>
> यहाँके कुएँमें भैंस गिर गई है और पानी सड़ गया है। फिर भी बेचारे भंगी उसे काममें लाते हैं।
>
> यहाँ सड़ा हुआ अनाज पड़ा है और उससे दुर्गन्ध फैल रही है। लोग उसे भी खोद-खोदकर खाते हैं।
>
> हमने यहाँके भंगियोंको आलसी पाया; कहनेपर भी वे काम नहीं करते।

ये वाक्य मैंने जहाँ-तहाँसे उठा लिये हैं सो भी लिखनेवालोंके शब्दोंमें नहीं। किन्तु अर्थ कहीं भी खण्डित नहीं हुआ है।

मुझे लगता है कि हमारे कार्यमें जाँच या देखरेख करनेवाला और मजदूर अलग-अलग नहीं हो सकते। जाँच करनेवाला और मजदूर एक ही व्यक्ति हो तभी हमारा गरीब देश आगे बढ़ सकता है। आदेश देनेवालोंकी संख्या कमसे-कम होनी चाहिए। बिना 'ओवरसियर' के हमारा आखिर गुजारा तो नहीं हो सकता लेकिन हमें याद रखना चाहिए कि वह अधिकांशतः अप्रामाणिकताकी ही चौकसी करता है। स्वयंसेवकोंकी भी चौकसी करनी पड़ती है। यदि स्वयंसेवकोंपर कोई निगाह रखने-वाला न रखा गया हो तो उन्हें स्वयं इसकी माँग कर लेनी चाहिए। फिर भी चौकीदारीके चक्करसे हमें निकल जाना है। परन्तु चौकीदार और अन्य सब लोगोंके हाथमें कुदालियाँ और फावड़े तो होने ही चाहिए, न होनेपर हाथोंका जितना उपयोग सम्भव हो उतना तो किया ही जाये।

इसलिए मैं तो ऐसी 'रिपोर्टों' की आशा रखता हूँ :

> गाँव 'क' में कुआँ दुर्गन्ध देता था। हमने डोल और रस्सी माँगकर गाँवके लोगोंके सहयोगसे कुएँको साफ किया। पासके अस्पतालसे थोड़ी-सी जन्तुनाशक लाल दवाई लेकर कुएँमें डाली और पानीको चखकर इस बातका इत्मीनान किया कि अब वह साफ है।

गाँव 'ख' के कुएँकी जगत ऐसी थी जिसे इस्तेमालमें नही लाया जा सकता था इसलिए गाँवके लोगोंकी मददसे कुएँके आसपास काँटोंकी बाड़ लगाई। बाड़पर 'जगत खराब है, वहाँ कोई न जाये' की पाटी लगाई। दूसरा कुआँ गाँवमें है इसलिए परेशानीकी कोई बात नही है।

गाँव 'ग' में एक ही कुआँ देखा। उसकी जगत खराब थी, इस्तेमाल करने लायक न थी। अतएव गाँवके राजको बुलाकर जगतको इतना मजबूत करा दिया कि फिलहाल उसका उपयोग हो सके। गाँवके लोगोको सलाह दी कि वे उसे और ज्यादा मजबूत करा ले।

गाँव 'घ' के कुएँमें भैंस पड़ी थी। देखा कि वह कोशिश करनेपर भी निकाली नही जा सकती। कुएँमें ज्यादा पानी नही था। गाँवके लोगोंकी मदद और सहमतिसे कुएँको पूर दिया। पहले कभी मिट्टी नही ढोई थी, फावड़ा नही चलाया था इसलिए कंधे दुखते है, हाथोंपर निशान पड़ गये है। लेकिन कुएँसे उठनेवाली दुर्गन्ध जो सौ कदम दूरसे आने लगती थी अब समाप्त हो गई है। और अब तो पहले जहाँ कुआँ था वहाँ बच्चोंको नाचते-कूदते देखकर मैं अपना दुःख ही भूल जाता हूँ। भूख लगती है सो अलग।

गाँव 'च' में दो ही कुएँ देखे। दूसरा भंगी भाइयोंका है। उसमें पानी लगभग नही था। जाँच करनेपर मालूम हुआ कि उसमें पानी हमेशा कम रहता है और वह भी गँदला। इसलिए मैंने गाँवके महाजनोसे प्रार्थना की। उन्होने भंगियोंको पानी भरनेकी स्वीकृति दे दी। लेकिन यह शर्त रखी: 'हमारी स्त्रियोंको अभी अन्त्यजोंको स्पर्श करनेकी आपकी बात नही सुहाती। इसलिए यदि आप भंगियोके लिए समय निर्धारित कर दें तो वे उस समय आकर पानी भर सकते है।' यह बात मुझे तो बहुत अच्छी लगी। मैंने महाजनोंका उपकार माना। भंगी छोकरोंको इकट्ठा कर गन्दे कुएँको भर दिया और चला आया।

गाँव 'छ' के भंगियोंको बहुत आलसी पाया। उनके कुएँके आसपास इतनी कीचड़ देखी कि उसमें पाँव धँस जाये। घरोंके पास ही कूड़ेके ढेर लगे हुए थे। मैंने उन्हें खूब समझाया। कोई समझनेको तैयार ही न होता था। मैंने फावड़ा माँगा। 'वह पड़ा है' यह कहकर एक व्यक्ति चलता बना। दूसरा बोला 'भाई साहब, काहेको हठ करते हो? कूड़ा-करकट, कीचड़ आदि हमें परेशान नही करते। हमारा तो जन्म ही इसमें हुआ है।' मैंने कहा, 'मुझसे यह कूड़ा-करकट नही देखा जाता। तुम्हारे लिए मेरे-जैसे लोग मेहनत करे, लोगोंको तुम्हें अस्पृश्य न माननेके लिए समझायें लेकिन यदि तुम लोग स्वयं ऐसे ही रहो तो हमारी क्या चल सकती है?' पहला बोला 'हां, भाई साहब यह तो आपने सच ही कहा। लेकिन हम तो धीरे-धीरे सुधरेंगे।' मैंने इसका जवाब नहीं दिया बल्कि कीचड़ निकाली और वहाँ साफ मिट्टी बिछाई। घरोंके पास पड़े कूड़ेको अकेले ही साफ किया। हाँ, कभी-कभी कोई बच्चा आकर दो-एक फावड़े कूड़ा निकालकर जरूर चला जाता था। मैं तो वहाँसे 'गीताजी' की निष्काम सेवाके पाठको याद करता हुआ चल दिया।"

पाठक अन्य ऐसे विवरणोंकी कल्पना करें और तदनुरूप कार्य करनेकी इच्छा रखें।

एक स्वयंसेवकके लिखनेका अभिप्राय इस प्रकार है:

'अब आप एकके बदले दो हो गये हैं। कारण, काकासाहब भी आपके पास आ गये हैं। क्या हमें इस संगमका कोई लाभ नहीं मिलेगा? इस बाढ़-रूपी प्रलयके अन्तमें नई सृष्टिका निर्माण करनेके लिए क्या आपमें से कोई कुछ न लिखेगा?'

मैं काकासाहबकी कलमको उकसानेकी कोशिश कर रहा हूँ। मुझे तो यहाँ बैठे-बैठे नई सृष्टिकी कोई बात नहीं सूझती और जो सूझती है वह लिखने लायक नहीं लगती। इसलिए काममें जुटे हुए सेवकोंको मेरी तो यह सलाह है: दूर बैठे हुए हम बीमार लोग कोई सुझाव दें उसकी अपेक्षा यह बेहतर होगा कि वहाँ बैठे आप खुद ही विचार करें और तदनुसार कार्य करें और विचार अपने गाँवको ध्यानमें रखकर ही करें। समस्त गुजरातमें नई रचना होगी तभी हम भी कुछ करेंगे, ऐसा नहीं सोचना चाहिए, बल्कि गाँवके व्यक्ति मानें तो जितने सुधार आप कर सकते हों उतने शुरू कर दें। कुछ-एक विधि-निषेध मैं यहाँ देता हूँ।

१. घरोंको अँधेरी कोठरियों-जैसा न बनायें।
२. टीनके पतरोंका उपयोग न करें।
३. अमेरिका अथवा इंग्लैंडकी नकल न करें; वहाँकी आबोहवा अलग है।
४. पत्थर-चूनेका कमसे-कम उपयोग करें।
५. हमारे देशमें घास, लकड़ी और गारेके अच्छे घर बन सकते हैं।
६. जमीन साफ करके ही घर बनाये जाने चाहिए।
७. हवा और प्रकाशका प्रबन्ध होना ही चाहिए।
८. यदि जमीन काफी हो तो पशुओंके लिए अलग जगह रखी जाये। मेरी रायमें पशुओंको रखनेका सस्ता और सबसे स्वच्छ तरीका यह है कि उन्हें बिना बाँधे खुले बाड़ेमें रखा जाना चाहिए। लकड़ी अथवा कँटीली झाड़ियोंकी मजबूत बाड़ हो सकती है। बाड़ेमें एक छोटा छप्पर रखा जाना चाहिए ताकि जब मन हो तब पशु उसके नीचे आकर बैठ सकें।

विविध

दानमें मिलनेपर भी विदेशी काली टोपियाँ घरमें न लाई जायें। त्याज्य वस्तु दानमें भी नहीं ली जानी चाहिए। मुफ्त मिले मांसको निरामिषाहारी स्वीकार नहीं करता।

जीना ही जीवनका उद्देश्य नहीं है। किसी उदात्त उद्देश्यके लिए शरीररूपी घरमें सोई हुई आत्माको जगानेके लिए जीना ही आदर्श है। धर्म और अधर्मका मूल्य भेद यही है। धार्मिक व्यक्ति मर्यादासे बाहर जाकर जीनेसे इनकार कर देगा। अधर्मीके लिए मर्यादा नहीं होती। जीनेके लोभमें वह अपनेको बेचेगा, स्त्री-पुत्रादिको बेचेगा, देशको बेचेगा।

व्यापारी उबारते हैं और डुबाते हैं। गुजरातके व्यापारी अनजाने ही दोनों काम एक साथ कर रहे हैं। विलायती और मिलके बने कपड़ेकी वर्षा हो रही है, यह मैं देख रहा हूँ। अब लोग बाढ़के दुःखको कुछ भूलने लगे हैं, ऐसा

समझकर मैं व्यापारियों और जनताको सावधान करता हूँ। विलायती कपड़ा बाजारमें है, इसके लिए गुजराती और मारवाड़ी उत्तरदायी है। यह बात दोनोंके लिए विचारणीय है। विलायती कपड़ेकी बाढ और अतिवृष्टिसे होनेवाली बाढ़में यदि कोई मुझे चुनाव करनेके लिए कहे तो मैं जानता हूँ कि मैं क्या पसन्द करूँगा। पाठकोंको जानना चाहिए कि जो बाढ शरीरका हनन करती है, वह सह्य है और उसका निवारण नही किया जा सकता। दूसरी बाढ जो आत्माका हनन करती है उसका निवारण किया जा सकता है। दो बाढ़ोंके इस महान् भेदको गुजरातको कौन समझाये? शरीरकी रक्षाके बारेमें मनुष्य सदा परतन्त्र है, आत्माकी रक्षाके विषयमें वह सदैव स्वतन्त्र है। इसीसे विभिन्न धर्म डकेकी चोट कहते हैं: 'आत्मा ही आत्माका रक्षक और भक्षक है।'

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ४-९-१९२७

४०७. भाषण : वाई० एम० सी० ए०, मद्रासमें[1]

[४ सितम्बर, १९२७][2]

मित्रो,[3]

सभापति महोदयका अनुरोध है कि मैं यहाँ धार्मिक प्रवचन करूँ। मैं नही समझता कि मैंने कभी धार्मिक प्रवचन किया हो या दूसरी तरहसे कहिए तो मुझे अपना कोई भी ऐसा भाषण याद नही पड़ता कि जो धार्मिक न रहा हो। अगर यह मेरा भ्रम न हो तो मैं तो यह समझता हूँ कि मैंने अपने सार्वजनिक जीवनके आरम्भसे अबतक जो-कुछ कहा है और जो-कुछ किया है, उसके पीछे एक धार्मिक चेतना, धार्मिक उद्देश्य सदा रहा है। हो सकता है कि मेरे श्रोताओंको या जो पाठक शब्दोंके अर्थको नही, बल्कि सिर्फ शब्दोंको पढ़ते है, ऐसे लोगोंको मेरे लेख राजनीतिक, आर्थिक और अन्य कई तरहके लगे हो। पर मेरा आपसे अनुरोध है कि आप मेरे इस कथनपर विश्वास करें कि मेरा प्रत्येक शब्द मूलतः और मुख्यत. धार्मिक उद्देश्यसे ही अनुप्राणित रहा है। और आज सुबह भी ऐसा ही रहेगा।

मेरे यह पूछनेपर कि लोग मुझसे क्या सुननेकी आशा रखते है, मुझसे कहा गया कि मैं जिस विषयपर चाहूँ, बोलूं। पर, यह सन्देश मुझे आज सुबह सभाके लिए आते समय ही मिला, इसलिए मैं कोई एक क्रम निश्चित किये बिना अपने विचार आपके सामने उसी रूपमें पेश करता हूँ जिस रूपमें वे मेरे दिमागमें आ रहे हैं।

१. यंग मैन्स क्रिश्चियन एसोसिएशनमें दिया गया यह भाषण "दो भाषण" शीर्षकसे प्रकाशित हुआ था।

२. और ३. हिन्दू, ५-९-१९२७ से।

वेल्लूरमें मुझे एक मिशनरी मित्रके साथ कुछ अत्यन्त ही मूल्यवान क्षण वितानेका अवसर मिला था। उस स्थानके विद्यार्थियोंके साथ दिल खोलकर मेरी वातचीत हुई।[1] अगले दिन सुवह उन्होंने मेरे सामने कुछ इस प्रकारके उद्गार व्यक्त किये: 'आपका भाषण वड़ा अच्छा रहा। आपने आत्मासे सम्वन्धित वातें कहीं। परन्तु उन सवके वीच यह खादीका सवाल कहाँसे टपक पड़ा? क्या आप वतायेंगे कि खादीका आध्यात्मिकतासे क्या सम्वन्ध है?' फिर उन्होंने कहा: 'आपने शरावबन्दीकी वात की जिससे हमें खुशी हुई; वह सचमुच आध्यात्मिकतासे सम्वन्धित है। आपने अस्पृश्यताकी वात की, वह आध्यात्मिकतामें रुचि रखनेवाले श्रोताओंके सुननेका या आध्यात्मिक प्रवृत्तिके व्यक्तिके वोलनेका एक वड़ा सुन्दर विषय था। पर आपके भाषणमें ये दोनों वातें खादीके सन्देशके वाद ही आईं। हममें से कुछको यह ठीक नहीं लगी।' मैंने उस वातचीतका सारांश आपको अपने शब्दोंमें ज्योंका-त्यों वतलाया है, अपनी ओरसे उसमें कोई पुट नहीं दिया है। उस समय मुझे जैसा सूझा वैसा उत्तर मैंने दे दिया था। अव आज सुवह मैं उसीकी विस्तारसे चर्चा कर रहा हूँ।

वात विलकुल सच है कि मैं खद्दरको सवसे पहले स्थानपर और अस्पृश्यता तथा शरावबन्दीको उसके वाद रखता हूँ। ये सव वातें मैंने वेल्लूरके विद्यार्थियोंके समक्ष दिये गये अपने उस भाषणके अन्तमें कही थीं जिसमें मैंने उनसे आग्रह किया था कि वे अपने जीवनमें पवित्रता लायें, क्योंकि पवित्रताके विना उनका समूचा ज्ञान विलकुल अनुपयोगी और शायद विश्वकी वास्तविक प्रगतिके लिए वाधारूप वन जायेगा। इसके वाद मैंने दृष्टान्तके तौरपर ये तीनों वातें और अन्य कई वातें कहीं। संसारके अनेक भागोंमें निरन्तर सार्वजनिक सेवाका पैंतीस वर्षका अनुभव रखनेके वाद भी मैं अभीतक यह नहीं समझ पाया कि कर्म और कर्मशीलतासे विलकुल अलग-थलग कोई भी आध्यात्मिक या नैतिक मूल्य कैसे हो सकता है। मैं इस प्रकारकी सभाओंमें एक अत्यन्त सुन्दर वचन वहुधा सुनाता रहा हूँ। यह वचन जिस दिन मैंने पढा था, उसी दिनसे सदा मेरे मनमें वसा रहता है। वह इस प्रकार है: "हर क्षण प्रभु-प्रभुकी रट लगानेवाला हर व्यक्ति स्वर्गमें प्रवेश नहीं पा जायेगा; वही प्रवेश पायेगा जो स्वर्गमें वास करनेवाले मेरे पिता (परमेश्वर)की इच्छाके अनुसार कर्म करेगा।" मैं उसके शब्द ठीक क्रममें नहीं रख पाया हूँ, पर आप उसे[2] जानते ही हैं और यह भी कि उसमें जो कहा गया है, विलकुल सत्य कहा गया है। मुझे इंग्लैंडके सार्वजनिक नेताओंके दो वड़े शानदार उदाहरण याद आते हैं। दोनों ही अपने समयके वहुत वड़े सुधारक और आध्यात्मिकताके स्तम्भ माने जाते थे। मैं १८८९-९०की वात कर रहा हूँ। तव आपमें से अधिकांश पैदा भी नहीं हुए थे। मैं उन दिनों शरावबन्दीके सिलसिलेमें होनेवाली सभाओंमें भाग लिया करता था। उस सुधारमें मेरी रुचि थी। आध्यात्मिकताके वे दोनों स्तम्भ शरावबन्दीका काम करनेवाले महारथी कार्यकर्त्ता माने जाते थे। लेकिन वे भाषण-शूर थे। जव भी

१. देखिए "भाषण: वेल्लूरके वूरीज कॉलेजमें", ३०-८-१९२७।

२. सेंट मैथ्यू ७;-२१।

शराबबन्दीको लेकर जोरदार भाषण कराना होता, उन्हीको बुलाया जाता था। उनकी बड़ी पूछ थी। पर मुझे दु:खके साथ कहना पड़ेगा कि मुझे उनका पतन भी देखना पड़ा। दोनोंका पर्दा फाश हो गया। वे कार्यकर्त्ता थे ही नही। ईश्वर, प्रभु, परमेश्वर इत्यादि शब्द सदा ही उनकी जबानपर रहते थे, पर केवल मुख-विलासकी तरह, हृदयमें नही। नशाबन्दीके मंचका उपयोग वे अपनी गोटी लाल करनेके लिए करते थे। उनमें से एक सट्टेबाजी करता था और दूसरा अनैतिक अपराध। आप शायद समझ गये होंगे कि मैं क्या कहना चाहता हूँ। मैं भारतके बारेमें भी यह नही कह सकता कि यहाँ नशाबन्दीके आन्दोलनका मंच सदा आध्यात्मिकताके प्रचार-प्रसारके लिए ही प्रयुक्त होता है, अस्पृश्यता-आन्दोलनका मंच सदा आध्यात्मिकताका ही मंच होता है। मुझे पहलेकी स्थितिकी जानकारी रही है और इस समय जब मैं आपके सामने भाषण कर रहा हूँ तबकी स्थिति भी मैं जानता हूँ। वह यह है कि इस देशमें भी कई लोग इन दोनों आन्दोलनोंके मंचोंका दुरुपयोग कर रहे हैं। बाकी लोग सदुपयोग करते हैं। इससे मैं यही निष्कर्ष निकालकर दिखाना चाहता हूँ कि काम कोई भी हो, उसको करने, देखने-समझने और दुनियाके समक्ष रखनेमें किसीका दृष्टिकोण आध्यात्मिक भी हो सकता है और आध्यात्मिकतासे सर्वथा शून्य भी। मैं आज आपके सामने दावा करता हूँ कि चरखा और खादीका सन्देश एक परम आध्यात्मिक सन्देश है और चूंकि इस देशके लिए यह मुख्यत: एक आध्यात्मिक सन्देश है, इसीलिए यह बड़े-बड़े आर्थिक और राजनीतिक परिणामोंकी सम्भावनासे भी पूरित है।

कुछ ही दिन हुए मेरे एक अमेरिकी मित्र, प्रोफेसर सैम हिगिनबॉटमने एक ऐसे विषयके सम्बन्धमें मुझे लिखा था, जिसमें हम दोनोंकी गहरी रुचि है। मैं उनके पत्रका सारांश आपको बतला रहा हूँ। उन्होने लिखा था: "मैं अर्थशास्त्रसे रहित धर्ममें विश्वास नही करता। धर्म यदि किसी कामका है तो आवश्यकता पड़नेपर उसे अर्थशास्त्रीय आचरणके रूपमें प्रस्तुत किये जाने योग्य होना ही चाहिए।" मैं उनके इस कथनकी पूरी तरह ताईद करता हूँ, लेकिन एक बड़ी शर्तके साथ। मैं यह नही कहता कि श्री हिगिनबॉटमके दिमागमें भी यह शर्त लगानेकी बात नही है। लेकिन उनके मनमें क्या विचार है, यह मैं अधिकारपूर्वक कैसे कह सकता हूँ? मेरे मनमें जो शर्त है, वह यह है — यह तो ठीक है कि यदि धर्म किसी कामका है तो उसे अर्थशास्त्रीय आचरणके रूपमें प्रस्तुत किये जाने योग्य होना चाहिए, लेकिन अर्थशास्त्रको भी, यदि वह किसी कामका है, तो धार्मिक या आध्यात्मिक आचरणके रूपमें प्रस्तुत किये जाने योग्य होना चाहिए। इसलिए धर्म और अर्थशास्त्रकी इस योजनामें शोषण और, यदि ठेठ अर्थशास्त्रीय भाषाके एक शब्दका प्रयोग करूँ तो अमेरिकीकरणके लिए कही कोई स्थान नही है। भारतके एक प्रख्यात सुपुत्रने कहा है कि एक अंग्रेजके पास अगर ३० या शायद ३६ गुलाम — मुझे ठीकसे याद नही — हैं तो एक अमेरिकी ३३ गुलाम रखता है। यह उक्ति अन्य किसीकी नहीं, सर एम० विश्वेश्वरैयाकी ही है। मेरा अपना ख़याल यह है कि धर्मके रूपमें प्रस्तुत किये जा सकनेवाले, सच्चे अर्थशास्त्रमें मनुष्यों या पशुओं या मशीनोंको गुलामोंके

रूपमें रखनेकी कोई गुंजाइश नहीं है। अर्थ-शास्त्रमें गुलामीके लिए कोई गुंजाइश ही नहीं है। इसी आधारपर मैं आपसे कहता हूँ कि खादीको अपनाये बिना आपका काम नहीं चल सकता और खादीका क्षेत्र व्यापकतम है। नशाबन्दीके कामकी सीमामें कुछ थोड़े-से लोग आते हैं। यह शराबीसे शराबकी लत छुड़वा देनेवाले सुधारकको पवित्र बनाता है और समझानेपर अपनी लत छोड़ देनेवाले शराबीको तो पवित्र बनाता ही है। अस्पृश्यता-निवारणके कामका असर इस अभागे देशके ज्यादासे-ज्यादा सात करोड़ लोगोंपर होगा और हर आदमी तो इस काममें आ नहीं सकता। आप अस्पृश्यको शिक्षित बना सकते हैं, उसके लिए कुएँ और मन्दिर बनवा सकते हैं, लेकिन इनसे तो वह स्पृश्य नहीं बन जायेगा। यह तो तभी होगा जब तथाकथित स्पृश्य लोग अपनी श्रेष्ठताका दम्भ त्यागकर अस्पृश्योंको भाइयोंकी तरह मानने लगेंगे। इस तरह आप पायेंगे कि सामान्य स्त्री-पुरुषोंके लिए यह समस्या कुछ पेचीदा ही है। मैंने अपना सारा जीवन – चाहे वह कितना भी तुच्छ हो – केवल सत्यकी खोजके लिए ही अर्पित कर रखा है। इसलिए मैं एक ऐसे साधनकी खोजमें लगा हुआ था जिसे हर व्यक्ति – यहाँ जितने लोग उपस्थित हैं वे सभी – बिना किसी अपवादके अपना सकें और जो साथ ही भारत देशकी सबसे बड़ी और गहरी पैठी व्याधिका उपचार भी हो सके।

और भारतकी सबसे गहरी पैठी बीमारी निश्चय ही शराबखोरी नहीं है और न अस्पृश्यता, यद्यपि ये बीमारियाँ अपने-आपमें काफी बड़ी हैं और जिन लोगोंको इन्हें भोगना पड़ रहा है उनके लिए शायद और भी बड़ी हैं। लेकिन, जब आप इस बातका जायजा लेंगे कि किस बीमारीसे कितने लोग पीड़ित हैं, यदि आप जन-गणनाके आँकड़ों अथवा इतिहासकी किसी प्रामाणिक पुस्तकको देखेंगे तो आप मेरे इस विचारसे अवश्य ही सहमत हो जायेंगे कि भारतकी सबसे बड़ी बीमारी उसकी गरीबी है। प्रामाणिक इतिहास-पुस्तकके रूपमें आप सर विलियम हंटरकी पुस्तक ले सकते हैं, या चाहें तो अभी दो ही वर्ष पूर्व एक आयोगके सामने श्री हिगिनबॉटम द्वारा दिये बयानको भी देख सकते हैं। श्री हिगिनबॉटमने कहा था कि भारतके अधिक-तम लोग गरीबीके शिकार हैं। सर विलियम हंटर कहते हैं कि भारतकी आबादीके दशांशको मुश्किलसे एक वक्त और सो भी सूखी रोटी और चुटकी-भर नमक खाकर रहना पड़ता है। आप और मैं तो इस भोजनको शायद स्पर्श भी नहीं करेंगे। आज यही भारतकी स्थिति है। यदि आप रेलमार्गसे दूर देहातके भीतरी हिस्सोंमें जायें तो मेरी ही तरह आप भी वहाँ देखेंगे कि गाँव, गाँव नहीं, कूड़ेके ढेर बनते जा रहे हैं; वहाँ ग्रामीण नहीं, चील और गिद्ध रहते हैं, क्योंकि ग्रामीण लोग अपने बलबूते अपना गुजारा भी नहीं कर सकते और वे जीती-जागती लाशें बनकर रह गये हैं।

भारत गर्दनतोड़ बुखार (मेनिनजाइटिस)से पीड़ित है और अगर आप आवश्यक शल्य-चिकित्सा करना चाहते हैं, भुखमरीसे पीड़ित करोड़ों लोगोंको थोड़ा-कुछ देना चाहते हैं, तो आपके पास उसका एकमात्र साधन खादी ही है। और यदि आध्यात्मिक प्रवृत्तिवाले लोगोंके रूपमें आपके मनमें उन लोगोंके प्रति कोई हमदर्दी हो जो आपकी-

जैसी अच्छी अवस्थामें नहीं है और जिनके पास इतना भी नहीं है कि वे गुजारा कर सकें और अपने तन ढँक सकें और यदि आप उनके साथ अपना अटूट सम्बन्ध जोड़ना चाहें, तो मैं एक बार फिर कहता हूँ कि खादीके अतिरिक्त उसका और कोई साधन नहीं है। लेकिन यह बात आपके कानोंको खटकती है और खटकनेका कारण यह है कि यह एक बिलकुल नया विचार है और कई लोगोंको यह मात्र एक काल्पनिक दिवा-स्वप्न जैसा लगता है। वेल्लूरके जिन मिशनरी मित्रका मैंने जिक्र किया है, उन्होंने बातचीतके अन्तमें मुझसे कहा था. "ठीक है, पर क्या आप आधुनिक प्रगतिके बढ़ते हुए चरण रोक सकते हैं? क्या आप घड़ीकी सुइयाँ पीछेकी ओर घुमा सकते हैं? क्या आप लोगोको खादी अपनाकर चन्द कौडियोंके लिए काम करनेको राजी कर सकते हैं?" मैं इससे अधिक कुछ नहीं कह सका कि आप अपने भारत देशको बिलकुल नहीं जानते। वेल्लूरसे मैं अर्काट और आरनी गया। मुझे वहाँ लोगोंके अधिक सम्पर्कमें आनेका समय नहीं मिल पाया, पर मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मैंने वहाँ गाँववालोंको इतना कम कपड़ा पहने देखा, जितना कम मेरे शरीरपर भी नहीं है। ऐसे दस-बीस नहीं, हजारों लोग मैंने देखे। वे चिथड़े पहने हुए थे और सालमें चार महीने उनको मजदूरीके नामपर एक पैसा भी नहीं मिलता। उन्होंने अपना पेट काटकर मुझे चन्दा दिया। मैं उनके दिये हुए दानको सतृष्ण नेत्रोंसे देख रहा था। उन्होंने मुझे चन्देमें पैसे नहीं, पाइयाँ दी थीं।

नवम्बरमें आप मेरे साथ उड़ीसा चलकर वहाँ पुरीको देखिए। यह एक तीर्थ-स्थल है, जहाँ एक आरोग्यशाला (सेनेटोरियम) भी है। गर्मियोंमें वहाँ सैनिक और गवर्नर रहा करते हैं। उसी पुरीके इर्द-गिर्द दस मीलके अन्दर ही आपको चलते-फिरते नरकंकाल देखनेको मिलेंगे। इन्हीं हाथोंसे मैंने उन नरकंकालोंसे चन्देमें मोरचा लगी पाइयाँ इकट्ठी की हैं जिन्हें उन्होंने बड़े जतनसे अपने चिथड़ोंमें बाँध रखा था। कोल्हापुरमें [पक्षाघातका हलका-सा दौरा पड़नेपर] मेरे हाथ जितने काँप रहे थे, ये पाइयाँ देते हुए उनके हाथ कहीं अधिक काँप रहे थे। आप उनके सामने जरा आधुनिक प्रगतिकी बात करके तो देखिए। आप उनके सामने ईश्वरका नाम लेकर देखिए। वह उनके लिए कोई मतलब नहीं रखता, ईश्वरका नाम लेना उनका अपमान करना होगा। यदि मैं या आप उनके सामने ईश्वरकी बात करेंगे तो वे हमें दुष्ट और बदमाश कहेंगे। यदि वे किसी ईश्वरको जानते हैं तो उस ईश्वरको जो उनके लिए त्रासका कारण बना हुआ है, उनपर अपना क्रोध उतारता रहता है, और जो निष्ठुर और आततायी है। वे नहीं जानते कि प्रेम क्या चीज होती है। आप उनके लिए क्या कर सकते हैं? (उपस्थित स्त्रियोंकी ओर संकेत करते हुए) इन प्रसन्न-वदना बहनोंको रेशमी साड़ियाँ छोड़कर उन काँपते हुए रक्ष हाथोंसे बुनी खुरदरी खादी पहननेके लिए राजी कर पाना आपके लिए मुश्किल होगा। क्यों नहीं! खादी खुरदरी है, भारी है! रेशमका स्पर्श बड़ा सुखद होता है। रेशमी साड़ियाँ तो ९-९ गजकी पहनी जा सकती हैं! मगर खादी तो नहीं पहनी जा सकती। मगर उड़ीसाकी गरीब बहनोंके पास पहननेको साड़ियाँ नहीं, फटे-पुराने चिथड़े हैं। फिर भी

उन्होंने अभी अपनी सारी शर्म-हया नहीं छोड़ी है, मगर मैं सच कहता हूँ, हमने छोड़ दी है। हम इतने सारे कपड़े पहनकर भी वास्तवमें नंगे हैं, उन्होंने कोई कपड़ा न पहनकर भी अपनेको ढँक रखा है। इन्ही बहनोंके लिए मैं जगह-जगह मारा-मारा फिर रहा हूँ, अपने देशवासियोंको खुश करनेकी कोशिश करता हूँ, अमेरिकी मित्रोंको प्रसन्न करनेका प्रयत्न करता हूँ। मैंने इसी तरह हारवर्डसे आये दो किशोरोका मनो-रंजन किया था। उन्होंने मुझसे मेरे हस्ताक्षर माँगे। मैंने कहा, "नही, मैं अमेरिकियोको हस्ताक्षर नहीं देता।" आखिर हमने एक सौदा किया, "मै आपको अपने हस्ताक्षर देता हूँ; बदलेमें आप खादीको अपनाइए।" उन्होंने मुझे वचन दिया है और अमे-रिकियोंके वचनपर मुझे पूरा भरोसा है। उनमें से बहुत-से लोग यह काम कर रहे हैं—और आप भ्रममें न रहिए, वे इसे सचमुच पसन्द भी करते हैं।

लेकिन मैं सन्तुष्ट नहीं हो सकता—तबतक नहीं जबतक कि भारतका एक-एक पुरुष, एक-एक स्त्री चरखा नहीं चलाने लग जाती। अगर आपको इसका इससे कोई अच्छा विकल्प मिल जाता है तो आप चरखेको जला दीजिए। यह एक ऐसा साधन, बल्कि एकमात्र ऐसा साधन है जो करोड़ों लोगोंकी जरूरतोंको पूरा कर सकता है और इस तरह कि उन्हें अपने घर-बार छोड़कर कही और जाना भी न पड़े। यह काम बहुत बड़ा है और मैं जानता हूँ कि मैं इसे नहीं कर सकता। लेकिन मैं यह भी जानता हूँ कि ईश्वर इसे कर सकता है। बड़ेसे-बड़ा और कठिनसे-कठिन काम भी, जब उसकी मर्जी हो, तो बहुत आसान बन जाता है। वह पलक झपकते सबको नष्ट कर सकता है, उसी तरह जिस तरह उसने अभी गुजरातमें हजारों घरोंको नष्ट कर दिया और जिस तरह कुछ साल पहले दक्षिण भारतमें हजारों घरोको बरबाद कर दिया था। ईश्वरमें—अतएव उसकी सृष्टि मानवमें—पूरा विश्वास रखकर, खादी और चरखेका यह सन्देश; मै आपके लिए लाया हूँ। आज आप चाहें तो मुझपर हँस सकते हैं। आप चाहें तो इसे तुच्छ काम कह सकते हैं। आप चाहें तो मुझमें अविश्वास भी कर सकते हैं और कह सकते हैं कि यह तो कोई राजनीतिक पैंतरेबाज है, जो वैसे कहनेको तो हमारे सामने खद्दरको पेश करने आया है, लेकिन इसकी आस्तीनमें और भी बहुत-बहुत चीजें छिपी हुई हैं। आप मुझे गलत भी समझ सकते हैं, मेरे सन्देशका गलत अर्थ भी लगा सकते हैं। आप कह सकते हैं: 'हम लोग इतने कमजोर हैं कि हमसे यह सब नही हो सकता, हम बहुत गरीब हैं।' मैं जानता हूँ कि आप तर्क देकर मुझे अवश कर सकते हैं, मेरा मुँह बन्द कर सकते हैं। लेकिन, जबतक ईश्वरमें मेरा विश्वास है, आपमें भी मैं अपना विश्वास नहीं त्याग सकता। ईश्वरमें विश्वास छोड़ना मेरे लिए असम्भव है और इसलिए खादी और चरखेमें भी मैं अपना विश्वास नहीं छोड़ सकता।

यदि मैं अब भी अपने हृदयकी बात आपको नही समझा पाया हूँ, यदि मैं अब भी आपको खादीके सन्देशकी परम आध्यात्मिकताकी प्रतीति नहीं करा पाया हूँ तो मै नही समझता कि अब और कभी वैसा कर पाऊँगा। मैं तो इतना ही कह सकता हूँ कि मै सफल होनेका इरादा लेकर ही चल रहा हूँ। मेरे होंठ यह सन्देश

सच्चे रूपमें न दे पाये हों लेकिन ईश्वर, जिसके नामपर मैंने आपको यह सन्देश दिया है, वह सच्चा सन्देश अवश्य देगा। ईश्वर आप सबका कल्याण करे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १५-९-१९२७

४०८. भाषण: मद्रासकी सार्वजनिक सभामें[1]

४ सितम्बर, १९२७

सभापति महोदय और मित्रो,

आपकी भेंट की हुई कई थैलियो और मानपत्रोंके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। सभी थैलियोंकी राशि मिलाकर १३,२३५ रुपये २ आने ६ पाई होती है। इसके सिवा १०० रुपये पुरसवलकमके मजदूरों, ५२ रुपये ११ पाई इंडियन इण्डस्ट्रियल कम्पनीके कर्मचारियों, १३ रुपये जामबाजारकी ओरसे और १८ रुपये विद्यार्थियों द्वारा जमा किये हुए अतिरिक्त चन्देके रूपमें मिले हैं। इस सबके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। मेरी इच्छा तो थी कि मैं आजकल देश-सेवकोंके ध्यानमें जो विभिन्न विषय हैं, उन सबपर बोलूं। उनमें से अधिकांश विषयोंके बारेमें मेरे अपने कुछ दृढ़ मत भी हैं, पर अभी मैं उनके बारेमें नही बोलूंगा। पर सभामें उपस्थित इस विशाल समुदायके सामने मैं अपना विश्वास दोहरा देना चाहता हूँ। अहिंसापूर्ण असहयोगमें मेरा विश्वास पहलेकी तरह ही दृढ़ है। मेरी अपनी समझके अनुसार हिंसाका बस यही—अहिंसापूर्ण असहयोग ही—एक विकल्प है। हिन्दू-मुसलमान एकताकी सम्भावना और आवश्यकतापर मेरा विश्वास पहलेके जितना ही दृढ़ है। परन्तु जहाँतक मेरे अपने योगदानकी बात है, मैं उसकी शीघ्र सफलताके लिए अपने समूचे हृदयसे प्रार्थना ही कर सकता हूँ। यहाँ उपस्थित इस विशाल समुदायसे मेरा अनुरोध है कि आप सब लोग आगामी ६ तारीखको[2] और बादमें शिमलामें होनेवाले हिन्दू-मुसलमान नेताओंके सम्मेलनकी सफलताके लिए प्रार्थना करे। अस्पृश्यता हिन्दू धर्मके लिए कलंक है और उसके निवारणकी आवश्यकतामें भी मेरा विश्वास पहलेकी तरह ही दृढ है।

आपके यहाँके कुछ युवकोंकी ओरसे नीलकी मूर्ति हटवानेके लिए आन्दोलन किया जा रहा है। मैं उसे काफी दिलचस्पीसे देखता रहा हूँ। मुझे तो वह प्रचार-आन्दोलन उस बादलकी तरह लगता है, जिसका आकार अभी मुश्किलसे आदमीके हाथके अँगूठेके बराबर है। लेकिन अन्य बादलोंकी तरह इस बादलमें भी भारत देशके समूचे आकाशपर फैलकर छा जानेकी क्षमता मौजूद है। मुझे पूरी आशा

१. ट्रिप्लिकेन समुद्र-तटपर।

२. दिल्लीमें।

है कि यह मूर्ति जिन लोगोंके अधिकारमें है, वे इस आन्दोलनके वास्तविक महत्त्वको समझेंगे, हालाँकि इस समय यह आन्दोलन सर्वथा नगण्य-सा लगता है। इस आन्दोलनको चलानेवाले युवकोंके बारेमें मुझे थोड़ी भी जानकारी नही है, पर उनसे मेरा अनुरोध है कि जल्दबाजीमें या अविवेकके कारण वे एक भी ऐसा काम न करें जो उनके इस सुन्दर उद्देश्यपर पानी फेर दे।

आपने राष्ट्रीय कांग्रेसको इस वर्ष अपना अधिवेशन इसी महानगरमें करनेकी दावत दी है। मद्रासको यह अनोखा गौरव प्राप्त है कि इसके सबसे यशस्वी पुत्रोंमें से ही एक[1] इस महान् संस्थाके अध्यक्ष हैं। मैं बता नही सकता कि आज शाम मुझे उनकी अनुपस्थिति कितनी खल रही है। कांग्रेसके आगामी अधिवेशनको शानदार सफलता दिलानेकी जिम्मेदारी आप लोगों और मद्रासके हरएक नागरिकपर ही है। मैं जानता हूँ कि दुर्भाग्यसे यहाँ आप लोगोंके अन्दर ब्राह्मणों और अब्राह्मणोंके बीच वैमनस्य है। पर आप सब लोगोंसे मेरा आग्रह है कि आपके कंधोंपर जिस महान् कर्त्तव्यका भार आ गया है, उसे देखते हुए आपमें से प्रत्येकको यह कोशिश करनी चाहिए कि जहाँतक सम्भव है, वहाँतक यह वैमनस्य दूर हो जाये और उसको राष्ट्रीय सम्मेलनकी सफलताको सुनिश्चित बनानेके लिए की जानेवाली तैयारियोंके मार्गमें बाधक न बनने दिया जाये। मैं उस दिनकी राह देख रहा हूँ जब हम अपने बीच हिन्दुओं, मुसलमानों, ईसाइयों, यहूदियों, पारसियों इत्यादि, ब्राह्मणों, अब्राह्मणों और अस्पृश्यों इत्यादिको एक-दूसरेका विरोधी, एक-दूसरीसे जूझनेवाली जातियाँ नही समझेंगे। लेकिन जबतक हमारे बीच ये विविधताएँ मौजूद हैं, जबतक इनका लोप नही हो पाता, तबतक मैं उस दिनकी राह देख रहा हूँ जब हम सब एक-दूसरेको एक ही विशाल वृक्ष — अविभाज्य तथा अखण्ड भारतीय राष्ट्र — की ही विभिन्न शाखाएँ मानने लगेंगे। और मैं चाहता हूँ कि इस तथाकथित हतभागे प्रदेशका यह तथाकथित हतभागा नगर वांछनीय परिणाम लानेका श्रेय प्राप्त करे।

अब मैं आपको बतलाता हूँ कि मैं मद्रास क्यों आया हूँ, और किस उद्देश्यसे मैं इस दक्षिणी प्रान्तके कोने-कोनेका दौरा करूँगा। मेरी बड़ी अभिलाषा है कि मैं किसी तरह आप सभीके दिमागमें अच्छी तरहसे बैठा सकूँ कि हम सबको एक सूत्रमें बाँधनेका काम वास्तवमें खादी ही कर सकती है। मेरी बड़ी अभिलाषा है कि मैं आप सभीके दिमागमें अच्छी तरह जमा दूँ कि छोटी-मोटी बातोंको लेकर झगड़नेमें हम उन करोड़ों मूक देशभाइयोंको एक तरहसे बिलकुल ही भुला देते हैं जिनका आज हम ठीक प्रतिनिधित्व नही कर रहे हैं। मैं आपके मनमें पूरी तरह यह बैठानेके लिए आया हूँ कि खादीको अपनानेसे हमें जो बहुत बड़े-बड़े लाभ हो सकते हैं, उन्हें न समझनेके आपके दुराग्रहके कारण खादी-आन्दोलनकी प्रगति ही बुरी तरह मन्द पड़ गई है। खादीकी प्रगति मन्द हो जानेके कारण आपमें से कुछ लोग मुझसे झगड़ने लगते हैं, कहते हैं कि खादीमें कोई सार-तत्त्व ही नही है। आप अपने दुराग्रहकी ओर ध्यान न देकर केवल खादी-आन्दोलनकी प्रगतिको ही धीमा नही

१. एस० श्रीनिवास अय्यंगार।

बना रहे है, बल्कि खुद देशकी उन्नतिको भी असम्भव बना रहे है। समान लक्ष्य प्राप्त करनेकी अधीरतामें आप यह भूल जाते है कि देशकी प्रगतिमे आप स्वय ही सबसे बड़ी बाधा बन रहे है। आप एक सीधी-सी चीजको, जो आपके सामने बिलकुल स्पष्ट है, समझनेसे इनकार करते है, और फिर जब आपको कामका दूसरा कोई क्षेत्र नही सूझ पड़ता तब आप इतने हताश हो बैठते है जो मनुष्यको शोभा नही देता। मेरा आग्रह है कि आप देशकी खातिर, करोड़ों मेहनतकशोकी खातिर, ईश्वरकी खातिर इस काहिलीको अपने अन्दरसे निकाल दें।

काश, मै अपने हृदयमें उमड़ते उद्गारोको इस भारी श्रोतृ-समुदायके समक्ष प्रकट कर सकता और उनको सुननेके लिए आपको और अधिक बैठाये रख सकता। पर ऐसा नही कर सकता। इसलिए मै सर्व-साक्षी ईश्वरसे अपनी इस प्रार्थनाके साथ अपना भाषण समाप्त करता हूँ कि वह हमें अपना मार्ग पहचाननेका विवेक और उस मार्गपर चलनेकी शक्ति दे।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, ५-९-१९२७

४०९. भाषण : 'गीता' पर, मद्रासमें[1]

४ सितम्बर, १९२७

मानपत्र और थैलीके लिए आपको धन्यवाद। मुझे अभी मालूम हुआ कि कभी श्री शास्त्री इस पाठशालाके प्रधानाध्यापकके पदपर रह चुके है। यह जाननेके बाद मेरे लिए इस थैली और मानपत्रका भी महत्त्व दूना हो गया है। सर्वेंट्स ऑफ इंडिया सोसाइटीको श्री गोखलेका उत्तराधिकारी और भारतको एक सर्वाधिक प्रतिभाशाली और निष्ठावान सुपुत्र देनेके लिए आपको मेरी बधाई। आपकी पाठशाला अपनेको एक हिन्दू पाठशाला मानती है, और इस 'हिन्दू' विशेषणको महत्त्व देती है। इसलिए मै समझता हूँ कि मुझे यह आशा रखनेका अधिकार है कि आप सब लोगोंमें किसी-न-किसी मात्रामें हिन्दूका विशेष गुण होगा ही। यदि आप अपने इस विशेषणको सार्थक करना चाहें तो आपसे यही अपेक्षा की जायेगी कि आप अपने प्रत्येक कार्यमें हिन्दू संस्कृतिका सर्वोत्कृष्ट रूप प्रकट करें। सोचता हूँ कि यदि आप लोगोंसे पूछा जाये कि आप सबने 'भगवद्गीता' पढ़ी है या नही तो क्या आप सबका उत्तर 'हाँ' में हो सकेगा। जिन्होने पढ़ी हो, कृपया अपने हाथ उठायें, बिलकुल ईमानदारीसे (लगभग १० व्यक्तियोंने हाथ उठाये)। लगता है कि इस पहले ही इम्तहानमें आप लोग बहुत बड़ी तादादमें फेल रहे। अंग्रेजीमें एक कहावत है, जिसका मतलब है कि अगर नमक ही अपना नमकीनपन खो बैठे तो फिर उसे किस चीजसे नमकीन बनाया

१. हिन्दू ट्रिप्लिकेनके हाई स्कूलके सिगराचारी हॉलमें।

जाये! उत्तर भारतमें भी इससे मिलती-जुलती एक कहावत मौजूद है: 'सागरमें आग लगी, कौन बुझाये।' क्या आप लोगोंमें से हरएक पूरे विनम्र भावसे गम्भीरताके साथ यही सवाल अपने-आपसे नही पूछेगा? क्या आप यह स्वीकार नहीं करेंगे कि आपको कसौटीपर कसा गया पर आप पूरे खरे नहीं उतरे? क्या आपको कोई ईसाई हाईस्कूल ऐसा मिलेगा जिसमें पढ़े हुए युवकोंको 'बाइबिल'की कोई जानकारी न हो? क्या आपको मुसलमानोंका कोई हाईस्कूल ऐसा मिलेगा जिसमें पढ़े हुए युवक 'कुरान शरीफ'की कोई जानकारी न रखते हों? क्या मेरी तरह आपको भी यह नही लगता कि प्रत्येक हिन्दू बालकको, और बालकको ही क्यों, बालिकाको भी हिन्दू धर्म-ग्रन्थोंमें से उस ग्रन्थका ज्ञान होना ही चाहिए जो 'कुरान' और 'बाइबिल'की कोटिका है और जिसे हर हिन्दूकी दृष्टिमें उस कोटिका होना चाहिए। अब इस भरी सभामें मैंने आपकी आँखें खोल दी हैं, इसलिए मुझे आशा है कि आप ठीक पटरी-पर आयेंगे और 'गीता'के सन्देशको समझनेका प्रयास अवश्य करेंगे। मैं जानना चाहूँगा कि आपमें से कितने लोग संस्कृतका आरम्भिक ज्ञान रखते हैं। ऐसे लोग हाथ उठायें (कई हाथ उठ गये)। धन्यवाद।

आपमें से आधे या आधेसे कुछ अधिक लोग संस्कृत जानते हैं। मैं आपको बतला दूं कि 'गीता'की संस्कृत बहुत ही सरल है। आपमें से जो संस्कृत जानते हैं, उनको कल ही और सम्भव हो तो आज ही 'गीता' खरीदकर उसका पाठ शुरू कर देना चाहिए और मुझे मालूम है कि 'गीता' बहुत ही कम दाममें मिल सकती है। आप निजी तौरपर अपनी 'गीता'-कक्षायें चलाइये। जो संस्कृत नही जानते, उनको कमसे-कम 'गीता' पढ़नेकी खातिर तो अवश्य ही संस्कृत पढ़ना शुरू कर देना चाहिए। अगर आपको इतनी सुविधा न हो तो आपको उसका अंग्रेजी या तमिल — अगर तमिलमें सुलभ हो तो — अनुवाद पढ़ना चाहिए। आप सोच भी नही सकते कि 'गीता'में ज्ञानका कैसा अपार भण्डार मौजूद है। मेरा सुझाव है कि आप तीसरे अध्यायसे आरम्भ करें। उसमें निःस्वार्थ कर्मका सिद्धान्त बड़े ही सरल और बोधगम्य ढंगसे समझाया गया है। उसमें निःस्वार्थ कर्मको एक अत्यन्त ही सुन्दर संज्ञा दी गई है — 'यज्ञ'। यदि मेरी दृष्टिसे आप उसे पढ़ें, तो आपको लगेगा कि उसमें चरखे-का भी वर्णन है। उसके एक श्लोकमें कहा गया है: "जो भी बिना सेवा किये, यज्ञ किये बिना खाता है, वह चोरी करता है।" आप शब्द-कोषोंमें 'यज्ञ' शब्दका अर्थ खोजने मत जाइए। यह मत समझिए कि कुछ लकड़ियाँ खरीदकर उनको मन्त्र जपते हुए घी से प्रज्वलित कर देने-भरसे यज्ञ सम्पन्न हो जाता है। निस्सन्देह, इस शब्दका किसी कालमें यही अर्थ था, लेकिन उस कालमें इस अर्थका उपयोग भी था। 'गीता'के एक दूसरे अध्यायमें आपको लगभग इस आशयका आदेश मिलेगा कि शास्त्रोंके अर्थको आप अपनी बुद्धि और अपने विवेकके माध्यमसे ग्रहण करें। मैंने जब इस सुन्दर शब्द 'यज्ञ'का अर्थ करनेमें अपनी बुद्धि लगाई तो मैं इसी निष्कर्षपर पहुँचा कि आप, मैं और ये बहनें और इस स्कूलके ये पुराने छात्र और छोटी बालिकाएँ भी जिस यज्ञको कर सकें और जो 'गीता'में की गई यज्ञकी परिभाषाके अनुकूल हो,

ऐसा यज्ञ तो चरखेके अतिरिक्त कुछ और हो ही नहीं सकता। लेकिन मैं आपको 'गीता'पर प्रवचन नहीं देना चाहता। मैं आपको सिर्फ यह बताना चाहता हूँ कि यदि आप आदिसे अन्त तक 'गीता'का अध्ययन करें तो आप पायेंगे कि उसमें ईश्वर-भक्तके बुनियादी गुण बड़े ही सरल और सीधे शब्दोंमें गिनाये गये हैं — जैसे ब्रह्मचर्य, सत्य, अहिंसा, अभय आदि। मैं अन्तमें यही परामर्श देता हूँ कि आपको 'गीता'का अध्ययन छिद्रान्वेषी बुद्धिसे नहीं, बल्कि प्रार्थनाके भावसे करना चाहिए और उसकी हिदायतोंपर अमल करना चाहिए।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, ५-९-१९२७

४१०. तार : मीराबहनको

मद्रास
५ सितम्बर, १९२७

सेवामें
मीराबहन
सत्याग्रहाश्रम, वर्धा

दुख है बुखार हठीला सिद्ध हो रहा है। डाक्टर जो दवा बतायें अवश्य लो। सस्नेह।

बापू

अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ५२६८)से।
सौजन्य : मीराबहन

४११. पत्र : मीराबहनको

५ सितम्बर, १९२७

चि० मीरा,

अभी-अभी जमनालालजीका तार मिला। लगता है, बुखार तो तुम्हारा पीछा छोड़नेका नाम ही नहीं लेता। डाक्टर जो दवा बतायें उन्हें लेनेमें आपत्ति न करना। यही तुम्हारे लिए अच्छा होगा। तुम आज जिन परिस्थितियोंमें हो उन परिस्थितियोंमें तुम्हें डाक्टर द्वारा बताई गई दवा लेनेमें आपत्ति क्यों नहीं करनी चाहिए, इसके बहुत-से सूक्ष्म कारण हैं।

मुझे तो लगता है कि शायद तुम्हारे दिमागपर बहुत बोझ पड़ गया है। हो सकता है कि तुमने मासिक धर्मके दौरान अलगावकी बातको लेकर और आश्रममें

अपनी भावी योजनाओंके बारेमें बहुत ज्यादा सोचा हो। हमारा तो सिद्धान्त है कि किसी बातकी चिन्ता न करो। चिन्ता अनेक रोगोंको जन्म देती है। लेकिन कारण चाहे जो हो, शरीरमें जो खराबी आई है, उसका इलाज तो भौतिक उपायों—जैसे कि दवा आदि—द्वारा ही होने दो। लेकिन साथ-साथ अपने मनको वशमें रखने और चिन्तासे छुटकारा पानेकी आदत डालनेकी भी कोशिश करते रहना चाहिए। सबके साथ हिन्दीमें बोलनेके बारेमें फिक्र मत करो। मेरी सलाह और अपेक्षाएँ बराबर किसी-न-किसी शर्तके साथ होती हैं। और यह शर्त है 'क्षमताके अनुसार।' तुममें कितनी क्षमता है, इसका अन्तिम निर्णय तो तुम्हीं कर सकती हो। किसी भी कारणसे स्वास्थ्यको खतरेमें नहीं डालना चाहिए। आशा है, कृष्णदास और बालुंजकर तुम्हारी शुश्रूषा कर रहे होंगे। मेरा खयाल है, इस कष्ट और परीक्षाकी घड़ीमें तुम पूरी तरह प्रसन्नचित्त रहती होगी।

ईश्वर तुम्हें सहारा और सहायता, शक्ति और जो-कुछ भी अपेक्षित हो, वह सब दे।

सस्नेह,

बापू

अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ५२७०) से।

सौजन्य : मीराबहन

४१२. पत्र : एक आश्रमवासीको

५ सितम्बर, १९२७

तुम्हारा पत्र मिला। तुमने पूरी हकीकत लिख भेजी, यह अच्छा किया। मुझे तुमपर शक हो ही नहीं सकता।

जहाँ लोकाचारका नीतिसे विरोध न हो, वहाँ उसका पालन किया ही जाना चाहिए। ब्रह्मचर्यके नौ रक्षक घेरे कहे जाते हैं। यदि तुमने इनके बारेमें न पढ़ा हो, तो इन्हें रायचन्दभाईकी पुस्तकमें से पढ़ लेना। हम इन घेरोंमें से कुछकी अवज्ञा कर देते हैं। इसकी जिम्मेदारी मेरी है। मतलब यह कि इन घेरोंको हम प्रयोगके रूपमें तोड़ते हैं। फिर भी अपनी सगी बहनके साथ भी एकान्तमें न रहनेका नियम तो हम लोग पालते ही हैं। मैं इस बातकी पूरी-पूरी आवश्यकता समझता हूँ। इसमें दोनोंका बचाव है।

ब्रह्मचारीके मनमें पूर्ण नम्रता और अपने प्रति अविश्वास होना चाहिए। अविश्वासके दो कारण हैं—एक तो यह कि वह इस प्रकार निर्मल बना रह सकता है और दूसरे, उसके सम्पर्कमें आनेवाली बहन स्वप्नमें भी विकारके वश नहीं हो सकती।

ब्रह्मचारीके विषयमें सारे जगत्‌को शंका करनेका अधिकार है और होना चाहिए। जगत् ब्रह्मचर्यका पालन नहीं करता। जगत् जिन विकारोंपर विजय प्राप्त नहीं कर

पाता, वह ऐसा मानता है कि उन्हें कोई भी नहीं जीत सकता और यह ठीक है। इसलिए संसार द्वारा शक किये जानेपर हमें क्रोधित नहीं होना चाहिए। ऐसा मानना चाहिए कि वहाँ आश्रममें रहनेवाले सब लोग भी जगत्‌में आ जाते हैं।

तुमने पवित्र मनसे जो छूट ली, वैसी ही छूटोंके कारण दूसरे लोगोंका पतन होते देखा गया है। शुरूमें वे लोग भी निर्दोष थे। यदि तुम उन लोगोंकी कोटिमें भी पहुँच गये हो जो कभी विकारवश नहीं होते, तो भी दूसरोंके हितकी दृष्टिसे तुम्हें मर्यादाका पालन करना चाहिए। ब्रह्मचर्यका दावा करनेवाले तो बहुत-से देखनेमें आते हैं। क्या हम उन सबको स्वतन्त्रता दे सकते हैं?

मैं स्वयं अभीतक विकारोंको जीत नहीं पाया हूँ, तुम्हें यह मालूम है अथवा नहीं? यदि मैं अपने विषयमें स्वयंको अथवा जगत्‌को आश्वस्त नहीं कर सकता, तो फिर तुम्हें तो अपने विषयमें बहुत सावधान रहना चाहिए।

काम विच्छू है। वह कब डंक मार देगा, कुछ कहा नहीं जा सकता। वह तो अनंग है, इसलिए हम उसे देख नहीं सकते। हम चाहे तो भी उसे पकड़ नहीं सकते। इसीलिए ब्रह्मचारीको निरन्तर जागरूक रहना पड़ता है।

तुम भाई छगनलाल जोशी इत्यादिके विषयमें जो-कुछ लिखते हो, सो ठीक नहीं है। वे सब प्रयत्नशील हैं। हम जगत्‌से बाहर तो नहीं रहते, किन्तु फिर भी उसमें रहते हुए दूसरोंके विकारोंके प्रति द्वेष-दृष्टि न रखते हुए स्वयं निर्विकार बनने और रहनेकी इच्छा करते हैं।

इसलिए तुम सावधान रहना। यदि तुम कुछ और भी पूछना चाहो, तो पूछना।

[गुजरातीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरी।
सौजन्य : नारायण देसाई

४१३. पत्र : आश्रमकी बहनोंको

मौनवार [५ सितम्बर, १९२७][1]

बहनो,

तुम्हारी चिट्ठी मिली।

आश्रमकी मजदूरिनोंके निकट सम्पर्कमें आनेकी मेरी बातका रहस्य तुम लोगोंने समझ लिया होगा। उनसे सकट-निवारणके लिए दो-चार कौड़ी प्राप्त कर लेना तो एक निमित्त-भर है। अभिप्राय यही है कि तुम लोग इस अवसरका लाभ उठाकर उनके साथ अपनेपनका सम्बन्ध बनाओ। वे हमें और हम उन्हें समझें और एक-दूसरेके

१. आश्रमकी मजदूरिनोंके निकट सम्पर्कमें आनेकी बातके आधारपर।

*सुख-दुःखमें भाग लें। मेरा यह कहना नहीं है कि तुम लोग इस काममें अपना बहुत-*सा समय दो। यह बात हृदय-परिवर्तन करनेकी है। हमें ऐसी इच्छा करनी चाहिए कि हम जो-कुछ खाते हैं, सो वे खा सकें और हम जो-कुछ पहनते हैं, सो वे पहन सकें। हमें ऐसी इच्छा रखनी चाहिए कि हमें जो अच्छा लगता है और हम जो प्राप्त करते हैं, वे सब भी उसके भागीदार हो सकें और जहाँ इस इच्छा के अनुसार अमल किया जा सके, वहाँ हमें उसके अनुसार अमल भी करना चाहिए।

मैंने जो-कुछ कहा है उसका बढ़ा-चढ़ाकर अर्थ निकालकर भड़क न उठना। सभी बातोंके दो अर्थ होते हैं – एक कमसे-कम और एक व्यापकसे-व्यापक। व्यापकसे-व्यापक अर्थको समझकर संकीर्णतमपर अमल शुरू करना चाहिए। ऐसा करनेसे परेशानीका अनुभव नहीं होता।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ३६६४) की फोटो-नकलसे।

४१४. पत्र: शान्तिकुमार मोरारजीको

[५ सितम्बर, १९२७के पश्चात्][1]

संसारमें बहादुरीके कई प्रकार हैं। स्वदेशी विक्टोरिया क्रॉस पानेके लिए बहादुरीका कोई स्वदेशी प्रकार होना चाहिए। *अगर कोई गंगू तेली अपने बैलके* साथ नित्य घूमता रहे और समाजके लिए तेल बनाता रहे और इसे निष्काम भाव से करे, तो क्या यह जबरदस्त बहादुरीका काम नहीं है? गंगू भक्त बहादुर होनेके कारण ही तो विख्यात हुआ। घेलो[2] तेली विख्यात क्यों नहीं हुआ?

[गुजरातीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरी।
सौजन्य: नारायण देसाई

१. साधन-सूत्रमें यह पत्र ५-९-१९२७के बाद लिया गया है।
२. व्यक्तिगत नाम, जिसका अर्थ बुद्धू होता है।

४१५. भाषण : मद्य-निषेधके बारेमें, मद्रासमें[1]

६ सितम्बर, १९२७

मित्रो,

आज इस सुबहके समय मुझसे आपके सामने मद्य-निषेधके बारेमें बोलनेको कहा गया है। हालाँकि मैं जितना कट्टर खादीवादी हूँ उतना ही कट्टर मद्य-निषेधवादी भी हूँ, फिर भी मुझे याद नही पड़ता कि मैंने अपने जीवनमें सिवाय एक अवसरके और कभी किसी विशिष्ट श्रोतृसमुदायके समक्ष 'मद्य-निषेध' पर कोई भाषण किया हो। मेरे जीवनका सिलसिला कुछ ऐसा रहा है कि मुझे किसी विशिष्ट श्रोतृसमुदायसे ऐसे विषयोंपर बातचीत करनेका अवसर ही नही मिलता। इस खामीका एक कारण तो यह है कि मैं सनकी हूँ, या कहिए, सनकी माना जाता हूँ, और इसीलिए विशिष्ट श्रोताओंके बीच मुझे कुछ अटपटा लगने लगता है। सनकी लोग अतिवादी हुआ ही करते हैं, इसलिए दूसरे लोगोंको जहाँ जीवनकी खास-खास बातोंमें संयम और सावधानी इत्यादिकी जरूरत महसूस होती है, वहाँ मुझे लगता है कि मेरा कही कोई स्थान ही नही है। मुझसे जब कोई कहता है कि इस व्यवहार-कुशल संसारमें मुझे धीरे-धीरे आगे बढना चाहिए तो मैं अपना धीरज खो बैठता हूँ और उससे कहता हूँ: "मद्य-निषेधके मामलेमें आप धीरे-धीरे कैसे चल सकते हैं? जिस स्त्रीका पति शराबी हो, उससे तो आप इस तरहकी बातें नही करेंगे।" मैं एक ऐसे परिवारके साथ रह चुका हूँ, जिसमें पति शराबी था। यह बात प्रिटोरियाकी है, १८९३ की। महिला किसी तरह घर चलानेकी कोशिश करती थी और उसे हमेशा यही खटका लगा रहता था कि जब उसका स्वामी घर लौटेगा तो क्या होगा। यदि मैं उस महिलासे कहता कि "इस व्यवहार-कुशल संसारमें धीरे-धीरे चलना चाहिए — सीढी-दर-सीढी," तो वह मुझे अपने मकानमें किरायेदारकी तरह रहने भी न देती। आप मुझे भी उस महिलाकी-सी स्थितिमें मान सकते हैं, लेकिन इस फर्कके साथ कि मुझे उस तरहके किसी एक नही, बल्कि हजारों पतियोंके बीच रहना पड़ रहा है। तो फिर आप मुझसे रुक-रुककर, धीरे-धीरे चलनेके लिए कैसे कह सकते हैं? मैं ऐसी बातोंको सुनकर धीरज खो बैठता हूँ, मेरे मनमें क्रोध उमड़ आता है और अहिंसावादी होनेपर भी मेरी आँखोंमें आपको तीव्र आक्रोशकी झलक दिखने लगेगी। मैंने मद्य-निषेध संघके मन्त्री श्री एन्डर्सनसे भी यही बात कही थी। यह एक ऐसा विषय है जिसके बारेमें मैं बड़ी तीव्रतासे महसूस करता हूँ। कुछ और भी बातें हैं, जिनके बारेमें मेरी भावनाएँ इतनी तीव्र हैं, इतनी तीव्र कि मेरे शब्द उनकी तीव्रताको व्यक्त नही कर पाते। सचमुच वे इतनी पवित्र हैं कि

१. ट्रिप्लिकेनके मणि अय्यर हॉलमें।

मैं उनको अपने हृदयमें सँजोये रहता हूँ और अवसर मिलनेपर अपनी भावनाएँ इतनी तीव्रताके साथ व्यक्त करता हूँ कि दुनिया उन्हें समझनेमें कोई भूल नही कर सकती।

मद्य-निषेधके इस मामलेमें कुछ अंग्रेज भी हमारे साथ हैं, इसलिए कि वे मिशनरी या ईसाई हैं। पता नही, दूसरे अंग्रेज भी इसमें हमारे साथ हैं या नही। वे सब किसी-न-किसी कारणसे जरूरतसे ज्यादा व्यावहारिक रवैया अपनाकर चलते हैं। वे कहते हैं कि हमें सरकारकी कठिनाइयाँ समझनी चाहिए। मैं इस मामलेमें सरकारकी कठिनाइयाँ क्यों समझूँ? अगर हैं तो सिर्फ आर्थिक कठिनाइयाँ ही हैं, और किसी तरहकी कठिनाइयाँ नही हैं। इस सिलसिलेमें तीन चीजें हैं जिनको बिलकुल एक खरी कसौटी बनाया जा सकता है।

आजतक किसी भी अंग्रेजने मुझसे यह नही कहा कि भारतमें पूर्ण मद्य-निषेध असम्भव है। उन्होंने इसमें अगर कोई कठिनाई बतलाई है तो आर्थिक कठिनाई ही बतलाई है। हरएक कहता है: "जी, ठीक है। आप चाहते हैं कि मद्य-निषेध करके आपके बच्चोंकी शिक्षा आदिका खर्च पूरा करनेके लिए भारतपर करोंका अतिरिक्त भार लाद दिया जाये।" भारतमें लाखों-लाख शराबी हों, इससे तो अच्छा मैं यही समझता हूँ कि भारत अपने बच्चोंकी शिक्षाका खर्च पूरा करनेमें कंगाल बन जाये; या बच्चोंकी पढ़ाईकी कीमत चुकानेके लिए देशमें शराबखोर लोग हों, इसके बजाय मैं यह ज्यादा पसन्द करूँगा कि भारतके बच्चे अनपढ़ रहें। पर जब मुझसे कहा जाता है कि मैं अतिरिक्त कर लगानेका समर्थन करूँ तो मैं कहता हूँ "बस, खबरदार"; क्योंकि आमदनीके इस घाटेको पूरा करनेके और भी तो साधन हैं। मैं तो समझता हूँ कि सरकारने आबकारीको राज्यकी आमदनीका एक जरिया मानकर शुरूमें ही भयंकर भूल की है। इसे राज्यकी आमदनीका जरिया कभी मानना ही नही चाहिए था और न इसे आबकारीका जरिया होना ही चाहिए। मेरी शिकायत तो बिलकुल सीधी और साफ है, यह कि राज्यकी आमदनीके इस जरियेको शिक्षा और स्वास्थ्यका खर्च पूरा करनेके लिए हस्तान्तरित विभागोंको सौंप दिया गया है, जिसका नतीजा यह है कि हमारे मन्त्रियोंको आमदनीके इस अनैतिक, घृणित और पापपूर्ण साधनका सहारा लेना पड़ता है। इस प्रकारकी आमदनीसे बढ़कर पापपूर्ण दूसरी कोई आमदनी नहीं। इसे देखकर अपने ऊपर काबू रखना मेरे लिए मुश्किल हो जाता है और इसीलिए मुझे आपके सामने ऐसे कटु शब्दोंका प्रयोग करना पड़ रहा है।

मैं महसूस करता हूँ कि जहाँतक भारतकी बात है, यहाँ पूर्ण मद्य-निषेधके लिए जमीन तैयार है; यहाँ ऐसी परिपक्व परिस्थिति मौजूद है जिसमें मद्य-निषेधको एक या दो जिलोंमें आंशिक तौरपर नही, बल्कि समूचे देशमें पूरे तौरपर लागू किया जा सकता है। मैंने मद्रासके आबकारी विभागके मन्त्रीका भाषण पढ़ा है। दुःखके साथ कहना पड़ता है कि 'यंग इंडिया'के आगामी अंकके लिए मुझे उनके भाषणकी आलोचनामें कुछ लिखना पड़ा है।[1] एक या दो जिलोंमें परीक्षण कर

१. देखिए "पूर्ण मद्य-निषेध", ८-९-१९२७।

देखनेकी बात मुझे जँचती नहीं। मुझे तो यही लगता है कि मन्त्री महोदय एक-दो जिलोंमें ऐसा परीक्षण करेंगे और यदि उसमें सफलता न मिली तो कहा जायेगा कि अब इसका कभी परीक्षण नहीं किया जायेगा, वह कभी भी सफल नहीं हो सकता। आप सही कामको गलत तरीकेसे करें और फिर गलत तरीकेको दोष देनेके बजाय सही काममें ही दोष दिखाने लगें, यह तो ठीक बात नहीं है। देश मद्य-निषेधके पक्षमें है। यदि मद्य-निषेधके पक्षमें लाखों-लाख लोगोंके हस्ताक्षर जमा करनेसे ही कोई बात सिद्ध होती हो, तो वह तो मात्र संगठनका सवाल है। मैंने तो देशमें कहीं किसी स्थानपर मद्य-निषेधके विरुद्ध जनताको आवाज उठाते नहीं सुना। हाँ, रुपये-पैसेके जोरपर कोई झूठ-मूठका आन्दोलन खड़ा कर दिखाये तो बात दूसरी है। ऐसे देशी राज्य हैं, जहाँ कुछ इलाकोंमें मद्य-निषेध कर दिया गया है, लेकिन उन इलाकोंमें एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं निकला जो आगे आकर कहता: "हम चाहते हैं कि कमसे-कम एक दुकान तो यहाँ खोली जाये।" एक राज्यमें ह्विस्की और ब्रांडीका सेवन करनेवाले यूरोपीयोंको मद्य-निषेधसे विमुक्ति दे दी गई है। पर इस मामलेमें हम एक बड़ी कठिन स्थितिमें पड़े हुए हैं, इसलिए कि हमारे शासक या गवर्नर लोग शराब पीना अपराधपूर्ण या अनैतिक नहीं मानते। मेरे भी कुछ अंग्रेज मित्र हैं जो मद्य-निषेधकी मेरी बातोंका मखौल उड़ाते हैं। मेरे दिलमें उनके लिए बड़ा सम्मान है। वे शायद समझते हैं कि अगर पीनेमें थोड़ा संयम रखें, ज्यादती न करें तो वे होश-हवास नहीं खोयेंगे और इंसानियत नहीं छोड़ेंगे। मैंने खुद देखा है कि मेरे ये मित्र होश-हवास खो बैठते हैं और इंसानियत छोड़कर पशु भी बन जाते हैं। मैंने अपने कई मित्रोंको शराब पीनेके दौरान उच्छृंखल होते देखा है। वैसे वे बहुत ही बढ़िया किस्मके आदमी हैं, पर पीकर वे निरे गधे बन जाते हैं। उत्तरी ध्रुवके पासके प्रदेशोंमें शराब-जैसे गर्मी देनेवाले पेयका सेवन करना किसी हदतक माफ भी किया जा सकता है, लेकिन हमारे देशमें तो शराबकी कतई कोई जरूरत नहीं है। फिर भी यहाँ मद्य-निषेधके विरुद्ध एक तरहका आन्दोलन चल रहा है। [किसीने] मेरे पास मद्य-निषेधके विरुद्ध प्रकाशित ढेर-सी प्रचार—पुस्तिकाएँ भेजी थीं। उनमें लेखक इत्यादिका नाम नहीं दिया गया था। उनमें शराबकी प्रशस्ति-सी की गई थी। कायदेसे थोड़ी शराब पीनेके पक्षमें चिकित्सकों और विभिन्न धर्म-ग्रन्थोंके उद्धरण उनमें जुटाये गये हैं और सारी सामग्री इतने लुभावने और आकर्षक ढंगसे पेश की गई है कि समझसे काम न लेनेवाला व्यक्ति आसानीसे शराबखोरीके जालमें फँस सकता है।

यदि मद्य-निषेधपर आपका विश्वास इतना ही कट्टर और अदम्य हो जितना मेरा है और आप देशके कोने-कोनेमें मद्य-निषेधके लिए प्रचार करने लगें तो आपको सफलता अवश्य मिलेगी। हम लोगोंको आमद-खर्चकी दलीलके जालमें नहीं फँसना चाहिए। यह जाल हमारे लिए ही बिछाया गया है। हमारी स्थिति बिलकुल स्पष्ट होनी चाहिए। खर्चके लिए आमदनी जुटाना हमारा काम नहीं। शुरूमें ही जिन लोगोंने भयंकर भूल की है, उन्हींको अपने कदम पीछे हटाने चाहिए। आमद-खर्चकी

समस्यासे निकलनेका भी एक उपाय है। आप फौजपर खर्च होनेवाले करोड़ों-करोड़ रुपयेमें से २५ करोड़ निकाल दें। फौजपर होनेवाला खर्च दिनों-दिन बढ़ता ही रहा है। आप यदि एक सारणी बनाकर देखें तो पता चलेगा कि इस खर्चमें किस तरह बेहिसाब बढ़ोतरी हुई है। उस खर्चमें आप काफी कटौती कर सकते हैं। मैं इसके राजनीतिक इतिहासकी बात यहाँ नहीं करूँगा। आबकारीसे होनेवाली आमदनीमें जितना भी घाटा पड़े, उसकी पूर्ति फौजपर होनेवाले खर्चकी कटौतीसे ही होनी चाहिए, अन्य किसी मदसे नहीं। इसके लिए अतिरिक्त कर नहीं लगाये जाने चाहिए। उसका नतीजा यह होगा कि दस सालके अरसेमें ही सरकारकी आमदनीमें काफी अधिक वृद्धि हो जायेगी। मद्य-निषेधका प्रयोग करनेवाले देशोंका भी यही अनुभव है।

मद्यपान कायम रहनेसे जिनका स्वार्थ-साधन होता है, वे अखबारोंमें इस आशयके लेखादि प्रकाशित करवाते रहते हैं कि अमेरिकामें पूर्ण मद्य-निषेध सर्वथा असफल रहा है। आप उनपर विश्वास मत कीजिए। भारतमें जो अमेरिकी आते हैं उनमें शायद ही कोई ऐसा हो जो मुझसे मिले बिना देश लौटता हो। इन अमेरिकी लोगों और वहाँकी मद्य-निषेध लीग द्वारा प्रकाशित साहित्यसे इस बातका पूरा प्रमाण मिलता है कि मद्य-निषेधका परिणाम देशके लिए कुल मिलाकर लाभदायक रहा है। हाँ, यह सच है कि उसके उतने शानदार, बड़े-बड़े परिणाम नहीं निकल पाये जितने उन्होंने सोच रखे थे। अमेरिकामें लोकमतका कोई भी हिस्सा मद्य-निषेध उठा लिये जानेका समर्थक नहीं है। उनकी अपनी सरकार है और लोग वहाँकी वस्तुस्थितिसे सन्तुष्ट हैं। वहाँका मजदूर संयम और ईमानदारीका जीवन बिताता है। क्या राजस्वकी हानि का औचित्य ठहरानेके लिए इतना पर्याप्त नहीं? संसारके एक अन्य भागमें ऐसी परिस्थिति है, पर दुर्भाग्यकी बात कि भारतमें नहीं है। मद्य-निषेधका परीक्षण करनेवाले देशोंका अनुभव यह है कि उससे लोग पहलेकी अपेक्षा ज्यादा अच्छे बन गये और देशको कोई बहुत बड़ी आर्थिक हानि भी नहीं हुई। यदि भारतमें मद्य-निषेध कर दिया जाये तो यहाँ भी कोई मुसीबत, कोई आर्थिक संकट नहीं आ जायेगा। हममें से प्रत्येकका यह पवित्र कर्त्तव्य है कि हमसे बन पड़े तो हम देशसे शराबखोरीको बिलकुल ही दूर कर दें। यदि मेरे हाथमें शक्ति होती और मेरी चलती तो मैं आज ही ऐसा कर दिखाता।

अब मैं धरनेका प्रश्न लेता हूँ। मैं मानता हूँ कि कुछ धरनोंमें हिंसासे काम लिया गया था; लेकिन सरकारने धरनोंको बरदाश्त नहीं किया, इसका असली कारण यही था कि उससे उसकी आमदनी घटती थी। बिहारके लोगोंने एकाएक शराब छोड़ दी और निष्ठापूर्वक धरनेका समर्थन करने लगे। असममें भी यही हुआ। कुछ दिनोंके लिए अफीमचियोंके अड्डोंपर ताले पड़ गये। सरकार यह सब भला चुप बैठी कैसे देख सकती थी? धरने उपयोगी और आवश्यक थे, और इससे भारतको काफी लाभ हुआ, इस बातके काफी प्रमाण मौजूद थे। इसने सिद्ध कर दिया कि मद्य-निषेध सम्भव है। अमेरिकामें मद्य-निषेधने जबरदस्त आध्यात्मिक जागृतिको जन्म दिया है। लेकिन अमेरिकामें वह आध्यात्मिक चेतना पैदा करनेका काम काफी कठिन था।

परन्तु भारतमें तो उस कठिनाईका सौवां भाग भी हमारे सामने नहीं है। उनको तो अमेरिकी लोगोंके सहज स्वभावपर विजय पानी थी। पर हमारे यहाँ तो वैसी बात नहीं। यहाँ तो वातावरण मद्य-निषेधके पक्षमें है। इसलिए यहाँ उतनी सावधानीसे चलनेकी जरूरत नहीं। आरामकुर्सियोंमें घर बैठे-बैठे राजनीति बघारनेवाले राज-नीतिज्ञोंको देशकी हालतकी कोई जानकारी नहीं रहती और इसीलिए वे अमेरिकी और भारतीय जीवनके तौर-तरीकोंमें कोई भेद नहीं देख पाते। वे यह नहीं समझ पाते कि इस देशमें मद्य-निषेध सम्पन्न करनेके लिए बस इतना ही दरकार है कि हमारे अन्दर सच्ची इच्छा और साहस हो।

मैं शराब और अफीममें एक भेद मानता हूँ। अफीम आदमीको काहिल और मूर्ख बना देती है और शराब उसे पशु बना देती है। स्त्री यह ज्यादा पसन्द करेगी कि उसका पति बजाय शराबी होनेके मूर्ख हो। चिकित्साके कामके लिए ब्रांडी या किसी किस्मकी शराबके प्रयोगकी छूट देनेके लिए मैं राजी हूँ। मैं इंग्लैंड और भारतमें भी भेद करता हूँ। इंग्लैंडके लिए जो चीज अच्छी है, वह भारतके लिए भी अच्छी हो, यह जरूरी नहीं। यदि हम शराबखोरीके इस अभिशापको बरकरार रहने देंगे तो भावी पीढ़ियाँ हमें कोसेंगी।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, ६-९-१९२७

४१६. भाषण : हिन्दी प्रचार कार्यालयमें[1]

६ सितम्बर, १९२७

गांधीजीने कहा कि इस संस्थासे कोई मानपत्र ग्रहण करना मेरे लिए बेमानी है, क्योंकि इसे तो मैं अपनी ही संस्था मानता हूँ।

फिर भी इस विषयमें मैं आपके विचारको समझता हूँ। अबतक यह एक ऐसा बच्चा था, जिसका लालन-पालन और देख-भाल उत्तरके उदार लोग करते थे। अब यह एक ऐसा नौजवान बन गया है, जिसको अपनी देख-भाल खुद करनी चाहिए और आत्मनिर्भर बनना चाहिए। मेरा मतलब यह है कि अबसे दक्षिण भारतके लोग दक्षिणसे ही पर्याप्त पैसा इकट्ठा करें जिससे यह संस्था आत्मनिर्भर बन सके।

मैं मारवाड़ियों, गुजरातियों और उत्तरके दूसरे जो लोग यहाँ रहते हैं, उन सबसे यह अनुरोध करता हूँ कि वे इस संस्थाको अपनी संस्था मानें और हर तरहसे इस कामकी ओर अधिक ध्यान दें। मारवाड़ी लोग स्वभावसे ही व्यापारी होते हैं और मैं चाहता हूँ कि वे इस संस्थाके कार्यकर्त्ताओंमें व्यापार-बुद्धि जगाकर इसे समृद्ध और सफल बनानेमें सहायता दें। मैं चाहूँगा कि वे इसके हिसाब-किताबको, जिसको

१. यह भाषण दो मानपत्रोंके उत्तरमें दिया गया था। इनमें से एक हिन्दी प्रेमी मण्डलके सदस्यों और दूसरा हिन्दी प्रचार प्रेसके कर्मचारियोंने भेंट किया था।

देखनेकी जनताको पूरी छूट है, जाँच करें और यदि उसमें किसी प्रकारके सुधारके लिए कोई सुझाव देना जरूरी हो तो दें।

अन्तमें मैं प्रचारकोंसे यह कहना चाहता हूँ कि इस तरहके अन्य कार्योंकी तरह ही हिन्दी-प्रचारके कार्यमें वे तभी सफल हो सकते हैं जब आदर्श जीवन व्यतीत करें और उनमें चारित्रिक दृढ़ता हो। इस तरहके कार्यकर्त्ताओंके लिए सबसे ज्यादा जरूरी यह है कि उनमें अपने कामको सफल बनानेके लिए जुटे रहनेकी दृढ़ता और संकल्पका गुण हो। मुझे पूरा विश्वास है कि यदि अबतक सभी प्रचारकोंने इसे अपने जीवनका परम उद्देश्य नहीं बना लिया हो तो अब वे अवश्य बना लेंगे।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, ६-९-१९२७

४१७. पत्र: मीराबहनको

[७ सितम्बर, १९२७]

चि० मीरा,

मैं बड़ी आकुलतासे तुम्हारे तारोंकी राह देखता हूँ। तार आते भी हैं, लेकिन उनमें मुझे मनको आश्वस्त करनेवाला समाचार नहीं मिलता।[१] लेकिन हमको शिकायत नहीं होनी चाहिए। रुग्णताका भी कुछ लाभ उठाना चाहिए और उसे प्रसन्नतापूर्वक झेलना चाहिए। तुम्हारा आखिरी तार अभी-अभी मिला। उसमें बताया गया है कि अब शायद ज्वर काबूमें आ गया है। ईश्वर करे, ऐसा ही हो। मैं अक्सर तुम्हें तार देनेकी सोचता हूँ, लेकिन फिर अपने मनसे कहता हूँ कि मुझे ऐसा करनेका अधिकार नहीं है। लेकिन मेरी शुभकामनाएँ और मेरे आशीर्वाद सदा तुम्हारे साथ हैं।

सुख और दुःखको समभावसे स्वीकार करना, यही 'गीता'की सीख है।

सस्नेह,

बापू

अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ५२७१) से।
सौजन्य: मीराबहन।

१. इसे स्पष्ट करते हुए मीराबहनने लिखा है: "उस समय मुझे मलेरियाका तेज बुखार आ रहा था; मेरा तापक्रम १०५° से भी अधिक हो गया था।"

४१८. बातचीत: नीलकी मूर्ति हटानेका आन्दोलन करनेवाले स्वयंसेवकोंसे

मद्रास

६ और ७ सितम्बर, १९२७

आज हम महात्मा गांधीकी स्वीकृतिसे नीलकी मूर्ति हटानेके आन्दोलनसे सम्बन्धित स्वयंसेवकोंकी उनके साथ हुई बातचीतकी पूरी रिपोर्ट छाप रहे हैं। बातचीत मद्रासमें मंगलवार और बुधवारको हुई थी।... 'हिन्दू' का प्रतिनिधि बातचीतके दौरान उपस्थित था। उसने वहीं-के-वहीं सारी बातचीतको दर्ज कर लिया था। फिर उसकी लिखी चीजका महात्मा गांधीने संशोधन किया।

तमिलनाड स्वयंसेवक दलके कोई २० सदस्योंने, जो इन दिनों नगरसे नीलकी मूर्ति हटवानेके आन्दोलनमें लगे हुए हैं, मंगलवारको तीसरे पहर इस विषयपर घंटे-भरसे कुछ अधिक समयतक महात्मा गांधीसे बातचीत की। उस दिन बातचीत खत्म नहीं हो सकी और फिर उन्होंने अगले दिन भी बातचीत की।

श्री के० कुलन्दाईने इन नौजवानोंके नेताके रूपमें महात्माजीको अपना परिचय देते हुए बताया कि वे इस आन्दोलनमें कैसे पड़े। उन्होंने कहा कि मजिस्ट्रेटने इन युवकोंको जो अमानवीय दण्ड सुनाया उससे उनका मन बहुत त्रस्त और व्यथित हो गया और उन्हें लगा कि एक कांग्रेसी और जिला कांग्रेस कमेटीके मन्त्रीके नाते इन्हें सहायता और सलाह देना उनके लिए जरूरी है। उन्होंने बताया कि वे किसी प्रतिज्ञासे बँधे हुए नहीं हैं और अपनेको गिरफ्तार भी नहीं करवा रहे हैं।

गांधीजी: इस सम्बन्धमें शायद एक या दो लोगोंको दो-दो वर्षके कठोर कारावासका दण्ड दिया गया है न?

श्री कुलन्दाईने इसका उत्तर 'हाँ' में देते हुए कहा कि हमारे हस्तक्षेपके परिणाम-स्वरूप बहुत कठोर दण्ड नहीं दिया गया।

कुलन्दाई: अबतक इस सम्बन्धमें २७ लोग जेल जा चुके हैं, जिनमें से दो महिलाएँ हैं। इनमें से अधिकांशने मदुरामें, तलवार सत्याग्रहके नामसे प्रसिद्ध आन्दोलनमें भाग लिया था। इस दलमें कुल २०० व्यक्ति शामिल हैं। ये मुख्यतः मदुरा और रामनाड जिलोंके हैं।

नीलकी मूर्तिको तोड़नेकी बात पहले-पहल किसके मनमें आई?

उत्तरमें बताया गया कि यह बात पहले-पहल सोमयाजुलु और श्रीनिवास-वरदनके मनमें आई।

यह मदुरा आन्दोलनकी विफलताके बाद की बात है न?

एक स्वयंसेवक : हम मदुरामें विफल तो नहीं हुए। हम लोग खुले आम सड़कों-पर तलवार लेकर निकलते थे और हमें किसीने गिरफ्तार नहीं किया। इस तरह हमने शस्त्र अधिनियमको सफलतापूर्वक तोड़ा।

इसपर महात्माजी अपनी हँसी नहीं रोक पाये और उन्होंने उनसे कहा कि आप इस भ्रममें न रहिए कि आपका वह आन्दोलन सफल हुआ।

जब सरकारने देखा कि आप लोग जो तलवारें लेकर निकलते हैं, वे तो महज टीनकी तलवारें हैं और आपको जनताका समर्थन प्राप्त नहीं है, तो फिर उसने यही सोचा कि आपको रोककर वह व्यर्थ ही आपको विज्ञापन और महत्त्व क्यों दे। सो उसने आपको अपने मनकी करने दी। इसलिए यह कहना बेकार है कि चूँकि आपको गिरफ्तार नहीं किया गया इसलिए आप सफल रहे। आपका उद्देश्य तो तब पूरा हो जब सरकार शस्त्र अधिनियमको हटा दे और हर भारतीयके लिए शस्त्र लेकर चलना सम्भव हो जाये। लेकिन, याद रखिए कि यह कभी होनेवाला नहीं है। स्वराज्य सरकारका काम भी शस्त्र अधिनियमके बिना नहीं चल सकता। कुछ-न-कुछ अंकुश तो रहना ही चाहिए।

इसलिए मैं तो कहूँगा कि आप यही मानें कि मदुरा सत्याग्रह विफल हो गया। भविष्यमें हम सफल हो सकें, इसके लिए अपनी पहलेकी विफलताको स्वीकार कर लेना अच्छा है।

इसके बाद महात्माजीने स्वयंसेवकोंकी सत्याग्रहकी समझको परखनेके लिए एक-दो स्वयंसेवकोंसे एक-दो सवाल पूछे।

इसीलिए मैंने आपसे सत्याग्रहकी परिभाषा बतानेको कहा। जबतक आप उसकी 'यंग इंडिया' में बताई परिभाषाको स्वीकार नहीं करते और उसे सीख नहीं लेते तब-तक आप सत्याग्रह-संघर्षमें सफल होनेवाले नहीं हैं। यदि आप सत्याग्रहकी सच्ची भावनासे ओतप्रोत होंगे तो मैं आपका समर्थन करूँगा; बल्कि सारा देश आपके साथ रहेगा।

इस सम्बन्धमें मैं आपको व्यावहारिक महत्त्वकी एक बात बता दूँ। आप इस समय सार्वजनिक संगठनोंसे ऐसी अपेक्षा न रखें कि वे आपका मार्गदर्शन करेंगे या सत्याग्रहके मामलेमें आपका साथ देंगे।. . .

इसपर उपस्थित स्वयंसेवकोंमें से एकने पूछा : क्या इन संगठनोंमें कांग्रेस कमेटियाँ भी शामिल हैं?

हाँ, इस समय तो हैं ही। और मैं बताता हूँ कि क्यों हैं। अभी कांग्रेसके सामने एक बहुत कठिन कार्य पड़ा हुआ है; और छोटे-छोटे समूहोंसे सम्बद्ध आन्दोलनोंका संचालन करना उसके लिए सम्भव नहीं है। छोटे-छोटे समूहोंसे सम्बद्ध आन्दोलनोंका मतलब आप साम्प्रदायिक आन्दोलन न लगायें। यदि कांग्रेस ऐसे आन्दोलनोंमें सहायता देगी तो वह कहींकी नहीं रह जायेगी। कांग्रेसकी अपनी प्रतिष्ठा है, उसकी एक कीर्ति है, जिसे खोनेका भय उसे बना रहता है। इसलिए आप नौजवान लोग कांग्रेस अथवा अन्य सार्वजनिक संस्थाओंसे तत्काल यह भार अपने सिर लेनेकी अपेक्षा न रखें, यही बेहतर है।

आप चिरला-पेरला आन्दोलनके[1] बारेमें तो जानते हैं। उस आन्दोलनके साथ मेरी पूरी सहानुभूति थी। मैं बराबर उसकी प्रगतिका जायजा लेता रहता था। मैं वहाँ गया भी था, क्योंकि उसके बारेमें मेरे ख्याल बहुत ऊँचे थे। वहाँ एक विशाल सार्वजनिक सभामें मैंने भाषण भी दिया था। उन दिनों कांग्रेसपर मेरा प्रभाव था, जो आज नहीं रहा। उन दिनों तो मैंने जहाँ यह कहा कि कांग्रेसको ऐसा करना चाहिए, वह अपने-आप वैसा करने लगती थी; और किसी तरहकी दलील-बहसकी जरूरत नहीं पड़ती थी। लेकिन, तब भी मैंने चिरला-पेरलाके लोगोंसे कहा था कि कांग्रेस आप लोगोंके आन्दोलनका भार अपने सिर लेने नहीं जा रही है। जब कांग्रेस सविनय अवज्ञाके लिए तैयार हो जायेगी तो वह अपनी ओरसे ही उसे आरम्भ करेगी। लेकिन दूसरोंके द्वारा शुरू किये गये किसी आन्दोलनका सूत्र-संचालन, चाहे वह आन्दोलन जितना भी महान् हो और उसे जितने भी अच्छे ढंगसे चलाया जा रहा हो, अपने हाथोंमें नहीं ले सकती। वह तो उसे अलग खड़े रहकर ही देख सकती है। अगर आन्दोलन सफल हो जाता है तो वह उस सफलताके श्रेयकी भागीदार बन सकती है, लेकिन उसके विफल होनेपर वह उसकी बदनामीकी भागीदार नहीं बन सकती।

इसके बाद महात्मा गांधीने उन दिनोंके एक प्रसंगकी चर्चा की जब वे दक्षिण आफ्रिकामें थे।

मैं ब्रिटिश भारतीय संघका मन्त्री था। उस संघकी स्थापना भी मैंने ही की थी। लेकिन जब मैंने वहाँ सत्याग्रह-आन्दोलन प्रारम्भ किया तब मुझे संघको बचानेकी चिन्ता हुई। संघमें तरह-तरहके विचारोंके लोग थे और उस आन्दोलनमें उसे शरीक करके और इस तरह उसकी प्रतिष्ठाको खतरेमें डालकर मैं उसे तोड़ना नहीं चाहता था। इसलिए बिलकुल शुरूसे ही संघको सत्याग्रह-आन्दोलनसे अलग रखा गया। अत. सत्याग्रह संघ नामसे एक नये संगठनकी स्थापना की गई, जिसका अपना अलग कोष था, जिसके अपने अलग पदाधिकारी थे। जब पूरी विजय हासिल हो गई तो ब्रिटिश भारतीय संघने उसका श्रेय लिया। इस संघको उस आन्दोलनसे अलग रखनेका ही यह परिणाम था कि मैं आन्दोलनको बिना किसी विशेष कठिनाईके सफल बना सका। वैसे कठिनाइयाँ तो थीं ही। मुझपर इतनी मार पड़ी कि मैं मरते-मरते बचा। यदि मैंने ब्रिटिश भारतीय संघको उस आन्दोलनमें घसीट लेनेकी भारी भूल की होती तो संघ छिन्न-भिन्न हो जाता और दक्षिण आफ्रिकामें हमें जो विजय मिली वह न मिल पाती और तब तो मैं महात्माकी उपाधिसे भी वंचित ही रह जाता।

इसलिए आपको कांग्रेसवालोंसे खुद ही कहना चाहिए कि 'आप लोग अलग रहें और इस आन्दोलनमें हमें अपना जोर आजमाकर देखने दीजिए। आप हमारी सफलताके भागीदार बन सकते हैं, लेकिन यदि हम विफल हो जाते हैं तो विफलताकी अपकीर्तिसे आप अलग रहेंगे।' आज सुबह जब मैं श्री सत्यमूर्तिसे मिला तो मैंने उनसे भी कहा कि कांग्रेस अभी तो इस आन्दोलनको नहीं अपना सकती। उसे इस आन्दोलनको

१. देखिए खण्ड २१, पृष्ठ १६-१८।

और इसमें लगे लोगोंको ठोंक-बजाकर देख लेना होगा। जल्दबाजी या अविवेकसे काम लेकर हमें कांग्रेसके उज्ज्वल नामको मलिन नहीं करना चाहिए। लेकिन मैं आपको यह भी बता दूँ कि जब आप कसौटीपर खरे उतरेंगे और अपना पानी दिखा देंगे तो कांग्रेस निश्चय ही आपका समर्थन करेगी। तब अगर कांग्रेस आपका साथ नहीं देगी तो मैं सबसे आगे बढ़कर उसकी निन्दा करूँगा। इस बीच मैं यही चाहता हूँ कि आप खुद अपने प्रति सच्चे बने रहिए। कुछ लोगोंने मुझसे कहा कि "अरे, आप नहीं जानते कि ये कैसे लोग हैं। इनके पास जीविकाका कोई और जरिया नहीं है, इसीलिए ये लोग यह सब कर रहे हैं कि इस तरह कुछ तो मिलेगा।" किन लोगोंने यह बात कही होगी, इसका अनुमान लगानेकी कोशिश न करें, आप नाराज भी न हों। इसके विपरीत आप ऐसा आचरण करें जिससे उनका आरोप झूठा साबित हो।

इसी समय किसीने एक पर्चा भेजकर सूचित किया कि जिन दो नौजवानोंने सत्याग्रह किया था उन्होंने मजिस्ट्रेटके सामने अपने व्यवहारके लिए खेद प्रकट किया है और उनसे कुछ जुर्माना लेकर उन्हें छोड़ दिया गया है।

इसपर उपस्थित लोगोंमें से एक चीख उठा, "ये लोग नकली स्वयंसेवक हैं।"

आप सब-के-सब रुपयेमें सोलहों आने खरे उतरें, ऐसी अपेक्षा तो मैं आपसे नहीं रखता। कुछ लोगोंमें सिर्फ पाई-भर सचाई हो सकती है और कुछमें शायद वह भी नहीं। इसलिए उन दोनोंके माफी माँग लेनेसे मुझे तो कोई परेशानी नहीं होती। और अगर वे लोग नकली थे तब तो फिर उनके बारेमें आपको कोई सफाई देनेकी जरूरत ही नहीं है।

श्री कुलन्दाई: महात्माजी, मेरे मनमें एक शंका है, जिसका समाधान मैं आपसे चाहता हूँ। मान लीजिए, सरकार और जनताको यह मालूम हो जाये कि कांग्रेस इस आन्दोलनका समर्थन नहीं कर रही है, तब तो सम्भावना इसी बातकी है कि इन लड़कोंको सरकार ज्यादा सख्त सजाएँ देगी और जनता इनका बहुत कम समर्थन करेगी। जैसा कि मैंने कहा, मैं इस आन्दोलनमें इसलिए पड़ा कि जिला कांग्रेस कमेटीके मन्त्रीकी हैसियतसे मुझे कांग्रेसके सम्मान और प्रतिष्ठाकी रक्षा करनेकी चिन्ता थी और उसकी रक्षा करनेका तरीका यही था कि इन लोगोंको बिना किसी सहानुभूति या समर्थनके दुविधाकी स्थितिमें न छोड़ा जाये।

मैं तो आपको एक उदाहरण दे ही चुका हूँ कि दक्षिण आफ्रिकामें ब्रिटिश भारतीय संघके मन्त्रीकी हैसियतसे मैंने क्या किया।

कुलन्दाई: यदि सरकारको यह मालूम हो जायेगा कि इस आन्दोलनसे कांग्रेसको कोई सहानुभूति नहीं है तो ये सभी लड़के जेलमें बन्द कर दिये जायेंगे।

उससे कोई फर्क नहीं पड़ता।

कुलन्दाई: लेकिन सिर्फ यही तो नहीं है; उस हालतमें उन्हें जनताकी सहानुभूति भी तो नहीं मिलेगी।

ठीक है, और मैं भी यही चाहता हूँ कि इस तरह आप स्वतन्त्र और आत्म-निर्भर बनकर अपना काम करने लायक बन सकें। लेकिन, जबतक हमें सफलता नही मिल जाती तबतक हम इसमें कांग्रेसका नाम नही घसीटेंगे। हमारे विजेताओंके इतिहाससे आप एक उदाहरण ले सकते हैं। ईस्ट इंडिया कम्पनीको लीजिए। वह ब्रिटिश सरकारकी मिल्कियत नही थी। ब्रिटिश सरकार तो उसके मामलोंमें बादमें पड़ी। इसलिए, मैं कहता हूँ कि इस आन्दोलनको कांग्रेसके नामपर और उसकी इजाजतसे नही चलाना चाहिए। हाँ, एक व्यक्तिके रूपमें आप कांग्रेसी होते हुए भी इस संघर्षको चला सकते हैं।

सत्याग्रही जल्दीमें कोई कदम नही उठाता; वह पहले अन्य सारे उपायोंको आजमाकर देख लेता है और उन सबके विफल होनेपर ही सविनय अवज्ञाका सहारा लेता है। और 'सविनय अवज्ञा' शब्दका प्रयोग भी तभी ठीक माना जा सकता है। आपका आन्दोलन सविनय अवज्ञा भले ही हो, लेकिन यदि आपने यह कदम जल्दीमें उठाया हो और दूसरे सभी उपायोंको आजमाकर न देख लिया हो तो मैं कहूँगा कि आप अपना आन्दोलन स्थगित कर दीजिए। मैं आपको यह सलाह इसलिए दे रहा हूँ कि आपके पक्षमें संगठित जनमत तैयार हो सके और आप सच्चे सत्याग्रही बन सकें। आप पहले जनताको मूर्तिको हटवानेके लिए जो भी उपाय सम्भव हो सबको अपने तरीकेसे आजमाकर देख लेने दीजिए, और यह देखिए कि सरकार इस सम्बन्धमें कुछ करती है या नही। यदि वह नही करती तब आप सत्याग्रह शुरू कीजिए।

अगर आप मुझसे यह बतानेको कहें कि आप लोगोंको क्या करना चाहिए तो मैं कहूँगा कि आपका आन्दोलन करना उचित है, बशर्ते कि आप उन शर्तोंको पूरा करते हों जो मैंने बताई हैं। आपके प्रति मुझे बहुत सहानुभूति है। मैंने 'हिन्दू' से आपके और आपके आन्दोलनके बारेमें जाना और यह जानकारी मिलते ही मैंने 'यंग इंडिया' में जैसा उचित समझा वैसा लिख दिया।[1] अब तो आपसे मिलने और बातचीत करनेका भी मौका मिल गया है, इसलिए मैं और अधिक करनेकी कोशिश करूँगा। लेकिन, वैसा मैं तभी कर सकता हूँ जब मुझे इस बातका विश्वास हो जाये कि कमसे-कम आन्दोलनके नेता लोग कभी बेईमानीसे काम नही लेंगे और वे सिर्फ अपनी शोहरत बढानेके लिए कुछ नही करेंगे। नेता चाहे मोची हो या दर्जी, उससे कोई अन्तर नही पड़ता। मैं इस ओरसे आश्वस्त हो जाना चाहता हूँ कि आपके नेता शुद्ध और खरे हैं और उन्हे किसी आर्थिक लाभका लोभ नही है। सत्याग्रहीकी सफलता या विफलता उसकी अपनी इच्छा-शक्तिपर निर्भर होती है।

अभी मुझे अपना उत्तर न दीजिए। मैं आपको मुलाकातका एक और अवसर दूँगा। मैंने जो-कुछ कहा है, उसपर गम्भीरतापूर्वक विचार कीजिए और जब दोबारा मिलने आइए तो बताइए कि अब आपकी क्या योजना है। आपके पास जितने भी स्वयंसेवक हैं, सबकी सूची मुझे दीजिए। उसमें उनकी उम्र, पता और पेशा, सब दर्ज

१. देखिए "टिप्पणियाँ" २५-८-१९२७ का उपशीर्षक "ये धृष्ट स्मारक"।

रहने चाहिए। और मैं चाहूँगा कि जरूरत हो तो एक कांग्रेसीकी हैसियतसे श्री कुल-न्दाई आन्दोलनकी सचाई और इसमें लगे लोगोंकी विश्वसनीयताका एक प्रमाण दें। यदि आप इस साधारण-सी परीक्षामें मुझे सन्तुष्ट नही कर सके तो आप आगे नही बढ़ सकते। आपने जमीन तो तैयार कर ही दी है। नीलकी मूर्तिको आज-न-कल हटना ही है। सफलता खुद हमारी शक्तिपर निर्भर होगी। आप अपनी गति धीमी कर दें तो उसमें कोई बुराई नही है।

श्री एम० एस० सुब्रह्मण्य अय्यरको उत्तर देते हुए महात्माजीने कहा :

जो तरीका अपनाया गया है, वह सत्याग्रहपूर्ण तरीका भी हो सकता है और हिंसापूर्ण तरीका भी। सब कुछ इस बातपर निर्भर है कि यह किस भावनासे किया जा रहा है। उस भावनाके अनुसार ही यह तय किया जा सकता है कि यह काम कैसा है। किसी निष्प्राण वस्तुको नुकसान पहुँचाना या उसे नष्ट करना सदा हिंसात्मक कार्यकी ही श्रेणीमें नही आता।

श्री पावलार : तो क्या आपकी यह सलाह है कि आन्दोलन स्थगित कर दिया जाये?

हाँ, अगर आपमें सच्चा बल न हो। लेकिन, कृपया इसपर भली भाँति विचार करके कल मुझे बताइए कि आप क्या सोचते हैं।

जब बुधवारको तीसरे पहर बातचीत फिर आरम्भ हुई तो एक स्वयंसेवकने उन लोगोंकी राय बतानेके लिए एक बयान पढ़ा। पिछली रात और बुधवारकी सुबह उन लोगोंने महात्माजीकी सलाहको ध्यानमें रखकर आपसमें विचार-विमर्श किया था। इस बयानमें उसका निष्कर्ष बताया गया था। बयान निम्न प्रकार था :

आपने कल हमें जो सलाह दी थी, उसपर हमने बहुत ध्यानपूर्वक विचार किया। रात श्री एस० सत्यमूर्तिसे भी हमारी बातचीत हुई थी। इसके बाद हमने सारे मामलेपर आज पुनः विचार किया है। हम यह महसूस करते हैं कि परिस्थिति बहुत कठिन और पेचीदा है। इसलिए हम चाहेंगे, अब आप ही बताइए कि हमें क्या करना चाहिए। हम आपकी सलाहके मुताबिक चलेंगे। हम बहुत सोच-विचारकर कुछ निष्कर्षोंपर पहुँचे हैं और हम उन्हें आपके विचारार्थ आपके सामने रखना चाहेंगे। हमें इस बातकी बहुत चिन्ता लगी हुई है कि आन्दोलनसे जो उत्साह जगा है, उसे यों ही मन्द नहीं पड़ने देना चाहिए। हम यह स्वीकार करते हैं कि इस संघर्षको सफल बनानेके लिए यह जरूरी है कि हम पहले मूर्ति हटवानेके अन्य सारे तरीकोंको आजमाकर देख लें, जनतामें उत्साह भरें और अपने-आपको ठीक ढंगसे संगठित करें। हमें ऐसी आशंका है कि यदि आन्दोलनके लिए ठीक संगठन कायम करने और मूर्तिको हटवानेके दूसरे सभी उपायोंको आजमाकर देख लेनेके लिए आन्दोलनको स्थगित कर दिया गया और जनताके उत्साहको कायम रखनेके लिए कोई व्यवस्था नहीं की गई तो हो सकता है कि यह आन्दोलन प्रेरणाके अभावमें चुक जाये। इस-

लिए हम चाहते हैं कि आज जो उत्साह जगा है उसे हर उचित और शान्तिपूर्ण तरीकेसे कायम रखा जाये और यदि आन्दोलन स्थगित किया जाये तो सार्वजनिक रूपसे यह जाहिर करके किया जाये कि आपकी ऐसी ही सलाह है। इसके अलावा, आन्दोलन स्पष्ट रूपसे इसी उद्देश्यसे स्थगित किया जाना चाहिए कि यदि आवश्यकता होगी तो ठीक समय आनेपर इसे फिरसे आरम्भ किया जायेगा।

इस उद्देश्यको ध्यानमें रखते हुए हमारा नम्र सुझाव है कि आप 'यंग इंडिया' में इस आन्दोलनके सम्बन्धमें हर सप्ताह एक अनुच्छेद जरूर लिखें और तमिलनाडुके दौरेमें इसके बारेमें बोलें भी। इसके अतिरिक्त, हम यह भी चाहेंगे कि आप कोई ऐसा आश्वासन देकर हमें बल दें कि यदि और सभी उपाय विफल हो जाते हैं तो उपयुक्त समय आनेपर आप खुद ही इस आन्दोलनमें हमें हर सम्भव तरीकेसे सहायता देंगे।

यदि इन चीजोंपर आपकी स्वीकृति मिल जाती है तो आपके सुझावके अनुसार हम आन्दोलनको तीन महीनेके लिए स्थगित कर देनेको तैयार हैं। हमारा अनुरोध है कि इस बीच आप यहाँके कांग्रेसी नेताओंसे मूर्तिको हटवानेके आन्दोलनको चालू रखनेके लिए हमें आवश्यक सहायता देनेको कहें।

यह आवश्यक सहायता क्या है?

स्वयंसेवक: भाषण देना, स्वयंसेवक भरती करना और हमारी आर्थिक स्थितिको दृढ़ करना — इन्हींके सम्बन्धमें हम आपसे सहायताकी अपेक्षा रखते हैं।

आर्थिक सहायता किस बातके लिए?

स्वयंसेवकने उत्तर दिया कि हममें से कोई सौ स्वयंसेवक मदुरा और रामनाड जिलोंके विभिन्न हिस्सोंके लोग हैं। उनके रहने, खाने-पीने और उन्हें मद्रास लानेके लिए पैसेकी जरूरत है।

फिलहाल तो वे अपना खर्च खुद ही चला रहे हैं?

स्वयंसेवक: हाँ।

तो फिलहाल उनके खर्चके लिए पैसेकी जरूरत नहीं है?

इसका भी स्वीकारात्मक उत्तर ही दिया गया।

तब तो मुझे ऐसा समझना चाहिए कि भविष्यमें भी उनके खर्चके लिए पैसेकी जरूरत नहीं पड़ेगी?

स्वयंसेवक: हम प्रचार-कार्यके लिए पैसा चाहते हैं।

किस प्रचार-कार्यके लिए?

स्वयंसेवक: स्वयंसेवकोंकी भरतीके लिए सभा आदि आयोजित करनेके लिए।

लेकिन यदि सभा आदि कांग्रेस करे, तब तो आपको पैसेकी जरूरत नहीं होगी। लेकिन असलमें जेल जानेका मौका आनेपर ही तो आपका काम शुरू होगा। स्वयंसेवकोंको मद्रास लानेकी बात तो बहुत मामूली है। आप यह तो नहीं चाहते कि

हजार-के-हजार स्वयंसेवक, अगर यह मान लें कि स्वयंसेवकोंकी संख्या इतनी बड़ी है तो, एक साथ मद्रास पहुँच जायें। आप अधिकसे-अधिक एक साथ दो-दो की संख्यामें गिरफ्तार होंगे। जो सच्चा सत्याग्रही स्वेच्छासे गिरफ्तार होने जा रहा है और जो मरनेके लिए भी तैयार होगा, वह आपसे रेलगाड़ीके किरायेके पैसोंकी माँग नहीं करेगा। निश्चय ही वह रेल-भाड़ेकी व्यवस्था खुद कर लेगा। अगर उसके पास पैसे नहीं हैं तो उसके यहाँके लोग उसके लिए पैसे अवश्य जुटा देंगे। और जहाँतक प्रचार-कार्यकी बात है, वह काम आपको खुद नहीं करना है। उसे तो दूसरे लोग करेंगे।

गरज यह कि आपको पैसेकी चिन्ता बिलकुल नहीं करनी चाहिए। जब जरूरत होगी, आपको पैसे मिलेंगे ही। लेकिन, आपको इसका आग्रह नहीं करना चाहिए। और आपको उतना ही करना चाहिए जितना आपके बसका हो। आपके काममें मैं इसलिए दिलचस्पी ले रहा हूँ क्योंकि यह मेरा मन-पसन्द काम है। मैं नहीं चाहता कि यह काम किसी प्रकारकी बदनामीका शिकार हो। इसीलिए मैंने कल आपको एक घंटा दिया और आज फिर एक घंटा दे रहा हूँ। मैं एक बार फिर कहता हूँ कि आप पैसेकी चिन्ता बिलकुल न करें; अन्यथा सब-कुछ बिखर जायेगा।

यदि आप इस संघर्षको दृढ़ताके साथ चलाना चाहते हैं तो इसे अधिकसे-अधिक नम्रता बरतते हुए चलाइए। आपको पूरी तरह ईमानदार और अनुशासित होना चाहिए; किसी प्रकारकी शेखी या हिंसासे काम नहीं लेना चाहिए। आपको सत्याग्रहके सहज बलका ही भरोसा रखना चाहिए। किसी-न-किसी दिन यह ऐसी शक्ति दिखायेगा ही जिसकी राह कोई नहीं रोक सकेगा। यदि आप ऐसा सोचें कि आपमें अपेक्षित शक्ति या धैर्य नहीं है, तो तत्काल इसे छोड़ दें। आपको इस क्षेत्रमें जितना करना था उतना आप कर चुके हैं। आपने नींव डाल दी है। संघर्ष जारी रहेगा और यह मूर्ति भी अवश्य हटाई जायेगी, क्योंकि यह एक बहुत ही बुरे ढंगके आतंकवादको स्थायित्व प्रदान करनेके लिए वहाँ स्थापित है। इसके लिए सबसे उपयुक्त स्थान समुद्रकी गहराई है। हाँ, अगर इसे इंग्लैंड या किसी कबाड़खानेमें डाल दिया जाये तो बात और है।

दूसरी बात मैं यह कहना चाहता हूँ कि यदि आपको ऐसा खतरा हो कि आन्दोलन स्थगित कर देनेसे आपका संगठन और एकता खत्म हो जायेगी तो मैं नहीं चाहता कि आप अपना कदम वापस लें। लेकिन, अगर आपको ऐसा कोई भय न हो और लगता हो कि तीन महीने बाद आप फिर एक-जुट होकर काम कर सकेंगे तो आप एक घोषणा-पत्र जारी कीजिए और उसमें कहिए कि हमने संघर्ष स्थगित कर दिया है, क्योंकि हमें यही ठीक लगा और इसीलिए हमने ऐसा किया है। अब हम कांग्रेस तथा अन्य सभी सार्वजनिक संगठनोंसे इस कामको हाथमें लेने और मूर्तिको हटवानेके लिए उनसे जो भी बने वैसा करनेकी आशा रखते हैं। जब यह बात भलीभाँति स्पष्ट हो जाये कि इस तरहके आन्दोलनका सरकारपर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा तब हमारे कष्ट-सहनकी बारी आयेगी। तब हमारे खिलाफ कोई यह न कहे कि हमने जल्दबाजीमें काम किया और एक बार उस मूर्तिकी ओर

ध्यान दिलानेके बाद हमने उसे हटाये जानेका मौका देनेका धीरज नहीं दिखाया। इन कारणोंसे हम सत्याग्रहको स्थगित करते हैं।

और तब उस संघर्षमें मेरी भूमिकाका प्रसंग आता है। मैं यह नहीं कह सकता कि इस संघर्षका नेतृत्व मैं नहीं करूँगा; और न मैं यही कहनेकी स्थितिमें हूँ कि मैं उसका नेतृत्व अवश्य करूँगा। मेरा नेतृत्व करना, न करना इस बातपर निर्भर होगा कि उस समय मेरा मन क्या कहता है और इस बीच आपका आचरण कैसा रहता है। ऐसे मामलोंमें मैं भावावेशमें निर्णय लेता — नहीं, भावावेश सही शब्द नहीं है — मैं कहना चाहता हूँ, सबुद्धिके धरातलपर निर्णय लेता हूँ। उस स्थितिका वर्णन इसी पवित्र शब्दसे किया जा सकता है। लेकिन, 'यंग इंडिया' से जितनी सहायता देते बन सकती है, उतनी सहायता आपको अवश्य मिलेगी। उसके स्तम्भोंके जरिये आपके पक्षमें जनमत तैयार करनेके लिए मुझसे जितना बनेगा, अवश्य करूँगा।

एक प्रश्नके उत्तरमें महात्माजीने कहा :

अंतिम निर्णय आपपर निर्भर होगा, मुझपर नहीं। मैं आपको उत्तरदायित्वसे मुक्त नहीं करना चाहूँगा। प्रारम्भ करनेवाले तो आप ही हैं। मैं तो आपको सिर्फ सलाह दे सकता हूँ, आपकी शक्तिको सही दिशा ही दे सकता हूँ। लेकिन अगर आप मेरी सलाह मानेंगे और मेरे नामका उपयोग करेंगे तो आप देखेंगे कि आप यह काम मेरी शर्तोंके मुताबिक कर रहे हैं। शर्तें मैंने आपको पहले ही बता दी हैं। आप चाहेंगे तो मैं उन्हें लिखकर भी दे दूँगा। यदि उन शर्तोंसे आप रंच-मात्र भी विचलित हुए तो फिर उससे मेरा कोई सरोकार नहीं रह जायेगा। उद्देश्य अच्छा है। लेकिन अगर इसके पीछे बुरे लोग होंगे तो इसको हानि पहुँचेगी। यह आन्दोलन एक प्रामाणिक आन्दोलन होना चाहिए। यदि ऐसा-कुछ पाया गया कि आप कहते कुछ हैं और आपके मनमें होता कुछ है तो मैं इस आन्दोलनकी भर्त्सना करनेसे भी बाज नहीं आऊँगा।

इसके बाद महात्माजीने सत्यमूर्तिसे पूछा :

इस सम्बन्धमें आपका क्या विचार है? क्या आप ऐसा समझते हैं कि कांग्रेस इस सवालको किसी भी रूपमें अपने हाथमें ले सकती है या लेगी?

सत्यमूर्ति : कांग्रेस द्वारा इसे हाथमें ले लेनेमें मुझे तो कोई बाधा नहीं दिखाई देती। जहाँतक मैं मित्रोंसे जान सकता हूँ, आम भावना यह है कि आन्दोलनको समर्थन मिलना ही चाहिए। हम जो कर सकते हैं वह यह है कि हम निगम और विधान परिषद्में प्रस्ताव पेश करें; और मेरा खयाल है, हम यह करेंगे भी। इसके अलावा हम अखबारोंमें लिखकर और भाषण देकर इस मूर्तिके खिलाफ जनताकी भावनाको उभाड़ेंगे, उसे समझायेंगे कि यह, महात्माजीके शब्दोंमें कहूँ तो, आतंकका प्रतीक है। इसके लिए नौजवानोंको अपने सिर किसी प्रकारकी आर्थिक जिम्मेदारी लेनेकी जरूरत नहीं है। कांग्रेस पैसा जुटा लेगी। ठीक है न, श्री फुलन्दाई?

फुलन्दाई : हाँ, इस विषयमें यह भी एक दृष्टिकोण तो है ही।

सत्यमूर्ति : कांग्रेसकी भूमिकाकी हदतक भी आप ऐसा ही कहेंगे?

कुलन्दाई : दक्षिण भारतवालोंका स्वभाव कुछ ऐसा है कि यदि यह अवसर हाथसे निकल गया तो सब-कुछ भापकी तरह उड़ जायेगा। मेरा अपना व्यक्तिगत विचार यही है और ऐसा मैं हृदयसे अनुभव करता हूँ। यदि बहुमत इस पक्षमें हो कि अभी इसे स्थगित कर दिया जाये और तीन महीने बाद फिर शुरू किया जाये और यदि कांग्रेस कमेटियाँ प्रचार-कार्य उतनी ही चुस्तीसे करती हैं जितनी चुस्तीसे वे यह काम करती आई हैं...

सत्यमूर्ति : यह तो जिला कांग्रेस कमेटीके मन्त्रीकी हैसियतसे आपपर निर्भर करता है।

कुलन्दाई : यदि आप मुझसे पूछते हैं तो मेरी सच्ची राय यह है कि जिस क्षण हम सत्याग्रह बन्द कर देंगे, उसी क्षण यह आन्दोलन सदाके लिए समाप्त हो जायेगा। तीन महीनेका मतलब है, फिर कभी नहीं। इस प्रान्तमें अभी जो उत्साह जगा है, वह सच्चा उत्साह है और उसे खत्म नहीं होने देना चाहिए। महात्माजी, यहांके लोगोंका स्वभाव उत्तर भारतवालों-जैसा नहीं है।

मैं नहीं समझता कि इस मामलेमें उत्तर भारत दक्षिणसे किसी भी तरह बेहतर है। हम सब एक ही थैलीके चट्टे-बट्टे हैं। हममें कही कोई फर्क नही है।

एक स्वयंसेवक : हमें भय तो सिर्फ उसका है, जो-कुछ दो दिन पूर्व घटित हुआ। हममें से प्रत्येक शायद पूरा और सच्चा सत्याग्रही न हो। हम नहीं चाहते कि हममें कोई पस्ती आये। हम अपने-आपको ठीक ढंगसे संगठित करना चाहते हैं; और हम और भी आन्दोलन और प्रचार करके स्वयंसेवकोंकी संख्या बढ़ाना चाहते हैं। हम नहीं जानते कि हममें से कौन-से लोग सच्चे सत्याग्रही हैं। हमने आन्दोलन एकाएक ही आरम्भ कर दिया।

आप तो जो-कुछ कहते हैं, वह सत्याग्रह स्थगित करनेका एक अतिरिक्त कारण ही प्रस्तुत करता है।

स्वयंसेवक : लेकिन साथ ही मैं यह भी नहीं चाहता कि सरकारको चैन लेने दिया जाये। मूर्तिको हटवानेके लिए आन्दोलनको दूसरे तरीकोंसे चलाते ही रहना चाहिए। हम तो सिर्फ युद्ध-कौशलका खयाल करके पीछे हट रहे हैं, अपने हथियार नहीं डाल रहे हैं। इस स्थगनका मतलब यही है कि हम अवसर आनेपर फिर दूनी रफ्तारसे आगे बढ़ें। हम अपनी अक्षमता नहीं स्वीकार करना चाहते, क्योंकि उससे लोगोंमें पस्ती आयेगी।

यह तो एक नई बात हुई। इस तरह तो आप वास्तवमें मेरे नामकी आड़में अपनी असमर्थताको छिपाना चाह रहे हैं।

स्वयंसेवक: नहीं, हम सिर्फ महात्माजीकी राय और सलाहकी इज्जत कर रहे हैं; और हम उनको राय और सलाहके मुताबिक इस भयसे चल रहे हैं कि कहीं ऐसा न हो कि महात्माजी हमारी भर्त्सना करें और फलतः हम सच्चे सत्याग्रहियोंका सहयोग खो बैठें।

लेकिन जैसा आपने कहा, उसके मुताबिक तो इसका मतलब युद्ध-कौशलकी दृष्टिसे अपना कदम पीछे हटाना भी हो सकता है। यदि ऐसा है तो इससे प्रकट होता है कि अभी आप लोगोंका दल सच्चे सत्याग्रहियोंका एक सुसंगठित दल नहीं है। आप कह सकते हैं कि यह विचार तो आपके मनमें मुझसे बातचीत करनेके बाद आया; और अब आप दूसरी तमाम बातोंका खयाल छोड़कर इस दोषको दूर करनेके लिए आन्दोलनको स्थगित करना चाहते हैं। सत्याग्रहमें प्रामाणिक युद्ध-कौशलके लिए गुंजाइश है। इसे स्थगित करनेकी घोषणा करते हुए आप कह सकते हैं कि हमने गांधीजीसे बातचीत करनेके बाद पाया कि उन्होंने हमारे सामने सत्याग्रहके लिए जो शर्त रखी उसे पूरा करनेकी स्थितिमें हम अभी नहीं हैं और यह देखते हुए कि जबतक हम उस शर्तको पूरा नहीं कर पाते तबतक आन्दोलन सफल नहीं हो सकता, हम इसे तीन महीनेके लिए स्थगित करते हैं और इस अवधिमें हमारा इरादा उस शर्तको पूरा करनेकी दृष्टिसे अपने-आपको तैयार कर लेनेका है और यदि इस बीच आँखोंको खटकनेवाली यह मूर्ति हटाई नहीं जाती तो बादमें हम फिरसे सत्याग्रह प्रारम्भ करेंगे। यह सत्याग्रहकी सही अवस्था होगी। या कि आप मानते हैं कि आप अब भी इसके लिए तैयार हैं?

स्वयंसेवक: हम नीलकी मूर्तिको हटवाना चाहते हैं। हमारे साथ जो सौ स्वयंसेवक हैं, वे सब यदि गिरफ्तार कर लिये जायेंगे तो आन्दोलन अपने-आप बन्द हो जायेगा। लेकिन तब भी शायद मूर्ति जहाँ-की-तहाँ बनी रहे। इस तरह हमारा उद्देश्य विफल हो जायेगा। हम चाहते हैं कि जबतक मूर्ति हटाई नहीं जाती तबतक स्वयंसेवकोंका स्रोत चुकने न पाये।

तो आप सत्याग्रहको इसलिए स्थगित करेंगे कि स्वयंसेवकोंका स्रोत चुकने न पाये। इसलिए, इस कारणसे सत्याग्रह स्थगित करना जरूरी है। इसके विपरीत यदि आपको लगता है कि जो सौ या बीस स्वयंसेवक हैं, उन सबके चुक जानेतक तो आपको सत्याग्रह चलाना ही चाहिए तो आप वैसा कीजिए ताकि यह कहनेका मौका न रह जाये कि सत्याग्रह स्थगित करके आपके उत्साहको मन्द पड़ जाने दिया गया। लेकिन, मैं आपको फिर बता दूँ कि सत्याग्रहमें अपना कदम रोकनेके भी अवसर आते हैं। क्या मैंने वाइकोम सत्याग्रहके समय ऐसा ही नहीं किया था?

आप कहते हैं कि यदि आप यह बताकर कि आप अभी तैयार नहीं हैं; सत्याग्रहको स्थगित करेंगे तो उससे पस्ती आयेगी। सत्याग्रहमें पस्ती नामकी कोई चीज ही नहीं होती। सत्याग्रही अपने आन्तरिक बलपर निर्भर करता है, बाहरी सहायतापर नहीं। लेकिन तीन महीने बाद भी आप तैयार न हो सकें और मूर्ति जहाँ-की-तहाँ दिखे — और वह तो दिखेगी ही, क्योंकि आप जानते हैं कि जबरदस्त संघर्ष किये बिना सरकार अपनी जिद यों ही छोड़नेवाली तो है नहीं — तो इससे मुझे बहुत दुःख होगा।

यदि सचमुच आपको संघर्षके विफल हो जानेकी आशंका हो तो सत्याग्रह स्थगित न कीजिए। यदि आप इसे स्थगित करना चाहते हैं तो साफ-साफ यह स्वीकार करते हुए कीजिए कि अभी मैंने जो कारण बताये हैं उन कारणोंसे आप सत्याग्रहको स्थगित करना चाहते हैं।

एक स्वयंसेवक : लेकिन हम संघर्षको जारी ही क्यों न रखें?

हाँ, मैं आपमें से किसीके उत्साहपर कोई अंकुश नहीं लगाना चाहता। इस मामलेमें मैं जरा सावधानीसे ही काम लेना चाहता हूँ।

एक स्वयंसेवक : हम आपसे एक सवाल पूछना चाहते हैं। वह यह कि महात्माजी हमें अपना समर्थन तो देंगे न?

बेशक; जबतक मैं आपको ठीक रास्तेपर चलते देखूँगा तबतक आपका समर्थन अवश्य करूँगा।

अगर आप चाहें तो मैं एक और काम करनेको तैयार हूँ। कलकी बातचीतका पूरा विवरण मेरे पास लिखा हुआ है और मेरा ख्याल है कि आजकी बातचीतको भी दर्ज किया जा रहा है। यदि आप चाहें तो मैं उसे प्रकाशित करवा दूँ। जनताको इसके बारेमें बता देना आपके लिए ठीक ही रहेगा। यदि आप इसे प्रकाशित न करवाना चाहते हों तो मैं नहीं करवाऊँगा। लेकिन, मैं यह बता दूँ कि यहाँ हमारी जो बातचीत हुई है, उसे प्रकाशित करनेमें कोई हर्ज नहीं है और उसमें कुछ गोपनीय भी नहीं है। तो क्या मैं इसे प्रकाशित करवाऊँ?

कई लोग एक साथ : जी हाँ, जी हाँ।

एक स्वयंसेवक : हम तो इस बातका निर्णय आप ही पर छोड़ देना चाहेंगे कि हम संघर्षको जारी रखें या छोड़ दें।

यदि आपकी जगह मैं होऊँ तो मैं तो यह स्वीकार करते हुए आन्दोलनको स्थगित कर दूँ कि हम अभी पूरी तरहसे तैयार और सशक्त नहीं हैं। यदि आप यह स्वीकार करते हों कि आप अभी पूरी तरह तैयार और सशक्त नहीं हैं तो आपको आन्दोलनको अवश्य स्थगित कर देना चाहिए।

पावस्कार : कुछ लोग आशंकित हैं और कुछ नहीं भी हैं। वे आपकी सलाह चाहते हैं, महात्माजी।

मैं तो कह ही चुका हूँ कि यदि आपकी जगह मैं होऊँ तो आन्दोलन स्थगित कर दूँ।

एक स्वयंसेवक : लेकिन क्या आप हमें अपना संघर्ष जारी रखनेकी इजाजत देते हैं?

मैं आपको रोकता नहीं और इस अर्थमें, समझ लीजिए, आपको मेरी इजाजत भी है ही।

एक स्वयंसेवक : आप आन्दोलनको अपना आशीर्वाद तो देंगे?

आशीर्वाद तो पहले भी मिला हुआ ही था; अब फिर दे दूँगा।

दूसरा स्वयंसेवक: और जहाँतक आन्दोलनको स्थगित करनेका सवाल है, अगर आप ऐसी सलाह दें तो हम स्थगित करनेको तैयार हैं।

मैं कोई जिम्मेदारी नहीं ले सकता। आपको किसी दूसरेका ख़याल करके आन्दोलन स्थगित नहीं करना चाहिए। स्थगित तभी कीजिए जब आपकी अन्तरात्मा वैसा करनेको कहे।

एक स्वयंसेवक: हमारी अन्तरात्मा तो हमसे स्थगित करनेको नहीं कहती।

तो फिर आगे बढ़िए।

स्वयंसेवक: हम आज आन्दोलनको जिस ढंगसे चला रहे हैं, उसी ढंगसे चलायेंगे। इस बीच आप हमें अपना समर्थन दें, यह हमारा निवेदन है। हम आन्दोलनको पूर्ण रूपसे सत्याग्रहकी भावना और अनुशासित ढंगसे चलायेंगे। लेकिन यदि दूसरे लोग अपनी मर्जीसे बीचमें आते हैं और उपद्रव करते हैं तो आपसे प्रार्थना यह है कि आप हमें दोष न दें। इसके अलावा हम चाहते हैं कि आप 'यंग इंडिया'में इसके बारेमें लिखें।

हाँ-हाँ, वह तो करूँगा ही।

स्वयंसेवक: और हमारी यह भी प्रार्थना है कि आप यहाँके कुछ कांग्रेसियोंको हमारे लिए प्रचार-कार्य करनेकी सलाह दें।

मैं बेशक सलाह दूँगा। मैंने श्री सत्यमूर्तिके साथ पूरे मामलेपर विचार-विमर्श किया है। मेरा ख़याल है, वे उनसे कह देंगे। मैं खुले तौरपर कांग्रेसियोंको वैसी सलाह दूंगा; और मैंने जिन टिप्पणियोंका उल्लेख किया है, उनमें भी आप यह चीज देखेंगे। आप निर्भीक भावसे आगे बढ़िए। हाँ, स्थितिको उलझाइए मत। हिंसा या असत्यको प्रश्रय मत दीजिए। इनमें से कोई भी उद्देश्यके लिए घातक सिद्ध होगा।

एक दूसरे स्वयंसेवकके प्रश्नके उत्तरमें महात्माजीने कहा:

आप मुझे स्वयंसेवकोंकी एक सूची दे दीजिए। उसमें हर स्वयंसेवककी उम्र, पता और पेशा लिखा होना चाहिए। मैं सूचीको ध्यानसे पढ़ूँगा। जनताको यह विदित करानेके लिए कि कौन-से लोग अधिकृत स्वयंसेवक हैं, आपको सूची प्रकाशित भी करनी चाहिए। यदि कोई सत्याग्रह करता है तो अपनी जिम्मेदारीपर करेगा। यदि आपको और लोग मिलें तो उनके नाम भी प्रकाशित कीजिए। जब आप मूर्तिके पास जायें तो जनताको उधर आकृष्ट न करें। वहाँ रातमें, जरूरत हो तो ठीक आधी रातमें जाइए, ताकि वहाँ भीड़ इकट्ठी न होने पाये। लेकिन पुलिसको सूचित कर दीजिए कि आप अमुक समयपर वहाँ जा रहे हैं। यदि आपको ऐसा कुछ मालूम हो कि पुलिस जनताको या जिनके द्वारा वह गड़बड़ी पैदा कराना चाहती है, उन लोगोंको जानकारी दे देती है तो आप पुलिसको कोई सूचना न दें। ऐसा करें जिससे जनता आपके काममें हस्तक्षेप न करे। यदि वह इसमें भाग लेना ही चाहे तो वह अन्यत्र सभाएँ करके, प्रस्ताव पास करके अपनी भावनाका प्रदर्शन करे।

इसके साथ ही बातचीत समाप्त हो गई और स्वयंसेवक लोग वहाँसे चले गये।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, १०-९-१९२७

४१९. भाषण: पचैयप्पा कॉलेज, मद्रासमें[1]

७ सितम्बर, १९२७[2]

प्रधानाचार्य महोदय, विद्यार्थियो और मित्रो,[3]

दरिद्रनारायणके लिए आपने मुझे जो उपहार दिये हैं, उनके लिए मैं आपको हृदयसे धन्यवाद देता हूँ। मैं इस भवनमें पहली बार नहीं आया हूँ। मैं इस भवनमें पहली बार १८९६ में दक्षिण आफ्रिकाके संघर्षके सिलसिलेमें आया था[4]। उस सभाकी अध्यक्षता सभीके आदरणीय स्वर्गीय डॉ० सुब्रह्मण्य अय्यरने की थी। उस सभाकी स्मृति मेरे मनमें इसलिए बनी हुई है कि भारतीय विद्यार्थियोंके साथ परिचय प्राप्त करनेका वह मेरा पहला अवसर था। आप शायद जानते होंगे कि मैं मैट्रिक पास आदमी हूँ और इसलिए भारतमें कहने लायक कॉलेजी शिक्षा मैंने कभी नहीं पाई। हाँ, तो उस सभामें मानपत्र भेंट किये जाने और उसके लिए अपनी कृतज्ञता प्रकट कर देनेके बाद, मैं विद्यार्थियोंके पास चला गया। वे इसकी राह ही देख रहे थे और उन्होंने मेरे हाथसे उस 'हरी पुस्तिका'[5] की सभी प्रतियाँ ले लीं जो मैं उन दिनों भारत-भरमें बाँट रहा था। मैंने उन विद्यार्थियोंकी खातिर ही स्वर्गीय श्री जी० परमेश्वरन् पिल्लईसे अनुरोध किया कि उस पुस्तिकाकी और अधिक प्रतियाँ छपवाकर विद्यार्थियोंमें बाँट दें। श्री पिल्लईने उस समय सबसे आगे बढ़कर मेरे और मेरे ध्येयके प्रति अपार उत्साह दिखाया और बड़ी प्रसन्नताके साथ पुस्तिकाकी दस हजार प्रतियाँ छपवा दीं। विद्यार्थी लोग उन दिनों दक्षिण आफ्रिकाकी परिस्थिति समझनेके लिए इतने व्यग्र थे! उससे मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई थी और मैंने अपने-आपसे कहा था: "हाँ, भारत माता अपनी सन्तान-पर गर्व कर सकती है और उनसे अपनी सभी आशाएँ पूरी होनेकी आशा सँजो सकती है।" तबसे विद्यार्थियोंके साथ मेरा परिचय बराबर अधिकाधिक प्रगाढ और, अधिकाधिक व्यापक होता गया है। मैंने बंगलोरमें कहा था कि जो ज्यादा देते हैं उनसे और ज्यादा देनेकी अपेक्षा की जाती है[6] और आपने मुझे इतना अधिक देकर यह अधिकार भी दे दिया है कि मैं आपसे और अधिककी अपेक्षा रखूँ। आप मुझे कितना भी दें, मैं कभी सन्तुष्ट होनेवाला नहीं हूँ। मुझे जितना-कुछ भी करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है, आपने उसमें से कुछका समर्थन किया है। आपने अपने मानपत्रमें दरिद्रनारायणका नाम बड़े आदर और स्नेहके साथ लिया है; और (प्रधानाचार्य) महोदय,

१. यह "दो भाषण" शीर्षकके अन्तर्गत प्रकाशित हुआ था।

२ और ३. ७-९-१९२७ के हिन्दू से।

४. देखिए खण्ड २, पृष्ठ १०१-३३।

५. देखिए खण्ड २, पृष्ठ १-७६।

६. देखिए "भाषण: बंगलोरके नागरिकोंकी सभामें", २८-८-१९२७।

आपने निस्सन्देह बिलकुल सच्ची भावनासे चरखेके बारेमें किये गये मेरे दावेका समर्थन किया है। मैं जानता हूँ कि मेरे अनेक प्रतिष्ठित और विद्वान् देशभाइयोंने मेरे दावेको यह कहते हुए ठुकरा दिया है कि मामूली-से चरखेसे, जिसे हमारी बहनों और माताओंने प्रसन्नतापूर्वक त्याग दिया था, कभी स्वराज्य हासिल नहीं किया जा सकता। इतनेपर भी आपने मेरे दावेका समर्थन किया है और इसकी मुझे बड़ी प्रसन्नता है। आप विद्यार्थियोंने हालाँकि अपने मानपत्रमें साफ-साफ यह नहीं कहा है कि आपके हृदयमें चरखेके लिए स्थान है, फिर भी आपने इतना तो कह ही दिया है जिसके आधारपर विश्वास किया जा सकता है कि आपके हृदयमें चरखेके लिए सचमुच स्थान है। इसलिए आप यह थैली भेंट करके ही चरखेके प्रति अपने प्रेमकी इतिश्री न मानें। यदि आप इसीमें इसकी इतिश्री मानें तो यह थैली मेरे लिए परेशानीका कारण बन जायेगी; क्यों कि तब इस रकमका मेरे लिए कोई उपयोग ही नहीं रह जायेगा। इस धनको भुखमरीसे पीड़ित करोड़ों लोगोंमें बाँटनेपर वे जो खादी तैयार करेंगे, यदि आप उसे इस्तेमाल नहीं करेंगे तो इस धनका कोई उपयोग नहीं। चरखेके प्रति मौखिक रूपसे आस्था प्रकट कर देने और मेरी झोलीमें कृपाके तौरपर चाँदीके चन्द टुकड़े डाल देनेसे तो स्वराज्य नहीं मिल जायेगा और न करोड़ों मेहनतकशों और भूखे-नंगे लोगोंकी दिन-दिन बढ़ती गरीबीकी समस्या ही हल हो जायेगी। मैं अपनी भूल सुधार दूँ। मैंने कहा है, करोड़ों मेहनतकश लोग। काश कि उनका यह विशेषण सार्थक होता! दुर्भाग्यकी बात है कि हमने वस्त्रोंके बारेमें अपनी रुचि नहीं बदली है और इस तरह इन करोड़ों भूखे-नंगे इन्सानोंके लिए यह नामुमकिन बना दिया है कि वे साल-भर मेहनतकश बने रह सकें। हमने उन्हें जबरदस्ती छुट्टी दे रखी है — वर्षमें कमसे-कम चार माहकी ऐसी छुट्टी जिसकी उन्हें जरूरत नहीं है। यह मेरी कल्पनाकी बहक नहीं, बल्कि एक हकीकत है। उन लोगोंके बीच जाकर स्थितिको देखनेवाले हमारे अनेक देशभाइयोंने इसकी साक्षी दी है। और आपको अगर उनके साक्ष्यपर भरोसा न हो तो मैं आपको बतलाता हूँ कि अनेक अंग्रेज प्रशासकोंने भी इस सत्यको दुहराया है। इसलिए इस थैलीको आपसे लेकर इसकी रकम क्षुधार्त्त बहनोंमें बाँट देनेसे समस्या हल नहीं हो जायेगी। इससे तो उलटे उन बहनोंका आत्मिक बल कमजोर पड़ जायेगा। उनको दूसरोंसे दान लेनेकी आदत पड़ जायेगी और वे दूसरोंके आगे हाथ पसारने लगेंगी। और जो भी स्त्री-पुरुष या राष्ट्र दूसरोंके आगे हाथ पसारनेका आदी हो जाता है, उसकी रक्षा तो भगवान् ही कर सकता है। मैं और आप यही चाहते हैं कि इन बहनोंके लिए ऐसी जीविका जुटा दी जाये जिसे वे घर बैठे कर सकें और ऐसी जीविका जुटानेका एकमात्र साधन चरखा ही है। यह एक इज्जत और ईमानदारीका काम है और काफी भला भी है। आपके लिए एक आनेका भले ही कोई मतलब न हो। आप २, ३, ४ या ५ मील पैदल चलकर शरीरको थोड़ा व्यायाम देनेकी बजाय, ट्राममें बैठकर उस एक आनेको गँवा सकते हैं और फालतू बातोंमें समय खो सकते हैं। लेकिन यही एक आना जब किसी गरीब बहनकी जेबमें जाता है तो वह बड़ा उपयोगी बन जाता है। वह उस एक

आनेके लिए मेहनत करती है और अपने पवित्र हाथोंसे कातकर मुझे सुन्दर सूत देती है। उस सूतका अपना एक इतिहास होता है। वह सूत इस योग्य होता है कि राजकुमारों और राजाओंके लिए वस्त्र बुने जा सकते हैं। मिलसे निकलनेवाले कपड़ेका ऐसा कोई इतिहास नहीं होता। मेरे लिए तो यह विषय अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है और मैं अपना लगभग सारा समय इसीके चिन्तनमें लगाता हूँ, पर मुझे इसके लिए आपका और अधिक समय नहीं लेना चाहिए। यदि यह थैली आपके इस संकल्पका प्रतीक नहीं है कि आप अगर अभी खादी नहीं पहनते तो आगेसे निश्चय ही खादीके अतिरिक्त कोई वस्त्र धारण नहीं करेंगे, तो आपकी यह थैली मेरी सहायता करना तो दूर, मेरे मार्गमें बाधक बन जायेगी।

आपके थैली भेंट करने और तालियाँ बजानेसे ही मैं इस भ्रममें पड़नेवाला नहीं हूँ कि आप खादीके सिद्धान्तमें पूरी तरह विश्वास करते हैं। मैं चाहता हूँ कि आपकी करनी आपकी कथनीके अनुरूप हो। आप भारतकी शोभा हैं। मैं नहीं चाहता कि आपके बारेमें कोई कह सके कि आपने यह रकम मुझे झाँसा देनेके लिए दी थी, कि आप खादी नहीं पहनना चाहते और खादीपर आपका कोई विश्वास नहीं। तमिलनाडके एक प्रख्यात सपूत और मेरे मित्र द्वारा की गई भविष्यवाणीको सही मत होने दीजिए। उन्होंने भविष्यवाणी की थी कि मेरे मरनेपर मेरे दाह-संस्कारके लिए और लकड़ियाँ जमा करनेकी जरूरत नहीं पड़ेगी, उसका काम तो उन चरखोंकी लकड़ियोंसे ही चल जायेगा जिनको मैं आज लोगोंमें बाँट रहा हूँ। उनको चरखेपर कोई आस्था नहीं और उनका खयाल है कि जो भी चरखेकी बड़ाई करता है वह महज मेरी इज्जतके खयालसे करता है। उनकी यह हार्दिक राय है। यदि खादी आन्दोलन इतना ही निकम्मा निकला तो यह समूचे राष्ट्रके लिए एक भारी दुःखद घटना होगी और उस दुःखद घटनाको लानेमें सीधे-सीधे आपका हाथ होगा और आप उस अपराधके सहभागी होंगे। वैसा करना समूचे राष्ट्र द्वारा आत्महत्या करना होगा। यदि चरखेपर आपकी जीवन्त आस्था नहीं तो उसे ठुकरा दीजिए। वह आपके प्रेमका कहीं सच्चा प्रदर्शन होगा। वैसा करके आप मेरी आँखें खोल देंगे और तब मैं भग्न स्वरमें दुनियाके इस नक्कारखानेमें यह चीखता हुआ अपनी राह चला जाऊँगा कि "आपने चरखेको ठुकराकर दरिद्रनारायणको ठुकरा दिया।" यदि मैं भ्रममें होऊँ, यदि आप ढोंग कर रहे हों तो इसका परिणाम मेरे और आपके लिए भी बहुत दुःखद, पतनकारी और अपमानजनक होगा। इसलिए मैं चाहता हूँ कि आप साफ-साफ सच बात कहकर उस सबसे मुझे और अपनेको भी बचाइए। यह तो हुई एक बात। लेकिन, आपने अपने मानपत्रमें और भी कई बातें कही हैं।

आपने उसमें बाल-विवाह और बाल-विधवाओंका उल्लेख किया है। एक तमिल विद्वान्ने मुझे लिखा है कि मैं विद्यार्थियोंको बाल-विधवाओंकी समस्याके बारेमें बतलाऊँ। उनका कहना है कि देशके अन्य भागोंकी अपेक्षा इस प्रान्तमें बाल-विधवाओंकी हालत कहीं बदतर है। मैं उनके इस कथनकी सचाईकी कसौटी नहीं कर पाया हूँ।

आप इसके बारेमें मुझसे ज्यादा जानते होंगे। लेकिन मैं यही चाहता हूँ कि आप नवयुवक लोग कमजोरका पक्ष ग्रहण करनेकी वीर भावना अपनेमें रखें। यदि आपके अन्दर ऐसी भावना मौजूद हो तो मैं आपके सामने बहुत बड़ा सुझाव रखता हूँ। मैं समझता हूँ कि आपमें से अधिकांश लोग अविवाहित हैं और आपमें से काफी लोग ब्रह्मचारी भी हैं। 'काफी लोग' मैंने इसलिए कहा है कि मैं विद्यार्थियोंको जानता-समझता हूँ। अपनी बहनको कामुक दृष्टिसे देखनेवाला विद्यार्थी ब्रह्मचारी नहीं होता। मैं चाहता हूँ कि आप एक पवित्र संकल्प कर लें — यह कि आप किसी विधवा बालिकासे ही शादी करेंगे, अन्यथा अविवाहित रहेंगे। आप अपने लिए किसी विधवा बालिकाकी तलाश करें और अगर वह आपको न मिल सके तो आप विवाह ही न करें। आप ऐसा संकल्प करके, संसारके सामने उक्त घोषणा कर दें, अगर आपके माता-पिता हैं तो उनको या अपनी बहनोंको अपना निश्चय बतला दें। मैं उनको "बाल-विधवा" न कहकर "विधवा बालिकाएँ" इसलिए कह रहा हूँ कि उन बालिकाओंकी स्थितिका वर्णन ठीक-ठीक इन्हीं शब्दोंमें होता है। कारण, मेरा विश्वास यह है कि कोई दस-पन्द्रह वर्षकी बालिका, जिसने न अपने विवाहमें कोई सहमति दी और न विवाह हो जानेके बाद अपने तथाकथित पतिके साथ रही और फिर भी जिसे एक दिन एकाएक विधवा घोषित कर दिया गया, वास्तवमें विधवा नहीं है। यह तो विधवा शब्दका दुरुपयोग है, भाषाका दुरुपयोग और उसके साथ अनाचार करना है। हिन्दू धर्ममें विधवा शब्दके साथ पवित्रताका एक भाव जुड़ा हुआ है। स्वर्गीया श्रीमती रमाबाई रानडे-जैसी सच्ची विधवा नारीकी मैं पूजा करता हूँ। वे जानती थीं कि विधवा होना क्या होता है। परन्तु एक नौ-वर्षीया बालिका तो कुछ जानती ही नहीं कि पति कैसा होना चाहिए। हाँ, अगर इस प्रान्तमें ऐसी विधवा बालिकाएँ न हों तो मेरी ये सभी दलीलें बेमतलब हैं। परन्तु यदि आपके यहाँ ऐसी विधवा बालिकाएँ मौजूद हैं तो फिर इस अभिशापसे छुटकारा पानेके लिए आपका यह पुनीत कर्त्तव्य हो जाता है कि आप किसी विधवा बालिकासे ही विवाह करनेका संकल्प कर लें। मेरे मनमें इतना अन्धविश्वास तो है ही कि मैं मानता हूँ कि राष्ट्र ऐसे जितने भी पाप करता है उनका स्पष्ट परिणाम उसे भुगतना ही पड़ता है। मेरा विश्वास है कि हमारे ये सारे पाप ही हैं, जिन्होंने हमको गुलामीकी इस अवस्थातक पहुँचा दिया है। हो सकता है कि इंग्लैंडकी कॉमन्स सभासे किसी दिन आपको संसारका अच्छेसे-अच्छा संविधान प्राप्त हो जाये। लेकिन यदि उस संविधानको कार्यरूपमें परिणत करनेवाले योग्य और उपयुक्त ढंगके स्त्री-पुरुष आपके यहाँ नहीं होंगे तो वह संविधान निरर्थक सिद्ध होगा। क्या आप समझते हैं कि जबतक हमारे देशमें एक भी ऐसी विधवा रहेगी, जो अपनी बुनियादी आवश्यकताओंकी पूर्तिकी इच्छुक होते हुए भी उनसे बलात् वंचित रखी जाती है, तबतक हम अपनेको अपना शासन आप चलाने अथवा दूसरोंपर शासन करने या तीस करोड़ आबादीवाले इस राष्ट्रका भाग्य-निर्माण करने योग्य कह सकते हैं? यह धर्म नहीं, अधर्म है। मेरी आत्मा हिन्दू धर्मकी भावनासे पूरी तरह सराबोर है, इसलिए मैं ऐसी बात कह सकता हूँ। यह मत समझिए कि ये

मेरे पाश्चात्य संस्कार बोल रहे हैं। मेरा दावा है कि विशुद्ध भारतीयताकी भावना मेरी रग-रगमें बसी हुई है। मैंने पश्चिमकी अन्य कई विशेषताओंको आत्मसात् किया है, इसे नहीं। हिन्दू धर्ममें इस प्रकारके वैधव्यके लिए कहीं कोई आधार नहीं है।

बाल-विधवाओंके बारेमें मैंने जितना-कुछ कहा है, वह सब बाल-वधुओंपर भी लागू होता है। निश्चय ही, आपको अपनी वासनापर इस सीमातक तो अंकुश रख ही सकना चाहिए कि आप सोलह वर्षसे कम अवस्थाकी बालिकाके साथ विवाह न करें। यदि मेरी चले तो मैं लड़कियोंके लिए विवाहकी न्यूनतम आयु बीस वर्ष निश्चित कर दूँ। वैसे भारतमें भी बीस वर्षकी अवस्था काफी कम है। भारतमें बालिकाओंकी अकाल-प्रौढ़ता, पूर्ण परिपक्वताके पहले ही प्रौढ़ता, लानेके लिए भारतकी जलवायु भी नहीं, बल्कि हम स्वयं जिम्मेदार हैं, क्योंकि मैं ऐसी बीस वर्षीया बालिकाओंको भी जानता हूँ जो बिलकुल शुद्ध और पवित्र हैं, जिनका कौमार्य अक्षुण्ण है और जो किसी भी तूफानका सामना करनेमें समर्थ हैं। वैसी अकाल-प्रौढताको हमें गलेसे नहीं लगाये रहना चाहिए। कुछ ब्राह्मण विद्यार्थी मुझसे कहते हैं कि वे इस सिद्धान्तका अनुसरण नहीं कर सकते। उनको सोलह-वर्षीया बालिकाएँ नहीं मिल सकतीं, क्योंकि इने-गिने ब्राह्मण ही इस अवस्थातक अपनी लड़कियोंको अविवाहित रहने देते हैं, ब्राह्मण कुमारियोंका विवाह अधिकतर १०, १२ या १३ वर्षकी अवस्था-तक ही कर दिया जाता है। तब मैं ब्राह्मण युवकोंसे कहता हूँ: "आप अगर अपने ऊपर नियन्त्रण नहीं रख सकते तो अपनेको ब्राह्मण मानना छोड़ दीजिए।" आप विवाहके लिए किसी ऐसी सोलह-वर्षीया बालिकाको चुनिए जो बालपनमें ही विधवा हो गई हो। यदि आपको इस अवस्थाकी कोई विधवा ब्राह्मणी नहीं मिलती तो जिस जातिमें भी ऐसी लड़की मिले, आप उसीसे शादी कर लीजिए। और मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि हिन्दुओंका भगवान् उस युवकको क्षमा कर देगा, जिसने किसी बारह-वर्षीया कुमारीके साथ बलात्कार करनेकी अपेक्षा अपनी जातिसे बाहरकी लड़कीके साथ शादी करना अधिक पसन्द किया। यदि आपका हृदय पवित्र नहीं है और आप अपने मनोविकारोंको काबूमें नहीं रख सकते तो आप शिक्षा-सम्पन्न व्यक्ति नहीं रह जाते। आपने अपनी संस्थाको एक श्रेष्ठ संस्था कहा है। मैं चाहता हूँ कि आप इस श्रेष्ठ संस्थाका नाम सार्थक करें, अपने-आपको उसके योग्य सिद्ध करें। श्रेष्ठ संस्थाको ऐसे युवक तैयार करने चाहिए जो चरित्रमें सर्वश्रेष्ठ सिद्ध हों और चरित्रके बिना शिक्षा व्यर्थ है तथा बुनियादी व्यक्तिगत पवित्रताके बिना चरित्रका कोई मतलब नहीं रह जाता। मैं ब्राह्मणवादकी पूजा करता हूँ। मैंने वर्णाश्रम धर्मको उचित ठहराया है। पर जो ब्राह्मणवाद अस्पृश्यता, बाल-वैधव्य और कुमारियोंके शील-भंगको बरदाश्त करता है, वह मुझे दुर्गंधयुक्त लगता है। ऐसा ब्राह्मणवाद तो ब्राह्मणत्वका मखौल है। ऐसा ब्राह्मणवाद ब्रह्मके ज्ञानसे रहित है; वह तो धर्मग्रन्थोंकी सच्ची व्याख्यासे कोसों दूर, निरा पशुवाद है। ब्राह्मणवाद इससे कहीं अधिक श्रेष्ठ तत्त्वोंसे बना हुआ है। मैं चाहता हूँ कि मेरी ये कुछ बातें आपके हृदयकी गहराईमें पैठ जायें। मैं अपने ये हार्दिक उद्-गार व्यक्त करते हुए, आप सबपर नजर जमाये हुए हूँ। मैं आपकी बुद्धिको नहीं,

आपके हृदयोंको प्रभावित करना चाहता हूँ। देश आपकी ओर आशासे देख रहा है; और मैंने जो बातें कही हैं वे आपके लिए अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हैं।

कालीकटके एक प्रोफेसर साहबने मुझसे अनुरोध किया है कि मैं सिगरेट, चाय और काफीके बारेमें भी कुछ कहूँ। इसलिए मैं अब इनको लेता हूँ। ये चीजें जीवनके लिए आवश्यक नहीं हैं। कुछ लोग दिनमें काफीके दस-दस प्याले भी पी लेते हैं। क्या यह उनको स्वस्थ और जाग्रत रखने तथा अपने कर्त्तव्योंका पालनके लिए आवश्यक है? यदि वे इसके बिना जाग्रत नहीं रह सकते तो अच्छा यही है कि सो जायें, लेकिन काफी या चाय न पियें। हमें इन चीजोंका गुलाम नहीं बनना चाहिए। लेकिन काफी और चाय पीनेवाले अधिकांश लोग इनके आदी बन जाते हैं। सिगार और सिगरेटें देशी हों या विदेशी, उनसे बचना ही चाहिए। सिगरेटका पीना तन्द्राकारी होता है और आप जो सिगार पीते हैं, उनमें तो अफीमका पुट भी रहता ही है। ये आपके शरीरके तंतुओंपर हावी हो जाते हैं, और फिर आप इनको छोड़ नहीं पाते। समझमें नहीं आता कि कोई भी विद्यार्थी अपने मुँहको एक चिमनी बना देना कैसे पसन्द कर सकता है। यदि आप चाय, काफी, सिगरेट और सिगार पीना छोड़ दें, तो खुद देखेंगे कि खर्चमें कितनी बचत होती है। टॉल्स्टॉयकी एक कहानी है, जिसमें एक शराबी किसीकी हत्या करने जाता है, पर उसके मनमें हिचकिचाहट होती है। लेकिन जैसे ही वह सिगार पीता है, उसका धुआँ छोड़नेके साथ ही मुस्कराते हुए उठ खड़ा होता है और कहता है: "मैं भी कैसा बुजदिल हूँ।" वह कटार निकालकर हत्या कर देता है। टॉल्स्टॉयने अपने अनुभवके आधारपर ही लिखा है। उनको जिस चीजका आत्मानुभव था, उसीको उन्होंने लिखा है। और वे सिगरेटों और सिगारोंके तो शराबसे भी ज्यादा खिलाफ हैं। पर आप यह मत मान बैठिए कि शराब और तम्बाकूमें शराब कम नुकसानदेह है। बिलकुल नहीं। सिगरेट अगर इब्लीस है तो शराब शैतान है।

यहाँ एक हिन्दी प्रचार कार्यालय है, जिसका खर्च उत्तर भारतके लोग उठाते हैं। संस्थाने लगभग एक लाख रुपये खर्च किये हैं और हिन्दी शिक्षकगण अपना काम नियमित रूपसे करते रहे हैं। कुछ प्रगति हुई है, लेकिन हम अभीतक कोई ठोस काम नहीं कर पाये हैं। यदि आप रोजाना एक घंटा दें तो साल-भरमें हिन्दी सीख सकते हैं। आप छः महीनेमें सरल हिन्दी समझने लायक बन सकते हैं। आपमें से अधिकांश हिन्दी नहीं जानते, इसलिए मैं आपके सामने हिन्दीमें नहीं बोल सकता। भारतमें हिन्दीको सर्वव्यापक भाषा बनाना चाहिए। आपको संस्कृत भी जाननी चाहिए, जिससे आप 'भगवद्गीता' पढ़ सकें। एक श्रेष्ठ हिन्दू संस्थाके विद्यार्थी होनेके नाते आपको 'भगवद्गीता' पढ़ाई जानी चाहिए। मैं चाहूँगा कि यहाँ मुसलमान विद्यार्थी भी पढ़ने आ सकें। (एक आवाज आई—"पंचमोंको इसमें दाखिला नहीं दिया जाता।") यह तो मुझे एक नई बातका पता लगा। पंचमों और मुसलमानों, दोनोंके लिए इस संस्थाके द्वार खोल देने चाहिए। यदि यहाँ पंचमोंको दाखिला नहीं दिया जायेगा तो मैं इसे हिन्दू संस्था माननेसे इनकार करता हूँ। (सुन्दर! खूब!) हिन्दू संस्था होनेका मतलब यह तो नहीं होता कि कोई पंचम या मुसलमान यहाँ

पढ़ न सके। मैं समझता हूँ कि अब समय आ गया है कि ट्रस्टी लोग इसकी नियमावलीमें रद्दोबदल करें। इसे मेरी ओरसे प्रस्तुत एक याचिका समझिए। याद रखिए कि यह याचिका व्यर्थकी उखाड़-पछाड़ करनेवाले किसी तथाकथित सुधारक द्वारा नहीं प्रस्तुत की जा रही है। इसे प्रस्तुत करनेवाला एक सच्चा हिन्दू है, जो ईश्वरसे भय खानेवाला है, जिसकी नस-नसमें हिन्दुत्व हिलोरें ले रहा है और जो हिन्दू धर्मके सर्वश्रेष्ठ आदर्शोंपर चलनेका प्रयास कर रहा है। प्रधानाचार्य महोदय, कृपया आप मेरी इस याचिकाको सम्बन्धित लोगोंके पास पहुँचा दें। यदि इस प्रान्तका दौरा करते हुए मुझे यह सुननेको मिले कि मेरी याचिकापर कार्रवाई हो गई है तो यह मेरे लिए बड़े हर्षका विषय होगा।[1] मेरा यह सन्देश सुननेके लिए आपको धन्यवाद।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, १५-९-१९२७

४२०. भाषण: रायपुरम्, मद्रासमें[2]

७ सितम्बर, १९२७

मित्रो,

खादीके निमित्त दी गई आपकी थैली और आपके मानपत्रके लिए धन्यवाद। मुझे यह देखकर बड़ी खुशी हुई कि आप कांग्रेसके सभी कामोंमें दिलचस्पी ले रहे हैं। और आपका यह आश्वासन पाकर मुझे बहुत ही खुशी हुई कि आप आगामी कांग्रेस अधिवेशनको पूरे तौरपर सफल बनानेमें अपना योगदान देनेका संकल्प कर चुके हैं। यहाँकी स्वागत समितिने इस अधिवेशनकी अध्यक्षता करनेके लिए भारतके एक तपे-तपाये सेवकको सर्वसम्मतिसे चुना है। वे एक बहुत बड़े उद्देश्यको लेकर चल रहे हैं और उसी उद्देश्यको पूरा करनेके लिए वे अध्यक्ष-पदका भार अपने सिर ले रहे हैं। डॉ० अन्सारी भारतके गिने-चुने शल्य-चिकित्सकोंमें से हैं, और ऐसे शल्य-चिकित्सककी हैसियतसे वे हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच की खाईको पाटनेके लिए कृतसंकल्प हैं। मैं जानता हूँ कि अनेक प्रान्तीय कांग्रेस कमेटियोंने डॉ० अन्सारीके पक्षमें अपना मत इसीलिए दिया है कि उनको बहुत आशाएँ हैं कि उनके कांग्रेस-अध्यक्ष बननेसे देशके ये गहरे घाव ठीक हो सकेंगे। लेकिन हमें यह सोचनेकी गलती नहीं करनी चाहिए कि उनको चुन लेनेके बाद फिर हमारा कोई काम ही नहीं रह जाता। मरीजका काम इतनेसे ही पूरा नहीं हो जाता कि वह सबसे समझदार और होशियार शल्य-चिकित्सकको

१. प्रधानाचार्यने अपने धन्यवाद-ज्ञापन भाषणके दौरान कहा कि कॉलेजके द्वार सभी वर्गोंके लिए खोलनेके प्रयत्न चल रहे हैं।

२. कालमण्डपम् मैदानमें।

बुला ले। मरीजसे अपने चिकित्सकके साथ तन-मनसे सहयोग करनेकी अपेक्षा रखी जाती है। उसे चिकित्सककी हिदायतोंपर पूरी ईमानदारीके साथ चलना पड़ता है। हम मरीज हैं। हमने अपनी चिकित्साके लिए डॉ० अन्सारीको बुलाया है। उन्होंने जिस कामका बीड़ा उठाया है, यदि हम उसमें उनके साथ सहयोग न करें, तो दोष उनका नहीं, हमारा ही होगा। और चूंकि सबसे अधिक भार मद्रासके कांग्रेस-जनों और दक्षिण भारतसे ही सबसे अधिक संख्यामें आनेवाले प्रतिनिधियोंके कंधोंपर पड़ेगा, इसलिए मुझे यह जानकर और भी खुशी हुई कि आप इस कांग्रेस अधिवेशनको सफल बनानेको कटिबद्ध हैं। आपने अपने कंधोंपर बहुत बड़ा और गम्भीर दायित्व ले लिया है। मुझे बतलाया गया है कि श्रीयुत एस० श्रीनिवास अय्यंगार यहांके कांग्रेस-मन्त्रीके साथ रोज ही टेलीफोन द्वारा संपर्क बनाये रखते हैं। इससे पता चलता है कि उनको कांग्रेसके आगामी अधिवेशनकी कितनी चिन्ता है। अब यह मद्रासके लोगोंका ही काम है कि वे उनके श्रमका भार हलका करें और उनका काम आसान बनायें। हमें यह उम्मीद नहीं करनी चाहिए कि नेतागण ही हमारा सारा काम कर देंगे। अक्सर हमारे खिलाफ यह आरोप लगाया जाता है कि साधारण लोग अपनी पूरी शक्ति नहीं लगाते। मैं चाहता हूँ, मद्रास इस आरोपको गलत साबित कर दिखाये।

आपने खादी और चरखेमें अपनी आस्था प्रकट की है। आपने अपने मानपत्रमें कहा है कि यदि आपको कपास भेजने और आपके काते हुए सूतको खरीदनेका प्रबन्ध कर दिया जाये तो आप खादीकी कताई-बुनाईका प्रबन्ध कर सकते हैं। आप यदि इस मामलेमें गम्भीर हैं तो आपको एक कदम और आगे जाना होगा। आपको अपनी एक समिति बनाकर अपने लिए कपासका खुद प्रबन्ध करना पड़ेगा। हर कर्तैयेको कताईमें सिद्धहस्त बननेके लिए धुनना और अपनी पूनियाँ आप बनाना भी सीखना चाहिए। आपका लक्ष्य यही रहना चाहिए कि जितना सूत तैयार हो, उस सबको यहीं बुन लिया जाये। खादी तैयार करनेका यही सबसे अच्छा और सस्ता तरीका है। अगर आप खुद बुनाई नहीं कर सकते तो अखिल भारतीय चरखा संघको दे सकते हैं। उसको यदि बढ़िया किस्मका, मजबूत, इकसार बुना जाने लायक सूत मिले तो वह आपका सारा-का-सारा सूत खरीद सकता है।

मुझे मालूम है कि यह एक मजदूर-केन्द्र है। मैं अपने साथी मजदूरोंसे बस एक ही बात कहूँगा। जैसे भी हो, आपको शराबखोरी छोड़ देनी चाहिए और जुए तथा अन्य बुराइयोंसे भी हर तरह दूर रहना चाहिए। शराबखोरीका यह अभिशाप मजदूरोंके नैतिक और शारीरिक शक्तिको नष्ट कर रहा है। मजदूर भाई अगर कमर कस लें तो इस अभिशापसे छुटकारा पाना उनके लिए बहुत कठिन नहीं है। भारतीय मजदूर यदि अपनी सहायता आप करनेको तत्पर हो जायें तो उनका भविष्य सचमुच उज्ज्वल है। अपनी सहायता आप करनेका सबसे अच्छा तरीका है आत्मशुद्धि। मजदूरोंको यह भी याद रखना चाहिए कि आर्थिक दृष्टिसे हमारे देशके करोड़ों व्यक्ति उनसे भी बुरी स्थितिमें हैं। यदि मजदूर लोग अपनेसे कहीं अधिक गरीबीमें रहनेवाले उन भाई-बहनोंका कुछ खयाल करें तो वे कमसे-कम खादीको तो अपना ही लेंगे। मैं जानता हूँ कि यहाँ उपस्थित सभी भाई-बहनोंने इस थैलीके लिए

चन्दा नहीं दिया है। स्वयंसेवक लोग अभी आपके पास जायेंगे और आपकी इच्छा हो तो कुछ-न-कुछ चन्दा देनेकी कृपा कीजिए। लेकिन जिसे खादीमें विश्वास न हो, उसे एक पाई भी देनेकी जरूरत नहीं। गरीबकी एक पाई भी उतनी ही कीमत रखती है, जितनी कि अमीरोंके दिये हुए रुपये, बशर्ते कि दोनों ही सच्चे मनसे स्वेच्छापूर्वक दिये जायें।

अभी-अभी मुझसे यह अनुरोध किया गया है कि मैं नीलकी मूर्तिके सिलसिलेमें चल रहे सत्याग्रहके बारेमें भी कुछ कहूँ। मेरे मनमें जो भी था, मैं समुद्र-तटकी सभामें कह चुका हूँ।[1] इस मामलेपर मुझसे बातचीत करनेके लिए आनेवाले स्वयंसेवकोंको मैंने कल एक घंटेसे अधिक और आज भी एक घंटेसे कुछ ज्यादा ही समय दिया। आप एक-दो दिनोंमें इस बातचीतका सार समाचारपत्रोंमें देखेंगे और इसकी जो टीपें ली गई हैं, वे जैसे ही मुझे मिलेंगी, उन्हें देख-सुधारकर मैं प्रकाशनार्थ दे दूंगा और तब आपको इस बातचीतका प्रामाणिक विवरण[2] भी देखनेको मिल जायेगा। पर यहाँ मैं इतना जरूर कह देना चाहता हूँ कि इसका ध्येय मुझे बहुत ही ठीक लगता है। मुझे इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि उस स्थानसे वह मूर्ति हटा दी जानी चाहिए। मैंने उसपर अंकित वाक्य देखे हैं। उनमें इतिहासको गलत ढंगसे पेश किया गया है।[3] वहाँ वह मूर्ति खड़ी राष्ट्रका निरन्तर अपमान करती रहती है और स्वयंसेवक हमारी बधाईके पात्र हैं कि उन्होंने इस प्रकार स्वयं कष्ट सहन करके उस मूर्तिकी ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया है। परन्तु इस संसारमें हर अच्छा उद्देश्य या बहुत-से अच्छे उद्देश्य कुप्रबन्ध और उनको पूरा करनेके लिए समझदारीसे काम न करनेके कारण विफल होते देखे गये हैं। इसलिए यदि स्वयंसेवक अपना संघर्ष जारी रखनेका फैसला करते हैं तो उनको इतनी सावधानी रखनी चाहिए कि आन्दोलनमें गन्दगी न आने पाये। सत्याग्रह बड़ा सुन्दर अस्त्र तो है, पर वह बड़ा खतरनाक भी है। यदि इसमें गन्दगीका थोड़ा-सा भी पुट आ जाये तो यह एक बड़ा खतरनाक अस्त्र बन जाता है। जिस प्रकार पौष्टिकसे-पौष्टिक दूधको जहरकी छोटी-सी बूँद ही पीने लायक नहीं रहने देती, उसी प्रकार किंचित् अशुद्धता ही सत्याग्रह-संघर्षको आन्दोलनके मूल उद्देश्य और आन्दोलनकर्त्ताओंके लिए खतरनाक अस्त्र बना देती है। यदि सत्याग्रही थोड़ी भी हिंसा कर बैठें या सत्यके पथसे किंचित् भी भटक जायें, तो उनको और उनके ध्येयको बड़ी हानि पहुँचेगी। सत्याग्रहमें गोपनीयताके लिए कहीं कोई स्थान नहीं। संसारमें युद्धके जितने भी तरीके हैं, मैं तो उनमें सबसे अधिक अगोपन सत्याग्रहको ही मानता हूँ। इसी प्रकार सत्याग्रहमें कायरताके लिए कोई स्थान नहीं। यदि कोई व्यक्ति अपने किसी स्वार्थसे प्रेरित होकर सत्याग्रहका प्रचार करेगा तो स्वयं हानि उठायेगा। सत्याग्रह कष्टसहनका सार है, इसलिए इस अस्त्रका इस्ते-

१. देखिए "भाषण: मद्रासकी सार्वजनिक सभामें", ४-९-१९२७।

२. देखिए "बातचीत: नीलकी मूर्ति हटानेका आन्दोलन करनेवाले स्वयंसेवकोंसे", ६ और ७-९-१९२७।

३. देखिए खण्ड ३५।

माल करनेके लिए नाममात्रका आर्थिक सहारा भी दरकार नहीं। स्वेच्छासे जितना अधिक कष्ट-सहन किया जायेगा, उतनी ही शीघ्रतासे और उतनी ही अधिक शुद्ध किस्मकी सफलता मिलेगी। इसलिए यदि सत्याग्रही लोग इन शर्तों और अपनी मर्यादाको भलीभाँति समझकर अपना काम ठीकसे करेंगे, और ये सभी शर्तें पूरी करते चलेंगे तो उन्हें विश्वास रखना चाहिए कि उनकी सफलता निश्चित है। यदि उनमें ऐसी योग्यताएँ न हों और यदि इन शर्तोंपर उनको विश्वास न हो तो उनको सत्याग्रहका मार्ग त्याग देना चाहिए। इन शर्तोंको पूरा करनेकी सामर्थ्य न होनेके कारण यदि वे सत्याग्रहका खयाल छोड़ दें, तो उनके इस कार्यको मैं साहसपूर्ण मानूंगा। अपनी भूलें स्वीकार करने और अपनी सीमाएँ समझकर कदम पीछे हटा लेनेके लिए भी थोड़े साहसकी जरूरत पड़ती है। परन्तु यदि सत्याग्रही लोग मेरी बतलाई हुई इन शर्तोंको पूरा कर सकते हैं तो मैं उनको आशीर्वाद देता हूँ और प्रत्येक देशभक्तको उनको प्रोत्साहन और आशीर्वाद देना चाहिए।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, ८-९-१९२७

४२१. पूर्ण मद्य-निषेध

> आप यह बात समझ लीजिए कि शराब बनाने, तैयार करने और उसे अपने पास रखने आदिके बारेमें मौजूदा आबकारी अधिनियममें किये जानेवाले परिवर्तनोंका, काफी बड़ी हदतक, अनिवार्य परिणाम यह होगा कि लोगोंको परेशान होना पड़ेगा। आपको ऐसी परेशानीके लिए तैयार रहना चाहिए। मद्य-निषेधका यह एक अनिवार्य पहलू है। इसलिए मुझे यह भरोसा करके ही चलना है कि आप लोग इस काममें सहायता देनेमें किसी तरहकी कोताही नहीं करेंगे। दुकानोंपर धरना देने, लोगोंको शराबकी बुराइयाँ समझाने और ऐसे ही अन्य कार्योंके लिए मैं आपकी सहायता नहीं लेना चाहता। जिस उद्देश्यके लिए मैं आपकी सहायता चाहता हूँ वह यह है कि अवैध शराब और उससे सम्बन्धित दूसरे अपराध बन्द हो सकें।

यह उद्धरण मद्रासके लोक स्वास्थ्य एवं आबकारी मन्त्रीके भाषणके 'हिन्दू' द्वारा प्रकाशित विवरणसे लिया गया है। मन्त्री महोदयने एक और बातमें भी जनतासे सहायता माँगी है; यह कि वे कर-वृद्धिको खुशी-खुशी स्वीकार कर लें। इसके बारेमें मैं इस समय इससे अधिक कुछ नहीं कहूँगा कि जनता जहाँ भी इस योग्य हो, उसे आवश्यकताका प्रमाण मिल जानेपर कर-वृद्धिको स्वीकार कर लेना चाहिए। पूर्ण मद्य-निषेधका उद्देश्य पूरा करनेके लिए रुपये-पैसेके रूपमें जो भी कीमत चुकानी पड़े, थोड़ी ही होगी।

लेकिन अभी तो मैं इस उद्धरणकी ही बात करूँगा। मुझे तो लगता है कि मन्त्री महोदयने मद्य-निषेधको गलत ढंगसे देखा है। मेरी रायमें इस कामको आंशिक

तौरपर शुरू किया ही नहीं जाना चाहिए। यह तभी सफल होगा जब इसे पूरे तौर पर, सारे देशमें लागू किया जाये। यह एक-दो जिलोंकी नहीं, अखिल भारतीय समस्या है। मैंने अपनी राय बिना किसी हिचकिचाहटके प्रकट कर दी है। मेरी राय यह है कि साम्राज्य-सरकारने आमदनीका यह सबसे अनैतिकतापूर्ण स्रोत प्रान्तोंको सौंपकर और इस प्रकार भारतीय युवकोंकी शिक्षाका खर्च पूरा करनेके लिए इस कलंकपूर्ण आयको ही एकमात्र साधन बनाकर बहुत दुष्टतापूर्ण काम किया है।

लेकिन, मन्त्री महोदयके भाषणकी जिस बातसे मेरे मनको सबसे अधिक पीड़ा पहुँची है वह यह है कि जनसाधारणके कल्याणसे सम्बन्धित इस प्रश्नको भी वे बहुत सतही और सरसरी तौरपर निबटानेका प्रयत्न कर रहे हैं। यदि वे जनतासे यह अपेक्षा करते हैं कि वह उनकी इस योजनाको कार्यान्वित करनेके लिए पुलिसका काम करे तो स्पष्ट है कि वे खुद ही अपनी योजनाको गम्भीरतासे नहीं देख रहे हैं। और फिर वे यह कहकर जनताको डराते क्यों हैं कि मद्य-निषेधका प्रयोग करनेपर उन्हें 'परेशान होना पड़ेगा'? क्या चोरी या बन्दूककी बारूद बनानेको अपराध घोषित कर देनेसे जनताको परेशान होना पड़ता है? क्या लाइसेंस लिये बिना शराब खींचना आज भी एक अपराध नहीं माना जाता? इसलिए मन्त्री महोदयका आशय यह है कि आज जिन लोगोंके पास शराब खींचने या बेचनेके लाइसेंस हैं, मद्य-निषेध लागू होनेके बाद वे चोरीसे शराब खींचने लगेंगे और इसलिए उनको परेशान होना पड़ेगा। उस स्थितिमें जनताको परेशान होनेकी कोई बात ही नहीं उठती।

अगर मन्त्री महोदय यह समझते हों कि मद्य-निषेध करनेके लिए उनको मद्य-निषेधकी घोषणा कर देने और फिर उनके द्वारा बनाये कानूनोंको भंग करनेवालोंके खिलाफ कानूनी कार्रवाई करनेसे आगे उन्हें कुछ नहीं करना है तो इससे यही प्रकट होता है कि उनमें सूझ-बूझकी कमी है और उनको जनतासे वास्तवमें कोई सहानुभूति नहीं है। मैं उनको यह बतलानेकी धृष्टता करता हूँ कि कानूनी कार्रवाई करना तो मद्य-निषेधके कार्यक्रमका एक सबसे छोटा और ध्वंसात्मक अंश ही है। मद्य-निषेध कार्यक्रमका एक अधिक बड़ा और रचनात्मक पहलू भी है। लोग अपनी वर्तमान असहाय अवस्थाके कारण शराब पीते हैं। कारखानोंके मजदूर और ऐसे ही अन्य लोग शराबखोरी करते हैं। वे अपने-आपको समाजमें अकेला और उपेक्षित महसूस करते हैं और तब वे शराबकी ओर झुकते हैं। जिस प्रकार शराबसे दूर रहनेवाले लोगोंके लिए यह कहना ठीक नहीं होगा कि वे स्वभावसे ही सन्त हैं, उसी प्रकार शराब पीनेवालोंके बारेमें भी यह कहना ठीक नहीं होगा कि वे स्वभावसे ही बुरे हैं। अधिकांश लोग अपने सामाजिक वातावरणसे नियन्त्रित होते हैं। जो भी मन्त्री मद्य-निषेधको सफल बनानेके लिए सचमुच उत्सुक होगा, वह अपने अन्दर सुधारकों-जैसे गुण और उत्साह पैदा करेगा। तब उसे जनतासे ठीक वही सहायता दरकार होगी, जिसे मद्रासके इन मन्त्री महोदयने बिलकुल ही व्यर्थ समझा है। मेरी विनम्र रायमें तो उनको सचमुच धरना देनेवालों और "लोगोंको शराबकी बुराइयाँ समझाने" और "ऐसे ही अन्य कार्य करनेवाले" स्त्री-पुरुषोंकी ही जरूरत है। ठीक इसी प्रकारके कार्योंके

लिए उनको स्वयंसेवकोंके एक दलकी जरूरत होगी। ये लोग शराबियोंके जीवनको सुधारनेमें उनका साथ देंगे। आवश्यकता इस बातकी पड़ेगी कि शराबकी हर दुकानको वे एक जलपान-गृह और संगीत-कक्षमें बदल दें। मजदूर लोग कोई ऐसा स्थान चाहेंगे जहाँ वे सब एकत्र हो सकें और जहाँ उन्हें कोई पौष्टिक, सस्ता, ताजगी देनेवाला और गैर-नशीला पेय मिल सके; और यदि साथ ही साथ उन्हें वहाँ संगीत भी सुननेको मिल जाये तो उनके शरीर और मनपर इसका बहुत अनुकूल प्रभाव पड़ेगा और वे उसकी ओर सहज ही आकृष्ट होंगे। यदि सूझ-बूझके साथ इनका प्रबन्ध किया जाये और इनके संचालनमें लोगोंका सहयोग प्राप्त हो तो राज्यको इनसे आय भी हो सकती है। नशाबन्दीकी समस्या हल करनेवाले को इस समस्याका काफी गम्भीरताके साथ अध्ययन करना पड़ेगा, जो लगता है, मन्त्री महोदयने नहीं किया है। उनको चाहिए कि वे अमेरिकामें अपनाये गये तरीकों और संसारकी बड़ी-बड़ी मद्य-निषेधवादी संस्थाओं द्वारा आजमाये गये उपायोंका अध्ययन करें। पर ऐसा अध्ययन भी एक हदतक ही सहायक हो सकेगा; क्योंकि पाश्चात्य देशोंकी परिस्थितियाँ भारतकी परिस्थितिसे बहुत भिन्न हैं। इसलिए हमारे तरीके भी उनसे काफी भिन्न होंगे। जहाँ पाश्चात्य देशोंमें पूर्ण मद्य-निषेध कर सकना एक दुष्कर कार्य है, वहाँ मेरे विचारसे इस देशमें उसे बड़ी आसानीसे सम्पन्न किया जा सकता है। पश्चिममें शराब-जैसी बुराईको एक प्रतिष्ठित स्थान मिल चुका है, इसलिए उसे हटाना अत्यन्त कठिन काम बन गया है। लेकिन ईश्वरकी कृपासे हमारे देशमें शराबको अब भी बड़ी नीची नजरसे देखा जाता है और यहाँ इस बुराईका शिकार सारा समाज नहीं, केवल निर्धन-वर्ग ही है।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, ८-९-१९२७

४२२. हमारी सभ्यता[1]

किसानकी बख्शिस[2]

संयुक्त प्रान्तके एक गरीब किसानने मुझे मेरे प्रवासमें नीचेका लिखकर दिया था। उसकी तारीख है ४-११-२४। तबसे मैंने उसे अपने कागजपत्रोंमें संग्रह कर रखा था। मुझे यह जैसा मिला है वैसा ही यहाँ दे रहा हूँ। नाम भी नहीं छिपाता, क्योंकि इसमें यह भय नहीं कि यह रामचन्द्र फूला न समायेगा। यही अधिक सम्भव है कि वह कभी 'नवजीवन' पढता ही न हो। और यदि पढता भी होगा तो जिसने तुलसीदासकी ये सुन्दर चौपाइयाँ लिख भेजी हैं वह मैं आशा करता हूँ कि अभिमानसे न फूलेगा।

१. इसका गुजराती अनुवाद ११-९-१९२७के नवजीवनमें छपा था।
२. बख्शिश।

(संसारके जीवनोंको सुख पहुंचानेवालोंकी नीति)

जननी जनक बन्धु सुत दारा। तनु धनु भवन सुहृद परिवारा।।
सब कै ममता ताग बटोरी। मम पद मनहि बाँधि बरि डोरी।।
समदरसी इच्छा कछु नाहीं। हरष, सोक, भय, नहिं मन माहीं।।
अस सज्जन मम उर बस कैसें। लोभी हृदयँ बसइ धनु जैसें।।
तुम्ह सारिखे सन्त प्रिय मोरें। धरउँ देह नहिं आन निहोरें।।

दोहा

सगुन उपासक परिहित, निरत नीति दृढ़ नेम।
ते नर प्रान समान मम जिन्ह कें द्विज पद प्रेम।।

जबतक सब नेता ऐसा न समझ लें तबतक यह संसारके पापी जीव तर नहीं सकेंगे। क्या करूँ इस समय (ममत्व) के अहंने सबकी मतियोंपर अपना दबाव डालकर अंध कर दिया है। जीव मायाके जालमें पड़ बौराय रहे हैं। इससे हे महात्मन्, ईश्वर आपको दीर्घायु प्रदान करे, जिससे कलियुगके पाप दूर हों।

(प्रार्थि-नम्र-चिन्ताजनक रामचन्द्र)
—किसान अवध ४-११-२४-८१

बड़ो दादाकी बक्षिस

इसी प्रकारकी वड़ो दादासे[1] प्राप्त एक अमूल्य वस्तु मेरे पास हमेशा रहती है। उनके जीवनकालमें जब मैं शान्तिनिकेतनमें आखिरी दफा गया था,[2] उस समय नीचे दिया हुआ श्लोक उन्होंने मुझे अपने हाथसे लिखकर दिया था:

विपत् संपदिवाभाति मृत्युश्चाप्यमृतायते।
शून्यमापूर्णतामेति भगवज्जनसंगमात्।

इसका अर्थ दूं:

भगवद्भक्तके सत्संगसे दुःख सुख-रूप होता है, मृत्यु भी अमृत-रूप बन जाता है और जड़ मनुष्य सम्पूर्ण ज्ञानी बन जाते हैं।

एक जंगली गिना जानेवाला किसान भी समय आनेपर तुलसीदासकी ज्ञान और भक्ति-रसपूर्ण चौपाइयाँ लिख सकता है और दूसरा महाकवि अपनेको गूढ़ ज्ञान होने पर भी अहंभावको छोड़कर सत्संगकी खोजमें रहता है। उपरोक्त दोनों अवतरणोंपर उसके साथ मेरा जो सम्बन्ध है उसे त्यागकर पाठक यदि तटस्थ दृष्टिसे विचार करेंगे तो उन्हें मालूम होगा कि हमारी सभ्यता क्या है और उसके लायक हम कैसे बन सकते हैं।

हिन्दी नवजीवन, ८-९-१९२७

१. रवीन्द्रनाथ ठाकुरके अग्रज द्विजेन्द्रनाथ ठाकुर।
२. मई, १९२५ में; देखिए खण्ड २७।

४२३. भाषण: कांजीवरम्‌में

८ सितम्बर, १९२७

मित्रो,

इन अनेक मानपत्रों और थैलियोंके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। चरखेके सन्देशको व्यावहारिक रूप देनेके प्रयासके लिए मैं नगरपालिकाको बधाई देता हूँ। आशा है कि प्राथमिक पाठशालाओंके बालक-बालिकाएँ नियमित रूपसे विधिवत् कताई करना सीख रहे होंगे। अनेक नगरपालिकाओंने ऐसा प्रयोग करके देखा है, पर नगर-पालिकाओंके सदस्योंके व्यक्तिगत रूपसे दिलचस्पी न लेनेके कारण, चरखे एक तरहसे बेकार ही पड़े रहे हैं। और इस काममें वास्तविक सफलता तबतक प्राप्त नही हो सकेगी जबतक कि नगरपालिकाके एक-दो सदस्य स्वयं ही कताईमें सिद्धहस्त बनकर पाठशालाओंमें चलनेवाले कामपर अच्छी तरह नजर नही रखेंगे। मैं आपका ध्यान नगरपालिकाओं व दूसरी संस्थाओं द्वारा संचालित अन्य पाठशालाओंके अनुभवकी ओर भी आकृष्ट करना चाहता हूँ। उनका अनुभव यह है कि पाठशालाओंमें कातनेके लिए उपयुक्त साधन चरखा नही, बल्कि तकली है।

आपने मुझसे यह बतानेको कहा है कि दरिद्रनारायणकी सेवाके लिए और क्या किया जा सकता है। पाठशालाओंमें पढनेवाले बच्चोंके अभिभावकोंकी हैसियतसे आप उनको खादी पहनना सिखा सकते हैं। आप नगरपालिकाके छोटे-बड़े सभी अधिकारियोंको सिर्फ खादी पहननेकी प्रेरणा दे सकते हैं। अनेक नगरपालिकाओंने इसमें सफलता प्राप्त की है।

एक मानपत्रमें मुझसे अनुरोध किया गया है कि मैं ब्राह्मणों और अब्राह्मणोंके बीच पड़ी दरारको पाटनेकी कोशिश करूँ। मैं आपको भरोसा दिलाता हूँ कि अगर मेरा बस चले तो मैं आज ही उसे पाट दूँ। मैंने अपने ब्राह्मण और अब्राह्मण भाइयोंसे भी कह दिया है कि मैं अपने इस दौरेके बीच उनके साथ इसपर चर्चा करने और यदि सम्भव हो तो इसका कोई हल निकालनेमें मदद देनेको तैयार हूँ। यह स्थिति ब्राह्मणों और अब्राह्मणों दोनोंके लिए अपमानजनक है। हम स्वराज्यके कितने योग्य हैं, वास्तवमें इसकी कसौटी हमारी यह योग्यता ही है कि हम अपनी इन समस्याओंको कहाँतक हल कर पाते हैं। मैं यही कह सकता हूँ कि मैं मदद करनेके लिए तैयार हूँ, इससे आगे कोई स्पष्ट सुझाव रखना तो मेरे लिए सम्भव नही है।

आपका नगर भारत-भरमें एक पवित्र तीर्थस्थलके रूपमें विख्यात है। पर दुर्भाग्य-वश अन्य तीर्थस्थलोंकी भाँति यहाँ भी पवित्रता बस नामको ही रह गई है। यह सही है कि आप शहरके लिए कुछ काम कर रहे हैं, और कुछ दूसरी दिशाओंमें भी थोडा-बहुत प्रयत्न कर रहे हैं, लेकिन इतनेसे ही यह नगर पवित्र नही बन जाता। पवित्रता इससे कही ऊँची वस्तु होती है। उसके लिए अपेक्षित है आचरणकी पवित्रता,

और नगरके अधिकांश नागरिकोंके हृदयकी पवित्रता। मैं चाहता हूँ कि आप अपनेसे यह प्रश्न पूछें कि आप एक भी प्राणीको अस्पृश्य मानते हैं या नहीं। अस्पृश्यतामें विश्वास करनेवाले व्यक्तिकी पटरी पवित्रताके साथ बैठ ही नहीं सकती – दोनों परस्पर विरोधी हैं।

आज मुझे इसी स्थानपर एक पत्र मिला है। उसमें कहा गया है कि मैं बस बाल-विधवाओंकी समस्याके बारेमें ही बोलूँ। मेरे लिए यह तो सम्भव नहीं कि मैं दूसरी बुराइयोंके बारेमें कुछ न कहकर सिर्फ इसी भारी बुराईकी चर्चा करूँ, लेकिन मुझे इस तथ्यकी जानकारी है और इससे मेरा हृदय दुःखी भी है कि आपके यहाँ यह कुप्रथा मौजूद है। इतनी सारी कुमारी बाल-विधवाओंका होना हिन्दू धर्मकी प्रतिष्ठा नहीं बढ़ाता। यदि मेरा बस चलता तो मैं निश्चय ही हर माता-पिताको विवश कर देता कि वे अपने घरकी बाल-विधवाका पुनर्विवाह करायें। और फिर बाल-विधवा शब्दमें भी एक अन्तर्विरोध है। विधवा तो वह वयस्क नारी ही हो सकती है जिसने अपने विवाहके लिए सहमति दी हो और विवाहित जीवन बिताया हो।

बाल-विधवाओंके प्रश्नसे ही जुड़ा हुआ प्रश्न है बाल-विवाहोंका। सोलह वर्षसे कम अवस्थाकी बालिकाकी शादी कर देना अमानवीयता है। शास्त्रोंसे अपनी कामुकता और अपनी विलासी वृत्तिका समर्थन करने लायक अर्थ निकालना, इसी प्रकार उनकी व्याख्या करना, शास्त्रोंके प्रति हिंसा करना है। अब आप शायद कुछ समझ गये होंगे कि मैं पवित्रताका क्या अर्थ लगाता हूँ। आपको अपने नगरपर गर्व है। ऐसा गर्व क्षम्य है और स्वाभाविक भी। परन्तु आपको गर्व है, इसीलिए मुझे आशा है कि आप अपने इस नगरको मेरी गिनाई हुई सभी बुराइयोंसे मुक्त करनेके लिए कमर कस लेंगे और शीघ्र ही इसके लिए कुछ कारगर कदम उठायेंगे। आपने अपने मानपत्रमें देशके दरिद्रनारायणके प्रति सहानुभूति रखनेका दावा किया है। यदि आपके हृदयमें सचमुच ऐसी भावना है, तो आप तबतक चैन नहीं लेंगे जबतक कि आप पूर्ण मद्य-निषेध न करा लें।

मुझे अभी एक पुर्जा दिया गया है। मुझसे कहा गया है कि मैं आपसे तिलक स्वराज्य-कोष और उस खद्दर कोषके बारेमें भी कुछ कहूँ जिसके लिए आपने मुझे आज थैलियाँ भेंट की हैं। तिलक स्वराज्य-कोषके बारेमें मैं आपको बतला दूँ कि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीने इसका परीक्षित लेखा प्रकाशित करके भारत-भरमें प्रचारित कर दिया है। लेकिन आज भी जो भाई जानना चाहें कि कुल कितना चन्दा जमा हुआ और किस प्रकार उसका वितरण किया गया, वे लेखेके विवरणकी एक प्रति महामन्त्रीसे प्राप्त कर सकते हैं। कुल निधिका वितरण इस प्रकार किया गया : उसका एक निश्चित प्रतिशत केन्द्रीय निधिके रूपमें अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीको दिया गया और शेष जिन प्रान्तोंसे राशियाँ जमा की गई थीं, उन्हींके पास रहने दिया गया। जहाँतक मेरी जानकारी है, सम्बन्धित प्रान्तोंमें से भी एक-दोको छोड़कर, बाकी सभीने उसके परीक्षित लेखे प्रकाशित कर दिये हैं। आपको यह भी

बतला दूं कि सबसे अधिक राशियाँ हमने बम्बई प्रान्तमें जमा की हैं और वे इसके लिए खास तौरपर नियुक्त किये गये कुछ न्यासियोंके पास रखी गई हैं। इस निधिमें कुछ बहुत बड़ी-बड़ी राशियाँ विशेष प्रयोजनोंके लिए दी गई थी; और उनके व्ययका अधिकार उन विशेष राशियोंके दाताओंको सौंप दिया गया। मेरा अपना खयाल है कि तिलक स्वराज्य-कोषमें जितनी राशि जमा हुई है, उतनी बड़ी राशिवाले अन्य किसी भी कोषको इतने सुव्यवस्थित ढंगसे नहीं चलाया गया है।

परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि इन निधियोंमें कहीं भी कोई गबन नहीं हुआ। अन्य सभी मानव संस्थाओंको देखिए। कांग्रेसमें भी हेर-फेर करनेवाले कार्यकर्त्ता रहे ही हैं। पर मैंने जाँच करके देखा है कि कांग्रेसमें कुल मिलाकर हेराफेरी कम ही हुई है। मैं तिलक स्वराज्य-कोषकी बात कर रहा हूँ। इतनी सुव्यवस्था इसीलिए सम्भव हुई कि जिम्मेदार अधिकारियोंको नियुक्त करनेका खास खयाल रखा गया। इस निधिके कोषाध्यक्ष सेठ जमनालालजी स्वयं तो बहुत खरे हैं ही, साथ ही इतने सतर्क भी हैं कि उनके जैसा सतर्क कोषाध्यक्ष शायद संसार-भरमें नहीं मिल सकता। और आप विश्वास कीजिए कि सेठ जमनालालजीके बारेमें मैं यह बात अपने निजी अनुभवके आधारपर ही कह रहा हूँ।

अब खादी-कोषको लीजिए। इसके कोषाध्यक्ष भी सेठ जमनालालजी ही हैं, और मन्त्री शंकरलाल बैंकर हैं। इस निधिकी व्यवस्थाके लिए इन दोनों मित्रोंसे ज्यादा अच्छे व्यक्ति मिल ही नहीं सकते, मुझे इस बातका पूरा भरोसा है और उनके ऊपर बहुत ही चुनिन्दा लोगोंका एक बोर्ड है। बोर्डके सभी सदस्य चरखेके सन्देशमें पूरी निष्ठा रखते हैं। इसकी राशियाँ अत्यन्त विश्वसनीय और साखवाले बैंकोंमें रखी जाती हैं। समय-समयपर पूरे देशके सभी प्रान्तोंके हिसाबकी जाँच की जाती है; और समय-समयपर प्रान्तों तथा केन्द्रोंके हिसाब-किताबकी भी लेखा-परीक्षा कराई जाती है। कोई भी व्यक्ति जब चाहे उस हिसाबको देख सकता है। इसके लिए जरूरी नहीं कि वह स्वयं दाता ही हो। इस निधिके वितरणका तरीका यह रखा गया है कि जिन प्रान्तोंसे जितनी राशियाँ जमा की गई हैं, उनको उन प्रान्तोंके ही काममें लगाया जाये। परन्तु बोर्ड इस नियमका पालन आँख मूदकर नहीं करता। मिसालके तौरपर, बम्बईमें हमने काफी बड़ी राशि जमा की है, लेकिन उसे बम्बईपर तो लगभग बिलकुल ही नहीं खर्च किया गया है। उड़ीसामें बहुत थोड़ा चन्दा जमा हो पाया है, फिर भी वहाँ खादीके कामकी व्यवस्थाके लिए काफी बड़ी रकम खर्च की गई है। इसी प्रकार तमिलनाडमें जितनी राशि अबतक इकट्ठी हुई, उससे कहीं ज्यादा उसपर खर्च की जा चुकी है। सबसे बड़ा नियम यह रखा गया है कि जहाँ भी कोई बड़ी विपत्ति आई हो और विपद्‌ग्रस्त क्षेत्रमें योग्य तथा ईमानदार कार्यकर्त्ताओंके जरिये अच्छी तरहसे काम कर सकनेकी सम्भावना हो, वहाँके लिए इस कोषका धन सदा सुलभ रहे।

लोगोंको मैं बराबर इस बातके लिए आमन्त्रित करता रहा हूँ कि वे सार्वजनिक संस्थाओंके आमद-खर्चकी जाँच करें, गहरी जाँच करें और चूंकि मैं इस चीजको पसन्द

करता हूँ, इसीलिए लिखकर पूछे गये इस प्रश्नका मैंने इतने विस्तारसे उत्तर दिया। मैं चाहता हूँ कि जनता सभी न्यास-निधियोंके हिसाब-किताबमें अधिक रुचि ले तथा और ज्यादा सक्षम ढंगसे काम करे। मैं जितनी सावधानी वरत सकता हूँ उतनी सावधानी वरतनेके वावजूद मैं जानता हूँ और मुझे इस वातका दुःख है कि मैं अकेले ही जनता द्वारा सौंपी गई इन अनेक निधियोंकी ऐसी व्यवस्था नहीं कर सकता कि कहीं किसी तरहकी गड़बड़ीकी गुंजाइश न रहे। यह तो तभी सम्भव है जब जनता बराबर चौकस रहकर इस काममें मेरी सहायता करे। जनताकी सक्रिय और समझदारी-भरी सहायताके बिना इनकी व्यवस्थाको सर्वथा निर्दोष और पाक-साफ रखना किसी एक व्यक्तिकी शक्तिसे बाहर है। मेरे इस स्पष्टीकरणसे यदि और भी कुछ सवाल उठते हों तो मैं उनका सहर्ष उत्तर दूँगा। आप अभी ऐसे सवाल पूछ सकते हैं या चाहें तो बादमें पत्र लिखकर भी पूछ सकते हैं।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, १०-९-१९२७

४२४. भाषण : पेराम्बूरके आरुन्धतीयोंके समक्ष

८ सितम्बर, १९२७

महात्माजीने मानपत्रका उत्तर देते हुए, चर्मकार समाजके इन लोगोंसे आग्रह किया कि वे अपना धन्धा पशु-वधसे प्राप्त चमड़ेसे न करें, बल्कि मरे हुए पशुओंकी खालका ही प्रयोग करें। महात्माजीने कहा कि मैंने खुद भी जूते बनाये हैं और आज भी काफी अच्छे जूते बना सकता हूँ। हाँ, मैं इतनी सुन्दर जोड़ी नहीं बना सकता जैसी कि आपने मुझे भेंट की है।[1] जूते बनानेका पेशा इज्जतका पेशा है, और इसके लिए किसीको शर्म खानेकी जरूरत नहीं। मैंने खुद भी साबरमतीमें चमड़ा पकानेका काम शुरू कराया है; वहाँ मरे हुए पशुओंकी खालें ही पकाई जाती हैं।

इसके बाद महात्माजीने उनसे शराबखोरी छोड़नेका अनुरोध करते हुए कहा कि शराब आदमीको पशु बना देती है और वह परिवारका दुश्मन बन जाता है। आपको हर तरहकी बुराइयोंसे दूर रहना चाहिए। आप अगर अपनी रोजानाकी जिन्दगीके छोटे-छोटे काम करनेमें मेरी सलाहपर चलें तो समाजमें आपका दर्जा अपने-आप ऊँचा उठ जायेगा।

अन्तमें महात्माजीने उनसे कहा कि आप यह हमेशा याद रखें कि भारतके देहातोंमें करोड़ों आदमी आपसे भी ज्यादा गरीब हैं। आपको उनके साथ हमदर्दी रखनी चाहिए और खद्दर पहनकर उनकी मदद करनी चाहिए। आपके लिए विदेशी

१. गांधीजी और कस्तूरबाको मरे हुए पशुके चामसे बनी सैंडिलें भेंटमें दी गई थीं।

वस्त्र पहनना उतना ही गलत होगा जितना कि मेरे लिए अपने यहाँके चर्मकारोंका खयाल किये बिना विदेशी जूते खरीदना।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, १२-९-१९२७

४२५. भाषण: गुजरातियों और मारवाड़ियोंके समक्ष, मद्रासमें

९ सितम्बर, १९२७

थैली और मानपत्रके लिए धन्यवाद। आपने मुझे एक पुनीत कार्यके लिए थैली भेंट की है, इससे मुझे सन्तोष है। गुजरात मेरी जन्म-स्थली है, इसलिए गुजरातियोंके साथ मेरा एक विशेष सम्बन्ध है। मैं जबसे भारतमें आया हूँ, तभीसे गुजरातियों और मारवाड़ियोंके साथ मेरा स्नेह-सम्बन्ध दिन-दिन गहरा होता गया है। यदि इन दोनों जातियोंके लोगोंने व्यवसायियोंके रूपमें अपने कर्त्तव्योंको कुछ पहले ही समझकर अपने व्यावसायिक कार्यमें स्वार्थरहित सेवाको भी थोड़ा-बहुत स्थान दिया होता तो भारतको अबतक स्वराज्य मिल चुका होता। भारतके अबतक गुलाम बने रहनेका एक कारण विदेशी वस्त्रोंका आयात और व्यवसाय है, जिसमें आप लोगोंका सबसे अधिक हाथ है। इसलिए आप दरिद्रनारायणकी सेवाके लिए जो धन देते हैं, उसकी राशि कितनी भी क्यों न हो, वह असन्तोषप्रद बनी ही रहेगी; क्योंकि आप जो काम करते हैं, उससे गरीबीके मारे भारतके करोड़ों लोगोंपर बुरा प्रभाव पड़ता है। आप गरीबोंका धन उनसे लिये ले रहे हैं, और पाप करनेके पश्चात् उसका प्रायश्चित्त करनेका केवल एक तरीका यह है कि आपने जिनका धन लिया है, उनके प्रति अपने कर्त्तव्य पूरे करें। इसलिए यदि आप सच्चे धर्मका पालन करना चाहते हैं, तो मेरा आपसे यही आग्रह है कि आप खादीका व्यवसाय अपना लें। यह काम मेरा नहीं, आपका है। मैं जन्मसे बनिया जरूर हूँ, पर व्यवसायको छोड़ चुका हूँ। इसलिए व्यवसाय करना मुझे आप ही लोगोंसे सीखना पड़ेगा। इसके अलावा, भारतमें जो सबसे बड़ा व्यवसाय, सबसे बड़ा काम है, वह मेरे हाथमें आ गया है और इसलिए यदि आप खादीके इस कामको मुझसे ले लें, खुद इसे सँभाल लें, तो मुझे देश-भरमें चन्दा माँगते फिरनेकी जरूरत नहीं रह जायेगी। आपने मुझे हिन्दीमें मानपत्र भेंट किया है। मैं इसके लिए धन्यवाद देता हूँ। दक्षिण भारतमें एक हिन्दी प्रचारक सभा है। उसके कामके लिए जब-तब उत्तर भारतसे ही धन आता है। मारवाड़ियोंने इस कामके लिए बड़ी-बड़ी रकमें दी हैं। मेरा आग्रह है कि अब आप इसे अपना काम बना लें। धनके लिए आप उत्तर भारतका मुँह न ताकें। आप स्वयं ही इसे कर्मठतासे चलायें। आपका एक और भी कर्त्तव्य है, गो-रक्षा। गुजरातियों और मारवाड़ियोंने इसमें महत्त्वपूर्ण योग दिया है। मैं आपको बतला दूँ कि केवल धनसे इस कामको

पूरा नहीं किया जा सकता। शास्त्रोंने इसके सम्बन्धमें जो ज्ञान हमको दिया है, वह आपके पास है और वह धनसे कहीं अधिक आवश्यक है। यदि आप देशके विभिन्न भागोंमें डेरियाँ और चमड़ा पकानेके उद्योग शुरू नहीं करेंगे, तो इस कामको कभी भी ठीकसे सम्पन्न नहीं कर पायेंगे। आप भारतके सभी भागोंमें व्यवसायियोंकी हैसियतसे फैले हुए हैं। आपको देशके सभी लोगोंके साथ मैत्री-सम्बन्ध विकसित करने चाहिए। उनको अजनबी मत समझिए। उनको एक ही देशके पुत्र-पुत्रियोंकी तरह मानिए। यदि आप एकको पंजाबी, दूसरेको बंगाली, तीसरेको मारवाड़ी या गुजराती इत्यादि मानकर चलेंगे तो उसका कोई अच्छा परिणाम निकलनेवाला नहीं है। ईश्वर आपको सेवा करनेकी बुद्धि और इच्छा प्रदान करे।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, १०-९-१९२७

४२६. भाषण: महिलाओंके समक्ष, मद्रासमें[1]

९ सितम्बर, १९२७

महात्माजीने सबसे पहले तो अपने स्वागत और भेंट की गई थैलीके लिए मद्रासकी महिलाओंके प्रति आभार प्रकट किया। फिर उन्होंने कहा कि थैलीसे मैं सन्तुष्ट नहीं हूँ। आज यहाँ जितनी महिलाएँ उपस्थित हुई हैं, मुझे लगता है कि उन सभीको इस बातकी जानकारी नहीं है कि यह थैली किस प्रयोजनके लिए है; अगर उनको जानकारी होती तो वे इससे कहीं ज्यादा रकम चन्देमें देतीं। यह राशि सौ-पचास गरीब लोगोंमें दानके तौरपर बाँटनेके लिए नहीं है, इसे तो भारत-भरके भुखमरीसे पीड़ित करोड़ों लोगोंको राहत देनेके लिए इस्तेमाल किया जायेगा। यहाँ बैठी कितनी ही महिलाएँ बड़े कीमती आभूषण धारण किये हुए हैं। आपने अभी शायद यह महसूस नहीं किया है कि आपका एक आभूषण भी भुखमरीसे पीड़ित करोड़ों लोगोंके लिए कितना अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकता है। वे करोड़ों मेहनतकश लोग तो जानते तक नहीं कि हीरा, सोना और चाँदी होते कैसे हैं। उनके अपने आभूषण तो काठ, पत्थर और ताँबेके बने होते हैं। मैं तो समझता हूँ कि सभामें उपस्थित बहनोंने गाँवोंमें बसनेवाली अपनी बहनोंको शायद ही कभी अपनी आँखोंसे देखा होगा। मेरी बड़ी इच्छा है कि मैं आपको गाँवोंमें ले जाकर दिखाऊँ कि आपकी बहनोंकी दशा क्या है। तभी आप मेरे शुरू किये हुए इस आन्दोलनका और मेरे इस कार्यके उद्देश्यका सच्चा महत्त्व समझ पायेंगी। आपने मुझे कुछ सौ रुपये दिये हैं, यह तो ठीक है; पर कुछ और काम भी हैं, जिनको अगर आप नहीं करेंगी तो यह राशि बेमतलब होगी। भुखमरीसे पीड़ित, हमारी करोड़ों बहनें सालके सभी दिन कड़ी

१. ट्रिप्लिकेन-स्थित हिन्दू हाई स्कूलके सिंगाराचारी हॉलमें।

मेहनत करती रहती हैं, और अगर भाग्यकी कुछ अधिक लाड़ली बहनें सचमुच उनपर कुछ स्नेह रखती हैं, तो उनको गरीबोंकी तैयार की हुई खादी पहननी चाहिए, और अपने त्याग तथा स्नेह-भावका परिचय देनेके लिए प्रति-दिन आधे घंटे कातकर अपना सूत उन गरीब बहनोंकी खातिर दे देना चाहिए। मैं उन करोड़ों गरीब बहनोंकी सहायताके लिए काम करता रहा हूँ और मैं जहाँ भी गया हूँ, सभी महिलाओंसे मुझे पूरी-पूरी सहानुभूति मिली है। देशकी महिलाएँ यदि मेरे साथ सहयोग नहीं करेंगी तो मुझे इसमें सफलता नहीं मिल सकती। मानपत्रका उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा कि आपने मुझे एक बड़ा लम्बा-चौड़ा मानपत्र दिया है। सभामें उपस्थित सभी महिलाएँ तो इसमें शामिल की गई सभी बातोंको शायद जानती भी नहीं होंगी। वे सभी बातें महत्त्वपूर्ण हैं और उनका ताल्लुक सिर्फ मध्यम वर्गके लोगोंसे है। मैं नहीं कहता कि सिर्फ इसीलिए उनकी ओर ध्यान देनेकी जरूरत नहीं। पर मानपत्रमें शामिल की गईं सभी बातोंकी चर्चा करने लायक समय मेरे पास नहीं है। मैं इतना ही कहूँगा कि आपके साथ मेरी पूरी हमदर्दी है। मैं बस एक ही बात कहूँगा कि महिलाओंको पुरुषोंके समान ही अधिकार हैं। हिन्दू शास्त्रोंने दोनोंमें कोई भेद नहीं किया है और यहाँतक कि ईश्वरको भी 'अर्धनारीश्वर'के रूपमें देखा है। अंग्रेजोंकी एक कहावतमें पत्नीको महत्तर अर्द्धांग (बेटर हाफ) को जो संज्ञा दी गई है, वह बिलकुल ठीक है। भारतने अनेक आदर्श नारियोंको जन्म दिया है। भारतीय महिलाएँ पापसे बचनेके लिए नित्य ही तड़के जिन सात सतियोंकी आराधना करती हैं, उनमें सीताका स्थान प्रथम है। हमारे यहाँ महिलाओंको अधिक आदर दिया जाता था — यह इस तथ्यसे सिद्ध हो जाता है कि लोग 'राम-सीता' न कहकर 'सीता-राम' कहते हैं। सीता त्याग और धर्मकी पुंज थीं। उनका त्याग रामसे कहीं बढ़कर था। यदि हिन्दू लोग सीता और रामके सच्चे अनुयायी और आराधक होते तो वे अपने समाजमें इस तरहकी लज्जास्पद कुरीतियोंको पनपने न देते। वे तुरन्त हिन्दू धर्मके शुद्धीकरणके लिए कमर कस लेते। यदि आप अपने समाजको शुद्ध बनानेको कृतसंकल्प हों तो मैं सबसे पहले आपसे यही कहूँगा कि आप अपनी लड़कियोंकी शादी किसी भी हालतमें सोलह वर्षकी अवस्था पूरी करनेसे पहले न करें। दूसरी जरूरी चीज यह है कि बाल-विधवाओंके पुनर्विवाहकी व्यवस्था करें। इन बालिकाओंका पुनर्विवाह न करना पाप है। जीवन-भरका करार तभी उचित हो सकता है जब उसपर दोनों पक्षोंकी सहमति हो और बाल-विवाहोंमें ऐसी कोई सहमति नहीं होती। और आपको अपने यहाँ मौजूद देवदासियोंकी प्रथा भी मिटा देनी चाहिए। मैंने ये जो सुधार आपको सुझाये हैं, वे महिला-संगठनों द्वारा ही प्रभावशाली ढंगसे किये जा सकते हैं, पुरुष कार्यकर्त्ताओं द्वारा नहीं, चाहे वे कितने भी योग्य हों।

महात्माजीने आगे कहा कि डॉ० मुत्तुलक्ष्मी अम्माल विधान-परिषद्की उपाध्यक्ष हैं। इस बातसे मुझे बड़ा सन्तोष मिला। मैं स्वयं तो असहयोगी हूँ, पर मुझे विश्वास

है कि भारतीय महिलाओंकी ओरसे डॉ० मुत्तुलक्ष्मी अम्माल परिषद्में बहुत-कुछ करेंगी। मेरा उनसे बस यही अनुरोध है कि वे पूरे तौरसे पाश्चात्य तौर-तरीकोंको न अपनायें। उनको परिषद्में भारतीय वातावरण पैदा करना चाहिए और भारतीय महिलाओंके हितोंको सदा ध्यानमें रखना चाहिए। यदि भारतीय महिलाएँ भारतकी प्रगतिके लिए सक्रिय काम करें तो उसकी प्रगति निश्चित और ध्रुव है।

अन्तमें, मैं यही कहूँगा कि आज भारतकी सबसे बड़ी समस्या हजारों गाँवोंमें बिखरे करोड़ों मेहनतकश लोगोंकी गरीबी दूर करने की ही है। यदि भारतकी शिक्षा-सम्पन्न और अपेक्षाकृत अधिक भाग्यशाली बहनें अपनी अभागी बहनोंके प्रति अपने कर्त्तव्यको नहीं समझेंगी और उनको राहत पहुँचानेके लिए काम नहीं करेंगी तो भारत कभी भी प्रगति नहीं कर पायेगा। मेरा विश्वास है कि चरखा इस दिशामें काफी-कुछ कर सकता है। इसे हमारे सभी कार्योंका केन्द्र बन जाना चाहिए। खादी-आन्दोलन महिलाओंका ही आन्दोलन है और मुझे आशा है कि बहनें जल्द ही इसका भार सँभाल लेंगी और मुझे इससे छुट्टी दिला देंगी। सर्वशक्तिमान् ईश्वरसे मेरी प्रार्थना है कि वह महिलाओंको यह भला काम सँभालनेकी शक्ति और साहस दे।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू १०-९-१९२७

४२७. भाषण: चि० रं० दासके बारेमें, मद्रासमें

९ सितम्बर, १९२७

मित्रो,

महाजन सभाको यह व्यक्ति-चित्र भेंट करनेके लिए मैं श्री सत्यमूर्ति, और इतना बहुमूल्य चित्र प्राप्त करनेके लिए महाजन सभाको बधाई देता हूँ। और यदि यह अनुचित न हो तो मैं इसका अनावरण करनेका सम्मान प्राप्त करनेके उपलक्ष्यमें अपने-आपको भी बधाई देना चाहूँगा। इस सम्मानको मैं अपना सौभाग्य तो मानता हूँ, पर साथ ही मैं आपको यह बतलाये बिना भी नही रह सकता कि मुझे इसमें कुछ अटपटापन महसूस हो रहा है, सो इसलिए कि मैं जिनके चित्रका अनावरण करने जा रहा हूँ, उन्होंने स्वयं ही मेरे चित्रका अनावरण किया था। इस सबमें कहीं कुछ असंगति जरूर है। मैं यह नही कहता कि इस संयोगके पीछे किसीका कुछ हाथ है; पर ऐसा संयोग बन पड़ा है, इससे तो इनकार नही ही किया जा सकता। चूँकि देशबन्धुने मेरे व्यक्ति-चित्रका अनावरण किया था और चूँकि उनको व्यक्ति-चित्र भेंट किये जानेके अवसरपर म मद्रासमें मौजूद था, इसे देखते हुए मेरी ओर लोगोंका ध्यान न जाना असम्भव ही था। इस तरह देखनेपर यह सब उपयुक्त ही लगता है। लेकिन इस सबके बावजूद कुछ चीजें ऐसी होती हैं जिनपर हमारा वश नहीं चलता,

फिर भी जो हमारे मनको किंचित् खिन्न कर देती है। मैंने आपको जो तथ्य बतलाया है, उसने सचमुच मेरे उत्साहको कम कर दिया है। उसके कारण मेरे लिए यह कठिन हो गया है कि मैं देशबन्धुके बारेमें अपने हार्दिक उद्गार व्यक्त कर सकूँ; पर जो भी हो, यह भूमिका तो मुझे यथाशक्ति निभानी ही है।

इस समारोहको कुछ राजनीतिक रंग दे दिया गया है। मैं स्वयं अपनेको और आपको भी उससे ऊपर उठाना चाहता हूँ। भारतके मुक्ति-दूतोंकी पंक्तिमें देशबन्धुका नाम सदा-सदाके लिए अजर-अमर रहेगा; जबतक भारत रहेगा, देशबन्धुका नाम भी रहेगा। इसमें सन्देहकी तनिक भी गुंजाइश नहीं। मुक्ति-दूतका पद पाना काफी बड़े सम्मानकी बात है, पर देशबन्धु इससे कहीं ऊँचे सम्मानके दावेदार और उसके अधिकारी भी थे। उनके जीवनका यह रहस्य मुझपर तब जाकर खुला जब वे अपने जीवनके बिलकुल आखिरी दिनोंमें थे। आपने उसे अभी-अभी सुना है। श्री सत्यमूर्तिने जो शानदार पत्र पढ़कर अभी सुनाया है, उसमें यह पूर्व-घोषणा[1] मौजूद है। देशबन्धुकी सारी शक्तिका स्रोत उनकी आध्यात्मिकता थी; और मैं उनकी आध्यात्मिकताको उनकी राजनीतिसे कहीं बड़ी चीज मानता हूँ। उनका मत था कि उनकी राजनीति उनकी आध्यात्मिकतापर निर्भर थी और आध्यात्मिकता ही उसका प्रेरणा-स्रोत थी। एक बात मैं पहले भी कई बार कह चुका हूँ। मेरा खयाल है कि मैंने एक दूसरे मुक्ति-दूत दिवंगत लोकमान्य बाल गंगाधर तिलकके बारेमें लिखते या बोलते हुए कहीं यह बात कही थी। मैंने कहा था कि भारतके महानतम सपूतोंमें से कुछका यह दुर्भाग्य रहा है कि उनको अपनी मातृभूमिकी खातिर अपनी एक कम महत्त्वपूर्ण अभिलाषाको साकार करनेके लिए कहीं अधिक बड़ी महत्त्वाकांक्षाकी बलि चढ़ानी पड़ी है। यदि लोकमान्य तिलक भारतमें और फिर वर्तमान युगमें पैदा न हुए होते, तो संसार उनको एक उद्भट साहित्यिकके रूपमें मानता, पर इससे भी उनके साथ न्याय न होता। उनको धर्मका एक ऐसा महान् अध्येता माना जाता, जो हमको 'स्मृतियाँ' दे सकता था, और प्राचीन मान्यताओंकी अत्यन्त सजीव और आधुनिक व्याख्या कर सकता था। यही उनकी सर्वाधिक मनोवांछित महत्त्वाकांक्षा थी; परन्तु उनको अपने सामने पड़े राजनीतिक कार्यके पीछे इस महत्त्वाकांक्षाकी बलि चढ़ा देनी पड़ी और अपने जीवनके सबसे महत्त्वपूर्ण कार्यको फुर्सतके समयतक ही सीमित करना पड़ा। उनकी सर्वाधिक शक्ति और स्फूर्ति भारतकी राजनीतिक मुक्तिके काममें ही खप गई। यही देशबन्धुके साथ भी हुआ। मुझे उनसे परिचयका सौभाग्य लाहौरमें प्राप्त हुआ था। हम दोनों एक प्रतिवेदन तैयार करनेमें लगे थे। मुझे याद है कि

१. १९ अप्रैल, १९२५ के इस पत्रके अन्तिम अनुच्छेदमें कहा गया था: "ऐसा नहीं, भाई सत्यमूर्ति, मुझे तो लगता है कि मैं एक हारा-टूटा आदमी हूँ। मुझे तो लगता है कि मेरा काम खतम हो चुका है और जैसे उस पारसे मुझे कोई बार-बार बुला रहा है। बड़ी इच्छा है कि यह सारा संघर्ष और चिन्ता त्यागकर कहीं एकान्तमें जा बैठूँ। निश्चय ही जीवनके अन्तिम कुछ वर्ष — शायद कुछ ही वर्ष — ईश्वरको समर्पित कर देने चाहिए। अब यह काम नई पीढ़ीको सँभालना चाहिए। सस्नेह, आपका
चि० रं० दास"

उस कामसे थोड़ा भी समय मिलनेपर वे मेरे साथ आध्यात्मिक चर्चा करने लगते थे। हम दोनों मानव-जीवनके लिए शाश्वत मूल्य रखनेवाले विषयोंकी चर्चा और विचार किया करते थे। मुझे याद है कि उन्होंने एक-दो बार मेरे सामने कहा था कि वे जितने सम्यक् रूपसे ये काम करना चाहते थे, नहीं कर पाते।

मैं स्वीकार करता हूँ कि मैं देशबन्धुको तब उतनी अच्छी तरह नहीं समझ पाया था जितनी अच्छी तरह मैंने दार्जिलिंगमें उनके अन्तिम क्षणोंमें समझा। दार्जिलिंगमें मैं उनके सबसे अधिक निकट पहुँच गया था; और उनके साथ बिताये वे कुछ दिन मेरी स्मृतिमें एक अमूल्य थातीकी भाँति सुरक्षित हैं। हाँ, लाहौरमें मैंने अनजाने ही उनके साथ एक अन्याय कर दिया था। वहाँ मेरे मनमें क्षण-भरके लिए ऐसा खयाल आ गया था कि उनकी आध्यात्मिकता, जैसा कि मैंने भारतके अनेक प्रख्यात सपूतोंमें देखा है, उनके लिए केवल एक मनबहलावकी ही चीज है। लेकिन हमारी मित्रता — यदि मित्रता कह सकूँ तो — जैसे-जैसे परिपक्व होती गई, मैं उनके निकटतर पहुँचता गया और मुझे महसूस हुआ कि उनके हृदयमें भी मेरे लिए स्थान है। फिर भी कुछ भ्रम रह गये थे। मगर ईश्वरकी इच्छा थी कि उनकी आँखें बन्द होनेसे पहले ही ये भ्रम दूर हो जायें। उसे यह बात बरदाश्त नहीं थी कि एक सत्यान्वेषी एक इतने भले आदमीके बारेमें किसी भ्रम या गलतफहमीमें रहे। मैंने जान-बूझकर 'महान्' शब्दका प्रयोग नहीं किया है — इसलिए कि मेरी नजरोंमें भलमनसाहतके बिना महानता किसी कामकी नहीं और मेरा खयाल है कि देशबन्धुकी नजरोंमें भी ऐसी महानताका कोई मोल नहीं था। इस प्रकार मुझे उनके हृदयमें प्रवेश करने, उन्हें और उनकी श्रद्धाको पूरी तरह समझनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ।

उनमें दुःसाहसपूर्ण त्यागकी क्षमता थी और उनमें दुःसाहसपूर्ण शौर्य था। परन्तु इस शोभायुक्त दुःसाहसिकताका स्रोत वास्तवमें उनकी गहनतर आध्यात्मिकता ही थी। दार्जिलिंगमें उन्होंने मुझसे स्वयं कहा था कि उनको तबतक संतोष नहीं होगा और वे तबतक अपना काम पूरा हुआ नहीं मानेंगे जबतक कि उन्होंने अपने हृदयमें जो आध्यात्मिक निधियाँ सँजो रखी थी, वे भी भारतको सर्व-सुलभ नहीं हो जाती। उनकी इस अभिलाषाका पूरा होना भाग्यमें नहीं बदा था, पर इसमें उनका अपना कोई दोष नहीं था। आप शायद नहीं जानते होंगे कि उनके स्वभावमें कैसी बालसुलभ सरलता थी। उनके हृदयकी इस विचित्र सरलताको देखकर मैं दंग था, उनकी अपनी जीवन-संगिनी दंग थीं। आध्यात्मिक शान्तिकी खोजमें उन्होंने अपना गुरु एक ऐसे व्यक्तिको बनाया था जो शिक्षाका जो अर्थ हम लगाते हैं, उस अर्थमें नाम-मात्रको ही शिक्षित था। परन्तु देशबन्धुने आध्यात्मिक अनुभूतिसे पैदा होनेवाली वास्तविक और स्थायी शान्ति प्राप्त करनेके लिए अपनी उसी दुःसाहसिकतासे काम लिया और उस ओर आगे बढ़नेमें इस बातकी परवाह नहीं की कि उनके मित्र उनकी हँसी उड़ा रहे थे। इससे अधिक विवरण देनेकी धृष्टता मैं नहीं करूँगा। मैंने आपको ठीक उतना विवरण दे दिया है जितनेके आधारपर आप मेरी तरह विश्वास कर

सकें कि देशबन्धु के निधनके साथ हम केवल एक महान् पुरुष, भारतके एक महानतम देशभक्तसे ही वंचित नहीं हो गये, बल्कि हमने एक महान् आध्यात्मिक गुरु भी खो दिया।

आप सबको राजनीतिसे ऊपर उठानेकी कोशिश मैंने इसलिए भी की है कि मैं जानता हूँ कि यदि उनकी आत्मा इस सभाकी कार्यवाहीकी साक्षी है तो आपके सामने मैं जो उद्‌गार व्यक्त कर रहा हूँ, उनसे वह पूरी तरह सहमत होगी। भारतके एक अन्य देशभक्त ने—और अब वे भी हमारे बीच नहीं रहे—एक बार यह विचार व्यक्त किया था कि प्रत्येक भारतीयके जीवनमें एक ऐसा समय अवश्य आता है जब वह निरे राजनीतिक संघर्षसे ऊब जाता है और वह हर चीजको आध्यात्मिक और जीवन्त रूपसे नैतिक बुनियादोंपर खड़ी करनेकी कोशिश करने लगता है। यदि हम नैतिकताको उसके सही अर्थमें लें, तो नैतिकता और आध्यात्मिकतामें कोई भेद ही नहीं है। यह तो आजकल ही हम, न जानें कैसे, इन दोनोंमें भेद करने लगे हैं और इसलिए मैंने नैतिकताके साथ यह क्रिया-विशेषण 'जीवन्त रूपसे' लगा दिया है। मैंने यह बात कई वर्ष पहले सुनी थी, लेकिन उसके बादसे मैं उनके कथनको इसी प्रकार अधिकाधिक चरितार्थ होते देखता आ रहा हूँ।

मैंने एक खास उद्देश्यसे ही यह बात उठाई थी। उद्देश्य यह है: हमारी यह राजनीतिक अभिलाषा अवश्य हो कि हम देशकी आजादीके लिए जियें। आज राजनीतिक महत्त्वाकांक्षा रखे बिना तो किसी भी सच्चे भारतीयका जीवित रहना असम्भव है; इसलिए कि भारतकी राजनीतिक परतन्त्रताका एक दुर्भाग्यपूर्ण परिणाम यह हुआ है कि देश आध्यात्मिक रूपसे परतन्त्र भले ही न हो गया हो, लेकिन उसमें आध्यात्मिक निष्क्रियता तो आ ही गई है। आज हममें आध्यात्मिकताका आवरण-मात्र रह गया है; उसका सार तो लगता है जैसे बिलकुल सूख गया हो। हमें इस भ्रममें नहीं रहना चाहिए कि हमारी यह राजनीतिक अभिलाषा ही भारत-वर्षको, जिसे हम अपने मनको तुष्ट और प्रसन्न करनेके लिए कर्मभूमि, देवभूमि कहते हैं; अपने गतव्यपर पहुँचा सकेगी। हमें मनमें ऐसे किसी भ्रामक विश्वासको घर नहीं करने देना चाहिए कि आध्यात्मिकतापर आधारित हुए बिना भी कोई राजनीतिक सन्देश हमारी इस पुण्यभूमिके काम आ सकता है या हमारी जनताके हृदयमें पैठ सकता है। यदि हमें किसी भी राजनीतिक सन्देशसे सुदूरस्थ ग्रामोंको सचमुच स्थायी तौरपर अनुप्राणित करना हो, तो उस सन्देशको आध्यात्मिकताके व्यापक आधार-पर स्थित होना चाहिए। इस सन्दर्भमें सभाके अध्यक्ष द्वारा किया गया अनुरोध मुझे याद आता है। उन्होंने कहा था कि लगता है जैसे मैंने राजनीतिकी उपेक्षा की है। बादमें, उन्होने अपनी भूल सुधारी और कहा था: 'नहीं, उपेक्षा नहीं की।' मैं उनका भूल-सुधार स्वीकार करता हूँ। मैंने राजनीतिकी उपेक्षा नहीं की। पर मेरा ख्याल है कि देशबन्धुके साथ बैठने-उठनेका और लोकमान्य तथा अन्य अधिकांश नेताओंके साथ बार-बार चर्चा करनेका सौभाग्य मिलनेसे मैं भारतकी स्वतन्त्रता-प्राप्तिका रहस्य

समझ गया हूँ। और यह रहस्य पा जानेपर मैं अब अपना सारा समय राजनीतिको आध्यात्मिकताके साँचेमें ढालनेमें लगाता हूँ। मुझे अपने इस सिद्धान्तका खुलासा करना ही पड़ेगा, चाहे लोग मुझे गलत ही समझें। स्पष्ट पूछे जाने पर, मुझे यह कहनेमें तनिक भी संकोच नहीं हुआ था कि स्वतन्त्रताकी वेदीपर तो नही, पर हाँ, सत्यकी वेदीपर मैं अपने भारत देशकी भी बलि चढ़ा सकता हूँ। लेकिन इसमें एक रहस्य छिपा हुआ है; वह यह कि सत्यसे मेल न खानेवाली स्वतन्त्रता तो कोई स्वतन्त्रता ही नही है। पर जो भी हो, मैंने जब यह लिखा था[1] तो कुछ मित्रोंको बड़ा अखरा था और कुछ मित्र क्षुब्ध भी हो उठे थे। मुझे मालूम था। पर मैं कर क्या सकता था? मैं जो महसूस करता हूँ वही तो कह सकता हूँ; नहीं तो मेरे जीवनका सचमुच कोई अर्थ नही रह जायेगा। इसलिए मैं आज अभी जिस अवसरकी चर्चा की गई थी, उस अवसरपर कही गई देशबन्धुकी सुन्दर उक्तिको ही दोहरा रहा हूँ। उन्होंने कहा था कि गांधीजीके लिए मेरे हृदयमें अपार स्नेह होते हुए भी मुझे करना तो वही पड़ेगा जो मेरी आत्माको स्वीकार होगा, वह नही जो वे चाहेंगे या करनेके लिए कहेंगे।[2] कोई भी इन्सान इससे अधिक कुछ नही कर सकता। मैं भी नही कर सकता — मैं जानता हूँ। मेरी आत्मा जब उन चीजोंको स्वीकार कर लेगी जिन्हे आप राजनीतिक मानते हैं, तो फिर मैं आपके बुलावेकी राह नही देखूँगा, मैं आगे बढ़कर उस लक्ष्यके लिए काम करने लगूँगा। पर जबतक मेरी आत्मा उन चीजोको स्वीकार नही करती तबतक तो मुझे देशबन्धु और उनके पूर्ववर्ती नेताओं द्वारा सौंपी गई निधियोंके बारेमें — आध्यात्मिक निधियोंके बारेमें — ही सोचकर संतोष करना पड़ेगा और अपने इस विश्वासपर दृढ़ रहना पड़ेगा कि पाश्चात्य देशोसे मिली सारी राजनीति भारतके लिए तबतक निरर्थक ही सिद्ध होगी जबतक कि हम उसे आध्यात्मिकताके साँचेमें नही ढाल लेते, भले ही पश्चिममें वह राजनीति कितनी ही कारामद रही हो।

और मैं इसे अपना परम सौभाग्य मानता हूँ कि अब, जबकि मैं मद्रासको छोड़ने-वाला हूँ, मुझे न केवल एक ऐसे व्यक्तिके चित्रका अनावरण करनेका अवसर मिला जिसकी स्मृति मेरे लिए अत्यन्त ही प्रिय और अन्तरंग है, बल्कि साथ ही देशबन्धुके जीवनोद्देश्यको जिस रूपमें मैंने समझा है, उस रूपमें उसकी व्याख्या करनेका भी सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ। मैं अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक इस चित्रका अनावरण करता हूँ।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, १०-९-१९२७

१. सम्भवतः *यंग इंडिया*से लिए गया वह अंश जो खण्ड ३२, पृष्ठ ५८८ पर दिया गया है।

२. इसी हॉलमें गांधीजीकी मूर्तिका अनावरण करते हुए चि० रं० दासने कहा था: "मैंने महात्मा गांधीका अनुसरण इसलिए किया कि मेरी आत्माको यह चीज स्वीकार थी। लेकिन जिस चीजको मेरी आत्मा स्वीकार नहीं करेगी, उससे मैं कभी सहमत नहीं होऊँगा। महात्माजीके लिए मेरे मनमें अत्यन्त सम्मान, बल्कि कहिए, श्रद्धा है, लेकिन मैं कभी अपनी आत्माको नहीं कुचल सकता। महात्माजी इस चीजको जानते थे और मेरा विश्वास है कि इसके लिए वे मेरा सम्मान भी करते थे।"

४२८. भाषण: सेंट टॉमस माउंट, मद्रासमें

९ सितम्बर, १९२७

बहनो और भाइयो,

आपके भेंट किये मानपत्रों[१] और थैलीके लिए मैं आभारी हूँ। इन मानपत्रोंको सभामें पढ़नेका अपना अधिकार छोड़कर आपने ऐसे वक्त मेरे समयकी बचत की है जब मेरे पास समयकी बड़ी तंगी है। इसके लिए भी मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। मैं संघम्‌को उसके कल्याणकारी सार्वजनिक कार्योंके लिए बधाई देता हूँ। मैं देखता हूँ कि आप कुछ पाठशालाएँ चला रहे हैं, नगरकी सफाईका काम और यहाँतक कि अपने यहाँकी सड़कोंपर प्रकाशका प्रबन्ध करनेका कार्य भी कर रहे हैं। निस्सन्देह यह सार्वजनिक सेवाकी सही दिशा है, लेकिन मैं यह आशा भी करता हूँ कि आप यह सब काम सम्यक् रीतिसे कर रहे हैं। सफाईका काम ऐसा है कि अगर वह बिलकुल ठोस न हो तो कभी-कभी उससे लाभकी अपेक्षा हानि ही अधिक होती देखी गई है। सुव्यवस्थित ढंगसे किये गये कामोंसे ही स्थायी और लाभदायक सेवा हो सकती है। मुझे यह देखकर खुशी हुई कि आपने चरखेका काम भी हाथमें ले लिया है। आशा करता हूँ कि आपके यहाँ सभी चरखे नियमित रूपसे चलते रहेंगे। मैं यह भी आशा करता हूँ कि आप चरखोंको अच्छी हालतमें रखेंगे। इस प्रदेशमें रहनेवाला प्रत्येक व्यक्ति खादी धारण न करे, ऐसा कोई कारण तो मेरी समझमें नहीं आता।

यदि यहाँ कुछ ऐसे लोग भी हैं जो शराबखोरीकी लतके शिकार बने हुए हैं तो आशा है, आप उनको शराब छोड़नेके लिए प्रेरित करेंगे। जो लोग नहीं पीते, उनसे मेरा अनुरोध है कि वे अपने शराबी पड़ोसियोंके पास जायें और उनको बड़ी ही नरमीके साथ समझा-बुझाकर उन्हें इस गन्दी आदतसे विमुख करें। आशा है कि आप एक ऐसा आन्दोलन खड़ा करेंगे जो देशमें पूर्ण मद्य-निषेध होनेतक लगातार चलता रहेगा।

जैन भाइयोंकी ओरसे भेंट किया गया मानपत्र पाकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। उनसे भी मैं यही कहूँगा कि आजकी परिस्थितिमें अहिंसाके सिद्धान्तको केवल चरखेके द्वारा ही व्यापकतम रूपमें अमलमें लाया जा सकता है। चरखेकी कल्पना देशके सुदूरतम गाँवों और ज्यादासे-ज्यादा जरूरतमन्द लोगोंके लाभके लिए ही की गई है और यही इस प्रवृत्तिका उद्देश्य है। जिस अहिंसा, जिस प्रेमसे एक साथ करोड़ों क्षुधार्त्त लोगोंका कल्याण हो, उस अहिंसासे बड़ी अहिंसा और क्या हो सकती है, उस प्रेमसे श्रेष्ठ प्रेम और क्या हो सकता है!

१. जैनियों, आम जनता और पोट्टु जन ऊक्षिपार संघम् (समाज सेवा संस्था) द्वारा भेंट किये गये मानपत्र।

मुझे यह देखकर प्रसन्नता हुई कि आपके सभी मानपत्रोंमें अस्पृश्यताका उल्लेख किया गया है। आशा है कि आप कमसे-कम समयमें इस कलंकसे अपनेको मुक्त कर लेंगे। कोई भी धर्म इस बातको कभी बरदाश्त नहीं कर सकता कि किसीको अमुक परिवारमें जन्म लेनेके कारण अस्पृश्य माना जाये।

मैं इधर हालमें बाल-विवाहों और बाल-विधवाओंकी ओर आपका ध्यान बार-बार आकर्षित करता रहा हूँ। अब समय आ गया है कि माता-पिता अपने बच्चोंके प्रति अपने कर्त्तव्योंको भली-भाँति समझ लें। कच्ची उम्रकी लड़कियोंकी शादी कर देना उचित नहीं माना जा सकता और न तथाकथित पतिके मरनेपर किसी बालिकाको बाल-विधवा मान लेना ही उचित ठहराया जा सकता है। माता-पिताका परम कर्त्तव्य है कि वे अपने परिवारकी ऐसी बाल-विधवाओंका शीघ्र ही पुनर्विवाह कर दें। दक्षिण भारतमें देवदासियोंकी भी एक अनैतिक और अमानवीय प्रथा मौजूद है। हम सीताका नाम लेते हैं। इसलिए हमसे उम्मीद की जाती है कि हमारे समाजमें महिलाओंका सम्मान होगा। यदि हम उनका सम्मान करना चाहते हैं तो हमें अपने समाजको शीघ्र ही इस कलंकसे मुक्त कर लेना चाहिए।

आप जानते ही हैं कि मुझे आज रात ही मद्राससे चल देनेकी तैयारी करनी है, इसलिए आप मुझसे अपनी अन्य महत्त्वपूर्ण समस्याओंके बारेमें इससे अधिक कुछ सुननेकी अपेक्षा नहीं रखेंगे। इस तरहकी बड़ी-बड़ी सभाओंमें मैं उन लोगोंको हमेशा एक अवसर और देता हूँ जिन्होंने थैलीके लिए पहले चन्दा न दिया हो और जो सभामें मौजूद हों। यदि वे चाहें और यदि उनको खादीपर विश्वास हो, तो अपनी शक्तिभर चन्दा दे सकते हैं।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, १०-९-१९२७

४२९. भेंट: 'हिन्दू' के प्रतिनिधिसे

९ सितम्बर, १९२७

यदि मैं भ्रममें नहीं हूँ तो कहूँगा कि खादीकी भावनाने अब अपनी जड़ें जमा ली हैं।

उपर्युक्त शब्द महात्माजीने, मद्रास-निवासके दौरान वहाँकी वस्तु-स्थितिको देखकर उनके मनपर जो छाप पड़ी, उसे 'हिन्दू' के प्रतिनिधिको सार-रूपमें बताते हुए कहे।...

मद्रासमें मैंने जितने भी भाषण दिये हैं, लगभग सभीका मुख्य विषय खादी ही रही है। फिर भी, अगर यह मेरे मनका भ्रम न हो तो कहूँगा कि कहीं भी श्रोतागण उससे ऊबते नहीं नजर आये। सभाओंमें खादी न पहनकर आनेवाले सभी लोगोंने इसके लिए माफी माँगी है, लोगोंने चन्दे भी बड़ी उदारतासे दिये हैं और खादीकी बिक्री भी उत्साहवर्धक रही है।

व्यक्तिगत स्नेहके विषयमें तो मुझे कुछ कहना ही नहीं चाहिए। मद्रास ने तो १८९६ में ही मुझपर स्नेहकी ऐसी वर्षा की थी जिसकी मुझे कोई उम्मीद नहीं थी और न मैं किसी तरह उसके लायक था। वह मद्रासमें मेरा पहला आगमन था और व्यक्तिगत रूपसे मैं यहाँ किसीको नहीं जानता था। उस अवसरपर मद्रासने तो बस आँख मूँदकर ही मुझपर विश्वास कर लिया।

मुझे उम्मीद है कि मद्रासके लोग आगामी कांग्रेसकी तैयारीका काम अन्तिम क्षणोंमें करनेके लिए टालते नहीं रहेंगे। सर ब्रिजेन्द्रनाथ शीलने दक्षिणके लोगोंकी बुद्धिमानीकी बड़ी प्रशंसा की है। यदि कांग्रेस अधिवेशनके पूर्व वे ब्राह्मणों और अब्राह्मणोंका झगड़ा निपटा लें तो यह उनकी बुद्धिमानीका व्यावहारिक परिचय होगा। और यह कहनेकी तो जरूरत ही नहीं कि मैं यहाँके लोगोंसे कांग्रेस-सप्ताहके दौरान खादीके प्रति अपने उत्साह और निष्ठाका उत्तम परिचय देनेकी अपेक्षा रखता हूँ।

इसके बाद प्रतिनिधिने कुमारी मेयोकी उस पुस्तकके[1] विषयमें महात्माजीके विचार जानने चाहे, जिसपर आज भारतीय जन-मानस इतना अधिक उत्तेजित है। महात्माजीने कहा :

मैंने अभी-अभी कुमारी मेयोकी पुस्तककी एक लम्बी समीक्षा[2] लिखकर फुरसत पाई है। मैं बराबर कामके बोझसे दबा रहा हूँ, इसलिए यह काम मैं बहुत कठिनाईसे ही पूरा कर पाया हूँ। मैंने बहुत अनिच्छापूर्वक इस काममें हाथ लगाया, और वह किया भी इसीलिए कि बहुत-से लोग मुझसे इसपर अपनी राय जाहिर करनेका आग्रह कर रहे थे। मेरे पास पुस्तकको पढ़नेका समय नहीं था, लेकिन जब मैंने देखा कि इसपर अपनी राय जाहिर किये बिना नहीं चल सकता तो मैं उसे आद्योपान्त पढ गया। और उसको पढ़नेके बाद मुझे लगा कि अच्छा ही किया, क्योंकि मैंने देखा कि उस पुस्तकमें लिखी बातोंका एक विस्तृत उत्तर देना मेरे लिए जरूरी था। उस महिलाने मेरे लेखोंके हवाले बहुत ज्यादा दिये हैं, इसलिए जनता और लेखिकाके प्रति मेरा कर्तव्य था कि मैं पुस्तकपर अपनी राय बिलकुल साफ-साफ जाहिर कर दूँ।

वह लेख 'यंग इंडिया' में छपने जा रहा है। आप यह तो नहीं ही चाहेंगे कि मैं उसका मजमून आपको पहले ही बता दूँ।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, १०-९-१९२७

१. मदर इंडिया।
२. देखिए "नाली-निरीक्षककी रिपोर्ट", १५-९-१९२७।

४३०. तार : मीराबहनको

कडलूर
१० सितम्बर, १९२७

मीराबाई
सत्याग्रहाश्रम, वर्धा

ईश्वरको धन्यवाद कि तुम्हें ज्वरसे छुटकारा मिला। पूनाके बारेमें लिखा पत्र नहीं मिला। जमनालालजी जो कहें, जैसा आदेश दें वैसा करो। सस्नेह।

बापू

अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ५२७३) से।
सौजन्य : मीराबहन

४३१. भाषण : वाई० एम० सी० ए०[1], कडलूरमें

१० सितम्बर, १९२७

अध्यक्ष महोदय और भाइयो,

आपके मानपत्र और खादी-कोषके लिए विद्यार्थियोंकी ओरसे भेंट की गई थैली के लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। रेवरेंड श्री लैंगने मुझे आपके सामने बोलनेको आमन्त्रित किया। भाषणका विषय उन्होंने यह रखा कि व्यक्ति कैसा जीवन जिये, जिससे वह अपना और अपने पड़ोसियोंका उन्नयन कर सके। आमन्त्रित करते हुए उन्होंने मुझे यह भी बता दिया कि अगर मैं सन्तोंकी किसी सभामें बोलनेकी आशासे आऊँगा तो मुझे निरी निराशा ही होगी। चूँकि मैंने ऐसी कोई आशा नहीं रखी थी, इसलिए मेरे लिए अब निराश होनेका भी कोई कारण नहीं है। लेकिन सच मानिए, अगर आप सब सन्त होते तो मैं बड़ी परेशानीमें पड़ जाता। मैं खुद ही बहुत अपूर्ण, दोषसे भरा हुआ आदमी हूँ, और यह मैं झूठा शिष्टाचार दिखानेके लिए नहीं कह रहा हूँ, बल्कि वही कह रहा हूँ जो सच है। तो अगर मेरे भाषणसे कोई लाभ हो सकता है तो वह उन्हीं लोगोंके सामने भाषण करनेसे हो सकता है जो मेरी ही तरह अपूर्ण हैं। हाँ, मैं यह अवश्य कहूँगा कि मैं निरन्तर, प्रति क्षण पूर्णता प्राप्त करनेके लिए प्रयत्नशील हूँ और मुझे अपने-आपको ऐसे अपूर्ण पुरुषों और स्त्रियोंके

१. यंग मैन्स क्रिश्चियन एसोसिएशन (युवा ईसाई संघ)।

बीच पाकर बड़ी खुशी हो रही है जो मेरी ही तरह पूर्ण बननेको प्रयत्नशील हैं। मुझे इस बातमें बड़ी तसल्ली मिलती है कि उनमें से बहुत-से लोगोंके प्रयत्न सफल हुए हैं। और इसलिए यदि मेरे प्रयत्नके पीछे भी श्रद्धा और एकान्त निष्ठा है तो कोई कारण नहीं कि मैं भी उन्हींकी तरह सफल न होऊँ। और मुझे लगता है कि उस प्रयत्नके दौरान मैंने कुछ खास बातें जानी हैं। अब मैं उन बातोंके परिणामोंको, जिनसे भी मिलता हूँ, उन्हें अपनी सामर्थ्य-भर बतानेकी कोशिश कर रहा हूँ। इनमें से एक बात तो यह है कि व्यक्तिके विकास और समूहके विकासमें कोई अन्तर नहीं है, और इसलिए समूहका विकास पूरी तरहसे व्यक्तिके विकासपर निर्भर है। अतएव, अंग्रेजीकी यह उक्ति ठीक ही है कि किसी जंजीरकी मजबूतीका अन्दाजा उसकी सबसे कमजोर कड़ीको देखकर ही लगाया जा सकता है। और यदि हम इस उक्तिके सम्पूर्ण सत्यको हृदयंगम कर लें तो हम देखेंगे कि इस सभामें उपस्थित कोई भी नौजवान अपनेको शेष लोगोंसे अलग करनेकी आशा नहीं कर सकता और अपने-आपको उन सबसे ऊपर नहीं मान सकता। जब मैं अपने स्कूली जीवनके बारेमें सोचता हूँ तो मेरे सामने उन लड़कोंकी तसवीर साफ-साफ उभर आती है जो महज इस कारण कि वे कक्षामें होशियार समझे जाते थे, बड़े घमंडी थे। और उनमें कुछ लोग खेल-कूदमें तेज होने और शारीरिक दृष्टिसे सबल होनेके कारण दूसरोंपर धौंस जमाते थे। लेकिन, मुझे यह भी पता चल गया कि उनका अहंकार उन्हें विनाशकी ओर लिये जा रहा है, क्योंकि कमजोर लड़कोंने उनकी उद्धतताको देखते हुए अपने-आपको उनसे बिलकुल अलग कर लिया और उन्हें अस्पृश्य मानने लगे और इस तरह उन्होंने वास्तवमें अपने ही हाथों अपनी कब्र खोदी। इसलिए, व्यक्तिके विकासकी सबसे पहली शर्त यह है कि उसमें अतीव विनम्रता हो। और अगर आज हम अपने ही देशमें कुछ लोगोंको दम्भपूर्वक अपने-आपको श्रेष्ठ कहते और दूसरोंको अस्पृश्य और ऐसे व्यक्ति मानते देखते हैं जिनकी छायातक से छूत लगती है तो जो लोग इस झगड़ेसे अलग खड़े हैं वे देख रहे हैं कि ये लोग भी अहंकारवश अपने ही हाथों अपनी कब्र खोद रहे हैं। इस तरह आप देखेंगे कि व्यक्तिके विकास और समूहके विकासमें पूरा सामंजस्य है और मैं उन सभी विद्यार्थियों, सभी युवकों और युवतियोंसे, जो देशकी सेवा और बड़े-बड़े काम करना चाहते हैं, यही बात कहता हूँ: "सबसे पहले अपनी ओर ध्यान दो, अपनेको सँवारकर सेवाके लिए उपयुक्त साधन बनाओ।" मैं मानता हूँ कि जबतक किसी युवक या युवतीका अपना दामन पाक न हो अर्थात् उसका अपना हृदय शुद्ध न हो तबतक वह समाजकी सेवा नहीं कर सकती। लेकिन यह कहना आसान है कि हमारा हृदय शुद्ध है, पर अपने हृदयको शुद्ध बनाना बहुत कठिन है। इसीलिए ईसाई धर्मकी जीवन-योजनामें हम 'नया जन्म' नामकी चीज देखते हैं। हिन्दू धर्ममें उसका पर्याय द्विज है। आज द्विज शब्दका जो अर्थ है, वह भाषाका दुरुपयोग है। ईसाइयोंमें भी नये जन्मके साथ कुछ ऐसा अर्थ जुड़ गया है जैसा अर्थ, जब यह शब्द पहले-पहल प्रयोगमें आया था, तब बिलकुल नहीं था। यह नया जन्म न किसी बाह्य परिस्थितिसे आता है और न मुँहसे कुछ स्वीकार कर

लेनेसे आ जाता है। यह तो व्यक्तिके अन्दर होनेवाला एक परिवर्तन है, जो साफ लक्षित होता है। इस परिवर्तनको सम्बन्धित व्यक्ति भी लक्ष्य कर पाता है और उसके पड़ोसी भी। यह हृदयका परिवर्तन है और इसके लिए मुँहसे कुछ कहनेकी जरूरत नहीं होती। और ऐसा सम्पूर्ण परिवर्तन हार्दिक प्रार्थना और इस तथ्यके निश्चित और जीवन्त बोधसे ही आ सकता है कि हमारे भीतर कोई प्रबल शक्ति विद्यमान है। इसे हम भक्तियोग कहते हैं और अंग्रेजीमें इसका मतलब है भक्तिके द्वारा ईश्वरका सान्निध्य प्राप्त करना। और उस योगकी साधना किसी दस-वर्षीय बालकके लिए भी सम्भव है और कब्रमें पैर लटकाये वृद्धके लिए भी। जब सचमुच वह परिवर्तन आ जाता है तब फिर व्यक्तिके विपथगामी होनेका सवाल ही नहीं उठता। लेकिन, अक्सर होता ऐसा है कि लोग भ्रमवश ऐसा समझ लेते हैं कि मुझमें वैसा परिवर्तन हो गया है, यद्यपि वास्तवमें होता नहीं। इसलिए, अपने मनको समझानेके लिए हमने एक नया शब्द 'प्रत्यावर्तन' (बैकस्लाइडिंग) गढ़ लिया है। सच तो यह है कि यह तथाकथित परिवर्तन वास्तवमें परिवर्तन था ही नहीं, वह तो केवल एक भ्रम था। और इस बातको समझकर जहाँ प्रौढ़ स्त्री-पुरुष बराबर प्रयत्नशील और विनम्र रहते हैं, वहाँ जो लड़के-लड़कियाँ यह कहने लगते हैं कि हम तो अब बिलकुल बदल गये, वे आत्मवंचनाके शिकार होते हैं। इसलिए जब कभी हम अपने अन्दर ऐसी कोई ऊर्ध्वमुखी प्रवृत्ति या कुछ अच्छा करनेकी वृत्ति लक्षित करें तो हमें आशान्वित तो होना चाहिए, किन्तु अपना प्रयत्न बन्द नहीं करना चाहिए। "मैंने अपने भीतरके शैतानको निकाल बाहर कर दिया है, अब मैं कभी गिर ही नहीं सकता" अहंकारपूर्वक मनमें ऐसा सोचनेके बजाय हमें अपने-आपसे कहना चाहिए, "कौन जाने, वास्तविकता क्या है? मुझे बराबर सावधान रहना चाहिए।" ईश्वरने मनुष्यको एक वचन दे रखा है, जो कभी टूट नहीं सकता। वह यह कि अपनी आत्माके उत्थानके लिए किया गया कोई भी प्रयत्न कभी भी पर्याप्त रूपसे पुरस्कृत हुए बिना नहीं रह सकता। लेकिन, मैं जानता हूँ और यह सोचकर मुझे बड़ा दुःख होता है कि मैं अपने सामने उपस्थित युवकोंसे यह सब कह तो रहा हूँ, लेकिन अपना मन्तव्य उन्हें समझा नहीं पा रहा हूँ। मुझे ऐसा लगता है कि मैं विद्यार्थियोंसे एक विदेशी भाषामें अपनी बात कह रहा हूँ। मेरा मतलब यह नहीं है कि मैं अंग्रेजीमें बोल रहा हूँ, बल्कि यह है कि एक ऐसे शब्दके बारेमें बोल रहा हूँ जो आप लोगोंके लिए बिलकुल नया है, विदेशी है। ईश्वर शब्दका कोई जीवन्त प्रभाव, कोई जीवन्त अर्थ ही नहीं रह गया है। मुझे याद है, अभी कुछ ही महीने पहले एक नौजवानसे मेरी बातचीत हुई थी। वह काफी कुशाग्रबुद्धि और किसी हदतक पढ़ा-लिखा भी था। बातचीतके दौरान उसने कहा था कि "आप ईश्वरके बारेमें इतना बोलते हैं, इतना अधिक लिखते हैं, लेकिन मैं आपको साफ बता दूँ कि आप जो-कुछ कहते हैं, मेरे हृदयमें उसकी कोई प्रतिध्वनि नही होती।" मेरे एक अंग्रेज मित्र हैं, जिनका सम्बन्ध इंग्लैंडके अंग्रेजीके एक श्रेष्ठ दैनिकसे है। उन्होंने भी हालमें ही मुझे एक पत्र लिखा। उसमें इन्होंने अस्पृश्यता, मद्य-निषेध और सामाजिक सुधारसे सम्बन्धित मेरे कार्योंको बड़ी

प्रशंसा की थी, किन्तु 'यंग इंडिया' के पृष्ठोंसे, उन्हींके शब्दोंमें, ईश्वरकी जो बू आती है, उसपर उन्होंने बड़ी अरुचि प्रकट की थी। और आपको बता दूं कि ये अंग्रेज भाई कोई बुरे आदमी नहीं, बल्कि नैतिक दृष्टिसे बहुत अच्छे और दृढ़ व्यक्ति हैं। यही हाल उक्त भारतीय नौजवानका भी है। उससे मेरा सम्पर्क बराबर बना हुआ है और इसलिए मैं जानता हूँ कि अभी वह जीवित है। वह पूर्णताको प्राप्त करनेके लिए निरन्तर प्रयत्न कर रहा है। लेकिन, दोनों यही मानते हैं कि संसारमें पुरुषार्थ करनेके अलावा और किसी चीजका कोई महत्त्व ही नहीं है और जरूरत भी सिर्फ इसी चीजकी है, न इससे कमकी और न ज्यादाकी। इस सबके उत्तरमें मैं सिर्फ इतना ही कह सकता हूँ कि मैं कमसे-कम पिछले ४० वर्षोंसे बहुत जागरूकतासे और सोच-समझकर लगातार प्रयत्न करता आया हूँ, किन्तु मेरा इतने दिनोंका अनुभव मुझे यही बताता है कि जहाँ अपनी ओरसे पुरुषार्थ करना नितान्त आवश्यक है, वहाँ अपने-आपमें वह कुछ नहीं है। ईश्वरकी जीवन्त कृपाके बिना वह सारा पुरुषार्थ धूलमें मिल जाता है। इस बारेमें अपने कई अन्तरंग मित्रोंके उदाहरण मैं जानता हूँ। उन्होंने पुरुषार्थ करके, जैसा कि उन्हें लगा, अपने-आपको अच्छी तरह गढ़ा, लेकिन उन्होंने पाया और मैं भी इस चीजको साफ देख रहा हूँ कि चूंकि उनके पुरुषार्थको इस जीवन्त कृपाका प्राणप्रद स्पर्श नहीं प्राप्त था, इसलिए वे क्षण-भरमें एक जीती-जागती कब्र-जैसे बनकर रह गये। अभी उन्हें अपनी स्थितिका ठीक भान भी नहीं हो पाया था कि वे सूक्ष्म प्रलोभनोंके जालमें घिर गये और उन्होंने पाया कि वे उसको काट सकनेमें बिलकुल समर्थ नहीं हैं। इसलिए, चाहे आप मेरी भाषा समझें या न समझें, चाहे आप ईश्वर शब्दका महत्त्व जानें या न जानें, भारतके आप युवकों और युवतियोंको देनेके लिए वास्तवमें मेरे पास दूसरा कोई सन्देश नहीं है। आपमें जो थोड़ी-बहुत बुद्धि है, उसके भ्रममें आप न पड़ें, बल्कि दुनियाके सभी कोनोंमें, तमाम विभिन्न क्षेत्रोंमें काम करनेवाले उन लोगोंके अनुभवोंको कुछ विश्वासकी दृष्टिसे देखें, जो एक स्वरमें कहते हैं कि ईश्वर है। मैं आपसे सच कहता हूँ, आपको भरोसा दिलाता हूँ कि यदि आप धैर्यसे काम लेंगे और उस विश्वासका प्रयोग करेंगे तथा आपका मन चाहे कुछ कहे, आपकी बुद्धि आपके विश्वासके खिलाफ विद्रोह ही क्यों न करे, आपके आस-पासका वातावरण चाहे जैसा हो, फिर भी यदि आप यह मानेंगे कि आपके अन्दर ईश्वर विद्य-मान है और आप अपने इस विश्वासपर दृढ़ रहेंगे तो आप देखेंगे कि किसी-न-किसी दिन यह आपके लिए एक जीवन्त सत्य बन जायेगा और यह आपका ऐसा सुरक्षाकवच होगा जो सभी तरहके प्रहारोंसे आपको बचाये रखेगा। अगर आप यह जानना चाहते हैं कि ऐसा विश्वास आपको क्या-कुछ दे सकता है तो आप मेरी बात सुनिए, मानिए। ईश्वर आप सबको, मैं जो-कुछ कहता रहा हूँ, उसे किसी हदतक समझनेकी शक्ति दे।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, १२-९-१९२७

४३२. भाषण : कडलूरकी सार्वजनिक सभामें[1]

१० सितम्बर, १९२७

मित्रो,

मैं आपको इन तमाम अभिनन्दनपत्रों, जिनमें आज सुबह नगरपालिकासे प्राप्त अभिनन्दनपत्र भी शामिल है, तथा इन थैलियोंके लिए धन्यवाद देता हूँ। कुछ मित्रोंने कल मुझे और मेरे सहयात्रियोंको रातको आराम नहीं करने दिया और मेरे सहयोगी कार्यकर्त्ताओंका तो जीना ही मुश्किल कर दिया। उनमें से जो लोग यहाँ उपस्थित हों उनसे मैं कुछ शब्द कहना चाहता हूँ। उन्होंने तीन स्टेशनोंपर, जहाँ ट्रेन थोड़ी देरके लिए रुकी, पूरी ट्रेनको लगभग घेर लिया। उन्होंने आग्रह किया कि मैं खिड़कीपर आऊँ। दूसरी ओर मैंने आग्रह किया कि मैं उनकी माँग नहीं मानूँगा। अतः वे गुस्सा हो गये, बहुत ज्यादा गुस्सा हो गये और उनका गुस्सा उनपर उतरा जो मुझे उस सारे शोर-गुलसे बचानेकी कोशिश कर रहे थे। थकानसे थकनाचूर मैं बिस्तरपर लेटा हुआ था, लेकिन इन आवाजोंको सुननेकी परेशानीके कारण मैं जागता ही रहा। कभी-कभी यह कहना कठिन होता था कि यह प्रेमपूर्ण शोर-गुल है या शुद्ध गुंडागर्दी है। मैं जानता हूँ कि मेरे ये रक्षक प्रसन्न होते, अगर मैं उठकर खिड़कीपर चला आया होता; लेकिन मेरे लिए इस माँगको पूरा करना सचमुच सम्भव नहीं था और मैं चाहूँगा कि जो लोग अपने स्नेहका प्रदर्शन कर रहे थे वे कमसे-कम रातको आरामके समय मुझे तंग नहीं करेंगे। मैं इसे सच्चा प्यार नहीं कहता। यह अन्धा प्यार है। यह प्यार लुटानेवाले के लिए और जिसपर यह प्यार लुटाया जाये उनके लिए भी हानिकर है। मैं अपने इन अन्धे प्रेमियोंको उस उक्तिका पालन करनेकी सलाह दूँगा जिसे मैंने इस स्थलपर आते समय रास्तेमें लिखा देखा था। अर्थात् "गांधीको प्यार करना है तो गरीबोंसे प्यार करो।" मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि इस बड़ी सभामें उपस्थित गरीबसे-गरीब स्त्री या पुरुषसे कहीं ज्यादा गरीब करोड़ों लोग इस देशमें हैं। मैं चाहूँगा कि आप समझ लें कि मैं यह दौरा बड़ी जबरदस्त कठिनाइयों और अपने कुछ डाक्टर मित्रोंकी चेतावनियोंके बावजूद कर रहा हूँ। लेकिन मैं अनुभव करता हूँ कि मैं यह दौरा अपनी अन्तरात्माकी प्रेरणापर कर रहा हूँ। इस अहातेमें कई स्थानोंपर धन एकत्र करनेमें मेरा हाथ रहा है। यह धन उन लोगोंके लिए है जिनके बारेमें मैंने अभी-अभी आपसे चर्चा की है। इकट्ठा होनेवाले हर रुपयेका मतलब है गाँवके १६ गरीब कत्तैयोंके लिए एक जूनका भोजन। मैंने यह निश्चित करनेकी कोशिश की कि क्या विभिन्न स्थानोंपर एकत्र की गई थैलियाँ मेरे निजी तौरपर उन्हें प्राप्त करनेके लिए वहाँ गये बगैर मुझे भेजी जा सकती

1. इसे यंग इंडियामें "तीन भाषण" शीर्षकके अन्तर्गत प्रकाशित किया गया था। इसका पहला और अन्तिम अनुच्छेद १२-९-१९२७ के हिन्दूमें प्रकाशित रिपोर्टसे लिया गया है।

है या नही तो पता चला कि यह सम्भव नही है। मेरी तरह आप भी विश्वास कीजिए कि मैं जो-कुछ कर रहा हूँ वह ईश्वरके निमित्त किया जानेवाला काम है और मुझे लगता है कि उन थैलियोको, जिन्हें तिजोरियोंमें बन्द करके रख दिया गया है, निकलवानेके लिए मुझे अपनी जानकी जोखिम उठाकर भी उन स्थानोकी यात्रा करनेका प्रयत्न करना चाहिए। इसलिए मैं आपसे और तमाम जनतासे कहूँगा कि वे मुझमें जो थोडी-बहुत शक्ति बची है, उसे सुरक्षित रखनेमें मेरे साथ सहयोग करें ताकि मैं स्वेच्छासे स्वीकार किये गये इस कामको पूरा कर सकूं। और यही कारण है कि मैंने अपने सहयोगी कार्यकर्त्ताओंको सख्त ताकीद कर दी है कि मुझे जो आरामका समय मिलता है, उस समय वे भेंट-मुलाकातके लिए किसीको कोई समय न दें। इस आरामकी मुझे जहाँ-कही भी मैं जाता हूँ, बहुत जरूरत होती है। आप मुझे यह लम्बी व्यक्तिगत कैफियत देनेके लिए क्षमा करेंगे। वस्तुतः यह कोई निजी कैफियत नही है। यह उन करोड़ों मूक लोगोंके एवजमें किया गया अनुरोध है जिनके लिए मैं धन इकट्ठा कर रहा हूँ। इसके साथ ही मैं उस सन्देशपर आता हूँ, जिसे मैंने वाई० एम० सी० ए० की सभामें नवयुवकोंके सामने बोलते हुए दिया था। आज सुबह मैं व्यक्तिके विकासके बारेमें बोल रहा था, और मैंने कहा कि व्यक्तिका विकास, यदि वह सच्चा है तो, उस समाजके विकासमें प्रकट होना चाहिए जिसका कि वह व्यक्ति सदस्य है। किसी भी आन्तरिक क्रियाका एक प्रकट बाह्य स्वरूप होता है। जिस बीजके अन्दर विकसित होनेकी क्षमता होती है, वह जमीनमें जड़ें फेंककर थोड़े ही समयके अन्दर एक सुन्दर वृक्षके रूपमें बाहर प्रकट हो जाता है। वह बीज, जिसमें कोई जीवन-शक्ति और विकसित होनेकी क्षमता नही होती, भूमिके नीचे ही मर जाता है। यही बात व्यक्तियों और राष्ट्रोके साथ भी है। यदि उनके अन्दर वास्तविक जीवन और चरित्रका विकास करनेकी क्षमता हो तो वह कुछ सुनिश्चित और स्पष्ट दिखनेवाले बाह्य लक्षणोंमें प्रकट होनी चाहिए। और इसी ढंगकी बात करते हुए, १९१८ में मैंने एक आविष्कार किया था — आप उसे पुनराविष्कार कह सकते हैं — कि भारत एक सुगठित समाज या एक राष्ट्र है और यदि उस समाजके अंग अर्थात् सब व्यक्ति एक ही विचारसे अनुप्रेरित हो, और यदि उनके मनमें अपने हीनतम और तुच्छतम भाईके लिए कुछ भावना हो, तो उस भावनाको उन्हे किसी ऐसे रूपमें प्रकट करना चाहिए, जिसे प्रत्येक पुरुष और स्त्री, लड़की या लडका ग्रहण कर सके, अपना सके। इसीलिए आपने मुझे चरखेके सन्देशको, जिसे मैंने दरिद्रनारायणका सन्देश माना है, अनथक रूपसे प्रचारित करते और आपसे चरखेके लिए अपना सब-कुछ देनेका अनुरोध करते पाया है।

लेकिन मुझे अब नगरपालिकाके अभिनन्दनपत्रके महत्त्वपूर्ण अंशपर आ जाना चाहिए। आपने मेरा ध्यान ब्राह्मणों और अब्राह्मणोके बीच मौजूद तनावकी ओर दिलाया है और मुझसे उसका हल खोजनेको कहा है। एक अब्राह्मण होनेके नाते यदि मैं अपने प्राण देकर भी इस तनावको दूर कर सकता तो इसी क्षण कर देता। लेकिन ईश्वर तो बहुत मन्तीसे काम लेनेवाला स्वामी है। वह तड़क-भड़कवाली या सनसनीखेज

चीजोंसे कभी सन्तुष्ट नहीं होता। वह जल्दीमें किये गये प्राण-त्यागसे कभी सन्तुष्ट नहीं होता। वह तो शुद्धतम प्राणियोंकी ही बलि चाहता है, और इसलिए मुझे और आपको तो जितने दिनका जीवन मिला है उतने दिन हमें किसी-न-किसी तरह जीवनकी गाड़ीको खींचते ही चलना है। मैंने मद्रासमें अभी हाल ही में कहा था कि जब भी आप अपने विचार-विमर्शोंमें मुझे शामिल करना चाहेंगे या मेरी सलाह चाहेंगे, मुझे अपनी सेवामें प्रस्तुत पायेंगे। मेरे पास इस समस्याका कोई स्पष्ट हल नहीं है। मैं स्वीकार करता हूँ कि मुझे अभीतक यह भी मालूम नहीं है कि दोनों वर्गोंके बीच मतभेदके मुद्दे क्या हैं। मैंने कुछ अब्राह्मणोंसे, जो मुझसे नन्दी हिल्समें मिलने आये थे, इस विषयमें पता चलानेकी कोशिश की, और उन्होंने मुझसे वादा किया कि वे मेरी यात्राके बीच मुझसे मिलेंगे और मतभेदके सारे मुद्दे मेरे सामने रखेंगे। मैं आपके सामने स्वीकार करता हूँ कि इस सवालपर ब्राह्मण-पक्षका क्या कहना है, उसका भी मुझे कुछ पता नहीं है। ब्राह्मण बुद्धिमान तो हैं ही, अतः उन्हें यह भली भाँति पता है कि तमाम प्रश्नोंपर मेरे विचार क्या होंगे, और इसी-लिए मैं स्वीकार करता हूँ कि उन्होंने मुझे नहीं बताया कि मतभेद क्या हैं। जैसा कि आप जानते हैं, हालाँकि मैं स्वयं एक अब्राह्मण हूँ, लेकिन मैं अब्राह्मणोंकी अपेक्षा ब्राह्मणोंके साथ और उनके बीच ज्यादा रहा हूँ और इसीलिए मेरे कुछ अब्राह्मण मित्र सन्देह करते हैं — औद उनका सन्देह करना क्षम्य है — कि मेरी धारणाएँ ब्राह्मण मित्रोंके विचारोंसे प्रभावित हैं। मेरे मनमें कहीं यह सन्देह छिपा हुआ है कि मेरे अब्राह्मण मित्र मानते हैं कि मुझसे इस समस्याके समुचित हलकी आशा नहीं की जानी चाहिए। इसलिए मैं अपनेको ऐसी सुखद स्थितिमें पाता हूँ जिसमें दोनों पक्षोंने मुझे अलग कर दिया है। यह स्थिति स्वास्थ्यकी मेरी वर्तमान दशाको देखते हुए मेरे लिए बहुत अनुकूल भी है। लेकिन इस सबके बावजूद मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मैं किसी भी वक्त किसी भी पक्षका निमंत्रण स्वीकार करनेके लिए सदैव तत्पर हूँ। और मैं आपको यह भी विश्वास दिलाता हूँ कि मैं खराब स्वास्थ्यका बहाना बनानेकी कोशिश नहीं करूँगा।

लेकिन मेरे पास दोनों पक्षोंके लिए दो उत्कृष्ट प्रस्ताव हैं, जिन्हें मैं आपके सामने रख सकता हूँ। ब्राह्मणोंसे मैं कहूँगा: "यह देखते हुए कि आप ज्ञानके भण्डार और त्यागकी प्रतिमूर्ति हैं और आपने फकीरीका जीवन अपनाया है, मैं आपसे कहता हूँ कि अब्राह्मण लोग जो-कुछ भी चाहते हैं वह उन्हें दे दीजिए, और वे आपके लिए जितना कुछ छोड़ दें, उतनेसे सन्तुष्ट रहिए।" लेकिन मैं जानता हूँ कि आधुनिक ब्राह्मण एक अब्राह्मण द्वारा की गई धर्मकी इस व्याख्याको फौरन अस्वीकार कर देगा। अब्राह्मणोंसे मैं कहता हूँ: "यह देखते हुए कि आपका संख्या-बल अधिक है, यह देखते हुए कि आपके पास धन-बल है, मैं पूछता हूँ कि आप किस बातकी चिन्ता करते हैं? अस्पृश्यताका आप जैसा विरोध कर रहे हैं, वह अवश्य करना चाहिए, लेकिन अपने बीच एक नई अस्पृश्यताको जन्म देनेका अपराध मत कीजिए। अपनी जल्दबाजी-में, अपने अन्वेषनमें ब्राह्मणोंके प्रति अपने क्रोधमें आप उस पूरी संस्कृतिको अपने

पैरों तले रौंदनेका प्रयत्न कर रहे हैं, जिसे आपने सदियोंकी विरासतके रूपमें पाया है। केवल कलम हिलाकर, या सम्भव है, तलवारके बलपर आप हिन्दू धर्मको उसकी बुनियादसे उखाड़नेके लिए आतुर हो गये हैं। हिन्दू धर्मके वाह्यावरण, उसके छिलके और छूंछसे असन्तुष्ट होकर — यह असन्तुष्ट होना ठीक ही है — अब आप सार अर्थात् स्वयं जीवनसे भी हाथ धो बैठनेकी जोखिममें हैं। आप अधीरतावश ऐसा सोचते प्रतीत होते हैं कि वर्णाश्रमके पक्षमें कहनेको कुछ है ही नहीं। आपमें से कुछ लोग यह भी सोचनेके लिए तैयार हैं कि मेरा वर्णाश्रमका बचाव करनेका कारण मेरा स्वयं एक भ्रमका शिकार होना है। आप ऐसा सोचनेकी गलती न करें। जो लोग ऐसा कहते हैं उन्होंने यह समझनेकी तकलीफ भी नहीं की है कि वर्णाश्रमसे मेरा क्या अभिप्राय है।

यह एक सार्वभौम नियम है, जिसे हिन्दू धर्ममें विस्तारपूर्वक बताया गया है। यह आध्यात्मिक अर्थशास्त्रका एक नियम है। पश्चिमके राष्ट्रोंको और स्वयं इस्लामको अनजाने ही इस नियमका पालन करना पड़ता है। इसका श्रेष्ठता या हीनतासे कोई सरोकार नहीं है। खान-पान या विवाहकी प्रथाएँ वैष्णव धर्मका कोई अभिन्न अंग नहीं हैं। ये नियम आपके और हमारे पूर्वज ऋषियोंने खोजे थे। उन्होंने देखा कि यदि उन्हें अपने जीवनका सर्वोत्तम भाग अपने निमित्त नहीं, बल्कि ईश्वर और संसारके निमित्त अर्पित करना है तो उन्हें आनुवंशिकताका नियम स्वीकार करना होगा। इस नियमका उद्देश्य है मनुष्यकी शक्तियोंको जीवनमें अधिक ऊँचे लक्ष्योंकी प्राप्तिके लिए मुक्त करना। इसलिए सच्चे अब्राह्मणोंको उस नीवको ही कमजोर करनेकी कोशिश नहीं करनी चाहिए जिसपर वे बैठे हुए हैं, बल्कि उनका प्रयत्न उस नीव-पर जमी हुई धूलको साफ करना और उसे बिलकुल स्वच्छ करना होना चाहिए। आप निश्चय ही अस्पृश्यताके उस दैत्यसे अपनी पूरी शक्तिके साथ लड़िए जिसे गलतीसे आज वर्णाश्रमके नामसे जाना जाता है; उसमें आप मुझे अपने साथ कन्धा मिलाकर काम करता पायेंगे। मेरा वर्णाश्रम ऐसा है कि मैं हर ऐसे व्यक्तिके साथ खा सकता हूँ जो मुझे स्वच्छ भोजन दे, चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान, ईसाई हो या पारसी अथवा अन्य कुछ। मेरे वर्णाश्रम धर्ममें इस बातकी पूरी गुंजाइश है कि कोई परिया लड़की मेरे घरमें मेरी बेटीकी तरह रहे। मेरे वर्णाश्रममें कई पंचम परिवार शामिल हैं जिनके साथ मैं बहुत ही आनन्दपूर्वक भोजन करता हूँ और जिनके साथ भोजन करना सौभाग्यकी बात मानता हूँ। मेरा वर्णाश्रम संसारके बड़ेसे-बड़े शक्ति-सम्पन्न राजाके सामने सिर झुकानेसे इनकार करता है, लेकिन मेरा वर्णाश्रम मुझे ज्ञानके सामने, शुद्धताके सामने, किसी भी ऐसे व्यक्तिके सामने, जिसमें मैं ईश्वरके दर्शन करता हूँ, अपना सिर झुकानेको मजबूर करता है। इसलिए आप ऐसे शब्दोंकी दुहाई मत दीजिए जो आज सर्वथा अर्थहीन और अव्यवहार्य हो गये हैं। ब्राह्मणको आप जितना भी भला-बुरा कहना चाहें, कहें, लेकिन ब्राह्मण धर्मके विरुद्ध न कहें। और भले ही आप मुझे गलत समझें या मुझे ब्राह्मण समर्थक ही क्यों न समझें, मैं आपके सामने यह कहनेका साहस करता हूँ कि हालाँकि ब्राह्मणोंको अपने अनेक पापोंका प्रायश्चित्त

करना है और उनके अनेक पाप ऐसे हैं जिनके लिए उन्हें ऐसा दण्ड मिलेगा जिससे औरोंको भी सबक मिले, लेकिन आज भी भारतमें ऐसे ब्राह्मण हैं जो हिन्दू धर्मकी प्रगतिको ध्यानपूर्वक देख रहे हैं और अपनी पूरी पवित्रता तथा अपने तपपूर्ण जीवनसे उसकी रक्षा करनेका प्रयत्न कर रहे हैं। उन्हें आप शायद जानते भी न होंगे। उन्हें नामकी चिन्ता नहीं है। वे किसी पुरस्कारकी अपेक्षा नहीं रखते। उनका काम ही उनका पुरस्कार है। वे इस तरह काम करते हैं; क्योंकि उन्हें काम करना ही है। यह उनका स्वभाव है। हम और आप जी भरकर उन्हें गालियाँ दें, लेकिन वे उनसे अलिप्त ही रहते हैं। ऐसी धारणा मत बना बैठिए कि मैं ब्राह्मणोंकी, जो भारतमें वकील, मन्त्री, यहाँतक कि हाई कोर्टोंमें जज भी हैं, वकालत कर रहा हूँ। मैंने मनमें उनकी बात भी नहीं सोची है। अतः ब्राह्मणों और अब्राह्मणोंको, बल्कि उस हर व्यक्तिको, जो भारतकी प्रगति चाहता है, पहले अपना घर स्वच्छ-साफ करना चाहिए। इसलिए मेरा आप अब्राह्मणोंको, जिन्होंने अपना विवेक अभी नहीं खोया है, यह सुझाव है कि आप स्पष्ट रूपसे साफ-साफ सोचें कि आप किस बातसे दुःखी हैं, और फिर उन शिकायतोंको दूर करनेके लिए अपनी सामर्थ्य-भर, पूरी शक्तिसे लड़िए। मैं यह स्वीकार करता हूँ कि मैंने आज शाम एक बौद्धिक चर्चा छेड़ दी है। ब्राह्मणों और अब्राह्मणोंके झगड़ेकी अच्छाई-बुराई न जाननेके कारण मैं और कुछ कर भी नहीं सकता। लेकिन मेरी नम्र रायमें मैंने दोनों वर्गोंके लिए कार्य करनेके रास्तेका संकेत कर दिया है और यह आपपर है कि आप अपनी सामर्थ्य-भर मेरे सुझावोंका जैसा चाहें वैसा उपयोग करें।

लेकिन इस बड़ी समस्यासे निपटनेकी कोशिशमें आप उन छोटी-छोटी चीजोंको न भूलें जिनके लिए मैं तमिलनाडका दौरा कर रहा हूँ। वे आपको भले छोटी प्रतीत हों, लेकिन मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि वे इतनी बड़ी हैं कि आपमें से हरएकका पूरा ध्यान उधर लगनेपर ही काम चलेगा। उन चीजोंके बारेमें मैं विस्तारसे नहीं कहूँगा, संक्षेपमें ही यहाँ उनकी चर्चा कर देता हूँ।

खादीका जिक्र मैं पहले ही कर चुका हूँ। यदि आप एक मतसे काम करें तो पूर्ण शराबबन्दी आपके यहाँ आज लागू हो सकती है। हम आपसमें झगड़ रहे हैं; और हमारे हजारों देशवासी शराबके अभिशापसे मुक्त न हो पानेके कारण अपनेको शैतानके हाथों बेचे डाल रहे हैं। हमें उनकी यह अधोगति होते देखते रहनेके लिए अपने पड़ोसियोंके प्रति घोर उपेक्षा या उदासीनताका रवैया रखनेके अपराधमें ईश्वरके समक्ष जवाब देना पड़ेगा। अभी कल ही आपसे तथा उन सबसे, जिनसे मुझे मिलना होगा, एक अब्राह्मण महिलाने देवदासी प्रथा समाप्त करनेको कहा था। जरा सोचिए कि मानव किस प्रकार अपनी बहनोंसे अमानवोचित व्यवहार करते हैं। आप ब्राह्मणों और अब्राह्मणोंके बीच तनावको दूर करनेकी कोशिशमें उन समस्याओंको न भूल जायें जो हमारे समाजको खोखला किये दे रही हैं। और मैं चाहे ब्राह्मणको देखूँ या अब्राह्मणको, और चाहे मैं अस्पृश्योंको अस्पृश्योंके वर्गके रूपमें देखूँ, मैं पाता हूँ कि हम सब एक कमजोरी और गलतीके समान रूपसे शिकार हैं — यानी कि हम अपनी आतुरतामें आत्म-

सहायता या आत्मशुद्धिकी बात नहीं सोचते; बस एक दूसरेपर कीचड़ उछालते रहते हैं। चूंकि परस्पर एक-दूसरे पर कीचड़ उछालनेके इस काममें भाग लेनेकी मेरी कोई इच्छा नहीं है, इसलिए मैं तो बस उन छोटी-छोटी चीजोंको सामने लेकर आता हूँ जिनके बारेमें मैंने आपसे कहा है। आप भले कुछ भी करें या न करें, मैं आपसे उन चीजोंको न भूलनेका अनुरोध करूँगा। मैं एक बार फिर आपके अभिनन्दनपत्रों तथा थैलियोंके लिए, तथा उससे भी ज्यादा, मेरी बातें कृपापूर्वक सुननेके लिए आपको धन्यवाद देता हूँ। यह सन्देश जिस भावनाके साथ आपको दिया गया है उस भावनाको समझनेमें ईश्वर आपकी सहायता करे।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, २२-९-१९२७

४३३. विद्यार्थियोंकी कसौटी

यह जानकर मेरी छाती फूल उठती है कि विद्यार्थीगण संकट-निवारणके काममें शरीर-श्रम करके अच्छी तरह हाथ बँटा रहे हैं। उज्ज्वल भविष्यके निर्माणकी आशा उन्हींपर निर्भर है। यदि यह नींव कच्ची रह जाये तो इमारत एक आडम्बर है। मैं आशा करता हूँ कि कोई भी विद्यार्थी अथवा विद्यार्थिनी ऐसा नहीं मानती होगी कि हम पढ़ना छोड़कर कहाँसे इस संकटमें पड़ गये। यदि उनके मनमें ऐसी कोई चिन्ता होती हो तो उनकी यह सेवा संकोच और अनिच्छासे की हुई सेवा मानी जायेगी और उस हदतक कच्ची कहलायेगी।

ऐसी सेवा ही सच्ची शिक्षा है। यह सेवा करते हुए विद्यार्थियोंको जो अनुभव मिल रहा है, वह किसी शाला अथवा महाविद्यालयमें नहीं मिल सकता। विद्यार्थी सिपाही है। सिपाहीकी सिपाहगिरी शुद्ध मनसे आज्ञापर अमल करनेमें है। इसी प्रकार विद्यार्थीकी विद्या शुद्ध हृदयसे गुरुकी आज्ञा-पालन करनेमें है, फिर गुरुकी आज्ञामें दोष भले ही हो। उस दोषकी सजा विद्यार्थी नहीं भोगता। उसने शुद्ध मनसे आज्ञा-पालन किया, इसलिए वह अलिप्त रहेगा और फिर भी हृदयसे आज्ञा-पालन करनेका अप्रत्याशित फल तो उसे मिलेगा ही। फलेच्छा-रहित होकर काम करनेका अर्थ यह नहीं है कि कर्म निष्फल जाता है। कर्मका फल तो मिलेगा ही। गुरुकी आज्ञाके पालनमें विद्यार्थीका कर्म हुआ — आज्ञाका फलेच्छा-रहित पालन। उसका शुभ परिणाम विद्यार्थीकी आत्मोन्नतिके रूपमें प्रगट होता है। पालनकी प्रक्रियाका प्रेरक तो गुरु है, इसलिए यदि गुरुकी आज्ञा दोषयुक्त हो, तो उसका फल गुरुको भोगना पड़ेगा। हम यहाँ इस बातपर विचार नहीं करेंगे कि गुरुको अपने दोषका फल कब भोगना पड़ेगा अथवा कैसे भोगना पड़ेगा।

यहाँ तो मेरा हेतु केवल विद्यार्थियों द्वारा की गई सेवाके प्रति अपनी प्रसन्नता प्रकट करना और उन्हें प्रोत्साहन देना था। उसी प्रसंगमें मैंने अपनी बुद्धिके अनुसार विद्यार्थियोंके धर्मका भी थोड़ा विचार कर लिया।

[गुजरातीसे]
नवजीवन, ११-९-१९२७

४३४. "क्या किया जाये ?"

एक सज्जन पूछते हैं :

> मैं रेलगाड़ीके एक डिब्बेमें चढ़नेकी कोशिश कर रहा हूँ। भीतर कोई व्यक्ति है जो जगह होनेपर भी दरवाजा बंद रखता है और मुझे भीतर नहीं आने देता। ऐसी स्थितिमें मुझे क्या करना चाहिए ?

इसके तीन उपाय हैं :

१. स्टेशनके कर्मचारियोंसे शिकायत करें।

२. यदि शरीरबल और हिम्मत हो तो ताकतके साथ दरवाजा खोलकर भीतर चले जायें और यदि वह व्यक्ति, जो वहाँ मालिक बना बैठा है, लड़े तो उसके साथ लड़ें।

३. यदि हिम्मत और आत्मबल हो तो उक्त स्वेच्छाचारी व्यक्तिको सगा भाई मानकर उससे विनय की जाये और यदि वह विनयको भी न माने तो अपना अधिकार छोड़कर दूसरी जगह खोजें। यदि जगह न मिले तो वह गाड़ी भी छोड़ दी जाये। विश्वास रखना चाहिए कि इस प्रकारके बरतावमें उक्त स्वेच्छाचारीका और हमारा भला ही है। स्वेच्छाचारी व्यक्ति कब समझ पायेगा, इस बातका विचार करना हमारा अधिकार नहीं है।

तीनों उपाय ग्राह्य हैं, किन्तु तीसरा उपाय शुद्ध धार्मिक उपाय है। पहले दो उपाय व्यावहारिक हैं, तथापि अधर्म नहीं हैं।

एक चौथे उपायकी भी कल्पना कर सकता हूँ। स्वयं कायर बनकर, लाचार होकर लड़नेपर मार खानेके डरसे दूसरा स्थान खोजना। यह अधर्म है और इसलिए ग्राह्य उपायोंमें इसे स्थान नहीं है।

दूसरा प्रश्न है :

> मैं रेलगाड़ीमें बैठा हूँ। किसी स्टेशनपर पानी पीनेके लिए नीचे उतरा। इसी बीच कोई दूसरा व्यक्ति आकर मेरी जगह बैठ गया और अब उठनेसे इनकार करता है। ऐसी अवस्थामें क्या करना चाहिए ?

मुझे ऐसा लगता है कि इस प्रश्नका जवाब भी पहले प्रश्नके उत्तरमें आ जाता है।

रेलगाड़ीमें तो ऐसे प्रसंग निरन्तर आते रहते हैं। मुझे भी अनेक बार इस परेशानीका सामना करना पड़ा है। मैंने हर बार तीसरा रास्ता ही अख्तियार किया है और उससे मुझे सन्तोष हुआ है। मुझे स्मरण है कि ज्यादातर तो मैं इस तरह स्वेच्छाचारीका हृदय पिघला पाया हूँ। कोई पाठक यह न माने कि मैं ठहरा महात्मा और इसलिए सम्बन्धित व्यक्तिने मुझे पहचान लिया और सीधा हो गया। मुझे जो अनेक प्रसंग याद हैं उनमें से अधिकांश तो तबके हैं जब मैं महात्मा नहीं बना था।

लेकिन तीसरा रास्ता अख्तियार करनेकी एक शर्त है। इस रास्तेका अवलम्बन करनेवाले में धर्मबुद्धि जाग्रत होनी चाहिए, अनुकरणके खयालसे इसका अवलम्बन नहीं किया जाना चाहिए। यदि स्वेच्छाचारीके प्रति मनमें क्रोध उत्पन्न हो, तो समझ लेना चाहिए कि तीसरा उपाय अभीतक स्वाभाविक नहीं बना है। धर्म तो अन्तरकी बात है। दूसरेका अनुकरण करनेसे धर्मका पालन होनेके बदले अपने पतनकी सम्भावना ही अधिक होती है। मैंने देखा है कि कई बार गुजरातकी अहिंसा कायरता और नपुंसकताका स्वरूप धारण कर लेती है। इसीलिए तीसरे उपायकी चर्चा करते हुए मुझे संकोच होता है और पहले दो उपायोंकी चर्चाकी जरूरत मुझे महसूस नहीं होती। यह कहना आवश्यक नहीं है कि पहले दोनों मार्ग बाधाहीन और विशाल हैं। तीसरा विकट है, संकीर्ण है और चढ़ते-चढ़ते दम फूल जाये, इतना ऊँचा है। इसलिए उसकी जितनी चर्चा की जाये, उतनी कम है। विशेषतः गुजरातमें और सामान्यतः सारे देशमें हम देखते हैं कि चौथा रास्ता अख्तियार किया जाता है, जो अधर्मका है। इसीलिए पहले दो रास्तोंका उल्लेख आवश्यक हुआ। जो पहले दो रास्तोंमें से किसी एकका अवलम्बन करेगा वह किसी-न-किसी दिन तीसरेपर भी आ सकता है। किन्तु जो चौथेका अवलम्बन करता है, उसके तीसरा सीख सकनेके विषयमें शंका है।

[गुजरातीसे]
नवजीवन, ११-९-१९२७

४३५. एक विद्यार्थीके प्रश्नोंके उत्तर

११ सितम्बर, १९२७

प्र० : १. सर्वोत्तम विद्या कौन-सी है?

उ० : आत्मज्ञान।

२. यौवनका भूषण क्या है?

ब्रह्मचर्य।

३. राष्ट्रकी संस्कृतिका सर्वश्रेष्ठ लक्षण क्या है?

सत्यनिष्ठा।

४. जीवनकी सार्थकता किस बातमें है?

अपनेको जाननेमें।

५. जीवनका श्रेष्ठ आदर्श क्या है?

सत्याग्रह।

६. स्त्रीका सर्वाधिक प्रशंसनीय गुण क्या है?

पवित्रता।

७. पुरुषका सर्वाधिक प्रशंसनीय गुण क्या है?

पवि ता।

८. आपकी प्रिय पुस्तक कौन-सी है?

'गीता'जी।

९. आपको सबसे ज्यादा प्रिय क्या है?

सत्य।

[गुजरातीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरी।

सौजन्य: नारायण देसाई

४३६. भाषण: चिदम्बरम्‌में आदि द्रविड़ोंके समक्ष[1]

११ सितम्बर, १९२७

स्वामी सहजानन्द और भाइयो,

आपने अपने मानपत्रकी एक प्रति मुझे पहले ही दे दी है, इसलिए मैं जानता हूँ कि उसमें क्या-कुछ कहा गया है। मानपत्रमें आपने बिलकुल ठीक कहा है कि नन्दनार[2] भारतके सत्याग्रहियोंमें एक देदीप्यमान नक्षत्र थे। मुझे इस मन्दिरके द्वारकी सीढ़ियोंका शिलान्यास करनेका अवसर दिया गया, इसे मैं अपना बहुत बड़ा सम्मान मानता हूँ। मैं आशा करता हूँ कि यह वास्तवमें एक ऐसा मन्दिर होगा जहाँ हम नन्दनारकी तरह ईश्वरके साक्षात् दर्शन कर सकेंगे और मैं भगवान्‌से प्रार्थना करता हूँ कि यह यहाँ आनेवाले हर व्यक्तिके लिए मुक्तिका मन्दिर साबित हो। लेकिन आपको यह समझना चाहिए कि नन्दनार अपना जीवन-रक्त देकर जिस मन्दिरमें प्रवेश करनेका प्रयत्न कर रहे थे, वह सिर्फ पत्थर और गारेका मन्दिर नहीं था। वे जिस मन्दिरमें प्रवेश करना चाहते थे, उसमें उन्होंने अपनी आत्माकी मुक्ति देखी थी। और उसी तरह इस मन्दिरके आप भक्तोंसे यह अपेक्षा की जायेगी कि अपना जीवन देकर आप आन्तरिक वातावरणको शुद्ध करेंगे। पत्थर और गारेका यह मन्दिर तो उस वातावरणका प्रतीक-मात्र है। आज तो, मैं जानता हूँ, बहुत-से मन्दिर, चाहे वे विष्णुके हों या शिवके, ईश्वरके मन्दिर हैं ही नहीं, यद्यपि उनमें हजारों तथाकथित ब्राह्मण रोज जाते हैं। आप इस मन्दिरको उन अनेक मन्दिरोंकी श्रेणीमें न आने दें जो इस पवित्र देशकी धरतीको कलंकित कर रहे हैं। लेकिन, यदि आप वैसा करना चाहते हों तो जो लोग इस मन्दिरके कर्त्ता-धर्त्ता होंगे, उन्हें क्रोधको अपने हृदयसे बिलकुल निकाल देना पड़ेगा। इसलिए, मुझे यह देखकर खुशी हुई कि आपने अपने मानपत्रमें ऐसा कुछ नहीं कहा है जिससे लगे कि आप हिन्दू धर्मको ही नष्ट कर देनेपर उतारू हैं। आज मैं कई स्थानोंमें लोगोंमें ऐसी वृत्ति

१. सभाका आयोजन नन्दनार स्कूलमें किया गया था।

२. एक "अस्पृश्य" भक्त, जिनकी गणना बादमें तमिलनाडके तिरेसठ शैव संतोंमें होने लगी।

देख रहा हूँ, लेकिन आप उसके अपवाद हैं। मुझे आपका यह विचार पसन्द आया कि आप तमाम हिन्दू परम्पराओंको चाहे वे बुरी हों अथवा न हों, कुचल नहीं देना चाहते। लेकिन, चूंकि आपने विवेकसे काम लेनेका निश्चय किया है और चूंकि आप अच्छी चीजोंको नहीं, सिर्फ बुरी चीजोंको ही नष्ट करना चाहते हैं, इसलिए सिर्फ अपने गुणके बलपर अपनी न्याय्य स्थिति प्राप्त करनेके आपके संकल्पके लिए आपको बधाई देता हूँ। आपका यह दावा बिलकुल सही है कि आप इस प्राचीन देशके मूल निवासियोंके वंशज हैं और यदि यह देश अधिकारकी दृष्टिसे किसीका है तो निश्चय ही आपका है और सबसे पहले आपका है। इसलिए आपको हर तरहके लिहाजकी अपेक्षा रखनेका अधिकार है। ऐसा लगता है कि आपने अपने अन्दर सुधार करके शक्ति प्राप्त करनेके लिए कमर कस ली है। अब मैं आपका ध्यान एक-दो बातोंकी ओर दिलाना चाहूँगा।

एक तो है शराबकी बुरी लत। लगभग हरएक आदि द्रविड़ उसका शिकार है। इसलिए आपको आदि द्रविड़ समाजको इस बुराईसे मुक्त करनेके लिए अपनी शक्ति-भर कोशिश करनी चाहिए। यदि मुझे गलत न मालूम हुआ हो तो कहूँगा कि आदि द्रविड लोग गो-मास भी खाते हैं। हिन्दू धर्म बड़ा सहिष्णु धर्म है। लेकिन सहिष्णु होते हुए भी वह अपने अनुयायियोंको गो-मास खानेकी अनुमति नहीं देता है। इसलिए जबतक एक-एक आदि द्रविड़ गोमास खाना और गोवध बन्द न कर दे तबतक आपको आन्दोलन करते रहना चाहिए। आप इस मन्दिरको एक ही साथ भक्तिका स्थान, विद्याका मन्दिर और ऐसा केन्द्र बना दीजिए जिससे निकली शक्ति हर द्रविड़को, फिर हर हिन्दूको और अन्तमें हर भारतीयको अनुप्राणित करे। आपने अपने मानपत्रमें कहा है कि जबतक अस्पृश्यताके अभिशापको मिटाया नहीं जाता तबतक खादी अपने-आपमें सफल नहीं हो सकती।

यह विचारोंकी एक उलझन है। जबतक इस देशके सभी लोग खादी नहीं पहनेंगे तबतक वास्तविक अस्पृश्यता कभी मिट नहीं सकती। मैं आपको बता दूं कि आज भी भारतमें ऐसे लोग हैं जो बहुत-से आदि द्रविड़ोंकी अपेक्षा अधिक गरीब और शोषित हैं। मैंने अपनी यात्राके दौरान जिन आदि द्रविड़ोंको देखा है, उनमें से क्या बहुतसे लोग भोजनके अभावमें दुःख नहीं सह रहे हैं? लेकिन, मैं भारतके अनेक हिस्सोंमें ऐसे बहुत-से लोग आपको दिखा सकता हूँ जो आदि द्रविड़ नहीं कहे जाते किन्तु जिन्हें दिनमें एक बार भी पेट-भर खानेको नहीं मिलता। आप जिस अस्पृश्यताकी शिकायत कर रहे हैं, उसकी तुलनामें उन करोड़ों दम तोड़ते मानवोंकी अस्पृश्यताको दूर करना ज्यादा जरूरी है। उनकी अस्पृश्यता तो आज हम अस्पृश्यताकी जिस समस्यासे घिरे हुए हैं, उससे कहीं अधिक गम्भीर किस्मकी है। इसलिए, आपके मानपत्रमें मैंने जब यह पढ़ा कि आप आदि द्रविड़ लड़कोंके लिए एक बुनाई-केन्द्र खोलना चाहते हैं तो मुझे बड़ी खुशी हुई। आपने मुझे इस बुनाई केन्द्रको सहायता देनेके लिए आमन्त्रित किया है। यह आमन्त्रण मुझे पसन्द आया। मेरी सहायता चाहनेवाले हर बुनाई केन्द्रको जो शर्तें पूरी करनी पड़ती हैं, उन्हें यदि

आप पूरा करेंगे तो मैं आपकी सहायता अवश्य करूँगा। उनमें से पहली और सबसे महत्त्वपूर्ण शर्त तो यह है कि बुनाई-केन्द्रमें सिर्फ हाथकता सूत ही बुना जाये। यदि आप सचमुच कुछ करना चाहते हों तो आप मन्त्री श्री एस० रामनाथनसे सम्पर्क स्थापित कीजिए। देशके इस हिस्सेमें अखिल भारतीय चरखा संघके प्रधान कर्त्ता-धर्त्ता वही हैं। आप उनके पास किसी भी समय पहुँच सकते हैं। आप देखेंगे कि वे अपनी शक्ति-भर आपकी हर तरहसे सहायता करनेको तैयार हैं। मेरे और उनके जीवनका उद्देश्य ही यही है। चूँकि आप इस मन्दिरको श्रद्धा-भक्तिका केन्द्र बनाने जा रहे हैं, इसलिए मैं आपके ध्यानमें दो बातें और लाना चाहूँगा। ये दोनों बातें अर्थात् संस्कृत और हिन्दीकी पढ़ाई हमारे बच्चोंके लिए जरूरी है। ये उनके जीवनमें बड़ी सहायक हो सकती हैं।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, १२-९-१९२७

४३७. भाषण : चिदम्बरम्‌की सार्वजनिक सभामें

११ सितम्बर, १९२७

अध्यक्ष महोदय और मित्रो,

मैं आपको इन सभी अभिनन्दनपत्रों और थैलियोंके लिए धन्यवाद देता हूँ। आपने इन सभी अभिनन्दनपत्रोंको न पढ़कर जो कृपा प्रदर्शित की है उसके लिए भी मैं आपको धन्यवाद देता हूँ, क्योंकि आप जानते हैं कि मुझे ७ बजेके फौरन बाद गाड़ी पकड़नी है और इसलिए मुझे अपनी बातें कम समयमें ही कह देनी हैं। इसलिए सभी अभिनन्दनपत्रोंको न पढ़नेसे होनेवाली समयकी बचत और भी ज्यादा सराहनीय है। मैं आपको बताता हूँ कि इस बातसे मुझे तनिक भी सन्तोष नहीं है कि मुझे इतने कम समयके अन्दर आपके बीचसे चला जाना होगा। श्री राजगोपालाचारीने 'यंग इंडिया'में जो सुन्दर कहानी लिखी थी उसके जरिये आपकी ख्याति मेरे यहाँ आनेसे पहले ही फैल चुकी थी। आपके इस नगरकी ख्यातिसे मैं परिचित हूँ। उसी समय मैंने निश्चय कर लिया था कि चिदम्बरम् एक तीर्थस्थान है और मुझे वहाँकी यात्रा करनी है। मैंने कभी सबसे पहला सत्याग्रही होनेका दावा नहीं किया। मैंने तो उस सिद्धान्तको लगभग एक सर्वव्यापक पैमानेपर लागू करनेका ही दावा किया है। फिर भी अभी यह देखना और सिद्ध होना बाकी है कि यह सिद्धान्त एक ऐसा सिद्धान्त है जिसे लाखों लोग सभी तरहसे व्यवहृत कर सकते हैं। इसलिए मैं जानता हूँ कि मेरा यह प्रयोग अभी तक तैयारी की ही अवस्थामें है। और इसलिए मैं सदैव नम्र रहता हूँ और मेरे पैर हमेशा धरतीपर जमे रहते हैं। विनम्रताकी ऐसी अवस्थामें जब मेरे ध्यानमें सत्याग्रहका कोई भी उदाहरण आता है तो मैं उससे उसी प्रकार चिपक जाता हूँ जिस प्रकार कि कोई बच्चा माँकी छातीसे चिपक जाता है। और

इसलिए जब मैं नन्दनारके बारेमें, उनके उदात्त सत्याग्रहके बारेमें और उनकी सफलताके बारेमें कोई कहानी सुनता या पढ़ता हूँ तो मेरा सर उनकी आत्मशक्तिके सामने झुक जाता है। जिस स्थानकी मिट्टी नन्दनारके चरणोंसे पावन हुई है, उस स्थानपर आ सकनेके कारण आज सारा दिन मैं बड़े गौरवका अनुभव करता रहा हूँ। अब कुछ ही मिनटके अन्दर मुझे इस स्थानको छोड़ना होगा तो मेरे दिलको तकलीफ होगी। लेकिन मुझे इस बातसे बहुत खुशी हुई और मैंने इसे बहुत बड़ा सम्मान माना कि मुझसे जो सबसे पहला काम करनेको कहा गया वह था उस मन्दिरके मुख्य द्वारका शिलान्यास करना जिसे उस महान् सन्तकी स्मृतिमें निर्मित किया गया है। मेरी कितनी इच्छा है कि चिदम्बरम्‌की जनताके बारेमें यह कहा जा सकता कि कमसे-कम उसकी नजरमें ब्राह्मणों और पंचमोंमें कोई भेद नहीं है। यदि चिदम्बरम्‌के लोग उस ऊँचाईतक उठ जायें तो वे केवल वही करेंगे जिसकी अपेक्षा 'गीता' हर हिन्दूसे करती है। ईश्वरकी निगाहमें कोई स्पृश्य या अस्पृश्य नहीं है। ब्राह्मणोंको उनकी श्रेष्ठताके कारण, या अन्य लोगोंपर अधिकार जतानेकी सामर्थ्यके कारण ब्राह्मण नहीं कहा जाता, बल्कि अपने ज्ञानसे मानव-मात्रकी सेवा करनेकी उनकी क्षमताके कारण, और सेवा करते हुए आत्म-साक्षात्कार करनेकी उनकी क्षमताके कारण उन्हें ब्राह्मण कहा जाता है। अपने सह-बन्धुओंकी सेवा करनेका सौभाग्य और कर्त्तव्य उनका है। जबतक वे सभी भौतिक पुरस्कारोंका त्याग न कर दें तबतक वे पूर्ण रूपसे यह सेवा नहीं कर सकते। लेकिन अपनी दुर्दमनीय आत्मशक्ति और ईश्वरकी असीम उपस्थितिमें अपने प्रबल विश्वासके कारण नन्दनार ब्राह्मणोंके दर्पको खंडित कर सके और उन्होंने यह दिखा दिया कि वे भावनामें अपने उन सतानेवालोंसे कहीं अधिक श्रेष्ठ थे जो उन्हें मानव-मात्रका अभिशाप मानते थे। लेकिन पंचमोंके, आदि द्रविड़ भाई-बहनोंको चाहिए कि नन्दनारके उदाहरणका लाभ उठाते हुए, उन्होंने जो भावना विरासतमें पाई है, उस भावनाके अनुरूप व्यवहार करें। नन्दनारने किसी प्रकारका आडम्बर रचकर नहीं, बल्कि शुद्धतम आत्मत्यागके बलपर हर बन्धनको तोड़ कर अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त की, उन्होंने कभी अपने प्रपीड़कोंको गाली नहीं दी। उन्होंने अपने प्रपीड़कोंसे अपने उचित अधिकार भी नहीं माँगे। लेकिन उन्होंने अपनी उदात्त प्रार्थनाओं और अपने चरित्रकी शुद्धतासे उन प्रपीड़कोंको लज्जित कर दिया और वे उसके साथ न्याय करनेको विवश हो गये; अगर मैं मनुष्यकी भाषामें कहूँ तो उन्होंने स्वयं ईश्वरको नीचे उतरने और उन प्रपीड़कोंकी आँखें खोलनेको विवश कर दिया। जो कुछ नन्दनारने अपने समयमें किया, हम सब भी आज वही कर सकते हैं। मैं चाहता हूँ कि आप श्रोतागण नन्दनारकी भावनाको थोड़ा-बहुत ग्रहण करें, और यदि हममें से इतने सारे लोग नन्दनारका अनुकरण कर सकें तथा उनकी भावनाको आत्मसात् कर सकें तो हम इस देशको पुन. धर्मात्मा लोगोंकी पुण्य-भूमि बना सकते हैं। मैं आशा करता हूँ और भगवान्‌से मेरी प्रार्थना है कि जिस मन्दिरके साथ आज स्थानियोंने मुझे सम्बन्धित कर दिया है उस मन्दिरका वातावरण हमेशा पवित्र रखकर आप इस महान् सन्तकी यादको हमेशा ताजा रखेंगे। मैं चाहूँगा कि इस

सभाके वातावरणको नन्दनारकी भावनासे भरा हुआ छोड़ूँ। लेकिन यह शायद मेरे लिए गलत होगा कि मैं इस विषयमें कुछ भी न कहूँ कि किस प्रकार हम नन्दनारकी भावनाको अपने दैनिक जीवनमें उतार सकते हैं।

मेरी विनम्र रायमें उस भावनाको कार्यरूप देनेका इससे अच्छा कोई तरीका नहीं है कि हम पूरी भावनाके साथ खद्दर पहनें। मैं यह नहीं कहता कि केवल खद्दर पहनकर ही हम नन्दनारका अनुकरण कर सकते हैं। लेकिन मैं कहता हूँ कि हममें खादीकी भावना अवश्य होनी चाहिए। जिस प्रकार एक दुष्ट आदमी या कोई वेश्या भी हमारी ही तरह गेहूँ या चावल खाती है उसी प्रकार चूँकि कुछ पहनना ही है, इसलिए उस दुष्ट आदमी और वेश्यासे भी खद्दर पहननेकी अपेक्षा की जायेगी। लेकिन वास्तवमें खादीकी भावनाका मतलब है कि खादी पहननेका जो अर्थ है उसे भी हम जानें। हर सुबह जब हम बाहर जानेके लिए खद्दरके वस्त्र धारण करें तो हमें याद रखना चाहिए कि हम दरिद्रनारायणके लिए और भारतके लाखों लोगोंको बचानेके लिए ऐसा कर रहे हैं। यदि हममें खादीकी भावना है तो हमें जीवनके हर क्षेत्रमें सादगी बरतनी चाहिए। खादीकी भावनाका अर्थ है असीम धैर्य। जिन्हें खद्दर-उत्पादनके बारेमें कुछ भी जानकारी है वे जानते हैं कि कतैयों और बुनकरोंको कितने धीरजके साथ मेहनत करनी होती है। उसी प्रकार हमें यह विश्वास भी होना चाहिए कि सत्य और अहिंसा अन्ततः हमारे रास्तेकी हर बाधाको पार कर लेंगे। खादी-भावनाका अर्थ है धरतीपर रहनेवाले हर प्राणीके साथ बन्धुत्वकी भावना रखना। इसका मतलब है ऐसी हर चीजका त्याग जिससे अन्य प्राणियोंको हानि पहुँच सकती हो। और यदि हम यह भावना अपने करोड़ों देशवासियोंके अन्दर पैदा कर दें तो हमारा यह भारत देश कैसा अद्भुत देश हो जायेगा!

मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि खादी, व्यापारकी अन्य वस्तुओंके साथ उन्हींके स्तरपर और उन्हींकी शर्तोंपर होड़ नहीं कर सकती। जिस प्रकार खादी एक अनोखा अस्त्र है और उन साधारण अस्त्रोंमें से नहीं है, जिनका राजनीतिज्ञ इस्तेमाल करते हैं, उसी प्रकार खादी भी व्यापारकी एक अनूठी चीज है जो व्यापारकी अन्य वस्तुओंके साथ समान शर्तोंपर सफल नहीं हो सकती। मैंने जिस खादी-भावनाको आपके सामने स्पष्ट करनेकी कोशिश की है, यदि उस भावनाके साथ खादीकी माँग की जाये तो खादीमें असीमित क्षमता है और आज हम भारतमें जितनी प्रकारकी वस्तुएँ देखते हैं, खादी उन सबको पीछे छोड़ सकती है। इसलिए आप समझ सकेंगे कि आपने खादीके नामपर ये जो तमाम थैलियाँ दी हैं उनकी मैं सराहना नहीं करता। मैं जानता हूँ कि खादीमें मेरा जितना विश्वास है, यदि उसका दशमांश भी आपमें होता तो आप अपने बहुत सारे धनमें से केवल कुछ सौ या कुछ हजार रुपये नहीं, बल्कि मुझे इतना धन देते कि मैं सन्तुष्ट हो जाता तथा खादीके लिए और रुपयेकी जरूरत ही न रह जाती। आज मुझे यह देखकर वास्तवमें बहुत दुःख हुआ कि यहाँ एक मित्र पैसा बनानेके लिए नहीं, बल्कि खादीके प्रति अपने प्रेमके कारण एक खादी भण्डार चला रहे हैं और उन्हें प्रतिवर्ष २०० रुपयेका घाटा उठाना पड़ रहा है।

निश्चय ही यह राष्ट्र-प्रेमका ककहरा है। इन करोड़ों भूखे लोगोंके प्रति प्रेमवश आप खादी पहनें, यह तो इस प्रेमका ककहरा है। मुझे उतना ही दुःख उस समय हुआ जब मेरे यहाँ आते ही स्वामी सहजानन्दने मुझे बताया कि उनके बालक-बालिकाएँ खादी इसलिए नहीं पहने हुए हैं क्योंकि जो इनका खर्च चलाते हैं वे लोग खादीके समर्थक नहीं हैं। खद्दरकी जो भावना मैंने आपको अभी बताई है, यह बात उसके बिलकुल विपरीत है। इन तथ्योंको देखते हुए आप मुझे यह कहनेके लिए क्षमा करेंगे कि आपकी उन थैलियोंका सच्चा या आन्तरिक मूल्य भी कुछ नहीं है। अब मैं शराबकी लतके बारेमें कुछ कहूँगा।

जिन्हें शराबकी लत है, आपको उन लोगोंसे यह लत छोड़नेको कहना चाहिए। और जिन लोगोंको इसकी लत नहीं है, यदि उन्हें अपने कम भाग्यशाली भाइयोंसे कोई सच्चा प्रेम है तो उन्हें तबतक सन्तुष्ट नहीं होना चाहिए जबतक वे लोग इस अभिशापसे मुक्त नहीं हो जाते और इस देशमें नशाबन्दी लागू नहीं हो जाती। इसी प्रकार आपको इस कलंकपूर्ण अनैतिक देवदासी प्रथाको भी समाप्त कर देना चाहिए। आप बाल-विवाह न करें; तब घरोंमें बाल-विधवाएँ रहेंगी ही नहीं। अब समय आ गया है जब हमें क्षण-भर भी विलम्ब किये बिना अपने समाजमें ये बुनियादी सुधार करने चाहिए। मैं एक बार फिरसे इन अभिनन्दनपत्रों तथा थैलियोंके लिए और धीरजके साथ मेरी बात सुननेके लिए आपको धन्यवाद देता हूँ।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, १३-९-१९२७

४३८. पत्र : मीराबहनको

दुबारा नहीं पढ़ा

१२ सितम्बर, १९२७

चि० मीरा,

कल तुम्हें बधाईका तार दिये बिना मुझसे नहीं रहा गया। ये दिन जरा चिन्ताके ही रहे। यद्यपि मैंने तुम्हें बहुत नहीं लिखा और तार भी नहीं दिया, फिर भी मेरा मन तुम्हारी तरफ ही लगा रहा, तुम्हारी ही चौकसी करता रहा। मैं जानता था कि मैं तुम्हें रोज एक तार भेजूँ तो तुम्हें अच्छा लगेगा। लेकिन मैंने सोचा कि मुझे नहीं भेजना चाहिए। इन दिनों कामकी इतनी भीड़ रही है कि पत्र लिखना लगभग असम्भव ही हो गया। लोग मेरे पास बस इतना ही समय छोड़ते हैं कि मेरे सामने जो कार्यक्रम है, उसे निपटा सकूँ। विविध श्रोता-मण्डलियोंके आगे मैं अपनी आत्मा उँड़ेल रहा हूँ। इसके बाद और किसी कामके लिए मेरे पास बहुत कम शक्ति बच रहती है। ऊपरसे कुमारी मेयोकी पुस्तक पढ़ने और उसपर लम्बा-चौड़ा लेख[1] लिखनेकी जिम्मेदारी आ पड़ी है।

१. देखिए "नाली-निरीक्षककी रिपोर्ट", १५-९-१९२७।

परन्तु यह जानकर मुझे सबसे बड़ी राहत मिली कि जमनालालजी तुम्हारे साथ रहे हैं। ईश्वरकी कृपासे अब यह सब खत्म हो गया दीखता है। यह अच्छी कसौटी रही।

और रामनाम! अगर वह तुम्हारे लिए एक जीता-जागता सत्य बन गया है, तो बेशक बड़ी बात है। लेकिन जब तुममें और शक्ति आ जाये, तब मुझे अपने अनुभव बताना। मैं वह सब और यह भी जानना चाहता हूँ कि तुम्हें सन्निपात या मूर्च्छाका दौरा क्यों आता रहा है। यह तो है ही कि अक्सर हमें कारण मालूम नहीं होता।

अब तुम काफी सँभल-सँभलकर चलो।[१] जितने आरामकी जरूरत हो, उतना जरूर लो। अपनेपर निगाह रखना और भोजनमें कोई परिवर्तन आवश्यक हो तो कर लेना। तिल्ली बढ़ जानेका कारण खोजना। जबतक इच्छा हो, पूना ठहरना। जिस सुविधाकी तुम्हें जरूरत हो, बता देना। जो बात किसी औरसे न कह सको, वह मुझसे कहना। मैं ठीक चल रहा हूँ। राजगोपालाचारी मेरी उतनी ही हिफाजत कर रहे हैं, जितनी एक मनुष्यके लिए करना शक्य है। मुझे बचानेकी कोशिशमें वे अपनेको खपा रहे हैं। और मैं जानता हूँ कि इतना परिश्रम उनके लिए बहुत ज्यादा है, लेकिन मैं दखल नहीं देता। अगर ईश्वरको इस दौरेका पूरा होना मंजूर है तो उसके लिए जिन्हें हानिसे बचाना जरूरी है, उन्हें वह बचायेगा। इसलिए तुम्हे मेरी कोई चिन्ता नहीं करनी चाहिए। यह [पत्र माताजीके पास भेज देना। वैसे तुम्हारा मन न कहे, तो मत भेजना]।

सस्नेह,

बापू

श्री [मती] मीराबहन
मार्फत सेठ जमनालाल बजाज
कालबादेवी रोड
बम्बई

अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ५२७४)से।
सौजन्य: मीराबहन

१. इसे स्पष्ट करते हुए मीराबहन लिखती हैं: "मलेरियाके भयंकर प्रकोपके बाद मैं स्वास्थ्य-सुधारके लिए पूना जा रही थी।"

४३९. पत्र : गंगाबहन वैद्यको

मौनवार [१२ सितम्बर, १९२७ से पूर्व][1]

चि० गंगाबहन (वैद्य),

तुम्हारा पत्र मिल गया है। तुम्हारे संस्कृतके अक्षर तो बहुत सुन्दर कहे जा सकते हैं। गुजरातीकी लिखावट भी गुजरी है।

मैं यह नहीं चाहता कि अधिक अक्षरज्ञान प्राप्त करनेमें तुम ज्यादा समय लगाओ, किन्तु यदि तुम्हारी यही इच्छा हो तो कोई बुरी बात नहीं है, ऐसा सोचकर मैं तुम्हारी इस इच्छामें सहायता करूँगा। जबतक दूसरी पढ़ी-लिखी बहनोंको देखकर तुम्हें अपने ज्ञानमें न्यूनता महसूस होती हो और उनके-जितना ज्ञान प्राप्त करनेकी इच्छा होती हो तबतक मर्यादाके भीतर उतना ज्ञान अवश्य प्राप्त करो और वैसा करनेका तुम्हें अधिकार है। परन्तु यदि तुम्हारी आत्मा अबतक बिलकुल शान्त हो गई हो और तुम्हें ठीक लगे तो एक ही कामको हाथमें लो, मैं यही चाहता हूँ। परन्तु यह तो हृदयकी बात है। जबतक हृदय कुबूल न करे तबतक तो प्रयत्न करना ही चाहिए।

फिलहाल तो संकट-निवारण-कार्य तुम्हारा समय ले लेगा, मैं यह देख रहा हूँ।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ८८२२) से।
सौजन्य : गंगाबहन वैद्य

४४०. पत्र : जेठालाल जोशीको

भाद्रपद कृष्ण १ [१२ सितम्बर, १९२७][2]

भाई जेठालालजी,

आपका पत्र मीला है। मेरी सलाह है कि आप आश्रमके मंत्रीसे भेंट करें और कुछ काम वहाँ मीले तो लीजीये। मेरा आश्रममें आना इस वर्षमें होनेका संभव कम है।

आपका,
मोहनदास

जी० एन० १३५४ की फोटो-नकलसे।

१. गंगाबहनके संकट-निवारण-कार्यमें व्यस्त होनेके उल्लेखसे, देखिए "पत्र : आश्रमकी बहनोंको", १२-९-१९२७।

२. वर्षका निर्णय गांधीजीकी आश्रम जानेकी असमर्थताके उल्लेख और जेठालाल जोशी क्या काम करें, इसकी चर्चाके आधारपर किया गया है।

४४१. पत्र : प्रभाशंकर पट्टणीको

सोमवार, भाद्रपद बदी १ [१२ सितम्बर, १९२७][1]

सुज्ञ भाईश्री,

जीवनके बारेमें आपका पत्र मुझे मिल गया था। मैं चुप रहा हूँ सो आपपर उपकार करनेके लिए नहीं परन्तु अपनी खातिर। आपकी बात मैं समझ गया हूँ। जहाँतक मुझसे बन सके मैं कोई भूल नहीं करना चाहता। अपने-आपको शाबाशी नहीं देना चाहता, इसलिए मौन धारण करना ठीक माना। किन्तु इतना तो कहूँ न कि मेरे इस निश्चयका कारण तो आप ही थे। लेकिन यह तो बेकारकी बात हुई।

पत्र तो मैं यह कहनेके लिए लिख रहा हूँ कि आप अपनी तबीयतका ध्यान रखना। कारण, आपसे मुझे बहुत आशाएँ हैं। मैसूरके बारेमें मेरा अन्तिम भाषण आपने न पढ़ा हो तो भेज दूँ — इस मतलबसे कि उसमें से जितना आप कर सकते हों उतना तो कार्यान्वित करें ही।

मेरी गाड़ी चल रही है। यह पत्र मायावरम्से लिख रहा हूँ। मुसाफिरीकी तारीखें नहीं भेज रहा हूँ। आश्रमके पतेपर ही लिख दो तो भी ठीक रहेगा। चरखा चल रहा है न?

लेडी पट्टणीको पाणकोरा (गजी) पहनना किस हदतक सधा है?

मोहनदासके वन्देमातरम्

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ३२१४)की फोटो-नकलसे।
सौजन्य : महेश पट्टणी

४४२. पत्र : आश्रमकी बहनोंको

मौनवार, भाद्रपद बदी १ [१२ सितम्बर, १९२७][2]

प्रिय बहनो,

यह तो नहीं कहूँगा कि तुम्हारा पत्र मिला; हाँ, पुरजा मिला है। काशी-बहनके राजकोट जानेपर तुमने गंगास्वरूप गंगाबहन झवेरीको प्रमुख नियुक्त किया है, यह मालूम हुआ। तुम इस तरह अपने लिए एक-के-बाद-एक सभानेत्री नियुक्त कर पाती हो, इससे तुम्हारी तन्त्र चलानेकी शक्तिका थोड़ा-सा प्रमाण मिल जाता है। जब तुम सभानेत्रीका हृदयसे सम्मान करोगी और अपना तन्त्र एकमत होकर चलाओगी तो वह और भी बड़ा प्रमाण माना जायेगा। पुरुषोंमें अभी ऐसा उज्ज्वल

१. मायावरम्के उल्लेखसे वर्ष निर्धारित किया गया है।
२. गंगाबहन झवेरीके अध्यक्ष नियुक्त किये जानेके उल्लेखसे।

उदाहरण देखनेमें नहीं आया। घरका ही उदाहरण ले तो हम सबको मालूम होना चाहिए कि आश्रमका तन्त्र भी रागरहित होकर चलानेकी पूरी तालीम हमें अभी प्राप्त नहीं हुई है। इसलिए यदि तुममें यह शक्ति अभी न आई हो तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। किन्तु यदि तुम सब जमकर प्रयत्न करोगी तो तुममें यह शक्ति आ जायेगी। इसमें कोई शक नहीं है। राग-द्वेषका त्याग जितना कर सको, करनेका प्रयत्न करना। लगातार प्रयत्नके द्वारा ही हम आगे बढ़ सकेंगे।

बड़ी गंगाबहन संकट निवारणके काममें सहायता करने पहुँच गईं, यह भी ठीक हुआ।

मेरी गाड़ी तो धीरे-धीरे चल ही रही है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ३६६७) की फोटो-नकलसे।

४४३. पत्र : गंगाबहन झवेरीको

[१२ सितम्बर, १९२७ के आसपास][1]

चि० गंगाबहन झवेरी,

तुम्हारे एक भी पत्रका कर्ज मेरे सिरपर नहीं है। फिर भी यह लिख रहा हूँ। खुशीकी बात है कि तुम्हें प्रमुखका पद प्राप्त हुआ। उसे शोभान्वित करना। उसमें पूरा मन लगाना। जो भी कठिनाइयाँ आयें उन्हें धीरजसे सुलझाना। तनिक भी घबराना नहीं।

यह लिखते समय याद आया कि तुम्हारे एक पत्रका कर्ज तो मुझपर है। मराठीके विषयमें तुमने जो लिखा था उसका उत्तर मैंने नहीं दिया या ऐसा कहूँ कि दे नहीं सका। तुम्हें संस्कृत सीखनेके लिए जिसकी मददकी जरूरत हो, वह उसे दे सकता हो तो लेना। वैसे तो, चूँकि तुम्हें व्याकरण आता है इसलिए बहुत-कुछ अभ्यास तो तुम स्वयं ही कर सकती हो। हिन्दीके विषयमें भी यही बात है।

गुजराती, हिन्दी व संस्कृतको पक्का करनेके बाद [पठनीय पुस्तकोंके] वाचनमें आगे बढ़ना। जहाँतक काम सीखनेकी बात है, चरखा-शास्त्रको पूरी तरह जाननेके बाद ही दूसरे कामोंकी बारी आती है। चरखा-शास्त्रमें लोढ़ना, पींजना, कातना, चरखा दुरुस्त करना, तकुआ सीधा करना, माल बनाना, माड़ी चढ़ाना आदि शामिल है। और शरीरको तो मजबूत बनाना ही है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ३१२६) की फोटो-नकलसे।

१. देखिए पिछला शीर्षक।

४४४. पत्र : मीराबहनको

[१३ सितम्बर, १९२७][1]

चि० मीरा,

तुम्हें पत्र लिखनेके लिए मुझे कुछ क्षणोंका अवकाश मिल गया है। शनिवारके बादसे तुम्हारा कोई तार नहीं आया। इसलिए मैं यह मान लेता हूँ कि अब तुम बिलकुल ठीक हो और अभी बम्बईमें हो। सोमवासरीय पत्र तुम्हारे कहे अनुसार बम्बईके पतेपर भेज दिया गया।

बीमारीके बाद तुमने अपने हाथसे जो पत्र लिखा, वह अच्छी तरह लिखा हुआ था और साफ पढ़ा जा सकता था। बल्कि लिखावट तो पहलेसे भी अच्छी थी।

हाँ, बीमारी एक वरदान ही थी। कमजोरी तो जल्दी ही दूर हो जायेगी। पूना जानेपर घूमना-टहलना और वहाँके मेरे एक बहुत अच्छे मित्रके साथ दुग्धशाला भी देख आना। प्रो० त्रिवेदीको तुम देखते ही पसन्द करने लगोगी। उनके लड़के मनुसे मैत्री करना और सेवा सदन तथा सोसाइटीके रिहायशी घर भी देखना। लेकिन यह सब धीरे-धीरे करना।

सस्नेह,

बापू

अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ५२७५) से।
सौजन्य : मीराबहन

४४५. पत्र : विजय सिंह पथिकको

भाद्रपद कृष्ण २ [१३ सितम्बर, १९२७][2]

भाई पथिकजी,

आपका खत आज मिला। मैंने तो आपको आपके आखरके पत्रका उत्तर भेज दिया था। आश्चर्य है आपको नहीं मिला। मेरे भावमें कुछ भी भेद नहीं हुआ है। होनेसे मैं छुपा नहीं सकता हूं। आप जब चाहें इस तरफ आ सकते हैं। मद्राससे एक दिनके फासलेपर अकटोबरके दस दिन तक घूमता रहूंगा। मद्रासमें आपको जगहका पता मिल जायेगा।

१. "सोमवासरीय पत्र" के उल्लेखसे। यह पत्र १२-९-१९२७ को लिखा गया था।

२. वर्षका निर्णय गांधीजीके दौरेके कार्यक्रम और स्वामी श्रद्धानन्दके हत्यारे अब्दुल रशीदके उल्लेखसे किया गया है।

मैंने अब्दुल रशीदको फाँसीसे बचानेके लिए सरकार प्रति कुछ भी नहीं लिखा है। मैंने हिन्दू जनताको उनको माफी देनेका अवश्य कहा है। आप काकोरीके[1] कैदियोंके बारेमें मेरे पाससे क्या चाहते हैं? किस जनतासे मैं कहूँ?

आपका,
मोहनदास

बापू : मैंने क्या देखा, क्या समझा

४४६. भाषण : मायावरम्‌में

१३ सितम्बर, १९२७

बहनो और भाइयो,

मैं आपको इन सब अभिनन्दनपत्रों और थैलियोंके लिए धन्यवाद देता हूँ। अगर आप चाहते हैं कि इन अभिनन्दनपत्रोंमें उठाई गई सभी महत्त्वपूर्ण बातोंका मैं तफसीलसे जवाब दूँ तो यह जरूरी है कि मेरे बोलते समय आप पूरी तरह शान्ति बनाये रखें।

आरम्भ ही में मुझे आपसे भी उसी बातकी क्षमा माँगनी है जिसके लिए मैंने कडलूरमें क्षमा चाही थी; और वह यह है कि मैं अपने विश्रामके घंटोंमें सर्व-साधारणसे नहीं मिल सका। मैं चाहता हूँ कि आप उदारतापूर्वक मुझे इसके लिए क्षमा कर दें। यदि मुझमें शक्ति होती तो इस नगरके नागरिकोंसे बात करके, उनसे सवाल-जवाब करके, उनके विभिन्न दृष्टिकोणोंको समझनेमें मुझे बहुत खुशी हुई होती; लेकिन मेरी वर्तमान कमजोरीकी हालतमें यह बात सम्भव नहीं है।

आपमें से कुछ लोगोंको शायद स्मरण होगा कि मायावरम्‌की मेरी यह पहली यात्रा नहीं है। मुझे १९१५ की बड़ी अच्छी तरह याद है जब मुझे आपमें से कुछ लोगोंके साथ 'स्वदेशी' के बारेमें चर्चा करनेका सौभाग्य मिला था।[2] लेकिन उस समयकी सुखद स्मृतियोंको आपके सामने रखनेमें मुझे आपका समय नष्ट नहीं करना चाहिए।

आपने तथाकथित 'अस्पृश्यों' के उत्थानके लिए जो कार्य किया है उनके लिए मैं आपको बधाई देता हूँ।. . .

१. ९ अगस्त, १९२५ को काकोरी रेलवे स्टेशनके पास कुछ सशस्त्र लोगोंने मुरादाबादसे लखनऊ जानेवाली ट्रेनमें डाका डालकर गार्डवाले डिब्बेसे रुपये लूट लिये थे। सरकारने ऐसा आरोप लगाया कि संयुक्त प्रान्तके हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशनके सदस्योंने यह डाका डाला था और उस एसोसिएशनका उद्देश्य "संयुक्त भारतीय गणतन्त्र" की स्थापना था। कुल २१ अभियुक्तोंमें से दो रिहा कर दिये गये, तीनको मृत्यु-दण्ड मिला, एकको आजीवन काला पानी और शेषको पाँचसे चौदह वर्ष तककी कैदकी सजाएँ दी गई थीं।

२. देखिए खण्ड १३, पृष्ठ ७३-५।

लेकिन आज शाम में आपसे एक ऐसे विषयपर बात करना चाहता हूँ जो मुझे बहुत प्रिय है लेकिन जिसपर मैं अपने इस दौरेके दौरान अभीतक नहीं बोला हूँ। आज शाम मैं आपके सामने उस विषयपर बोलना चाहूँगा क्योंकि इस बातकी ओर कल सुबह मेरा ध्यान खींचा गया था। मैं आपसे इस स्थानकी सफाई-स्वच्छताके विषयपर बोलना चाहता हूँ। आपकी नगरपालिकाने कृपापूर्वक मुझे एक अभिनन्दनपत्र दिया, जिसमें मेरी कुछ ऐसी गति-विधियोंका उल्लेख है जिनमें मुझे एक मानववादी और एक सुधारकके नाते दिलचस्पी है। मैं मानता हूँ कि सफाई और स्वच्छता भी एक महत्त्वपूर्ण चीज है, जिसे एक मानववादी या सुधारकको ध्यानमें रखना चाहिए। आपने मुझे जहाँ कृपापूर्वक ठहराया है वहाँसे पैदल तीन या चार मिनटकी दूरीपर एक सुन्दर तालाबके किनारे मुझे एक सुन्दर कुंज-जैसा दिखाई पड़ा और मैं निश्शंक भावसे उधर टहलनेके लिए निकला। एक मामूली बाँसका पुल देखकर मैं उसके ऊपरसे गुजरनेके लिए बढ़ गया। मैंने उसे पार किया, दाहिने मुड़ा और अपने साथीके साथ कुछ ही कदम चला होऊँगा और आप सोच सकते है कि मैंने क्या देखा होगा। मैंने जो देखा वह इतना भयंकर था कि उसकी चर्चा नहीं की जा सकती, और उससे जो दुर्गन्ध आ रही थी वह दम घोटनेवाली थी। मैंने देखा कि उस तालाबका पानी बहुत ही विक्षोभजनक ढंगसे गन्दा किया जा रहा था, जबकि उसी समय एक औरत अपना बर्तन उसी पानीसे भर रही थी। अपना सुबहका टहलना सम्पन्न करनेके लिए मुझे मोटरसे कुछ दूर जाना पड़ा। मुझे गहरी चोट पहुँची; मुझे लगा जैसे मैं आहत हो गया हूँ। मुझे इससे उन दृश्योंकी याद आ गई जो मैंने १९१५ में खास मद्रास शहरकी मुख्य सड़कोंपर देखे थे। निश्चय ही इस स्थितिके मूलमें कहीं-न-कहीं भयंकर त्रुटियाँ हैं। किसी भी नागरिक जीवनकी पहली शर्त है कि पर्याप्त सफाई-स्वच्छता और शुद्ध जलकी सदा सम्यक व्यवस्था हो। एक क्षणको भी ऐसा मत मानिए कि इन दो में से किसी कामके लिए बहुत धनकी आवश्यकता है। आपमें नागरिकोंको ये चीजें सुलभ करानेकी इच्छा-भर हो तो बिना पैसा खर्च किये ये दोनों चीजें आप सुलभ करा सकते हैं। लेकिन उसके लिए आपको अपने नागरी कर्त्तव्योंका स्पष्ट ज्ञान होना आवश्यक है। नगरपालिकाकी सदस्यताको किसी विशेष सम्मानका स्थान नहीं मानना चाहिए। नगरपालिकामें मेहतरकी भावनाके अलावा अन्य किसी भावनाके साथ प्रवेश नहीं किया जा सकता। लेकिन मैं अखबारोंमें अकसर नगरपालिकाके चुनावोंको लेकर खींचातानी और इस खींचातानीके फलस्वरूप ब्राह्मणों और अब्राह्मणोंके बीच झगड़ेका समाचार ही देखता हूँ। यदि आप केवल इतना याद रखें कि आप मायावरम्के लोगोंके सेवक भर हैं, उनके स्वामी नही हैं, और आपको जनताके कल्याणके लिए नगरको बिलकुल साफ-स्वच्छ रखनेका काम सौंपा गया है, तो आप हाथमें एक फावड़ा लेकर पानीको तथा गरीबोंको दी गई भूमिको साफ-स्वच्छ रखनेके काममें जुट जायेंगे। आपके नगरमें कई स्कूल हैं, जिनको आपके धनसे चलाया जा रहा है। इन स्कूलोंमें कुछ दिनोंकी छुट्टी करके उनके छात्रोंसे कहिए कि वे नगरकी सड़कोंको साफ करें तथा लोगोंसे भी कहें कि वे खुद सड़कोंको साफ तथा

पानीको शुद्ध रखें। यदि हम अपने ज्ञानको और स्कूलोंमें सफाईके बारेमें हम जो पाठ पढ़ते हैं उसे, अपने दैनिक जीवनमें व्यावहारिक रूप नहीं देते तो वह ज्ञान और वह पाठ सब व्यर्थ है। मैं आपसे अनुरोध करूँगा कि अपने मनमें यह न कहें कि हमारे यहाँके लोग इन अपीलोंको नहीं सुनेंगे और अपनी आदतें नहीं बदलेंगे। जिस स्थानपर मैं खुद पैदा हुआ था वहाँ करीब पचास साल पहले सड़कोंपर गोबर और कूड़ेके बड़े-बड़े ढेर पड़े रहते थे। लेकिन उस स्थानपर एक प्रशासक आया। उसके हकमें यह भी कहना होगा कि वह एक अंग्रेज था। उसने एक ही दिनमें गोबर-कूड़ेके ढेर हटा दिये और जनताकी ओरसे उसके ऐसा करनेके विरुद्ध कोई आपत्ति नहीं हुई। न ही उसने अपनी निरंकुश इच्छाको अनिच्छुक जनतापर थोपनेके लिए अपने सरकारी अधिकारका ही उपयोग किया। उसने लोगोंको समझाया, सभी विरोधियोंको तर्कसे परास्त किया और अपने सुधार कार्यान्वित कर दिये। मैंने आपके सामने यह दृष्टान्त इसलिए प्रस्तुत किया है क्योंकि मैं ब्रिटिश प्रशासनका कट्टर विरोधी हूँ, लेकिन फिर भी सफाई-स्वच्छताके मामलेमें हमें अंग्रेजोंसे बहुत-कुछ सीखना है। मैं आपसे कहता हूँ कि आप अपने आलस्यको उतार फेंकें और हिम्मत बाँधें; आप इस सुधारको आसानीसे लागू कर सकते हैं।

अब मैं 'दलित' समाज द्वारा दिये गये बहुत लम्बे और तथ्यपूर्ण अभिनन्दन-पत्रको लूँगा। यह अभिनन्दनपत्र इसी ढंगके अन्य अभिनन्दनपत्रोंसे इस अर्थमें भिन्न है कि इसमें सामाजिक निर्योग्यताओंका उतना जिक्र नहीं है जितना कि नागरिक निर्योग्यताओंकी चर्चा है। इसमें भू-स्वामीवर्गपर बहुत गम्भीर आरोप लगाये गये हैं। इसमें भू-स्वामियोंपर यह आरोप है कि उन्होंने उन लोगोंको दासताकी स्थितिमें पहुँचा दिया है। इसमें प्रशासनपर आरोप लगाया गया है कि उसने दलितोंके लिए निम्न कोटिकी नौकरियोंके दरवाजे भी बन्द कर दिये हैं। कुछ छुट-पुट मामलोंको छोड़कर अन्य किसीसे भी कोई सहायता न पानेकी शिकायत इसमें की गई है। इसमें कहा गया है कि इस वर्गके लोगोंकी औसत आमदनी प्रतिवर्ष ४० रुपयेसे कदापि अधिक नहीं होती; और उनका खर्च प्रतिवर्ष १२० रुपयेसे कम कभी नहीं होता। इसमें शिकायत की गई है कि जमीनसे बँधे होनेके कारण इन लोगोंको वर्षके अधिकांश समयमें बिना किसी काम-धन्धेके रहना पड़ता है।

मैं नहीं जानता कि इन आरोपोंमें कितनी सचाई है। इसलिए मैं अपने उन मित्रोंको इतना ही धीरज दे सकता हूँ कि मैं उनके अभिनन्दनपत्रमें कही गई बातोंकी सचाईका पता लगानेका प्रयत्न करूँगा। यों आम तौर पर मैं उन्हें अपनी पूरी सहानुभूतिका आश्वासन देता हूँ और उनके अभिनन्दनपत्रमें कही गई इस बातसे पूरी सहमति प्रकट करता हूँ कि वे इस देशमें भूमिके पहले अधिकारी हैं।

लेकिन इस पूरे अभिनन्दनपत्रसे जो निराशा ध्वनित होती है, वैसी निराशाकी कोई बात नहीं है। देशमें अब जो एक महान् जागृतिकी लहर आई है उसका लाभ अन्य लोगोंके साथ उन्हें भी मिले बगैर नहीं रह सकता। यह सच है कि इस समय इस जागृतिने एक दुखद मोड़ ले लिया है। हम अपने अच्छेपनमें ऐसा सोचते प्रतीत होते

हैं कि विना एक-दूसरेकी सहायता किये हर वर्ग, हर समुदाय, हर समूह, हर जातिको अपनी-अपनी दिशामें चलनेकी कोशिश करनी चाहिए। इसलिए हम आन्तरिक फूटसे ग्रस्त ह। लेकिन ये झगड़े अस्थायी हैं और इनका समाप्त होना सुनिश्चित है। और जब वादल सचमुच छटेंगे और दिन निकलेगा तो उसके बाद आनेवाले हर्षोल्लासमें 'दलित' वर्गोका शामिल होना भी सुनिश्चित है। और उस सूर्योदयकी वेलामें हर्षोल्लासमें भाग लेनेके लिए दलित वर्गोंका यह बात समझ लेनी चाहिए कि अन्ततः हरएकको आत्म-सहायतापर निर्भर करना होगा। उनकी संख्या और उनका धन्धा उन्हें जो शक्ति प्रदान करते हैं, उन्हें उसकी प्रतीति-भर होनेकी जरूरत है; फिर तो वे एक दुर्दमनीय शक्ति बन जायेंगे। जैसे ही वे यह महसूस कर लेंगे कि वे किसीके दास नहीं हैं, और आखिरकार उनकी मेहनतके विना वह जमीन जिसे वे जोतते-बोते हैं, भयानक और वीरान हो जायेगी, उसी क्षण उनकी विजय सुनिश्चित है।

लेकिन मैं भू-स्वामी वर्गसे कहूँगा कि यदि अभिनन्दनपत्रमें उनके विरुद्ध लगाये गये आरोप सही हैं तो यह उनके लिए बड़ी लज्जाकी बात है। जिन कन्धोंपर चढ़कर वे चल रहे हैं उन्हे वे अपने पैरोंके नीचे न कुचलें। उन्हें इन श्रमिक वर्गोका विचार करना चाहिए; जिनकी मेहनतसे ही बंजर जमीन हरी-भरी फसलसे लदकर मुस्काती प्रतीत होती है। भू-स्वामीवर्ग इन मजदूरोंको अपने ही परिवारका सदस्य समझे और उन्हें भी उस सुख तथा हर्षमें हिस्सा प्राप्त करने दे जिसे पैदा करनेमें इन मजदूरोंका इतना अधिक योगदान होता है। अपने ही मजदूरोंके प्रति 'अस्पृश्य' भावना गलत है, पापपूर्ण है। आइए; हम इस कलंकको मिटा दें।

लेकिन मुझे अभी [आपसे] एक और कलंककी बात भी करनी है। मैंने आज तीसरे पहर कुछ ऐसे सज्जनोंसे, जिनके बीचसे देवदासियाँ ली जाती हैं, बात की। मैंने इनमें से कुछ बहनोंसे भी भेंट की और उनके साथ गम्भीर चर्चा की। जब मैंने उनसे बात करते हुए इस प्रथाके छिपे हुए अर्थको समझा तो मेरी आत्मा इस सम्पूर्ण प्रथाके विरुद्ध विद्रोह कर उठी। इन्हें देवदासी कहकर हम धर्मके पवित्र नामकी आड़में स्वयं ईश्वरका अपमान करते हैं। हम दोहरा अपराध करते हैं क्योंकि हम इन बहनोंका उपयोग अपनी कामवासनाकी तुष्टिके लिए करते हैं और उसी साँसमें, जो निहायत गन्दी होती है, हम ईश्वरका भी नाम लेते हैं। यह सोचकर जीवनसे निराशा होने लगती है कि देशमें इस प्रकारकी अनैतिक सेवा करनेवालोंका एक वर्ग है और एक वर्ग ऐसा भी है जो इस प्रथाको चिरस्थायी बनाता है। और मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मुझसे बात करते समय उनकी आँखोंमें कोई शैतानियत नहीं थी, उनमें भी सूक्ष्म कल्पना और शुद्ध भावनाकी वैसी ही क्षमता थी जैसी कि संसारकी किसी भी औरतमें होती है। हमारी अपनी सगी बहनों और उनके बीच क्या अन्तर हो सकता है? और यदि हम ऐसे अनैतिक कामके लिए अपनी सगी बहनोंका उपयोग नहीं होने दे सकते तो हम ऐसे कामोंके लिए इन औरतोंका उपयोग करनेका साहस कैसे करते हैं? जो हिन्दू किसी भी रूपमें इस बुराईसे सम्बन्धित हैं, उन्हें चाहिए कि वे अपनेको इससे मुक्त कर लें। हमारे

समाजमें ऐसी किसी बुराईके होनेसे समाजकी बुनियाद खोखली होती है। इन बहनोंमें से अधिकांशने, या उन सभीने मुझसे वादा किया है कि कुछ शर्तोंपर वे इस जीवनको छोड़नेके लिए तैयार हैं। और मैंने उनसे वादा किया है कि मैं उनके लिए इस जीवनसे छुटकारा पाने लिए आवश्यक सुविधाओंकी व्यवस्था करके इसे सम्भव बना दूँगा। ईश्वरकी इच्छा रही तो मैं अपना वादा पूरा करूँगा। उन्हें भी अपना वादा पूरा करने दूँगा। यदि वे उन शर्तोंको पूरा नहीं कर सकती तो मैं उन्हें नहीं बल्कि उस समाजको दोष दूँगा जिसके साथ उनका भाग्य जुड़ा हुआ है। यह आपका काम है कि आप इन बहनोंकी ओर सद्भावनाका हाथ बढ़ायें। यह आपपर है कि आप देखें कि उनका इस शर्मनाक जीवनसे उद्धार हो। मैं जानता हूँ कि यदि उन्हें फिर प्रलोभनका सामना करना पड़ा तो यह प्रलोभन बहुत शक्तिशाली सिद्ध होगा। लेकिन यदि पुरुष अपनी वासनापर काबू रखेगा और यदि समाज इस प्रथाको गलत मानेगा, तो निश्चय ही उन बहनोंका गलत राहपर न जाना सम्भव है।

इतने धीरजसे मेरी बात सुननेके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। मैं जानता हूँ कि मैंने जो स्पष्ट बातें कही हैं आप उनके लिए मुझे क्षमा कर देंगे। हालाँकि अपने यहाँ ठहरनेके दौरान, मेरे पास रहनेवाले इतने सारे कृपालु मित्रोंने मेरा बराबर पूरा ध्यान रखा है, लेकिन मैं यह भी कहूँगा कि यहाँ ठहरनेके दो दिन मेरे लिए बहुत दुःखपूर्ण दिन रहे हैं। यह देवदासी समस्या जो मेरे ध्यानमें कल लाई गई, उससे और मैंने जो गन्दगी खुद अपनी आँखोंसे देखी उससे मुझे गहरा कष्ट हुआ; और मैंने जिस ढंगसे आपसे बात की उसमें मैंने यह कोशिश की कि आपको अपने दुःखमें साझीदार बनाकर उसे हलका कर लूँ। मैं आशा करूँगा कि आप मेरे दुःखमें साझीदार रहेंगे और मेरे सुझावोंपर अमल करके मेरा बोझ हलका करेंगे।

जैसा कि ऐसी सभी सभाओंमें आम है, यदि शान्ति बनाये रखेंगे तो स्वयंसेवक लोग चन्दा लेते हुए आप सबके पास जायेंगे, और आप जितना देना चाहें उतना उन्हें दें।

जिस समय स्वयंसेवक लोग चन्दा इकट्ठा कर रहे थे, सभामें से किसी व्यक्ति-के प्रश्नके उत्तरमें महात्माजीने कहा :

एक मित्रने मुझसे पूछा है, और बिलकुल ठीक ही पूछा है कि ये जो थैलियाँ प्राप्त हो रही हैं उनका उपयोग किस प्रकार किया जायेगा। सामान्य तरीका यह है कि जिस प्रान्तमें थैली इकट्ठी हो उसका इस्तेमाल उसी प्रान्तमें किया जाये। लेकिन जब थैली किसी बहुत समृद्ध स्थानपर — जैसे बम्बईमें — इकट्ठी की जाती है तो आम तौरपर उसे उस जगह खर्च करते हैं जहाँ उसकी सबसे ज्यादा जरूरत होती है। सारे भारतमें, देशके सबसे बड़े हिस्सेमें इकट्ठा किया हुआ सारा धन कतैयों, धुनियों और बुनकरोंके हाथोंमें जाता है। जिस आदमीके पास कोई धन्धा है उसे छोड़कर कताई, धुनाई या बुनाई करनेके लिए किसीसे नहीं कहा जाता। अतः जो सबसे गरीब वर्ग है, उसीकी सेवा कार्यकर्त्ता करते हैं। अभीतक यह सम्भव नहीं हुआ है कि इकट्ठा किये गये पूरे धनको केवल कतैयों, धुनियों और बुनकरोंमें ही वितरित

किया जाये। कताई और बुनाईके लिए गाँवोंके संगठन कार्यपर इस धनका एक हिस्सा खर्च हो जाता है। हमारे-जैसे गरीब देशमें कार्यकर्त्ताओंका ऐसा दल प्राप्त करना असम्भव है जो बिना कोई पारिश्रमिक या वेतन लिये अपनेको संगठन-कार्यमें लगा सकें। हालाँकि इस आन्दोलनमें हमारे पास ऐसे बीसियों कार्यकर्त्ता हैं जो न केवल कोई वेतन नही पाते बल्कि उलटे इस आन्दोलनको कुछ-न-कुछ देते हैं, तथापि हमने जो १५,००० कार्यकर्त्ता इस समय काममें लगा रखे हैं उन्हें मुफ्तमें रख सकना सम्भव नहीं है। मोटे तौरपर कहूँ तो कुल व्ययका २० से २५ प्रतिशत अकेले संगठन-कार्यपर खर्च हो जाता है। शेष ७५ से ८० प्रतिशत धन वास्तवमें सीधे भूखसे पीड़ित गरीब लोगोंके हाथोंमें, उनके कामके बदलेमें वेतनके रूपमें जाता है। और इस ढंगसे भारत-भरमें अब तक १५,००० गाँवोंको संगठित किया गया है। आज भारत-भरमें ५०,००० से अधिक कतैये प्रति-मास[1] एकसे डेढ़ रुपयेतक कमा रहे हैं, जबकि हाथ-कताई आरम्भ होनेसे पहले वे कुछ भी नही पा रहे थे। और चूँकि १० कतैये एक बुनकरके लायक काम देते हैं, इसलिए कमसे-कम ५,००० बुनकर हैं जो प्रति व्यक्ति प्रतिमाह १५ से १० रुपये कमाते हैं। इसके साथ-ही-साथ छपाईकी प्राचीन कलाको भी पुनरुज्जीवित किया गया है-जो लगभग समाप्त ही हो चुकी थी। आज सैकड़ों छपाई करनेवाले, रंगसाज, कपड़े धोनेवाले और अन्य लोग ईमानदारीकी रोजी कमा रहे हैं। अखिल भारतीय चरखा संघका लक्ष्य है कि संगठनके व्ययको २५ प्रतिशतसे घटाकर कमसे-कम १५ प्रतिशत कर दिया जाये। मैं आपको यह भी बता दूँ कि १,००० से लेकर १,५०० तक व्यक्ति जो गाँवोंको संगठित करनेका काम कर रहे हैं, ईमानदारी-भरा और उपयोगितापूर्ण जीवन व्यतीत कर रहे हैं। मैंने जो अन्यत्र कहा है, वही फिर कहता हूँ कि यदि खादीका भारतमें आम चलन हो जाये तो इससे उन हजारों नवयुवकोंके लिए आजीविकाका एक अच्छा साधन उपलब्ध हो जायेगा जो आज बेरोजगार हैं। जितना-कुछ उपलब्ध किया जा चुका है यदि वह १५ या २० लाख रुपयोंसे उपलब्ध हो सकता है तो आप सोच सकते हैं कि यदि देशमें बाहरसे कपड़ा आयात करनेपर आज जो ६० करोड़ रुपये खर्च किये जा रहे हैं, वह सब रुपया हमें मिल जाये तो क्या कर सकना सम्भव होगा।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, १५-९-१९२७

१. मूलमें यहाँ "डे"—अर्थात् "दिन" शब्द है।

४४७. पत्र : मीराबहनको

[१३ सितम्बर, १९२७ के पश्चात्][1]

चि० मीरा,

कल एक ही साथ तुम्हारे चार पत्र मिले और एक आज मिला। मनुष्यके रूपमें जमनालालजीमें और शल्य-चिकित्सक तथा काय-चिकित्सकके रूपमें डॉ० दलालमें मेरा इतना अधिक विश्वास है कि मुझे कोई चिन्ता ही नहीं होती। तुम्हारा कोई तार नहीं आया, इससे मैं यही समझता हूँ कि अभीतक ऑपरेशन करनेकी जरूरत नहीं पड़ी है। जैसी ऐनक जरूरी हो, खरीद लेना।

हाँ, ९ बजेका मौन[2] बहुत बड़ी बात है। यह सुझाव काकाने दिया था, उसे मैंने वैहिचक मान लिया।

सुब्बैया अभीतक बीमारीके कारण छुट्टीपर है, यद्यपि अब वह अच्छा हो गया है और पूर्व-स्वास्थ्य प्राप्त करनेकी कोशिशमें है। वह लगभग एक पखवाड़े बाद मेरे साथ हो सकेगा। देवदास सुब्बैयाको उसके श्वसुरके घर छोड़कर आज ही यहाँ आया है।

सस्नेह,

बापू

अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ५२७६) से।
सौजन्य : मीराबहन

१. १२ सितम्बर, १९२७ को मीराबहनको लिखे पत्रमें महादेव देसाई कहते हैं कि देवदास सुब्बैयाकी शुश्रूषामें लगे हुए हैं, क्योंकि वे बीमार हैं।

२. इस सम्बन्धमें अपने ८ सितम्बर, १९२७ के पत्रमें महादेव देसाईने मीराबहनको लिखा था कि "बापूने प्रति दिन ९ बजे रातसे मौन रखनेका निश्चय किया है ताकि उसके बाद उन्हें किसीसे मिलना-जुलना या कहीं आना-जाना न पड़े। अभी तो यह व्रत दो महीने रखना है। उसके बाद वे सोचेंगे कि इसे भविष्यमें जारी रखा जाये या नहीं। इसके दो अपवाद हैं — अर्थात् खुद और औरोंके बीमार हो जानेकी स्थितिमें तथा यात्रापर रहनेपर।"

४४८. पत्र : ओ० गै० विलार्डको

स्थायी पता : साबरमती
१४ सितम्बर, १९२७

प्रिय मित्र,

आपके पत्र और कुमारी मेयोकी पुस्तकके लिए धन्यवाद। उनके एक मित्र मुझे उसकी एक प्रति पहले ही भेज चुके थे। अब मैंने पुस्तकको पढ़कर 'यंग इंडिया' के लिए उसकी किसी हदतक काफी विस्तृत समीक्षा भी लिख दी है। मैंने प्रकाशकोसे कह दिया है कि 'यंग इंडिया' की एक प्रति निशान लगाकर आपको भेज दी जाये। इन बातोंको देखते हुए, मेरा खयाल है कि आप यह जरूरी नहीं मानेंगे कि आपके लिए कुछ खास लिखूं। लेकिन, अगर मेरी समीक्षा पढ़नेके बाद किसी मुद्देपर विस्तारसे लिखनेकी जरूरत समझें तो मुझे सूचित करें। आपकी समीक्षा मैंने काफी रुचिसे पढ़ी।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

श्री औसवाल्ड गैरिसन विलार्ड
२०, विसे स्ट्रीट
न्यूयॉर्क

अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ९२२८) की फोटो-नकलसे।

४४९. पत्र : ना० मो० खरेको

बुधवार, भाद्र बदी ३ [१४ सितम्बर, १९२७][1]

भाई पण्डितजी,

प्रार्थनाके विषयमें तुम्हारा पत्र मिला है। काका भी लिख चुके हैं, इसलिए मैं ज्यादा नहीं लिख रहा हूँ। प्रार्थनाका आदर्श तो एक ही है। परन्तु हम अपनी शक्तिके अनुसार चलें। अपने-आपको या जनताको धोखा न दें। यदि अधिकांश लोग चार बजे न आयें तो हम यह दावा छोड़ दें कि हम प्रार्थना चार बजे करते हैं और जो सबको अनुकूल हो वही समय रख लें। पर वैसा समय निर्धारित होनेके

१. मायावरम्से १३ सितम्बर, १९२७ को इसी विषयपर खरेको एक पत्र महादेव देसाईने भी लिखा था।

बाद सबको उस समय पर आ जाना चाहिए। जिन्हें चार बजे उठनेमें श्रद्धा है वे अपने आग्रहपर क़ायम रहें और स्वयं चार बजे उठकर जो-कुछ करना हो सो करें।

यदि रामायण सबको पसन्द न हो तो जरूर छोड़ दें।

मुझे क्या अच्छा लगेगा, इसका विचार छोड़कर यह देखें कि अपनी शक्ति कितनी है और तदनुसार जो फेरफार करना हो सो करें। उतावलीमें कुछ न करें।

'गीता' पढ़नेका समय बढ़ानेमें मुझे कोई लाभ नहीं दिखाई देता। तीन बड़े अध्याय पढ़नेमें ज्यादासे-ज्यादा पाँच मिनट लगते हैं। १४ दिन में पारायण करनेकी बात मुझे तो बहुत अच्छी लगती है। परन्तु इसमें भी जो तुम सबको अच्छा लगे वही करना।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० २५२) से।
सौजन्य : लक्ष्मीबहन खरे

४५०. भाषण : कुम्भकोणम्‌में

१४ सितम्बर, १९२७

अध्यक्ष महोदय और भाइयो,

सभी मानपत्रों और थैलियोंके लिए आप सबको धन्यवाद। आम तौरपर जैसे मानपत्र भेंट किये जाते हैं वैसे मानपत्रोंके अलावा मैं यहाँ एक और भी मानपत्र देखता हूँ, जो कुम्भकोणम्‌के हिन्दी प्रचार कार्यालयने भेंट किया है। तो मद्रासके हिन्दी प्रचार कार्यालयकी एक शाखा आपके यहाँ भी है। मैं इसके लिए आप सबको बधाई देता हूँ। यदि हिन्दी देशके इस हिस्सेमें अधिक लोकप्रिय होती तो फिर आपको इसकी जरूरत न रहती कि मैं अंग्रेजीमें बोलूँ और उसका अनुवाद तमिलमें किया जाये। तब तो मैं हिन्दीमें ही बोलता और हिन्दीसे उसका तमिल अनुवाद किया जाता। मैं जानता हूँ कि एक खासी तादादमें विद्यार्थीगण हिन्दी पढ़ रहे हैं, फिर भी जहाँतक इसके खर्चका सम्बन्ध है, इसे केन्द्रीय कार्यालयकी सहायताका मोहताज रहना पड़ता है। वास्तवमें मैं तो यह मानता हूँ कि ऐसे महत्त्वपूर्ण केन्द्रमें लोगोंमें, हिन्दी पढ़नेकी जितनी उत्सुकता है, उससे बहुत अधिक उत्सुकता होनी चाहिए और सारा खर्च स्थानीय लोगोंको ही उठाना चाहिए। अब सभी देश-प्रेमी यह स्वीकार करते हैं कि यदि हमें उत्तर और दक्षिणके बीच अधिक निकटताका सम्बन्ध स्थापित करना है तो हिन्दीका ज्ञान प्राप्त करना जरूरी है—विशेषकर देशके नेताओंके लिए।

विद्यार्थियों द्वारा भेंट की गई थैली पाकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई और उसके लिए मैं उनका आभारी हूँ। वे चाहते थे कि मैं उनकी एक अलग सभामें बोलूँ। लेकिन,

जब उन्होंने देखा कि अलग-अलग दो सभाओंमें भाषण देनेका काम मेरे लिए बहुत भारी पड़ेगा तो उन्होंने खुशी-खुशी मुझे इस भारसे मुक्त कर दिया। मैं जानता हूँ, आपको मालूम है कि कई स्थानोंमें मुझे एकाधिक सभाओंमें भाषण देना पड़ता है। मैं वैसा तभी करता हूँ जब अलग-अलग कारणोंसे यह अनिवार्य हो जाता है। लेकिन, जहाँ-कहीं मैं इस भारसे सहज ढंगसे छुटकारा पा सकता हूँ, वहाँ वैसा करता हूँ। मैं ऐसा इसलिए करता हूँ कि मैं दौरेके निर्धारित कार्यक्रमको निर्विघ्न रूपसे पूरा कर लेना चाहता हूँ। लेकिन यद्यपि मैं विद्यार्थियोंकी अलगसे की गई सभामें नहीं बोल सका, फिर भी वे यह जान लें कि मेरा हृदय सदा उनके साथ रहता है। मैं विद्यार्थियोंको एक बात समझा देना चाहूँगा कि उनके लिए अपने चरित्रको शुद्ध बनाना बहुत जरूरी है। जबतक वे अपने जीवनकी इमारत शुद्ध चरित्रकी बुनियादपर खड़ी नहीं करेंगे तबतक राष्ट्र आज उनसे जो अपेक्षाएँ करने लगा है उन्हें वे पूरा नहीं कर पायेंगे। चाहे आजकी बात लीजिए या सुदूर अतीतकी, सारी दुनियाका अनुभव यही है कि बद्धमूल पूर्वाग्रहों और अन्धविश्वासोंसे उठती पीढ़ी ही लोहा ले सकी है। इसलिए सुधारों और स्वातन्त्र्य-संग्रामके मोर्चोंपर सबसे आगे वही रहते हैं। विद्यार्थियोंसे अभी मुझे इतना ही कहना है, बाकी बातोंके लिए इस दौरेके दौरान विद्यार्थियोंके समक्ष मैं जो भी भाषण दे पाया हूँ, वे उन्हें पढ़ लें।

नगर और ताल्लुका बोर्डसे मैं उस भाषणको पढ़नेका अनुरोध करूँगा जो मैंने कल मायावरम्की नगर परिषद्के समक्ष दिया था। उसमें मैंने प्रसंगवश ही नगर-परिषद्का ध्यान, मैंने वहाँ जो भयंकर गन्दगी देखी थी, उसकी ओर आकृष्ट किया था और सच पूछिए तो वहाँ मैंने जो बातें कहीं, वे सबकी-सब इस प्रान्तकी सभी नगर परिषदोंपर लागू होती हैं। लेकिन मेरी बातोंका महत्त्व सिर्फ इसीलिए कम नहीं हो जाता कि मैं जिस बुराईकी ओर नगर-परिषदोंका ध्यान आकृष्ट करता हूँ, वे सर्वत्र पाई जाती हैं। अब यह बहुत जरूरी हो गया है कि नगर-परिषदोंके सदस्य अपने पदोंसे सम्बन्धित जिम्मेदारियोंको अच्छी तरह समझें। उन्हें अपने पदोंका उपयोग नाम या शोहरत पानेके साधनके रूपमें नहीं करना चाहिए। भारतके विभिन्न हिस्सोंमें रहनेवाले अनेकानेक मित्रोंको सलाह देनेके खयालसे मैं भारी मनसे बहुत-सी नगर-परिषदोंके कार्यकलापोंका अध्ययन करता रहा हूँ। इस अध्ययनमें मैंने देखा है कि उनका अधिकांश समय आपसी वैमनस्य और खींचतानमें ही बीतता है। मैंने देखा है कि चुनावके दिनोंमें कई नगरपालिकाओंमें भ्रष्टाचारका साम्राज्य स्थापित हो जाता है, जब कि चाहिए यह कि नगर-परिषदोंका हर सदस्य अपने-आपको जनताके शारीरिक और नैतिक स्वास्थ्यका न्यासी और संरक्षक समझे। मैं चाहता हूँ कि मैंने जिन बुराइयोंकी ओर ध्यान दिलाया है, नगर-परिषदें उन्हें ठीक तरहसे समझें और मुझे विश्वास है कि वे उन्हें दूर करनेके लिए जी-तोड़ कोशिश करेंगी। यह नगर अपनी पवित्रता और विद्वत्ताके लिए प्रसिद्ध है। इसलिए जहाँतक सफाई-स्वच्छताका सम्बन्ध है, इसे आदर्श रूप देनेकी अपेक्षा करना बहुत ज्यादा नहीं है और यह काम कठिन भी नहीं है।

अभी मैंने कहा कि कुम्भकोणम्‌ अपनी विद्वत्ताके लिए प्रसिद्ध है। इससे मुझे एक और बात याद हो आई, जिसके बारेमें कुछ कहना चाहूँगा। दुर्भाग्यवश आज हमारी विद्वत्ता — मेरा मतलब संस्कृतकी विद्वत्तासे है — अन्धविश्वासका पर्याय बनकर रह गई है। मैंने पचैयप्पा हॉलमें विद्यार्थियोंके सामने सर्वथा शुद्ध और निष्कपट भावसे कुछ बातें कही थीं। मुझे मालूम हुआ है कि यहाँके कुछ पण्डितोंको वे बातें बुरी लगी हैं। उन्होंने पत्र लिखकर मुझसे मिलनेका समय माँगा है। मैंने उन्हें अपना सन्देश भेज दिया है। पता नहीं, वह उनतक पहुँचा या नहीं। वह सन्देश यह है कि यद्यपि मेरे पास मुलाकातके लिए समय नहीं है, फिर भी आज रात ८ बजे उनसे मिलकर मैं प्रसन्न होऊँगा। लेकिन, मैं पूरे आग्रहके साथ निवेदन करना चाहूँगा कि मैंने विद्यार्थियोंके समक्ष जो-कुछ कहा वह पूरी तरह सोच-विचारकर कहा था और मुझे उसके एक भी शब्दको बदलनेका कोई कारण नहीं दिखाई देता। मैं अपनेको सनातनी हिन्दू मानता हूँ, और एक सनातनी हिन्दूके नाते मैं पूरी तरह सोच-समझकर यह कह रहा हूँ कि आज हम जिस रूपमें अस्पृश्यता बरतते हैं उसके लिए हिन्दू धर्ममें कोई आधार नहीं है और वह हिन्दू-समाजके लिए एक घोर कलंकका विषय है। मैं पूरी विनम्रतापूर्वक किन्तु उतना ही जोर देकर कहता हूँ कि यदि हम हिन्दू लोग अपने सिरसे इस कलंकको नहीं मिटायेंगे तो इस बातका गम्भीर खतरा है कि खुद हिन्दू धर्म ही मिट जायेगा। जिस धर्मके दो महान्‌ सिद्धान्त "सत्यान्नास्ति परो धर्मः" और "अहिंसा परमो धर्मः" हैं, जो धर्म तात्त्विक सत्य और तात्त्विक प्रेम-पर आधारित है, वह केवल इस कारणसे किसीको अस्पृश्य माननेकी स्वीकृति नहीं दे सकता कि उसका जन्म अमुक परिवेश या परिवारमें हुआ है। और मैं अधिकसे-अधिक जोर देकर यह भी कहता हूँ कि मैंने अभी आपके सामने जिस हिन्दू धर्मकी परिभाषा बताई उसमें बाल-वैधव्यके लिए भी कोई आधार नहीं है। सभी मानते हैं कि विवाह व्यक्तिको एक विशेष दर्जा देता है, उसके जीवनमें एक परिवर्तन लाता है। जो बालिका अपनी माता या पिताकी गोदमें बैठनेके अलावा और किसी लायक है ही नहीं, उसके लिए पवित्र विवाह-बन्धन जैसी कोई चीज नहीं हो सकती, और यदि पितृ-सुलभ वात्सल्यसे किसी पिताका मन तनिक भी नहीं पसीजता और वह अपनी कच्ची उम्रकी कन्याका विवाह कर देता है तो वह विवाह, विवाह है ही नहीं। वह तो माटीकी किसी मूर्तिको किसी पुरुषसे व्याह देना है। इसीलिए मैं कहता हूँ कि चूँकि बाल-विवाह-जैसी कोई चीज नहीं है, इसलिए बाल-वैधव्य जैसी भी कोई चीज नहीं होती।[1]

इसलिए मैं इस सलाहको बेहिचक दोहरा रहा हूँ कि यदि कुछ विद्यार्थी विवाह करना चाहते हों तो उन्हें चाहिए कि वे ढूँढकर ऐसी वयस्क लड़कियोंसे विवाह करें जो बचपनमें ही विधवा हो गई हों। यह एक परमार्थका कार्य होगा। और यदि वे कच्ची उम्रकी लड़कियोंसे शादी न करके बाल-वैधव्यको समाप्त कर देनेका संकल्प कर लें तो यह देशकी बहुत बड़ी सेवा होगी। जब कोई चीज स्पष्टतः अनैतिक हो

१. इससे आगेका अंश १६-९-१९२७ के हिन्दूसे लिया गया है।

और समस्त तर्क-बुद्धि और न्याय-भावनाके लिए अग्राह्य हो तो ऐसे संस्कृत ग्रन्थोंकी आड़में उसे सही ठहराना गलत है जिनकी उपयोगिता और प्रामाणिकता दोनों ही सन्दिग्ध हैं। शास्त्र तो हमें ऊपर उठानेके लिए, उस मार्गको आलोकित करनेके लिए हैं जिसपर चलकर हम पूर्णता प्राप्त कर सकते हैं। कौन है जो देवदासियोंकी दुःखद प्रथाको, माता-पिता द्वारा अपनी लड़कीको धर्मके नामपर लज्जा और कलंकका जीवन जीनेके लिए होम देनेकी कुरीतिको, नैतिक दृष्टिसे उचित ठहरा सकता है?

लोगोंने मुझसे कहा है कि ईसाइयों और मुसलमानोंकी सभाओंमें बोलते समय तो मेरा स्वर बहुत नरम रहता है, लेकिन हिन्दू धर्म और हिन्दुओंके दोषोंके बारेमें बोलते समय मेरे स्वरमें किसी तरहकी नरमी नहीं रहती। यह एक ऐसा अपराध है जिसे मैं खुशी-खुशी स्वीकार करता हूँ। मैं हिन्दू धर्मको जितना जाननेका दावा करता हूँ, उतना ईसाई धर्म और इस्लामके बारेमें जाननेका दावा नहीं करता। मेरा मन्तव्य चाहे जितना भी साफ हो, लेकिन ईसाइयों और मुसलमानों द्वारा उसे गलत ढंगसे समझनेकी आशंका बनी रहती है। लेकिन, हिन्दू धर्मके विषयमें कही गई बातोंके सम्बन्धमें मुझे ऐसी कोई आशंका नहीं रहती और मुझे हिन्दुओं द्वारा गलत रूपमें समझे जानेका कोई भय नहीं रहता। इसलिए शिष्टाचारका तकाजा है कि मुझे ईसाई और मुसलमान श्रोताओंके समक्ष नरमीसे बोलना चाहिए; परन्तु हिन्दुओंके सामने हिन्दू धर्म और उसकी बुराइयोंके सम्बन्धमें बोलते समय नरमीसे काम लेना मेरे लिए बिलकुल गलत होगा। मेरी स्थिति उस कुशल शल्य-चिकित्सककी स्थितिके समान है जो अपने मरीज और उसके शरीरमें मौजूद दोषोंको जानता है और उसके घावको ठीक करनेके लिए बेहिचक अपनी छुरीका इस्तेमाल करता है। मैं हिन्दू धर्मका एक सुधारक हूँ और मानता हूँ कि हिन्दू धर्मसे मैं उतना ही संसिक्त हूँ जितना कि बड़ेसे-बड़े हिन्दू; इसलिए यदि मैं झूठे शिष्टाचारवश या कोमलताकी झूठी भावनासे प्रेरित होकर उन दोषों और कमजोरियोंपर जोर नहीं देता जो हिन्दू समाजको बर्बाद किये दे रही हैं तो यह बिलकुल गलत होगा। और मैं बड़ी कृतज्ञताके साथ आप लोगोंको सूचित कर रहा हूँ कि मेरे सार्वजनिक जीवनके इस सुदीर्घ कालमें ऐसे अवसर बहुत कम आये हैं जब हिन्दुओं और हिन्दू श्रोताओंने मुझे गलत समझा हो। लेकिन, चाहे मैं अपने देशभाइयोंका यह सौहार्द पाता रहूँ या उससे वंचित हो जाऊँ, कर्त्तव्यका पथ मेरे सामने बिलकुल स्पष्ट है। जहाँ मैं इस बातका यथाशक्ति पूरा ध्यान रखूँगा कि किसीके मनको बेकार न दुखाऊँ और किसीको व्यर्थ नाराज न करूँ, वहाँ मैं जो-कुछ महसूस करता हूँ, वह तो निश्चय ही इसी तरह साफ-साफ कहता रहूँगा और जो बिलकुल सत्य तथा उचित है, वह बोलता रहूँगा। इसलिए मैं यहाँके सभी सुधी पंडितों और हरएक विचारशील हिन्दू पुरुष तथा स्त्रीसे कहूँगा कि वे अपने-अपने विचारोंपर दोबारा गौर करें और अस्पृश्यता, बाल-विवाह, बाल-वैधव्य और देवदासी प्रथाके परिणामोंपर सोचें तथा अपने मनसे पूछें कि क्या एक ऐसे सच्चे धर्ममें इन तमाम चीजोंके लिए कोई औचित्य हो सकता है, जिस धर्मकी प्रेरणाके स्रोत वे ऋषि और मनीषी थे जिन्होंने

अनन्त तपश्चर्याकी थी और जिन्होंने अपने विश्वासका आधार 'भगवद्‌गीता' की शिक्षाको बनाया था।

अब मुझे चरखेके बारेमें कुछ कहना चाहिए। मुझे इस बातकी बड़ी खुशी है कि जहाँतक आपसे बन सकता है, आप इसमें सहायता दे रहे हैं। मेरे लिए यह प्रसन्नताका विषय है कि चरखेकी आवश्यकताके विषयमें कोई मतभेद नहीं है। आपके बीच सौराष्ट्रके बुनकर लोग रहते हैं। आपमें खादी-सेवाकी क्षमता असीम है। लेकिन इतना ही काफी नहीं है कि जब कभी मैं आपके पास आऊँ, आप मुझे कुछ पैसे दें; यही पर्याप्त नहीं है कि आपमें से कुछ लोग विशेष अवसरोंपर खादी पहनते हैं। यदि आप भारतके करोड़ो भूखे-नंगे लोगोंके प्रति सचमुच अपनापन महसूस करते हो तो यह जरूरी है कि आप अपने सभी विदेशी वस्त्रोंको फेंककर खादीको अपना लें और इस तरह अपने भाइयोंको दुःख और गरीबीसे बचायें। उसी तरह मद्यपानके अभिशापसे देशको मुक्त करना भी आपका कर्त्तव्य है। यदि हम मद्यपान करनेवाले अपने भाइयोंके हित-साधनमें व्यक्तिगत रुचि लेना चाहें तो आपको पूर्ण मद्य-निषेधका आग्रह रखना चाहिए और मैं तो समझता हूँ कि वह दिन बहुत दूर नहीं है जब भारतमें पूर्ण मद्य-निषेध हो जायेगा।

जैसा कि सभी सभाओंमें होता है, अभी स्वयंसेवक लोग आपके बीच जायेंगे और जो लोग कुछ देना चाहेंगे उनसे चन्दा इकट्ठा करेंगे। फिर, ऐसी सभाओंमें, मेरी यात्राके दौरान मुझे जो जेवरात और दूसरी कीमती चीजें मिलती हैं, उनकी नीलामी भी की जाती है। इस सभामें मैं एक अँगूठी नीलाम करना चाहता हूँ। अँगूठी इस समय मेरे पास है। मेरे मेजबान (श्री पंतुलु अय्यर) द्वारा भेंट की गई एक चाँदीकी तश्तरी भी थी, लेकिन दुर्भाग्यवश मैं उसे साथ नहीं ला पाया हूँ।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, १५-९-१९२७ और १६-९-१९२७

४५१. बातचीत : कुम्भकोणम्‌में पण्डितोंके साथ

१४ सितम्बर, १९२७

पिछली रात यहाँके कई प्रमुख पण्डितोंने महात्मा गांधीसे मिलकर बातचीत की। ऐसा मालूम हुआ है कि अभी हालमें श्री गांधीने बाल-विधवाओं और उनके विवाहके बारेमें तथा अस्पृश्यताके सवालपर जो-कुछ कहा था, उसपर पण्डितोंने आपत्ति की। उनका कहना था कि श्री गांधीका यह कथन गलत है कि हिन्दू-शास्त्रोंमें उन प्रथाओंका समर्थन कहीं भी नहीं किया गया है। वे प्रमाण देनेको प्रस्तुत थे।

श्री गांधीने उन्हें समझाया कि हिन्दू धर्मकी रक्षाका सही मार्ग शास्त्रोंके छुट-पुट उद्धरणोंको प्रमाण-रूपमें पेश करना नहीं, बल्कि अपनी अन्तरात्माके निर्देशके अनुसार चलना है। उनके विचारसे, ऐसी कोई भी चीज हिन्दू-शास्त्रोंके अनुसार धर्म

नहीं हो सकती जो सत्य और प्रेमके विरुद्ध है। उन्होंने उनसे अनुरोध किया कि वे कुरीतियोंके विनाशकारी प्रभावसे हिन्दू धर्मको बचानेका जो काम कर रहे हैं उसमें वे उनके साथ सहयोग करें और सुधारके मार्गमें रोड़े अटकाकर हिन्दू धर्मके विनाशमें सहायक न हों।

[अंग्रेजीसे]
बॉम्बे क्रॉनिकल, १६-९-१९२७

४५२. नाली-निरीक्षककी रिपोर्ट

सज्जनोंके ओठोंपर दोष भी गुण बन जाते हैं,
और दुर्जनोंके ओठोंपर गुण भी दोष; इसमें आश्चर्यकी कोई बात नही।
मेघ समुद्रका खारा पानी पीकर भी मीठे जलकी वर्षा करते है,
किन्तु साँप दूध पीकर भी दुःसहतर विष ही उगलते हैं।
नदियाँ अपना जल आप नही पीती; वृक्ष अपने फल आप ही नहीं खाते,
और न मेघ ही [अपने द्वारा सींची हुई] फसलोंका सेवन करते हैं;
सज्जनोंकी सारी विभूति परोपकारके लिए ही होती है।[1]

इधर बहुत-से भाइयोंने मुझे पत्र लिखते हुए साथमें कुमारी मेयोकी पुस्तक '*मदर इंडिया*' पर छपी समालोचनाओं और विरोधोंकी कतरनें भेजी हैं। कुछने तो कतरनें भेजनेके अलावा मुझे पुस्तकपर अपनी राय जाहिर करनेको भी लिखा है। लेखिकाने पुस्तकमें मेरे बारेमें जो-कुछ लिखा है, उससे लन्दन-निवासी एक भाईके मनमें अनेक शंकाएँ उठ खड़ी हुई हैं और उन्होंने गुस्सेमें भरकर मुझसे उन शंकाओंका समाधान करनेको कहा है। खुद कुमारी मेयोने भी मुझे पुस्तककी एक प्रति भेजनेका सौजन्य दिखाया है।

इन दिनों मैं दौरेपर रहा हूँ और निश्चय ही मैं इस पुस्तकको पढ़नेके लिए समय नहीं निकाल पाता — विशेषकर इसलिए कि मेरी शक्ति सीमित है और कई डाक्टर मित्रोंने मुझे सावधान कर दिया है कि मैं बहुत ज्यादा मेहनत न करूँ। लेकिन, इन पत्रोंके कारण मेरे लिए यह जरूरी हो गया कि पुस्तकको तत्काल पढ़ डालूँ।

पुस्तक बड़ी चतुराई और काफी सशक्त ढंगसे लिखी गई है। उद्धरण बड़ी सावधानीसे चुने गये हैं और उनकी वजहसे ऐसा लगता है, मानो पुस्तकमें सच्ची बातें ही

१. गुणायन्ते दोषाः सुजनवदने दुर्जनमुखे
गुणा दोषायन्ते तदिदमपि नो विस्मयपदम्।
महा मेघः क्षारं पिबति कुरुते वारि मधुरम्
फणी क्षीरं पीत्वा वमति गरलं दुःसहतरम्॥
पिबन्ति नद्यः स्वयमेव नाम्भः स्वयं न खादन्ति फलानि वृक्षाः।
नादन्ति सस्यं खलु वारिवाहाः परोपकाराय सतां विभूतयः॥

लिखी गई है। इसलिए, इसे पढ़कर मेरे मनमें जो धारणा बनी है, वह यह कि यह एक ऐसे नाली-निरीक्षककी रिपोर्ट है जिसे, जिस देशके बारेमें उसे रिपोर्ट पेश करनी है, उस देशकी तमाम नालियोंको खोलकर उनकी जाँच करनेके लिए या फिर खोली गई नालियोंसे कितनी बदबू आती है, इसका सुन्दर और सजीव वर्णन तैयार करके पेश करनेके लिए भेजा गया हो। यदि कुमारी मेयोने यह बात साफ-साफ स्वीकार कर ली होती कि वे तो सिर्फ भारतकी नालियोंको खोलकर उनकी जाँच करनेके लिए ही यहाँ आई थी, तो उनकी पुस्तकके खिलाफ शायद कोई शिकायत न रहती। लेकिन कुल मिलाकर देखें तो उनका कहना यही है कि "ये नालियाँ ही हिन्दुस्तान हैं", और यह बात वे कहती भी हैं एक प्रकारके विजय-गर्वके साथ। यह सच है कि अन्तिम परिच्छेदमें सावधानी बरतनेके लिए कहा गया है, लेकिन यह भी वास्तवमें, लेखिका द्वारा हर चीजकी आँख मूँदकर की गई निन्दाको पाठकोंकी नजरमें बिलकुल सच ठहरानेकी एक चाल है। मुझे तो लगता है कि जिसे भारतके बारेमें कुछ भी जानकारी है, वह इस अभागे देशकी जनताके विचार और जीवन-पद्धतिके खिलाफ लगाये गये इन भयंकर आरोपोंको कभी स्वीकार नहीं कर सकता।

पुस्तकमें वर्णित तथ्य चाहे जितने सच्चे हों, लेकिन यह पुस्तक तो निस्सन्देह असत्यमय है। अगर मैं लन्दनकी ऐसी तमाम गन्दी नालियोंको खोलकर उनसे निकलनेवाली गन्दगी और बदबूका पूरी तफसीलके साथ वर्णन करूँ और कहूँ कि "यह देखिए लन्दन" तो मेरे द्वारा वर्णित तथ्योंको तो कोई चुनौती नहीं दे सकेगा, लेकिन मेरे निर्णयको सत्यका स्वांग ही माना जायेगा और यह बिलकुल उचित होगा। कुमारी मेयोकी पुस्तक इससे तनिक भी बेहतर, तनिक भी अलग ढंगकी रचना नहीं है।

लेखिका कहती हैं कि भारतके बारेमें उन्होंने जो साहित्य पढ़ा, उससे उन्हें सन्तोष नहीं हुआ और इसलिए वे "लोगोंके दैनिक जीवनकी सामान्य बातोंके अवलोकनसे कोई ऐसा स्वेच्छाप्रेरित यात्री, जिसने राज्यकी ओरसे कोई आर्थिक सहायता न ली हो, जिसने अपने मनमें पहलेसे ही कोई धारणा न बना रखी हो और जो बिलकुल निष्पक्ष हो, जो-कुछ जान-समझ सकता है, वह सब जानने-समझनेके लिए" भारत आई।

उनकी पुस्तकको मैंने बहुत ध्यानसे पढ़ा और मुझे खेदके साथ कहना पड़ता है कि उसको पढ़नेके बाद मैं उनके उक्त दावेको स्वीकार नहीं कर पा रहा हूँ। हो सकता है, उन्हें किसी राज्यकी ओरसे किसी तरहकी की आर्थिक सहायता प्राप्त न हुई हो। लेकिन, उनकी पुस्तकसे ऐसा तो कहीं नहीं लगता कि उन्होंने मनमें पहलेसे कोई धारणा नहीं बना रखी थी और वे पूरी तरह निष्पक्ष थीं। जिनमें सरकारकी दिलचस्पी हो, सरकार द्वारा संरक्षित, ऐसे प्रकाशन हमारे लिए कोई नई चीज नहीं हैं; और इस विशेषणको "सरकारी सहायता-प्राप्त" विशेषणके ही एक सुन्दर पर्यायके रूपमें स्वीकार किया जाता है। हम अंग्रेजी हुकूमतके पहलेसे ही इस बातको जानते-समझते आये हैं कि शासन-कला (जिसे अंग्रेजोंने पूर्णता प्रदान की है) में ईमानदार और सम्माननीय कहे जानेवाले विद्वानोंकी सेवाएँ गुप्त रूपसे प्राप्त करनेका फन भी शामिल

है। इन लोगोंसे सन्दिग्ध व्यक्तियोंके भेद लेने और तत्कालीन सरकारके गुणोंका बखान करनेवाले ऐसे लेख लिखानेका काम लिया जाता है, मानो ये लेख बिलकुल निष्पक्ष व्यक्तियों द्वारा सरकारको दिये गये प्रमाणपत्र हों। मुझे उम्मीद है कि यदि कुमारी मेयोपर भी कुछ ऐसा सन्देह किया जाये तो वे बुरा नहीं मानेंगी। उन्हें यह जानकर शायद कुछ सन्तोष मिले कि भारतके कुछ अच्छेसे-अच्छे शुभचिन्तकोंपर भी ऐसा सन्देह किया गया है।

लेकिन, अगर शंका-सन्देहकी बात छोड़ भी दें तो सवाल यह उठता है कि उन्होंने यह असत्यमय पुस्तक लिखी क्यों। पुस्तक दो तरहसे असत्यमय है। एक तो इस तरह कि उन्होंने एक सम्पूर्ण राष्ट्रकी या उन्हींके शब्दोंमें "भारतकी सभी जातियोंकी" (वे हमें एक राष्ट्र माननेको तो तैयार ही नहीं हैं) सफाई-सम्बन्धी आदतों, नैतिक मूल्यों, धर्म आदिकी लगभग निरपवाद रूपसे निन्दा की है। दूसरे इस तरह कि उन्होंने ब्रिटिश सरकारमें ऐसे-ऐसे गुण बताये हैं जिनको किसी तरह सच्चा सिद्ध नहीं किया जा सकता और जिन गुणोंका श्रेय ब्रिटिश सरकारको देते देखकर बहुत-से ईमानदार सरकारी अधिकारियोंके चेहरे भी शर्मसे लाल हो उठेंगे।

अगर कुमारी मेयोको अपने इस कामके लिए सरकारसे कुछ प्राप्त न हुआ हो तो कमसे-कम इतना तो है ही कि वे भारतकी कट्टर विरोधी और ब्रिटेनकी प्रबल प्रशंसक और पक्षधर हैं। भारतीयोंकी अच्छाइयोंको देखनेसे उनकी नजर इनकार करती है और अंग्रेजों तथा अंग्रेजी हुकूमतकी बुराइयोंकी ओरसे उनकी आँखें बन्द हैं।

उनकी पुस्तक पढ़कर पश्चिमवालोंकी निर्णय-बुद्धिके बारेमें कोई ऊँची धारणा नहीं बनती। यद्यपि वे पश्चिमके सनसनी फैलानेवाली चीजें लिखनेवाले लेखकोंके वर्गका प्रतिनिधित्व करती हैं, लेकिन मैं अपने इस विश्वाससे संतोष प्राप्त करता हूँ कि इस वर्गके लेखकोंका जोर अब घट रहा है। अमेरिकामें ऐसे पाठकोंकी संख्या दिन-ब-दिन बढ़ती जा रही है जो सनसनी फैलानेवाली, बाहरसे भड़कदार दिखनेवाली या छद्मपूर्ण रचनाओंको पसन्द नहीं करते। मगर दुःखकी बात यह है कि अभीतक पश्चिममें ऐसे हजारों लोग हैं जिन्हें इन सस्ते साधनोंसे सनसनी और उत्तेजना प्राप्त करनेमें बड़ा मजा आता है। इसके अलावा, लेखिका द्वारा दिये गये सभी उद्धरण और सन्दर्भ-विच्छिन्न तथ्य भी सही नहीं हैं। यहाँ मैं उन्हींकी चर्चा करूँगा, जिनके बारेमें मुझे निजी तौरपर कुछ मालूम है। यह पुस्तक सन्दर्भ-विच्छिन्न उद्धरणों और ऐसे लेखांशोंसे भरी पड़ी है, जिनकी प्रामाणिकताको अधिकृत तौरपर चुनौती दी गई है।

लेकिन बाल-विवाहके साथ कविगुरु (रवीन्द्रनाथ ठाकुर) का नाम संयुक्त करके वे औचित्य और शिष्टताकी सभी सीमाएँ लाँघ गई हैं। यह सच है कि कविगुरुने कम उम्रमें विवाह करनेकी प्रथाके बारेमें कहा है कि यह अवांछनीय नहीं है। लेकिन बाल-विवाह और कम उम्रमें विवाह करनेकी प्रथामें जमीन-आसमानका अन्तर है। यदि लेखिकाने शान्तिनिकेतनकी स्वतन्त्र और स्वातन्त्र्य-प्रिय युवतियों और महिलाओंका परिचय

प्राप्त करनेकी तकलीफ उठाई होती तो उन्हें मालूम हो जाता कि कम उम्रमें विवाह करनेके चलनसे कवि-गुरुका मतलब क्या था।

उन्होंने अपनी दलीलके समर्थनमें मेरी बातों और मेरे लेखोंको बार-बार उद्धृत करके मुझे बहुत इज्जत बख्शी है। ऐसे व्यक्तिकी बातोंकी ओर कोई भी समझदार और निष्पक्ष पाठक ध्यान नहीं देगा जो किसी सुधारकके रोजनामचेमें से कुछ उद्धरण छाँट-कर निकाल ले और फिर उन्हें सन्दर्भ-विच्छिन्न करके पाठकोंके सामने पेश करते हुए उन लोगोंकी निन्दा और आलोचना करने लग जाये जिनके बीच वह सुधारक काम करता हो। लेकिन, उन्हें तो भारतकी हर चीजको बुरे रंगमें रँगकर पेश करनेकी जल्दी थी, सो उन्होंने न केवल मेरे लेखोंका मनमाना उपयोग किया है, बल्कि उन्हें यह भी जरूरी नहीं लगा कि उन्होंने या अन्य लोगोंने मुझपर जो कुछ-एक बातें आरोपित की हैं, उनकी सचाई जाननेके लिए वे मुझसे पूछताछ कर लेतीं। हकीकत यह है कि हम भारतवासी लोग जिस चीजको न्यायपालिका और कार्यपालिका, दोनोंके अधिकारोंके एक व्यक्तिमें निहित होनेके दोषके रूपमें जानते हैं, यहाँ कुमारी मेयो भी उसी चीजकी शिकार हो गई हैं। वे अभियोक्ता भी हैं और न्यायाधीश भी। उन्होंने मुझसे अपनी मुलाकातका वर्णन करते हुए पाठकोंको बताया है कि मेरे साथ बराबर दो 'सचिव' रहते हैं, जो मेरे मुँहसे निकलनेवाली एक-एक बातको दर्ज करते जाते हैं। मैं जानता हूँ कि इस मामलेमें तथ्योंको जान-बूझकर तोड़ा-मरोड़ा नहीं गया है। फिर भी, उन्होंने इस विषयमें जो-कुछ कहा है, वह सच नहीं है। मैं उन्हें बता देना चाहता हूँ कि मेरे साथ ऐसा कोई व्यक्ति नहीं रहता जिसे मेरे मुँहसे निकली हर बातको दर्ज करते जानेके लिए नियुक्त किया गया हो या जिससे ऐसा करनेकी अपेक्षा रखी जाती हो। मेरे साथ मेरे एक सहयोगी रहते हैं, जिनका नाम महादेव देसाई है। वे बॉसवेलको[1] भी मात करनेकी कोशिश में लगे हुए हैं, और यह सच है कि जब-कभी वे मेरे पास होते हैं, वे मेरे मुँहसे निकली ऐसी हर बातको लिखते जाते हैं जिसे वे अक्लमन्दीकी बात समझते हैं। मैं चाहूँ भी तो उनको इस कामसे रोक नहीं सकता, क्योंकि उनके और मेरे बीच भारतीय विवाह-सम्बन्धके ढंगका अविच्छेद्य सम्बन्ध है। लेकिन, कुमारी मेयोने मेरे साथ सबसे बड़ा अन्याय तो पृष्ठ ३८७-८८ पर किया है। पहले तो वे कविगुरुके बारेमें कहती हैं कि उन्होंने एक जोरदार फतवा दिया कि "पश्चिमके पास चिकित्साशास्त्रके क्षेत्रमें जो-कुछ है, आयुर्वेद उस सबसे आगे है" (यहाँ वे अपने कथनकी पुष्टिमें कोई उद्धरण नहीं जुटा पाई हैं)। इसके बाद वे मेरा यह मत उद्धृत करती हैं कि अस्पताल पापका प्रचार करनेवाली संस्थाएँ हैं; और तब वे एक ऐसे पवित्र प्रसंगको, जो अंग्रेज शल्य-चिकित्सकों और आशा करता हूँ कि मेरे लिए भी, बड़ा सम्मानास्पद है, तोड़-मरोड़कर पेश करती हैं। यहाँ मैं उनकी पुस्तकसे वह पूरा अंश उद्धृत कर रहा हूँ, जिसके लिए पाठक क्षमा करेंगे।

> चूँकि उस समय वे जेलमें थे, इसलिए भारतीय चिकित्सा सेवा-संगठनका एक अंग्रेज शल्य-चिकित्सक सीधे उनके पास आया और जैसा कि उस समयके

१. बॉसवेल (१७४०-९५); प्रसिद्ध अंग्रेज लेखक, जॉनसनके जीवनी-कार।

अखबारोंमें छपा था, उसने उनसे कहा: "श्री गांधी, बड़े दुःखके साथ बताना पड़ रहा है कि आपको एपेंडिसाइटिस है। अगर आप मेरे मरीज होते तो मैं तत्काल आपका आपरेशन कर देता। लेकिन आप तो शायद अपने आयुर्वेदिक चिकित्सकको बुलाना चाहेंगे।"

लेकिन पता चला कि श्री गांधीका इरादा वैसा नहीं था।

इसपर उस शल्य-चिकित्सकने उनको समझाते हुए कहा: "मैं तो यही चाहूँगा कि आपका आपरेशन न करूँ, क्योंकि अगर कहीं कुछ बुरा हुआ तो आपके मित्रगण हम लोगोंपर, जिनका कर्त्तव्य आपकी देख-भाल करना है, यह आरोप लगायेंगे कि हमारा इरादा ही बुरा था।"

इसपर श्री गांधीने आग्रहपूर्वक कहा: "अगर आप आपरेशन करनेको तैयार हो जायें तो मैं अभी अपने मित्रोंको बुलाकर समझा दूँ कि आप मेरे अनुरोधपर आपरेशन करने जा रहे हैं।"

इस प्रकार श्री गांधी जान-बूझकर "पापका प्रचार करनेवाली संस्था" की शरणमें गये, वहाँ उन्होंने भारतीय चिकित्सा सेवा-संगठनके एक अधिकारीसे, "एक अधमतम मानव प्राणी" से, आपरेशन करवाया और एक अंग्रेज परिचारिकाकी सतर्क देख-रेखमें स्वास्थ्य-लाभ किया और ऐसा सुना जाता है कि उस परिचारिकाके बारेमें उनकी यह धारणा बनी कि "औरत कुछ कामकी" है।

यह विवरण सत्यका घोर उपहास है। वैसे तो इसमें बहुत सारी गलत बातें कही गई हैं, लेकिन यहाँ मैं उन सभीके बारेमें सही तथ्य न बताकर सिर्फ उन्हीं गलतबयानियोंको दुरुस्त करूँगा जो लांछनपूर्ण हैं। इस प्रसंगमें किसी आयुर्वेदिक चिकित्सकको बुलानेकी तो कोई बात ही नहीं थी। कर्नल मैडॉक चाहते तो उन्हें अधिकार था कि वे मुझसे पूछे बिना, बल्कि मेरी रजामन्दीके बिना भी मेरा आपरेशन कर सकें। लेकिन उन्होंने और प्रधान शल्य-चिकित्सक हूटनने मेरी भावनाका पूरा खयाल रखते हुए मुझसे पूछा कि क्या मैं अपने डाक्टरोंके आनेतक इन्तजार करूँगा। मेरे डाक्टरोंको वे जानते थे और इन डाक्टरोंने पाश्चात्य काय-चिकित्सा और शल्य-चिकित्सा-विज्ञान दोनोंका प्रशिक्षण प्राप्त किया था। अब ऐसी हालतमें मैं उनकी शिष्टता और सौजन्यका उचित उत्तर देनेमें पीछे कैसे रहता? सो मैंने उनसे कहा कि उनका इन्तजार करनेकी कोई जरूरत नहीं है, आप आपरेशन कर सकते हैं। वैसे उन्होंने उन डाक्टरोंको तार दे दिये थे। मैंने यह भी कहा कि आप चाहें तो आपरेशन विफल हो जानेकी स्थितिमें आपकी सुरक्षाके लिए मैं यह लिखकर दे सकता हूँ कि आपरेशन मैंने अपनी मर्जीसे कराया। मैं यह जतानेकी कोशिश कर रहा था कि न तो उनकी योग्यतामें और न उनकी सदाशयतामें ही मुझे कोई शक था। मेरे लिए तो वह अपनी व्यक्तिगत सद्भावना प्रकट करनेका एक सुखद अवसर था।

मैंने पाश्चात्य शिक्षा-पद्धतिमें प्रशिक्षित डाक्टरोंसे एकाधिक बार खुद अपना भी इलाज करवाया है और अपने आश्रितोंका भी। इन डाक्टरोंमें काय-चिकित्सक भी

रहे हैं और शल्य-चिकित्सक भी, भारतीय डाक्टर भी रहे हैं और यूरोपीय भी। फिर भी, जहाँतक अस्पतालों आदिके बारेमें मेरी रायका सम्बन्ध है, वह आज भी ज्यों-की-त्यों है। इसी प्रकार यद्यपि मैं मोटर-गाड़ियों और रेलगाड़ियोंमें सवारी करता हूँ, फिर भी मैं उनका उतना ही प्रबल विरोधी हूँ जितना कि कभी था। मैं खुद इस शरीरको भी एक बुराई और अपनी उन्नतिके मार्गमें बाधक मानता हूँ। लेकिन जब-तक यह चलता है तबतक इसका उपयोग करनेमें और खुद इसीके नाशके लिए अपनी समझके मुताबिक इसका अच्छेसे-अच्छा उपयोग करनेकी कोशिश करनेमें मैं कोई असंगति नहीं देखता। तथ्योंके तोड़-मरोड़का यह एक ऐसा उदाहरण हुआ जिसके बारेमें खुद मैं जानता हूँ।

लेकिन, पुस्तक ऐसी घटनाओं और प्रसंगोंके विवरणसे भरी पड़ी है जिसके बारेमें कमसे-कम एक औसत भारतीयको तो कोई जानकारी नहीं है। उदाहरणके लिए, उनका कहना है कि बम्बईमें जय-जयकारकी तुमुल ध्वनिके बीच युवराजका जबरदस्त स्वागत किया गया था। फिर वे इस घटनाका वर्णन करती हैं। भारतके किसी भारतीयको तो इसकी कोई जानकारी नहीं है, और यदि यह बात हुई होती तो उसे इसकी जानकारी अवश्य होती। उनके अनुसार बम्बईमें एक स्थानपर भीड़ युवराजकी मोटरगाड़ीके पास पहुँचनेके लिए रेल-पेल करने लगी। वे कहती हैं कि :

> पुलिसने गाड़ीके चारों ओर घेरा बनानेकी कोशिश की, लेकिन उसकी कोशिश बेकार हुई। जय-जयकार करती हुई भीड़ गाड़ीके चारों ओर घिर आई और वह स्टेशनतक बहुत धीमी गतिसे गाड़ीके साथ-साथ चलती रही।

वे आगे कहती हैं कि फिर स्टेशनपर जब गाड़ीके रवाना होनेमें तीन मिनटकी देर थी तब युवराजने आदेश दिया कि घेरे हटा लिये जायें और "भीड़" को अन्दर आने दिया जाये। इसके बाद जो-कुछ हुआ, उसका वर्णन वे इन शब्दोंमें करती हैं :

> वह अपार भीड़ बाढ़से हहराती किसी नदीके समान उमड़ आई — जय-जयकार करती, हँसती और रोती हुई; और जब गाड़ी चल पड़ी तो जिस डिब्बेमें युवराज बैठे थे उसके साथ-साथ वह तबतक दौड़ती रही जबतक कि गाड़ीकी गति तेज हो जानेके कारण उसके लिए साथ दौड़ सकना असम्भव न हो गया।

कुमारी मेयोके अनुसार यह सब २२ नवम्बर, १९२१ की शामको घटित हुआ जब कि दंगेकी बुझती हुई चिनगारियोंमें गर्मी शेष थी। यह रोमानी परिच्छेद, जिसका शीर्षक है "प्रकाशकी इन किरणोंको देखिए", इस तरहके विवरणोंसे भरा पड़ा है।

उन्नीसवें परिच्छेदमें विभिन्न लोगों द्वारा ब्रिटिश सरकारकी उपलब्धियोंकी प्रशंसामें कही गई बातोंका संग्रह किया गया है, हालांकि इनमें से लगभग हर बातकी सत्यताको ऐसे अंग्रेज और भारतीय लोगोंने, जिनकी ईमानदारीमें सन्देह करनेकी कोई गुंजाइश नहीं है, अनेक बार सफलतापूर्वक चुनौती दी है। सत्रहवें परिच्छेदमें दिखाया गया है कि हम "दुनियाके लिए एक खतरा हैं।" यदि कुमारी मेयोके प्रयत्नोंसे

राष्ट्र-संघ भारतको शोषणके लिए अनुपयुक्त एक ऐसा देश घोषित कर दे जिससे किसी प्रकारका सम्बन्ध रखना अनुचित है तो मुझे इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि इससे पाश्चात्य संसार और प्राच्य संसार दोनोंको लाभ होगा। हो सकता है, इसके बाद हमारे बीच आपसी लड़ाई-झगड़े उठ खड़े हों। हो सकता है, उनके द्वारा दिखाया यह भय कि तब पश्चिमोत्तर और मध्य एशियाकी लुटेरी जातियाँ हिन्दुओंको चबा जायेंगी, सही साबित हो। लेकिन, आज जिस तरह इस देशके लोगोंको उत्तरोत्तर अधिकाधिक पुसत्वहीन बनाया जा रहा है, उससे तो वह स्थिति लाख दर्जे बेहतर होगी। जिस प्रकार बिजली छुआकर मारना जीते-जी जला देनेकी अपेक्षा प्राण-दण्डका अधिक मानवीयतापूर्ण तरीका है, उसी प्रकार यदि मध्य एशियासे एकबारगी ही कोई बवंडर उठे और हम लोगोंको, जिन्हें कुमारी मेयो कमजोर, गन्दे, अन्धविश्वासी और काम-पीड़ित हिन्दू कहती हैं, अपनी लपेटमें लेकर समाप्त कर दे तो वह, आज हम जिस तरह जीते-जी तिल-तिलकर जलालतकी मौत मर रहे हैं, उसकी अपेक्षा हमारी मुक्तिका कहीं अधिक मानवीय तरीका होगा। लेकिन, दुर्भाग्यवश कुमारी मेयोका ऐसा कोई लक्ष्य नहीं है। उन्हें तो बस यही सिद्ध करनेकी लगी हुई है कि भारत अपना शासन आप नहीं चला सकता और इसलिए इसपर गोरोंका प्रभुत्व सदा बना रहना चाहिए।

इस चतुर लेखिकाने अपनी पुस्तकके विभिन्न पात्रोंके मुँहसे जो लच्छेदार बातें कहलाई हैं, उन्हें पढ़ते हुए तो मुझे यही लगा कि सनसनी पैदा करनेके उद्देश्यसे लिखे किसी ऐसे सस्ते उपन्यासके पृष्ठ पढ़ रहा हूँ जिसका सत्यसे कोई सरोकार नहीं है। उनकी बहुत-सी बातें मुझे बिलकुल अविश्वसनीय लगती हैं और जिन लोगोंके मुँहसे ये बातें कहलाई गई हैं, उनके बारेमें भी कोई अच्छा खयाल नहीं बनता। उदाहरणके लिए एक देशी राजाके मुँहसे कहलाई इस बातको लीजिए :

> उनमें से एकने ऐसे शान्त-भावसे, जिसमें काफी अर्थ भरा हुआ था, कहा : "हमारी सन्धियाँ तो इंग्लैंडके सम्राट्से हुई हैं। भारतके देशी राजाओंने उस सरकारसे कोई सन्धि नहीं की है जिसमें बंगाली बाबू भरे हुए हैं। हम ऐसे नये टुटपुंजिये अफसरोंसे कभी कोई व्यवहार नहीं रखेंगे। जबतक यहाँ अंग्रेजी हुकूमत है तबतक सम्राट्के प्रतिनिधियोंके रूपमें ब्रिटेन हमारे पास शिष्ट-सुसंस्कृत अंग्रेजोंको भेजता रहेगा और सब-कुछ इस ढंगसे चलता रहेगा, जैसा कि मित्रोंके बीच चलना चाहिए। यदि अंग्रेज इस देशको छोड़कर चले जायेंगे तो, जैसा कि राजाओंको चाहिए, हम खुद ही भारतको सीधा कर लेंगे।"
> (पृष्ठ ३१६)

भारतके देशी रजवाड़े चाहे जितने गिरे हुए हों, जबतक मेरे सामने ऐसा पुष्ट प्रमाण पेश नहीं किया जाता जिसकी सचाईमें सन्देहकी कोई गुंजाइश ही न हो तबतक मैं यह नहीं मानना चाहूँगा कि भारतमें कोई राजा इतना गिरा हुआ भी हो सकता है कि वह ऐसी बातें कहे। कहनेकी जरूरत नहीं कि लेखिकाने उस राजाका नाम नहीं बताया है जिसने उनसे यह सब कहा।

पृष्ठ ३१४ पर एकके मुंहमें इससे भी गर्हित बात कहलाई गई है। वह इस प्रकार है:

> दीवानने कहा: "महाविभव ऐसा नहीं मानते कि ब्रिटेन भारतको छोड़नेवाला है। फिर भी, हो सकता है, इंग्लैंडकी यह नई सरकार ऐसा नासमझीभरा काम कर बैठे। इसी खयालसे महाविभव अपनी सेनाको सँवार रहे हैं, गोला-बारूद इकट्ठा कर रहे हैं और चांदीके सिक्के ढलवा रहे हैं। अगर इंग्लैंड भारतको छोड़कर चला गया तो तीन महीनेमें ही सारे बंगालमें कहीं एक भी रुपया, और एक भी कुमारी नहीं रह जायेगी।"

पाठकोंको न तो महाविभवका नाम बताया गया है और न उस समझदार दीवानका।

इसी तरह कुमारी मेयोने भारतमें रहनेवाले अंग्रेज स्त्री-पुरुषोंके मुंहमे भी बहुत-सी बातें कहलाई हैं। इन बातोंके सम्बन्धमें तो मैं सिर्फ इतना ही कह सकता हूँ कि यदि उन लोगोंने, जिनके मुंहसे कुमारी मेयोने ये बातें कहलाई हैं, सचमुच इनमें से कुछएक बातें कही भी हों तो उनमें जो विश्वास दिखलाया गया उसके लायक वे बिलकुल नहीं हैं और उन्होंने अपने आश्रितों और मरीजोंके साथ ही नहीं, बल्कि जिस जातिमें उनका जन्म हुआ है उसके साथ भी अन्याय किया है। यह विचार मेरे लिए बहुत दुखदायी होगा कि ऐसे बहुत-से अंग्रेज स्त्री और पुरुष हैं जो अपने भारतीय मित्रोंसे एक बात कहते हैं और पश्चिमके विश्वस्त साथियोंसे दूसरी। जिन अंग्रेज भाइयों और बहनोंकी नजर कुमारी मेयो द्वारा कूड़ा इकट्ठा करनेकी हेर्गोंसे इकट्ठे किये गये कूड़े-करकटपर पड़ेगी वे समझ जायेंगे कि मेरा मतलब किन उक्तियोंसे है। भारतको एक अधम और पतित देशके रूपमें चित्रित करनेकी फिक्रमें कुमारी मेयोने अनजाने ही उन लोगोंके चरित्रको गिरा दिया है जिनका उपयोग उन्होंने अपने इन तथ्योंको प्रमाणित करनेके लिए किया है, जिनके बारेमें वे बड़े फख्रके साथ कहती हैं कि इन्हें "गलत साबित करना या तनिक भी हिला-डुला पाना" असम्भव है। मेरा खयाल है, अब मैंने इस लेखमें ऐसे पर्याप्त प्रमाण प्रस्तुत कर दिये हैं जिनको एक नजर डालनेसे ही यह स्पष्ट हो जाता है कि उनके द्वारा बताये बहुत-से तथ्य तो अलग-अलग देखनेपर भी गलत साबित हो जाते हैं। और इन सबको मिलाकर देखनेपर जो चित्र सामने आता है, वह तो बिल्कुल ही गलत है।

लेकिन मैं यह लेख लिख किनके लिए रहा हूँ? निश्चय ही, भारतीय पाठकोंके लिए नहीं। मैं इसे लिख रहा हूँ उन अनेक अमेरिकी और अंग्रेज पाठकोंके लिए जो इन पृष्ठोंको हर हफ्ते बड़ी सहानुभूति और ध्यानसे पढते हैं। मैं उन्हें सावधान कर देता हूँ कि वे इस पुस्तकमें लिखी बातोंका विश्वास न करें। मुझे तो नहीं याद आता कि मैंने कभी वैसा कोई सन्देश दिया हो, जैसा सन्देश देनेका आरोप कुमारी मेयो मुझपर लगाती हैं। वहाँ सिर्फ एक व्यक्ति उपस्थित था और अगर मेरी कही बातोंमें से कुछको दर्ज भी किया हो तो उसीने किया होगा। मगर उसे भी यह याद नहीं कि मैंने वैसा कोई सन्देश दिया हो जैसा सन्देश देनेकी बात कुमारी मेयो कहती

हैं। हाँ, मैं यह अवश्य जानता हूँ कि मुझसे मिलनेके लिए आनेवाले हर अमेरिकीको मैं क्या सन्देश देता हूँ। वह इस प्रकार है "आपको अमेरिकामें जो अखबार और आकर्षक साहित्य मिलता है, उसमें लिखी बातोंपर विश्वास न कीजिए। लेकिन अगर आप भारतके बारेमें कुछ जानना चाहते हों तो एक अध्येताके रूपमें इस देशको देखने जाइए और खुद ही इसका अध्ययन कीजिए। अगर आप ऐसा नहीं कर सकते तो भारतके बारेमें उसके पक्षमें और विपक्षमें भी जो-कुछ लिखा जाता है, उसका अध्ययन कीजिए और इसके बाद खुद ही निष्कर्ष निकालिए। आपको जो सामान्य साहित्य मिलता है उसमें या तो बढ़ा-चढ़ाकर भारतकी बुराई की गई होती है या फिर उसकी बहुत ज्यादा प्रशंसा की हुई होती है।" मैं अमेरिकियों और अंग्रेजोंको आगाह करता हूँ कि वे कुमारी मेयोकी नकल न करें। वे कहती तो हैं कि वे खुला दिमाग लेकर इस देशको देखने आई थीं, किन्तु वास्तवमें उनका दिमाग तनिक भी खुला हुआ नही था। वे इस देशमें अपने मनमें पहलेसे ही कुछ धारणाएँ बनाकर और पूर्वाग्रह लेकर आई थीं। यह बात उनकी पुस्तकके प्रत्येक पृष्ठसे प्रकट होती है — यहाँ तक कि प्रस्तावनासे भी, जहाँ उन्होंने अपना दावा पेश किया है, यह बात साफ झलकती है। वे भारतमें यहाँकी चीजोंको अपनी आँखों देखनेके लिए नहीं, ऐसी सामग्री एकत्र करने आई थीं जिसमें से तीन चौथाई तो उन्हें अमेरिकामें ही मिल जाती।

और कुमारी मेयोकी रचना-जैसी पुस्तकको इतने अधिक पाठक मिल जायें, यह पाश्चात्य साहित्य और संस्कृतिके लिए बहुत चिन्ताकी बात है।

यह लेख मैं इस आशासे भी लिख रहा हूँ — चाहे यह आशा जितनी भी दूरस्थ हो — कि शायद किसी दिन कुमारी मेयोका मन पसीजे और वे इस बातके लिए पश्चात्ताप करें कि उन्होंने एक प्राचीन जातिके साथ — आशा करता हूँ, अनजाने ही — घोर अन्याय किया है और बिना किसी कारणके भारतके प्रति अमेरिकावालोंके मनमें पूर्वाग्रह पैदा करनेके लिए अपनी असन्दिग्ध लेखन-क्षमताका दुरुपयोग करके अमेरिकियोंके साथ भी वैसा ही बड़ा अन्याय किया है।

और सारी स्थितिकी विडम्बना तो यह है कि उन्होंने यह पुस्तक "भारतीय जनताको समर्पित" की है। निश्चय ही, उन्होंने पुस्तक एक सुधारकके रूपमें और स्नेहसे प्रेरित होकर नही लिखी है। अगर मेरा खयाल गलत हो तो वे फिर भारत आयें और लोगोंकी आपत्तियों और शंकाओंके उत्तर दें। यदि उनकी लिखी बातें जिरहकी आँच बरदाश्त कर लें तो फिर वे हमारे बीच रहकर हमारे जीवनको सुधारें। इतना तो हुआ कुमारी मेयो और उनकी पुस्तकके पाठकोंके लिए।

अब तसवीरके दूसरे पहलूको भी देखना चाहिए। जहाँ एक ओर मैं यह मानता हूँ कि यह पुस्तक अमेरिकियों और अंग्रेजोंके सामने रखी जाने लायक नहीं है (क्योंकि इससे उन्हें कोई लाभ नही होगा), वहाँ दूसरी ओर मेरा खयाल यह है कि इसे पढ़कर हर भारतीय कुछ-न-कुछ लाभ उठा सकता है। कुमारी मेयोने जिस ढंगसे अपना आरोप-पत्र तैयार किया है, उसे हम भले ही अस्वीकार कर दें, लेकिन उनके लगाये कई

आरोपोंमें जो सार है, उससे हम इनकार नहीं कर सकते। जिस रूपमें हमें दूसरे लोग देखते हैं, हम खुद भी अपनेको उसी रूपमें देखें, यह एक अच्छा गुण है। हमें इस बातकी भी छान-बीन करनेकी जरूरत नहीं है कि पुस्तक किन उद्देश्यसे प्रेरित होकर लिखी गई है। यदि कोई सुधारक तनिक सावधानी बरते तो यह पुस्तक उनके लिए कुछ कामकी साबित हो सकती है।

इसमें कुछ ऐसी बातें भी कही गई हैं, जिनकी छान-बीन करनेकी जरूरत है। उदाहरणके लिए, वे कहती हैं कि वैष्णव तिलकके पीछे एक अश्लील अर्थ छिपा हुआ है। मैं जन्मतः वैष्णव हूँ। जब मैं वैष्णव मन्दिरोंमें जाया करता था, तबकी याद मेरे मनमें अच्छी तरह बनी हुई है। मेरा परिवार पक्का वैष्णव था। बचपनमें मैं खुद भी तिलक लगाया करता था, लेकिन न मुझे और न मेरे परिवारके किसी अन्य व्यक्तिको ही यह बात मालूम हो पाई कि इस निर्दोष और किसी हदतक सुन्दर लगनेवाले तिलकके पीछे कोई अश्लीलता भी छिपी हुई है। यहाँ मद्रासमें मैंने इसके बारेमें कुछ वैष्णवोंसे पूछा। उन्हें तो उस अश्लील अर्थकी कोई जानकारी नहीं थी जो कुमारी मेयो इसपर आरोपित करती हैं। इसका मतलब यह नहीं कि मैं कह रहा हूँ कि इसके पीछे कभी ऐसा कोई भाव रहा ही नहीं होगा। लेकिन, मेरा मतलब यह अवश्य है कि इसके पीछे जो अश्लीलता होनेका आरोप लगाया गया है, उस अश्लीलताकी करोड़ों आम लोगोंको कोई जानकारी नहीं है। हम जिन अनेक रीतियों और रूढियोंका पालन आजतक सर्वथा निर्दोष भावसे करते आये हैं, उनकी अश्लीलताकी ओर हमारा ध्यान आकर्षित करनेका काम शायद हमारे देशको देखनेके लिए आनेवाले पाश्चात्य लोगोंके लिए ही रह गया था। मिशनरियों द्वारा ही प्रकाशित एक पुस्तकसे मैंने पहले-पहल जाना कि शिवलिंगम्में भी कोई अश्लीलता छिपी हुई है, हालाँकि आज भी जब मैं शिवलिंगम्को देखता हूँ तो न तो उसकी शक्लमें और न जिस परिवेशमें उसे देखता हूँ, उसमें मुझे कोई अश्लीलता दिखाई देती है। मिशनरियोंके ही एक प्रकाशनसे मैंने यह जाना कि उड़ीसाके मन्दिरोंमें अश्लील मूर्त्तियाँ बनी हुई हैं। पुरी जानेपर बहुत कोशिश करनेके बाद ही मैं उन चीजोंको देख पाया। लेकिन, मैं यह अवश्य जानता हूँ कि जो हजारों लोग मन्दिरमें जाते हैं वे इन मूर्त्तियोंमें छिपी अश्लीलताके बारेमें कुछ नहीं जानते। लोग वैसी कोई चीज देखनेकी इच्छासे वहाँ नहीं जाते और वे मूर्त्तियाँ बलात् उनकी आँखोंके सामने नहीं आ जातीं।

लेकिन, हममें जहाँ-कहीं बुराई है, वहाँ यदि कोई उसकी ओर हमारा ध्यान दिलाता है तो हमें उसका बुरा नहीं मानना चाहिए। हमारी गन्दगी, बाल-विवाह आदिके बारेमें उन्होंने जो-कुछ कहा है, वह अतिरंजित तो अवश्य है। लेकिन, हमें चाहिए कि हमारी जितनी आलोचना की गई है, अपने समाजसे लांछनके तमाम कारणोंको दूर कर देनेके लिए हम अबतक की अपेक्षा आगे उतना ही अधिक प्रयत्न करनेको तत्पर हो जायें। विदेशोंसे आनेवाले लोग ईमानदारीके साथ हमारी प्रशंसामें जो-कुछ कह सकें उसके लिए तो हमें उनका कृतज्ञ होना ही चाहिए, किन्तु यदि हम अपने क्रोधको वशमें रखेंगे तो अपने प्रशंसकोंकी अपेक्षा अपने आलोचकोंसे

ज्यादा सीख सकेंगे, और खुद मैंने तो सीखा भी है। हमारी झूठी बदनामी करनेवाली इस पुस्तकपर हमारा क्षुब्ध होना तो आवश्यक ही है, लेकिन उस क्षोभके कारण हमें अपने स्पष्ट दिखनेवाले दोषों और बड़ी-बड़ी कमजोरियोंकी ओरसे अपनी आँखें बन्द नही कर लेनी चाहिए। हमारे क्रोध करनेसे कुमारी मेयोका तो बाल भी बाँका नहीं होगा और वह क्रोध उलटे हमारा ही नुकसान करेगा। पश्चिमकी तरह ही हमारे यहाँ भी विवेकशून्य पाठक तो हैं ही। इसलिए यदि हम कुमारी मेयोकी लिखी हर बातको झूठा साबित करनेका प्रयत्न करेंगे तो पढ़नेवाले लोग यही समझेंगे कि हमारी जाति तो ऐसे पूर्ण मानवोंका समूह है जिनके खिलाफ कुछ कहा ही नहीं जा सकता, जिनके खिलाफ कोई कुछ कहनेकी हिम्मत ही नही कर सकता। इस पुस्तकके खिलाफ जो आन्दोलन उठ खड़ा हुआ है, उसमें मर्यादाके उल्लंघनका भय है। क्रोध करनेका कोई कारण नहीं है। मैंने अत्यन्त अनिच्छापूर्वक और कामकी बहुत भीड़के बीच यह समालोचना लिखनेका काम हाथमें लिया और इसे मैं तुलसीदासके एक सुन्दर दोहेका भावानुवाद करके समाप्त करता हूँ।

> जड़ हो या चेतन ईश्वरकी सृष्टिकी सभी वस्तुओंमें गुण और दोष दोनों होते हैं। जिस प्रकार कथा-कहानियोंमें वर्णित पक्षी, जो दूधके मक्खनवाले अंशको पानीवाले अंशसे अलग कर देता है, पानीको छोड़कर सिर्फ मक्खनको ही ग्रहण करता है, उसी प्रकार बुद्धिमान लोग हर चीजके दोषको छोड़कर उसके गुणको ही ग्रहण करते हैं।[1]

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, १५-९-१९२७

४५३. भाषण : वलंगैमानमें

१५ सितम्बर, १९२७

अध्यक्ष महोदय और भाइयो,

मानपत्र और थैलीके लिए धन्यवाद। यह जानकर बड़ी खुशी हुई कि यह श्री श्रीनिवास शास्त्रीका जन्मस्थान है। आपने बिलकुल ठीक ही कहा है कि वे भारतके महानतम सपूतोंमें से हैं। मुझसे कहा गया है कि आपके समक्ष यह घोषणा कर दूँ कि पुस्तकालयका उद्घाटन अब शीघ्र ही होनेवाला है। मुझे यहींसे इसके उद्घाटनकी विधि भी सम्पन्न करनेको कहा गया है। सो मैं बड़े हर्षके साथ इस पुस्तकालयको अभीसे खुल गया घोषित करता हूँ। मुझे आशा है कि बूढ़े-जवान सभी उस उदात्त पुरुषके जीवनके बारेमें सोचेंगे और आपमें से हरएक उनकी उच्च देशभक्ति, कर्त्तव्यभावना

१. जड़ चेतन गुन दोषमय बिस्व कीन्ह करतार।
संत हंस गुन गहहिं पय परिहरि बारि बिकार॥

और अथक उत्साहका अनुकरण करनेके लिए यथाशक्ति प्रयत्न करेगा। देशसेवा ही उनके जीवनका लक्ष्य है। ईश्वर करे, आप भी भारतके सच्चे सेवक बनना सीखें।

देखता हूँ, यहाँ मुसलमान लोग काफी तादादमें रहते हैं। आशा करता हूँ कि आपके आपसी सम्बन्ध बराबर शान्तिपूर्ण रहे होंगे। हम हिन्दुओं और मुसलमानोंको एक-दूसरेसे प्यार करना सीखना चाहिए, क्योंकि हम एक ही माँ की सन्तानें हैं।

यह देखकर मुझे खुशी होती है कि आप सब खादीमें विश्वास करते हैं। आपको एक कदम आगे बढ़कर अपने इस विश्वासको कार्य-रूप देना चाहिए। आप सबको खादी पहननी चाहिए। आप इस वृद्धाको (जो गांधीजी के दायें बाजूमें बैठी थी) कातते हुए देखते रहे हैं न। ऐसी हजारों-हजार बूढ़ी औरतें हैं, जो आपके सामने बैठी इस वृद्धासे भी बहुत गरीब हैं। यदि हम सब खादी पहनें तो इन्हें अपनी जीविका मिल सकती है। आपके मानपत्रके लिए मैं आपको एक बार फिर धन्यवाद देता हूँ।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, १६-९-१९२७

४५४. भाषण: मन्नारगुडिके नेशनल हाई स्कूलमें

१५ सितम्बर, १९२७

प्रिंसिपल साहब, छात्रो और छात्राओ,

यह मानपत्र और थैली देनेके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। चूँकि आपने मुझे बताया कि आप इस स्कूलमें हिन्दू धर्मकी भी शिक्षा देते हैं, इसलिए मैं चाहूँगा कि आप लोग हाथ उठाकर बतायें कि आपमें से कितने लोगोंका 'भगवद्गीता' से परिचय है। कोई झूठ-मूठ हाथ न उठाये। अब मैं यह जानना चाहूँगा कि जिन लोगोंने हाथ उठाये हैं, उनमें से कितने लोग 'भगवद्गीता' को मूल रूपमें ठीकसे समझते हैं। (इस पर सिर्फ एकने अपना हाथ उठाया)। अब आपने मुझे ईमानदारीसे अपना जवाब दे दिया है और मैं आपको इसके लिए बधाई देता हूँ। ज्ञानका प्रथम सोपान अपने अज्ञानकी स्पष्ट स्वीकृति ही है। इसलिए, आपको इस स्पष्ट स्वीकृतिके लिए बधाई देनेके बाद अब आपको यह भी बता दूँ कि यह जानकर मुझे कितना दुःख हुआ कि आपमें से बहुत कम लोगोंने 'भगवद्गीता' पढ़ी है और उसको मूल रूपमें तो और भी कम लोग समझते हैं। मेरे विचारसे, हिन्दू बालकों और बालिकाओंको 'गीता' से ही पढ़ाई शुरू करनी चाहिए। और इसलिए जिस संस्थाके बारेमें मुझे बताया गया है कि यहाँ हिन्दू धर्मकी शिक्षा दी जाती है, उस संस्थामें तो मैं अपने उक्त प्रश्नके उत्तरमें सभीके द्वारा हाथ उठा देनेकी अपेक्षा करूँगा। अब तो मैं यही आशा कर सकता हूँ कि आप अपने इस दोषको दूर कर लेंगे। दक्षिणके लोग उत्तरवालोंकी अपेक्षा कहीं अधिक विभूति या चन्दन लगाते हैं। और मैं देख रहा हूँ कि आप सबने अपने भालपर या तो खूब विभूति लगा रखी है या बिलकुल

ज्यामितिक ढंगसे चन्दनका तिलक लगा रखा है। इन चिह्नोंसे जहाँ एक हदतक काफी लाभ हो सकता है, वहाँ इनके पीछे सच्चे धार्मिक जीवनका सम्बल न रहने-पर ये बिलकुल बेकार भी हैं। जहाँतक मैं जानता हूँ। ये चिह्न आज पहलेकी तरह आन्तरिक जीवनके प्रतिबिम्ब नहीं रह गये हैं। आज तो यही लगता है कि इन चिह्नोंके रूपमें सिर्फ छिलका रह गया है और गूदा, सार सूख गया है। यदि आप 'गीता' को पढ़ें, उसका ठीक उच्चारण करें और व्याकरणके सभी प्रश्नोंके सही जवाब दे दें तो मुझे उतनेसे ही सन्तोष नहीं होगा। जब मैंने आपसे 'भगवद्गीता' पढ़नेको कहा तो मेरा मतलब यह था कि आपको उसकी शिक्षाको अपने व्यक्तिगत जीवनमें उतारना चाहिए। कहते हैं, 'भगवद्गीता' के दिव्य लेखकका कहना था कि यह समस्त उपनिषदों, समस्त ज्ञानका सार है और 'गीता' में आप सचमुच इस आशयका एक सुन्दर श्लोक भी देखेंगे कि जो भीतरके सारको छोड़कर सिर्फ बाह्य रूपाकृतिके पीछे पड़ा रहता है वह धूर्त और पाखण्डी है। इसलिए मैं विद्यार्थियोंसे कहता हूँ और प्रिंसिपल साहब तथा शिक्षकोंसे भी अनुरोध करता हूँ कि वे ऐसा प्रयत्न करें जिससे इस स्कूलमें हिन्दू धर्मके भीतरी मर्म, उसके सारको अभिव्यक्ति मिले; और यदि आप श्रद्धापूर्वक, विश्वासके साथ 'भगवद्गीता' का अध्ययन करेंगे तो पायेंगे, और मैंने पाया है, कि हिन्दू-मुस्लिम झगड़े या ब्राह्मण-अब्राह्मण विवादके लिए कोई गुंजाइश नहीं है। आपको 'भगवद्गीता' में अस्पृश्यताके लिए, बाल-वैधव्य और बाल-विवाहके लिए तथा धर्मके नामपर उस वेश्यावृत्तिके लिए, जिस वृत्तिमें आज देवदासियोंके रूपमे हमारी बहनें और बेटियाँ लगी हुई हैं, कहीं कोई आधार नहीं मिलेगा। यदि आप तीसरे अध्यायका ध्यानपूर्वक अध्ययन करेंगे तो उसमें आपको चरखेके पक्षमें भी बहुत-सी बातें मिलेंगी। यदि शिक्षक और इन बच्चोंके माता-पिता ध्यानसे सोचकर देखेंगे तो वे इन सारे बच्चोंको, जिन्हें मैं अपने सामने देख रहा हूँ, विदेशी वस्त्र नहीं पहनने देंगे। जिस तरह मैंने 'भगवद्गीता' का अध्ययन किया है, अगर आप भी उसी तरह उसका अध्ययन करेंगे तो आपको जीवनके अनेक कष्टोंका सहज उपचार मिल जायेगा। यदि प्रिंसिपल साहब भविष्यमें मुझे यह बता सकेंगे कि आप लोगोंने मेरा सुझाव मान लिया है और अब हरएक बालक और बालिका न केवल 'भगवद्गीता' को पढ़ और समझ सकती है, बल्कि उसकी शिक्षाके अनुरूप अपने जीवनको ढालनेकी भी यथाशक्ति कोशिश कर रही है तो सचमुच मुझे बड़ी खुशी होगी।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, १६-९-१९२७

४५५. भाषण: फिडले कॉलेज, मन्नारगुडिमें[1]

१५ सितम्बर, १९२७

अपने मानपत्रमें आपने बताया है कि आप भी मेरी ही तरह प्रतिदिन धर्मग्रंथोंको पढ़ते हैं। मैं यह तो नहीं कह सकता कि मैं धर्मग्रंथोंको रोज पढ़ता हूँ, लेकिन यह जरूर कह सकता हूँ कि मैंने उन्हें बहुत विनम्र भावसे और प्रार्थनापूर्ण मनसे पढ़ा है और यदि आप भी उन्हें इसी भावसे पढ़ रहे हो तब तो बहुत अच्छी बात है। लेकिन, मैं समझता हूँ कि आपमें से अधिकांश लड़के हिन्दू हैं। कितना अच्छा होता, अगर आप मुझसे यह कह सकते कि कमसे-कम आपके यहाँके हिन्दू लड़के 'भगवद्गीता' से प्रेरणा प्राप्त करनेके लिए प्रतिदिन उसका अध्ययन करते हैं। क्योंकि मैं मानता हूँ कि दुनियाके सभी धर्म न्यूनाधिक सच्चे ही हैं। 'न्यूनाधिक' इसलिए कह रहा हूँ कि मैं मानता हूँ, चूँकि मानव स्वयं ही एक अपूर्ण प्राणी है, इसलिए उसके हाथका स्पर्श होनेसे हर चीज अपूर्ण बन जाती है। पूर्णता तो ईश्वरका गुण है और वह वर्णनातीत है, ऐसा है जिसे व्यावहारिक रूप नहीं दिया जा सकता। मैं निश्चय ही यह मानता हूँ कि जिस प्रकार ईश्वर पूर्ण है, उसी प्रकार हर मनुष्यके लिए पूर्ण बन सकना सम्भव है। हम सभीके लिए पूर्णताको प्राप्त करनेके लिए प्रयत्न करना आवश्यक है, लेकिन जब वह परम स्थिति प्राप्त हो जाती है तब उसका वर्णन करना, उसकी परिभाषा करना असम्भव हो जाता है। इसलिए, मैं पूर्णतः विनयपूर्वक यह स्वीकार करता हूँ कि वेद, 'कुरान' और 'बाइबिल' तक ईश्वरके अपूर्ण शब्द ही हैं और चूँकि हम लोग स्वयं अपूर्ण हैं और तरह-तरहके राग-द्वेषोंसे हमारा चित्त विभ्रमित रहता है, इसलिए ईश्वरके इन अपूर्ण शब्दोंको भी पूरी तरह समझ सकना हमारे लिए असम्भव है। इसीलिए मैं हिन्दू लड़कोंसे कहता हूँ कि तुम जिन परम्पराओंमें पले हो, उनका उच्छेद मत करो। यही बात मैं मुसलमान और ईसाई बालकोंसे भी कहता हूँ। और इसलिए, जहाँ मैं इस बातका स्वागत करता हूँ कि आप लोग धर्मग्रन्थों और 'कुरान' का अध्ययन करते हैं, वहाँ मैं आप सभी हिन्दू लड़कोंसे यदि मुझमें आग्रह करनेकी शक्ति है तो यह आग्रह करूँगा कि आप लोग 'गीता' का अध्ययन कीजिए। मैं मानता हूँ कि आज हम स्कूली लड़कोंमें जो दोष देखते हैं, उनमें जीवनके सबसे बड़े और बुनियादी प्रश्नोंके प्रति भी जो उपेक्षाका भाव देखते हैं उनका कारण उस परम्पराका उच्छेद ही है जिससे ये लड़के अबतक पोषण पाते रहे हैं।

लेकिन, कोई मेरी बातोंका गलत अर्थ न लगाये। मैं नहीं मानता कि हर प्राचीन वस्तु केवल प्राचीन होनेसे ही अच्छी है। मैं यह नहीं कहता कि ईश्वरने हमें जो सोचनेकी शक्ति दी है, प्राचीन परम्पराओंके मोहके कारण हम उससे काम ही न लें। चाहे कोई परम्परा कितनी भी प्राचीन हो, यदि वह नैतिकताके विरुद्ध है, तो उसे देशसे बिलकुल मिटा देना चाहिए। अस्पृश्यताको प्राचीन परम्परा माना जा

1. यह "तीन भाषण" शीर्षकके अन्तर्गत प्रकाशित हुआ था।

सकता है, बाल-वैधव्य और बाल-विवाह, और इसी तरह न जाने कितने भयंकर प्राचीन विश्वासों और मूढ़तापूर्ण रीति-रिवाजोंको प्राचीन परम्पराओंकी श्रेणीमें रखा जा सकता है। लेकिन, मेरा बस चले तो मैं तुरन्त उनका अस्तित्व समाप्त कर दूं। इसलिए जब मैं प्राचीन परम्पराओंकी रक्षाकी बात करता हूँ तो अब आप समझ गये होंगे कि मेरा मतलब क्या होता है। और चूंकि मैं 'भगवद्गीता' म भी उसी ईश्वरको देखता हूँ जिसे 'बाइबिल' और 'कुरान' में देखता हूँ, इसलिए मैं हिन्दू लड़कोंसे कहता हूँ कि वे 'भगवद्गीता' से अधिक प्रेरणा ग्रहण करेंगे, क्योंकि उनके मनका मेल दूसरी किसी भी पुस्तककी अपेक्षा 'गीता' से ज्यादा बैठेगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २२-९-१९२७

४५६. भाषण: मन्नारगुडिकी सार्वजनिक सभामें

१५ सितम्बर, १९२७

अध्यक्ष महोदय और भाइयो,

इन अनेक मानपत्रों और दरिद्रनारायणके लिए भेंट की गई थैलियोंके लिए आपको धन्यवाद दे रहा हूँ। ताल्लुका बोर्डने मुझे अपने मानपत्रके हिन्दी अनुवादकी एक प्रति पहले ही दे दी, इसके लिए मैं उसे बधाई देता हूँ। मैं उस दिनकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ जब मैं हर जगह हिन्दीमें बोलूं और लोग मेरी बात समझ सकें। यह भारतकी सम्पर्क भाषा है या होनी चाहिए। अभी तो, जैसा आप जानते हैं, उत्तर और दक्षिणके बीच लगभग एक दीवार-सी खड़ी है। दक्षिणसे उत्तरको जानेवाले जनसेवी कार्यकर्त्ताओंको जब लोगोंके सामने अपनी बात कहनी होती है तो वे बड़ी मुश्किलमें पड़ जाते हैं। मैं यह नहीं कहता कि हिन्दीको तमाम प्रादेशिक भाषाओंका स्थान ले लेना चाहिए, लेकिन यह अवश्य कहता हूँ कि सभी जनसेवी कार्यकर्त्ताओंको, लोकमतको नेतृत्व देनेवाले सभी लोगोंको, वे जहाँ भी जायें, अपनी बात हिन्दीमें कह सकनी चाहिए। आप सभी जानते हैं कि उत्तरकी समितिने ६-७ साल पूर्व दक्षिणमें हिन्दीके प्रचारका काम शुरू किया। जो लोग हिन्दी सीखनेके इच्छुक हैं उन्हें हिन्दी सिखानेके लिए इस समितिने लगभग एक लाख रुपया खर्च किया है। मद्रासके केन्द्रीय कार्यालयको प्रयाग-स्थित मुख्य कार्यालयने अपना काम स्वतन्त्र रूपसे चलानेका अधिकार दे रखा है और अब यह बात दक्षिणमें लोकमतको नेतृत्व देनेवाले लोगोंके हाथोंमें है कि वे समितिके कार्य-व्यापारका विस्तार करें और इसे आत्मनिर्भर बनायें।

आपने अपने सभी मानपत्रोंमें भारत-भरमें किये जा रहे चरखा और खादी-सम्बन्धी कार्यका अनुमोदन किया है। मैं बहुत पहलेसे जानता हूँ कि मन्नारगुडि अपने बुनाईके कामके लिए प्रसिद्ध था और मैं यही आशा करूँगा कि निकट भविष्यमें मन्नारगुडिके सभी बुनकर हाथकते सूतसे बुनाई करेंगे। लेकिन, जबतक आप गाँवोंमें जाकर उन सभी लोगोंको, जिनके पास हर साल काफी अवकाश रहता है, काम नहीं देंगे तबतक बुनकरोंको अच्छा कता हुआ काफी सूत नहीं मिल सकता। आज

तीसरे पहर मैं मन्नारगुडिसे कोई दस मील दूर स्थित एक गाँवमें कार्यकर्त्ताओंके एक दलसे मिला। इस गाँवका नाम पलागार है। ये लोग इस गाँवमें और आस-पासके इलाकोंमें चरखेका प्रचार करनेमें लगे हुए हैं। इनका कहना है कि यदि उन्हें पर्याप्त कार्यकर्त्ता मिल जायें तो इन गाँवोंमें चरखेको दाखिल करनेकी काफी गुंजाइश है। मायावरम्‌में मुझे तालुकेके किसानोंकी ओरसे जो सुन्दर मानपत्र भेंट किया गया, उसमें कहा गया है कि ग्रामीण लोगों और किसानोंके पास सालमें मुश्किलसे छः महीने ही काम रहता है। मानपत्रमें एक और भी चौंकानेवाली जानकारी दी गई है। वह यह कि तंजोरके समृद्ध इलाकेमें किसानोंकी आय प्रति व्यक्ति चालीस रुपयेसे अधिक नहीं है, जबकि खर्च प्रति व्यक्ति १२० रुपये है। इस कथनमें यदि कोई अतिरंजना हो तो उसके लिए भी गुंजाइश रखते हुए इतना तो कहा ही जा सकता है कि यहाँके किसान किसी तरह अपना गुजारा-भर कर रहे हैं और उन्हें किसी सहायक धन्धेकी जरूरत है।

उसी मानपत्रमें मुझे बताया गया है कि मेहनत-मजदूरी करनेवाले लाखों लोगोंमें से अधिकांश अस्पृश्य माने जाते हैं और इसलिए मध्यवर्गीय लोग उनकी स्थितिकी ओर ध्यान नहीं देते। इस घोर अवदशाके निराकरणके लिए ही मैंने भारतके सामने चरखा और खादी रखी। हम मध्यवर्गीय लोग उनमें कोई रुचि नहीं लेते, हम इसकी कोई फिक्र ही नहीं करते कि उनके चरखेका, उनके उद्योगका क्या हुआ। और इस तरह अपनी अपराधपूर्ण उपेक्षाके कारण हमने उस उद्योगको अस्वाभाविक मृत्युका शिकार बनने दिया। मेरा अनुरोध है कि आप चरखेको एक नये दृष्टिकोणसे देखिए। मेरा यह भी अनुरोध है कि आप हमारे और किसानोंके बीच एक अटूट सम्बन्ध कायम करनेके लिए खादीका प्रयोग कीजिए और मैं जानता हूँ कि जबतक हम इन लाखों मेहनतकश लोगोंको अस्पृश्य मानते रहेंगे तबतक हमारे प्रयत्न सफल नहीं होंगे। मुझे कुछ बड़े ही ज्ञानी और विद्वान् पण्डितोंसे बातचीत करनेका मौका मिला था और जब मैंने उन्हें अस्पृश्यताके सिद्धान्तका प्रतिपादन करते सुना तो मुझे बहुत दुःख हुआ। लेकिन यह बताते हुए मुझे खुशी हो रही है कि ये पण्डित दुराग्रही नहीं थे, बुद्धिको ठीक लगनेवाली कोई भी बात मानने और अस्पृश्य माने जानेवाले लोगोंकी ओरसे दिये गये तर्कोंको सुननेको तैयार थे।[1] मेरे तर्कोंपर पूरी तरह गौर किये बिना उन्हें अस्वीकार कर देनेके बजाय उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक उन्हें सुना और यह स्वीकार किया कि जहाँतक सम्बन्धित लोगोंके कल्याणकी बात है, तर्क मेरे पक्षमें जाता है। यदि भारतके सभी पण्डित इतना स्वीकार कर ले तो मैं इसकी कोई परवाह नहीं करूँगा कि शास्त्रोंकी क्या व्याख्या की जाती है। सच तो यह है कि मुझ-जैसे एक साधारण व्यक्तिके लिए इतना जान लेना काफी है कि जो-कुछ परमार्थ साधनेके अनुकूल है, वह सर्वोच्च शास्त्र है और जो शास्त्र हमारे इस लक्ष्यके विरुद्ध है, उन्हें अस्वीकार करनेमें मुझे तनिक भी हिचक नहीं होगी।

१. देखिए "बातचीत: कुम्भकोणम्‌में पण्डितोंके साथ", १४-९-१९२७।

इस सम्बन्धमें मुझे बाल-विधवाओंके प्रश्नकी चर्चा अवश्य करनी चाहिए। हमें अपनी अबोध बालिकाओंको सीधा-सादा न्याय देना है और इसमें बहस-मुबाहसा करनेकी कोई जरूरत नहीं है। हममें इतना साहस तो होना ही चाहिए कि हम ऐसे हर बाल-विवाहको रद्द मानें। जबतक हम एक भी बाल-विधवाको ठीक उम्रकी होनेपर अविवाहित रहने देते हैं तबतक हम मानवताके प्रति अपना कर्त्तव्य पूरा करनेमें चूक कर रहे हैं। इस सवालसे स्वभावतः बाल-विवाहका प्रश्न उठता है। कम पढ़े-लिखे लोगोंसे बातचीत करनेपर मुझे यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि यद्यपि वे स्वीकार करते हैं कि ये चीजें बुरी हैं, फिर भी उनमें इन बुराइयोंसे छुटकारा पानेकी कोई प्रवृत्ति नहीं है — यहाँतक कि सामाजिक बहिष्कारके भयसे भी वे इसे छोड़नेको तैयार नहीं हैं। और आप देखेंगे कि आप ज्यों ही भारतके इन करोड़ों मेहनतकश लोगोंके बारेमें सोचना शुरू करेंगे और इनके साथ एक जीवन्त सम्बन्ध कायम कर लेंगे, आपका ध्यान बरबस देशके शराबखोरोंकी ओर चला जायेगा। . . .

हम मध्यवर्गीय लोग इस अभिशापसे ग्रस्त लोगोंकी ओरसे उदासीन रहे हैं। मेरी तुच्छ सम्मतिमें, इन लोगोंके बीच जाकर उन्हें इस कुमार्गसे विमुख करना हमारा कर्त्तव्य है। लेकिन मैं जानता हूँ कि जबतक सब जगह ताड़ीकी दुकानें कायम हैं तबतक हमारे उन भाइयोंके लिए अपने मनको बसमें रखना कितना कठिन है। इसलिए, पूर्ण मद्य-निषेध कराना हमारा अनिवार्य कर्त्तव्य है।

जैसा कि इस तरहकी सभी सभाओंके अन्तमें होता है, स्वयंसेवक लोग झोलियाँ लेकर आपके बीच जायेंगे ताकि जिन लोगोंने इन थैलियोंमें पहले भी कुछ न डाला हो, वे अब कुछ दे सकें। खुशीसे दिया गया एक पैसा भी स्वागतके योग्य है। यह विशुद्ध रूपसे देशके निर्धनतम लोगोंकी सेवा करनेका मामला है। जो भी पुरुष और स्त्रियाँ कुछ देना चाहती हैं, उन्हें इस उद्देश्यके लिए दान देना अपना कर्त्तव्य और सौभाग्य समझना चाहिए। आपको बता दूँ कि मायावरम्‌में एक प्रश्नके उत्तरमें मैंने उस संगठनकी पूरी कार्य-प्रणाली समझाई थी,[1] जिसके आधीन चरखेका काम चलाया जाता है। मैं चाहता हूँ कि आप इस संगठनकी प्रगति और व्यवस्थामें सक्रिय रुचि लें और इसके पास जो पैसा आता है, वह कैसे खर्च किया जाता है, इसे अच्छी तरह जानें-समझें। लेकिन, मैं आपको यह बता दूँ कि आज भारत-भरमें पन्द्रह सौ गाँवोंमें पचास हजारसे अधिक बहनें इससे लाभ उठा रही हैं। इनमें सबसे अधिक संख्या दक्षिणकी बहनोंकी है। करीब २० लाख रुपये इस संगठनको चलानेमें लगाये जा चुके हैं और लगभग १,५०० कार्यकर्त्ता इसे चला रहे हैं। इसमें जिन लोगोंकी रुचि है, उन सबको मैं इसकी विभिन्न शाखाओंकी कार्य-प्रणालीका अध्ययन करनेको आमन्त्रित करता हूँ। इसी संगठनके लिए मैं इस प्रदेशके सभी लोगोंसे चन्दा देनेका अनुरोध कर रहा हूँ।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, १७-९-१९२७

१. देखिए "भाषण: मायावरम्‌में", १३-९-१९२७।

परिशिष्ट

परिशिष्ट १

बंगलोरकी राजकीय दुग्धशालामें गांधीजी

. . . यह मालूम होनेपर कि बंगलोरमें कई दुग्धशालाएँ हैं, गांधीजी कई दिनोंसे इनमें से इम्पीरियल डेअरी नामकी एक दुग्धशालाको देखने जा रहे हैं। वहाँ वे इसकी कार्य-पद्धतिकी प्रत्येक छोटी-छोटी तफसीलको समझनेकी कोशिश करते हैं, पशुओंका निरीक्षण करते हैं; उनकी दूध देनेकी क्षमता, उनके खिलाने-रखनेपर होनेवाले खर्च, उन्हें दिये जानेवाले पोषक आहार, उनके गोबरकी व्यवस्था और उसमें प्रति वर्ष तैयार होनेवाली खादके मूल्य आदिके बारेमें जानकारी हासिल करते हैं। उनका खयाल है कि अखिल भारतीय गो-रक्षा संघके अध्यक्षके रूपमें अपने पदके प्रति न्याय करने के लिए यह सब आवश्यक है।[1]

. . . श्री स्मिथके सौजन्यके फलस्वरूप राजकीय दुग्धशालामें गांधीजी की 'पढ़ाई' का यह क्रम बहुत रोचक रहा। इसका जितना श्रेय उन अधिकारियोंको है जिन्हें गांधीजी को अपनी शक्ति-भर पूरी जानकारी देनेका दायित्व सौंपा गया था, उतना ही इस बातको भी था कि ऐसे अवसरोंपर दो दिन पण्डित मालवीयजी भी वहाँ उपस्थित थे। पहले दो दिन तो गांधीजी ने, दूधको जिन प्रक्रियाओंसे गुजरना पड़ता है, उनको देखनेमें लगाये। इसके बाद उनको विभिन्न गायें दिखाई गईं। विशेषज्ञ उनपर कड़ी निगरानी रखता है। वह उनके शरीरोंमें जानेवाले एक-एक औंस पोषण और उनसे मिलनेवाले एक-एक औंस दूधका हिसाब रखता है, ताकि विभिन्न आहारोंकी सुपाच्यता तथा गायोंकी दूध देनेकी क्षमतापर पड़नेवाले उनके प्रभावों आदिके बारेमें सही निष्कर्ष निकाले जा सकें। खुद श्री स्मिथने घास और चारेको खास किस्मकी बखारियों (साइलोज)में सुरक्षित रखनेका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तथा सरल तरीका समझाया। उन्होंने कहा कि "यह विधि एक-न-एक दिन पशुओंके चारेकी समस्याका समाधान करनेवाली है। यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और साथ ही इतनी अधिक सरल विधि है। और इसके बहुत सरल होनेसे ही लोग इसके महत्त्वको नहीं देख पाते हैं। उन्हें सीमेंट-कंक्रीटके बने पक्के और खाईवाले विभिन्न साइलोज-कुण्ड दिखाये गये। श्री स्मिथ-ने छोटी-छोटी तफसीलोंकी ओर ध्यान दिलाते हुए यह समझानेकी कोशिश की कि किस प्रकार खेतिहर लोग इन कुण्डोंका उपयोग करके थोड़ी-सी सावधानी बरतने

१. यहाँ तकका अंश महादेव देसाईके २३-६-१९२७ के "वीकली लैटर" (साप्ताहिक पत्र) तथा इससे आगेका अंश ३०-६-१९२७ के "वीकली लैटर" से लिया गया है।

पर, चाहे जैसा भी मौसम हो, अभावके समयके लिए अपने पशुओंके निमित्त चारा जुटाकर रख सकते हैं। उन्होंने जितनी रुचिसे हमें अपनी गायें दिखाईं और उनमें से कुछका इतिहास बताया, वह उनके गो-प्रेमका ज्वलन्त प्रमाण था। इस नेक स्कॉट-लैंडवासीने एक प्रकारके क्षम्य अभिमानके साथ हमें बताया: "मैं तो इन्हींके बीच जनमा और पला-बढ़ा हूँ। मेरे पिता कृषक थे और बीस वर्षोंतक डेअरीके डिप्लोमाके प्रत्याशी विद्यार्थियोंके परीक्षक रहे थे। मेरी माँ हमारे घरपर चलाई जानेवाली दुग्धशालाकी देख-रेख खुद ही करती थी। भारतके प्रत्येक कृषकको गो-पालन और गो-रक्षाका महत्त्व समझ लेना चाहिए। पशुओंके आहारके काम आनेवाली किसी चीजका हमें निर्यात नहीं करना चाहिए (इसमें वे पशुओंको भी बखूबी शामिल कर सकते थे), और हमें यह भी समझ लेना चाहिए कि गायोंकी दूध देनेकी क्षमता अधिक होनेसे बोझा ढोनेके काम आनेवाले उनके बछड़ोंके कमजोर होनेकी बात गलत है। इसके विपरीत, आप मेरे सामने कुछ बैलोंको ले आइए, और फिर मैं आपको यह सिद्ध करके दिखा दूँगा कि उनमें से अच्छेसे-अच्छे बैल उन गायोंकी सन्तान हैं जो सबसे ज्यादा दूध देती रही हैं।"

आखिरी दिन श्री स्मिथने अपने यहाँकी सबसे अच्छी गाय 'जिल' के साथ पण्डित मालवीयजी और गांधीजी का फोटो लेनेकी इच्छा व्यक्त की। 'जिल' आयर-शायर और मोन्टगोमरी, इन दोनों नस्लोंके संयोगसे उत्पन्न हुई है। अब तक इसने सोलह बार बछड़े दिये हैं और इतने वर्षोंसे प्रतिवर्ष औसतन १०,००० पौंड दूध देती रही है। स्वभावतः वह दुग्धशालाकी दुलारी गाय है। श्री स्मिथने बताया कि "इसका जन्म यहीं हुआ था और इसके जन्मके समय मैं यहाँ मौजूद था। तभीसे मैं इसको बढ़ते और विकसित होते देखता आया हूँ। हमारे पशुओंको सभी तरहके पशु-रोग हुए हैं, लेकिन जिलको कभी कोई रोग नहीं हुआ।"

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया २३-६-१९२७ और ३०-६-१९२७

परिशिष्ट २

मोतीलाल नेहरूका तार

इलाहाबाद
२३ अगस्त, १९२७

महात्मा गांधी
बंगलोर

आपके पत्र तथा मेरे मौखिक और लिखित अनुरोधोंके बावजूद अन्सारीने अपना वक्तव्य, जो थोड़े-से फेर-बदलके बाद भी उतना ही आपत्तिजनक है, प्रकाशित कर दिया। शिमला पहुँचनेपर पाया कि अधिकारीगण, नरमदली और प्रति-सहयोगी नेता उल्लासमें हैं, श्रीनिवास हर्षोत्फुल्ल हैं, दलके कमजोर सदस्य विचलित हैं, दृढ़ सदस्य क्षुब्ध हैं, लेकिन सभी मान रहे हैं कि अन्सारीके वक्तव्यपर आपकी और मेरी सहमति है। इसलिए मैंने एक यथासम्भव नरमसे-नरम वक्तव्य जारी किया है, जिसमें अन्सारीके वक्तव्यका आत्म-विनाशकारी स्वरूप बताते हुए उनसे आपकी सलाह माननेका अनुरोध किया है। यहाँ लौटकर भी वही सन्देह-शंकाका वातावरण पाया। शिवप्रसाद गुप्त-जैसे स्वमताग्राही कांग्रेसजन कांग्रेससे अलग होनेकी बात सोच रहे हैं। जब मैं वहाँसे चला, विधान सभाके सभी प्रान्तोंके कांग्रेसी सदस्य अन्सारीके चुनावके खिलाफ घोषणा-पत्रका मसविदा तैयार कर रहे थे। मेरे समझाने-बुझानेके बावजूद एकमात्र सम्भावित विकल्पके रूपमें आम तौरपर सभी जवाहरलालकी ही माँग कर रहे हैं। मेरे वक्तव्यमें हमारी सहमतिके बारेमें आशंकाएँ दूर होंगी और उसमें अवाञ्छनीय विवाद खड़ा होना सम्भव। सबसे अच्छा रास्ता यही समझता हूँ कि अन्सारी पदसे अलग हो जायें और फिरसे चुनाव करानेको कहें। दो दिनोंके लिए लखनऊ जा रहा हूँ। पता चीफ कोर्टका होगा। पच्चीस तारीखको यहाँ लौटकर अट्ठाईसको बम्बई रवाना होऊँगा और इकत्तीसको वहाँसे जहाजसे प्रस्थान करूँगा। अपने मतकी और अगर इस सम्बन्धमें आप कोई कार्रवाई करना चाहते हों तो उसकी सूचना तार द्वारा भेजें।

मोतीलाल नेहरू

अंग्रेजी (एस० एन० १२८७३) की फोटो-नकलसे।

सामग्रीके साधन-सूत्र

गांधी स्मारक संग्रहालय, नई दिल्ली: गांधी-साहित्यसे सम्बन्धित कागजातका केन्द्रीय संग्रहालय तथा पुस्तकालय; देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३४९ (प्रथम संस्करण)।

साबरमती संग्रहालय: पुस्तकालय तथा आलेख संग्रहालय: जहाँ गांधीजी के दक्षिण आफ्रिकी कालसे सम्बन्धित कागजात सुरक्षित हैं; देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३४९ (प्रथम संस्करण)।

'ट्रिब्यून': अम्बालासे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

'नवजीवन' (१९१९-१९३२): गांधीजी द्वारा सम्पादित तथा अहमदाबादमे प्रकाशित गुजराती साप्ताहिक।

'बॉम्बे क्रॉनिकल': बम्बईसे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरी: स्वराज्य आश्रम, बारडोलीमें सुरक्षित।

'यंग इंडिया' (१९१९-१९३२): गांधीजी द्वारा सम्पादित तथा अहमदाबादसे प्रकाशित अंग्रेजी साप्ताहिक।

'साबरमती' (गुजराती): राष्ट्रीय पाठशाला, साबरमती आश्रम, अहमदाबादकी हस्तलिखित पत्रिका।

'हिन्दी नवजीवन' (१९२१-१९३२): गांधीजी द्वारा सम्पादित और अहमदाबादसे प्रकाशित साप्ताहिक।

'हिन्दू': मद्राससे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

'बापुना पत्रो — कुसुमबहेन देसाईने' (गुजराती): नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद।

'बापू — मैंने क्या देखा, क्या समझा': रामनारायण चौधरी; नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद।

तारीखवार जीवन-वृत्तान्त

(१६ जूनसे १५ सितम्बर, १९२७ तक)

१६ जून : गांधीजी ३१ अगस्त तक लगातार बंगलोरमें रहे।

१९ जून : 'नवजीवन' में प्रकाशित 'धर्मके नामपर झगड़ा' शीर्षक लेखमें गांधीजी ने लिखा कि "मैं जैन और हिन्दू धर्मको अलग-अलग नहीं समझता। स्याद्वादकी सहायतासे ही मैं हिन्दू अर्थात् वैदिक धर्म और जैन धर्मका ऐक्य-साधन कर सकता हूँ।"

२५ जून : सरोजिनी नायडूको लिखे एक पत्रमें गांधीजी ने जोर दिया कि १९२७ में कांग्रेस-अध्यक्ष चुने जानेके लिए डॉ० अन्सारीके अलावा और कोई उपयुक्त व्यक्ति नहीं है। कांग्रेसमें हिन्दू-मुस्लिम समझौतेका कोई प्रस्ताव वही पास करा सकते हैं।

२७ जून : भारतीय दक्षिण आफ्रिकी समझौतेसे सम्बन्धित विधेयकका अन्तिम वाचन किया गया।

३ जुलाई : बंगलोरमें खादी-प्रदर्शनीके उद्घाटनके पश्चात् भाषण किया।

८ जुलाई : आदि कर्नाटक विद्यार्थियोंके समक्ष भाषण किया।

बंगलोरकी खादी-प्रदर्शनीमें पारितोषिक-वितरणके समय भाषण किया।

९ जुलाई : एमेच्योर ड्रैमैटिक एसोसिएशन, मैसूरमें भाषण दिया।

१० जुलाई : अखिल कर्नाटक हिन्दी सम्मेलन, बंगलोरमें भाषण दिया।

१२ जुलाई : इंडियन इंस्टिट्यूट ऑफ साइन्समें भाषण दिया।

१३ जुलाई : महिला समाजमें भाषण दिया।

१४ जुलाई : तुमकुर नगरपालिका द्वारा दिये गये मानपत्रके उत्तरमें भाषण दिया; पंचमोंकी पाठशालामें गये; प्राणी दया-संघमें भाषण किया।

१५ जुलाई : मद्दागिरिकी सार्वजनिक सभामें भाषण दिया।

१७ जुलाई : बंगलोरकी नगरपालिका द्वारा दिये गये मानपत्रके उत्तरमें भाषण दिया; मजदूरोंकी सभामें भाषण दिया।

१९ जुलाई : मैसूरमें विद्यार्थियोंके समक्ष भाषण दिया।

२० जुलाई : हिन्दी भाषा सेवा-समाजमें भाषण दिया। मैसूरकी नगरपालिका परिषद् तथा अन्य संस्थाओं द्वारा दिये गये मानपत्रोंके उत्तरमें भाषण दिया।

२१ जुलाई : आदि कर्नाटकोंके समक्ष भाषण दिया।

२३ जुलाई : विदाई-समारोहके अवसरपर भाषण दिया।

२४ जुलाई : बंगलोरके नागरिक और सामाजिक विकास संघमें भाषण दिया।

२६ जुलाई : यूनाइटेड थियोलॉजिकल कालेज और पुराण-विद्या समितिमें भाषण दिये।

२९ जुलाई : मिशनरियोंके साथ बातचीत की।
३० जुलाई : चामराजेन्द्र संस्कृत पाठशालामें भाषण दिया।
२ अगस्त : आरसीकेरे जंकशनपर लम्बानियोंके समक्ष भाषण दिया।
३ अगस्त : हासनके टाउन हॉलमें भाषण दिया।
४ अगस्त : बंगलोरमें गुजरातके बाढ़-पीड़ितोंकी सहायताके लिए अपील की।
७ अगस्त : बंगलोरके गुब्बी थियेटरमें भाषण दिया।
११ अगस्त : दावनगिरिकी महिला सभा तथा सार्वजनिक सभामें भाषण दिये।
१२ अगस्त : आदि कर्नाटकोंके समक्ष भाषण दिया।
१३ अगस्त : गांधीजी शिमोगा पहुँचे, महिला सभा तथा हरिहर मन्दिरके सामनेवाले मैदानमें भाषण दिया।
१४ अगस्त : शिमोगाकी सार्वजनिक सभामें भाषण दिया।
१६ अगस्त : गांधीजी सागर पहुँचे; सायंकाल एक महिला सभामें भाषण दिया।
१७ अगस्त : तीर्थहल्लीकी सार्वजनिक सभामें भाषण दिया।
शिमोगासे भद्रावतीके लिए रवाना हुए।
१८ अगस्त : भद्रावतीके आइरन वर्क्सके कर्मचारियों और अधिकारियोंके बीच भाषण दिया।
सायंकाल चिकमगलूरके लिए रवाना हुए।
१९ अगस्त : चिकमगलूरकी सार्वजनिक सभामें भाषण दिया।
अपने दौरेके कार्यक्रमोंको रखनेके सम्बन्धमें तमिलनाडसे अपील की।
२० अगस्त : बेलूर पहुँचे, बेलूर मठके सामने एक सार्वजनिक सभामें भाषण दिया।
आरसीकेरेकी सार्वजनिक सभामें भाषण दिया।
२१ अगस्त : वीर शैवानन्द आश्रम, तिपतूरकी सभामें भाषण दिया।
२३ अगस्त : बंगलोरमें।
२४ अगस्त : तमिलनाड दौरेका पहला चरण शुरू हुआ।
होसूर गये।
कृष्णगिरिकी सभामें भाषण दिया।
२८ अगस्त : बंगलोरकी पाँच सभाओंमें भाषण दिये।
२९ अगस्त : एसोसिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिको भेंट।
३० अगस्त : वेलूरके वूरीज कालेजमें भाषण दिया।
१ सितम्बर : गुडियाथममें।
२ सितम्बर : आरनीमें भाषण दिया।
अर्काटमें भी भाषण दिया।
३ सितम्बर : गांधीजी मद्रास पहुँचे; प्रान्तीय वालचर संस्थामें भाषण दिया; मद्रास ऐंड सदर्न मराठा रेलवे मजदूर संघके भवनकी आधार शिला रखी।
पेरावेल्लूरमें मजदूरोंके समक्ष भाषण दिया।
मद्रासमें विद्यार्थियोंके समक्ष भाषण दिया।

४ सितम्बर: वाई० एम० सी० ए० में भाषण दिया; एक सार्वजनिक सभामें भाषण दिया; 'गीता' पर भाषण दिया।

६ सितम्बर: गांधीजी ने हिन्दी प्रचार सभाके कार्यालयमें भाषण दिया।
नीलकी मूर्ति हटानेका आन्दोलन करनेवाले स्वयंसेवकोंसे बातचीत की।

७ सितम्बर: नीलकी मूर्ति हटानेका आन्दोलन करनेवाले स्वयंसेवकोंसे अन्तिम बातचीत की।
पचैयप्पा कालेज और रायपुरम्की सभामें भाषण दिये।

८ सितम्बर: कांजीवरम्की सभामें भाषण दिया।
मद्रासमें पैराम्बूरके 'आरुन्धतीयों' के समक्ष भाषण दिया।
गुजरातियों और मारवाडियोंके समक्ष भाषण दिया।

९ सितम्बर: गांधीजी ने मद्रासकी महिलाओंकी एक सभामें भाषण दिया।
चित्तरंजन दासके बारेमें मद्रासमें भाषण दिया।
सेंट टॉमस माउंट, मद्रासमें भाषण दिया।
गांधीजी ने 'हिन्दू' के प्रतिनिधिको भेंट दी।

१० सितम्बर: गांधीजी कडलूर पहुँचे; वाई० एम० सी० ए० तथा सार्वजनिक सभामें भाषण दिये।

११ सितम्बर: गांधीजी ने चिदम्बरम्में आदि द्रविड़ोंके समक्ष तथा एक सार्वजनिक सभामें भाषण दिया।

१२ सितम्बर: मायावरम्में।

१३ सितम्बर: मायावरम्की सार्वजनिक सभामें भाषण दिया।

१४ सितम्बर: गांधीजी कुम्भकोणम् पहुँचे।
एक सभामें भाषण दिया।
पण्डितोंके साथ बातचीत की।

१५ सितम्बर: वलंगैमानकी सभामें भाषण दिया।
गांधीजी मन्नारगुडि पहुँचे; नेशनल हाई स्कूल तथा फिडले कॉलेजमें भाषण दिया।
एक सार्वजनिक सभामें भाषण दिया।

'यंग इंडिया' में प्रकाशित 'नाली निरीक्षककी रिपोर्ट' शीर्षक लेखमें गांधीजी ने कैथरीन मेयोकी पुस्तक 'मदर इंडिया' की आलोचना की।

शीर्षक-सांकेतिका

विविध

सांकेतिका

ध

न

ब

भ

य

व

श

स